-+िश्चित्रदत्तिः श्र≻-

सारचिन्द्रका नामक विस्तृत हिन्दी भाषा टीका सहित

भनुवादक-रसतरिङ्गणी के प्रयेता,

स्वर्गीय-कविराज सदानन्द शास्त्री प्राणाचार्य

यह अन्य इतना दुरूह है कि प्राचीनकाल में ही-इस अन्य की रलप्रमा, मानुमती, तत्त्वचित्रका आदि अनेक संस्कृत व्याख्याए वन चुकीं थीं। यद्यिए (हिन्दी, वगला आदि) मारतीय माषाओं में इस समय इसकी अनेक व्याख्याए मिलती हैं। किन्दु-मूलार्थ को लगाने वाली ऐसी सरल व्याख्या आजतक कीई नहीं वनी। प्राणाचार्य महोदय ने इस हिन्दी व्याख्या में मूल के ही अर्थ को सरल तथा सरस वनाने का प्रयन्न नहीं किया है, अपितु सन्दिग्ध तथा विषम स्थलों पर प्राचीन आचार्यों के विभिन्न मतों का उल्लेख कर दिया है। इस व्याख्या में एक और भी यह विशेषता है (जो कि अन्य संस्कृत अथवा भारतीय माषा लिखित व्याख्याओं में कहीं भी नहीं मिलती, एव जिसकी आवश्यकता पद २ पर अनिवार्य जान पहती है) कि-इस व्याख्या में योगों की वर्तमानकालोचित मात्राओं का भी उल्लेख कर दिया है। इस व्याख्या को पढ़कर विद्यार्थी परीक्षा में अनायास ही पास हो सकते हैं।

इस व्याख्या के साथ रत्तप्रमा नामक टिप्पणी भी है, जिसमें जटिल विषयों का. विवेचन वड़ी सरल राति से किया गया है। इस टिप्पणी की सहायता से अध्यापक महोदय विद्यार्थियों की शाङ्काओं का समाधान वड़ी सुगमता से कर सकते हैं। मारत के भिन्न २ प्रकाशकों ने जितने भी सस्करण इस अन्य के निकाले हैं उनमें यह बड़ी मही मूल रह गई है कि—मूल पाठ बहुत ही अशुद्ध छ्या है। इस अन्य में (जो पाठ जिस अन्य से उद्धृत किया गया है, उस अन्य में उस पाठ को देखकर) मूल पाठ को भी बड़ी खोज से शुद्ध किया गया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इस अन्य के कलवर को सजाने के लिए उत्तम, मस्य, सुदृढ एवं कमनीय कागज का उपयोग किया है। इस अन्य की छपाई ऐसी अनोखी है, कि वम्बई के सुप्रसिद्ध सुद्यालयों से भी आजतक ऐसी पुस्तक नहीं निकली। इतनी विशेषताओं के होते हुए भी विद्यार्थियों की सुलभता के लिए मूल्य रक्खा है केवल ६) छ: र०। डाकखर्च अलग; राजसस्करण मूल्य १२) र०

श्रायुर्वेदीय नावनीतकम्।

प्राचीन आयुर्वदिक समय के बहुत ऐमे अन्य भी छा। है, निनका हमें नाम भी शात नहीं, जिनमें से बायुरेंद्रका एक १७०० वर्षका प्राचीन इस्तलिखिन युन्य "नावनीतकन्" नामका मी है। जो कि १८८६ में र्लफ्टोनेन्ट वावर नानक एक अग्रेजी विद्वान्को पूर्वीय तुर्किन्तान (Eastern Turkistan) में चीत देश के निकट मिना और मारतीय गवर्नमेंट ने इन अन्यनी प्राचीन मापाझी तथा लिपियोंके निपुरा विद्वान् ढा० इ।नने माहिरको विषय समालोचना के लिये दिया था। लिन्होंने बढ़े परिश्रमसे २१ वर्ष पर्यंत ग्रन्थके समंका अनु-सन्धान ऋरके इसको गवर्नमेंट कापीको मीजूदा स्रतमें तैयार किया। बहुत मारी भर्यात १५० रहवे के लगमा मृन्य होनेके कारए नर्वसाधारण की ही अनके टर्गन मी दुर्तम थे। प्रत्युत ५ वा ६ वर्षमे तो यह भी द्वास (out of stock) हो गई है। ऐसी दरा। होने पर आयुर्वेदिक जनता तथा वैद्योंका इस पुस्तक से कपरिचित रहना दही हानि और दुर्मा यका कारए था। इस दु खकी अनुमन करते हुए कविरात बलक्तासिंह तो ने जो कि बहुत वर्षीसे ब्राह्मवैदिक रिसन कर रहे हैं. इन अन्यको सर्व माधारयेक हिताथे प्रनः दीर्वहरि स नगोषन करके विशेष टिप्पणी महित तैयार किया है। जन्य विकित्सा विषय पर है, बहुन भाषियाँ और योगोंका क्रन्योंने विमक करके उनके पृथक् ? प्रयोग दिखाय गए ई, विरोपकर्तक वाजीकारा, रनायन, भन्नन, मुखनेष, घगदवन्त्र, बस्टिकर्ननन्त्र सिंद और रमल इलादि विषयों पर विवरण है। मत्कृत सरन और प्रतेक क्रोक छन्द बड़ा ननोरकक है। काएक चिकिन्नोंम इमले और उत्तन नग्रह ग्रन्थ मिलना अन्नमन है। और प्राचीन अन्योंने मंग्रह होने के कारव बतका नाम मी ' नावनीतक्तं' अर्पाद् 'म्हानुर्वेट का नाखन' है। प्रारम्मने रक मनोरज्ञक मनिकाके अन्दर अवप्राप्तिको क्या के अविरिक्त अय सन्दर्ग अन्य विरोध स्वयोगी विषय पर भी विचार किया गया है। इसकी छपानेके तिये कविराज को ने बढ़ी कठिनता पूर्वक गवनेंसटेन आहा ली है। कान और द्वपाई बहुत उत्तम है। सारंब १=×२२ है। साधारए आवृत्ति वाली सजिल्द पुरतकता मूल्य केवल ४)

इस पुस्तकका लायकेरी एडीगन पृथक् तथ्यार किया गया है। निसकी कागज़ बहुत ही मीटा और सुन्दर लगवाया गया है। जिल्द अतीव सुन्दर व पछी दशवाई गर्भ है। दान म) आठ रुपया

> पवा-मेहरचंद्र लच्मणदास, संस्कृत पुस्तकाल्य सेद्मिट्टा वाज़ार, लाहोर।

विज्ञापनम्

श्रवि प्राणाभिसराः भिपंजः !

नैतन्न विदितचर तत्रभवता भवता यदयाविध समुपल्ल स्यमानेषु प्राची-नेषु संप्रहमन्येषु श्रीचकपाणिकृतस्य चिकित्सासारसंग्रहस्य कियानादरः। परमस्य प्रन्थस्य कर्ता श्रीचकपाणिः किस्मन् कुले, किस्मन् काले, किस्मश्च जनपद समजनीत्यतिद्वषये यदितिवृत्तमुपलभ्यते शूयते वा तिद्द प्रतिपाद्यते । श्रयं हि दत्तकुलान्तर्गतलोध्रवलीसंज्ञककुलोत्पन्नः, नारायणदत्तस्य पुत्र भानुदत्तस्य च श्राता श्रासीदिति प्रन्थान्त एवोक्कादात्मवृत्तान्ताञ्ज्ञायते । त्याहि—

गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपात्र-

नारायणस्य तनय सुन्योऽन्तरङ्गात्। भानोर्तु प्रथितलोधवलीकुलीनः श्रीचकपाणिरिह कर्तृपदाधिकारी ॥

इदमेनेतिवृत्तं स्वप्रणीतायाश्वरकतात्पर्यटीकेत्यपरपर्यायाया आयुर्वेद-टीपिकेत्याख्यायाश्चरकटीकाया श्रन्तेऽपि लिखितं तेनेव । ज्ञायते चानेनैव यदस्य पिता नयपालराज्ञो मन्त्री रसवत्या निरीक्तक्ष्वासीत् । " मानुदत्तश्च "भूवालराज्ये प्रधानसेनाध्यक्तपटमलङ्करोति स्म इति "हिस्ट्री श्लोफ दी भूवाल" नान्ति पुस्तके प्रन्थकर्त्रो निर्दिष्टम् । शिवदासेन च " श्रन्तरक्षादितिपदव्याख्या-नावसरे " विद्याकुलसम्पन्नो हि भिषगन्तरक इत्युच्यते इत्युक्तवतास्य सुभि-षक्त्वमप्युपदर्शितम् ।

वक्षान्तर्गत वीरभूमदेशवास्तव्यश्वाय चक्रपाणि ; श्रूयते तत्र हि श्री चक्रपाणिस्थापित श्रीचक्रपाणीश्वरमन्दिरोऽप्यस्तीति ।

यद्यप्यस्मिन् प्रन्थे प्रन्थकृता न कीर्तितं स्वग्ररानीम तथापि-

नरदत्तगुरूहिष्टचरकार्थानुगामिनी । क्रियते चक्रदत्तेन टीकायुर्वेददीपिका ॥ इति चरकटीकायामादावेवोकत्वादस्य ग्ररोर्नाम नरदत्त इति ।

विषयानुक्रमणिका।

विषया.	पृष्टाङ्का	विषयाः	पृष्ठाद्धाः
अथ ज्वरचिकित्सा	Ş	कल्कसाध्ययवाग्वाः	साधनः
मंगलाचरणम्	17	प्रकार:	<u>م</u>
त्रन्थस्य सवन्धाभिधे		काथसाध्यपेयाद्गीनां	परि-
प्रयोजनानि	17	भाषा	17
चिकित्साक्र मः	ર	यवाग्वर्थं तग्हलपरिम	
नवज्वरे वर्जनीयानि	"	मएडादीनां लक्तगम्	11
ज्वरादौ लड्डनम्	"	श्रनादिपाकार्थं जला	_
ज्वरस्य सम्प्राप्तिः	३	माग्रम्	१०
लङ्घनफलम्	77	तरुणज्वरे श्रामदोषार	Q i
लहुनस्य इयत्तावधारः	एम् "	पाचनानि	ઇક
श्रलह्वनीयाः	ષ્ઠ	ज्वरस्य तरुणत्वादिक	ालः १४
सम्यक् इतस्य लहुनस्	य	कषायप्रयोगकालः	27
लत्त्रणम्	37	रससामतालच्यम्	.\$0
श्रतिलङ्घितलज्ञग्रम्	12	श्रामपाकलच्चणम्	>>
श्रवस्थाविशेषे वमनम	ሂ	सर्वज्वरेषु पाचनम्	१्र
कुत्र वमनप्रयोगो न क	ार्थः ,,	परिणामप्रयुक्तस्य भेषः	तस्य
उप्णशीतजलयोः प्रयो	ग•	गुणा-	27
गुगाश्च	27	जीर्यीप्धलक्तराम्	38
पडह्मपानीयम्	દ	श्रजी र्णोषधलद्म ण्म्	, 11
पडह्मपानीयादिनिर्माण		्भोजनसमयोपयुज्यमा	नस्यौ-
प्रकार	77	षधस्य गुणाः	, ,,,
व्मनलङ्घनयोरनन्तरमि	ति-	मात्राविचारः	21
क्रर्तब्यता ,	৩	काथविषया परिभाषा	२०

विषयाः 🕛 पृष्ट	ग्रद्धाः	विषया पृ	प्राद्धाः
चरकसुश्रुतयोर्मतेन माप	r-	मधूकसारादि	श्र
कादि मानपरिभाषा	२०	श्रञ्जनम्	देद
चरकोक्षमानस्य मान्यत्व	ाम्२१	श्रणङ्गावलेहिका	1,
चातज्वरचिकित्सा -	11	पञ्चमुष्टिः	38
काथस्त्रहयोः प्रदेषमान-		चातुर्भद्रकपञ्च म् लम्	,,
परिमापा	२२	दशमूलम्	80
पित्तज्वरचिकित्सा	ર૪	चतुर्दशाङ्गः	57
कफज्यरचिकित्सा	२७	चातऋेष्महरो <i>ऽ</i> ष्टादशा	ह ४१
चातुर्भद्रावलेहिका	२६	पिचश्लेपाहरोऽपादशा	
श्रवलेहसेवनकालः	17	मुस्ताद्यग णः	11
नवाङ्ग	22	शुट्यादिगणः	11
पञ्चमद्रम्	३०	ब् हत्यादिगणः	ઇર
पिचश्चेष्मज्वगचिकित्स	३१	श्रभिन्यासज्वरचिकित्स	ता "
पटोलादि•	75	जीर्णज्वरिचकित्सा	88
गुङ्गच्यादि	22	निदिग्धिकादि <u>ः</u>	27
चातुर्भद्रकपाठासप्तकौ	11	विपमज्वरिचकित्सा	યુપ્ર
कराटकार्य्यादि	23	मुस्तकादि	8£
श्रमृताएकः	32	श्रप्राङ्गधूपः	४८
पञ्चतिक्रम्	37	श्रपराजिताधूपः *	2,
चातऋेप्मन्यरचिकित्स	१ ३३	वृतीयकचतुर्थकयो-	
स्वेदस्य गुणा	23	श्चिकित्सा	38
पञ्चकोल-	३४	ज्वरे घृतप्रयोग.	Ko
जुद्रादिः	17	पिष्पल्याद्यं घृतम्	28
सन्निपातज्वरचिकित्सा	34	श्रनिर्दिप्रकल्मकाथसा	य-
सिन्नपातज्वरे लहुनका	त्तः ३६	तायां विशेषनियमः	४२
निष्ठीवनम्	30	स्नेहसाघनपरिमापा	४३

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषया: प्र	शङ्काः
चीरषद्पलकं घृतम्	४३	कलिङ्गाद्यगुडिका,	. E10
स्नेहसाघनार्थं चीरग्र	ह्या-	ब्योषाद्यचूर्शम्	^` "
परिभाषा	,,	अथातीसारीचिकित्सा	33
देशमूलषद्पलकं घृत	ाम् ४४	श्रामपकाविड्लज्ञ्स्	•
काथसाध्यस्नेहपाके।	काथा-	श्राम क्रियाक्रमः	11 190
दीनां परिभाषा	3 1	लङ्घनप्राधान्यम्	,,
वासाद्यं घृतम्	ક્રફ	बृहच्छालपर्ग्यादिः	७१
गुडूच्यादि घृतानि	১ ৩	स्वल्पशालपर्गादिः	"
च्चीरपानाव स्था	ક્રષ્ટ	श्रामातिसारे संप्रहण-	•
चीरपाकप् रिभाषा	,,	निषेघः	७२
षट्कट्वर्तैलम्	६१	श्रवस्थाविशेषे संग्रहण्	म् "
श्र ङ्गारकतेॄलम्	2,	धान्यपञ्चकम्	"
लाचादि तैलम्	६२	कश्चरादिः	" لاي
श्रागन्तुज्वरचिकित्स	π "	मञ्चरापः श्रङ्कोठवटकः	47
कोघकामादिज्वरिच	कित्सा ६३	वत्सकादिः	30
भूतज्वरिचकित्सा	22	कुटजपुटपाकः	5 2
वर्जनीयविधिः	६४	श्योगाकपुटपाकः	9;
ज्वरमुक्तिलत्त्रणम्	22	कुटजलहः	43
श्रथ ज्वरातिसारि	किन्मा६७	कुटजा <u>ष</u> कः	17
	14/(1170	षडङ्गघृतम्	28
उत्पलषट्कम्	21	चीरिद्धमाद्यं घृतम्	EX
नागरादिः	६४	=	ದಕ್
ह्रीवेरादिः	27	अथ ग्रहणीचिकित्सा	
गुङ्क्यादिः	६६	चित्रगुडिका	===
उशीरादिः	33	श्रीफलादिः	32
पञ्चमूल्यादिः	17 '	पञ्चपञ्चवस्	73
`			

विषया.	पा ष्ठद्धाः	विषयाः	<u>प्रष्ठाद्धाः</u>
नागराधं चूर्णम्	32	अथाशिश्चिकित्सा	१०३
भूतिम्वाद्यं चूर्णम्,	03	-	1-1
ॐिमकग्रहर्णे चिक	त्सा-	प्रलेपाः	१०४
क्रम	03	दन्त्यरिष्टम्	१०६
म क्षातकत्तार	83	प्राणदा गुडिका	800
पाठाद्यं चूर्णम्	17	काद्वायनमादकः	. ફેંગ્ફ્રે
कपित्थाप्टकचूर्णम्	६२	माणिभद्रमोदकः	22
दाडिमाप्टक	5;	स्वल्पश्रूरणमोदकः	११०
वार्चाकुगुडिका	६३	बृह च्छूरणमोद्कः	23
श्रष्टपतं घृतम्	2)	ग्ररणिगडी	११ १
विल्बगर्भघृतम्	57	व्यापोद्यं चूर्णम्	91
शु राठी घृतम्	દુષ્ઠ	समशर्करं चूर्णम्	११२
नागरघृतम्	va .	लवणाचमाचं चूर्णम्	13
चित्रक घृतम्	"	विजयसूर्णम्	११३
विद्वादिघृतम्	3)	श्रीवाहुशालो गुड	११४
चाङ्गेरीघृतम्	£\$	गुडमझातक	११६
मरिचाचं घृतम्	9,	श्रपरो गुडमल्लातक.	27
महापद्पलकं घृतम्	33	चव्याद्यं घृतम्	११७
स्वल्पचुक्रम्	27	ब्योपाद्यं घृतम्	११८
वृहच्चुऋम्	શક	उदकषद्पलं घृतम्	- ,,
तकारिष्टम्	2,	सिह्यमृतं चृतम्	31
श्रायामकाञ्जिकम्	85	पिष्पल्याद्यं तैलम्	72
कल्याग्गुड	33	रक्षाशिश्विकत्सा	३१६
कूष्माएडगुडकल्याण्	तम् १००	कुरजलेह	१२०
रसपर्पटिका	१०१	कुटजरस िकया	१२१
ताम्रयोगः	१०२	कुरजार्च घृतम्	१२२

	ម្បន្នេះ	विषयाः पृ	शङ्काः
सुनिषएणकचाङ्गरीषृत	म् १२२	विष्टव्याजीर्शिचिकित्सा	१४२
चार.	१२३	पथ्यात्रिकम्	१४४
ज्ञारसूत्रम्	१२६	विस्विकाचिकित्सा	17
त्तारेण सम्यग्दग्धस्य		अथ क्रिमिचिकित्सा	१४७
लच्यम्	77	त्रिफलाघृतम्	38\$
श्रिमुखं लौहम्	१२≍	विडङ्गघृतम्	1.
भन्नातकलौहम्	१२६	विडङ्गतैलम्	१४०
रसगुडिका	१३०	अथ पागडुरोगचिकित्स	
अथाग्निमान्यचिकित्सा	१३०	हेतुप्रत्यनीकचिकित्सा	१४१
हिग्वप्टकं चूर्णम्	१३१	नवायसलौहम्	१४३
अन्नम ग्डगुणाः	77	योगराजः	57
तीच्णाग्निविकित्सा	१३२	विडङ्गाचं लौहम्	१५७
यार्वू लका। क्षेक	१३४	त्र्यूषणाद्यं मण्डूरम्	7
अग्निमुखं चूर्णम्	22	पुनर्नवामग्रह्रस्	१४८
पानीयभक्तगुडिका	१३६	वज्रवटकमराङ्गरम्	१५६
बृहद्शिभुखं चूर्णम्	17	धात्र्यारिष्टम्	32
भास्करलवणम्	१३७	द्रान्ताघृतम्	१६०
श्रीगृतम्	१३८	हरिद्राघृतम्	>>
मस्तुषद्पलकं घृतम्	१३६	मूर्वाद्यं घृतम्	23
यडवामुखचूर्णम्	>>	व्योषाद्यं घृतम्	31
वृहद् श्लिघृतम्	13	श्रथ रक्वपिचिकित्सा	१६१
न्नारगुड-	१४०	प् लागुडिका	१६६
चित्रकगुडः	१४१	दूर्वाद्यं घृतम्	१६८
^{भ्रामाजी} र्णिचिकित्सा	27	शतावरीघृतम्	\$5
विदग्धाजीर्याचिकित्सा	33	बृहच्छतावरीघृतम्	१६६

विपयाः	पृष्ठाद्धाः
वासाद्यं घृतम्	358
कामदेवघृतम्	१७०
सप्तप्रस्थघृतम्	१७१
खएडकृष्माएडक	१७२
वासाखरडक्षमारडव	Fi 22
वासाखर्डः	१७४
खराडकाचो लौहः	१७४
, श्रथ यत्त्मचिकित्सा	१७७
त्रयोदशाङ्ग.	308
सितोपलादिलेह	१८०
लवड्डाच चूर्णम्	,,
तालीशाद्यं चूर्ण मोद	कश्च१८१
श्रङ्गयर्जुनाद्यं चूर्णम्	
विन्ध्यवासियोगः	77
रसेन्द्रगुडिका	99
प्लादिमन्थ.	१८३
सर्पिगुंडः	१८४
च्यवनप्राशः	१८६
जीवन्त्याचं घृतम्	१८८
पिप्पलीघृतम्	72
पाराशरघृतम्	१८६
छागलाद्यं घृतम्	77
श्रपरं छागलाद्यं घृत	म् "
श्रजापञ्चकं घृतम्	१६०
वलागर्भे घृतम्	77
नागवलाघृतम्	19
	· ·

विषया'	वृष्ठाङ्का
निर्गुएडी घृतम् 🕡 🕡	। १६१
वलाद्यघृतम्	17
चन्दनाधं तैलम्	१ह२
वलाद्यं घृतम्	१६३
श्रथ कासचिकित्सा	१८३
वातकासचिकित्सा	27
श्रपराजितलेहः	21
पित्तकासचिकित्सा	83\$
कफकासचिकित्सा	438
नवाइयूंप	१६६
कट्फलादिः	"
मरिचाद्यं चूर्णम्	१६७
समश्करं चूर्णम्	72
व्यापान्तिका गुडिका	१६८
दशमूलघृतम्	339
दशमूलाद्यं घृतम्	77
दशमूलपद्पलकं घृत	
करंटकारीघृतम्	51
श्रपरं करस्कारी घृता	Į 17
वृहत् कराटकारीघृता	-
रास्नाद्यं घृतम्	२०१
श्रगस्त्यहरीतकी	97
व्याघीहरीतकी	२०२
अथ हिकाश्वासचिकि	त्सा २०३
पर्णासपञ्चकम्	२०४

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
हिंसायं घृतम्	२०४	चीरकल्याणकं घृतम्	२३४
तेजावत्याचं घृतम्	२०६	महाकल्यायकं घृतम्	27
भागींगुडः	,,	चैतसं घृतम्	२३६
कुलत्थ गुडः	२०७	महापैशाचिकं घृतम्	77
श्रथ स्वरभेदचिकित	सा २०८	हिंग्वाद्यं घृतम्	२३७
कण्टकारीघृतम्	२१०	लग्रुनाचं घृतम्	"
भृङ्गराजाद्यं घृतम्	22	अथापस्मारि चकित्स	ा २४ ०
श्रथारोचकचिकित्स	- 1	स्वलपश्चगव्यं घृतम्	२४२
यमानीषाडवः	२१३	वृह्दरञ्जगन्यं घृतम्	17
कलहंसः		महाचैतसं घृतम्	२ ४३
24.2.2	" २ १४	कूष्मागडकघृतम्	33
श्रथ छर्दिचिकित्सा		ब्रह्मीघृतम्	રક્ષક
जातीघात्री	२१८	पलङ्कषाद्यं घृतम्	17
पतादिचूर्णम्	17	अथ वातच्याधिचिकि	त्या२४४
पद्मकाचं घृतम्			
अथ तृष्णाचिकित्स			२४४
श्रथ मुर्च्छाचिकित्स	१ २२ ५	स्नहलवणम्	२४६
श्रथ मदात्ययाचिकि	त्सा २२७	कल्याणकलेहः	२४८
पुनर्नवाद्यं घृतम्	२२द	मापवलादिः	11
श्रष्टाङ्गलवणम्	2)	स्वल्परसोनिप्उड	२४०
श्रथ दाहचिकित्सा	२३०	ऋदित्यपाकगुग्गुलु-	
.कुशाद्यं तैलं घृतञ्च	२३१	વદ્યા.	२४४
		त्रयोदशाद्गगुगुजु	२४४
अथोन्माद्चिकित्सा			२४७
ज्यूषणाद्या-वर्ति	२३३	श्रश्वगन्धाद्यं घृतम्	2X2
पानीयकल्याणकं घृत	ाम् २३४	दशमूलाचं चृतम्	२४६

€

विपयाः	पृष्ठाद्वा	विषया	विष्ठाद्वा
छागलाद्य घृतम्	386	तेलम्	507
पलादितेलम्	२६०	पकादशशातिकं प्रसार	ર્ણા-
यलाशरीयतेले	२६१	तेलम्	२७६
महावलातेलम्	,,	श्रष्टादशशितकं प्रसार	णी-
विष्णुतेलम्	२६२	तंलम्	3.0≈
नारायग्रतेलम्	२६३	महाराजमसारणीतिलम	र् २८०
महानारायण्तैलम्	२६ ४	शुक्रकर णम्	र्द्ध
अश्वगन्ध्रातं लम्	२६४	गन्धद्रव्यशुद्धिः	51
मूलकाद्यं तेलम	३६ ६	नखीशुद्धि	マニメ
रसानतत्तम्	11	वचाग्रद्धिः	13
केतस्याद्यं तैलम्	२६७	मुस्तकश्चाद्धिः	39
सैन्यवाद्यं तैलम्	,,	रीलजगुद्धि'	२⊏६
स्वलपमापतेलम्	13	च ष्टाशीशुद्धिः	77
मापतेलम् (प्रथम)	73	महासुगन्थिल इमीविल	ास-
,, (हितीय) २६८	र्तले	२८७
, (चृतीयं महामापतैलम्) " રદ્દદ	श्रय वातरक्वचिकित्स	१ २८१
विश्वतीय प्रसार णीते	तम् "	गुहूचीतैलम्	२६२
वृहन्मापतैलम्	३७६	नवकार्षिक.	77
त्रपरं महामापतेलम	Ţ ,,	गुडूचीघृतम्	२६३
मजस्रेदः	३७३	शंतावरीघृतम्	3,
चतुःखेदः	22	श्रमृताद्यं घृतम्	27
कुञ्जप्रसारखीतैलम्	રહર	दशपाकवलातेलम्	२६ ४
श्रपरं त्रिशतीयप्रसा		गुडूच्यादितैलम्	77
वैलम्	1>	खुडुाकपश्चमतेलम्	>,
सप्तशतिकं प्रसारणी		नागवलातैलम्	રદંપ
		•	

विषया-	पृष्ठाद्धाः ।	विषया.	पृष्ठाङ्काः
पिराडतैलम्	રહ્ય	-गुडूचीघृतम्	३१२
महापिएडतेलम्	२१६	काञ्जिकपद्यलकं घृत	म् ३११
कैशोरको गुग्गुलुः	17	शुराठीघृतम्	,,
श्रमृतागुग्गुलुः	२६७	रसोनपिएडम्	"
पुनर्नवागुग्गुलुः	२६≂	प्रसारणीसन्धानम्	३१२
योगसारामृतः	२६६	रसोनसुरा	13
वृहद्गुडूचीतैलम्	"	शिएडाकी	३१२
अथोरुस्तम्भ चिकित्स	रा ३००	सिध्मला	383
अष्टकट्वरं तैलम्	૩ ૦૨	श्रथ शूलचिकित्सा	३१४
कुष्टाचं तलम्	2,	वातग्रलचिकित्सा	32%
		नारिकेलखएड-	388
त्रथामवाति चिकित्सा 		पित्तश्लिचिकित्सा	३१७
रास्नादशमूलकम्	३०४	श्रपरनारिकेलखएडः	३१६
रास्नापञ्चकम्	27	कफश्रलचिकित्सा	३२०
रास्नासप्तकम्	13	हिंग्बादिः	३२१
वैश्वानरं चूर्णम्	३०४	घात्रीलौहम्	33
श्रतम्बुषाद्यं चूर्णम्	३०६	वृहद्धिश्वादिः	इरइ
शतपुष्पाद्यं चूर्णम्	2,	रुचकादिः	77
हिंग्वाद्यं चूर्णम्	27	परग्डसप्तकम्	રૂરક
योगराजगुग्गुलु-	11	परएडद्वादशकम्	३२४
सिंहनादगुग्गुलुः	३०७	दाधिकं घृतम्	३२६
वृहत्सिहनादगुग्गुलुः	३०⊏	अथ परिगामशूल-	
अपरं श्रतम्बुषाद्यं च्	र्णम् ।,		3210
वृहत् सैन्घवादं तैल	म् ३०६	चिकित्सा	३२७
श्रजमोदाद्यवरक.	21	विडङ्गादिमोद्कः	27
शुरहीघृतम् 🏻	३१२	सामुद्राद्यं चूर्णम्	३३०

विषया.	पृष्ठाङ्काः	, विषया	पृष्ठाद्वाः
सप्तामृतं लोहम्	330	वातगुरमचिकित्सा	३४७
गुडिपप्पलीघृतम्	इइः	पित्तगुल्मचिकित्सा	388
पिप्पलीघृतम्	1)	कफगुल्मिचिकित्सा	348
कोलादिमगृहूरम्	1)	हिंग्वाद्यं चूर्णम्	३४२
भीमवटकमगृहूरम्	17	वचाद्यं चूर्णम्	इरह
चीरम गद्भरम्	३३२	काङ्कायनगुहिका	ZXX
चविकादिमगङ्गरम्	",	हबुपाद्यं घृतम्	3xE
शतावरीम एड्र स्	9)	पञ्चपलकं घृतम्	3410
तारामएड्स्युंड	इइ३	ज्यूषणाद्यं घृतम्	>1
राममगङ्करम्	37	त्रायमाणाद्यं घृतम्) 9
बृह च्छतावरीमग्हूरम		द्राज्ञाचं घृतम्	345
रसमर्हरम्	३३४	चीरपट्पलकं घृतम्	33
त्रिफलालौहः	22	धात्रीषद्पलकं घृतम्	**
लीहगुडिका	,,	भागींपट्पलकं घृतम्	346
धात्रीलीहम्	३३६	भक्षातकं घृतम्	79
लौहामृतम्	22	रसोनाधं घृतम्	380
खएडामलकी	३३७	दन्तीहरीतकी	39
नारिकेलखरडः	57	बृ श्चीराद्यरिष्ट	३६१
कलायगुद्धिका	३३८		262
श्रयोदावर्त्तीचिकित्स		अथ हृद्रोगाचिकित्सा	३६३
नाराचचूर्थम्	રુકશ	वसमघृतम्	३६८
		श्वद्ध्राद्यं घृतम्	33
श्रथानाहचिकित्सा	३४४	वलाचं घृतम्	३६६
्राष्क्रमूलकाद्यं घृतम्	રુષ્ટ	श्रर्जुनघृतम्	22
द्विय राद्यं घृतम्	2)	श्रथ मुत्रकुच्छचिकित्स	ग ३६६
श्रथ गुल्मचिकित्सा	३४६	वातमूत्रकृच्छ्रे क्रियाका	

C.m.	क्ताराः ।
	पृष्ठाद्धाः ।
पित्तमूत्रहच्छ्रे कियाक	
कफसूत्रशच्छे ग	३७१
शतावरीघृतचीरे	३७४
त्रिकएटकाँद्यं घृतम्	३७४
सुकुमारकुमारकघृतम्	(,
स्रथ मूत्राघातचिकित	सा ३७५
चित्रकांद्यं घृतम्	308
श्रथाश्मरीचिकित्सा	३⊏०
वीरतरादिगणः	,,
पाषाणभेदां घृतम्	३⊏१
ऊपकादिः	३⊏२
कुशाद्यं घृतम्	,,
वरुणायं घृतम्	३⊏३
वरुणादिगणः	,,
पलादिः	३८४
पाषाणभेदाद्यं घृतं चू	र्णञ्च "
कुलत्थाचं घृतम्	३८६
शरादिपञ्चमूलादिघृ	तम् "
वरुणघृतम्	32
वीरतरायं तैलम्	३८७
वक्णायं तैलम्	11
अथ प्रमेहचिकित्सा	328
कुशावलहः	17
न्यप्रोधाद्यं चूर्णम्	३६३
त्रिकएटकाद्यं घृतं तै	लं

विपयाः	पृष्ठाङ्काः
यमकञ्च	इध्ध
धान्वन्तरं घृतम्	11
दाडिमाधं घृतम्	388
ज्यूषणादिगु डिका	३६६
शिलाजतुप्रयोगः	શક્ક
श्रथ स्थाल्यचिकि	त्सा ३६⊏
विडङ्गाद्यं चूर्णम्	338
विडहायं लौहम्	19
व्योषाद्यशङ्गप्रयोगः	800
श्रमृताद्यगुग्गुलु	४०१
नवकगुग्गुलु	23
लौहरसायनम्	29
त्रिफलायं तैलम्	४०२
अथोदरिचिकित्सा	४०४
सामुद्रादं चूर्णम्	४०६
पटोलाद्यं चूर्णम्	४०६
नारायणचूर्णम्	४ १०
दशमूलषट्पलकं घृ	तम् ४१४
चित्रकघृतम्	79 1
विन्दुघृतम्	"
द्धिमएडाइं घृतम्	४१४
नाराचघृतम्	19
अथ सीहयकृचिवि	कत्सा ४१६
माणाद्यगुडिका	388
पिष्पत्तीवर्द्धमाना नि	۲ ,,

विपया	पृष्ठाङ्काः	विपया प	्षाङ्काः
पिष्पलीचित्रकघृतम्	ध२०	श्रथ गलगएडगएड-	
लोकनाथरसः	17	मालापचीग्रन्थ्यर्बुद-	
श्रपरं पिष्पली घृतम्	ઇરર		(3/).
चित्रकष्टृतम् ँ	55	चिकित्सा	880
रोहीतकघृतम्	धर३	तुम्बीतैलम्	४४२
महारोही नक घृतम्	,,	अमृताद्यं तैलम्)1
		बुच्बुन्दरीतेलम् -	883
श्रथ शोथचिकित्सा	્	शाखाटकविम्वाचे तैले	୫ ୫୫
चारादिगु डिका	४२८	निर्गुएडी तैलम्	7)
पुननेवाद्यं घृतम्	ઝર શ	व्योपाद्यं तैलम्	८८४
स्वरुपपुनर्नवाघृतम्	८३०	चन्दनाद्यं तैलम्	**
पञ्चकोलाद्यं घृतम्	3,	गुआचं तैलम्	12
शु एठीघृतम्	"	श्रथ श्रीपदाचिकित्सा	८५१
चित्रकार्यं घृतम्	"	वृद्धदारकचू र्णम्	४४३
चित्रकघृतम्	४३१	रुप्णाद्यमोद्कः	878
माणकघृतम्	32	सौरेश्वरघृतम्	72
स्थलपद्मष्टृतम्	,, 1	विडद्गायं तैलम्	877
शैलेयाचं तैलम्	21	अथ विद्रधिचिकित्सा	8त्रत
शुष्कमूलाधं तैलम्	४३ २	अथ व्रणशोथचिकित्स	
पुननेवावलेह	27	•	
दशमूलहरीतकी	,,	तिलाएक	४६३
कंसहरीतकी	ध३३	जीरकाद्यं घृतम्	४६६
श्रथ दृद्धित्रप्तचिकित	ווצט זונ	त्रिफलागुग्गुलु.	800
	ता ०५२	वटिकागुग्गुलुः	77
वृहत्सैन्घवाद्यं तैलम्	358	विडङ्गादिवटिकागुग्गुलु	>>
शतपुष्पाद्यं घृतम्	12	श्रमृतावटिकागुग्गुलु-	73

	ı		
विषयाः	पृष्ठाद्धाः	विषयाः पृ	ष्टाङ्काः
जातिकायं घृतम्	४७१	त्र्रथोपदंशचिकित्सा	858
गौराद्यं घृतम्	27	भूनिम्वाद्यं घृतम्	धन६
करआद्यं घृतम्	ध७२	करआद्यं घृतम्	>>
प्रपौर्डरीकाद्यं घृतम्	37	श्रागारधूमाद्यं तैलम्	27
तिक्षकाद्यं घृतम्	**,	अथ शूकदोपचिकित्सा	850
श्रद्वारकं तैलम्	६७३	श्रथ भग्नचिकित्सा	828
प्रपोग्डरीकाचं तैलम्	, ,,		४६१
दूर्वाद्यं तैलं घृतञ्च	>>	नाचागुग्गुनुः	४६२
मिं प्राचं घृतम्	४७४	श्राभागुग्गुलुः	
पाटलीतेलम्	27	गन्धतेलम्	57
चन्द्नाद्यं यमकम्	31	श्रथ कुष्ठाचिकित्सा	888
श्रथ नाडीव्रणचिवि	त्सा ४७ ५	पञ्चकपायः	52
सप्ताङ्गगुनुः	४७=	कुष्टाद्यम्	850
सर्जिकाचं तैलम्	23	नवकषायः	४०४
कुम्भीकांचं तैलम्	308	सप्तसमा योगः	77
भन्नातकाद्यं तैलम्	37	पञ्चनिम्यः	४०६
		एकविंशतिको गुग्गुलुः	४०७
निर्गुएडीतेलम् • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	" ಚ ದ ಂ	तिक्रपद्पलकं घृतम्	Koz
हं सपादीतैलम्		पञ्चतिक्रघृतम्	30%
अथ भगन्दरचिकित	सा ४८०	तिक्रकचृतम्	37
नवकार्षिकगुग्गुलुः	४८२	महातिक्षकं घृतम्	37
सप्तविंशतिगुग्गुलुः	2)	महाखादिरकं घृतम्	४१०
विष्यन्दनतैलम्	४८३	पञ्चतिक्षघृतगुग्गुलु-	४११
करवीराद्यंतैलम्	53	वज्रकं घृतम्	४१२
निशाद्यं तैलम्	27	श्रारग्वघाद्यं तैलम्	200

विषयाः	पृष्ठाङ्काः	विषया प्र	किथि।
त्रणकं तैलम्	,,	रसग्रुद्धिः	53
महातृ एकं तैलम्	४१३	गन्घकशुद्धिः	27
वज्रकं तैलम्	91	ज्जुघावती गुडिका	४२७
मरिचाचं तैलम्	४१४	जीरकाद्यं घृतम्	४२८
यृहन्मरिचाद्यं तैलम्	35	पटोलशुएठीघृते	५२६
विपतैलम्	४१४	विष्वलीघृतम्	71
करवीराद्यं तैलम्	- 3	द्राचार्यं घृतम्	19
श्वेतकरवीराद्यं तैलम	ू ५१६	शतावरोधृतम्	77
	1	श्रथ विसर्पविस्फोटक	
सिन्दूराद्यं तैलम्	"		
महासिन्दूराचं तैलम्	55	चिकित्सा	५३०
आदित्यपाकतैलम्	,,	नवकपायगुग्गुलु	४३३
दूर्वाद्यं तैलम्	४१७	श्रमृतादिः	77
अर्कमनःशिलातेले	"	दशाङ्गः	LZK
गरडीरिकाद्यं तैलम्	53	चतुःसमम्	25
पृथ्वीसारतैलम्	37	बुपाद्यं घृतम्	39
सोमराजितैलम्	ጀ የ⊏	पञ्चतिक्रकचृतम्	23
अथोदर्दकोठशीति	विच-	महापद्मकघृतम्	४३६
चिकित्सा	4 १ ह	~ ~	19
	410	अथ मस्रिकाचिकित	_
व्यवस्थाविधिः))		४४०
श्रयाम्लापित्तचिकित	सा ४२१	निम्बादिः	400
दशाङ्गः	४२२	खदिराएकः	"
वासागुग्गुलुः	19	श्रथ चुद्ररोगचिकित्स	रा ४४३
अभक्ष गुद्धिः	४२४	उपोदिकाचारतेलम्	X8X
लौहग्रद्धिः	51	चाहेरीघृतम्	২ ৪৯
मग्डूरश्चाद्धिः	४२६	मूपिकाचं तैलम्	"

		विषया•	पृष्ठाङ्काः
विषया'	वृष्ठाद्धाः		४७४
हरिद्राद्यं तैलम्	४४१	कालकचूर्णम्	99
कनकतेलम्	12	पीतकचूर्णम्	પ્ર <u>ુ</u> પ્ર
मिंखिष्ठाचं तैलम्	४४२	न्नारगुडिका	
कुंकुमाचं तेलम्	"	महासहचरतेलम्	४७८
कुकुमाध तलार		इरिमेदाद्यं तैलम्	22
श्रपरं कुंकुमाद्यं तैल		लाचाधं तैलम्	<i>30</i> %
अपरं कुंकुमाचं तैल	तम् भ	वकुलाचं तैलम्	>,
वर्णकं घृतम्	xxs	वकुलाय तसर्	,,
हरिद्राद्यं तैलम्	37	सहकारगुडिका	
त्रिफलाचं तैलम्	xxx	स्वल्पखदिरविटेव	
चित्रकाद्यं तैलम्	57	बृहत्खादिरविटका	71
गुआदं तैलम्	3)	अथ कर्णरोगचि	कित्सा ५८२
गुजाय तकर	४४६		४८३
भृङ्गराजतैलम्		द्रावकातकर	४८४
प्रपोगडरीकार्य ते	लम् "	चारतैलम्	
मालत्याचं तैलम्	27	अपामार्ग चारतेत	
स्तुह्याद्यं तैलम्	XXX	साजकाषार पर	तम् ४८६
म्रादित्यपा <u>कगु</u> ङ्क	वीतेलम् "	दशम्लीतैलम्	13
चन्दनादं तैलम्	XX	विल्वतेलम्	**
महानीलतेलम्	X &	१ जम्बाद्यं वैलम	४८७
महानालकर	X&	शम्बूकाद्यं तैला	र ४८८
भृङ्गराजघृतम्		जाउचका धारण	म भ
पटोलाद्यं घृतम्		धस्त्राध तल	भू ४५६
त्रथ मुखरोगि	कित्सा ५६	. I apple	
श्रोष्ठरोगचिकि	त्सा	ं जीवनीयाद्यं तै	लम् ४६०
द्दत्तरोगचिकि	सा ४	६४ जन्म जामाने।	गचिकित्सा५६२
विदार् यादिते ल	1	46	
विद्राच्यादित्य	क्या ४	७० व्योषादिच्यू भ	Ŧ, n
जिह्नारोगचिवि	116.00	७२ पाठादितेलम्	49
कएठरोगचिकि	त्ता <u> </u>		

विषया पू	ष्टाङ्का
व्या घीतेलम्	४६२
करवीरायं तैलम्	४१६
शिखरितैलम्	ກັ
चित्रकतैलम्	27
चित्रकहरीतकी	17
श्रथ नेत्ररोगचिकित्स	. ४६७
विल्वाञ्जनम्	६०४
षडङ्गगुग्गुलु	Eox
वासकादि	27
दन्तवर्त्ति •	६१०
पटोलाद्यं घृतम्	६१२
कृष्णाद्यं तैलम्	33
श्रशकघृतम्	६१३
द्वितीयं शश्काद्यं घृतम	. ,,'
सुखावतीवर्त्तिः	६१४
चन्द्रोदयांवर्तिः	६१४
कुमारिकावर्त्तिः '	23
त्रिफलाद्यवार्चिः	99
चन्दनाद्यवार्चि	६१६
निशाद्यमञ्जनम्	39
ज्यूपणाद्यवार्चि	12
नयनसुखावार्त्तिः	"
चन्द्र प्रभावार्चि	६१७
श्रीनागार्जुनावर्त्ति	",
पिप्पल्याद्यवर्त्तिः	६१८
कोकिलावर्त्तिका	77 i

विषया	पृष्ठाङ्काः
जिफला घृतम्	६२४
महात्रिफलायं घृतम्	, ,,
त्रेफलं घृतम्	६२६
मृद्गराजांचं तैलम्	६२७
नृपवस्नमं तैलं घृतञ्च	६२=
श्रभिजितं तैलम्	33 f
चूर्णाञ्जनम् ं	६३३
श्रथ शिरोरागिचिक	
शताहायं तैलम्	६३६
जीवकाद्यं तैलम्	"
वृंहजीवकाद्यं तेलम्	
पड्विन्दुतैलम्	% 5 80
श्रंपामार्गतेलम्	95
यष्ट्याद्यं घृतम्	દ્દેષ્ઠર
मयूराद्यं घृतम्	દ્દશ્ય
प्रयोगडरीकाचं तैलम	
मायूरं घृतम्	દ્દેકર
त्र्रथासृग्दर चिकित्स	
पुष्यानुगं चूर्णम्	रु४७
मुद्राचं घृतम्	६४=
शीतकल्याणकं घृतम	
वृहच्छतावरी घृतम्	
श्रथ योनिन्यापिक्ष	
जन चाानण्यापासा	_
	६५०
फलघृतं प्रथमम्	EXX

विषया	पृष्ठाङ्का	विषयाः '	रृष्ठाङ्का.
फलघृतं, द्वितीयम्	६४६	साध्यसाधनपरिमाण्य	ए इहछ
नीलोत्पलाद्यं घृतम्	६४७	लौहमारणविधि'	, Gok
बृहच्छतावरी घृतम्	,,	स्थालीपाकविधि	300
श्रारग्वधाद्यं नैलम्	६४८	पुरपाकविधि	७१०
चारतैलम्	,,	पार्कविधिः "	७१३
ष्यथ स्त्रीरोगचिकित्य	अध्ये म	अअक्रविधिः	७१८
वज्रकाञ्जिकम्	६६४	लौहभन्नणविधिः	390
पञ्चजीरकगुडः	~ ६६४	दासरसायनलौहम्	७२५
श्रीपग्रींतैलम्	इहुछ	ताम्रयोग	७२६
काशीशायं तैलम्	- 11 j	अपरस्ताम्रयोग ्र	७२७
		शिलाजतुप्रयोगः	' ७३०
अथ वालरोगचिकि		शिवागुडिका	७३४
हरिद्रादिः ू	६७१	श्रमृतभन्नातकी	थइंश
वालचातुर्भाद्रेका	23		
धातक्यादिः	22	श्रथ चृष्याधिकारः	350
श्रङ्गग्रादिः	६७२	नारासिंहचूर्णम्	७४१
श्रश्वगन्धाघृतम्	६७७	गोधूमाधं घृतम्	७४३
बालचाङ्गेरीघृतम्	६७=	शतावरीघृतम्	७४४
कुमारकल्याणुकं घृत	ाम् 🤊	गुडकूष्माग्डकम्	19
अप्रमङ्गलघृतम्	>>	श्रश्वगन्धातैलम्	७४६
लाचादितैलम्	<i>३</i> ७३		
अथ विषचिकित्सा	६८६	श्रथ स्रेहाधिकारः	98≈
मृतसञ्जीवनोऽगदः	६६१	श्रथ स्वेदाधिकारः	७४६
अथ रसायनाधिका	रः ६६२	श्रथ वमनाधिकारः	७६०
ब्रह्मीघृतम्	६६६	पञ्चकषायः	७६२

विपया. विषयाः पृष्टाद्धाः पृष्ठाद्वाः त्रथ विरेचनाधिकारः ७६६ श्रथ धृमपानाधिकारः ७६६ श्रभयाद्यो मोदकः ७इ७ श्रथ कवलगण्डपाधिकारः श्रधानुवासनाधिकारः ७७१ 205 श्रथ निरूहाधिकारः ७८३ श्रधारच्योतनाञ्जनतपंगपुट-पाकाधिकारः **ग्रेर्डमात्रिकः** उन्ह अथ शिराव्यधाधिकारः =०६ **ज्ञारवस्ति** \$30 वैतरण्वस्तिः 530 श्रथं सुस्थाधिकारः **=83** पिचिञ्जलयस्ति दिनाचारविधि-77 17 अयं नस्याधिकारः \$30 ऋतुचर्य्या = ? €



ज्वरचिकित्सा ौ

गुणत्रयविभेदेन मूर्तित्रयमुपेयुषे। त्रयीभुवे त्रिनेत्राय त्रिलोकीपतये नूँ

य सप्तवषंदेशीयो दधार धरणीधरम् । हिंद्री कसध्वसकर वन्दे त देव देवकीसुतम् ॥ हिंद्री तात किमय मातेति य दृष्ट्वा दृष्टपूर्वक्रिय । श्रमूत् स्कन्देऽपि सन्देहस्त देह शिवद्रीभिक्री । टीका रक्षप्रभा चक्रदत्तिनिर्मितसग्रहे । यद्यप्यास्ते तथाप्येष सद्येपाय ममोद्यम् ॥ विस्तरोक्षञ्च सद्यिप्य प्रतिद्विप्य च दुवंच । व्याख्यान्तरञ्च निद्यिप्य टीकेय क्रियते मया ॥

विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिवोधितकर्त्तंच्यताक प्रारिष्सितयन्थसमाप्तिफलक तत्-प्रतिवन्धकविद्यसमात्रफलक वा स्वयङ्कृतमिष्टदेवतानमस्कार शिष्यशिचार्थमादौ निवधाति गुणत्रयेत्यादि—गुणत्रय सस्वरजस्तमोरूपम्, मूर्तित्रय ब्रह्महरिहर-स्वरूपम् ॥१॥

नानायुर्वेदविख्यातसद्योगैश्चक्रपाणिना। क्रियते संत्रहो गृढवाक्यवोधकवाक्यवान्॥२॥

प्रेचावता प्रवृत्त्यर्थं सम्बन्धामिषयप्रयोजनमाह नानेत्यादि—सदिति सिद्ध-फलम्। गूढवाक्य गूढार्थं वचनम्, तद्योधक तदर्थप्रतिपादक यद्वचन तधुक्तम्, यथा—नवज्वरे षडद्वादिमेषजविधानम्, तथा तत्रैव "न दद्यात् तत्र मेषजम् " हति भेषजिनेषेषोऽपि, अतो विधिनिषेषयोरेकविषयत्वेन विरोध स्यात्, अत-स्तत्पिहारार्थं "मुख्यमेषजसम्बन्धो निषद्ध" इत्यादि वचन निबद्धमिति । सम्रोहेण सह सद्योगाना वाच्यवाचकलच्चण मम्बन्ध, सद्योग एवामिषेया, अवान्तरप्रयोजन चिकित्सितम्, मुख्यन्तु आरोग्यमिति ॥२॥

रोगमादौ परीचेत ततो अनन्तरमौपधम्। ततः कर्म भिपक् पश्चाङ्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥॥॥

नत्र चिकित्नाक्रयमाह रोगिमत्यादि—ग्रादी निटानपूर्वरूपादिभि रोगै परीचेत । तता रोगपरीचानन्नरमापथ परीचेत । ग्रानपूर्वभिति कर्मदर्शनजनिनज्ञान-पूर्वम् , शायते श्रानेनेति ज्ञान शास्त्र तत्पृवकमिति वा ॥ ३ ॥

✓ नवज्वरे दिवास्वप्रस्नानाभ्यङ्गान्नमेथुनम् । क्रोधप्रवातन्यायामकपायांश्च विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

तत्र ज्वरस्य मर्वरागप्रधानत्वात् प्रथम तिचिकित्मितं वक्तव्ये ष्ट्रनमि भेपत्र निटानमेवनाटकृतमिव मवतीति निटानपरिवर्जनस्यंव गरीयस्त्वात् प्रथम निटान-परिवर्जनरूप चिकित्मितमाइ नवज्वर इत्यादि—नित्रात्र गुवन्न लव्बन्नस्य विधा-नात्, अत प्रवोक्त हारीते "गुवन्नमोजनाचापि विष्टम्मो देगकोपनन् " इति । कपायाक्षेति "न तु कल्पनमुद्दिस्य कषाय प्रतिषिध्यते" इति चरकवान्यस्वरमात्त कपायरान्देनात्र कपायरसमात्रमुच्यत्, न तु स्वरमादि । अतप्य जतुकर्णडिप "कपायरमगुरूप्यान्तिग्धलानाम्यद्वान् नवज्वरे वर्जयत्" इत्युक्तम् । हरिक्षम्द्रेणापि "नात्र स्वरमदीना निपेष " इत्युक्तम् । तथा "स्तम्यन्ते न विषच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् । दोषा बद्धा कपायेण स्तान्मत्वात् तरुग्धन्तरे " इति चरकवचने स्तान्मत्वादित्यय हेतु कपायरमवर्जनामित्रायेणैव सङ्गच्छते। उक्त हि"कपाय स्तन्मन राति " इति । वान्मेटेऽप्युक्त " पित्तक्ष्यमहरत्वेऽपि कपाय म न गस्यते । नवज्वरे मलस्तम्यात्कपाये। विषमच्वरम् । कुर्क्तेऽरुचिह्ह्ञामहिक्काध्मानादिकानपि" इति ॥ ४॥

च्चरं लह्वनमेवाटाचुपदिष्टमृते ज्वरात्। च्वयानिलभयकोधकामशोकश्रमोद्भवात्॥ ४॥

श्रामारायसमुत्थाना पूर्वं लद्धनमौषधीमत्युक्तम्, ज्वराऽप्यामाशयममुत्य श्रत-स्तत्र लद्धनमुपिटिशति ज्वरे लद्धनमित्याटि—यद्यपि लद्धनगृहर्णाये ''चतु प्रकारा सशुद्धि '' इत्यादिना दशविधमेव लद्धनमुक्त तथापि व्यायामप्रवातयोर्वर्जनीयत्वेनेवो-कत्वात् मशोधनादीनान्चावस्थाविशेषिनयतत्वात् पारिशेष्यादशोपवास एव लद्धन-गच्छेनोच्यते । श्रतप्व लद्धनमेवेत्येवकारेण मशोधनादिरूप लद्धन निर्पिध्यते । तेन ज्वरस्य पूर्वरूपे यह्मव्यशनादिविधान तस्य न निषेध । वाग्मटेनापि ''लाना-म्यक्षप्रदेहाश्च परिशेषञ्च लद्धनम् '' इत्यनेन नवज्वरे श्वनशनरूपलद्धनापेद्यया परि-

शेषलङ्गनप्रतिषेध कुर्वना सशोधनादिरूप लङ्गन निषिध्यते । किं वा चरकेण निदानस्थाने " हिन लव्वशनमपतर्पण वा" इति यदुक्तम्, तत्पूर्वरूपावस्थायाम्; न्यक्तायान्तु लहुनमेवेत्येवकारेण लव्दशनमपि निषिध्यते इति श्रेयम् । ननु लघन-बृहर्णीये कफापित्तज्वरच्छदर्चादिषु मध्ये ज्वर पठित्वा उक्त "पाचनैस्तान् मिषक् प्राज प्रायेणादानुपाचरेत् " इति, इह तु लघनमेवादावित्यतो विरोध " नैवम्, तद्भेषजप्रयोगस्यादौ पाचन न तु ज्वरस्यादावित्यवगम्यते । किं वा श्रादावेव लधन कार्य्यामिति योज्यम्, तेन जीर्थज्वरे न लघन कार्य्यामिति वोधयति । उक्त हि वाग्भटे ' शुद्धवातचयागन्तु जीर्थाज्वरियु लघनम् । नेष्यते तेष्वभिद्दित गमन यन्न कर्पणम् " इति । हारीतेन तु "पित्तक्षेन्मिनशुद्ध्यर्थे कुर्योद्रमनमादित " इति यदुक्त तत कफप्रधानानित्यादिवस्यमाणावस्थाया ज्ञेयम् । स्वयराग्देन धातुत्त्वयक्रत ज्वर किं वा राजयदमकूत स्वर गृह्णाति । अनिलशब्देन निरामानिलग्रहण्य, उक्त हि " शुद्धवातत्त्रयागन्तुकीर्याज्वरिषु लघनम् । नेष्यते " इति । किं वा त्त्रयानिल-शब्देन धातुचयकुपितानिलम्बहणम् । यदुक्त " वायोधीतुचयात् कोपो मार्गस्या-वररोन च " इति । यस्तु वायुर्मार्गावररोन कुप्यति, स श्रावरकथर्मितया प्रायेण मामे। भवति । तत्र लघन मात्रया कर्त्तव्यमेव । यदुक्त " सामे वातेऽपि लघन " भनिलज्वरमिथायापि कामादिज्वराभिधानम्, कालान्तरेख वातमन्त्रन्थो भवति, तेन प्रथममपि वातामन्त्रन्थेन कामादिज्वराखाम-लवनीयतोपदरीनार्थम् ॥ ५ ॥

श्रामश्यस्थो हत्वार्त्ति सामो मार्गान् पिधापयन् । विद्धाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लह्वनमाचरेत् ॥ ६ ॥ लवनोषपस्पर्थ ज्वरस्य सन्त्राप्तिमाह श्रामाशयस्य इत्यादि—वाग्मटस्य । अत्र । यत्तदोर्नित्यमम्बन्धात् यसमादिति सम्यते ॥ ६ ॥

> श्रनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम्। ज्वरघ्नं दीपनं काङ्चारुचिलाघवकारकम्॥ ७॥

लघनफलमाइ अनवस्थितेत्यादि—सुशुतस्य । अनवस्थितौ स्वस्थाने स्वमाने चानवस्थितौ दोषाग्री यस्य स तथा । काङ्चा अन्नप्रार्थना, रुचि अभ्यवहार-पाटवम् ॥ ७ ॥

प्राणाविरोधिनां चैनं लङ्घनेनोपपाद्येत्। वलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः॥ =॥ पतच लघन तथा कार्यं यथा न वलहानि क्यािन्लाह प्राणाविरोधिनेत्यादि— प्राणो वलम्, विरोधश्चानिचय इहोच्यते । हेतुमाह वलाधिष्ठानिमत्यादि— श्रिष्ठानमाश्रय, श्रत्र वहुबोहि । श्रत प्वोक्तम्, ''यम्माहलवत सर्वितिया-प्रवृत्तिस्त्रसाहलमेव प्रधानमधिकरणानाम् '' इति । यदर्थ श्रारोग्यार्थ ॥ ॥ ॥

तत्तु मारुतज्जुनृष्णामुखशोषभ्रमान्विते । कार्य्य न वाले बृद्धे वा न गर्भिएयां न दुर्वले ॥ ६॥

श्रलघनीयानाइ तत् त्वित्यादि ॥ ६ ॥

्रे वातमूत्रपुरीपाणां विसर्गे गात्रलाघवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यश्चदौ तन्द्राक्कमे गते ॥ खेदे जाते रुचौ चापि चुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्कनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ १०॥

मन्यक् कृतस्य लघनस्य लचणमाह वातम्त्रेत्यादि—हृदयस्य शुद्धिः गीरवादिराहित्यम् , कण्ठस्य शुद्धिः कफिलप्ततादिविरहः , आस्यस्य शुद्धिः अविकृतरसत्वम्, तन्द्रा निद्रावत् काति , क्षमो दोपजा ग्लानि । चुित्पपासामहोदय इति,
चुित्पपासयोर्युगपदुदय इत्यर्थे । वाग्मेटऽप्युक्तः "चुनृट्सहोदय शुद्धहृदयोङ्गारकण्ठता " इति । किन्तु "स्ट्रध्माग्तवियम्त्र चुित्पपासासहः लघुम् । प्रमन्नात्मेन्द्रियः
चाम नर विधात् सुलिधतम् " इति सुश्रुतदर्शनात् , चुित्पपासयोरसहोऽमद्य उदयः
इति चेक्रण व्याख्यातम् , किन्तु न महते इत्यसद्द पचाधजन्त कर्त्तरि दृश्यते,
तेन असहरान्दर्यासद्द्यासद्द्यासद्द्यास्यार्थत्वकल्पने कष्ट स्यादिति । क्षतिमिति मन्यक् कृतम् । अन्तरात्मनीति अन्तरिन्दिये मनसीत्यर्थे ॥ १०॥

पर्वमेदोऽइमर्दश्च कासः शोपो मुखस्य च । चुत्रणाशोऽरुचिस्तुण्णा दौर्वल्यं श्रोत्रनेत्रयोः॥ मनसः सम्भ्रमोऽमीच्णमृद्ध्ववातस्तमो हृदि। देहाग्निवलहानिश्च लहुनेऽतिकृते भवेत्॥११॥

श्रतिलक्षितलक्षणमाह पर्वभेद इत्यादि—श्रक्षच सत्यामि युमुक्तायाम् अनन्नाभिनन्दनम्, श्रोत्रनेत्रयोदौर्यत्य स्विषयग्रह्णासामध्येम् । सम्भ्रमोऽनवस्थित्तः, भ्रान्तिरित्यन्ये । अभीक्षणभित्यतिरायेन । कद्ध्वात क्षिक्षामास्कर्णस्वनजृम्याद्य, न, पुनरुद्वारविरोष, श्रातिलह्घनेन कफक्षयात् । स च पुन कफकोषाद् भवति, यदुक्तम् 'भ्रध प्रतिहतो वायु श्रेष्मणा मारुतेन च । करोति नित्यमुद्वार-

मृद्धंवात म उच्यते।" तम हिंद मोह इलर्थः ॥ ११ ॥ सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते। वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्मटः ॥ १२ ॥

ज्वरारम्भ एव वमनावस्थामाह सद्य इत्यादि—सन्तर्पणोत्थित इत्यन्न "सामे विशेषत." इति वाग्मटे पाठो दृश्यते ॥ १२ ॥

> कफप्रधानानुत्क्किष्टान् दोपानामाशयस्थितान्। चुद्द्वा ज्वरकरान् काले वस्यानां वसनैर्हरेत्॥ १३॥

तरुणातरुण्ज्वरे अवस्थाविशेषे अविशेषेण वमनमाह कफप्रधानानित्यादि— चरकस्य । कफ प्रधानो येषा ते कफप्रधाना । उत्किष्टान् हृह्णासादिना बहि-र्निगमनोन्मुखान् । काले यथोक्तायामवस्थाया, वम्यानामिति वमनयोग्याना, तेन गर्भिण्यादिनिषेष ॥ १३॥

> श्रनुपस्थितदोपाणां वमनं तरुणे ज्वरे । हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च कुरुते भूशम् ॥ १४॥

उकावसान्यतिरेकेख वमने दोषमाह अनुपस्थितत्यादि—चरकस्य । अनु-परिथतदोषाणाम् अनुतिकष्टदोषाणामित्यर्थः ॥ १४ ॥

तृष्यते सिललञ्जोष्णं दद्याद्वातकपज्वरे।
मद्योत्थे पैत्तिके वापि शीतलं तिक्षकैः श्रुतम्॥१४॥
दीपनं पाचनञ्जेव ज्वरघ्रमुभयञ्ज तत्।
स्रोतसां शोधनं वर्ल्यं रुचिसेदप्रदं शिवम्॥१६॥

लघनकाले तृष्यते जलमाह तृष्यते इत्यादि—चरकस्य । वातकफज्नर इति वातन्तरे कफज्नरे वातकफज्नरे च उष्ण सिललमर्द्धम्यत श्रेयम् । यदाह अप्रिनेश ''काथ्यमानन्तु यत् ताय निष्फेन निर्मलीकृतम् । भवलर्द्धावशिष्टच तदुष्णोदक-मुच्यते'' । मधोत्य इत्यादि—मधस्य अत्युष्णवीर्थ्यतादम्लत्वाच पित्तकर्तृत्वात् तव्यन्यज्वरस्य पित्तजत्वेन परिग्रहे सिद्धेऽपि पुनस्तदिभिधान अन्यसिश्वपि मधोत्य-रोगे तिककम्यतनलस्यैन यौगिकत्वयोधनार्थमिलाहु । तिकके श्रुतमिति वच्यमाण्यमुस्तादिभिस्तिकके श्रुतम् । ज्वरम्रमुभयच्च तदिति उभयमुष्ण तथा तिककश्त-श्रति श्रीतद्या । धृत दीपनमिप न पाचन, लह्षन पाचनमिप न दीपनिमत्यतः पद्दर्योक्ति , यद्यपि त्रिदोषजकफिपत्तक्यरे। पानीय नोक्त, तथापि सामान्येन विमान-स्याने यद्यक्त ' किं जु खळु ज्वरिभ्य. पानीयमुष्ण प्रयच्छन्ति ' इत्यादिना तत्प्रा-

मारायादुष्यामेव जल देयम् । वातिपत्तिज्वरेऽत्यर्थेदाइकारके शीतमर्देश्वत जल देय-मित्यपि विमानः ण्वात्यर्थपित्तोत्स्यन्दे इत्यादिना अन्थेन स्चितम् ॥ १५ ॥ १६ ॥

षडद्गपानीयम्

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः । श्टतशीतं जलं दद्यात् पिपासाज्वरशान्तये ॥ १७ ॥

तिक्तकै शतमिति यदुक तदाइ मुक्तेलादि—चन्दन रकचन्दन, यदुक्तम् " उक्ते चन्दनशब्दे तु गृद्यते रक्तचन्दनम् " । उदीच्य नालकम् । अत्र तु शुरुठी अतिकाप्यामाशयतुष्टिकारण्डनरहितत्वादिहिता । नाग्मेटे तु पद्यकाष्ठ पट्टमेते न तु शुरुठी ॥ १७॥

मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुगे ज्वरे । तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोपं तेन भेषजम् ॥ १८ ॥

नतु " ज्वरित पडहेऽतीते" इत्यादिना, सप्ताहानन्तरमेवौपधदान वच्यति, अत्र तु सप्ताहान्यन्तर एव पडङ्गाणौपधविधानम्, अत पूर्वापरमन्यविरोध निराचिकीपुराह मुख्यमेषजसम्बन्ध इत्यादि—अन्नपानादेरसत्कारकतया यदौपधमुप-युज्यते तत् प्रधान, तद्धिन्न पुनरप्रधानमिति। तेन प्रधानौपधस्यैव तरुणज्वरे निपेध , नाप्रधानस्य पडङ्गादे । उपयुज्यते इत्यनेन भच्चणविषय , उपयोगो विविच्चत , तेन त्वेदादीनामप्रधानत्वात् त्रुणज्वरे न निषेध । अष्टाङ्गाद्यवलेहोऽपि प्रधानत्वाद् तरुणज्वरे देय एव। यतिस्रदोपजज्वरे तु सप्ताहाभ्यन्तर एव तस्य विधान तदपवाद-रूपमेवित उत्सर्गापवादरूपतया विधिनिषधयोर्न विरोध ॥ १८॥

यद्प्सु श्वतशीतासु षडद्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साघयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ श्रर्द्धश्वतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥१६॥

उक्तपढङ्गतीयसाधनार्थं तथा वस्यमाणस्य कषायसाध्यपेयादे॰ साधनार्थन्न
भेपनजलमानव्यवस्थापिका वृद्धवैद्यव्यवद्दारसिद्धा परिभाषामाह यदप्तु इत्यादि—
श्तरीत श्तरीतजलिनिमत्त यत् षडङ्गादि द्रव्य प्रयुज्यते तत् कर्षमात्रम् । आदि—
शान्देन पेयादिसम्पादनार्थनलसस्कारकथान्यपिप्पलीपन्नम्लीधान्यपञ्चकादिग्रहः ।
पेयादिसविधावित्यादिराच्दात् तु यूपरसादीना ग्रहण्यम्। अस मध्यवीर्थ्यस्यापि षडङ्गादे
कर्षो मन्दानलपुरुर्णावपयत्या होय , मध्यवीर्थ्यस्य हि द्रव्यस्याद्वंपलप्रमाणमग्रे व्यवस्था-

पनीयम् । प्रास्थिक इति द्रन्यद्वेगुण्याच्छरावचतुष्टयः; " द्वेगुण्य कुहवाद्धं प्रस्था-दिश्रुतिमानत " इत्युक्ते. । इमाज्र परिभाषा काथसाध्ययवाग्विषयत्वेन वृद्धा प्रायः समाद्रियन्ते ॥ १६ ॥

विमतं लिह्नतं काले यवागूभिरुपाचरेत्। यथास्वीषधसिद्धाभिर्मग्डपूर्वाभिरादितः॥ २०॥

वमनलह्ननयोरनन्तर यद्विधेय तदाह विमतिमित्यादि—चरकस्य । अवस्थान्वरात् कदान्विहिमत कदान्विहिन्वित, कदान्वि विमितलङ्घितम् । वमनानन्तर हि यदि सम्यग्विशुद्धिनं भवति, तदा तदहलङ्ग्वनमि िक्षयते इत्यत उक्त—काले इत्यन्नदानयोग्यकाले । यथास्त्रीषय यस्या यवाग्वा यद्भेषज पिप्पलीनागरादि वाच्यं, तिसद्धाभि । किं वा यस्मिन् ज्वरे यद्धद्भेषज पाचन वाच्य तत्सिद्धाभि , उक्त हि सुश्रुते ''अन्नकाले हिता पेया यथास्व पाचनैः कृता'' इति। यद् यत् स्व यथास्विमिति वीप्सायामव्ययीभाव । मण्डपूर्वाभिरिति मण्ड पूर्व प्रधानोऽच्छत्या यासा ताभिरित्यर्थ । पतेन पेयाया श्रहण्, तस्या एव बहुद्रेवन मण्डप्रधानत्वात्; विलेप्यास्त्र निरास , तस्या अल्पद्रवत्वेन मण्डप्रधानत्वामावात् । अन्ये तु मण्ड पूर्व. प्रथमाभ्यवहाय्यो यासा ता इत्यर्थ , तेन प्रथम स्वच्छमाग खादित्वा ततो घनभाग खाद्य इत्याहु ॥ २०॥

लाजपेयां सुखजरां पिष्पलीनागरैः श्वताम्। पिवेज्ज्वरी ज्वरहरां चुद्वानल्पाग्निरादितः॥ २१॥

लाजेपयामित्यादि — चरकस्य । अत्र लाजपेयामित्यादिना धृतभृष्टा ज्वरापहा-मित्यन्तेन चरके दश यवाग्वोऽभिहिता । तत्र पिप्पलीनागरे शृतामित्यन्ता श्रेष्मणीति हरिश्चन्द्र । अन्ये तु लाजेपया सुखजरामित्येका, पिप्पलीनागरे शृतामिति दिता-याम्, पव शेषाभि . मममेकादश पेया इति न्याचचते । किन्तु "प्राक् लाजेपया सुखजरा सशुग्ठीम्" इति वाग्भटदशंनात् हरिश्चन्द्रपच एव समीचीन , यतो-ऽस्मिन् प्रकरणे तत्र लाजेपया नोच्यते ॥ २१॥

पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्ववस्तिशिरोरुजि । श्वदंष्ट्राकगटकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरां पिवेत् ॥ २२ ॥ कोष्ठे विवद्धे सरुजि पिवेत् पेयां श्टतां ज्वरी । मृद्धीकापिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ २३ ॥ पञ्चमूल्या लघीयस्या गुर्व्या ताभ्यां सघान्यया ।

कण्या यूषपेयादि साधनं स्याद् यथाक्रमम् ॥ वातिपत्ते वातकफे तिदोषे श्लेष्मिपत्ते । यवागुः स्यात् तिदोषम्मी व्यामीदुःस्पर्शगोन्तरे ॥ २४॥

पेयामित्यादि — चरकस्य । श्वदच्या गोत्तुर, मृद्धांका द्रात्ता, चित्रक रक्षचिलक मासलत्वात् । पञ्चमृत्येत्यादि चत्वारो योगा अवचारयायैव व्याख्याता । यवागू स्यादिन्यादी व्याधी कण्टकारी, दु स्पर्शो दुरालमा ॥ २२-२४॥

> कर्षार्द्धं वा कणाश्चग्रुट्योः कल्कद्रव्यस्य वा पत्तम्। विनीय पाचयेद् युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम्॥ २४॥

कल्कसाध्ययवागूनाभनार्थे परिमापामाह कर्पार्द वेत्यादि । कर्पार्द्ध वेति क्पोर्ड प्रत्येकम् । त्रिविध हि मेषजद्रन्य वीर्य्यमेदात् , तीच्यवीर्यं यथा शुराद्यादि, मध्यवीर्थं विल्वाशिमन्थादि, मृदुवीर्थमामलकादि । तीच्णद्रन्योपलचण, तेन तीच्णद्रन्यमात्रस्यैव शापितम् । कल्कद्रव्यस्य वा पलिमिति भृदुद्रव्योपलद्यग्, तेनान्यस्यापि मृदुवीर्व्यः-द्रव्यस्यामलक्यादे पल शाह्यामिति ज्ञापयति । एतेन तीच्लमृदद्रव्ययो मानन्यवस्थया मध्यवीर्य्यस्य विल्वााग्रिमन्यादेरनुक्तमप्यईपलमान सामर्थ्यादेव श्रेयम् । यत् पुनर्मध्यवीर्यस्य षडद्वादे कर्षप्रमाणमुक्त, तन्मन्दानलपुरुपाभिप्रायेणेत्युक्तमेव । विनीयेति कल्कीकृत्य, प्रचिप्येति वा । अपरामित्यन्याम् , अन्यत्वच्च कषायसाध्य-यवागूमपेच्य, तेन कल्कसाध्यामित्यर्थ । एवज्र तीच्छद्रव्यापेचया कर्पप्रमाण, मृद्-द्रव्यपिचया च पलप्रमाण, मध्यवीय्यंद्रव्यपिचया चार्क्रपलप्रमाण द्रव्य विनीय कल्कसाध्या यवागू वारिप्रस्थेन द्रव्यद्वैगुण्याच्छरावचतुष्टयमानेन साधयेदिति योजना । ननु प्रवलानलबलादी पुरुषे बहुयवाग्वादि विधेय तत्र कय वारिप्रस्थेन यवागूसाधन भविष्यति ? इत्याह युक्लेति । एतेन यत्र उत्तमवलानले बहुयवागूर्वि-धेया. तत्र युक्ला जलप्रसद्दय त्रय वा तण्डुलानुरूप दत्त्वा यवागू साधयेत्, श्रल्प-बलानले तु वारिप्रस्पेनेत्यर्थ । अपरानिति पाठे यूपादीनिति, । तेन पेयासाधन-रीत्या यूषादयोऽपि साधनीया इति प्रतिपादितम् ॥ २५ ॥

षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता ॥ २६ ॥ ,

श्रथ काथसाध्ययवाग्साधनार्थं कथिह परिभाषा नीका १ इत्यतं श्राह पढङ्ग-परिभाषेव इत्यादि—श्रन्ये तु 'काध्यद्रव्याञ्जलिं 'चुएण् श्रपित्वा जलाढके। श्रद्धश्वेतन तेनाथ यवाग्वाद्युपकल्पयेत् ' इत्येव परिभाषामाञ्चिवशामहितोका काथसाध्य यवागृविषयत्वेनेत्याहु.। श्रस्थार्थ —श्रक्षालि॰ पलचतुष्टय श्रपित्वा जलाढके द्रव- - द्वेगुण्यात् जलस्य षोढशशरावे। द्रव्य तावद् द्विविध वीर्य्यप्रधान रसप्रधानञ्च। तत्र श्राद्य भेषजद्रव्य, दितीय पुनराहारद्रव्य मासादि। तत्र रसप्रधानद्रव्याभिप्राये- खैव चतु पलद्रव्याभिधानमत्र श्रेयम्। तेन परिभाषेय 'सिद्धा वराहनिर्य्यूहे यवागू- वृंह्यो मता' इत्यादि यवागूविषया वोध्या। वृन्दस्तु 'वृद्धवैद्या पल द्रव्य माह- यित्वाढकेऽम्भिस। भेषजस्थातिवाहुल्यात् कटाचिदश्चिमवेत्' इति जेब्बटन्याख्यात- मेव वृद्धव्यवहार निजपधेन लिखितवान्॥ २६॥

यवागूमुचिताङ्गकाचतुर्भागकृतां वदेत्॥ २७॥

इदानीं यवाग्वर्थ कियन्माना दरदिलततगडुला देया इत्यत श्राह यवागू-मिलादि—उचितादित्यभ्यस्ताद, चतुर्मागकृतामिति चतुर्थभागकृता तिद्वसीय-वुभुकापेक्या ॥ २७ ॥

सिक्थकै रहितो मएडः पेया सिक्थसमन्विता। यवागूर्वेहुसिक्था स्याद्वित्तेपी विरलद्रवा॥ २८॥

वेयादीना लच्चमाह सिक्थकैरित्यादि-अत्रत्र द्रवसिक्थममन्विद् यवागृरिति मामान्यलक्षणम्। मा च द्रिविधा पेयाविलेपीमेदात्। तत्र यवाग्वा प्वोपरितनभागो मण्ड , न तु पृथड्मण्ड साध्यने श्रायुर्वेदशास्त्रेऽदर्शितत्वात्। यस्तु काचिन्मएडगुणो मएडोपयोगो वा श्रूयते सोऽप्यस्यैव बोध्य । ननु मएड-श्रतुर्दशगुणजलमाध्य , यवागूस्तु षड्गुणजलसाध्या इत्यनन्तरमेव वच्यति, तत् कथमुच्यते यवाग्वा उपरितनभागो मण्ड ? नैवम् । तत्र यवागूराब्देन पेया विव-चिता । तेन पेयाया पृथक् जलमान नोक्तम् । द्रवसिक्यसमन्वितत्वमेव यवागूमामा-न्यलक्त्या, तेन चतुर्दशगुर्याजलसिद्धस्यापि मण्डस्य मिक्थसमन्वितावस्थाया यवागू-त्वमेव, तेन सुष्ठुक 'यवाग्वा उपरितनमागो मगड' इति । पेया इति सज्ञाबलात् बहुद्रवत्वमल्पसिक्थत्वच क्रेथम्। तेन सिन्यममन्त्रिता यनागूः पेयेति, पेयालचर्षे बहुद्रवत्वमल्पिस्क्यत्वच्च लच्चणतया वोध्यम् । तथा विरलद्रवा बहुभिक्या च यवागू-विलेपीति विलेपीलच्च वोध्यम्। तेन पेयाविलेपीन्यतिरेकेण पृथग् यवागूर्नोस्तीत्याहु । श्रतएव वाग्मटेऽपि यवागूगुर्थ पृथङ्नोक्त । तदुक्त भग्रडपेयाविकेपीनामोदनस्य च लापनम् । यथापूर्वं शिवस्तत्र मण्डो वातानुलोमन. र्वति । तथा चरकेऽप्यन्न-माने मएडपेयाविलेप्योदनानामेव गुर्णो दरिंत , न पृथग् यवाग्वा इति । यत्तु द्रव्यगुखे माधवकरेख वेयाविलेपीगुख पठित्वा निाक्षिन, ' तुखापनयनी लब्बी दीपनी

दित्तरोशिनो । स्त्रेर चैवातिसोर च यवा मनदा हिना हिना हित तत्मामान्य गुणा-भिप्रायेण वोश्य मामान्य सीर गुणवत् । यतु प्रयोगरसाकरे चतुर्विथ भेने मक जलदानप्रमाणत । तत्र भक्त विलेपी च यवागू पेयया सह ॥ हित, तत्र मण्ड एव पेयाराव्देन विविच्चन , यतस्तदनन्तरमेव पेयाया चतुर्दरागुण जलसुक्त नेत्रव पिज-गुणे चले भक्त विलेपी च चतुर्गुणे । यवागृ पद्गुणे तोये चतुर्दरागुणे पराम् हित ॥ २= ॥

श्रन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी तु चतुर्गुणे । मण्डश्चतुर्दशगुणे यवाग् पड्गुणेऽम्मस्नि ॥ २६ ॥ यवागुपाकार्य जनविसाधमाह अनिस्सादि—मूदमान्तस्य । यवाग्रव पेया ॥ २६ ॥

पांशुधाने यथा चृष्टिः क्लेद्यत्यतिकर्दमम् । तथा रेष्ठेष्मणि संबुद्धे यचाग् रेष्ठेष्मवर्द्धनी ॥ ३०॥ यवाग्, कसिन् विषये न कर्तव्येत्याह पाशुधान इत्यादि—पाशुधाने पाशु-मक्क्ये, श्रीतनर्दम यथा त्यात् तथा क्लेद्रयनि क्लेद जनयति ॥ ३०॥

> मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके । कद्ध्वेगे रक्षपित्ते च यवाग्रहिता ज्वरे ॥ तत्र तर्पण्मेवाग्रे प्रदेयं लाजशक्तुभिः । ज्वरापद्दैः फलरसैर्युक्तं समधुशकेरम् ॥ द्रवेणालोडितास्ते स्युस्तर्पणं लाजशक्तवः ॥ ३१॥

मदात्यय इत्यादि—चरकत्य । चरके एतद्वचनस्योपिर ''ऋने मधनसुतियतात्'' इत्यन्ति तेन मधकारणके ब्लरे यवागूनिपिद्धैव । तेन मदात्यये व्याभी तथा मधनित्ये मधेपे योऽमधहेतुकोऽपि ब्लर मोऽपि पेयानई । तथा श्रीप्मे यो प्लर , तथा पित्तकफाधिको यो ज्वर , तथा उद्ध्वगरक्षपित्तिनो यो ज्वर , तेषु सर्वेषु यवागूर्न हितित। इह मदात्ययादीना पेयानई लेन तेषु जातोऽपि ब्लर पेयानई । पित्तकफाधिक इत्यनेन् पित्तकफयोरितमात्रोद्धमे नित पेयाया अदान वोधयित है तेन कफके ज्वरे, पित्तके ज्वरे अनुद्भतदोपे पेया देया । उक्ष हि 'कफकेऽपि यदा धीयो लहुनादि-कमात् कफ । गत्ना एव यवाय्वत्य तत्र पित्तेऽप्यय कम ' इति । अत्यय चरके 'पैतिके वाथ शीता मधुनुता पिनेद् । यवागून् ' इत्यनेन पित्तेऽपि यवागूरुक्षा ।

पाशुधाने यथा वृष्टिरित्यादि हारीतवचनमि श्रितिवृद्धकफिविषय क्षेयम् । श्रन्य तु मिलितिपित्तकफाधिक पुरुषे यवागूप्रानिषेधमाद् । उद्ध्वेंगे कफिपित्तं इति पाठान्तरमनार्षं, पित्तकफाधिक इत्यनेनेव तदर्थस्य लाभात् । सुश्रुतेऽपि " कफिपित्तपरीतस्य ऊद्ध्वास्किपित्तिनस्तथा" इत्युक्तम् । श्रन्ये तु उद्ध्वंग इति ऊद्ध्वंगरक्तिपत्ते कफिपित्ते चित्तस्थानगते कफे इत्यर्थ । उक्त हि वाग्मटे "मखोद्भवे मखनित्ये पित्तस्थानगते कफे । ग्रीष्मे तयोवाधिकयोस्तुद्दाहच्छिदिपीढिते । अद्ध्वं प्रवृत्ते रक्ते च पेया नेच्छिन्ति तेषु तु ॥" इति व्याख्याय कफिपित्ते चिति पाठसुपपादयन्ति । यद्यपि चरके " अद्ध्वंग तर्पण पूर्वम् " इति वचता यवाग् वाधित्वा ऊद्ध्वंगे रक्तिपत्ते तर्पण विहित्मव, तथाप्यूद्धंगरक्तिपित्तिनो यो ज्वरस्तन्त्रापि तर्पणादिक्रमः कार्य्य इत्याह तत्रत्यादि—ज्वरापहानि फलानि द्राचादाडिमादीनि, उक्त हि " द्राचादाडिमखर्जूरिपयालै सपरूषकै । तर्पणाहेषु कर्त्तव्य तर्पण ज्वरनाशनम् " इति । तर्पणाह्मस्वर्धमाह द्रवेणालोडितास्ते स्युरित्यादि ॥३१॥

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः। मुद्गयूपौदनश्चापि देयः कफसमुद्भव। स पव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः॥ ३२॥

श्रमत्यादि—नित्यामिति सर्वदा नवे पुराखे च। रसो मामरसः, तेनोपसिक्तः श्रोदन. रसौदन । एव मुद्रयूषौदनिमत्यत्रापि व्याख्ययम् । श्रयञ्च रसौदन दीप्ताग्निं प्रति वोध्य ; उक हि सुश्रुते '' उपवासश्रमङ्गते ज्वरे वाताधिक तथा । दीप्ताग्निं मोजयेत् प्राज्ञी नर मामरसौदनम् '' इति । मुद्रयूषौदनश्चापीति कफ्जे मुद्रयूषौदनो देयो यवाग्वा श्रहितत्वात् । म एवेति मुद्रयूषौदन ॥ ३२॥

रक्षशाल्यादय शस्ता पुराणाः पष्टिकैः सह । यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः॥ ३३॥

रक्षशाल्यादय इत्यादि—चरकस्य । चरके पुराणा इत्यत्र "शालय " इति पठिन्त, तेन यवकादीना निरास इत्याहु । ये तु पुराणा इति पठिन्ति तन्मते यद्यपि " शक्कथान्य शमीधान्य समातोतम् " इत्यनेन पुराणस्योपयोगो लब्ध , तथापि प्रमादादितनवस्य तथातिपुरातनस्य च यहण मा मूदित्येनदर्थ पुराण इत्युक्तम् ॥ ३३ ॥

मुद्रामलकयूषस्तु वातिपत्तात्मके हितः। ' हस्वमूलकयूषस्तु कफवातात्मके हितः।

निम्बक्तसयूपस्तु द्वितः पित्तकफात्मके ॥ ३४ ॥

सम्प्रति द्वन्द्वजेष्वाहारिविधिमाह मुद्रामलकेत्यादि—आमलकोपवया मुद्रम्य
भूयमी मात्रा, श्राहारद्रव्यत्वात्। यागोऽय यघीप सुश्रुतेन अन्नपानाध्याये कर्पापेशज्वरहरत्वेन निर्दिष्ट , तथापीह वातिपत्तज्वरेऽभिधानात् वातिषित्रज्वरहरत्यमिष
यचनवलोदेवाध्यवमीयते। हस्सम्लको वालमुलक । अत्र रामीधान्यस्य यूपये।नित्वात्
सुद्राधिष वे।ध्यम् । एव यत्र नास्ति नत्र मर्वत्र । किंवा व्यक्षनपरे। यूप ।
निम्बकृलकेत्यादि—सुश्रुतम्य । निम्बन्य पत्र,तथा कृत्यकस्य पटे।लस्य च पत्रम ॥३४॥

मुद्दान मस्राध्यणकान् कुलत्थान् समुकुष्ठकान् । श्राहारकाले यूपार्थे ज्वरिताय प्रदापयत् ॥ ३४॥

मुरानित्यादि—सुप्रतत्य । मुकुषको बनमुद्र ॥ ३५ ॥ पटोलपतं वात्तीकु कुलकं काग्वेलकम् । कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्नां वालमूलकम् । पतं गुडूच्याः शाकार्थे स्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ३६ ॥

पटोलेत्यादि—सुयुतस्य । वात्तांकु वार्तावुषान, कूलकमपि पटोलफन, कर्का-टक काकरोल इति ख्यात, गोजिहा दार्वाशाक ॥ ३६ ॥

ज्वरितो हितमश्रीयाद् यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत्। श्रन्नकाले ह्यभुञ्जानः चीयते म्रियतेऽथवा॥३७॥

इदानीं ज्वरितस्यारुचावि हितभोजन नियमयणाह ज्वरित इत्याहि—
अस्यारुचिए यदि भवेत् तथापि ज्वरिती हितमेवाश्रीयादेव, इत्युभयशापि नियम ।
यती दिनान्ते मेजियदित्यनेन मुजि किया विहितेव। "न हि तग्याहित शुक्तमायुपे या
सुखाय वा" इत्यादिना हितमपि विहितम्, अत सिद्धे मत्यारम्भी नियमाय भवि ।
विपच्चे उएटमाह श्रम्काले हीत्यादि—यतोऽन्नकाले हितमभुजान पुरुष सीयते
श्रियते वा । अन्ये तु श्ररुची सत्याम् अशितुर्भोजने इच्छामावात् अपिराय्द भिन्नक्रमेण योजियत्वा नाम प्रिष्यान्यथा न्याचस्रते । अस्य यदि श्रमचिभेवेत् तदा
श्रहितमप्यश्रीयात् । कुन इत्याह श्रम्नकाले हीत्यादि—यतोऽभुजानस्य धातुत्त्यो
मरण वा स्यात् तसादहितमश्रीयादित्यर्थ । न चैव न्याख्याने गुर्वाभिष्यत्यकाले
चित्याधुत्तरअन्यविरोध स्यादिति बाच्यम् , यतस्तेनापि अन्येनाहित न प्रतिपिध्येन
श्रन्यथा न्याख्यानात् , तथा हि ज्वरी ना पुरुष ग्रुवंभिष्यन्यकाले च कथन्नन कदा-

चिदधात् सक्तद्भुं श्रीतेल्थर्थ । यतो मुक्त भोजन आयुषे वा मुखाय वा न श्रहित किन्तु हितमेव । हिशच्टस्थाने तुशच्टपाठेऽपि तुशच्दनिपातस्थानेकार्थत्वात् , हेतौ व्याख्येय: । नन्वेषा व्याख्या तदैव सङ्गच्छते यदि श्रहितार्थमुपदेश कापि शास्त्रे तिष्ठति किन्तिहिं हितस्येव सर्वत्रोपदेश । अवस्थाया तदिप हितमिति चेत् तहिं श्रहितमिति व्याहतम् " मत्य, प्राय सर्वदा मुद्रादिवन्न हितमिति हत्वा श्रहितमित्यु-च्यते, श्रत एवाहु "मनोऽनुरूप यदपथ्य तदिप क्रियत एव" इति । यदक्ष चरके ''मनसोऽप्यानुकूल्येन तुष्टिरूजों रुचिनेलम् । सुखोपभोगिता च स्याद् व्याधेश्वापि वलक्य " इति । किन्तु जेब्बटमते एषा व्याख्या न सङ्गच्छते, यते। ज्वरितो हितमित्यादेरनन्तरमेव हितविधायकमहितप्रतिषधक " सतत विषम वापि " इत्यादि " वर्जयेच समामत " इत्यन्त यन्य जेन्जट पठित, तन्मध्ये च गुर्वभिष्यन्दीत्यादिग्रन्थोऽप्यस्ति, ततो गुर्वभिष्यन्दीत्यादिवानयस्याहितविधायकत्व-न्याख्याने प्रकरणमसङ्गत स्यात् । तथा चन्द्रिकाकारेखापि ^{६६} ज्वरितस्य मन्दाग्ने-गुंबन्नापाकेऽजीर्थम् , श्रमिष्यन्दिन स्रोतारोधकलेन ज्वरवृद्धि " इत्यादि व्याख्यातम् । एवज्र गुर्वभिष्यन्दोत्यादियन्योऽप्याहतप्रतिपेधकपरतया ऋजुमार्गेग्रैव व्याख्येय । ज्वरितो हितमश्रीयादित्याचपि हितविधायकतया पव व्याख्येयम् । श्रहितस्य रोगवर्द्धकत्वेन मर्वत्र निषेषात् . चक्तरीत्या गुर्विमध्यन्दीत्यादिग्रन्थ-विरोधाचेति ॥ ३७॥

श्ररुचौ मातुर्तुगस्य केशरं साज्यसैन्धवम् । धात्रीद्वात्तासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ॥३≈॥

इदानीं वलवदुपद्रवत्वेनारुचे प्रतीकारमाह अरुचावित्यादि--योगान्तरमाह धात्रीत्यादि ॥ ३८॥

सातत्यात् स्वाद्धभावाद् वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः॥ ३६॥

श्रथ हितमेव यदि मततोषयोगादनिममतरसादियोगाद्वा कचिविषयो न स्यात् तदा कि कार्यम् १ इत्याह सातत्यादित्यादि—इढवलस्य । सातत्यादिति मततोषयोगाद् । सततेषयोगाद्धि स्वाद्वन्नमिष अप्रिय मवतीत्यनुमविसद्धम् । श्रस्वादु तु स्वत प्वाप्रियम् । स्वादुरमीष्टो रसः । तैस्तैः कल्पनाविधिमिरिति स्वरसक्तादिसद्दशास्त्रोकाकाविधानै पुनः प्रियत्व गमयेत् ॥ ३६ ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु । श्लेष्मच्चये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ४०॥

अन्नकालमाह ज्वरितिमित्यादि—वाग्मटस्य। दिनान्त इत्यपरोह्ने, सुश्रुते-ऽप्युक्त "सर्वज्वरेषु सप्ताह मात्रावद्गोजन हितम्। दिनापायेऽन्यथा तिद्ध ज्वर-वेगामिवर्द्धनम्" इति। ज्वरितिमित्यादिवाक्यानन्तर वाग्मटवचन यथा ' यथा-चितेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधत । प्रागल्यविद्युंखानो न द्याजीर्येन पांड्यते" इति। तेन यस्य पुरुषस्य य उचित आहारकालः, तसिन्नेव त भोजयेत् । यथोचिने हि काले देशसात्म्यानुरोधत प्राय चुद्वोधो भवति, तद्रतिक्रमे च चुधापगमो भवति तेन तस्य दिनान्तापेचा च कर्त्तव्यत्याह प्रागित्यादि। अल्पविहिरिति काया-व्यविहिनि सरखातः ज्वरितेऽल्पविहरेन भवति। देशमात्म्यगनुरोधात् अल्पविहरिप प्रागेत पूर्वाह्वेऽपि भुआनोऽजीर्येन न पोंच्यते न वाध्यते इत्यर्थ ॥ ४०॥

गुर्वभिष्यन्यकाले च ज्वरी नाद्यात् कथश्चन । न हि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ॥ ४१॥

नन्वरुचावीप सत्या हितमेव मोक्तव्यम्, नाहितमित्युक्तम्, अतस्तत् किमहित यन्न मोक्तव्यम् १ इत्याह गुर्वित्यादि सुश्रुतस्य । गुरु पिष्टकादि, अभिष्यन्दि, दोषधातुमलस्रोतसा क्षेद्रजनकम् अम्लिकादि—नाधात् न खादेत् । तथा अकाले अप्राप्ते मतीते च काले हितमीप नाधात् । कथश्चन कदाचिदपि । अत्र हेतुनै-हीत्यादि ॥ ४१ ॥

लङ्घनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्षको रसः। पाचनान्यविपकानां दोषाणां तरुणे ज्वरे॥ ४२॥

इदानीं लघनमेनादानिति यदुक्त तस्य पाचनतां दर्शयन्, प्रसङ्घाद स्वेदादीनामिप पाचनतामाइ लङ्गनमित्यादि काल इत्यप्टाइ । तिक्तकरसोऽत्र यवागूपानीयादिसरकारकत्वेन श्रेय स्वतन्त्रभेपजप्रयोगस्य तरुणे निषेधात्। उक्तञ्च भेषज धामदोपस्य
भूयो ज्वलयति ज्वरम् इति। श्राविपक्षानामित्युक्तापि यत् तरुणे ज्वरे इत्युक्त तदष्टाइाद्द्ध्वंमतरुणे ज्वरे अपक्रेषु दोपेषु पाचनकषायस्य प्राधान्यमावेदयति, न तु
लङ्गनादीनाम् । कि वा अविपक्षप्रहण्यमप्टाहादूद्ध्वंमिष सामत्वानुश्चिभवतीति
स्चनार्थम् । अत स्वाष्टाहादूद्ध्वंमिष आमपाचनार्थं पाचन शमनीय वेत्यादि
वद्यति॥ ४२॥

श्रासप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः। मध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम्॥ ४३॥

ननु ज्वरस्य तरुणता कियन्त काल तिष्ठति इत्याह आसप्तरात्रमित्यादि— मप्तरात्र व्याप्य । आडयमभिविधौ न मर्थ्यादायाम्, अष्टाहस्य निरामज्वरकालत्वे-नोक्तत्वाद् । मध्य द्वादशरात्रानिति पाठ माधीयान्, न तु मध्य चतुर्दशाहिन्त्विति, जतुर्क्तणे 'जीर्यस्रयोदशदिवस ' इत्युक्तत्वाद् । अत उत्तरमिति द्वादशाहानन्तरः त्रयोदगदिवसमारभ्य, पुराणमिति जीर्यज्वरमाहु । यतु "त्रिमप्ताहव्यतीतम्तु ज्वरो यस्तनुता गत । सोहाग्रिसाद कुरुते स जीर्यज्वर उच्यते ' इति तन्त्रान्तरम्, तदित्जीर्याभित्रायेण वीध्यम् । यद्यपि तरुणज्वर प्वात्र प्रकृतस्तथापि मध्यपुराण-योरत्राभिधानमैकवावयनिवद्धत्वात् ॥ ४३ ॥

पाचनं शमनीयं वा कपायं पाययेत्तु तम् । ज्वरितं पडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् ॥ ४४॥

नजु लङ्गनानन्तर किं कर्त्तन्यम् ? इत्याह पाचनिमत्यादि — एतच विकल्पद्वय योग्यतया यथाक्रममामदोषपकदोपविषय श्रेयम् । तेन पाचन सामस्य, निरामस्य शमनिमिति श्रेयम् । पहदेऽतीते इति ज्वरोत्पाददिनमारभ्य षहदेऽतिकान्ते सप्तमे-Sहानि लध्वनप्रतिभाजत ज्वरित अर्थादप्टमेSहनि पाचन शमनीय वा पाययेदिति योजना । एनच अष्टाहो निरामज्नरलच्यामिति पूर्वनानयेन, तथा "नि सप्तता निरामज्वरलच्चयम्" इति खरनादवाक्येन, तथा "सप्तरात्रात् पर केचिन्मन्यन्ते देय-मौपधम्" इति सुश्रुतवानयेन, तथा "सप्ताहादौपध केचित्" इति वाग्भटनचनेन महैकवाक्यता उपपन्ना भवति । अन्ये पुनरसुमेवार्थं प्रकारान्तरेणेच्छन्ति-पडहे श्रतीते इति ज्वरोत्पाददिन परित्यज्य गणना कार्य्या बस्तिदिनपरिहारेण परिहार-गणनावत्, तेन पडहे अतीते इत्यस्य सप्तमे अतीते इत्येवाथीं भवति । मट्टारहरि-श्चन्द्रेणापि सप्तमे दिने कपायपान यद्न्याख्यात तस्याप्ययमभिपाय उन्नेयः। श्रन्यथा सुश्रुतादिविरोधो दुष्परिहर इति । चन्द्रिकाकारेखोक्तम् " श्रिक्तरोगदिन-चतुष्टयवत् ज्वरस्य मप्ताइ सामताकाल , तत्र "न पाचन वा शमन न शोधनम्" इति । यत्तु पेयाधनन्तर हारीतेनोक्तम् "प्ता क्रिया प्रयुक्षीत पद्रात्र सप्तमेऽहनि । पिनेत् कषायसयोगान् ज्वरक्षान् साधुसाधितान्। " इति, तथा "इति पाङ्रात्रिकः श्रोक्तो नवज्वरहितो विधि । तत पर पाचनीय शमन वा ज्वरे हितम्॥" इति । खरनादवचनञ्च पूर्वोक्तरीत्या अष्टाहशतिपादकमेव श्रेयम्। अथवा यतः छुशुते

" सप्तरात्रात् पर केचिन्मन्यन्ते देयमीपभम् " इत्याद्यभिधाय "पैत्तिके वा ज्वेरे देयमल्पकालसमुत्थिते । अचिरज्वरितस्यापि भैपज्य दोपपाकत " इत्युक्तम् , वारम-टेनापि "मृदुर्ज्दरा लघुर्देहश्चलिताश्च मला यदा। ऋचिरज्नरितस्यापि भेपज्य योजयेत् तदा।" इति यदुक्षम्, तदिष सुश्रुतसवादात् पित्तज्वरपरमेव शेयम्। ण्तदवचनद्दय सप्ताहादर्वागिप पाचनकपायदानप्रतिपादकमनुद्भतमामतायामेव श्चेयम् । उद्भृतसामतायान्तु भेपजदानस्य वलवदपायजनकत्वात् । अत प्वाह वाग्भट ⁴⁴ सप्ताहादीपभ केचिदाहुरन्ये दशाहतः । केचिल्लबन्नगुक्तस्य योज्यमामोल्वणे न त । तीवन्वरपरीतस्य दोपवेगोदयो यत । दोपेऽथवाभिनिन्विते तन्द्रास्तैमित्य-कारिखि । अपच्यमान भैपज्य भूयो जनयति ज्वरम्॥" इति । अपैत्तिकच्चरे तु वात जादौ सप्ताहादर्वाक् पाचनमपि न देयमेव । सप्ताहानन्तरमपि यदि सम्यग्दोपपाक-लक्त्यानि ज्वरमार्दवक्तुधादीनि न भवन्ति तदा पाचनम्, अन्यथा तु शमन देयम् । एतदभिप्रायेणेव "मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेपु मलेपु च । पक दोप विजानी-याज्ज्बरे देय तदीपथम् " इति मुशुतवचन श्चेयम् । न चैतहचन ज्वरमार्दनादौ दोषपाकलचरे सञ्जाते सत्येव भेषजस्य देयता बोधयति । तत्र च सप्ताद्यानन्तरमपि नियमो नास्तीति वाच्यम् । सप्तरात्रात् पर केचिदित्यादिवचनै सप्ताहानन्तरमेव मेपजदानस्य बोधितत्वात् । तेन सप्ताहादर्वाक् पाचन शमनञ्च न देयमिति स्थितम्। व्याख्यानान्तरन्तु "ज्जरे पेया कपायाश्च" इत्यादि व्याख्यानावसर एव व्याख्ये-यम् । नतु सप्तरात्रादूर्ध्वं ज्वरस्य निरामत्वात् किमर्थं तत्र पाचन दीयते यदुक्तम् " अष्टाहो निरामज्वरलच्यम् " इति । सत्यप्यष्टाहे यदि न निरामत्व तदः। लच्च्या-मेव न स्यात् सामनिरामसाधारखत्वात्। असाधारखधर्मो हि लक्ष्य भवति। श्रत्राहु दिनिधा हि सामता, एका दोषस्य तरुणत्वरूपा। तरुणत्वन्न सप्ताहमात्रम् । तदुक्त पुष्कलानते ''श्रासप्तरात्र तरुणम्'' श्लादि । द्वितीया तु रमस्य, मुख्वैरस्य-तृष्णारीचकादिरूपा। तत्र प्रथमा अष्टाहादपैति, अत्र हरिक्षन्द्रेण हेत्ररप्यक ''सप्ताना भातृना भात्विश्वना सप्ताहेनामपाकात् अष्टाहेनेव नैरान्यम् " इति । चक्तञ्च " सप्ताहेनैव पच्यन्ते सप्तथातुगता मला । निरामश्चाप्यत प्रोक्तो ज्वर प्रायोऽष्टमेऽहनि " इति । द्वितीया पुन सप्ताहात् परतोऽपि कदाश्चिद्दीपवाहुल्या-दिग्रमान्याचानुवर्त्तते । उक्षञ्च '' श्रेष्मलानामवान्ताना ज्वर प्राय कफाधिक । परिपाक न सप्ताहे नापि याति मृद्यमणा' इति अतस्तत्र पाचनमुचितमेन । अतएबाइ सुभुत ''वहुदोषस्य मन्दाग्ने सप्तरात्रात् पर ज्वेर । लहुनाम्बुयवागूभि-

र्यदा दोषो न पच्यते । तटा त मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनै । कषायै पाचनै-हंबैर्ज्वरप्ने समुपाचरेत्" इति ॥ ४४ ॥

सप्ताहात् परतोऽस्तब्धे सामे स्यात् पाचनं ज्वरे । निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ ४४ ॥

इदानीं सप्ताहानन्तरमेव यस्यामवस्थाया पाचन शमनव्च देय तदाह सप्ताहादित्यादि — अस्तव्धे सामे इति लालाअमेक इत्यादि वच्यमाणस्य रमसामता-लच्चणम्य निवृत्ती सत्या प्राप्तलघुभावे मधुभाग्रडावलेपन्यायेन स्थितस्य कोष्ठावलेपकामभागस्य पाकार्थ पाचन देयम्। निरामे शमनमिति पाचनेन कोष्ठावलेपक स्यामभागस्य पाकार्य सम्यङ्गिरामत्वे सतीत्यर्थ । सम्यङ्गिरामता च दशरात्रात् परमेव दोषामतारसामत्ये सर्वथा निवृत्त्या प्रायशो भयतीति। अतएव "दशरात्रात् पर केचिद्दातव्यमिति निश्चितम्" इति सुश्रुतेनोक्तम् । किंवा यत्र दोषाणामनित-वृद्धत्वात् सप्ताह्नेव रममामतापि निवर्त्तते तत्र सप्ताहानन्तरमिप शमनादि देयम् "स्तव्धे सामे नौषधमाचरेत्" इति लालाअसकादिरसमामतालच्याना सत्त्वादप्राप्तलघुत्वे सप्ताहानन्तरमिप पाचन शमनम्ब न देयमित्यर्थः ॥ ४५ ॥

रससामतालचणम् ।

लालप्रसेको हज्ञासहदयाग्रुद्धथरोचकाः।
तन्द्रांलस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता॥
चुत्राशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः।
ग्रामज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात् तत्र भेपजम्॥
भेपजं द्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम्॥ ४६॥

रसमामतालच्चणमाह लालाप्रमेक इत्यादि—हदयाशुद्धि हृदयगौरवम् । न दचादित्यत्र हेतुमाहं भेषजामेत्यादि ॥ ४६ ॥

श्रामपाकलच्याम्।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च । पक्कं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ ४७ ॥

पाकलच्चणमाह मृदावित्यादि — सुश्रुतस्य । मृदौ मन्दीभूते । मान्धश्च ज्वर-स्यामर्सस्य पाकात् स्रोतिम शुक्षे पुन कोष्ठगते चोष्मणि मवति । प्रचलेषु प्रति- वन्धकस्यामरमम्य व्यपगमात् अविरुद्धेषु मलेषु वातिषित्तकप्रशङ्गद्रादिषु । पकिमिति
निरामम् । दोषमित्यनेन दुष्टिकारकत्वात् राकृद्रप्युच्यत इत्याषु । देय तदापथमिति
अल्पदोषे अस्तव्धमामताया पाचन, सर्वथा निरामत्वे तु रामन, शोधन यथावस्य देयम् । एतदनन्तरन्तु अन्यदिष पकलच्या प्रकीयमतेन सुशुतेनोक यथा
''दोषप्रकृतिनैकृत्यादेकेषा पकलच्यम् " इति ज्वरारम्भकाले यो दोषस्वभाष
सम्प्राप्तिस्य तस्यान्यथात्वादल्यत्वादेकेषा मते पकलच्यामिति । अन्ये तु प्रथमा
प्रकृति आमरसत्यमृर्विद्यताना ज्वरजननममर्थाना स्वकार्थ्यस्य ज्वरतीमत्व देहगुरत्वमलविवन्धादेकत्याद्व तते। विषय्ययो वैकृत्यम् । प्रथमा प्रकृतिरप्याम एव ।
यदुक्त ''प्रथमां दोषद्वष्टिच्च केचिदाम प्रचचते इति ॥ ४७ ॥

नागरं देवकाष्ठश्च धन्याकं गृहतीद्वयम् । दद्यात् पाचनकं पूर्व ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ४८ ॥

इदानीं सर्वज्वरमाधनार्थं पाचनकषायमाइ नागरमित्यादि—भेलस्य । योगे।ऽय द्रव्यगुणपर्व्यालोचनया वातकफजे इनि भद्र । व्याधिप्रत्यनीकनया तु पित्तजे हिनत्व-मस्याभ्युपगम्य मर्वज्वरविषयत्व द्येयमित्याइ मर्वज्वरेष्ट्यिति । श्रतएव तन्नापि एतत्प्रभृतियोगान्ते पट्याने "मर्वज्वरेषु पठयन्ते यथादोषयत् प्रति । इति ॥ ४ = ॥

, सर्वज्वरेषु-

पीताम्बुर्लेह्नितः चीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः। न पिवेदौषधं जन्तुः संशोधनमधेतरत्॥ ४६॥

यैमेंपज न पेय तानाइ पीताम्बुरित्यादि -- मुक्त इति कत्तिरि क्त , अथगव्द समुचये निपातन्यानेकार्थत्वाद , तेनेतरद रामनज्ञ न पिवेडित्यर्थ ॥ ४६ ॥

वीर्य्याधिकं भवति भेपजमश्रहीनं हन्यात् तदामयमसंशयमाश्र चैव । तद्वालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानि परां नयति चाशु वलक्तयञ्च ॥ ४० ॥

परिणामभयुक्तभेपजगुणमाह बोर्च्याधिकमित्यादि — भोजनसमयिक्रियमाणीपधा-पेच्चया नीर्च्येणोत्कृष्टमित्यर्थ । अन्नहानिर्मिति हेतुगर्मानेशेषण, यतोऽन्नहानमेपज-मावरकदोपामानाटिख्लभेन स्रोत प्रतिपद्यते कोष्ठन्च मन्यग्मानयित । श्रम्नहान हति पाठान्तरे कोष्ठ हति शेष ॥ ५०॥ श्रमुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं जुनुष्णा सुमनस्कता।
लघुत्विमिन्द्रियोद्गारश्रुद्धिर्जीर्णोषधाकृतिः॥ ४१॥
भेपजपाकलक्षणमाद श्रमुलोमोऽनिल स्वास्थ्यमित्राष्टि॥ ५१॥
क्रमो दाहाद्गसदनं भ्रमो मूर्च्छा शिरोरुजा।
श्ररिर्वलहानिश्च सावशेषोषधाकृतिः॥ ४२॥
भेपजस्यासम्यक्पाकलक्षणमाह क्रम हत्यादि॥ ५२॥
श्रोषधशेषे भुक्तं पीतश्च तथोषधं सशेषेऽने।
न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च॥ ४३॥

भेपजाजी यों भोजने अञ्चाजी गेंडिप भेषजीपयों योपमाह औषधरोष इत्यादि— भुक्त भोजन पतचाश्यवहारोपलच्या तेन लेहपानयोरिप शहरणम्, भुक्तमित्यस्य मम्बन्धे न करोति गदोपरामित्यन्तर्भावितो एयथौँ श्रेयः, यत प्रस्तुतत्वादौपधमेव गदोपरामक युक्तम् । तेनायमर्थः—भेषजाजी योजनमौपधमेव गदोपरामन न कारयतीत्यर्थे । पीतमित्यन्त परिमार्जनाभिप्रायेगोक्तम्, तेन लेहादीनामिप शहरणम् । सरोषेडिन्ने इत्येव पाठ, अन्यथा च्छन्दोमङ्ग. त्यात् ॥ ५२ ॥

> शीवं विपाकमुपयाति वर्तं न हिस्या-दन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति । प्राग्भुक्रसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच वृद्धशिशुभी हवराङ्गनाभ्यः ॥ ४४ ॥

भोजनसमयोपयुज्यमानस्याप्योषधस्य विषयविशेषे गुणमाह शोष्ट्रमित्यादि— शोष्ट्रपाकिता बुभुच्चितस्य प्रवलजठरानलसम्बन्धादित्यमिमान्धे । प्राग्मुकसेवितमिति मकात् पूर्वमन्यविहतकाले सेवितम् ॥ ५४ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्नि वलं वयः।
व्याधि द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीच्य मात्रां प्रयोजयेत्॥ ४४॥
तद्भेषज किंपरिमाणमिलाह मात्राया स्लादि—अवस्थानमिति नैयलम्,
अतएव चरकेणाप्युक्त "मात्रा खलु व्याधिवलापे दिणी" रित ॥ ४४॥

उत्तमस्य पर्ल मात्रा त्रिभिश्चाक्तैश्च मध्यमे । जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहकाथ्यौषघेषु च ॥ ४६ ॥ तर्हि मन्दबुद्धेरनध्यनसाय स्यात् स्त्यत काथ्यस्य मान प्रसन्न सेहस्याप्याह् उत्तमस्येत्यादि — सेहकाव्यापिधेष्विति केहरूपाणि काम्यरूपाणि चीपधानि तेषु, किंवा श्रीषध खरसगुढादि ॥ ५६ ॥ ,

> कर्णादौ तु पलं यावदयात् पोडशिक जलम् । ततस्तु कुडवं यावत् तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ , काथ्यद्रव्यपले कुर्यात् प्रस्थार्द्ध पादशेषितम् ॥ ५७॥

काथ्यस्य तावत् पलमान तच्च कियता जलेन कथनीयमतस्तन्मानमाह् कपीदानित्यादि—अग्निनेशस्य काथविपयेय परिमापा । पल यावदित्येकपलम् । पोटशिक जलमिति पोटशकपीदिरूपम् । अतप्व कपीदिमानकाथ्यापेद्या दोयमानम्य पोटशक्याग्राजलस्य वस्तुगत्या कुडवादिमानत्वेऽपि न देगुर्यम्, जलमानस्यापि कपीदि-रूपत्या निर्देष्टत्वात् । उक हि "रिक्तिकादिपु मानेपु यावन्न कुडवो भवेत् । शुष्कद्रवाद्रयोक्षापि ग्रुल्य मान मकीतितम्" इति । गिक्तकादिष्टिति रिकिरूपत्या निर्दिष्टेष्टित्यार्थे । तत इति भक्षपताद्र्द्वं पलद्रयमारम्य कुडवपर्यन्तमित्यथं । अत्र पल यावदित्यस्य प्रयाकाथविपयता, तनस्तु कुडव यावदित्यदि ग्रुम्पूर्णकोकानुरोषादेवोक्षम् । अत्रयव पल यावदित्यस्य प्रयाकाथविपयत्व द्रद्वयम् पाटाविशिष्टत्वञ्च वोथयन् कृष्णात्रयोक्षवनम् पल्यावि। अत्रय्वोक्षमन्यत्र "काथ्यद्रव्यपले कुर्यादित्यादि । प्रसाद्धिमिति द्वदेगुर्यात् पोडश पलानि । अत्रय्वोक्षमन्यत्र "काथ्यद्रव्यपले वारि दिरप्रगुर्णमित्यवे । चतुर्मागाविशिष्टन्न पेय पलचतुष्टयम्" इति दिरप्रगुर्णमिति पोडश्युर्णमित्यवे । एतेन पले काथ्ये दीयमानस्यापि पोडश्युर्णकतस्य पादाविशिक्षत्व काथ्येति स्वयति । उक्तञ्चान्यत्र "द्रव्यगापोत्थिन काथ्य दत्त्वा पोडशिक जलम् । पादाविशिष्ट कर्तन्यमेष काथविष स्मृत " इति ॥ ५०॥

द्वात्रिशन्मापकैर्माषश्चरकस्य तु तैः पलम् । श्रष्टवत्वारिशता स्यात् सुश्रुतस्य तु मापकः । द्वादशभिर्धान्यमापैश्चतुःषप्र्यां तु तैः पलम् ॥ ४०॥

इदानीं काथ्यस्य पलिन्नपोदिकिमित्योदि यदुकः तत् सर्वमिकिश्चित्कर यतो रिक्तिकादिशानाधीन मापकशान मापकशानाधीनञ्च कर्पपलादिशान त्तदेव मूल निर्णीतम्, अतो मापकादिमानं न्यवस्थापित्तु परिभाषामाह द्वाविरान्मापकै रित्यादि—द्वाविरान्मापकैरित्यधे ।, तेन द्वाविरात्मा विश्वादि साधारियापिक , तैरच मापकैरष्टचत्वारिशता चरकमते पल स्यादिति योग्य, सुश्रुतमते पुनद्वाहिमापै-द्वीदराभिमापक, तैर्मापकैश्चतु पष्ट्या सुश्रुतमते पलिमत्यर्थ ॥ ५८॥

एतच तुलितं पञ्चरिक्षमाषात्मकं, पलम् । चरकार्द्वपलान्मानं चरके दशरिक्षकेः॥ माषेः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तत्त्वेथेरितम्॥४६॥

हदानां सुश्रुतचरकमते यावतीमी रिक्तिमिर्माषको मर्वात तदाह एतच्चत्यादि—
एतदिति हादशधान्यमापकृतैश्चतु पष्ट्या मापकै सुश्रुतेन यत् पलमुक्त तत् रिक्तिकामिस्तुलित मत् पञ्चरिक्तमापात्मक भूत्वा चरकार्द्धपलोन्मान भवतीत्यर्थः ।
एतदेव विशव्यति चरके दशरिक्तिरित्यादि । यतश्चरके हार्त्रिशन्मापकलायकृतै
रष्टचत्वारिंशन्मापके यत् पलमीरितमुक्त तदशरिक्तिकश्चतु पष्ट्या मापकेर्त्तुलितं सत्
नथा तावन्मानमेव मवेत्, यतश्चतुर्विशत्या मापकलार्यर्दशरिक्तकार्त्तुल्या भवन्ति,
ततश्च दशरिक्तकमानाश्चतु पष्टिमापकाश्चतुर्विशतिमापकलार्यगुर्विशत मन्त पट्
विशादिक्षमण्डवशरातमापकलाया मवन्ति । एव चरकमतेऽि हात्रिशन्मापकलायप्रमाणा येऽष्टचत्वारिंशन्मापकार्ते हार्त्रिशता गुणिता सन्त पट्विशदिक्षपञ्चदशरातमापकलायाः स्युरिति दशरिक्तकमापकृतपलमानेन सह हार्त्रिशन्मापकलायप्रमाणमापकृतपलमानस्य गुल्यता । सुश्रुतमते पुनर्हादशमापकलाया मापक , ते चतु पष्टि पलिमत्युक्तम् । ते चतु पष्टिमापका द्वादशमापकलायग्रिणता सन्तोऽष्टषप्ट्यथिकमप्तमापकलाया भवन्तीति चरकोक्तपलमानादर्देन सुश्रुतोक्तपलमानमिति ॥ ८६॥

्रत्समान्पलं चतुःषण्ट्या माप्केर्दशरिक्षकेः । चरकानुमतं वैद्यश्चिकित्सास्पयुज्यते ॥ ६० ॥ .

इदानीं चरकाषुश्रुतोक्तमानयोर्भध्ये चरकोक्तमानमेव व्यवहारीपयोगिक-मित्याह तस्मादित्यादि—यस्माचरकोक्तमानमेव वैधैक्षिकित्मास्पयुज्यते, तस्माहरा-रक्तिकेक्षतु पण्ट्या मापकैर्यत् पल तदेव व्यवहारसिद्धमिति शेष ॥ ६०॥

वातज्वरचिकित्सा ।

्रिविल्वादिपञ्चमूलस्य काथः स्याद्वातिके ज्वरे । पाचनं पिष्पलीमूलगुडूचीविश्वजोऽथवा ॥ ६१॥)

पाचनयोगद्वयमाह विल्वादीत्यादि—विल्वादिपञ्चमूल महत् पञ्चमूलम् । अवचारणाप्यनेन क्रियते पिप्पलीमूलेत्यादिकन्तु काथविषयमेवेति, काथार्थोक्तपाचन-योगन गणरूपेणैव अवचारणा क्रियते, न पुनरगणरूपेण। अवचारणायोगेनापि गणरूपेणव कपायोऽपि कियते । तेन धान्यपिष्पल्यादिना कपायविधिरित्याहु केचित्तु काथार्थोक्तपाचनयोगेनागणरूपेणापि अवचारणमाहु ॥ ६१॥

किराताव्दामृतोदीच्यवृहतीद्वयगोचुरैः । सस्थिराकलसीविभ्वैः काथे। वातज्वरापह ॥ ६२॥

किरातेत्यादि—किरातः चिरायतेति स्यातम्। अन्दो मुस्तमम्, अनृता गुद्धची, उदीच्य बालकम्, स्थिरा शालपणीं, कलसी प्रिअपणीं, विश्व शुएठा, विश्वस्थाने विल्वन्य काचित् पाठ । 'योगवाह पर वायु ' इति पित्तयुते पाचनोऽत्य योज्य इति निश्चल ॥ ६२ ॥

र्रीरास्ना वृत्तादनी दारु सरलं सैलवालुकम् । कपायः शर्करात्नोद्रयुक्ता वातज्वरापदः॥ ६३॥

राक्तित्यादि—मृद्धादनी वन्दा, एनवालुक स्वनामख्यात, हारीतेऽय योगः, किन्तु तत्रोत्तरार्द्धयन्यथा पठ्यते, किम्ज मगुडसिष्क पिनेद्दातन्त्ररापहम् र इति एव चन्द्रोटऽपि । शर्कराचौद्रपाठन्तु वहुमप्रहपुस्तकेष्वेवास्ति अत आर्थेखापि अवितन्यम् । अत पित्तरेलक्पयुते तत्प्रचेपो बोध्य । अय योगो गुडमात्रप्रकेपा-दिपि रिनिग्रोहेन पठ्यते ॥ ६३ ॥

प्रदेगः पादिकः काथ्यात् स्नेहे कलकसमो मतः ॥ परिभाषामिमामन्ये प्रदेषेऽज्यूचिरे यथा । कर्पश्चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च सर्वशः ॥ ६४ ॥ द्रवशुक्त्या स लेढज्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः । मात्रा चौद्रघृतादीनां स्नेहकाथेषु चूर्णवत् ॥६४ ॥

' स्रोद्रशर्करयोमीनार्थं परिमापामाह प्रसेप इत्यादि — काथ्यात् कथनीय-द्रव्यात् राखादे उत्तमपुरुषायस्या पलात् पादिक कर्ष इत्यथं । केहे कल्कनमो मत इति ' कल्कस्तु क्रहपादिकः ' इत्युक्त कल्कसम पादिक इत्यथं । इमामिति वत्त्यमाणाम् । कर्ष इत्यादाविष स्रोद्धादीना मात्रा चूर्णविद्द्यतिदेशेन कर्ष प्यार्थ. । अत पकार्थत्वादनुमत्व । एवं ' मितोपलागुङस्तारसामान्याराप्रकल्पना ' इति वचनस्यापि ' प्रसेप पादिक काथ्यात् ' इति वचनेन सहैकनाक्यता स्था । तथा हि मितोपलादिकमत्रोपलस्या तेन मध्यादिकमपि श्रेयम् । सामान्यमुत्मगीसिद्ध पलित्रकपीद्धपलस्य यत् काथ्यद्वन्यमान तत्यारोन चतुर्मागरूपेण प्रकल्पना येषा

ते नथा। तेनापि काथ्यात् पादिक एव प्रचेपो होयः। समानैषा प्रकल्पनेति पाठ-पचेऽपि समाना चूर्णसमाना कर्ष इत्यर्थः। तेन "मात्रा चौद्रष्टतादीना खेहकाथेषु चूर्णवत्" इत्यनेन सहैकवान्यता। यत्र काथप्रधानता तत्र प्रचेप पादिक इत्यादि परिभाषा। एव यत्र चूर्णपेची द्रव तत्र कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्येति परिभाषा। द्रव-शुक्त्यास लढन्य इति,स लढन्यक्षेत् तद द्रवशुक्त्या द्रवार्द्धपलेन इत्यर्थ। पातन्यश्चेत् तदा चूतुर्द्दव चतुर्गुणद्रव. वृद्धवेषच्यवहारस्तु पञ्च ष्यमाषकेणिति ॥६४-६४॥

विल्वादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलके तथा। कुस्तुम्बुरुसमो होप कपायो वातिके ज्वरे॥ ६६॥

विल्वादीत्यादि — कुस्तुन्तुरु धनीयकम्। सम इति सममागकृत कषाय इत्यर्थ , एतेन ' भागेऽज्यनुक्ते नमता विधेया ' इति परिमाषार्थ स्वितः । किंवा शम तालव्यादि तेन नाय पाचनयोग किं ति शमन इत्यर्थ । चन्द्राटेऽपि शमनाधिकारेऽय योग पठित । अत्र शमनलच्य यथा " न शोधयित यद्दोषान् समान् नोदीरयत्यि । समीकरोति च क्रुद्धास्तत् सशमनमुच्यते' इति । न शोधयित यद्दोषानिति दुष्टान् दोपान् न देहात्रि सारयित, एतेन शोधन व्यवच्छिनित्त । समान् नोदीरयत्यपिति अदुष्टानितृद्धया न विमार्गान् करोति, अनेन पाचन व्यवच्छिनित्त, पाचन हि दोषान् विमार्गीकुर्वन् पचित यथा अपि स्थाल्या जल-त्यहुलादीन् विमार्गीकुर्वन्नेव पचित, न कोपयतीति क्षवित् पाठ , स च न सङ्गत , नोदीरयतीत्यनेन पानकक्त्यात् शोधनव्यवच्छेदाय पदान्तर मृग्यम् ॥ ६६ ॥

पिष्पलीशारिवाद्राचाशतपुष्पाहरेखुभिः। कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्वसनजं ज्वरम्॥ ६७॥

पिपलीत्यादि-सुशुतस्य । यत्र शारिवैका पट्यते तत्रानन्तम्लमेव, एवमन्यत्रापि ह्यम् । श्वसनकमिति वातकम् । पिप्पलीशारिकेत्यादिकमारम्य वातक्वरे ये वाच्यास्ते शमनयोगा एव वोध्या ,यसात् सुश्रुते "अत सशमनीयानि कषायाणि निवोध मे" इत्यिभिधाय एते योगा उक्ता ॥ ६७ ॥

गुडूची शारिवा द्रात्ता शतपुष्पा पुनर्नवा । सगुडोऽयं कषाय स्याद्वातज्वरविनाशनः ॥ ६८॥ गुडूचीत्यादि—तशन्तरे गुडूचीस्थाने पिप्पली पक्षते ॥ ६८॥ द्रात्तागुडूचीकाश्मर्य्यश्रायमागाः सशारिवाः । निष्काथ्य सगुडं काथं पिवेद्वातज्वरापहम् ॥ ६६ ॥
हान्नेत्यादि—सुमृतस्य । काश्मर्थं गाम्मारीफलम् ॥ ६६ ॥
शतावरीगुडूचीभ्यां स्वरसो यन्त्रपीडितः ।
गुडप्रगाढः शमयेत् सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ ७० ॥
रातावरीत्यादि—भनयो स्वरम मम एव ब्राह्य ॥ ७० ॥

पित्तज्वरचिकित्सा ।

पकं सर्था मुस्तं पाठा तिक्षकरोहिणी । पकं सर्था पेर्ने पाचनं पैत्तिके उचरे ॥ ७१ ॥ सत्त्रीद्रं पाचनं पैत्ते तिक्षाव्देन्द्रयवैः कृतम् ॥ ७२ ॥ पैत्तिकचरे पाचनयोगमाह कलिक्षमिस्थादि—कलिक्षम् इन्द्रयव । पाठा श्राकनादी मद्योद्रमित्यादौ तिक्षा कट्टकी ॥ ७१-७२ ॥

'लोधोत्पलासृतापद्मशारिवाणां सशर्करः । काथः पित्रज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः॥ ७३॥

लोश्रोत्पलेत्यादि - उत्पल नीलोत्पलम्, पद्म च पद्मपुष्पम् । "गुड्चीशारिवा-लोश्रकमलीत्पलर्शकरा " देत्यायुर्वेदसारदर्शनात् । एक पवाय योग , सुश्रुते तु योगद्वय प्यञ्येत "गुड्चीपद्मलोशाया शारिवीत्पलयोक्तथा । शर्करामधुर काथ शीत पित्तज्वरापद् " इति । किंवा एतद्वचनमवादात् सुश्रुतेऽप्येकयोगो च्याख्येय । पर्पटोद्भव इत्यन्नापि सशर्कर इति योज्यंम् ॥ ७३॥

पटोलयवनिष्काथों में घुनाः मधुरीकृतः । तीव्रपित्तज्वरामही पानानृड्दाहनाशनः ॥ ७५ ॥ पटोलेलादि सप्टम् ॥ ७४ ॥

जुरालमापपेटकप्रियड्गुभूनिम्बनासाकदुरोहिणीनाम्। जलं पिवेच्छकरयावगाढं तृष्णास्त्रपित्तज्वरदाह्युक्तः ॥७४॥ दुरालभेत्यादि—शर्करात्र प्रकेपनिधिनैन, क्रान्ये त्वनगादिमिति नचनात् सम्यद्माधुर्यादिका शर्करा देवेत्याहुँ॥ ७४॥।

त्रायमाणा च मधुकं पिष्पलीमूलमेव च । किराततिक्ककं मुस्तं मधूकं सविभीतकंम्। सश्करं पीतमेतत् पित्तज्वरविनाशनम् ॥ ७६ ॥ त्रायमायात्यादि—त्रायमाया वलोयालता इति, मधुक यष्टिमधु, मधूक मधूकपुष्प पित्तहन्तृत्वात् ॥ ७६ ॥

> मृद्वीका मधुकं निम्वं कटुका रोहिणी समा। श्रवश्यायस्थितं पाक्यमेतत् पित्तज्वरापहम् ॥७७॥

मृद्दोकेत्यादि—मृद्दोका द्राचा, कडुका रोहियो कडुरोहियो, अवश्याय-स्थित शिशिरस्थित, न तु शीतकषायमत आह पाक्यमिति । यतेन पाक कृत्वैव शिशिरे स्थापयेत् न तु 'द्रव्यादापोत्थितात् तोये' स्त्यादि शीतकषायविधिना ॥७७॥

े एक इत्यादि—चन्दन रक्षचन्दन, नागर कडकमि न पित्ते विरुध्यते मधुरपाकित्वाद ॥ ७= ॥

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम् । द्यात् सुशीतलं वारि तृद्झार्देज्वरदाहनुत् ॥ पर्पटामृतधात्रीणां काथः पित्तज्वरापहः ॥७६॥ विश्वत्यादि—श्रमु वालक, धन मुक्तम् । पर्पटेत्यादि—श्रमृता गुडूची

. ज्ञान्दसत्वात् इस्व ॥ ७६ ॥

द्वाचारन्वधयोश्चापि काश्मर्थस्याथवा पुनः ॥ द० ॥ दाचेत्यादि—सुश्रुतस्य। श्रारम्थ शोनालु , अस्य च चरके फिलिनीवर्गे सुश्रुते पत्रवर्गे पाठात् अन्त परिमार्जने फल, बिह परिमार्जने कुष्ठादी पत्र श्रेयम् । तेनात्र फलमेव, एवं काश्मर्थ्या अपि फलमेव। अत्र द्वाचारन्वधयोश्चापीत्यको योगः। काश्मर्थ्यस्याथवेति द्वितीय । इदश्च योगद्वय " गुद्धचीपद्यले। श्रारिनीत्पलयो-स्तथा । शर्करामधुरः काथ शीतः पित्तज्वरापह " इत्यस्यानन्तर सुश्रुते पत्र्यते, तेनात्र योगद्वय 'शर्करामधुरः काथ श इत्यनुवर्त्य टीकाकारैः शर्कराप्रदेपो विधेय इति व्याख्यातम् ॥ ८० ॥

द्राज्ञाभयापर्पटकाव्दतिक्का-काथं सशम्पाकफलं विद्ध्यात्। प्रतापमूर्व्ञाभ्रमदाहशोष-

तृप्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु॥ ८१॥

द्रोच्चित्यादि—ख्यातमितप्रभस्य शम्पाक शोनालु तस्य मञ्जाभाग प्रचेप इति केचित्, श्रय प्रचारी । श्रन्ये तु तत्फलै सह मिलित्वा काथ इत्याहु । दरे॥

> व्युपितं धन्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् । श्रन्तर्दाहं शमयत्यचिराद् दूरप्ररूढमपि ॥ =२॥

च्युषितिमित्यादि—धन्याककाथ एव च्युषित कार्य्य इति कश्चित्, अन्य तु द्रव्यादापोत्थितात् तोये प्रति निशि मस्थितात् । कपाया योऽभिनियाति स शीत समुदाहत । पड्भि पलैश्चतुर्भियां सिललाच्छीतफायटयो । आप्नुत भपजपल रसाख्याया पलद्वयम् " इति शास्त्रयुक्त्या शीतकपायमित्याहु । वृद्ध-वैद्यास्तु भेषुजार्द्वपले जलपलहयेन शीतकपाय कुर्वन्ति ॥ ८२ ॥

🎤 पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रिया शीतां समावरेत् ॥ =३॥

पित्तज्वरेण तप्तस्येत्यादि—तप्तस्यत्यनेन वच्यमाणा प्रदेहाधा शीतलिक्रया जीर्थाज्वर एव कर्त्तन्येति वीधयित । अत एवेक्त सुश्रुते ''परिपेकान् प्रदेहाश्च स्नेहान् मशोधनानि च । स्नानाभ्यक्कादिवास्वप्रशीतन्यायामयोपित । कपायगुरुमच्याणि क्रीधादीनि तथैव च । मारवन्ति च मोज्यानि वर्जयेत् तरुगुज्वरी''। । मे हा।

विदारी दाडिमं लोधं दिधत्थं वीजपूरकम् ।

एभिः प्रदिह्यान्मूर्द्धांनं तृड्दाहार्त्तस्य देहिनः ॥=४॥

विदारीत्यादी—दिधत्य किपत्यफल, दाटिमस्यापि फल, वीजपूरकस्य
केशरम् ॥ =४॥

भूतभृष्टाम्लिपिष्टा च धाती लेपाच दाहनुत्। अम्लिपिष्टेः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्दिहेत्॥ वदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य वा॥ ८४॥

ष्टतेत्यादि—धात्री आमलकी, आदौ अम्लकाञ्चिकपिष्टा पश्चान्यनाग्यृत-मृष्टेत्यर्थ । अम्लिपिष्टेरित्यादि—अम्ल काञ्चिकम्, पलारातरुजैश्च पलारानवपङ्गवे दिहेस् लिम्पेत् । वदरीपङ्गवोत्थेनेत्यादि—अज्ञापि वदरीपङ्गव काञ्चिकेन पिष्ट्वा प्रजुरकाञ्चिकन गोलियत्वा मन्थानटरिंडन प्रमथ्य फेनग्रहण कर्त्तव्यम् । एव निम्बपलस्येत्याद्व ॥ ६५ ॥

ज्वराचाकत्सा।

कालेयचन्द्नानन्तायिधवद्रकाञ्जिकः।
सप्तिः स्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहार्तिशान्तये॥ ८६॥
कालेयेत्यादि-कालेय कालेयकाष्ठ, अनन्ता अनन्तमूल, बदर बदरफलम्।
मध्तिगिति—ध्तमत्र शतधीत प्रयच्छन्ति वृद्धा ॥ ८६॥

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-

कांस्यादिपात्रं प्रशिधाय नाभौ। तत्राम्बुधारा वहुला पतन्ती

निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥८०॥

उत्तानेत्यादि-मर्वत्रैव कफमदन्ध विना। यथा गात्रे श्रम्बुक्या न पतन्ति, तथा कार्म्यम् ॥ ८७ ॥

पीतकाञ्जिकवस्त्रावगुग्ठनं दाहनाशनम् ॥ ८८ ॥ पीतेलादि--- परन्तु सम्यगालोडियत्वा क्रियते ॥ ८८ ॥ जिह्वातालुगलक्कोमशोपे मूर्धिन तु दापयेत् । केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ ८६ ॥

जिह्नत्यादि--- मुश्रुतस्य । लेपोऽयम् । क्षोम पिपामास्थानम्, मूर्धि शिर-स्तालुमध्ये ॥ ८१॥

मातुलुङ्गशिफाविश्वब्राह्मीत्रान्थिकसम्भवम् । कफज्वरेऽम्बु सत्तारं पाचनं वा कणादिकम् ॥ ६० ॥

मातुलुङ्गेत्यादि—शिफा मूल, बाह्मी बाह्मीशाक, प्रन्थिक पिप्पलीमूलम्। सचारमिति मातुलुङ्गाशिफाविशेषयमेव, न तु कस्पादिकमित्यस्य, यतस्तन्त्रान्तरे पिप्पत्यादिकन्तु पाचन कफंजे ज्वेर इत्युक्तम्। न तु यवचारप्रदेप इति ॥६०॥

पिष्पलीपिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्।

मरिचैलाजमोदेन्द्रपाठारेखुकजरिकम्॥
भागौ महानिम्वफलं हिंगु रोहिणीसर्षपम्।
विडङ्गातिविषे मूर्वा चेत्ययं कीर्तितो गणः॥,
पिष्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यारोचकज्वरान्।
निहन्यादीपनो गुल्मश्रूल्झस्त्वामपाचनः॥ ६१॥

क्यादिकमिति द्वश्रुतोक्तपिष्पल्यादिगयाः भतस्तमेव गया निर्दिशति पिष्प-लीत्यादि ॥ ६१ ॥

> कडुकं चित्रकं निम्बं हरिद्रातिविषे वचा। कुष्टिमन्द्रयवं मूर्वा पटोलञ्चापि साधितम्॥ पिवेन्मरिचसंयुक्तं सन्तौदं श्रीष्मके,ज्वरे॥ ६२॥

कडकिमित्यादि—सन्त्रान्तरस्य । सुश्रुते ''हरिद्रा चित्रक निम्बसुशीरातिविषे वचा " इति दर्शनात् कडकिस्थाने उशीरमिति निक्षल पठित । कडकित्यादि वचान्त पको योग , कुछादिपटोलान्तो दितीय । अतपव वृन्दे पूर्वार्द्धं परित्यच्य कुछमित्यादि दितीयाद्धमेव पठ्यते । टल्वचास्तु एकयोगत एव सुश्रुतटीकाया च्यास्या-तवान् । पटोलमिति पटोलपत्र, 'पटोलादेश्खदस्तथा' इति वचनात् । साधित-मित्यनन्तर कपायमिति शेष । मरिचमल्प मधु तु प्रचुर प्रचेष्य तीक्ष्णमृदुवीर्य्य-त्वादिति चकः ॥ ६२ ॥

्रिनिस्यविश्वामृतादारु शटी भूनिस्वपौष्करम् । (पिष्पल्यौ यृहती चेति काथो हन्ति कफज्वरम् ॥ ६३॥ निम्वेत्यादि—पौष्कर पुष्करमूल, तदमावे कुष्ठ, एव सर्वत्र । वृहती। कण्टकारी ॥ ६३॥

> सिन्दुवारदलकाथः सोपणः कफजे ज्वरे। जङ्घयोश्च वले चीणे कर्णे वा पिहिते पिवेत्॥ ६४॥

सिन्दुवारेत्यादि—आयुर्वेदसारस्य । सोषण इति सविष्यलोकः, श्रतपव कणाट्य इति पठ्यते, श्रन्ये तु कषणशब्देन मरिच व्याख्यानयन्ति व्यव-इरन्ति च ॥ १४ ॥

> श्रामतक्यमया रूप्णा वित्रकश्चेत्ययं गणः। सर्वज्वरकफातद्भमेदी दीपनपाचनः॥ ६४॥

आमलकीत्यादि—स्पष्टम् ॥ ६५ ॥

. ا त्रिफला पदोलवासाञ्चित्रत्ररहातिक्षरोहिणीपद्ग्रन्थाः। मधुना श्रेष्मसमुत्ये दशमूली वासकस्य वा काथः॥ ६६॥

त्रिफलेत्यादि--- वित्रहहा गुडूची । तिक्षरीहिणी कटुरोहिणी, पढ्यन्था वचा । अय योगी दरामूलीवासककाथसाहचर्यात् काथ एव, दरामूलीवासकाभ्यां मिलिताभ्यां काथ । श्रत्रापि मधु प्रचिपन्ति ॥ ६६ ॥

मुस्तं वत्सकवीजानि त्रिफला कटुरोहिस्।।

परूपकासि च काथः कफज्वरविनाशनः॥ ६७॥

मुस्तिमित्यादि—मुश्तस्य । वस्सक कुटनः॥ ६७॥

चातुर्भद्रावलेहिका

कद्फलं पौष्करं श्रङ्की कृष्णा च मधुना सह ।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥६=॥
कर्फलमित्यादि—कर्फल स्वनामस्यात, श्रक्षी कर्कश्रक्की ॥६=॥
कर्षश्चूर्णस्य करकस्य गुडिकानाञ्च सर्वशः ।
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्चं चतुर्द्रवः ॥६६॥
कर्ष हत्यादि—परिभाषा व्यास्याता प्वंमेन, किन्तु हद कर्षमान उत्तमपुरुषमपेत्त्य कथितम्, तेन मध्यज्ञघन्यापेत्त्या कर्षमानादपकषों होयः । व्यवहारस्तु द्वित्रैश्चूर्णमापकीरिति ॥६६॥

अध्वेजञ्जगरोगझी सायं स्याद्वलेहिका। श्रधोरोगहरी या तू सा पूर्व भोजनान्मता॥१००॥ श्रस्थोपयोगार्थ समयमाह अर्धेत्यादि॥१००॥

सौद्रोपकुल्यासंयोगः कासश्वासज्वरापहः। सीहानं हन्ति हिकाञ्च वालानाञ्च प्रशस्यते ॥१०१॥ सौद्रोपकुल्येत्यादी वयकुल्या पिपली ॥१०१॥

संस्पृद्रोषेषु हितं संस्पृष्टमथ पाचनम्।

द्दन्द्रजाना चिकित्सामाद्य क्सप्टिमित्यादि—सस्ट मिलित वातहरा-दिभिः ॥१०२॥

नवाङ्गः

विश्वामृतान्द्रभूनिम्वैः पञ्चमूलीसमन्वितैः। कृतः कषायो हन्त्याशु वातिपत्तोद्भवं ज्वरम् ॥१०३॥ विश्वामृतेत्यादि—अमृता ग्रह्ची, पञ्चमूली सन्त्या पञ्चमूली ॥१०३॥ त्रिफलाशालमलीरास्नाराजवृत्ताटरूपकै । श्रुतमम्बु हरेत्तूर्ण वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥१०४॥

त्रिफलेत्यादि —शाल्मलीवृत्तस्य मूलम् । राजवृत्तस्य शोखालुवृत्तस्य फल श्रन्त परिमार्जनत्वादिति प्रागेवोक्तम् । श्राटरूपको वासक ॥१०४॥

किरातिक्कमसृतां द्वाचामामलकी शटीम्। निष्काथ्य पित्तानिलजे काथं तं सगुडं पिवेत् ॥१०४॥ किरातिक्कामित्यादि—सुश्रुतस्य। श्रमृता गुडूची ॥१०४॥

निदिग्धिकावलारास्नात्रायमाणामृतायुतै । / मस्रविद्त्रैः काथो वातिपत्तज्वरं जयेत् ॥१०६॥

निदिग्धिकेत्यादि — निदिग्धिका कण्टकारी । मस्राविद्रलैरिति वीहिमस्र-दलैरिति वकुल । अन्ये तु मस्रविदल स्थामालतामाहु, यद्यप्यस्था पर्याये मस्राविदला पठ्यते, तथापि लिङ्गमशिष्ट लोकाश्रयत्वात् इति लिङ्गे अनाटर । अस्याश्च द्रव्यगुणे ज्वरहन्तृत्वमस्ति, व्यवहारस्तु कविदनया कविद् ब्राहि-मस्रोणेति ॥१०६॥

पश्चभद्रम्

🌡 गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभषेजम् । 🖖

पञ्चमद्रस्य पित्तकफहन्तृत्वमि वोध्यम्। यदाह हारीतं, "किरात पर्पट निम्ब गुहूची विश्वभेषजम्। पित्तेश्रव्मज्वरे कुठ्यीत् पाचन ज्वरनाशनम्" इति ॥१०७॥

मधुकं शारिवे द्राचा मधूकं चन्द्नोत्पलम्।
काश्मरी पद्मकं लोधं त्रिफलां पद्मकेशरम्॥
परूपकं मृणालञ्च न्यसेदुत्तमवारिणि।
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुपितं तिशि॥
वातपित्तज्वरं दाहतृष्णामूर्ज्ज्ञंविमश्रमान्।
शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमृतानिव मास्तः॥१०=॥

मधुकमित्यादि—दे शारिने श्यामलतानन्तमूले, मधूक मधूकपुष्पम्, उत्पल नीलोत्पलम्, काश्मरी गाम्भारी अस्या फल वृद्धोपदेशात् । पद्मस्य केशर किञ्जलक मृखालमुशीरम् । उत्तमवारिथि तस्डुलोदके । एनत् भर्वं शीतकपायविधिना गृहीतम् ॥१०=॥

श्रथ पित्तरलेष्मज्वरिचिकित्सा । पटोलादिः

पटोलं चन्दनं मूर्वो तिक्का पाठामृतागगः। पित्तन्क्षेण्मारुचिच्छुर्दिज्वरकगङ्कविषापदः॥१०६॥

पित्तकफडराचिकित्मामाह पटोलमित्यादि—सुश्रुतस्य । गखोक्तत्वात् काथ-कल्कादिकल्पनास्य वोध्या ॥१०६॥

गुडूच्यादिः

गुड़्ची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनानि व । एप सर्वेज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥ हृज्ञासारोचकञ्छर्दिंपिपासादाहनाशनः ॥११०॥

गुह्नचोत्यारि—पद्मक पद्मकाष्ठम् । यत्र पद्ममित्यस्ति तत्र प्रायः पद्मकेशरमेव गृह्यते । अत्र अत्यन्तवाह्णिपासाया वृद्धाः शीतीकृत्य मधु प्रसिपन्ति । तस्र बहुधा वृष्टफलम् ॥ ११०॥

चातुर्भद्रकपाठासप्तकौ

किरातं नागरं मुस्तं गुडूचीश्च कफाधिके । पाठोदीच्यमृणालेस्तु सद्द पित्ताधिके पिवेत् ॥ १११ ॥

किरातमित्यादि—"पाठोदी च्यमृणालैस्तु मह पित्ताधिके पिवेद्" इति किरातादिमि सह मिलित्वा पिवेद् , अत पाठामप्तकत्वम् । मृणालमुशीरम् । पित्ताधिक इत्यत्र कफ इति शेष । जतुकर्योऽप्युक्त 'भूनिम्व धन -गुङ्क्ची—शुग्रह्मम्बु-वासकमार्ग्यं मयापाठा' इति ॥ १११॥

कगटकाय्योदिः

कर्यकार्य्यमृताभागीं नागरेन्द्रयवासकम्। भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कहुरोहिणी॥ कपायं पाययेदेतत् पित्तस्रेष्मज्वरापह्म्। दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहत्पार्श्वश्चल्युत्॥११२॥

ł

क्रण्टकार्थ्यादि — भागी वामनदाटी, इन्द्र इन्द्रययः। यवामक दुरालभा। एप योग पित्तोत्तरे कफ इति केनिस् ॥ ११२ ॥

> सपत्रपुष्पवासाया रसः चौद्रसितायुतः। कफ्षित्तस्वरं हन्ति साम्नपित्तं सकामलम् ॥ ११३ ॥

सपत्रेत्यादि—रम ग्यरम तस्य गुरुत्यात् श्रह्मवल प्रविगोषयुज्यंत । सितामधुनोरतु प्रत्येक चतुर्मायवयोरत्र प्रदेष इति मास्यपिश रक्षां स-साहतम् ॥ ११३॥

पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं वला। साधितोऽयं कपायः स्यात् पित्तन्धेग्मोद्भवे ज्वरे ॥११४॥ पटोलामित्यादि पिचुमर्दो निम्न ॥११४॥

श्रमृताएकः

गुडूचीन्द्रयवारिष्टपटोलं कहुरोहिणी ।
नागरं चन्द्रनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥
श्रमृताष्ट्रक इत्येप पित्तरुप्तेपज्वरापदः ।
ह्ञासारोचकच्छदिंतप्णादाहिनवारणः ॥ ११४ ॥
श्रमृताष्ट्रके शरिष्टो निम्त ॥ ११४ ॥
/ पटोलयवधन्याकं मुद्दामलकचन्द्रनम् ।
पेतिके रहेप्मपित्तोत्थे ज्वरे तृद्छिदिंदाहनुत् ॥ ११६ ॥
पटोलयादि—सप्टम् ॥ ११६ ॥

पश्चतिक्रम्

चुद्रामृताभ्या सह नागरेण सपीष्करञ्जैव किरातिक्कम् । पिवेत् कपायन्त्विह पञ्चतिक्कं ज्वरं निहन्त्यप्रविधं समग्रम् ॥११७॥

चुद्रित्यादि—चुदा कण्टकारी, नागरस्य कड्रत्वेऽपि इत्रिणी गच्छन्नीनि न्यायात् पञ्चतिककमज्ञा ॥ ११७॥

े सशर्करामत्तमात्रां कडुकामुज्जवारिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ११⊏ ॥

सरार्करामित्यादि — सुश्रुतस्य कल्पकल्पनेयम् । रार्कराकटरोहिययो मिलिल्ला ममभागेन कर्ष । वैद्यप्रसारकेऽपि समभाग प्रवोक्त । चक्रस्तु रार्कराया उप-सर्जनत्वात् कडकायाश्च प्राधान्यात् कडकाया द्वादरा माषका सितायाश्चत्वार इति । तत्र, आयुर्वेदमारे 'मिता कडकया युक्ता पीत्वा चोष्णेन वारिणा । जीर्थज्वर जयेच्छी इ कफ्पित्तकृत ज्वरम्' इत्यत्र सिताया प्रव प्राधान्येन निर्देशात् । तसात् 'भागेऽप्यनुक्ते ममना विधेया' इति वचनात् समभागतैव युक्ता ॥ ११ ॥

दीपनं कफविच्छेदि वातिपत्तानुलोमनम्। ज्वरघ्ने पाचनं भेदि श्रतं घान्यपटोलयोः॥११६॥

दीपनिम्त्यादि - अत्र धन्याकस्य दश मापका , पटोलस्य तु परमाधका इति केचित् । तन्न, समभागवाधकाभावात् । श्वत काथ , व्यवहारस्तु व्यक्षने-नैव ॥११६॥

वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा।

कफवातज्वरे खेदान् कारयेद्र्चनिर्मितान्। स्रोतसां मार्दवं कत्वा नीत्वा पावकमाशयम्। हत्वा वातकफस्तम्मं खेदो ज्वरमपोहति॥ १२०॥

वातकप्रज्वरिविकित्सामाह कप्पवातित्यादि रुविनिर्मितानिति करीषदुस-पापाणवाष्पनिर्मितान् । यद्यपि वातश्चेष्मिणि क्षिग्धरूव एव स्वदो युक्त यदुक्त 'स्वेदोऽनिले क्षिग्धरूवो वातश्चेष्मिणि शस्यते ' इति तथापि श्चामाशयगत-त्यैव दोषस्य क्वरारम्भकत्वात् वातेऽपि रूव एव स्वेद उक्त । उक्त हि 'श्चामाशय-गते वात रूवपूर्व प्रशस्यने '॥ १२०॥

्रवर्षरभृष्टपटस्थितकाञ्जिकासिक्को हि चालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयमस्तकग्रलाङ्गमङ्गादीन्॥१२१॥

तमेव रूक्तस्वेदमाह सर्पर इत्यादि—त्विद्यते श्रानेनेति स्वेदः, वालुका एव स्वेद वालुकास्वेदः, तेन खर्परमृष्टेत्यादि विशेषण मझच्छते । वालुकाप्रकर इत्यपि पाठः ॥ १२१॥ ्रमुस्तनागरभूनिम्बं त्रयमेनन् त्रिकापिकम्। कप्तवातामशमनं पाचनं ज्वरनाशनम्॥ १२२॥ मुस्तेन्यदि—प्रत्येक कर्षः॥ १२२॥

पश्चकोलः

्रिपण्रलीभिः श्रृतं तोयमनभिष्यन्टि द्वीपनम् । चातश्रुप्मविकारमं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ १२४॥

पिष्पनीमि श्वतिस्यादि—पिष्पल्याम्नाइएवं। व्यत्वात् काव्यान्नरवत् अस्य अदंपलादिमानेन काथो न युज्यते तेन नर्थमेकमन्य वा गृहीत्वा कषाय कार्यः प्रवेत केष्मिए वाने च योज्य । बृद्धान्तु कीथेन व्यवहरन्ति, अष्टमापक गृहीत्वा पडक्षवर्द्धश्वतमामावस्थायामिष कुर्वन्ति ॥ १०४॥

त्रारम्बध्रम्थिकमुस्तितिक्वाहरीतकीभिः कथितः कपायः ।
 सामे सम्रोत कप्तवातयुक्ते ज्वर हितो दीपनपाचनश्च ॥१२४॥

आरन्वभेत्यादि--आरन्वभः गोराालुकन अन्धिक दिप्पनीमून, दिहा कडुको । दीपनपाचनश्रेत्यत्र 'दीपनेभदनोऽमी 'इत्यपि पाठ ॥१०५॥

चुद्रादिः कएटकार्य्यादिर्वा

चुट्टामृतानागरपुष्कराह्यैः

कृत-कपायः कफमारतो द्वेचे। सरवासकासारुचि प्रवेशकरे

न्त्ररे त्रिदोपप्रभवे च शस्यते ४१२६॥ द्धेरलाहि—चडा क्टकारी ॥ १२६॥

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्त कफानिले । श्रविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्त्रवासकासके ॥ १२७॥ दशमूलीत्यादि---रस काथ । प्राविषाके दोषाणामीषत्पाके, तेन पाचन-त्वमस्य ॥ १२७॥

मुस्तं पर्यटकः श्रुरठी गुडूची सदुरालभा । क्ष्मिकाराविच्छिदिदाहशोषज्वरापहः ॥ १२८॥ सक्तिमत्यादि—काथेन ॥ १२८॥

दारुपपेटमार्ग्यव्दवचाधान्यककट्फलं ।
सामयाविश्वपूतीकैः काथो हिंगुमधूत्कटः ॥
कफवातज्वरे पीतो हिकाश्वासगलग्रहान् ।
कासश्वासप्रसेकांश्च हन्यात्तरुमिवाशिनः ॥
मात्रा चौद्रधृतादीनां स्नेहकाथेषु चूर्णवत् ।
मापिकं हिंगुसिन्धृत्थजरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥१२६॥

दावित्यादि — पूतीको लाटाकर् इति निश्चल । किन्तु भूतीक इति पाठो वहुपुस्तेकपु दृश्येत स च टीकया न ज्याख्यात. । भूतीकश्च यमानी । हिंगुचौद्रयो प्रेसपार्थ परिभाषामाह मात्रेत्यादि — चूर्यविदिति कर्ष इत्यर्थ । उत्तमस्य पल मात्रेति पत्ते इय मात्रा श्रेया, माषिक हिङ्ग्विति च्लेद । श्राधशब्देन मैन्थव-सौवर्चल-मित्चादय ॥ १२६ ॥

मातुलुङ्गफलकेशरो घृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे। हन्ति चातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥१३०॥ भाष्टुलेक्ष्यादि—सिन्धुजन्म सैन्धवम् ॥ १३०॥

सन्निपाते--

लहुनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा।
श्रवलहोऽजनञ्जेव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे॥
सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्य्यादामकफापहम्।
पश्चात् श्रेष्मिण् संक्षीणे शमयेत् पित्तमाहती ॥१३१॥

सन्निपातज्वरचिकित्सामाह लङ्ग्नमित्यादि—यद्यपि सन्निपातज्वरिखदोषा-रन्ध, तथापि श्रामाशयस्य कफस्थानत्वाद, स्थानित्वेन च कफ एव बली, श्रत-स्तात्रात्यनीकचिकित्सा प्रथमतो विधेया। श्रतः कफप्रत्यनीकमेव लङ्ग्नादिक प्रथम कर्तन्यमित्याह लक्षुनित्यादि । अतपनीक्तमन्यत्र ' क्षेष्मनित्रहमेवादी कुर्याद व्याधो त्रिदोषेत्र ' इति, यत् पुनस्तन्त्रान्तरे ' शमयेत् पित्तमेवादी ज्वरेषु समवाथिषु । दुनिवारतम ति उनरार्चेषु विरोषत । तथा वातस्यानु नयेत् वित्त वित्तस्यानु जयेत् कफम् । त्रयाया वा जयेत् पूर्व यो भेवद्वलवत्तम ' इत्युक्त तत् पुनरवस्थाविशेषे बोध्यम् । तथाहि सामज्वरे कफमेनादित प्रतिकुर्यात् श्रामपाकान्ते पित्तभेवादी, चिरजे मारुतमेवादाविति । श्रत्रार्थे सन्त्रान्तर ' ज्वरे त्रिदोपन साम रामयेत् कफमादित । पाकान्तमागते पित्त चिरजे विषमेऽनिलम् ' इति । श्रन्थे पुन ' वातस्यानु जयेत् पित्तम् ' इत्यादिश्वोकमतीसारविषयतया वर्णेयन्ति । नत् वातादीना विभिन्नमञ्चयप्रकीपादीना युगपदवस्थानामावात् कथ सम्भय सान्निपातिकव्याध्यारम्भकत्वम् १ अय मन्यते त्रिदीपकरिनदानवरीन प्रकापादेषा युगपदुपस्थितिरिति, तदि न मने।रम यतस्तथाविधनिदानोषसेवनेऽि दीषाया विपरीतैर्श्यै परस्परीपवातात् युगपरप्रकीपस्य अनुपपेत । अत्रीच्यते न खल दोषाणा निखिल एव ग्रुणा विपरीत , समानस्यापि कतिपयगुणस्य नद्गा-वात समानेन हि गुर्खेन दोपाणामन्योन्यप्रकाेपस्यापि सम्मवात् । तथाहि रीच्य लाधनांधर्वायुस्तैजस पित्त प्रकापयित, पित्तमध्येवमेन वायुम्, वायुरिप शैत्यात् कफम्, कफोडिप तथा बायुम्, पित्तक्च द्रवत्वेन कफम्, कफोडिप तथा पित्तमिति, गुग्र-साम्यम्। न वाच्यम्, विपरीतस्तु गुणो भूयान् श्रल्प समानगुणमभिभूय प्रशमय-त्येव, कुता न करोत्येव यता दूष्यापेचया त्रिदोषकरद्रव्यप्रमावाच दे।पगुणा दूष-यन्ति पर न शमयन्तीति । दृढवलस्त्वाइ ' विरुद्धैरि न त्वेते गुणैर्शन्ति परस्परम् । दोषाः सहजसात्म्यत्वात् घेार विषमहीनिव' इति । अस्यार्थस्तु अस्मदीयचरकतत्व-प्रदीपिकायामन् मन्धेय ॥ १३१॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा।

लह्नं सित्रपातेषु कुर्योद्वारोग्यदर्शनात्॥
दोषाणामेव सा शक्तिल्ल्लेचे या सिह्ण्णुता।
न हि दोषच्ये कश्चित् सहते लह्वनादिकम्॥१३२॥

लहुन स्वियत्वा दोपमेदेन तदविधमाह त्रिरात्रमित्वादि—त्रिरात्र लहुन-विधिविकत्यो यथाक्रममुत्वखवाताचयेचया ह्येय । कुर्याद्वारोग्यदर्शनादित्यभिधान समग्रद्धदे(पत्रयापेचया कलसम्पत्ती च ह्येयम् । एतावन्त काल कथ लहुन कर्तुं शावयित्याशक्याह दे।वाखामित्यादि—' लहुनादिकम् ' इत्यत्र आदिशब्दात् वालुकास्वेदादीनामि यहराम् ॥ १३२॥

निष्ठीवनमाह--

Þ

श्राद्गं कस्वरसोपेतं सैन्धवं कदुकत्रयम् । श्राकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच पुनः पुनः ॥ तेनास्य हृदयात् श्रष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनोऽप्याकृष्यते श्रष्को लाघवञ्चास्य जायते ॥ पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च मूर्च्छाकासगलामयाः । मुखाक्तिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ सकृद्द्वित्रिचतुःकुर्ण्यात् हृष्ट्वा दोषवलावलम् । एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ १३३ ॥ निधीवनमाह शाईकेत्यादि—शाईकत्वरसमुष्य कृता सैन्धवादिचूर्णमतुरूप

> मातुलुङ्गाईकरसं कोण्णं त्रिलवणान्विलम् । अन्यद्वा सिद्धिविद्वितं तीक्णं नस्यं प्रयोजयेत् ॥ तेन प्रभिद्यते रेष्ठणा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते । शिरोद्ददयकण्ठास्यपार्श्वरुक् चोपशाम्यति ॥ १३४॥

नस्यमाह मातुलुक्केत्यादि—लवणत्रय सैन्धवसीवर्चल विडम् । सिद्धिविहित-मिति । श्रस्य योगस्य मालुकितन्त्रोक्तत्वात् मालुकितन्त्रस्यैव सिद्धिस्थाने श्रेयम् । ॥ १३४॥

मधुकसारादिः

मधूकसारसिन्धृत्थवचोषण्कणाः समाः । श्रुद्शं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात् संक्षाप्रबोधनम् ॥१३४॥ मधूकसारेत्यादि—मधूक फलविशेषस्तस्य सार फलास्थि, जपण मरिचम् । श्रम्भमा कोष्णेन ॥ १३४॥

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च । बस्तमूत्रेन पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ १३६॥ सैन्धवमित्यादि—श्वेतमरिच शोमाजनवाजम् ॥ १३६॥

श्रञ्जनमाह---

्र शिरीषवीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः। श्रञ्जनं स्यात् प्रवोधाय सरसोनशिलावचैः॥ १३७॥

श्रञ्जनमाह शिरीवेत्यादि—शिला मन शिला । मरसोनेत्यादिविशेषारे की योग , पृथक्पाठात पृथग्योगोऽपि नोध्यः । यदुक्तमायुर्वेदमारे ' ग्रक्ताचनीज-गोमूत्र-कर्णा-मरिच-सैन्धवै । शिलावचारसोनैर्वा श्रञ्जन स्यात् प्रवाधनम् ' इति ॥१३७॥

अष्टाङ्गावलेहिका

कद्फलं पौष्करं श्रङ्गी ज्योपं यासश्च कारवी।
श्रुक्णचूर्णीकृतश्चेतन्मधुना सह लेहयेत्॥
प्रणावलेहिका हन्ति सिन्नपातं सुदावणम्।
हिकां श्वासञ्च कासञ्च कर्रुटरोगं नियच्छति॥
ऊर्ध्वगश्रेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकमीणि।
विरोध्युष्णे मधु त्यक्तवा कार्थ्येषाईकज रसै।॥१३=॥

श्रवलेहमाह कट्फलिमत्यादि—यासो दुरालमा, कारवी कृष्णिशिरकम्। सित्रपाते स्वेदस्य सर्वदा हितलेन श्रीग्रमम्बन्धसमुद्भृत देहस्य जञ्जलम् । मधु च जञ्जे विरुध्यते, अतस्तत्र मधु त्यक्ता श्रादंकस्वरसनावलेह कार्थ्य इत्याह जर्ध्वग इत्यादि । यसमुद्यो इति पद स्वदादिविशेषणम् अपरक्रोपपस्यर्थम् । यसमात् उच्णिवरोधि मधु ततो मधु त्यक्ता इत्यर्थे. । ननु ('क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्या प्रयोजयेत् । प्वंस्या शान्तवेगाया न क्रियासद्भरो हितः') इत्यनेन सुश्रुते क्रियासद्भरो निषिद्ध , तत् कथ नस्यनिष्ठीवनादीना युगपदेन सित्रपातज्वरे विधानम् श अत्रोज्यते, क्रियासद्भरो द्यानकिकियामेलक , तस्य च दूषकत्व न सद्भरत्वमात्रेण, किं तिर्धि अतिमात्रलेन अग्नि-मान्यजनकतया तथा परस्परगुणविरोधादुभयोरिप निक्पलतया च । यतद्दोषद्वयमन्त परिमार्जन एव सम्भवति न पुन्वहि परिमार्जने नस्यनिष्ठीवनादौ । यतदिभसन्धय वृन्दोऽपि समाधानसुक्तवान् यथा हि क्रियामिस्तुल्यरूपाभि क्रियासाङ्क्रय्यंभिष्यते । भित्ररूपतया यास्तु ताः क्रुवेन्ति न दूषणम्)') इति । त्रित्यरूपत्या चात्रान्तःपरिमार्जनलेनेव कृया । तेनायमर्थः एकरिमन् अन्त परिमार्जने चपत्रके चप्रकृति यथपरमन्त परिमार्जनस्यत्व तेनेव क्रियासाङ्क्रयंस्य

चक्तरीत्या दूषकत्व न विह परिमार्जने नस्यादाविति । कषायादिमेषजोपयोगानन्तर पुनरवलेहादिदाने च यद्यपि कियासाक्तर्यदेशेषो मवत्येव तथापि काथ्याक्तत्या न विरोधः । तदक्कता चानादिवृद्धव्यवहारात् दोषानुपलम्भाद्य वोध्यम् । किं वा कियामाक्तर्यस्य दोषस्याल्पतया करुरोधादिवलवदपायप्रशमकत्या च निषद्धमप्य-वलेहादिकमवस्थाविशेषे अगीकियते । यथा पीतिविषे वालादौ वमनम् । अन्ये तु कल्पनया तुल्यरूपता व्याख्याय कषायावलेहयोर्थुगपदुपयोगेऽपि कल्पनामेदान्न साकर्यमित्याहु । तन्न, सुश्रुते अभिमान्धादिहेतुत्वेन कियासद्गरमात्रस्यैव दोषत्व-मुक्तम् । तत्र चातुल्यरूपता तुल्यरूपता विति विशेषो नास्ति केवल वृन्देनैव कषायनस्यादीना सिन्नपते युगपदुपयुज्यमानानामविरोधार्थम् कियामिस्तुल्यरूपामितित वचन निवद्धम् । तत्र कियाह्य कल्पनया तुल्यरूपमतुल्यरूप वा मवतु, चभयथाप्यतिमात्रादिनाश्चिमान्धादिहेतुत्या निषद्धमेव । तेनाभिन्नकल्पनान्त्रमेऽपि भयजद्वेय युगपद्भक्ते अतिमान्नत्विनैव तुल्यरूपत्वम् , विह परिमार्जने च मिन्नरूपत्व व्याख्याय कषायनस्याजनादिषु क्रियासाकर्यदोषत्व परिहर्षी-यम् ॥१३=॥

पञ्चमुष्टिः

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकश्चग्ठयोः।

पक्षकमुष्टिमाहृत्य पचेद्रष्टगुणे जले॥

पञ्चमुष्टिक इत्येष वातिपत्तकफापहः।

शस्यते गुल्मश्ले च श्वासे कासे चये ज्वरे॥ १३६॥

चातुर्भद्रकपश्चमूलकम् पञ्चमूलीकिरातादिर्गणो योज्यस्त्रिदोषजे । पित्तोत्कटे च मधुना कण्या च कफोत्कटे ॥ १४० ॥
पञ्चम्लीत्यादि—वातिपत्तीकनवाज्ञयोग ण्वायम् । भन्न पुनर्मध्योगात् पित्तोल्वणिनदीपद्दन्तृत्वम्, पिप्पलीयोगाच कफोल्वणिनदीपद्दन्तृत्वमस्य इयम । भन्न
कनीयस्या एव पञ्चमृत्या व्यवद्दार । अन्ये पुन श्रेष्मोल्वणे महती पञ्चमृतीमाहु
॥ १४०॥

दशमृलम्

विल्वश्योणाकगाम्भारीपाटलागणिकारिकाः।
दीपनं कफवातम् पञ्चमूलिमदं महत्॥
शालपणीपृश्चिपणींवृहतीम्ध्यगोन्तरम्।
वातिपत्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम्॥
उमयं दशमूलन्तु सिवपातन्वरापहम्।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कएठहद्ग्रहनाशनम्॥ १४१॥

दराम्लस्य चक्रत्वादुक्तव्याख्यादयानुरोधाश्च पञ्चम्लद्दयमाह मिल्वेत्यादि— महातम्मम्भवत्वात् ।वित्वादिपञ्चमूलस्य महत्व स्वत्यतस्यम्भवत्वाञ्च गालपर्य्यादीना-मत्यत्व श्रेयम् । सुश्रुते तु गोन्तरस्थाने पर्यदम्ल पट्यते, चरके तु गोन्तर् हित । तेन सुश्रुतप्रयोगेषु पर्यदमूलेन, चरकादिप्रयोगेषु गोन्तरेशेव भ्यवहार इति। सालि-हे।त्रादावप्येरयदमूलेनैवेति ॥ १४१ ॥

चतुर्दशाङ्गः

विरज्वरे वातकफोल्वेण वा त्रिदोपजे वा दशमूलिमश्रः। किरातिक्कादिगणः प्रयोज्यः ग्रद्धथर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः॥१४४॥

चिरकार इत्यादि—वातकफील्वण इत्युमयशापि मम्बच्यते । शुद्ध्यथिने वा त्रिवृताविभित्र इति मलविवन्धे मति शोधनार्थं त्रिचतुरत्रिवृच्चूर्णमापकाया प्रदेप इत्याद्व ॥ १४२ ॥

वातश्लेष्महरोऽष्टादशाद्रः

दशमूली शटी श्रद्धी पौष्करं सदुरालभम्।
भागीं कुटजवीजञ्च पटोलं कदुरोहिणी॥
श्रष्टादशाङ्क इत्येष सन्निपातज्वरापदः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वीर्त्तिश्वासहिकावमीहरः॥ १४३॥
दशमूलीत्यादि—स्पष्टम्॥ १४३॥

पित्तश्लेष्महरोऽष्टादशाङ्गः

भूनिम्बदारुदशमूलमहौपघाव्द-तिक्तेन्द्रवीजघानिकेमकणाकषायः। तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमे।ह-श्वासादियुक्तमिखलं ज्वरमाशु हन्ति॥

मुस्ताद्यगग्गः

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम्।
त्रिफला घन्वयासश्च नीली कम्पिसकं त्रिवृत्॥
किरातिक्रकं पाठा वला करुकरोहिणी।
मधुकं पिष्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते॥
श्रष्टादशाह्ममुदितेमतद्वा सन्निपातनुत्।
पित्तोत्तरे सन्निपति हितञ्चोक्रं मनीषिभिः।
मन्यास्तम्मे ऊरुघाते उरःपार्श्वशिरोग्रहे॥ १४४॥

भूनिम्बत्यादि—इन्द्रवीजम् इन्द्रयव । मुस्तेत्यादि—नीली नीलबुह्ना, कम्पिल्लक ग्रयहारोचनी । वलास्थाने वचेनि न पाठ, आयुर्वेदसारादौ वला-पाठात् ॥ १४४॥

शुख्यादिगगः

शटी पुष्करमूलञ्च न्याघी श्रद्धी दुरालभा।
 गुडूची नागरं पाठा किरातं कट्ठरोहिणी॥

एप शस्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहृपार्श्वार्तिश्वासे तन्द्रशाञ्च शस्यते ॥१४४॥
शदीत्यादि—किरातस्थाने केचित् पदोल पठन्ति, तन्न, हारीतनतुकर्णचन्द्राट
विदेहेषु किरातस्थैन पाठादिति ॥ १४४॥

बृहत्यादिगगाः

श्वहत्यौ पौष्करं भागीं शटी श्वकी दुरालभा। वत्सकस्य च वीजानि पटोलं कटुरोहिणी॥ वृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापदः। कासादिपु च सर्वेषु देयः सोपद्रवेषु च॥ १४६॥

वृहत्यावित्यादि—कासादिष्वित्यत्र आदिराय्द्रग्रहणात् शट्यायुक्तहृद्ग्रहा-दीना ग्रहणम् । चरकेऽपि शट्यायनन्तरमस्य योगस्य पाठात् ॥ १४६ ॥

भागी पुष्करमूलञ्च रास्नां विल्वं यमानिकाम् । नागरं दशमूलञ्च पिष्पलीञ्चाष्सु साधयेत् ॥ अक्षिपातज्वरे देयं हत्पार्थ्वानाहग्रुलिनाम् । कासभ्वासाग्निमान्द्यत्वं तन्द्राञ्च विनिवर्त्तयेत् ॥ द्विपञ्चमूली षड्ग्रन्था विश्वगृध्रनसीद्वयम् । कफवातहरः काथः सन्निपातहरः परः॥ १४७ ॥

भागींभित्यादि—भेलस्य । विल्व विल्वमूल यै।गिकमस्तम्मकत्वाद् । दश-मूलद्वेति पाठपचेऽपि भागदय तस्य आधा, किन्तु भेले 'नागरच्च मृखालच्च पिप्पलीं च' इति पाठो दृश्येत एव चन्द्रोटेऽपि, अत एकभागस्तस्येति युक्तम् । द्विपञ्चमूलीत्यादि—द्विपञ्चमूली दशमूली, पद्यन्था वचा, गृधनखीद्वय कानागर-कुटकराखिमेदाद् रक्तश्रेतपुष्पमेदाद्वा ॥ १४७॥

श्रमिन्यासज्वरचिकित्सा

कारवीषुष्करैरग्डत्रायन्तीनागरामृताः ।

/ दशमूलीशटीश्टङ्गीयासभागीपुनर्नवाः ॥

तुल्या मूत्रेण निष्काथ्य पीताः स्रोतोविशोधनाः ।

श्रिभन्यासज्वरं घोरमाश्र झन्ति समुद्धतम् ॥१४८॥

सित्रपातज्वरभेदस्याभिन्यामस्य चिकित्मामाह कारवीत्यादि—कारवी कृष्ण-जीरकम्, त्रायन्ती त्रायमाणा, मृत्रेण गोमूत्रेण ॥१४८॥ ,

्रमातुलुङ्गारमभिद्विल्वन्याघीपाठीरुवृकजः । काथी लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासःनाहशूलजुत् ॥१४६॥

मातुलुगेत्यादि—श्वश्मभित् पाषायाभेदी, विल्वस्य मूल, लवण सैन्धव, मूत्र गोमूत्रम् । गोमूत्रसैन्धवे प्रचिप्य काथ पेय । गतप्रयोगदर्शनात् गोमूत्रेण काथ प्रचेपञ्च लवणिमेचेके ॥१४६॥

निद्रोपेतमभिन्यासं चीणं विद्याद्धतौजसम् ॥१४०॥

रिवितिश्चेय श्रामिन्यासलक्ष्यस्य श्रनुक्तत्वात् तल्लक्ष्यामिहैवाह निद्रोपेत-मित्यादि—सिन्नपातज्वरमेव निद्रोपेतमिमन्यास विद्यात् । चीख विद्याद्धताजसमिति चीखमिति चीखधातुगतम् । श्रामिन्यासज्वरमेव चीखधातुगत हत्तीजस विद्यात् । उक्त हि सुश्रुते 'श्रामिन्यासन्तु त प्राहुईतीजसमधापरे । सिन्नपातज्वर कृच्छ्रमसाध्य-मपरे जगु ' इति ॥१५०॥

> कर्राटेश्यकप्रश्वासिहकासंन्यासपीडितः । मातुजुङ्गाईकरसं दशमूल्यम्भसा पिवेत् ॥१४१॥

करठरोधेत्यादि-दशमूलकाथमेव मातुलुगाईकरसे प्रक्षिप्य पिवेदित्यर्थ ॥ १५१॥

व्योषाव्दित्रफलातिक्रापटोलारिष्टवासकैः।
सभूनिम्यामृतायासैस्त्रिदोषज्वरनुज्जलम् ॥१४२॥
व्योषेलादि—श्रिष्टो निम्न , तस तक्। जल काथ ॥१४२॥
त्रिवृद्धिशालात्रिफलाकद्धकारम्बधैः कृतः।
सद्यारो भेदनः काथः पेयः सर्वज्वरापदः ॥१४३॥
त्रिष्टित्लादि—विशाला गोरचकर्कटी, यवचार प्रचेप्य ॥१४३॥
स्वेदोद्धमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः।
घर्षेज्जिह्नां जडां सिन्धुत्र्यूष्णैः साम्लवेतसैः॥
उच्छुष्कां स्फुटितां जिह्नां द्राच्या मधुपिष्टया।
लेपयेत् सघृतञ्चास्यं सन्निपातात्मके ज्वरे ॥१४४॥
सेदोहम इलादि—सन्निपातात्मके ज्वर इलन्त सप्टम् ॥१४४॥

काकजहाजटा निट्टां जनयेच्छिरसि स्थिता ॥१४४॥
काकजहा स्लाहि—जटा मृलम् ॥१४४॥
सिन्निपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्त न गृंहयेत् ।
तृष्णादाहाभिमृतेऽपि न द्याच्छीतल जलम् ॥१४६॥
सिन्निपात स्तादि—स्पष्टम् ॥१४६॥
सिन्निपातज्वरस्थान्ते कर्णमृते सुदारुणः ।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥
रक्षावसेचनैः पूर्व सिर्पःपानैश्च तं जयेत् ।
प्रदेहैं कफापित्तप्रैर्वमनैः कवलप्रहैः ॥
गैरिकं पाशुजं शुरुठीवचाकटुककाक्षिकैः।

कर्णुशोथहरो लेपः सिन्नपातज्वरे भृशम् ॥१४७॥
सिन्नपातज्वरस्यान्ते रोषे सिन्नपातज्वरे वा गते इत्यर्थ । रकावमेवनैरिति
बहुवचनात् रक्तावसेचन नैरन्तय्येंण वोध्यम् । जनुकर्णे 'राज्वद्रकस्य मोचणम्'
इत्युक्तत्वात् । सिप्रत्र पञ्चतिक्तिनिक्तलाष्ट्रतादि । चकारात् वातकक्षमनेहोऽपि वोध्य ।
यदुक्त तत्रैव 'लेहाश्च कक्षवात्रमा- कार्य्यो मक्षवड्यहा । त्रिकलाष्ट्रनपान वा
बल कात्वा समाचरेत्' इति ॥१४७॥

कुलत्थकद्फले ग्रुएठी कारवी च समांशिकैः। सुखोप्णैर्लेपनं कार्य्ये कर्णमूले मुहुर्मुहु॰॥१४८॥ कुलत्थिति सप्टम्। दरामूलेनापि मुखोप्णेनात्र लेपमुपदिशन्ति ॥१५८॥

जीर्याज्वरचिकित्सा निदिग्घिकादिः

निदिग्धकानागर्कामृतानां
काथं पिवेन्मिश्रितपिष्पलीकम् ।
जीर्याज्यस्योज्यककासमूल-

श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ॥१४६॥ नीर्षज्नरिचिकत्सामाह निदिग्धिकत्यादि—निदिग्धिका कपटकारा, नातकके क्रियते, पित्तानुबन्धे पिष्पर्शी त्यक्ष्वा मधु प्रक्षिपन्ति वृद्धा । पिष्पली चूर्णस्य माषक-द्वय प्रचेष्य प्रचारादिति कश्चित् । पुराग्यप्रक्षिश्यायेऽप्यय योगो दृष्टफल । श्रास्येव योगस्य मोपपत्तिक वैद्यव्यवद्वारसिद्धमुण्योगकालमाह हन्तीत्यादि—किन्तु विन्दुमोर प्रात समयोऽप्युक्त । यथा 'श्वामकामविनाशाय मन्दोग्नदीपनाय च । श्रामचेश्च निष्टत्त्यर्थे प्रातरुत्थाय त पिनेत्' हति । तथा वृन्दोऽप्याह 'तच्च रात्रिक्वरे सायमन्यत्र प्रातरिष्यते' हति ॥१५६॥

> पिष्पलीचूर्णसंयुक्तः काथिश्छन्नरुद्दोद्भवः। जीर्णज्वरकप्रध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा॥ कासाजीर्णाद्विश्वासहत्पाग्डिकिमिरोगनुत्। जीर्णज्वरेऽग्रिसादे च शस्यते गुडिपण्पली॥१६०॥

पिप्पलीत्यादि—छिन्नरहा गुद्ध्ची, पद्ममूली च महती । योगद्दयेऽपि विप्पलीचूर्णप्रक्षेप । पित्तानुबन्धे मंधु उपदिशान्ति वृद्धा । इदछ योगद्दय प्राय मायमुपयुज्यते । कासेत्यादौ गुडपिप्पल्यो. प्रत्येक माषकत्रयेण व्यवहरन्ति वृद्धा ॥ १६०॥

विषमज्बरचिकित्सा

कित्रकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी।
पटोलं शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी॥
निम्वं पटोलं 'त्रिफला मृद्धीका मुस्तवत्सको।
किरातिक्रममृता चन्द्नं विश्वभेषज्ञम्॥
गुडूच्यामलकं मुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः।
कषायाः शमयन्त्याश्च पञ्च पञ्चविधान् ज्वरान्।
सन्ततं सततान्येषुस्तृतीयकचतुर्थकान्॥१६१॥

विषमज्वरिविकित्मामाह कलिङ्गका इत्यादि—वाग्मटम्य । एते पश्च योगाः पश्चमु सन्तत-मततान्येषुष्क-तृतीयक-चतुर्थकेषु यथासल्य ग्रेयाः । अन्ये तु सर्व एव योगा सर्वत्र इत्याहु । तत्र यथामख्यमेव युक्त सततोष्लेखेन पटोलादियोगस्य तथा निम्बादेशचान्येषुष्कोष्लेखेन, गुद्धच्यादेश्च चतुर्थकोष्लेखेन चारपाणौ इष्टत्वाद् । मन्ततं सततान्येषुस्तृतीयकचतुर्थका।निति पाठस्तु वाग्मटे चरके नास्ति वृन्देऽपि नास्ति । तेनायमर्बस्थोकः सम्रहे केनापि प्रमादाद् लिखितः ॥१६१॥

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिवेद्वा विषमार्दितः । दार्घपत्रककर्णाख्यनेत्रं खदिरसंयुतम् ॥ ताम्बूलैस्तद्दिने भुक्तं प्रातर्विषमनाशनम् । गुडुचीमुस्तघात्रीणां कषायं वा समाज्ञिकम् ॥१६२॥

गुडप्रगाडिमित्यादि—सुश्रुतस्य । त्रिफलामित्यत्र कथितामिति रोप इति हत्वण । गुडोऽत्र प्रचेप्य । दीर्घपत्रकेत्यादि । कणाख्य काणाखोड इति ख्यात । तस्य विशेषण दीर्घपत्रेति । नेत्र मूल तदिप शुष्कदेशजात प्राह्मसुप-दिशन्ति वृद्धा । गुडूचीत्यादि—सुश्रुतस्य त्रय योगो यघिए पूर्व चतुर्यके पिठत , तथापि मधुयोगात् विपमज्वरमात्रहन्तृत्वमप्यस्य वीध्यम् । डल्रणस्तु यघिप योगोऽय विषमज्वरे पठित तथापि समानतन्त्रोक्तत्वात् विषमज्वरिवेशेषे चतुर्थक एवाय वोध्य शत्याह ॥१६२॥

मुस्तकादिः

मुस्तामलकगुड्ड्चीविश्वौषधकग्रटकारिकाकाथः।
पीतः सकग्राचूर्णः समधुर्विपमञ्चरं हन्ति ॥
महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः।
काथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः।
वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः॥
सितामधुयुतः काथख्यातुर्थकनिवारगः।
मधुना सर्वज्वरजुञ्छेफालीदलजो रसः॥१६३॥

मुस्तादिमहीषधादी स्पष्टी । वासादी वासास्थाने चन्द्राटे पाठा पठघते, व्यव-धारस्तु वासयेव । स्थिरा शालपर्यी । पथ्या इरीतकी । मधुनेत्यादी मर्वज्वरनुत् विषमाविषमज्वरनुत् ॥१६३॥

श्रजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी । श्रियसादं जयेत् सम्यग्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥१६४॥ श्रजाजीत्यादि—मनाग्मृष्ट कृष्णजीरकमिति चक्र । सितजीरकमित्यन्ये ॥ १६४॥

रसोनकरकं तिलतैलिमश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः।

विमुच्यते सोऽप्यचिराज्वरेण वातामयैश्चापि सुघोरसपैः॥१६४॥

रमे.नक्किमित्यादि—मक्ताद पूर्व कर्तव्य, यदाह चरक. 'रनोनस्य सनैतस्य प्राग्मक सुपतेवनम् 'इति ॥ १६६ ॥

प्रातः प्रातः ससर्पिवी रसोनमुपयोजयेत्।
पिप्पलीवर्द्धमानं वा पिवेत् चीररसाशनः।
पद्पलं वा पिवेत् सर्पिः पथ्यां वा मधुना लिहेत्॥१६६॥
प्रातित्सादि—पिप्पतीत्सादियोगी नीश्रुतौ । षट्पत निरित्तेव वन्सनारानः॥ १६६॥

पयस्तैलं घृतञ्चेव विदारीन्तरसं मधु । सम्मूच्छ्रर्य पाययेदेतद् विषमञ्बरनाशनम् ॥ १६७ ॥

पय इत्यादि—दुःशं शृदं नोष्यम् । विदारी झुरसिनि इक्तुरसत्थाने स्वरम् इति न पाठः उतं हि हारीने 'विदारी झुरतः सिर्पर्नम् युक्तितशृदं पयः । पिने-बातुर्थक भासकासवात व्यापहम् ' इति । अन्ये तु विदारी व्यापन्य स्वापने स्वरमाने , बातुर्थे इक्कासात् योगान्य स्वराहः ॥ १६७॥

पिष्पलीशर्कराज्ञोद्धं घृतं ज्ञीरं यथावलम् ।

खजेन मथितं पेयं विषमज्वरनाशनम् ॥ १६८ ॥

पिष्पलीलादि—दुःषं भनं दोष्पम् ॥ १६८ ॥

पयसा वृषदंशस्य शक्तद्वेगागमे पिवेत् ।

वृषस्य दृष्टिमग्डेन सुरया वा ससैन्धवम् ॥ १६६ ॥

पयसेतादि—वृषदंशो विदातः । वृषस्तापि शक्तदिल्यं ॥ १६६ ॥

नीलिनीमजगन्थाञ्च त्रिवृतां कटुरोहिणीम्। ' पिवेज्ज्वरस्थागमने स्नहस्वेदोपपादितः॥ १७०॥

विषमन्तरे विरेतार्थनाह मीतिनीत्यादि—मीतिनी नोटबुहा । आगनने आगमनदिवने ॥ १७० ॥

सुरां समण्डां पानार्थे भन्यार्थे चरणायुघान् । तिचिरींस्र यूमरांस्र प्रयुञ्ज्याद्विषमज्वरे ॥ १७१ ॥ मुरामित्यादि—चरकस्य सप्टम् ॥ १७१ ॥ श्रम्लोटजसहस्रेण् दलेन सुरुतां पिवेत् । पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थकहरीं ज्यहम् ॥ १७२ ॥ क्रम्लेटजश्चोद्गरी ॥ १७२ ॥

सैन्धवं पिष्पलीनाञ्च तग्हलाः समनःशिलाः । नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं विपमञ्चरनाशनम् ॥ व्याजीवसा हिंगुसमा नस्यं तद्वत् ससैन्धवा ॥ १७३ ॥

नैन्धवित्यादि —चरकस्य । अअनशस्य अभ्यअनेऽपि वत्तते, तिन्नरामाय नेत्रपदम् । न्याक्रीत्यादां स्त्रीलिङ्गीनेदेशात् लिङ्गोमव प्रयोजक न तु जानि ॥१७३॥

कृष्णाम्बरद्दढाबद्धगुग्गुलूलूकपुच्छुजः । धूपश्चातुर्थकं हन्ति तमः सूर्य्यः इवे।दितः ॥ १७४॥ कृष्णाम्बरेत्यादि—अम्बरस्य रूपाल मृहराजस्वरमादिभि , उल्क पेत्रकः ॥ १७४॥

शिरीपपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः ।
नस्यं सर्पिं समायोगाचातुर्थकज्वरं जयेत् ॥
नस्यं चातुर्थकं हन्ति रसो वागस्त्यपत्रजः ॥ १७४ ॥
नस्यमाह शिरीपेत्यादि—रजनीद्वयचूर्णं मर्पिश्च प्रचेष्यम् । नस्यमित्यादी
अगस्त्यपत्र वगमेनपत्रम् ॥ १७४ ॥

अष्टाङ्गधूपः

पलङ्कपा निम्यपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी। सर्पपाः सयवाः सर्पिर्धृपनं ज्वरनाशनम्॥ १७६॥ ४ पलङ्कपत्यादि—पलङ्कपा गुग्गुद्धः॥ १७६॥

श्रपराजिताधूपः । पुरच्यामवचासर्जनिम्वाकांगुरुदारुभिः । सर्वज्वरहरो घूप कार्च्योऽयमपराजितः ॥ १७७॥ पुरेखादि—पुरो गुग्गुष्ठ , घ्याम गन्धतृष्यम् ॥ १७७॥ वैडालं वा शकृद् योज्यं वेपमानस्य धूपने । श्रपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः । वद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ १७५॥

वंडालिमित्यादि स्पष्टम् । श्रपामार्गस्य जटा मूल, पृष्ठे पाद दत्त्वा वन्ध कार्य्ये इत्याहु । वन्धनविधिरायुर्वेदसारें यथा 'श्रपामार्गस्य मूलञ्च सम्यगज्ञालितानन । वर्धायाद् वामदस्तेन मर्वज्वरविमोचयाम्'॥ १७८॥ -

काकजङ्घा वला श्यामा ब्रह्मदएडी कृताञ्जलिः।
' पृश्चिपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृद्गराजोऽएमः॥
पपामन्यतमं मूलं पुष्येगोद्धत्य यत्नतः।
रक्कसूत्रेग संवेष्टथ वद्धमैकाहिकं जयेत्॥ १७६॥

काकजघेत्यादि--काकजघा स्वनामस्याता, श्यामा वृद्धदारक , ब्रह्मदयङी ब्रह्म-यधिका, कृताक्षाल लाजालिया ॥ १७६॥

मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम् ॥ १८० ॥ मूलमिलादि—जयन्त्या श्वेताया स्लाहु , भूजयन्त्या स्तन्ये ॥ १८० ॥

भूतानुवन्धिनोस्तृतीयकचातुर्थकयोश्विकित्सा कर्म साधारणं यद्यत् तृतीयकचतुर्थकौ । श्रागन्तुरनुवन्धो हि प्रायशो विषमञ्चरे ॥ १८१ ॥

भृतानुवन्धिनोस्तृतीयकचतुर्थकयोश्चिकित्मामाह कर्मेत्यादि—दैवव्यपाश्रय वालिमगलादि, युक्तिच्यपाश्रयन्न कपायादि, पतदुभयमि चिकित्सित साधारणाश्चरेन नात्रोच्यते। जह्यादिति अन्तर्भृत्तयर्थमिद तेन साधारण चिकित्सित तृतीयक-चतुर्थको कर्मरूपी जह्यादिति हापयेत् निराकुर्य्योदित्यर्थ । ननु ज्वरान्तरे सर्वत्र युक्तिव्यपाश्रय, कर्षायादिकमेवीपदिष्टम् , न दैवन्यपाश्रयम् । प्रत्र पुन किमर्थ देवन्यपाश्रयमपि कर्त्तव्यत्वेन उपदिश्येन हत्याह आगन्तुरित्यादि—आगन्तुर्भृतादि । विषमज्वर्रशंच्येन तृतीयकचतुर्थकोवेवाभिमती । तृतीयकचतुर्थकराच्येनात्र तदिपर्ययस्मापि प्रहण्यम् । अन्य तु यद्याप्यागन्तुरनुवन्धो हि हत्यादिवचनवलाद्विषम-ज्वरमात्र' एव दैवन्यपाश्रय कर्म कर्त्तन्यमित्याति तथापि तृतीयकचतुर्थकाविति यदुक्त तदिरोपार्थम् । तेन तृतीयकचतुर्थकयो प्रायेण भृतानुवन्धजन्यत्वात् तयोरेव विशेषण् देवव्यपाश्रय कर्म कर्त्तन्यमित्याहु । अन्य तु साधारण्याच्येन दोषमात्र-

माधारण युक्तिन्यपाश्रयमात्र कर्माच्यते । नह्यादित्यस्य त्यनतीत्यर्थं तेन तृतीयक-चतुर्थके युक्तिन्यपाश्रयमात्र न कार्य्यं किन्तुमयमपि कार्यन । प्वन्नागन्तुग्नुयन्थो हीत्यादि द्वितीयार्द्धमिष मगच्छत इत्याहु ॥ १८१॥

> गद्गाया उत्तरे कृते श्रपुत्रस्तापसी मृतः । नसी तिलोदकं दद्यान्मुञ्जत्येकाहिको ज्वरः ॥ एतन्मन्त्रेण चाश्वत्थपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् । सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ॥ पृजयन् प्रयतः शीद्यं मुच्यते विपमज्वरात् ॥ १८२॥

गगाया इत्यादि—एकष्ट्रज्ञाय। पुष्करिया अकाकरिते पानीय नृतनघट्या नेतन्यम्, उदिते च र्वा पालिदिने तर्पण कार्य्यम् । अत्र कुगा यवा कुनुमानि च उत्तिज्ञमापमकादिना विलिक्षेत्युपिटशन्ति वृद्धा । अन्य मन्त्रस्य केचिटाध-श्लोक पठन्ति यथा—'अगवगकलिंगेषु नंतराष्ट्रमगधेषु च । वाराणस्याञ्च यद्-वृत्त तन्न सरानि हे स्वर ।' इति । मोमित्युमया महितम् , अनु वर्रनंन्धादिभिक्ष सहितम् ॥ १८२॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपति विभुम् । स्तुवन् नामसहस्रेण ज्यरान् सर्वान् व्यपोहति ॥१८३॥ विष्णुमिलावि—नामसहस्रेण महामारताशुक्षेन ॥ १८३॥

ज्वरे घृतंत्रयोगः

ज्वराः कपायैर्वमनैर्लं हुनैर्लं घुभोजनैः।

र्क्षस्य ये न शाम्यन्ति सिपस्तेषां भिषग्जितम्।
निर्देशाहमपि कात्वा कफां त्तरमलि हितम्।
न सिपः पाययेत् प्राक्षः शमनैस्तमुपाचरेत्॥
यावस्रघुत्वादशनं दद्यानमां सरसेन तु॥ १८४॥

इदानी ध्तप्रयोगान् विवत्तु. ध्तस्य काल विषयञ्चाह ज्वरा कपायिरित्यादि — अत्र कपायिरित्यानासनिर्देशेन व्यस्तरिप कपायादित्रयोगे स्वस्य मपि पान कर्त्त-व्यमिति दर्शयित । वमनैरित्यनेन अवस्थाविभेयवयनप्रयोगान् सिर्व.पडहपूर्वमाविनो दर्शयित । लद्वनैरित्यनेन च लद्वन स्वेदन काल इत्यायुक्त्वा लद्वनममानकला स्वेदा-

दयांऽ प गृह्यन्ते । रूचस्यति वचनेन कपायादिप्रयोगे मत्यपि यद्यपि मामानुवन्धतात् कफीत्तरत्या वा यत्र रूचत्व न भवति, तत्र मिर्पनं दातव्यमिति दर्शयति । मियग-जित चिकित्मितम् । दशाहाद्द्वं हि धृतपानावस्या चरकेयोक्षा, इदानीं तदपवादमाह निर्दशाहमपीत्यादि—निर्गनो दशाहान्निर्दशाह । अलिङ्वतिमिति असञ्जानलङ्वितः फलम्, इयञ्चावस्या प्रवलसः मदोषारच्धत्वात् ज्वरस्य, तथा असम्यगुपचाराच्य भवतीति श्रेयम् । यावस्रद्वत्वादिति च्छेद । लघुत्वे तु जात कफोत्तरता अलिङ्वनता चापयाति, तेन तदा मिष् पानमनुष्ट् कर्षच्यामित्यर्थ । यावदिति यावस्रध्यत्वात् लघुत्वपर्यन्त शमनैरुपाचरेत् । लघुत्व सित सिष् पानम्, अथवा यावत् तावत् नित्ययोगित्वात् लघुत्वात् यावत्पर्यन्त शमनैरुपाचरेत् मामरसेन । अशानन्तु निर्दशाहज्वरं कफोत्तरेऽप्यलाङ्वतेऽपि मासरसेन देयमित्याद्व, अशन दचान्मात-रसेनिति । नतु किमर्थमेतादृशमशन कफविरुद्धमि कफप्रधानावस्याया दीयते १ सत्य मामरसस्य धलजनकत्वात्, अत प्रवोक्ष तत्रव 'वल ह्यल निप्रहाय दोषाया वलकुच तत् ' इति ॥१८४॥

मांसार्थमेण्लावादीन् युक्तथा द्याद्विचत्तणः।
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरि कौञ्चमेव च॥
गुरूष्णत्वात्र शंसन्ति ज्वरे केचिधिकत्सकाः।
लह्वनेनानिलवलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत्॥
भिषद्धात्राविकल्पक्षा द्यात् तानपि कालवित्॥१८॥

पर्यालावादीनित्सादिशाव्दात् कपिश्वलादीना ग्रहणम् । मात्राविकल्पण्ञ इति, विकल्पो विशिष्टकल्पना मस्कार इत्यर्थ । मात्राज्ञा विकल्पण्ञव्येत्यर्थ । तेन तावती मात्रा कर्त्तव्या, तादृश मस्कार कार्थ्य, यथा लघुत्वानुष्यत्वे भवत इत्यर्थ ॥ १८४॥

पिप्पल्याद्यं घृतम्

पिष्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कडुरोहिणी। कलिङ्गकास्तामलकी शारिवातिविषे स्थिरा॥ द्राचामलकविल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका। सिद्धमेतैर्धृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति॥

त्तयं कासं शिरःश्र्लं पार्श्वश्र्ल हलीमकम् । श्रद्धाभितापमग्निञ्च विपमं सिन्नयच्छिति ॥ पिष्पल्याद्यमिटं कापि तन्त्रे चीरेण पच्यते ॥१८०॥

नींप पानावस्था प्रतिपाद्य नपीप्याह पिप्पल्य इत्यादि-कलिङ्गका इन्द्रयव नामलको भृम्यामलको गारिवा अनन्नमूलन्, विल्व बिल्वशलाड द्राचादिफल-गृह्यते, श्रत प्रवेशक्षम् 'श्रनिविष्टप्रमाणाना लेहाना प्रस्थ इष्यते । श्रनुके काथ-माने त पात्रमेक प्रशस्यते हित । अन्य पक्तन्यष्टतस्य मानानिर्देशे अन्यवस्थित-मानमेवेच्छात पक्तव्यमिति । यत्र तु प्रस्थादिमाननिर्देश करोति, तत्र तावन्माने-नव क्रेहेन प्रायो रोगोपणमो बवतीति श्रेयम् । तथाहि वातन्याध्यादी भूरिक्रेहे माध्ये भूयमीमेव केहमात्रा वद्यति । तथा प्रपायटरीकाचनस्य योगितया केहस्य कुडवमानमेवोक्तम् । कुष्ठोक्तितिक्रयट्पलादी तु श्रत्यल्पप्रतसविधानेन तथैव पकस्य ष्ट्रनम्य कार्यकर्तृत्व मनतीति भेषजप्रमावदर्शि महर्षिवीधयति । तत्र यदि कुष्टम्य धीघरागमया भूयमा तिमापट्पलेन प्रयोजन, तदा पुन पुन- पट्पलमान एत पक्षच्य 'यथा कुर्वन्ति म उपाय' इति वचनात् । एव पानीयकल्याणागस्यहरी-नक्याठाविप प्रतिनियतमानकथनप्रयोजन वाच्यम् । तस्मान्न याद्दव्छिकमाचार्थ्यस्य क्षचिन्मानामिथानमनिभधानञ्च किचिदिति । श्रत्र किचित् पुस्तेक इलीमकिमिति पाठ किचारोचकिमिति पाठद्रयमि न प्रचेषणीयम् । यत सुश्रुते ' जीर्णज्जर-शिर ग्लगुल्मोडरहलीमकान् ' इति दृश्यते । बारमटे च 'पिप्पलीन्द्यवधावनि-तिकाशारिवामलकतामलकीमि । विल्वमुस्तिहिमापालिनिमेन्यै द्राचयातिविषया स्थिरया च । प्रतमागु निद्दन्ति साधित ज्वरमि विषम हलीमकम् । अरुचि मृगनापममये। वम् पार्श्वरुज तथा चयम् र इति दृश्यते तस्मात् पाठइयमेव युक्तम् 11 7= 5 11

यत्राधिकरणे नोक्षिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधी। तत्रेय कल्कनिय्यूद्दाविष्येते स्नेहवेदिना॥ एतद्वाक्यवलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम्॥१८७॥

श्रत्र केचित् ' कल्ककाथार्वानदेंशे गणात् तम्मात् समापवेत् ' इति सुश्रुतवच-नात् पिप्पल्यादीना कल्कत्व कपायत्वज्ञेच्छन्ति । अन्य तु कल्कत्वमेव ब्रवते । अत प्रति समयनिरासार्थं परिमापामाहः यत्रेत्यादि—श्रिपकरेणेनेत्यकिकारितया, नेन यत्रेवाचार्थ्य गण्यत्वमिष्ठत, तत्रेव विदारिगन्धादिगणादी कल्ककपायकल्पना । यत्र त्विष्ठतगण्यत्व नास्ति, तृत्र कल्ककल्पनैव । एतेन सुश्रुतोक्ता ' कल्ककाथाविनईशे ' इत्यादिका परिभाषा अधिष्टतगण्यिपयेन, न तु भेषजमम्हमात्रविषया इति ।
ननु मा भूदुभयकल्पना अनियमेन कदाचित् कल्ककल्पना कदाचित् काथकल्पना
कुतो न स्यात् १ इति चेत्रैवम्, कपायकल्पनाया द्रव्य न साचात् प्रधानमृत खेहमाधने व्यवहियते । कल्करतु माचादेव कह्मसम्बन्ध पठ्यत इति कल्कस्य प्राधान्यात्
तथा वृद्धवैद्यव्यवहाराचेत्याह एतद्वाक्यवलेनेवेत्यादि ॥१८७॥

जलसेहीपधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्र स्यादीपधात् सेहः स्नहात् तोयं चतुर्गुणम् ॥
श्रमुक्ते द्रवकार्यं तु सर्वत्र सिलं मतम् ॥ १८८ ॥
श्रमुक्ते द्रवकार्यं तु सर्वत्र सिलं मतम् ॥ १८८ ॥
श्रमुतिलगुडादींश्च नैकाहाद्वतारयेत् ।
श्रमुपितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः ॥
सहकलको यदांगुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवत् ।
बह्नो निक्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धि विनिर्दिशेत् ॥
शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा ।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमदिशेत् ॥१८६॥
अललेहेत्यादी जलशब्दो द्रवमात्रोपलचकः ॥ १८८—१८६ ॥

चीरपट्पलकं घृतम्

पञ्चकोलैः सिसन्धूत्थैः पिलकैः पयसा समम्।
सिपैः प्रस्थं श्रतं प्लीहविषमंज्वरगुल्मनुत् ॥
श्रत्र द्रवान्तरानुकते क्तिमेव चतुर्गुणम्।
द्रवान्तरेण योगे हि क्तिरं स्नेहसमं,भवेत् ॥ १६०॥

पञ्चकोलैरित्यादि — पयमा समित्यस्य समशब्दस्य तुल्यार्थतास्वींकरिख स्नेहमम चीरम्, त्रिगुण् त्र जलमशोंऽधिकारोक्तषट्पलञ्चतमंवादात् । तद्यथा 'सचारे पञ्चकोलस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदके । ममदीर वृत प्रस्थ ज्वराशे प्लोह-गुल्मनुत् ' इति । चीरदध्यारनालैस्तु पाको यत्रेरितः क्रचित् । चतुर्गुण जल तत्र वीर्याधानार्थमावयेत् 'परिभाषयमनार्षति कृत्वा कैश्चित् नाद्रियते । अन्ये तु चीरािनाधनिवयेयित्याहु । चक्रम्तु ममित्यस्य महाधेनामाश्रित्याह अत्रेन्त्यादि । एनद्यान्य द्ययान्ति यतः चुश्रुनोक्षोटरिचिकितिने ' पट्पनकेऽन्मिन् धन-प्रम्थ नुल्यचीरम् ' इति पृष्ठ्यते । चरकेऽप्तुक गुन्मे ' एतप्रस्थ विपाचेयत् चीर-प्रस्थेन ' इति । व्यवहारम्नु कवित् त्रिगुणेदिकेन कविचर्तुगुणेटकेनेति ॥१६०॥

दशम्लपद्पलकं घृतम्

्र द्रामूलीरसे सर्पिः सर्विरे पश्चकोलकै । सन्तारहिन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्द्रताः । वातिपत्तकफव्याधीन् प्लीहानञ्चापि पाग्हनाम् ॥१६१॥

दगमूलीरम इत्यादि —रम काथ जे जटमेने काथश्चतुर्गुण कारन्तु लेह-समम्। महि क व्याश्चतुर्गुण वार्रात्यादि परिमाणार्थमृजु बुद्ध्वा कीग्योगे मर्व-त्रैवमेव पाक व्याश्वष्टे। चक्रम्त्वाह यत्र काथ कीरज्ञान्ति तत्र कीरेण सह लेहा श्चतुर्गुणे द्रव कार्थ, लेहपाके चतुर्गुण प्व द्रव स्तर्गामिस् । 'लहात् तेय-चतुर्गुणम् द्रयत्र तोयस्य द्रवीपलमणत्वात्। श्रत काथाऽत्र त्रिगुण कीरज लह-मममिति। पञ्चकोलयवज्ञाराः प्रत्येक पलिका प्रवासपट्यलकमाहचर्यात् पट्-पलत्वानुपपत्तश्चेति॥ १६१॥

काथ्याचतुर्गुणं वारि पाटस्थं स्याचतुर्गुणम् । संहात् स्नहसमं कीरं करुकस्तु स्नहपाटिकः । चतुर्गुणन्त्वप्रगुणं द्रवद्वेगुण्यतो भवेत् ॥ पञ्जप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नहसंविधौ । तत्र स्नहसमान्याहुरवाक् च स्याचतुर्गुणम् ॥ १६२ ॥

दरामूर्लाकाथार्थं परिभाषामाह कांध्यादित्यादि—मेब्हमम चीरमिति यश-द्रवान्तरमन्ति तथेड केवलचारे तु चीरमेव चतुर्गुण पाकस्य चतुर्गुणद्रवेथेवोत्मर्ग-मिद्धलात् इति गयदासचकी। अन्ये तु यंभव केवल चीर तप्रव मेक्हमम चीरम्, जलन्तु चतुरुण चीरदध्यारनालिन्तित्यादिवचनादित्याहु । द्रवंद्रगुण्यता मवेदिनि यथि ' शुष्कद्रव्येष्विद मानमवमादि प्रकाधितम् । द्विगुण तद् द्रवेष्विष्ट मध-एवोद्भृतेषु च ' इति वचनात् द्रवमात्र प्रव द्वैगुण्यमायाति, तथापि झनिपण्यक-चोद्वरीष्टते पोढरापलरूपत्य द्रवप्रस्थास्य द्वैगुण्येन द्वाविंगत्यलरूपत्वे इवलेन िद्ध-यदयमाचार्थं ' विंगत्यलानि सु प्रस्थो विशेषो द्विपलाधिक ' इति करोति, तेन

द्वैगुएयाभिथायकपरिभापान्यभिचारः कचिदस्तीति द्वापयति । अतएव रिककादौ त्रिपलपर्यन्ने कुटवपूर्वमाने द्रवाद्रयाद्देगुएय न कार्यम् । यदाइ॰ गोपुररिक्त 'राक्तिकादिपु मानेषु यावन्न कुडवो भेवत् । शुष्के द्रवार्द्रयोश्वापि तुल्य मान प्रकीतितम् ' इति, तथा ' ढिगुण कुडवादी तु शुष्कान्मान द्रवस्य च । आर्द्रस्य बाल्पवीर्य्यत्वात द्वेयमन्यत्र तत्ममम् ' इति । तथा जतुकर्थेऽप्युक्तम् 'श्राद्रीणाञ्च द्रवाणाञ्च द्विगुण् कुढवादय । ' एवज्र कुढवादिमानयोग्यस्यापि यत्र पलोह्नेखेन मान तन्नापि न द्वेगुरय विधेय तेन 'राखामहस्रनिर्यूहे तैलद्रोण विपाचेयत् ' इत्या देपु पलोझेखेन जल गृद्यमाण दिगुण भवति । कचित्तु पलोझेखिनथानेऽपि तन्त्रान्तरीय-वाक्यैकवाक्यतया पलोल्लेखागतद्रवेऽपि कुटनादि विवचा कृत्वा द्वैग्रस्य विधेयम् । यथा क्तक्षिण्चिकित्नित 'मधुकाष्टकल द्रावाप्रस्थकाथ.' इत्यादिना चरके य. प्रयोग उक्त म जतुकर्षे 'द्राचाया मधुकाद्धप्रस्थकाथ ' इत्यादिना यन्थेन पठित । तेन जतुकर्ण मधुकस्यार्कप्रस्थोद्वाचपाठात् कृतद्वैगुर्यमन जलस्य भवति । तत्प्रत्यया-चेहापि मधुकाष्टपलेक्षिखविहितेऽपि काथे कुटवद्वयिवक्वया कृतद्वैगुग्यमेव जल देयम् । प्रवमन्यदनुसरणीयम् । अत्र केचित् कुडवस्यापि दैगुण्य नेच्छन्ति, यदि हि हिगुण कुटन, स्यात् ,तटा काथ्याचतुर्गुणमित्यादि, कल्कश्च सिहपादिक इति , परिभाषा सर्वतन्त्रानिद्धा वाधिता स्यादिति । यत सुश्रुते ' स्नेह्कुडवे साध्ये भेषज-पल कल्कामिष्टम् ' इत्युक्तम् , तथा च कृष्णात्रेथेणाप्युक्त ' स्नेहपाकविधी यत्र प्रमाण नेदित कवित्। केहस्य कुडव तत्र पचेत् कल्कपलेन तु ' इति अत्र हि यदि कुडवश्चतुःपलरूप. स्यात्, तदैव करकपलस्य स्नेदपादिकत्व घटते । श्रष्टपल-रूपत्वे कल्कपलस्य स्नेहापेच्या अष्टमागत्वमेव स्यादिति । एतच नातिसाधु, यतः सुश्रुत एव " क्रिह्कुडवे माध्ये काध्यद्रव्यप्रस्था विधेय ' इत्युक्तम् तत्र कुडवे-नैव यदि रनेहपतचतुष्ट्य गृह्यते तदा चतुःपलस्नेहे पोडशपलकाथ्यमहण स्यात् । न च तथा व्यवहरति काथ्यपाडशापल हि अष्टपल एव स्नेहे गृह्यते, तस्मादसाधक-मेतत् कुडवाद् द्वैगुरुयस्येति द्वैगुरु कुडवे युक्तम् । श्रगस्यहरीतक्या मधुनः कुडव यच्चरकेयोक तन्त्रान्तरे 'मधुनक्ष पलाष्टकम् ' इति पट्यत्, तथा तन्त्रा-न्तर ' त्रायमाणाचतु पल पक्ता दशकेऽम्मसि रेशिषते । कुढवे कुढवान् सिपः चीरभात्रीरमान् पेचेत् रस्युक्तम् । तत्र यदि चतु पल कुडव स्यात् तदा चरकोकत्रायमाणाष्ट्रतेन सह विरोध स्यात्। तथाहि ' जले दशगुणे साध्य त्राय-माणाचतु.पलम् ' इत्यादि यावत् ' रसस्यामलकानान्तु चीरस्य च धृतस्य च । पलानि पृथगष्टाष्टी दत्वा सम्यग्विपाचयेत्। 'तथान्यत्राप्युक्तम् । ' त्रार्द्रद्व्य- द्रवद्रन्यपैलरप्टाभिरेव च । शुष्कद्रम्यचतुष्केख कुढव समुदाहृत ' इति । तम्मात् कुढवे द्रिगुयय साधु, यत् तु अप्टपलेऽि केहि कल्कस्य पलमानत्वम् , _ तत् स्वरससाध्यरनेहाभिप्रायेण पुष्पकल्काभिप्रायेण वा श्वम् । यद्दक ' रनेहे मिध्यति शुद्धाम्बुनि काथस्वरसे कमात् । कल्कम्य योजयेदश चतुर्थ पप्रमप्टमम ' तथा ' शणस्य कोविदारस्य कर्नुदारस्य शाल्मेल । कल्काढ्यत्वात् पुष्पकल्क प्रशसन्ति चतु पलम् ' इति । अत्र रनेहप्रस्थापेष्मया चतु पल कल्क रनेहादप्टमम्माग एव भवतीत्यादि विशेषवचनेन कल्कम्य रनेहपादिक इति सामान्यवचनस्य वाधा वविचिद्दिपयविरोपे भवतोह न विरोधमावहतीति अलमितप्रश्चेन मर्वथा वृद्ध-व्यवहारानुमतमेव वर्त्यानुमरणीयमस्माभिरिति सक्षेष । विस्तर पुनरस्मदीयचरक-तत्वप्रदीपिकायामेव गवेषणीय इति ॥ १६२ ॥

वासाद्यं घृतम्-

वासां गुडूचीं त्रिफतां त्रायमाणां यवासकम्।

पक्तवा तेन कपायेण पयसा द्विगुणेन च ॥

पिप्पतीमूलमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः।

करकीकृतश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम्॥ १६३॥

पञ्चप्रमृतीत्यादिपरिमापार्थं पुनर्वासाषद्यत्याख्यावसर एव व्यक्तीकरिष्यामः।
वासामित्यादि—यवासक दुरालमा। अत्र चकारादासादिकाथोऽि द्याद् द्विगुण इत्याद्व , युक्तञ्चेतत् , यत केहपाके चतुर्गुणमेव द्रवमुत्सर्गसिद्धम् ' केहात् तोय चतुर्गुणम् ' हित वचनात्। तोयराव्दोऽिप तत्र द्रवमात्रोपलद्यक हित । अत्र दं। स्था-मिप चातुर्गुण्यमित्यादि परिमापयेव चीरकपाययो प्रत्येक देगुण्ये सिद्धे चकारोऽय काथचातुर्गुण्यार्थे हित केचित् । अत्ये तु परिमापावलात् यथि चीर कपायश्च दिगुण एव लभ्यते, तथापि स्पष्टार्थं चीरदेगुण्यामिथानमित्याद्व , तत्र, चीरस्य हि मानानुक्तौ ' काव्याचतुर्गुण्य वारि पादस्य स्याचतुर्गुण्यम् । केहात् केहसम चीर कल्कस्तु केहपादिक ' हित वचनात् चीरस्य द्रवान्तरसान्निथ्ये सित केहसमत्वमेव स्यात् । तत कपायमागत्रय चीरमागश्चेक हित कृत्वा द्वाभ्यामिष चातुर्गुण्यमिति परिमापाथोऽप्यनुगृहीतो भवति । तस्मात् कर्त्तव्यं चीरदेगुण्याभिधानम् । अन्ये तु द्वाभ्यामिप चातुर्गुण्यभित्वि परिमापायां प्रत्येकमेव द्वेण चातुर्गुण्यभिच्छन्ति । तश्चह कपायस्य चातुर्गुण्य चीरस्य देगुण्यमेव ' प्यसा दिगुण्य च ' हित

वचनाठ् तत्र एकेनापि चातुर्गुण्य, द्वाम्यामपि चातुर्गुण्य, त्रिमिरपि चातुर्गु-ययम् . चतुभि ममिति वचनेन चतुभि ख्रहममताभिधानेन ख्रहाचातुर्गु-एयमेव द्रवस्ये।क्षम् । श्रतो द्वाम्या त्रिभिरपि तथा चातुर्ग्रएय कार्य्यम् । यथा केहचातुगुंख्य स्यात् तथा च मिलित्वैव चातुर्गुख्य सिध्यति, न प्रत्येकमित्यर्थ किञ्च यदि प्रत्येक चातुर्गुरुय विविचत स्यात् तदा इयोस्त्रयाणा चातुर्गुरयमिति कुर्यात् । तृतीयानिदेशेन हि साहित्य स्चयता मिलितयोरेव चात्रशंख्य प्रतीयत इति । अत एवैतत्परिमाषास्वरमात् " पञ्चप्रमृति यत्र स्युदंवाणि लेहसविधै। तत्र केह्समान्याहुरवांक्तस्माचतुर्गुयम् " इति मिलित्वैव चातुर्गुययम् । श्रन्यथा पतद्वनयोविरोधो दुष्पिरहर स्यात्। अन्ये तु अर्वाक् स्याच चतुर्गुणम् इति प्रत्येकमेन चातुर्ग्रयम् । अन्यथा यत्र यत्र क्षहपाके चत्वारि द्रवाणि सन्ति तत्र यदि द्रवचतुष्टयस्य मिलित्वा वातुर्ग्रयय स्यात् तदा सेहममान्याहुरताव्रतापि द्रव-चतुष्टयस्य मिलित्वा चातुगुंख्ये निद्धे, अर्वाक् स्यात् तु चतुगुंखमिति वचन ताव-देकदित्रद्रविषये चरितार्थमेव । यत्र वा द्रवचतुष्टयविषये अचरितार्थमित्युच्यते तावतापि न वन्तुचति । यस्प्रोदेकेनापि चातुर्गुण्यमित्यादि चतुर्मि सममित्य-न्तया परिभाषया द्रवचतुष्टयविषये ठावन्मिलित्वा चातुर्गुण्य सिद्धमेव । तदिदानी प्रत्येक लेहसमत्वेन साध्यताम् , अर्वाक् स्यात्त चतुर्गुणिमिति वचनेन साध्यता-मिति । अन्य पुनरनयैवानुपपस्या चतु प्रसृतीनि पठन्ति । श्रीकरठोऽपि गुल्मा-धिकारे परिमानायामस्या चतुःप्रसृतीति पाठमेव स्वीकृतवान् ॥ १६३ ॥

गुडूच्यादिघृतानि—

गुद्धच्याः काथकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्धीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नहा ज्वरिच्छदः ॥१६४॥
गुड्च्या इत्यादि—वाग्मटस्य । गुड्च्यादीना पद्माना १थक् २ काथकल्काभ्या सिद्धानि पञ्चछतानि वोध्यानि ॥ १६४॥

्र ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पित्तीरं विरेचनम् । षडहे षडहे देयं कालं वोत्त्यामयस्य च ॥ १६४ ॥

श्रत्र पेयादिक यदिहोक तद्याध्यवाच्छित्रकालाविशेषापेच्यामिति प्रतिपादयन् चीरादिकमिमधातु पीठिका रचयित च्वरे पेवा इत्यादि—श्रत्र पेयाकषाय-सपि.चीरविरेचनानामुत्सर्गाविधया ज्वराहादारस्य षडहे यथाक्रम देयत्वमुच्यते । तेन " वीमत लिक्कत काले यवागृमिरुपाचरेत् " इत्यादि विशेषवचनात् लिक्कतादे पछहातिकामेऽपि यत् पेयादिदानगुक तम विरोधमाबद्दति, मामान्यविषे विशेष-विधिना वाधनस्य मधेप्रेयानुमतत्यात् । ननु पेयादिप्रयोगे " गावक्करमृ-दुभावात् पष्टइ वा विनव्यक्ष " रत्यातिना पष्टइ यावत् वनागृर्देवेति चर्किणीतः. तथा श्रत्रापि पट्टे पेयादानगुरूम् तार्य पट्ट कि व्वरीस्पादिक गृहीस्था भवत सद्भविषयदिन हित्वा या १ नाच धनशनस्यमगनवैयर्थात् । सपन ह्माध प्रवीपक्रम । यद्ताः " उत्ररे लपनमेवारी " इति । नापि दिताय . "ज्वरित पहारेऽनीते लहाराप्रतिभौतिन" ज्वरदिनादारभ्याष्ट्रमे पानन शमनीय वा पायवेदित्यतात्वात ज्वरदिनज कोर्ए।क्लेवाष्टादः, यद्गाः " भ्रष्टादी निरामञ्बर-लक्षणन् " इति । भगातु ज्वरोत्पादिन गृदीरीवाष्टाह, प्रत्येतन्य । " यान-क्वरमृद्रमायात् पटइ या विनक्त्यः " इत्येननापि ज्यरोत्पाददिनमारम्यव पटइ-पर्यक्त पेयाप्रयोग उत्पति । पेया हि ज्वेर प्राधान्येन द्वापपाचनार्थ कियेन यहक " लहन न्येदन काली यवाग्यस्थिककी रस. । पाचनान्यविषयानी दीयाणा तरुण ज्वरे " इति। न तु यस्मिन् पटेह पेया, तिस्मियन पटेह लट्टनाडिकमपीनि । लद्वनादिभिनिरवकाशनया पेयापटारस्य निविषयत्विभिति वाच्यम् . तस्य वातः वर्गः विषयत्वाद । वातज्वरी कलद्वनीय । यद्यक " यहें। ज्वराय श्रवानिमभवक्रीध-कामशोकअमोद्भवाद " इति । तेनालह्नाथे बातज्वरे पेया ममग्रेमव यटक च्या-प्नोति । एकादेशिदिन लद्धिते पेया च दोषपाननार्थं कियते । कियनेऽपि जनेर पञ्चचतुर्तिहिन यावत् पेयादिकंमेनेति स्रते। निर्निषयावम् पेयापष्टरस्य ! यत्र त दोपाखामतिमामतवा सन्निपानज्वरे वा लपनमेव पद्मायानिक्रवेखापि क्रिवेत. तत्र प्रादेशिके विभी पेयाया पद्मत्रनियम श्रीतमर्गिक प्रवस्ते। ननु पेया दे।पपाननांप कियते, तिर श्रतिलामिते पया कथ कियते ? लघनेनैव दे।पपाकिमदस्थात । नेपम् श्रतिलिधिते पेया न दोषपाचनार्थं कियते, कि तीं क्षूपामदीयाधिमन्भसत्वाय । तवाग्निमन्धर्चणे जाते पुनरीपधपानमेव भवति । ज्यरे पेया कपायाक्षस्यादावीप ममानकार्य्याणा लपनादीनामुपलचणभूता पेया । यत पेया यत्र प्रतिपदा मचेरि ज्वरादी तर्वणक्रमेखापि पटहो माह्य । तम प्रथमपटेह उत्नगितनघनादि पाचन कार्य्यमिति पेया पटदे हेथेति वचनेनी ध्यने, कपायपटहो इपि ज्यरोश्यादाष्ट् मप्तमिटिन परित्यज्याष्टमाएमारभ्येव देया । मप्तमे ज्वरम्य तरुखत्वेन कपायपाननिषेधात, यत् तु हारीते लघनो प्लोदकमुन्तादिषटगमृतनल-पानीयपानपेयाविधानान्तरमुक्तन् " ण्ता कियां प्रयुक्षीन पट्राम सप्तेमेडएनि । पिनेत् कपायसयोगान् ज्वरङ्गान् माधुमाधितान् " इति, मथा रारनादेनाधि

" लिषतालिषत तस्माद् विमत वा ज्वरादितम् । तस्मात्म्यत्वादतस्ताभिरादो ज्वरमुपाचरेत्' इति यवागूभियंथादोषिमत्यादि तर्पणादिक्रममिभायोक्षम्
'इति याड्राश्रिक प्रोक्तां नवज्वरिहतां विधि.। तत पर पाचनीय शमन वा ज्वरे
हितम्' इति, तदिष प्रागुक्तरीत्या श्रष्टाहः एव कषायपानिवधायक्रमिति प्रागेव
प्रतिपादितम्। वस्तुतस्तु मप्तमाष्टमाहकयायपानिवधायकाना रचनानामदूरान्तरत्वात् एव न परस्परिवरोध इत्युक्तम्। एतन्मतेऽप्यनुद्भृतसामतायां सप्तमदिन एव
कषायपानम्। उद्भृतसामतायान्तु श्रष्टमेऽहानि इति व्यवस्था। तैनैतिसिन् व्याख्याने
हारीतखरनादवचन यथाश्रतमेव सङ्गच्छते। तथा ज्वरे पेया कषायाश्रेत्यादिनापि
पेयाषडहानन्तरमेव सप्तमं दिने यत् कषायपानमुक्त तदप्यनुद्भृतसामतामिप्रायेखिति
न विरोधमावहति। काल वीच्यामयस्य चेति ज्वरलच्चरास्यामयस्यावस्थास्य काल
वीच्य षडहे यथाक्रम पेयादि देयिमत्यर्थः॥ १६४॥

जीर्गज्वरे कफे चींगे चीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुशे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ १८६॥

कीरपानावस्थामाह जीर्थं ज्वेरे इत्यादि — कफे चीण इति, कफचयात् वातिपित्तोत्तरताया चीरममृतायत इत्यर्थ । यदुक 'दाहतृष्णापरीतस्य वातिपित्तीत्तर ज्वरम् । वन्धप्रच्युनदोष वा निराम पयमा जयेत् '' इति ॥ १६६॥

कासाच्छ्वासात् शिर ग्रलात् पार्श्वग्रलात् सपीनसात् । मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीश्वतं पयः ॥ १६७ ॥

कासादित्यादि-पञ्चमूली खल्पा वातिपत्तहन्तृत्वात् ॥ १६७॥

द्रव्याद्ष्युणं ज्ञीरं ज्ञीरात् तोयं चतुर्गुणम् । ज्ञीरावशेष कर्त्तव्यः ज्ञीरपाके त्वयं विधिः॥ १६८॥ 🚩

त्रिकएटकवलाव्याघ्रगुडनागरसाधितम्। वर्चोमूत्रविवन्धप्नं शोथज्वरहरं पयः॥ १६६॥

चीरसाधनपरिभाषामाह द्रव्यादित्यादि—त्रिकरटकेत्यादौ गुह, प्रचेप्य , गुह्रपाकस्य निष्प्रयोजनत्वादित्याहु ॥ १६८ ॥ १६६ ॥

वृश्चीरविल्ववर्षाभूपयश्चोदकमेव च। पचेत् दीरावशिष्टन्तु तद्धि सर्वज्वरापहम्॥ २००॥ प वृक्षीरेत्याटि-वृक्षीर श्रेनपुनर्नवा, वषाभू रक्षपुनर्नवेति । अत्रीटकर्नी-रीषधाना पूर्ववदेव मानम् ॥ २०० ॥

शीतं वेष्णं स्वरे स्वरं यथासैरोपधैर्युनम् ॥ २०१ ॥ गीन वेसाडि—विकल्प इच्छाविशेषकृत , किंवा बांत उप्ण, पित्ते शीन-निति ॥ २०१ ॥

परएडमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्त्तिके ॥ २०२ ॥

परएडेत्यादि—इन्न दिन्दफर्नामेड दुग्धमिप दोध्य चरकोक्तलात् । उदे
कत्तनवत् पोडा परिकर्तिका ॥ २०२ ॥

ज्विरिभ्यो वहुरोपेभ्य ऊर्घ्वञ्चाघश्च वुद्धिमान् । रद्यात् संशोधनं कालं कल्पे यदुपरेक्यते ॥ २०३ ॥

मरोधिनावस्थामाह ज्वरिन्य इत्याहि—बहुदोषेन्य इति अल्पेटोषेषु मरोधिननिषेधार्थमुक्तम् । काल इति यथोक्तवमनिष्येचनयोग्यज्वरान्धायान् । कृत्य इति कृत्यम्थाने अन्ये यदुपटेस्यते तदेयन् ॥ २०३॥

मद्नं पिष्पलीभिर्वा कलिहैर्मधुकेन वा । युक्तमुष्णाम्बुना पीतं वमनं व्वरशान्तये ॥ २०४॥

वननयोगत्रयमाह मटनित्याटि—मटन पिष्पनीयुक्त करे । क्रिनिङ्ग इन्द्रयव. तत्र्युक पित्तकरे, यष्टिमधुयुक्तन्तु टाह्माय इत्याहु ॥ २०४॥

श्रारग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा । त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिवेत् ॥ २०४॥ चतुरो विरेचनयोगानाइ त्रारम्बधितलाहि—अत्र चरके बाग्मटे च त्रिवृतासले त्रिफलापाठो इञ्चते, दीकाकारिस त्रिफलैव व्याख्यायते ॥ २०४॥

ज्वरक्षीण्स्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामन्तु पयसा तस्य निरूहेर्वा हरेन्मलान् ॥
प्रयोजयेज्ञ्वरहरान् निरूहान् सानुवासनान् ।
प्रकाशयगते दोपे वच्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥ २०६ ॥
चर्जाण्येलादि—सप्त्र । निद्धिषु निद्धियानोकाष्यापेषु ॥ २०६ ॥
गौरवे शिरसः ग्रले विवद्धेप्विन्द्रियेषु च ।
जीर्णेज्यरे रुचिकरं द्याच्छीर्पविरेचनम् ॥ २०७ ॥

नसावसामाह गौरव इलादि—विवद्धेष्विति स्वविषयग्रहणासमर्थेषु ॥२००॥ श्रभ्यद्गांश्च प्रदेहांश्च सस्त्रेहान् सानुवासनान् । विभन्य शितोष्णकृतान् दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥ तैराशु प्रशमं याति वहिर्मार्गगतो ज्वरः । लभनते सुखमङ्गानि वलं वर्णश्च वर्द्धते ॥ २०८॥

जीर्णजनरेऽम्यद्गादीनाइ अभ्यद्गानित्यादि—विमज्येति शीतोष्णसमुत्यज्वर-विभागेनेत्यर्थ । तेन उष्णोत्थे जीर्णज्वरे शीतद्रव्यक्तता प्रदेहादय शीतोत्थे तु उप्णद्रव्यकृता देया इत्यर्थ.। विद्मीर्गस्त्वगादि । उक्त हि "शाखा रक्तादयो धातव-स्त्वक् च बाह्यो रोगमार्ग " इति ॥ २०८॥

षद्कद्वरतैलम्

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वा-लाचानिशालोहितयष्टिकाभिः । तैलं ज्वरे षड्गुणकट्वसिद्ध-

मभ्यञ्जनाच्छीतिवदाहनुत् स्यात् ॥ द्रघः ससारकस्यात तक्रं कट्वरिमण्यते । घृतवत् तैलपाकोऽपि तैले फेनोऽधिकः परः ॥ २०६॥

सुनिक्तित्यादि — सुविक्ति सर्जिकाचार , लोहितयष्टिका मिलिष्ठा, सुश्रुत-षृद्धवाग्भटादिवहुतरतन्त्रमवादात् । अन्ये तु लोहितं चन्दनम्, यष्टिका मिलिष्ठा विदेहसवादादित्याहु । व्यवहारस्तु पूर्वव्याख्ययैव । शीतविदाहहन्तृत्वञ्च योगस्य अचिन्त्यशिक्तत्वात् । तैलपाके विशेष स्मारयित धतवदित्यादि ॥ २०६ ॥

श्रङ्गारकं तैलम्

मूर्वा लाक्ता हरिद्रे द्वे मिश्रिष्ठा सेन्द्रवारुणी।

बृहती सेन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी॥

श्रारनालाढकेनैव तेलप्रस्थं विपाचयेत्।

तेलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरिवमोक्त्रणम्॥ २१०॥

मूर्वेत्यादि—इन्द्रवारुणी गोरक्षकंटी, अद्वारको मङ्गल , तत्कृतलादद्वारक-स्था॥ २१०॥

शाचादितैलम्

लाज्ञाहरिद्रामिञ्चछाकलैक्तैलं विपाचयेत्।
पङ्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम्॥ २११॥
लाज्ञादितेल स्पष्टम्—अन्नापि दाहशीतहरत्व प्रमावाद् ॥ २११॥
यवचूर्णार्द्वकुडवं मञ्जिष्ठार्द्वपलेन तु।
तैलप्रस्थः शतगुणे काञ्जिके साधितो जयेत्॥
ज्वरं दाहं महावेगमङ्गानाञ्च प्रहर्पनुत्॥ २१२॥
यवेत्यादि—मञ्जिष्ठा भ्रदंपलेनेत्यत्र दिपलेनेति न पाठ सुभुतचन्द्रायदां
भ्रदंपलेनेति पाठात्॥ २१२॥

सर्जकाक्षिकसंसिद्धं तैलं शीताम्बुमर्दितम् । ज्वरदाहापदं लेपात् सद्यो घातास्रदाहनुत् ॥ २१३ ॥ प्रदेहमाह सर्जं इत्यादि—सर्जो धूनक करूक , काजिक चतुर्श्यम्, निद्ध पक्षम् । तत शाताम्बुमदित शातलजलेन तैल मम्मधं गाढाभ्यद्व कार्यः ॥२१३॥

चन्दनाद्यमगुर्वाद्यं तैलं चरककीि तम् ।
तथा नारायणं तैलं अणिज्वरहरं परम् ॥ २१४ ॥
नारायणंतेल नातव्याधी वस्यमाणम् ॥ २१४ ॥
श्रिमघातज्वरो न स्थात् पानाभ्यद्गेन सर्पिपः ।
स्रतानां व्रिणतानाञ्च स्तव्याचिकित्सया ॥ २१४ ॥
श्रिमघोतत्यादि—न स्यात् न गनेत् शाम्यतीत्यर्थं । स्तनामित्युर स्ताः
नाम् । श्रवापि करो न स्यादिति योज्यम् ॥ २१४ ॥

श्रागन्तुज्यरिचाकेत्सा

श्रोपिधगन्धविषजौ विपपीतप्रवाधनुम् । जयेत् कपायैमीतमान् सर्वगन्धकृतैस्तथा॥ २१६॥ श्रीपर्धात्यादि—सुश्रुतस्य । प्रवाधन चिकित्मितम् । विषपीतप्रवाधनैरिति पाठे, विषपीतस्य यानि चिकित्सितानि तैरित्वर्थः । सर्वगन्धकृतैरिति सर्वगन्धः सीश्रुत एलादिगणः, स एवात्र विषद्दरलादुचिनः, न तुः " चातुर्जातककर्ष्द्रकृष्टो- लागुरुशिल्हकम् । लवद्गमिहतक्रैव मर्वगन्थ विनिदिशेत् " इति निर्धस्टकारोक्तो श्राह्म । तस्योद्धर्त्तनादिमात्रविषयत्वात् ॥ २१६ ॥ ^{२ १}

श्रमिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत्। दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातप्रहपीडजौ ॥२१७॥

श्रमिचरित्यादि - सुश्रतत्य । श्रमिचारोऽथर्ववेदोकः श्येनादियाग । श्रमि-शापा गुर्वोदीनामनिष्टाभिशसनम् । होमादिनेत्यादिशब्दात् प्रायश्चित्तवलिमङ्गलादयो गृह्यन्ते । उत्पातो निर्धातादिः । यहपीदाजमिति यहपीडाजन्यम् " डयापी-सज्ञाच्छन्द्रमोर्वेद्वलम् " इति पाँडाशब्दस्याकारस्य इस्वत्वम् । मुश्रुते तु " उत्पात-ब्रह्मीडितम् '' इति पाठा दृश्यते ॥ २१७ ॥

क्रोधकामादिज्वरचिकित्सा

क्रोधजे पित्तजित् काम्या अर्थाः सद्वाक्यमेव च। श्राश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च॥ हर्षेणैश्च शमं यान्ति कामकोधभयज्वराः। कामात् कोधज्वरो नाशं कोधात् कामसमुद्भवः॥ याति ताभ्यामुभाभ्याश्च भयशोकसमुद्भवः॥ २१८॥

क्रोधज इत्यादि - अत्र चरक " काम्यैरथैर्मनोशैश्व पित्तवैश्वाप्युपक्रमे । सद्भावयेश्व शम याति ज्वर कामसमुद्भव " इति । श्राश्वासेनेत्यदि—चरकस्य स्पष्टम् । कामादिजन्यान् ज्वरान् कामादयः, परस्पर नाशयन्तीत्याह कामादि-स्यादि चरकस्य ॥ २१८ ॥

भूतज्वराचिकित्सा / भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्वन्घावेशनताडुनैः ।

जयेद् भूताभिषङ्गोत्थं मनःशान्तैश्च मानसम् ॥ २१६॥

भूतविचेत्यादि - सुश्रुतस्य । भूताना यसराचसादीना ज्ञानार्था प्रशमनार्था च विद्या, सा च सुश्रुतोत्तरतन्त्रादावनुमरणीया । बन्धावेशनताडनैरिति श्रनुप्रविष्टस्य भृतस्य पुनरपसरता मन्त्रेण मयमने वन्ध । मन्त्रेणाकृष्य मस्तके निवेशनमावेशनम् । ताडन मन्त्रे सर्पपादिामराभइननम् । ताडनैरित्यत्र पूजनैरित्येव पाठः मुश्रुते दृश्यते । टीकाइतोऽपि पूजनै. बल्युपहारस्तुत्यादिगिरिति व्याख्यानयन्ति । भूता- भिषयोत्थिमिति, भूताभिनम्बन्धेत्थम् । मानम कामकोधाविजम् । मन शान्तैरिति मन प्रमार्वन । मन शार्न्तरित्यत्र विज्ञानांधीरत्यपि पाठ सुश्रुते दृण्यते । टीका-कृतोऽप्यादिशन्त्रात् समाधिधैर्योदीना ग्रह्णिमिति न्यानकते ॥ २१६ ॥

वर्जनीयविधिः

्रियायामञ्च व्यवायञ्च स्नानं चेक्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावश्चो वलवान् सवेत् ॥ २२० ॥ ज्वरमुक्तेन यत्र नेव्य तदाइ न्यायामश्चेत्यादि—स्नानम्नंस्करमपि ज्वर प्रत्यानयति, नदुक्त " क्षानमाशु ज्वर कुर्यात् ज्वरमुक्तस्य देहिन । तस्मान्मुक्त ज्वर क्षान विषवत् परिवर्जयत् " हति ॥ २२० ॥

ज्वरमुक्तिलच्चग्रम्

देही लघुर्व्यपगतक्कममोहतापः ।
पाको मुखे करणसाष्ट्रवमन्यथत्वम् ।
स्वेदः स्वः प्रकृतिगामिमनोऽम्नालप्ता
कण्डस्य मूर्धिन विगतज्वरत्वस्णानि ॥ २२१ ॥
इति ज्वरिविकत्ता।

क्नरमुक्तिलक्षणमाह देह इत्यादि—वाग्भटस्य । मुख यव पाकी व्याधि-प्रभावाद । एवं कण्डूझ मूर्जीत्यपि ॥ २०० ॥ इति स्वरचिकित्साविवृति ।

अथ ज्वरातिसारचिकित्सा।

ज्वरातिसारे पेयादिकर्मः स्याल्लाङ्किते हितः ॥ १ ॥ उत्पत्तपट्कम्

ज्वरातिसारी पेयां वा पिवेत् साम्लां शृतां नरः। पृश्चिपणीवलाविल्वनागरोत्पलधान्यकैः॥२॥ > ज्वरे सत्युपद्रवत्वेनातीसारस्य सम्भवात् ज्वरानन्तर ज्वरातीसार उच्यते । ज्वरातीसारमेलकश्च ज्वरातीसाराभ्यामन्योन्यस्य इति कृत्वा निदानसग्रहे माधवेन न पिठत । अत प्रवेक्त सिद्धसोर भू ज्वरातिसारयोग्नत निदान यत् पृथक् पृथक् । तत् स्याज्ज्वरा।तिसारस्य तेन नात्रोदित पुन "इति । ननु एव चिकित्सापि भावष्यतीति चेत् १ नैवम् मिथोवर्द्धनात् । उक्त हि, ' ज्वरातीसारयोग्नक भेषज यत् पृथक् पृथक् । न सन्मिलितयो कार्य्यमन्योन्य वर्द्धयेद् यत ॥ प्रायेण हि ज्वरहरमीयधमनुलोमनम्, अतिसारहर्ण्च स्तम्भनमिति परस्पर्विगद्धन्त्वाद् मिलितयानं कार्य्यमित्यर्थः । पेया वेति वाशब्दश्चरके यवाग्वन्तरापेच्या । कि वा साम्लामित्यस्यानन्तर वाशब्दो योज्य । तेनानम्लामपीत्यर्थं फलित । साम्लामिति ईषदम्लाम् । अम्लत्वण्च दाडिभरसादिना । पतच्चाम्लसात्म्य प्रति श्चम् । पृश्चिपणीत्यादि—सुश्रुते त्वस्मिन् योगे वालकमिप पृरयते, यथा पृश्चिपणीवलाविश्वधान्यकोत्पलवालक । सनागरै पिवेत् पेयां साधितामदरामयी "॥ १ । २॥

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकासृताः । जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषघाः ॥ ३॥ पाठत्यादि प्रयोगः काथेन ॥ ३॥

नागरादिः

नागरातिविषामुस्तभूनिम्वामृतवत्सकैः । सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ४॥ नागरेत्यादि—वत्सक इद्रयवः, सिद्धमारे " विक्राम्निम्बशुष्ट्यन्दकिः । । ।।

हीवेरादिः

हीवेरातिविषामुस्तिविल्वधान्यकनागरैः।
पिवेत् पिच्छाविबन्धः ग्रूलदोषामपाचनम्॥
सरक्रं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्॥ ४॥
होनेरादिनांतरुष्मणीति वृद्धाः। योगोऽयमवनारणयापि । विल्वशुपठक
साम्मकलात्, यव वन्त्यमाणेषु ॥ ४॥

गुडूच्यादिः

गुड्ड्च्यतिविपाधान्यशुएठीवित्वाव्यवालकैः ।
पाठाभूनिम्वकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥
कपायः शीतलः पेयो ज्वरातिसारशान्तये ।
इक्कासारोचकच्छाटिपिपासादाहनाशनः ॥ ६ ॥
गुड्ड्चादी कुटवेन तत्फल लबुलात् पाचनलाच । श्रय ये। पित्तकेष्मणीन

उशीरादिः

उशीरं वालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम् । समद्गा धातकी लोधं विल्वं दीपनपाचनम् ॥ हन्त्यरोचकपिच्छामं विवन्धं सातिवेदनम् । सशोखितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ७ ॥ दशीरेलादि—व्यपि नमद्गाराब्देन मिजडाप्युच्यते, तथापि वराहकान्तयैव । व्यवहरित वृद्धाः ॥ ७ ॥

पञ्चमूल्यादिः

पश्चमूलीवलाविल्वगुडूचीमुस्तनागरैः।
पाठाभूनिम्बद्घविरकुटजत्वक्फलैः श्टतम्॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोपं वीमः तथा।
सम्मूलोपद्वं श्वासं कासं हन्यात् सुदारुणम्॥ =॥
्पश्चमूलादौ यद्यीप " पश्चम्लीति नामान्याद् योज्या पिते कनीयनी ।
महती पश्चम्लीति वातरेष्माधिके तथा)" इति वृन्देनोक्षम्, तथापि स्वल्पपञ्चमूल्वंव व्यवहरन्ति वृद्या ॥ =॥

किक्कातिविपाश्चग्रदीकिराताम्ब्रुयवासकम् । ज्वरातीसारसन्तापं नाश्चयद्विकल्पतः ॥ ६ ॥ वत्सकस्य फलं दारु रोहिशी गजपिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिप्पली घान्यं विल्वं पाठा यमानिका ॥ डावप्येतौ सिद्धयोगौ स्ठोकार्घेनाभिभापितौ । ज्वरातिसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनै ॥ १० ॥

नागरामृतभूनिम्ववित्ववालकवत्सकैः। समुस्तातिविषोशीरैर्ज्वरातीसारहज्जलम् ॥ ११ ॥ मुस्तकविल्वातिविषापाठाभूनिम्ववत्सकैः काथ । मकरन्दगर्भयुक्षो ज्वरातीसारौ जयेद् घोरौ ॥ १२॥ घनजलपाठातिविषापथ्योत्पलघान्यरोहिर्णाविश्वैः। सेन्द्रयवैः कृतमम्भः सातीसारं ज्वरं जयति ॥ १३ ॥ कलिक्केत्यादि यमानिकान्त योगत्रय पित्तोत्तरे इत्याहु । नागरामृतभूनिम्बे-

त्यादि जयतीत्यन्त स्पष्टम् ॥ ६ — १३॥

कालिङ्गाद्यगुडिका

कलिङ्गबिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम्। लाचाहरिद्रे हीवेर कट्फलं शुकनासिकाम्। लोधं मोचरसं शङ्खं घातर्की वटशुङ्गकम्। पिष्ट्वा तग्इलतोयेन वटकानचसम्मितान्। क्रायाग्रुष्कान् पिवेच्छीद्यं ज्वरातीसारशान्तये । रक्षप्रसादनाश्चेते ग्रुलातीसारनाशनाः ॥ १४ ॥

क्लिंगेत्यादौ हारीतचन्द्राटसवादात् क्लिंगस्थाने कट्वङ्ग पठन्ति. कट्वद्गश्च श्योणाक, जम्ब्बान्नफलयारस्थि बाह्यम् । हरिद्रे इति हरिद्राह्यम् । तर्यं लोदकञ्च " जलमप्रगुण दत्त्वा पल करिंडततर्यं लात् । भावियत्वा तती ब्राह्म तरुडुलोदककर्मिथा " इत्यनेन ब्राह्मम् । शुकनासिका चर्मकारवटक ॥१४॥

उत्पत्तं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च। पिवेत् तराइलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम्॥ १४॥

उत्पलित्यादौ-दाडिमफलस्य त्वक्ं, "फल स्याद्दाडिमादीनाम् " इति वचनात्। एवमन्यत्रापि वोध्यम्। श्रन्ये वृद्धत्वचमातु । पद्मस्य केशर् किञ्जल्कम्। सरके पित्रोत्तरे योगोऽयमित्याङ्क ॥ १५॥

व्योषाद्य**चूर्णम्**

व्योषं वत्सकबीजञ्ज निम्बभूनिम्यमार्कवम्। चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समाम्॥ श्रुच्णुचूर्णीकृतान् सर्वोस्तजुल्यां वत्सकत्वचाम् । सर्वमेकत्र संयोज्य प्रियेत् तगृहलाम्बुना ॥ सत्तौद्रं वा लिहेदेतत् पाचनं प्राहि भेपजम् । पृष्णाविष्यशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ कामलां प्रहणीदोपान् गुल्मं सीहानमेव च । प्रमेहं पागृहरोगञ्च श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ १६॥

घ्योपादौ तन्तत्या वत्सकत्वचामिति मिलितम्योपादिचूर्यतुत्याम् ॥ १६॥

दशमूलीकपायेण विश्वमत्तसमं पिवेत्। ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे॥ १०॥ विडद्गातिविपामुस्तं दारुपाठाकलिङ्गकम्। मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम्॥ १८॥

दराम्लीत्मादि-अत्र भनेप्यस्य शुरुठीचूर्णस्य यत् वर्षमानत्वसुकम्, तत काथ्यस्य दशमूलस्य पलरूपामुत्तममात्रामपेन्यः तेन मध्यमाधममात्रानुमारेख शुष्ठी-चूर्णस्य हासोऽपि बोध्य । तेनात्र प्रक्षेप पादिक काथ्यादित्यन परिभाषा प्रव-र्तते । न तु पातव्यक्ष चतुर्द्रव इति वचनाद् विश्वचूर्णाप्रेचया न्शमूलीकाथश्चनु-ग्रंगा कार्य । यत विश्वचूर्णापेचया दशमूलस्य पाचनदीपनत्वेन यीगिकत्वात् प्राधान्यम्। अपि च काथकरण हि काथ्यमानापेचम्, काथ्यमानन्च उत्तमपुरुपाच-पेचम् । अतस्तत्र पलत्रिकपाईपलमानमुल्मर्गतो व्यवस्थितमस्त्येव, तदपेचस च काथ्यस्य उत्तमपुरुपाद्यपेचया व्याधिनिष्ट्त्यै प्रयुज्यमानस्य न्यूनत्वकर्शे नेपनस्याल्प-मात्रत्वदोषाद् न्याधिनिष्टत्तिरेव न स्थादिति विषद्वे दोषदर्शनाद् यथावस्थितन्ततुः-र्भागावशिष्टकाथप्रयोगाञ्च काथस्थैव प्रधानता । ततस्य यदि पातव्यश्च चतुर्देव इलजुसाराद् विश्वचूर्णापेद्यया दशमूलीकाधश्चर्तुगुंखो गृह्यते, तदा प्रधानस्य काथस्य न्यूनता स्यात्, चतुर्भागावशिष्टकाथानुसारेण वा यदि चतुर्माग चूर्ण गृह्यते, तदा चूर्णवाहुल्य स्थादिति । तेन यत्र काथेन चूर्णपानम् , तत्र प्रचेप पादिक काथ्या-दिलस्यैव विषय , न तु पातन्यक्ष चतुर्द्रव इत्सरेगति सिद्धः । एवमन्यत्रापि काथेन चूर्णस्य कल्कस्य वा पाके काथस्य प्राधान्यमनुमन्नव्यम् । अतएव रुचकादिचूर्णे वृन्दोऽप्याह "काथेन चूर्णपान यत् तत्र काथप्रधानता । प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णा-पेक्षी चतुर्दन " इति । चूर्णापेक्षी चूर्णमानापेक्षीत्वर्य । १७॥ १०॥

किराताच्दासृताविश्वचन्द्नोदीच्यवत्सकैः। शोथातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम्॥१६॥ किराताव्दासृतोदीच्यमुस्तचन्द्नधान्यकैः। शोथातिसारतृड्दाहशमनो ज्वरनाशनः॥२०॥ इति ज्वरातिसारचिकित्सा।

किरातेत्वादि स्पष्टम् ॥ १६ ॥ २० ॥ इति ज्वरातीसारचिकित्साविवृति ।

अथातीसारचिकित्सा।

त्रामपक्रकमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः। श्रतः सर्वातिसारेषु क्षेयं पकामलज्ञणम् ॥१॥

ज्वरोपद्रवस्थातीसारस्य चिकित्सामभिधाय सम्प्रति स्वतन्त्रस्यातीसारस्य चिकि-त्मामाद्द श्रामेत्यादि—सुश्रुतस्य । क्रिया चिकित्सा ॥ १ ॥

मज्जलामा गुरुत्वाहिट् पका तृत्सवते जले। विनातिद्रवसंघातशैलाशेष्मप्रदूषणात्॥२॥

श्रामपकलच्चणमाइ मञ्जतीत्यादि—चरकस्य। श्रामेति श्रामान्विता विट् जले मञ्जति । गुरुत्वादिति श्रामाहितगुरुत्वात् । पक्षेति निरामा, सवते निराम-त्वेन लघुत्वादित्यर्थ । इयोरप्यामपकलच्चणयोरपवादमाइ विनातिद्रवेत्यादि— श्रातिद्रवंत्वात् श्रामापि सवते; तथा श्रातिमङ्घातात् श्रातिकाठिन्यात् पक्षापि मञ्जति; तथा शित्यसहतिश्रेष्मप्रदूषणात् कफसम्बन्धकृतगौरवेण पक्षापि मञ्जति । शैत्यस्थाने शैत्यपाठे श्रेतवर्णता । एतेनातिद्रवेत्वादिक विना मञ्जनसवने सामनिरामलच्च्यतया इये इत्थर्थ ॥ २ ॥

शक्तदुर्गन्धि साटोपविष्टम्मार्त्तिप्रसेकिन । विपरीतं निरामन्तु कफात् पक्रश्च मज्जति ॥ ३॥ मामत्विनिरामत्वयो मन्यग्द्यानार्थमपरमपि लनग्यमाह गङ्गिवित्यादि—आटो-पविष्टम्भावेवात्तौ तत्महिनम् । किं वा अनि श्लम, श्राटोपो मजापूवक उदरहोम , विष्टम्म मतोद्रश्लमलाप्रद्यत्ति, प्रमेकिन कफप्रमेकिन , किं वा प्रमेक स्लोकस्तो-कमलमरग्रम् । कफात् पक्कच मन्तित्यस्य नन्त्रान्तर्गयवचनत्वात्र पीनम्क्षयमा-राह्मनीयम् । इह तु मम्पूर्णकेकानुरोधात् पठिनम् ॥ ३ ॥

्र श्रामे विलंघनं शस्तमादां पाचनमव च । कार्य्यञ्चानगनस्यान्ते प्रद्ववं लघुभोजनम् ॥ ४ ॥

श्राम इत्यादि — प्रद्रविभिति प्रकृष्टद्रवस्, प्रकर्पश्चात्र गास्त्रविष्ठितत्वेन ग्रेय ।
तेनात्राविद्वितद्रवात्रनिषेधाथम्, विद्वित्ताजमयद्यादिविधानार्थञ्च प्रराम्द्रोपादान
ग्रेयम् । श्रत वर्जयेद् वैदल ग्र्ली कुष्ठी माम चर्या स्त्रियम् । द्रवमग्रमतीमारी
सर्वञ्च तम्युज्वरी " इत्यादि वचनेन महात्र विराध । श्रन्ये तु प्रगतद्रविभित्त व्यात्याय विरोध परिहन्ति । श्रपेर तु निपातम्यानेकार्थत्वात् प्रराष्ट्रस्य ईपद्रयंता व्यात्यानयन्ति । श्रन्ये तु केवलद्रवर्म्यव निपेधो न तु खाजमग्डोदेरित्यादु ॥ ४ ॥

लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यटस्तीह भेपजं विलनः। समुदीर्ण दोपचय शमयति तत् पाचयत्यि च ॥ ४ ॥ लह्वनपाचनयोर्मध्ये लह्वनस्य प्राधान्यमाह लह्वनमित्यादि—स्पष्टम ॥४॥

हीवेरश्रहवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।

मुस्तोदीच्यश्रतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

मुस्तोदीच्यश्रतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

मुस्तोदीच्यश्रतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

मुह्तोद्रित्रकाले चुत्वामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥ ६ ॥

मिवेरेत्यादि योगत्रय पद्माविधिता श्रद्धश्रत योध्यम् । वदीच्य वालकम् ॥६॥

श्रोपधिसद्धाः पेया लाजानां शक्तवोऽतिसारिहताः ।

वस्त्रप्रस्रुतमग्रदः पेया च मस्र्य्यृपश्च ॥ ७ ॥

प्रद्रव लबुमोजनिर्मित बदुक्त तदेव दर्शयनि श्रीपथमिदा इत्यादि—र्म्भापथ वच्यमाणशालपर्यादि-धान्यपश्चकादिकम् । पया चिति पेया च वस्त्रप्रस्रुतेत्वर्य । श्रतप्दोक्तम् '' वस्त्रस्रुता यवागूर्याऽप्रस्रुतचुद्रमक्षकम् '' दित ॥ ७ ॥

्र गुर्वी पिएडी खरात्यर्थ लच्ची सैव विपर्य्यात्। शक्तूनामाग्र जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका॥ = ॥

गुर्वीत्यादि ।—श्रत्यंथ पता कठिना राक्तुपिषिडका गुर्नी स्याद् । मैन निपर्ययादिति मुद्दी मा लब्बी भनति । श्रन्नेषिका श्रन्तेहयोग्या पिएडी ॥ मा

बृहच्छालपगर्यादिः

शालपणीं पृक्षिपणीं बृहती कगरकारिका। यलाश्वदंष्ट्रावित्वानि पाठानागरधान्यकम्॥ पतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम्॥ ॥॥

षृहच्छालपर्यादौ-—विल्वाने विल्वशलाटव भग्नाहित्वात् । यदुक्त "कफा-निलहर ती्च्य सिम्ध समाहि दीपनम् । कद्वतिक्षकपायोग्य विल्वमाममुदाहृतम् " इति । एव सर्वत्रं स्तम्भनयोगे वेध्यम् । छ्यांन्तु विल्वस्य मूल क्वेयम्, "विल्वमूलं मरुच्छ्लेष्मच्छदिश्च न तु पित्तकृत्" इति गुर्णपाठात् । आहारसयोग इति आहारस्य मयोजने सस्कार इति यावत् । मर्वातिसारिणामिति आमपच्यमानपकातिसारिणाम्, प्रत्येकद्वन्द्वमित्रपातिमारिणा वा ॥ ३ ॥

खल्पशालपएर्यादिः

शालपर्शीबलावित्वैः पृश्लिपएर्या च साधिता ।
 टाडिमाम्ला हिता पेया पित्तन्छेष्मातिसारिणाम् ॥ १० ॥
स्वत्पशालपर्यादि ।—वाग्मटस्य ॥ १० ॥
यवागृमुपभुञ्जानो न तु व्यञ्जनमाचरेत् ।

शाक्तमांसफलैर्युक्ता यवाग्वाऽम्लाश्च दुर्जराः ॥ ११ ॥ यवाग्वोऽम्ला इति भ्रम्ला भ्रम्लिवपाका ॥ ११ ॥

धान्यपञ्च कसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा।

श्राहारो भिषजा योज्यो वानऋष्मातिसारिणाम् ॥ १२ ॥
वाति पञ्चमूल्या कफे वा पञ्चकोलकैः ॥ १३ ॥
धान्यपञ्चकेत्यदि स्पष्टम् । वातिषेते पञ्चमूल्या इति स्वरूपण्चमूल्या॥१२॥१३॥

धान्योदीच्यश्वतं तोयं तृष्णादाहातिसार्जुत्। श्राभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत्॥ १४॥ श्राम्यामिति धान्योदीच्याम्याम्॥ १४॥

दोपाः सिन्नाचिता यस्य विदग्धाद्वारमूर्विञ्जताः। अतिसाराय कल्पन्ते भूयस्तान् सम्प्रवर्त्तयेत् ॥ १४॥

दोषा इत्यादि — सिन्निचिता इति सञ्चय प्राप्ता । विदग्धशब्देनात्राविपका-द्यारवाचिना चतुर्विधमप्यामविद्ग्धविष्टब्धरसशेषरूपमजीर्णेमुच्यते । मूर्ज्छिता इति वर्दिता । सम्प्रवर्त्तयेदिति स्वयं प्रवर्त्तमानदोषस्य उपेश्वया प्रवर्त्तन कारयेत् । उक्त हि तेपूपेवेव मेषजम् '' इति, तथा स्तोक स्तोक विवद्धवा विरेचनयोगेन प्रवर्त्तयेत्। श्रतण्य वस्यति स्तोक स्तोक विवद्ध वेत्यादि ॥ १५ ॥

नतु सङ्ग्रहणं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे। दोपा ह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्यामयान् वहून्॥ शोथपार्य्द्वामयप्तीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान्। दर्यकालसकाध्मानग्रहण्यशोगटांस्तथा॥ १६॥

न तु सम्रह्णिमित्यादौ — पूर्वमिति विशेषिणेनोत्तरकालमामातिमारियोऽपि श्रितिन्सुतवहुदोपतया द्वीयधातवे सम्रह्ण देयमिति दर्शयि । श्रतपत वस्यित द्वीयधातुवलात्तंस्यिति । श्रन्य तु पूर्वं सम्रह्ण न देयमिति वस्तेन प्रधानमम्बद्धा-शाल्मलकुटजल्वगादिसम्बद्धण न देयमिति बोधयित , मुस्तोदीच्यादि तु पाचनम्रह्णश्र यद्, पूर्वमिति देयमेवेत्याहु ॥ १६ ॥

्र चीणधातुवलार्त्तस्य वहुदोषाऽतितिस्रतः। श्रामाऽपि स्तम्मनीयः स्यात् पाचनान्मरण् मचेत् ॥१७॥ भवस्थायामामेऽपि भग्रहण देयमित्याह चीणत्यादि—पाचनादिति केवल-पाचनात्, पाचनम्तम्भनन्तु हितमेव ॥ १७॥

, स्तोकं स्तोकं विवद्धं वा सग्रुलं योऽतिसार्थ्यते ।

प्रभगपिपपलीकल्कैः सुखोष्णस्तं विरेचयेत् ॥ १८ ॥

विरेच्नावस्थामाः सोक्शिलादि स्थानस्य । स्वामाधार्माः

विरेचनावस्थामाह स्तोकीमत्यादि—ग्रुश्रुतन्य । अभयापिप्पलीकल्कस्य मुखोम्यता कदुभ्ययोगेन शेया ॥ १८॥

धान्यपञ्चकम्--

घान्यकं नागरं मुस्तं वालकं विल्वमेव च।

श्रामश्रलविवन्धन्नं पाचनं विह्नदीपनम् ॥

इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पित्ते श्रुगठीं विना पुनः ॥ १६॥

धान्यकमित्यदि स्थार स्थापति स्थापति स्थापति

धान्यकमित्यादि—अय योग सामिपत्ते बेध्य । यदुक्तमायुर्वेदसारे " विल्विवश्य-धान्यके कंथित जलम् । सामिपत्तातिसारप्त दीपन धान्यपञ्चकम् । " धान्यपञ्चक यदुक्त तत् शुग्रठोन्यतिरेकेश कर्सन्यमित्येतदर्धमाद्य इद धान्यचतुष्क स्वादित्यादि । मोनेऽप्युक्त " धान्यक बालक मुस्तं विल्व पित्ते प्रयोजितम् । श्रामश्र्लविबन्धः पाचन विद्वेदीपनम् ' इति । तथान्यन्नाप्युक्त ' धान्यक वालक मुस्त बिल्व पित्ते तु दीपनम् । श्रामश्र्लविबन्धः पाचन नागरान्वितम् ' इति ॥ १६ ॥

पिष्पली नागरं घान्यं भूतीकश्चाभयां वचाम्।
्रहावेरभद्रमुस्तानि विल्वं नागरघान्यकम्॥
पृश्लिपणीं श्ववंष्ट्रा च समझा कएटकारिका।
तिस्रः प्रमथ्या विहिताः स्ठोकार्द्धरितसारिणाम्॥
कफे पित्ते च वाते च क्रमोदेताः प्रकीर्तिताः।
संज्ञा प्रमथ्या ज्ञातव्या योगे पाचनदीपने॥ २०॥

पिप्पलीमित्यादि—प्रमध्यात्रय चरकस्य । अत्र भूतीक यमानी, मद्रमुस्त मुस्तकमेव, समङ्गा वराहकान्ता । एतास्तिस्त प्रमध्या यथाक्रम कफपित्तवाते- जिति चरकटीकाकृतो व्याचकते । अतस्तमेवार्थं चक्रोऽप्याह कफे पित्ते चेत्यादि । यद्यपि हीवरिमित्यादि द्वितीयो योगो धान्यपञ्चकमेव, तथापि तस्यैव प्रमध्यासज्ञा- विधानार्थं पुनश्चरकवाक्य लिखितम् । न च वाक्य प्रमध्यामध्यपठित होवेरिमित्यादि- कमेवास्तु, कि धान्यपञ्चकयोगस्य पृथक् कथनेन १ सत्यम्, धान्यपञ्चकसज्ञया हि शास्त्रव्यवहार कर्त्तव्यो यथा धान्यपञ्चकसमिद्ध इत्यादि । तथा शुपठोरिहतस्य तस्यैव धान्यचतुष्कसज्ञयापि, अत एतद्विरोषकथनार्थमेव तस्य पृथक् कथनमिति ज्ञेयम् । संज्ञा प्रमध्या इत्यादि —प्रमध्याशब्दो हि वृद्धपरम्परया पाचनदीपन-कषाये वैद्यशास्त्र परिमापित- श्रूयते । यथा विडगकषायः शैखरिककषायशब्देन वैद्येरुच्यते इति ॥ २०॥

ज्यूषणातिविषाहिड्गुवलासौवर्चलाभयाः। पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम्॥ २१॥ त्रथवा पिष्पलीमूलिपष्पलीहयचित्रकान्। सौवर्चलवचाव्योषिहेगुप्रतिविषाभयाः। पिवेत् श्रेष्मातिसारार्त्तश्चृिर्णताश्चोष्णवारिणा॥ २२॥ हरिद्रादिं वचादिं वा पिवेदामेषु बुद्धिमान्। खडयूषयवागूषु पिष्पल्यादिं प्रयोजयेत्॥ २३॥ ज्यूष्णेत्यादौ त्रूष्णादीना चूर्णन्। अथवेत्यादि चित्रकान्त एको योग । मौनर्चलेत्यादौ प्रतिनिषा भ्रतिनिषा । इरिद्रादि-नचादिगयौ मौथुनौ । यदाइ इरिद्रा दारुइरिद्रा कलशी कुटजबीजानि मधुकन्चेति ।' ' वचा मुस्तानिषाभया भद्रदारु नागरभ्रेति ।' खडयूप इत्यादि—पिप्पल्यादिश्च सौश्रुते। गयो। ज्वरा-धिकारे चक्रेसैबोक्त ॥ २१—-२३॥

्र तक्षं किपत्थचाङ्गेरीमिरचाजाजिचित्रकैः।
सुपकः खडयूपोऽयमयं काम्यलिकोऽपरः।
दथ्यम्लो लवणुस्नेहतिलमापसमन्वितः॥ २४॥

खडयूपमाह तक्तमित्यादि—अयञ्च यूप 'कर्षार्दे वा कणाशुस्त्रयोः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् ' इत्यादिना बोध्य । तेन तीच्छवीर्व्याद्या मरिचाजाजी- चित्रकाणामलपमानत्वम्, कपित्थचाक्रेच्योस्तु मध्यवीर्व्यत्वाद् बहुमानत्वम्, तक्रस्य छ प्रस्थमानत्व कल्पनीयम् । यूपयोनित्वाच्च मुद्रोऽपि देव । तस्यैव दध्यादि- योगात् काम्बलिकसन्नामाह दध्यम्ल इत्यादि । दध्यम्लेति दधना अम्लीकृत ॥२४॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः। तृष्णातीसारग्रुलघ्नं पाचनं दीपनं लघु॥ २४॥

नागरादी श्रतमिति शेष । उक हि चरके 'नागरातिविधामुस्तकाथ स्यादा-मपाचन 'इति ॥ २५ ॥

> पाठावत्सकवीजानि हरीतक्यो महीपधम् । पतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम् । कफात्मकं सपितञ्ज वर्षो वभ्राति च भ्रवम् ॥ २६ ॥

पाठेत्यादि—सुश्रुतस्य । श्रय योग काथेन चूर्येन वा श्रेयः । 'यतोऽय सुश्रुते विशतियोगमध्ये पठित । तदनन्तरं सुश्रुतेनैवोक्त यथा ' प्रयोज्या विशति-थोगा श्रोकार्द्धविद्दितास्त्वमी । धान्याम्लोप्याम्बुमबाना पिवेदन्यतमतेन वा निष्काथान् वा पिवेदेपा सुद्धोष्यान् सार्धुमाधितान् शत् ॥ २६ ॥

पयस्युतकाथ्य मुस्ता वा विश्वति भद्रकाद्वयाः। जीरावशिष्टं तत् पीतं हन्यादामं सवेदनम्॥ २०॥

पयस्युत्काय्यत्यादौ त्रिगुणोदक वोष्यम्, यदाह वाग्मटः ' पयस्यु-काथ्य मुस्ता वा विशति त्रिगुणेऽम्मामे ' इत्यादि । अत्र छागदुरथमित्याहु-र्षदा ॥ २७॥ पक्षोऽसक्तदतीसारो ब्रह्मणीमार्दवाद् यदा । प्रवर्त्तते तदा कार्य्यः चित्रं सांब्राहिको विधिः॥ २८॥ पक्ष इत्यादि सप्टम्॥ २८॥

पञ्चमूलीबलाविश्वधान्यकोत्पलबिल्वजाः । वातातिसारिखे देयास्तकेणान्यतमन वा ॥ २६ ॥

पञ्चमूलीत्यादौ पन्चमूली स्वल्पा महती वा । धान्यकोत्पलविल्वजा इति विल्वजा विल्वशलाटव , अन्ये तु विल्वजा इत्यनन्तर कल्पना इति शेष', तेना-विशेषात् सर्वकल्पनेव कार्य्यत्याहु । तन्न, स्वरसस्य तत्कल्पनाया ग्रस्ताच । अतप्य कल्कोऽपि न पारिशेष्यात् , कमायश्चूर्णो वा योग्यत्वादित्याहु । अन्यत-मेनेति काञ्चिकजलादीनामन्यतमेन । काथपचे तकादौ अर्द्धजल देयम् ॥ २१ ॥

कञ्चटादिः

कञ्चटजम्बृद्धिमश्दद्गाटकपत्रवित्वह्नीवेरम्। जलघरनागरसाहितं गङ्गामि विगिनीं रुन्ध्यात्॥ ३०॥ कञ्चटेत्यादौ—कञ्चटादीना चतुर्णा पत्रम्। नागरान्तैरद्यामि कषाय ॥३०॥

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैर्वामलकैर्भिषक् ।

श्राद्वंकस्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमगडलम् ।
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निरोधयेत् ॥ ३१ ॥

कृत्वेत्यादि स्पष्टम् ॥ ३१ ॥

किरातिक्षकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम्। पित्तातिसाररोगधं सत्तौद्रं वेदनापहम्॥ ३२॥

किरातितिक्षकिमित्यादि—अत्र तयडुलोदकमि बोध्यम् तेन एषा चूर्यं मधुसाहिततयडुलोदकेन पिनेदित्यर्थ । यदाह वाग्मट 'किरातितिक्षक मुस्त बत्सक सरसाजनम् । कटकटेरी हीनर बिल्वमध्य दुरालमा । तिला मोचरसो लोघ समगा कमलोत्पलम् । नागर धातकीपुष्प दाहिमस्य त्वगुत्पलम् । अर्द्ध-श्लोकैः स्मृता योगा सचौदास्तयडुलाम्बुना ' हति । चरकेऽप्युक्त 'किरातितिक्षक मुस्त बत्सक सरसाजनः । बिल्व दारुहरिद्वात्वग् होनर सदुरालमम् । चन्दनञ्च मृशालन्य नागर लोधमुत्पलम् । तिला मोचरसो लोघ समगा कमलोत्पलम् । नागर भातकीपुष्पमुत्पल दाढिमत्वच । कट्फल नागर पाठा अम्म्बस्थि सदुरा-लमा । योगा पढेते सचौद्रास्तण्डुलोदकमयुता । पेया पित्तातिसारमा श्लोका-द्वेंस्तु निदर्शिता रहित । निश्चलस्तु वातेत्यादी क्वाययिलेति रोप इत्याह ॥३२॥

पतं वत्सकवीजस्य श्रपियत्वा जलं पिवेत्।
यो रसाशी जयेच्छीद्यं स पैतं जठरामयम्॥ ३३॥
पत्तिमत्यादि—वाग्भटस्य। रसाशी जागलमासरसेन मुझान ॥ ३३॥
मधूकं कट्फलं लोधं दाडिमस्य फलत्वचम्।
पित्तातिसारे मध्वाकं पाययेत् तग्रह्णलाम्बुना॥ ३४॥
मध्कमित्यादि—चूर्णविषवा योगोऽयन्॥ ३४॥
कुटजातिविषामुस्तं हरिद्रापिंगिनीद्यम्।
सत्तौद्रशकरं शस्तं पित्तश्रेष्मातिसारिणाम्॥ ३४॥
कुटजत्यादौ हरिद्राद्वयम्, पांगनीद्वय शालपणिष्ठिभपण्यौ । क्राथेनायं
योगः॥ ३४॥

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्राथियत्वा जलं पिवेत् ।
अतीसारं जयत्याशु शर्करामधुयोजितम् ॥ ३६ ॥
कुटजलिगत्यादि योगत्रय सप्टम् ॥ ६६ ॥
विव्यचृतास्यिनिर्यृहः पीतः सत्तौद्रशर्करः ।
निद्दन्याच्छुर्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ३७ ॥
विव्यव्यातम् ॥ ३७ ॥
पटोलयवधन्याककाथः पेयः सुशीतलः ।
श्रकरामधुसंयुक्तश्र्व्यतीसारनाश्रनः ॥ ३८ ॥
पटोलेलादि स्थातम् ॥ ३८ ॥
प्रियङ्ग्वञ्जनमुस्तास्यं पाययेत् तु यथावलम् ।
तृष्यातिसारच्छुर्दिभं सत्तौदं तग्रह्वलाम्बुना ॥ ३६ ॥
प्रियङ्ग्वञ्जनमुस्तास्यं पाययेत् तु यथावलम् ।
तृष्यातिसारच्छुर्दिभं सत्तौदं तग्रह्वलाम्बुना ॥ ३६ ॥
प्रियङ्ग्वलादौ अञ्जन रमाजनम् । चूर्णविषया योगोऽयम् ॥ ३६ ॥
कालिङ्गकवचामुस्तं दारु सातिविषं समम् ।
कर्ष्कं तग्रह्वलतोयेन पियेत् पित्तानिलामयी ॥ ४० ॥

प्रिंतित खाति विषित्र किलिगादि विशेषणम् ॥ ४० ॥ कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकी विलववालकम् । लोध्रचन्दनपाठाश्च कपायं मधुना पिवेत् ॥ सामे सश्रले रक्ते ऽपि पिच्छास्रावेषु शस्यते । कुटजादि रिति ख्यातः सर्वातासारनाशनः ॥ ४१ ॥

कुटन दाहिममित्यादौ दाहिमफलनल्कलम् ॥ ४१ ॥
समङ्गातिविषा मुस्तं विश्वं हीवेरधातकी ।
कुटजत्वक्फलं विल्वं काथः सर्वातिसारनुत् ॥ ४२ ॥
ममङ्गेत्यादौ समगा नराहकान्ता । काथ इत्यत्र एषामिति शेष ॥ ४२ ॥
दलोत्थः स्वरसः पेयो हिज्जलस्य समाज्ञिकः ।
जयत्याममतीसारं काथो वा कुटजत्वचः ॥ ४३ ॥
दलोत्थ इत्यदि स्षष्ट ॥ ४३ ॥

वटारेहिन्तु सम्पिष्य ऋत्णं तग्हत्तवारिणा । तत् पिवेत् तक्रसंयुक्तमतीसारक्जापहम् ॥ ४४ ॥ तग्ह्रलजलपिष्टाङ्कोटमूलकर्षार्द्धपानमपहरति । सर्वातिसारम्रहणीरोगसमूहं महाघोरम् ॥ ४४ ॥

वटारोहमित्यादौ आरोहः अस्यायो भागः । सर्वातिसारयहर्णात्यत्र सयोगा-देरि रेफस्य लघुत्वात्र च्छन्दोभगः । यदुक्त 'यदा तीवप्रयत्नेन संयोगादेरगौरवम् । न च्छन्दोभग इत्याहुस्तददोषाय स्रय ' इति ॥ ४४—४५ ॥

> कल्कः कोमलवन्त्रोलदलात् पीतोऽतिसारहा ॥ ४६ ॥ कल्क इत्यादी—कोमलवम्बोलदलः वन्बोलिकशलयः ॥ ४६ ॥

कुटजत्वक्कृतः काथो घनीभूतः सुरीतिलः। लोहितोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत्॥ ४७॥

कुटजलक्कृत. काथ इत्यादी घनीभूत इति चतुर्थभागावशिष्ट काथ एव पुनःपाकात् तथा घन कार्य्य यथा चूर्णे प्रविप्ते लेह. स्याद, अतएव सुशोभन इत्युक्तम् ॥ ४७॥ / वद्न्त्यत्राष्ट्रमांशेन काथादतिविषारजः।

प्रतिप्यत्वात् पादिकन्तु लेहादिति च नो मितः ॥ ४८॥ ॥ श्रतिविपाचूर्णं कियदेविमत्येतदर्थमाह वदन्तीत्यादि—चतुर्थमागाविशष्टकाथापेक्या अष्टमारानातिविषाचूर्णं देयमिति वदन्ति वृद्धा । चकरतु स्वमतमाह प्रतिप्यत्वादित्यादि—तदितिविषाचूर्णं पादिक चतुर्भागाविशष्टकाथापेक्येत्यर्थं कृत इत्याह प्रतिप्यत्वादिति । लेहादिति ल्यव्लोपे पश्चमी, लेहमुदिश्य प्रक्षेप्यत्वादित्यर्थे । तद्धक (केह यत्र तु नो भागे। निर्दिष्टो द्रवकल्कये। । तत्रापि पादिक कल्को द्रवाद कार्य्यो विचानता इति // 'कल्को दृशदि पेषित ' इति हि कल्क-लक्तयम् । अत कल्कराव्येन चूर्णस्यापि प्रहणम् । द्रवादिति चतुर्भागाविशयत्व । अतः काव्यपलचतुष्टयं दत्तस्य शरावचतुष्टयज्ञलस्य पादरोषादप्टपले काथे श्रतिविषाच्यापलव्ययम्तत्यर्थे । लेहाकारोक्तकाथापेक्या पादिकमिति तु न व्याख्यम् । द्रवात् पादिक कार्य्यं इत्युक्ते । तत्रापि लेहाकारात् द्रवादिति व्याख्याने कष्ट-कल्पना स्यात् । श्रतिविषाचुर्णप्रकृष्टम इत्यर्थ । वृद्धवैद्यास्तु मधुनापि लेह कार्यन्ति साय-सम्येऽपि ॥ ४८॥

अङ्कोठवटकः

─सदार्व्यक्कोठपाठानां मूलं त्वक् कुटजस्य च । शाल्मलीशालिनर्यासधातकीलोभ्रदाडिमम् । पिष्ट्वाचसिम्मतान् कृत्वा वटकांस्तगृडलाम्बुना ॥ तेनैव मधुसंयुक्कानेकैकान् प्रातकिथतः । पिवेदत्ययमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः । श्रद्धोठवटको नाम्ना सर्वातीसारनाशनः ॥ ४६॥

सदावींत्यादी दावीं दारहरिद्रा, अङ्कोठ अङ्कोड शित ख्यातस्तर । तस्य-मूलमेव । उक्त हि हारीने 'पलजाङ्कोठमूलस्य पाठा दावींव्च तत्समाम् । पिथ्ट्वा सपडुलतोयेन वटकानचसम्मितान् ै हत्यादि ॥ ४६ ॥

पयस्यर्ज्जीदेक च्छागे हीचेरोत्पलनागरैः। पेया रक्तातिसारमी पृश्चिपगर्या च साधिताः॥ ५०॥ पयसीत्यादि—चरकस्य। नागरमत्र मुक्त, न तु ग्रुपठी, रक्तातिसारे 'श्रजा क्षीरक्रीष्ट्रीयनजलोत्पले ' इति जनुकर्णसवादात् । क्रोष्ट्री पृक्षिपणीं । श्रतपव पृक्षिपपर्यन्त एको योगः, अन्ये तु पृक्षिपपर्या च नाधिता इति पृथक्पाठ , पृक्षि-पर्णीकाथेन नाधिता इत्यर्थ । तेनाद्धोदकच्छागदुग्य पृक्षिपणीकाथैर्मिलिला पाकः कार्न्थः । उक्त हि वाग्मटे ' पयस्यद्धोदके छागे हीवेरीत्पलनागरे । पेया रक्षाति-सारक्षी पृक्षिपणीरसान्विता ' इति जवते ॥ ५०॥

> रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचम् । धातकीश्टङ्गवेरञ्ज प्रिपेवेत् तग्रह्णाम्बुना ॥ चौद्रेण युक्तं नुदति रक्षातीसारमुल्वणम् । मन्दं दीपयते चाग्निं श्रलञ्जापि निवर्त्तयेत्॥ ४१॥

रसाञ्चनमित्यादि — अत्र कुटजस्य फल त्वक् च । सुश्रुतेऽप्युक्त 'रसाञ्चनं मातिविष त्वर्यीज कौटज तथा । धातकीं नागरचैव पाययेत् तय्हुलाम्बुना । सग्रुक्त रक्षजं हन्ति योगो मधुसमन्वितः 'हति ॥ ५१ ॥

विडङ्गातिविषा मुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम्।
मिरचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम्॥ ४२॥
विडहेत्यादि—अत्र मिरचत्य प्रचेप्यत्वमित्याद्य.।

वत्सकादिः

सवत्सकः सातिविषः सवित्वः
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः।
सामे सग्नले सह शोणिते च
विरत्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ ४३॥ —

वत्सकादी वत्मक कुटजः । तस्य त्विगिति चन्द्रकलाटीकाकारः वैद्यप्रसार-करच । श्रन्ये तु 'वित्वशशुयवाम्मोदवालकातिविषाकृतः । कषायो हन्त्यतीसार साम पित्तसमुद्भवन् ' इति सुश्रुतसवादात् फलमेवेत्यादुः । किन्तु प्रायो व्यवहारस्त्वचा, फलेनापि ज्वरे रक्षप्रावत्ये च । यदुक्त 'कुटजः कफवातास्रक्त्वग्दोषाशौंऽतिसार-जित् । तद्वीज रक्षपिचातीसारज्वरहर हिमम् ' इति ॥ ५३॥

> कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात्। सद्यो जयेदतीसारं सरक्षं दुर्निवारकम्॥ ४४॥

कषाय इत्यादी—दाडिमात् कोमललक् ॥ ५४ ॥ गुडेन खाद्येद्विल्वं रक्षातीसारनाशनम् । श्रामग्रलविवन्धमं कुक्तिरोगविनाशनम् ॥ ५५ ॥

गुंहेनेत्यादि—श्रत्र गुडिनिल्वयो॰ समयाग , विल्वज विल्वशलाह , तश्च पार्नियेनोत्त्विच प्राह्मम् । उत्स्वेदनशेषजलज्ञानुषेयम् ॥ ५५ ॥

> विल्वाव्द्धातकीपाठाशुएठीमोचरसाः समाः। पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतकेण दुर्जयम्॥ ४६॥

बिल्वाब्देत्यादि—गुढेन मधुरीकृत तक गुटतकम् । वेषणमपि तकेण, श्रायु वेदसारमनादात् ॥ ५६ ॥

्राह्मकीयद्रीजम्बूषियालाम्चार्जुनत्वनः ।
पीताः हीरेण मध्वाद्ध्याः पृथक् शोणितनाशनाः ॥४७॥
राह्मकीत्यारी—चीरमाज बाद्यमित्याहु ॥ ४७ ॥
जम्ब्वाम्नामलकीनान्तु पह्मवानथ कुट्टयेत् ।
संगृह्य स्वरसं तेपामजाद्यीरेण योजयेत् ।
तं पिवेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ४= ॥
जम्बान्नत्यादी स्वरमञ्ज्ञानचीरयो नमभाग मधनोऽपि मात्रा चूर्णवेदेव,
मात्रा चौद्रश्तादीना स्नेहक्षथेषु चूर्णविद्यक्के ॥ ४= ॥

विल्वं छागपयः सिद्धं सितामोचरसान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनशनम् ॥ ४८॥

विल्व द्वागपय मिद्धमित्यादि—विल्वशलाट्ट्रस्वेटनयोग्यन द्वागदुरधेन किश्चित् पानीयमहितेनोत्दिस्वयं तत मितादिना संयोज्य लेखन्। अत्र विल्वशलादु-मापकाष्टक सिताया एकमापकः, मोन्तरमकलिक्षयोश्चूणं मिलित्वा मापकम् इति द्वस्थवहार । अजादुरधमुत्स्वेटनावशिष्टमनुपेयन् ॥ ५६॥

ज्येष्ठाम्बुना तग्हुलीयं पीतञ्च ससितामधु । पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा जीरभुग् जयेत् । रक्तातिसारी पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ६०॥ ज्येष्ठाम्बुनेत्यादावपि रक्तातिसारनाशनमिति योज्यन् । ज्येष्ठाम्बु तारहुलाम्बु । त्रग्डुलीयकस्य जुद्रमारिषस्य मृतम् । पीत्वेत्यादि—न्वरकस्य । वातिपत्तोत्तरे योगोऽयमिति वदन्ति । पयसा पीत्वेत्यन्वय । ज्ञीरभुगिति ज्ञीरेण भुजान । तथिति रातावर्थ्या कृत्कस्वरसरूपतया एत पीत्वेत्यन्वय ॥ ६०॥

> कुटजस्य पतं त्राह्यमष्टभागजले श्रुतम् । तथैव विपचेद् भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ यावचैव लसीकाभं श्रुतं तमुपकल्पयेत् । तस्याईकर्षं तकेण पिवेद्रक्कातिसारवान् ॥ श्रवश्यमरणीयोऽपि मृत्योयाति न गोचरम् । काथतुल्यं दाडिमाम्बु भागानुक्रौ समं यतः ॥ ६१ ॥

कुटजस्य पलिमत्यादि—कुटजछाल पल १, पा पानीय श १, शेष पल १। दाडिमफलकल्क पल १, पा पा श १, शेष पल १। एनत् काथद्वय मिश्रीकृत्य तावत् पक्तव्य, यावत् लसीकार्भ स्यात् ततोऽष्टमापक गृहीत्वा तक्रकषंद्वयेन सह पातव्यसित्यर्थः ॥ ६१ ॥

करकस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः। श्राजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ६२॥

कल्कस्तिलानामित्यादि —शर्कराभागसयुत इति शर्कराया भागश्चतुर्थे। इत स्युत इत्यर्थ । तेन शर्करायाश्चत्वारो भागाः, एकस्तिलस्यिति । उक हि जतुकर्यो "कृष्णतिलान् शर्करापादिकान् छागीपयसा " इति । एवं चरके वाग्भटे-ऽपि । यथा " कल्कस्तिलाना कृष्णाना शर्करापञ्चभागिक " इति । शर्कराभाग-मपेस्य पञ्चमो भागस्तिलक्क्कस्येत्य्थं ॥ ६२ ॥

गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना। सेकादिकं प्रशंसन्ति छागेन पयसापि वा। गुद्श्रंशे प्रकर्त्तब्या चिकित्सा तत्प्रकीर्तिता॥ ६३॥

गुददाह तत्यादि—पटोलमधुकाम्बुनेलर्द्धश्रतेन । सेकादिकमिलत्रादिशन्दात् प्रलेपादिग्रह । चिकित्सा तत्प्रकीर्तितेति गुदभ्रशचिकित्सा, सा च चुद्ररोगे वाच्या ॥ ६३ ॥

श्रवेदनं सुसम्पकं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् । नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ६४ ॥ पुरपाकयोग्यावम्यायाह अवेटनियत्यादि—सुश्रुनन्य । अवेदनमग्रूनमलपग्रूल वा । टल्वणस्तु नानावर्णनित्यनेन मान्निपानिकोऽतिनार पुरपाकन्य विषय इति दिश्तिमित्याह ॥ ६४ ॥

कुटजपुटपाकः

स्निग्धं घनं कुटजवलकमजन्तुजग्ध-मादाय तत्त्वण्मतीव च पोथियत्वा । जम्वूपलाशपुटतण्डलतोयसिक्तं यदं कुशेन च वहिर्घनपङ्गिलसम् ॥ सुस्तिन्नमेतद्वपीड्य रसं गृहीत्वा लोडेण युक्तमितसारवते पद्यात् । हम्णात्रिपुत्रमतपूजित एप योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ सरसस्य गुरुत्वेन पुटपाकपलं पिवेत् । पुटपाकस्य पाकोऽयं वहिरारक्रवर्णता ॥ ६४ ॥

क्तियमित्यादि—अजन्तुनयभिति न क्रिमिमिर्मिक्तन् । पीथित्वा कोद-दित्वा । अन्त्पत्रनिर्मितपुटे वर्ष्ट्रलनोयेन मिक्तमित्यर्थ । योगोऽय रक्तिपक्तोत्तर रत्याहु ॥ ६४ ॥

रयोखाकपुटपाकः

त्वक्षिग्रं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् । मृदावित्तं सुक्तमद्गारेप्ववकृतयेत् ॥ स्वित्रसुद्भृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नतः । शीतीकृतं मधुयुतं पायपेदुद्रामये ॥ ६६ ॥

त्वक्षिण्डिमित्याडि—कस्यचित् तन्त्रस्य । त्वच थिण्डस्यकत्कन् । दीर्घ-वृत्त रयोणाक । काश्मरी गान्मारी । सुकृतमिति कुशनेष्टेनेन सुप्टु नद्धमित्यर्थ । अवकृत्ययेत् अक्षारेराच्छाटयेत् । कृत आवरणे इत्यस्य रूपम् । डहेदित्यन्ये । उद्द-रामयप्रकरणादितसारे सुशुते पुनर्य योगोऽन्यथा पट्यते, यथा " त्वक्षिण्ड दीर्घन्तस्य पद्मकेगरसयुनम् । काश्मरीपद्मपत्रैक्षावेष्ट्य सुशेण त । इतम् " शेष तुल्यमेवेति । श्योणाकस्य त्वच पद्मकेगरञ्च ममभाग कृत्वा सन्पिष्य, त पिएड गाम्भारीपत्रपद्मपत्रयो॰ पुटे नििच्चप्, स्त्रेणावेष्टय मृत्तिकया चावलिप्य निर्धूमखटि-राद्वारेषु पुटपाकविधिना पक्तवा रसो याह्य इति च्याख्यानयन्ति टीकाकृत । अत्र रयोग्णाकपुटपाके नाग्भटसनादात् मधुस्याने शर्कराप्रचेपोऽपि वोध्य ॥ ६६ ॥

क्रटजलेह:

शतं कुटजमूलस्य चुएणं तोयामेणे पचेत्। काथे पादावशेषेऽसिन् लेहं पूते पुनः पचेत्। सौवर्चलयवचारविडसैन्धवपिप्पली-धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दक्वा पलद्रयम्॥ लिह्याद्वरमात्रं तत् शीतं चौद्रेण संयुतम्। पकापकमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्। दुवीरं ग्रहणीरोगं जयेचैव प्रवाहिकाम् ॥ ६७ ॥

शतिमत्यादि-अर्मणो द्रोण । लेहिमिति लेहाकार यथा मनति तथा पनेत । पलद्रयमिति मिलित्वा । श्रासन्नपाके चूर्णप्रचेप । यवचारस्थाने गुडचारपाठी न प्रसिद्ध । वदरमात्रमित्यष्टमाषकम् । माषचतुष्टयेन व्यवहार । चौद्रयुक्तमित्युपयोग-काले अनुरूप मधु दस्वा उपयोज्यम् ॥ ६७ ॥

कुटजाष्टकः

तुलामथाद्री गिरिमक्षिकायाः संजुद्य पक्त्वा रसमाददीत । तिसन् सुपूते पलसम्मितानि श्रुच्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां बिल्वञ्च पुष्पाणि च घातकीनाम्। प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु ताव-द्वीप्रलेपः सरसस्तु यावत्। पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मग्डेन वाजापयसाथवापि ।

निहन्ति सर्वन्त्वतिसारमुत्रं
कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥
होपं त्रहण्यां विविधञ्च रकं
ग्रलं तथाशांसि सशोणितानि ।
श्रस्यद्श्चैवमसाध्यरूपं
निहन्त्यवश्यं कुटजाएकोऽयम् ॥
तुलाद्रव्ये जलद्रोणो
द्रोणे द्रव्यतुला मता ॥ ६८ ॥

तुलामित्यादि—तुलाद्रव्ये जलद्रोण इति वद्यति । रमध पादावशिष्ट एवोत्सर्गसिद्ध । पलसाम्मतानीति प्रत्येक, द्रव्यप्रधानत्वानिर्देशस्य । समद्रा वराष्ट्कान्ता । शाल्मलेनेति शाल्मलीवेष्टकेन । अत्र केचित् चूर्णं दत्त्वेव पांक , "प्रक्षिप्य
भूयो विपचेत् " इति वचनात् प्रचाराच्चेत्याष्टुः । अन्ये तु तस्मिन् सुपूते भूयः
पचेत्, ततो मनाक् दर्वाप्रलेपनावस्थाया शाल्मलीवेष्टकादिचुर्णं प्रक्षिप्य, ततो रस
इति मोज्यम् । प्रतेन "प्रायो न पाकरचूर्णांनां स्रिचूर्णस्य थे।गत " इत्यपि वचनमनुगृहीत भवतीत्याद्ध । व्यवद्यारद्यानिनेवेति । जलेनेति शोतलजलेनाविधान्ये,
मर्येटन वस्तिद्वष्टी, छागीद्रयेन रसे ॥ ६०॥

यडङ्गघृतम्

वत्सकस्य च वीजानि दार्व्याश्च त्वच उत्तमाः। पिष्पली श्टङ्गवेरश्च लाचा कटुकरोहिणी॥ पड्भिरेभिर्घृतं सिद्धं पेयं मएडावचारितम्। श्रतीसारं जयेच्छीव्रं त्रिदोपमिष दारुणम्॥ ६६॥

पढक्कष्टते दाव्यक्षि त्वच उत्तमा इति सर्वत्र दाव्यक्तित्वच एव माधा उत्तम-लात् । तस्य दुर्लमत्वात् अत्र काष्टमेव गृष्यते । पद्भिरिति पद यथालाम-अह्यनिपेषार्थम् । णीम- कल्कैत्र्यांचतुर्गुत्यमेव जल देयम् । इदमेव एत कुटजत्वचा सप्ताङ्ग भवति, तद्कक्त वैद्यप्रदीपे 'मयदेव पेय नत्निपं मप्ताङ्क कुटजत्वचा' इति ॥ इ.ह.॥ चीरिद्धुमाद्यं घृतम् चीरिद्धुमाभीरुरसे विपकं तज्जैश्च कल्कैः पयसा च सर्पिः। सितोपलार्द्धं मधुपादयुक्तं रक्तातिसारं शमयत्युदीर्णम्॥ ७०॥

चीरिदुमेत्यादौ—चीरियो हुमा वटोडुम्बरादय । एषामन्यतमस्य समुदि-तस्य वा काथ. । रातावरीरसभ्य घतापेचया मिलित्वा त्रिगुणः । कल्कोऽप्येषामेव । पयश्च श्रेड्समन् । चतमपेच्य च सिताया अर्ड षोडशपलमित्यर्थ । मधुनोऽपि घतमपेच्येव पादिकत्व श्रेयम् ॥ ७०॥

जीर्गे उमृतोपमं चीरमतीसारे विशेषतः।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं देयं वा वारिसाधितम्॥ ७१॥
चीरपानविषयमाह जीर्णं इत्यादि—तद्भेषजैरिति अतिसारहन्त्रभेषजै॰।
देय वा वारिसाधितमिति केवलेन त्रिग्रुखेन जलेन साधितमित्यर्थः। उक्त हि
सुश्रुते 'यथामृतं तथा चीरमतीसारेषु पूजितम्। चिरोक्षितेषु तत् पेयमपा मागैसिमि. मृतम्'॥ ७१॥

बार्ल बिल्वं गुडं तैंलं पिष्पली विश्वभेषज्ञम् ।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सम्भूले सप्तवाहिके ॥ ७२ ॥
वालविल्वमिलादि —चरकस्य । वाते प्रतिहत रित विवद्धवाते ॥ ७२ ॥
पयसा पिष्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः ।
ज्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम् ॥७३॥ —
पयसेत्यादि —दुग्ध पल १, पिष्पली माष ४, अधवा मरिचनूर्णं साष २,
एव न्यवहरन्ति । सविवन्धाया प्रवाहिकायामय योग ॥ ७३॥

कत्कः स्याद्वालिबित्वानां तिलकत्कश्च तत्समः।
द्वाः सराम्लः स्नेहाद्यः खडो हन्यात् प्रवाहिकाम्॥७४॥
कत्क स्यादित्यादि—चरकसः। श्रत्र केहाद्यता तिलदिषसरयोगात्।
खड इत्यसैव योगस्य सज्ञा । चरके खडस्याने सब इति पाठान्तरम्॥ ७४॥

विल्वोपणं गुडं लोधं तैलं लिह्यात् प्रवाहरें। ॥ ७४ ॥ विल्वोपणेलादौ विल्व विन्वशलादु , ऊपण मरिचन् । यदुक्त 'बिन्वपेगी गुढ लोध्र तेल मरिचयोजिनम्' इति । तेलेन लेह ॥ ७५ ॥

द्धा ससारेण समान्तिकेण भुज्जीत निश्चारकपीडितस्तु । सुतप्तकुप्यकथितेन वापि न्तीरेण शीतेन मधुप्लुतेन॥ ७६॥

दश्नेत्यादि—नुश्रुतस्य । ममारेख अनुद्धृतनवनीतेन । निश्चारक प्रवाहिका, यदाह परारार — 'निर्वाहयेत् मफेनज पुरीष यो मुहुर्मुहु । प्रवाहिकीन मा ख्याता केश्चिषिश्चारकरच म ' इति । सुतप्तकुष्यक्षियेतेनीन अत्यन्तनप्तसुवर्णरजते-नरलोहप्रचेपात् कथितेन । अन्ये तु अविटन रूप्यादि कुष्यमाचन्नते । केचितु कुष्यस्थाने कूपं पठिन्न, न्याचन्नते च कूप पाषाणिभेदो दिन्निणापथे ख्यान । ग्रह्मनाभ्याक्नितिरिति ॥ ७६ ॥

दीप्ताभिर्निष्पुरीपो यः सार्थ्यते फेनिलं शकृत्।
स पिवेत् फाणितं ग्रुग्ठीदधितैनपयोघृतम्॥ ७७॥
शोथं ग्र्नं ज्वरं तृप्णां कासं श्वासमरोचकम्।
छुदिं मूर्ज्जञ्ज हिकाञ्च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत्।
वहुमेही नरो यस्तु भिन्नविद्को न जीवति॥ ७८॥
। स्नानाभ्यद्गावगादांश्च गुरुक्तिग्धातिभोजनम्।
व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत्॥ ७६॥
इत्यतीसारिचिकित्सा।

दीप्ताग्निरिति—मुम्रुतन्य । धनत्मर्वमालोट्य पेयम ॥ ७७—७६ ॥ इति भनीमारिचिकित्साविष्टृनि 🕻

अथ ग्रहणीचिकित्सा।

प्रविधानाश्चितं दोपमजीर्णवदुपाचरेत्।
 श्वतीसारोक्षविधिना तस्यामञ्ज विपाचयेत्॥१॥

ग्रहण्यतीमारयो परस्पर कार्य्यकान्णमानमम्बन्धोऽस्तील्यनन्तर ग्रहणांचि-कितिमतमुच्यते ग्रहणांमाशिनमित्यादि—नाग्मटस्य । ग्रहणां श्रग्न्याधाननाही, यदुक्तम् 'श्रग्न्यधिष्ठानमञ्जस्य ग्रहणाद् ग्रहणो मता' इति । श्रजीणवदुपाचरेदिति, श्रामाधजीर्षेषु यथा नमनाष्ट्रपचारो दीपनपाचनञ्चौषधम्, तथेर्ल्यथं । श्रतीसारो-क्राविधिनेति लङ्घनलम्बन्नपाचनादिना ॥ १॥

शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम् । विश्रद्धामाशयायासौ पञ्चकोलादिभिर्युतम् । दद्यात् पेयादि लष्टवन्नं पुनर्योगांश्च दीपृनान् ॥ २॥

शरीरानुगत इत्यादि—चरकस्य। शरीरानुगते शरीरन्यापके। सामे रस इति प्रामशब्दोऽत्र भावप्रधान , तेन आमतासहितेऽपक इत्यर्थ। रस इत्याहाररसे। विशुद्धामाशयायेति—वमनविरेचनलङ्गनैर्यथायोग्यतया निर्हतामदोषाय॥ २॥

क्रिपत्थविल्वचाङ्गेरीतकदाडिमसाधिता। पाचनी त्राहिणी पेया सवाते पाञ्चमूलिकी॥३॥

किपित्थेत्यादि — चरकस्य । किपित्थादिल्वयो फलम्; दाडिमफलस्य तु स्वक्, श्रन्ये तु फलमेवेत्याहु । किपित्थादीना चतुर्णा मृदुद्रव्यत्वेन मिलित्वा पल कत्क, तक्कच्च द्रवस्थाने, तच्च तावक्केवम् यावतः यवाग् सिध्यति । वृद्धवैद्यास्तु श्रत्यम्त-गुरुत्वभिया तक्कजलाभ्या तुल्याभ्या पाकमिच्छन्ति । शाहिणीत्यन्ता एका यवाग्, एषा च वातकफे । मवाते पाञ्चमूलिकीति द्वितीया,, वातातिसारे खल्पपञ्चमूलसिद्धा यवागृहितेति शेष, 'श्रुवाधैवांय्वतीमार' इनि जतुकर्णमवादात् ॥ ३ ॥

ग्रहणीदोषिणां तकं दीपनं ग्राहि लाघवात्।

पथ्यं मधुरपाकित्वात्र च पित्तप्रकोपणम् ॥

कषायोष्णविकाशित्वाद्रौदयाचैव कफे हितम्।

वाते खाद्रम्लसान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत्॥ ४॥

तकस्य बहर्णोदोपसात्य्यतां दोषत्रयहितत्वञ्च सहेतुकमाह बहर्णोदोषिणा-मित्यादि—दीपन ब्राह् लाघवादिति पथ्यत्वे हेतु । मधुरपाकित्वान्न च पित्त-प्रकोपणमिति, अम्लत्वात् पित्तप्रकोपणे प्राप्ते मधुरपाकितया पित्त न प्रकोपयिति; चकारात्रापि पित्त शमयतीति आकृतम्, किंवा 'सर्वमेवान्न प्रायो द्यस्य विदद्यते' इति उक्तिर्विदाहजनक यदस्ति, तदपि तक्रप्रयोगे विदाहकुत्र भवति, मधुरपाकित्वात् तकस्य । न तु जाताम्लत्वेन पित्तप्रकोपनिषेषार्थमय अन्य , मधस्कोपयोगेन पित्त-कारियोऽम्लरसस्याभावात् । अम्लक्ष न प्रयोज्य विदाहित्वान्त्व, अत्तरवाह् मध-स्क्रमिवाहीति सयोमिथितोम् तक पञ्यमानावस्थाया विदाहकुन्न भवति । किञ्चि-त्कालस्थित पुनरम्लत्वाद् विदाहि भवलेव । यत्तु स्वाहम्लमान्द्रत्वादिलनेन अम्म-रमत्वसुक्ष तदम्लानुरमत्या भ्रेयमिलाहु । विकाशित्वादिति दोषावृत्तस्रोतोविशो-षक्तवादिल्यर्थ । रीद्यादिल्यत्र वैशद्यादिल्पि पाठान्तरम् , पैन्छिल्यरहितत्वादि-लर्थ । एतच्च षितनो जीर्यावस्थायां श्रह्यया देयमिलाहु ॥ ४॥

> शुएटीं समुस्तातिविषां गुडूची पिवेज्जलेन कथितां समांशाम्। मन्दानलत्वे सततामताया-मामानुवन्धे बहुणीगदे च॥४॥

शुण्ठीमिलादि सततामतायामिति सर्वदा भामकोष्ठतायाम् । आमानुबन्ध इति आमे प्रवर्त्तमान इलाहु । ब्रह्णीगृद्विशेषणनया पुनरामानुबन्ध इति काचित् पाठो दृश्यने ॥ ५ ॥

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम् ।

वलाडिपर्णीविल्वञ्च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ ६॥

धान्यकेलादियोग काथेन ॥ ६॥

चित्रकगुडिका

चित्रकं पिण्यलीमूलं द्वौ ज्ञारौ लवणानि च । व्योपिहेंग्वजमोदाञ्च चव्यञ्चेकत्र चूर्णयेत् ॥ गुडिका मातुलुद्गस्य दाडिमाम्लरसेन वा । छता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ सौवर्चलं सैन्घवञ्च विडमीद्भिटमेव च । सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत् ॥ ७ ॥

चित्रकमित्यादि—चरकस्य । अत्र किषज्ञलाविकरणकन्यायात् केषिष्ठवण-मिन्छन्ति, तत्र, 'पट्टिन पञ्च दौ हारौ मिरच पञ्चकोलकम् । दीप्यक हिंगु-ग्रीहका वीजपूरमे कृता । कोलदाहिमतीये वा पर पाचनदीपनी ' इति वाग्मट- वचनात् । श्रतप्व चक्रोऽप्याह मौवर्चलिमत्यादि—श्रीद्भिद शाम्वरिलवणम् , उत्कारिकेत्यन्य । सामुद्रक करकचम् । गुडिकेयमार्द्रकरसेनापि वेध्या श्रायुर्वेदमार-दर्शनात् ॥ ७ ॥

श्रीफलादिः

श्रीफलशलादुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः। ग्रह्मणीगदमत्युग्रं तक्तभुजा शीलितो जयित ॥ ८ ॥ श्रीफलेत्यादि—नागरचूर्णं कदुलमात्रकृत्। सगुड इति समगुडः। अय योगो बाते इत्याहुः॥ ८ ॥

पञ्चपल्लवम्

जम्बूदाडिमश्रङ्काटपाठाकञ्चटपत्नवैः । पकं पर्य्युषितं बालवित्वं सगुडनागरम् ।

हन्ति सर्वानतीसारान् प्रहणीमतिदुस्तराम् ॥ ६॥

जम्बूदाडिमेत्यादि—एवा पश्चवैरास्तरण कृत्वा अनुरूपञ्च जल दत्त्वा बाल-विस्वमुत्स्वेष पर्य्युषित कार्य्यम् । सगुडनागरमिति विस्वसमो गुड , नागरचूर्यन्तु कटुत्वमात्रकारकम् । रक्ते तु नागर न देयम् । उत्स्वेदनरेषजलमनुपेयमित्याहु-र्षुद्धाः ॥ १ ॥

नागरातिविषामुस्ताकाथः स्यादामपाचनः। चूर्णं हिङ्ग्बष्टकं वातग्रहएयान्तु घृतानि च ॥ १०॥ नागरेत्यादि स्पष्टम् । हिङ्ग्बष्टकमिमान्ये वस्त्यमाणम् ॥ १०॥

नागराद्यं चूर्णम्

मागरातिविषामुस्तं धातकी सरसाञ्जनम्।
तिविष्तम् ।
तिवित् समांशं तच्चूर्ण सत्तौद्रं तग्रुलाम्बुना।
पैतिके प्रह्मणीदोषे रक्तं यश्चोपवेश्यते॥
प्रशांस्यथ गुदे ग्रुलं जयेचैव प्रवाहिकाम्।
नागराद्यमिदं चूर्ण कृष्णात्रेयेण पूजितम्॥

शीतकपायमानेन तगृहलोदककरूपना। केऽप्यपृगुणतोयेन प्राहुस्तगृहलभावनम्॥ ११॥

नागराधन्यूंणे सन्दौद्रभिति मधुप्रनेपयुक्तम् । कृष्णात्रेय पुनर्वसु । तण्डुलाम्नुनत्यादि । तण्डुलाम्नुना तण्डुलधावनाम्नुना । तम्ब तण्डुलाम्नु कथ
कर्त्तन्यमिति जिज्ञासाया स्वमत वृन्दमतन्नोपन्यस्यित शांतकपायमानेनेत्यादि—
शांतकषायिवधानन्न ' चुण्णमुष्णाम्मासे न्युष्ट शांतमाङ्गश्चिकित्सकाः ' इति जलमत्र तण्डुलमपेन्य पद्गुण याद्यम् । उक्त हि ' पद्भि पत्रश्चतुर्भिन्दां सिललान्ध्रीतकाय्य्यो ' इति । वृन्दमतमाह केऽपीत्यादि—अन्ये तु द्विगुणमम्बु तण्डुलेन
मम चिर स्थित तण्डुलाम्बु वदन्ति । अपरे तु अनियततण्डुलमनियतजलेन
प्रचाल्य जल गृहन्ति ॥ ११ ॥

भूनिम्बाद्यं चूर्णम्

भूनिम्बकदुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान् समान् । द्वौ वित्रकाद् वत्सकत्वग्मागान् षोडश चूर्णयेत् ॥ गुडशीताम्बुना पीतं त्रहणीदोषगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाग्हत्वमहारुव्यतिसारनुत् । गुडयोगाद् गुडाम्बु स्याद् गुडवर्णरसान्वितम् ॥ १२ ॥

भूनिन्वेत्यादि — द्वी चित्रकात तथा वत्मकत्वरमागान् पोडरोति—प्रथमभागा-पच्या दिमागपोडरामागपरिम्रहः । गुडसुक्त शीतान्तु गुडशांतान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्रान्तु गुडशांत्राम्य गुण्यवर्णतामाधुर्यापित्तवनको देय इत्याह गुडयोगादित्यादि । वैद्यप्रसारके तु सर्व-चूर्णसमो गुड शीतलजलेन च पानमित्युक्तम् । व्यवहारस्तु पूर्वेणेव । पैत्तिकमह-प्यामम्लिपित्तचिकित्सितमपि वोध्यम् । तदुक्त वद्यप्रदीपे व श्वम्लिपत्तिहत यश्च पान मोजनभपनन् । पैत्तिके ग्रहणोदोषे तत्मवंग्रपकलपयेत् श्वित ॥ १२॥

्रश्रहिण्यां श्रेष्मदुष्टायां विभितस्य यथाविधि । कट्वम्ललवणज्ञारैस्तीव्णैश्चाश्चि विवर्द्धयेत् ॥ १३ ॥ श्रहण्यामिलादि स्पष्टन् ॥ १३ ॥ समूलां पिष्पलीं ज्ञारी द्वौ पञ्चलवणानि च । भातुनुद्वामयारास्नाशटीमरिचनागरम् । कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिवेत् प्रातः सुखाम्बुना ॥ स्हैष्मिके ग्रह्मणीदोषे वलवर्णाग्निवर्द्धनम् । पतेरवाषधः सिद्धं सर्पिः पेयं समारुते ॥ १४ ॥ समूलामित्यादि । मातुद्धक्तस्यात्र मूलन् । एतिरिति पिप्पलीमूलादिभिः कल्करूपैः ॥ १४ ॥

भन्नातकचारः

भह्नातकं त्रिकदुकं त्रिफला लवणत्रयम्।
श्रन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीपाशिना दहेत्॥
स ज्ञारः सर्पिपा पेयो भोज्ये वाप्यवचारितः।
हत्पाग्डग्रहणीदोपगुल्मोदावर्त्तश्रलनुत्॥ १४॥

भह्नातकमित्यदि—चरकस्य । गोपुरीपाभिनेति श्रविन्त्यप्रभावात् सयोग-नंत्कारजशकोनामिति । स चार शति भह्नातकादीनामन्तर्ष्मवाद्यत् य चारः स एव सर्पिवा पीत इत्यर्थः । मोच्ये व्यक्षने वा स चारो देय ॥ १५॥

सर्वजायां प्रहर्यान्तु सामान्यो विधिरिप्यते ॥ १६ ॥ सर्वजायामिलादि सामान्यो विधिरिति प्रलेकदोषोक्तचिकित्सामेलकेन विदेशपग्रहरीविकित्सा कार्योलर्थः ॥ १६ ॥

चूर्णिमरिचमहौपघकुटजत्वग्भवं क्रमाद् द्विगुणम्। गुडमिश्रमधितपीतं ग्रह्णीदोपापहं ख्यातम्॥ १७॥ चूर्णमिलादि—गुडमिश्रनकेणालोह्य पीतमिलर्थः॥ १७॥

पाठाद्यं चूर्णम्

पाठाविल्वानलन्योपजम्बूदाडिमघातको ।
कडुकातिविषामुस्तदावींभूनिम्ववत्सकैः ॥
सवैरेतैः समं चूर्णं कौटजं तग्रुलाम्बुना ।
सत्तौद्रश्च पिवेच्छिर्दिज्वरातीसारग्रुलवान् ।
तुड्दाह्रग्रहणीदोपारोचकानलसादितित् ॥ १८ ॥
पाठादिचूर्णे जन्मुक्लासि, पत्तसाहचर्यात् दाहिमफलस्यापि बोजन् ।

बत्सक इन्द्रववः ॥ १=॥

कपित्थाएकचूर्णम् ।

यमानीपिष्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः।
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसीवर्चलैः समैः॥
वृत्ताम्लंधातकीकृष्णाविल्वदाडिमतिन्दुकैः।
त्रिगुणैः पड्गुणसितैः कपित्थाएगुणै कृतः॥
चृणौऽतिसारम्हणीत्त्रयगुरमगलामयान्।

कासं श्वासार्वि हिकां किपत्थाप्रमिदं जयेत् ॥ १६॥ यमानीत्यादि— अम गोगो नागमेट अतीसार्विकितिते लिखित. । अमिन्धित्रक , जल नालकम् । स्मेरिति सममागं । वृत्ताम्ल महाईकम् । त्रिगुखैरिति एकमागोपेत्रया वृत्ताम्लाटीन पर्णा प्रत्यक त्रिगुखल्यम् । पर्गुखिरिति एकमागोपेत्रया वृत्ताम्लाटीन पर्णा प्रत्यक त्रिगुखल्यम् । पर्गुखिरिति एकमागोपेत्रया वृत्ताम्लाटीन पर्णाप्रणे कृत हित सिताकित्ययोगिप पर्गुखाप्तकगुण्ये एकगुण्योपेत्रयेन, प्रते कृतचूण्यं हित योज्य । अरुणस्तु नागम्यदीकाया पर्गुखितिरिति पद वृत्ताम्लादिनिन्द्रकान्तानां निरेषण्या व्याख्याय मिलितवृत्ताम्लादिद्रव्यपर्कापेत्रया सिताया पर्गुखल्यमाह । तथा मिति सितामागानां शतमप्राधिक भवति । अन्ये तु पर्गुखिनिते कापित्थाप्रगुणे हिते कापित्थाप्रगुणे हिते पठन्ति, व्याख्यानयन्ति च— एकमागापेत्रया कापित्थ-स्वाष्टगुण्यान्त्रम्, अष्टगुणकिति भवति । अपरे तु पर्गुखिनित, कित्राष्टगुणोम्बत्त इति चृर्णविरोपण कृत्वा समुदितचूणांपेत्रया सिताकिपरथयो पर्गुणाप्रगुणान्त्रमाह । एतन्मतत्रयमपि न व्यवहारसिद्धम् , शर्कराकिपरथयोरतिनहत्वा दिति । तसादेकमागापेत्रवैय पर्गुणाप्रगुणत्वमिति । कपित्थभागाधिकयादस्य कपित्थप्त हित सन्ना ॥ १६॥

दाडिमाष्टकः।

कर्षोन्मिता तुगाचीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ॥
यमानीधान्यकाजाजीय्रन्थिच्यापं पलांशिकम् ॥
पलानि दाडिमाद्धौ सितायाश्चैकतः कृतः ।
गुणैः कपित्थाप्टकवच्चूणेंऽयं दाडिमाप्टकः ॥ २०॥
कर्षोन्मितीति—वाग्मटस्य । तुगाचीरी वशलोचना, चातुर्जात स्वगेलापत्रकेशरम् । दिकार्षिकमिति प्रत्येक, निर्देशस्य द्रव्यप्रधानलांष् । एव यमान्या-

दिकमपि प्रत्येक पलाशिकम् । बन्धिक पिप्पलीमूलम्, दाहिमस्यात्र फल " फलन्तु दाहिमादीनान् " इत्युक्ते । एवमन्यत्रापि । चकारात् सिनाया अपि अष्टी पलानि ॥ २ ॥

वार्त्ताकुगुडिका

चतुष्पलं सुधाकाग्डात् त्रिपलं लवग्त्रयात्। वार्ताकुकुडवश्चार्कादृष्टो द्वे चित्रकात् पले। दृग्ध्वा रसेन वार्त्ताकोर्गुडिका भोजनोत्तराः। सुक्का सुक्कं पचन्त्याशु कासभ्वासार्शसां हिता। विसूचिकाप्रतिश्यायहद्रोगद्वाश्चं ता मताः॥ २१॥

चतुष्पलिमत्यादि—नाग्मटस्य । श्रिपल लवणत्रयादिति मिलित्वा, निदेशस्य मानप्रधानत्वात् । त्रिफला लवणानि चेति ये पठिन्नि, ते त्रिफलालवणीमिलित्वा चतुष्पल वटन्ति पूर्वोक्तचतुष्पलिमत्यस्यापि सम्बन्धात् । लवणान्यविशेषात् पञ्चे-वेत्याहु. । वार्चाकुकुडव इति शुष्कवार्चाकुपलचतुष्ट्य, व्यवहारात् । श्रकीदिति श्रक्तमूलात् । दग्ध्वा रसेन वार्चाकोरिति श्रन्तार्थ्म दग्ध्वा चारिकृत्य वार्ताकुरसेन गुडिका. कार्य्या इत्यर्थ. । दग्धानि वार्चाकुरम इति च पाठ. । भोजनोत्तरा इति माजनमुत्तर पश्चात्कालीन यामा तथा । किंवा भोजनादुत्तरा । भुक्ता पचन्तीत्यत्र भुक्त भुक्तमित्यपि पाठ ॥ २१॥

अष्टपलं घृतम्

ज्यूपण्त्रिफलाकलके विल्वमात्रे गुडात् पले । सर्पिपोऽप्रपत्तं पक्त्वा मात्रां मन्दानतः पिवेत् ॥ २२ ॥

त्र्पणेलार्दाः—विल्वमात्र इति पड्मिभिलित्वा पलमात्रे, करकैस्य पादिक-त्वाद् । चतुर्गुणजलेनाष्टपलष्टनस्यात्र पाक । इत्थमेव फलदानसम्स्यमस्य भवतीति महर्षिवचनादुन्नीयते । मात्रामिति श्रमिवलानुरूपपरिमाणम् ॥ २२ ॥

विन्वगर्भघृतम्

मस्रस्य कपायेण विल्वगर्भ पचेद् घृतम् । हन्ति कुच्यामयान् सर्वान् ग्रहणीपाण्डकर्मलाः । केवलं त्रीहिपाण्यक्वसायो च्युष्टस्तु दोषलः ॥ २३॥

f

मस्रसेलादि—मस्रस्य काथोऽलन्तिशिथलपोइलक बद्ध्वा कार्य । एव मापकुलत्यादीनामिष । बिल्वगर्ममिति बिल्वशलाइकल्कम् । धृतमत्र प्रस्थमानमेव । मीहिमासकाथस्य तदह कार्य्यतामाह केवेलत्यादि—जन्त्वक् ञ्चागादिमासम् । केवलमिति पाठे केवल समग्रयथा स्यात् तथा न्युष्टो रात्रिन्युषितो दोषल , यावता कालेन व्यम्लीमवित म एव दोषल इत्यं । केवलमीहिजन्त्वक्षपाठे तु द्रव्यान्तर-सयुक्तमीह्मादिकाथस्य न दोषलत्विमत्याहु । तत्तु न व्यवहारसिद्धम्, श्रतएव वृन्दे " मीहिप्राययक्षयो काथ व्युषित दोषल मतम् " इत्येवोक्तम् । व्युष्टित पदसिद्धिन्तु न्युष्टादिम्योऽण् इति स्वनिर्देशात् ॥ २३॥

शुएठीवृतम्

विश्वीपधस्य गर्भेण दशमूलजले श्टतम् । घृतं निहन्याच्छ्लयथुं ग्रहणीसामतामयम् ॥ २४॥

विश्वीपथस्येत्यादि — यह्यां सामतामयमिति यह्यां नाड्याक्षितो यः सामता-रूप भामयो रोगस्तमित्यर्थ ॥ २४ ॥

नागरचृतम्

घृतं नागरकलेकन सिद्धं वातानुलोमनम् । प्रहृ्णीपाएहरागम्नं सीहकासञ्चरापहम् ॥ २४ ॥ धतिमत्यादौ जल चुतुर्गुणम् ॥ २४ ॥

चित्रकष्टृतम्

चित्रककाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्रं श्टतं हवि । गुरुमशोथोदरप्तीहग्रुलाशोंघ्रं प्रदीपनम् ॥ २६॥ चित्रकश्त सप्टम् ॥ २६॥

विन्वादिघृतम्

विल्वाग्निचन्याईकश्टक्षवेर-काथेन कल्केन च सिद्धमाल्यम्। सच्छागदुग्धं श्रह्मणीगदोत्थ-शोथाग्निमान्द्याचित्रद्वरिष्टम्॥२७॥ विल्वानीत्यादी—आईकेति शृङ्गवेरिवशेषण, तेन शुष्कस्य शुण्ठीरूपस्य निराम । विल्वादीना काथिस्रिगुण, चतुर्गुण इत्येके । झागचीर स्नेहसमम् ॥२०॥

चाङ्गेरीघृतम्

नागरं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली।
श्वदंष्ट्रापिष्पली घान्यं विल्वं पाठा यमानिका॥
चाइरीस्वरसे सिंपः कल्कैरेतैविंपाचितम्।
चतुर्गुणेन दथ्ना च तद् घृतं कफवातनुत्॥
श्रशांसि प्रहणीदोषं मूत्रक्रच्छं प्रवाहिकाम्।
गुद्भंशार्तिमानाहं घृतमेतद्वयपोहति॥ २=॥

नागरिमत्यादि—अत्र हस्तिपिप्पली चवी, जत्कर्णमवादात् । तद् यथा
" दिधियान्यविल्वपाठायमानिकापञ्चकालगोद्धरकै । चान्नेरीस्वरसे सिर्पर्श्वति सृतिमूत्राचितुद् ग्राहि " इति । द्रव्यावल्याञ्च हस्तिपिप्पली चवीपर्य्यायत्वेन दृश्यते
" चिवका कोलवल्ली च हस्तिपिप्पल्यपीष्यते " इति । विल्वस्थाने विद्यापाठोऽपि
जत्कर्णसवादादेव न भवित । चान्नेरीस्वरसोऽप्यत्र चतुर्गुण् । चतुर्गुणेन दशा
चत्यत्र चकारस्य ममुच्यार्थत्वात् , आयुर्वेदसारेऽपि " चतुर्गुणेन दशा च चान्नेरीस्वरसेन च " इत्युक्तम् । अन्ये तु " स्वरसे चीरवद्विधि " इति वचनात्व
चान्नेरीन्वरमश्च केहसम इत्याद्व , व्यवहारस्तु पूर्वव्याख्ययेव ॥ २०॥

मरिचाद्यं घृतम्

मरिचं पिष्पलीमूलं नागरं पिष्पली तथा।
मिल्लातकं यमानी च विडकं हस्तिपिष्पली ॥
हिङ्गु सौवर्चलञ्जैव विडसैन्घवचव्यथ।
सामुद्रं सयवत्तारं चित्रको वचया सह ॥
पतैरईपलेभीगैधृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलीरसे सिद्धं पयसा हिगुणेन च ॥
मन्दाग्नीनां हितं सिद्धं ग्रहणीदोषनाशनम्।
विप्रम्ममामं दौर्वल्यं सीहानमपकर्षति॥
कासं श्वासं चयञ्जैव दुर्नामसभगन्दरम्।

कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् क्रिमिसम्भवान्। तान् सर्वान् नाशयत्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा॥ २६॥

मरिचाच्छते विदङ्गीनभवचवीति समाहारद्वन्दः । किंवा विदङ्गीनभवयुका चवीति मध्यपदलोपी समाम । दिग्रेणन चेति चकाराहरामृलीकाथोऽपि दिगुण । श्रन्य तु दशमूलीग्मश्चतुगुण इत्यादु , न्यवहारस्तु पूर्वेशिव ॥ २६ ॥

महापट्पलकं घृतम्

सौवर्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं द्वुपां वचाम्। श्रजमोदां यवचारं हिङ्गु जीरकमौद्भिदम् ॥ कृष्णाजाजीसभूतीकं कल्कीकृत्य पलाईकम्। ब्राईकस्य रसं चुकं चीरं मस्वम्लकाक्षिकम् ॥ दशमूलकपायेण घृतप्रसं विपाचयेत्। भक्तेन सह दातव्यं निर्भक्तं वा विचच्एं ॥ किमिसीहोदराजीर्ण्ज्वरकुष्ट्रप्रवाहिकाम्। वातरोगान् कफव्याधीन् हन्याच्छूलमरोचकम्॥ पाएहरोगं चयं कासं दौर्वल्यं ग्रह्णीगदम्। महापद्पलकं नाम बृक्तमिन्द्राशनियथा ॥ ३०॥

मौवर्चलेत्यादी-पञ्चकोल मिलितार्द्धपल, कल्कस्य पट्यलरूपवात् । इतुपा स्वनामख्याता, ऋष्णाजाजी ऋष्णजीरकम्, मूतीक यमानी । सावर्चलादीना प्रत्येकमर्द्रपलम् । अत्र वचिति न पाठ किन्निह विडमित्येव, चन्द्राटादी दृष्टत्वात् । श्राहकम्बरसादीना परुखा द्रवाखां प्रत्येक स्नेहममत्व ''पञ्चप्रमृति यत्र स्य '' इत्युक्ते ॥ ३०॥

् स्वल्पचुक्रम् यन्मस्त्वादि शुचौ भागडे सगुडचौद्रकाञ्जिकम् । धान्यराशो त्रिरात्रस्यं शुक्तं चुकं तदुच्यते। द्विगुणं गुडमध्वारनालमस्तु क्रमादिह ॥ ३१ ॥

स्तरमनुक्रमाइ यदित्यादि-मस्त्वाडीत्यस्य विशेषण सगुडेत्यादि । आदि-शन्दाइधि तक्रज्ञ,मस्तुस्थाने यत्, तदपि मस्तुसम आद्यमिति । अन्ये तु श्रादिभृत मन्तु प्रथमे। त्थित मस्त्वित्याहु.। त्रिरात्रस्थमिति ग्रीष्माभित्रायेख, वर्षादिषु पुन-र्वद्यमाखारुटच्चुकवदवस्थापनकालव्यवस्था। श्रम्लत्व यावद्वा भवतीति ॥३१॥

बृहच्चुक्रम्

प्रस्थं तरहलतोयतस्तुषजलात प्रस्थत्रयञ्चाम्लतः
प्रस्थार्द्धं द्धितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके।
मान्यौ शोधितश्रद्धवेरशकलाद् द्वे सिन्ध्वजाज्योः पले
द्वे कृष्णोपण्योनिशापलयुगं निक्तिप्य भार्रेड दृढे॥
सिन्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन् वासरान् स्थापयेद्
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे।
पद् शितेऽप्रदिनान्यतः परिमदं विस्नान्य सञ्चूर्णयेत्
चातुर्जातपलेन संहितिमदं ग्रुक्तञ्च चक्तः तत्॥
हन्याद्वातकफामदोषजनितान् नानाविधानामयान्।
दुर्नामानिलगुरमञ्जलजठरान् हत्वानलं दीपयेत्॥ ३२॥

वृहच्चुक्तमाह प्रस्थितत्यादि — तुपजलादिति सतुपयवक्रतसन्थानात्, तदभावे कााक्षिकात् । अम्लत इति तुपजलस्य दक्षश्च विशेषण्यम् । अम्लमूलक कााक्षिकाथ - विसमूलकमित्यादुर्वृद्धा । मानिके इति मानिकाद्वयम्, मानिका पलान्यष्टी, तेन पाटशपलिमल्यथे । शोधितश्वक्षवेरशकलादिति निस्तुषाईकल्यहात् । हे कृष्णे-पण्योतिति कषण् मरिचम् । तोयथराल्यये चेति चकारादत्रापि त्रीन् वासरान् स्था-पयेत् । शोत इत्यनेन हेमन्तशिशियोरेव ग्रहण्यम् । विस्रान्येति वरुपूत कृत्वा चातुर्जातपलेन मिलित्वा पलमात्रेण । सन्त्यूर्णयेत् अवन्यूर्णन कारयदिति ॥ ३२ ॥

तक्रारिष्टम्

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशकम्। लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत्॥ तक्रकंसासुतं जातं तक्रारिष्टं पिवेन्नरः। दीपनं शोथगुर्ह्माशःकिमिमेहोदरापहम्॥ ३३॥

तक्रारिष्टे त्रिपलाशक तथा पलाशानीत्यपि प्रत्येक श्रेयम् । तक्रस्य कसे आदके आसुत कृतसन्धानम् । जातमिति श्रम्लरसतया जातम् ॥ ३३ ॥

ऋायामकाञ्जिकम् वाट्यस्य दद्याद् यवशक्तुकानां पृथक् पृथक् त्वाढकसाम्मितञ्च। मध्यप्रमाणानि च मूलकानि द्याचतु पप्रिसुकिएतानि ॥ द्रोगेऽम्भस भाव्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेपजजातयुक्तम्। चारहय तुम्बुरुवस्तगन्धा-धनीयकं स्याद्विडसैन्धवञ्च॥ सौवर्चलं हिङ्गु शिवाटिकाञ्च चव्यञ्च दद्याद् द्विपलप्रमाण्म्। इमानि चान्यानि पलोनिमतानि विजर्जरीकृत्य घटे विषेच ॥ कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकाञ्च नथासुरीकारविचित्रकञ्च । पत्ति खता अयं वलवर्ण देह-वयस्करोऽतीव वलप्रदश्च॥ कान् जीवयामीति यत प्रवृत्त-स्तत्काञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्का । श्रा यामकालाजरेयच मक्र-मायामकेति प्रवद्क्ति चैनम्॥ दकोदरं गुल्ममथं शिहानं हद्रोगमानाहमरोचकञ्च। मन्दाग्नितां कोष्टगतञ्च श्रल-मर्शीविकारान् समगन्दरांश्च । वातामयानाशु निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानं विधिवन्नराणाम्॥ ३४॥ श्रायामकाशिकं वाट्यस्थेति निस्तुपदरदिलतयवमण्डस्य तथा यवशक्तुकानाञ्च प्रथक् पृथगाउत्तमम्मितमित्यादकप्रमाणम् । मम्मितमिति भावे कः । चतु पृष्टीत्या-कृतिमानेन । मुकल्पितानीति खण्डमण्डाकृतानि । सान्यत्यासान्य । तुम्बुरू विगग्दन्यम्, वस्तगन्था फीकान्धी (श्रजगन्धा), शिवाटिका वशपत्री (हिंड्युपत्री), कृष्णा विष्पती, उपकुश्चिका स्थूलकृष्णजीरक , श्रासुरी राजिका, कारिव सुगन्धि सद्मकृष्णनीरकम् । श्रा यामकालादिति याम प्रहरस्य काल तमवधीकृत्य ॥३४॥

कल्याग्गगुडः

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य गुद्धस्य दचार्द्धतुलां गुडस्य । चूर्णांकृतेर्प्रन्थिकजीरचव्य-व्योपेभरूप्णाहबुपाजमोदै ॥ विडङ्गसिन्धुत्रिफलायमानी-पाठाग्रिधान्यैश्च पलप्रमार्ण । दच्या त्रिवृच्चूर्णप्लानि चाप्टा-वष्टों च तैलस्य प्रवेद् यथावत्॥ तं भत्तयेदत्तफलप्रमाण् यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम्। श्रनेन सर्वे ग्रहणीविकारा सभ्वासकासस्वरभेदशोथा ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराग्ने-हितस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतु । स्त्रीणाञ्च वन्ध्यामयनाशनोऽयं कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्ट ॥ तैले मनाग् भर्जयन्ति त्रिवृदत्र चिकित्सका । श्रत्रोक्तमानसाधर्म्यात् त्रिसुगन्धि पत्तं पृथक् ॥ ३४ ॥ प्रस्थत्रवेखेत्यादि---श्रय योग सुश्रुते कासप्रतिपेषे पठित' । श्रत्र प्रन्थिक पिप्पलामूलम्, अनमोदा यमानी अन्त.परिमार्जनत्वात्, अतो यमान्या माग- द्रयम् । श्राणिश्चित्रकः । पलप्रमाणैरिति प्रत्येकम् । विष्टुच्चूर्णं तैले मनाग् भर्ज-नीयम्, भर्जनेन च तस्य मन्द्रवीर्थत्नाद्रनिविरेचकत्व न भवति । श्रद्धणलप्रमाण कर्षम्, व्यवहारस्तु चतु पद्धमापकैरिति । त्रिस्चगन्धि त्वगेलापत्रकम् । त्रिष्टुच्चूर्णं-सिहत एव तैले गुडमामलकीरसगोलित प्रदाय पाकः, सिद्धे च लेष्टे शन्धिकादि-चूर्णप्रचेप इति व्यवहारो वंधानाम् । श्रनेकिमानमाधर्म्यादिति श्रन्थिकादिचूर्णस्य प्रत्येक पलमानत्वसुक्षम् तत्माहचर्यादित्यर्थः ॥ ३५ ॥

क्षमागडगुडकन्याग्यकम्

कूष्माएडकानां रूढानां सुस्वित्रं निष्कुलत्वचाम् । सर्पिः प्रस्थे पलशतं ताम्रभाराडे शनैः पचेत्॥ पिष्पली पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली । थान्यकानि विडङ्गानि यमानी मरिचानि च ॥ त्रिफला चाजमोदा च कलिङ्गाजाजिसेन्धवम्। एकैकस्य पलञ्जैव त्रितृद्रपुपलं भवेत्॥ तैलस्य च पलान्यष्टी गुडपञ्चाशदेव तु। प्रस्यैस्त्रिभिः समेतन्तु रसेनामलकस्य तु। यदा दर्वीप्रलेपस्तु तदैनमवतारयेत्॥ यथाशक्ति गुडान् कुर्यात् कर्पकर्पाईमानकान्। श्रनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमान्॥ प्रसद्य प्रहणीरोगान् कुष्ठान्यशौभगन्दरान् । ज्वरमानाहृहद्रोग गुल्मोद्र्विस्चिकाः॥ कामलापाग्डरोगाश्च प्रमेहाश्चेव विंशतिम्। वातशोणितवीसर्पान् ददुचर्महलीमकान्। कफिपत्तानिलान् सर्वान् प्रकढांश्च व्यपोद्दति॥ व्याधित्तीणा वयःत्तीणाः स्त्रीषु त्तीणाश्च ये नराः,। तेषा बुष्यञ्च वत्यञ्च वय स्थापनमेव च। गुडकल्याणुकं नाम वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ ३६॥ कूप्पाण्डकानामित्यादि — रूढानामिति मम्यक्पकानाम् मम्यक्पाकश्च सर- त्मरातीतत्वेनेव भवतीति । तादृशस्य कृष्मायङस्य खयङखयङीकृतस्य त्यक्तवीज-मश्ररीवत्कलस्य त्वचा कृतास्तर्यस्य किञ्चित् पानीय दत्त्वा जित्स्वन्नस्य निष्पीङ्य गलितरमस्य पिष्टस्यातेषे किञ्चिच्छुष्कस्य पलशत ग्राह्मम्, ततस्तस्य वृतशराव-वतुष्टये तेलस्य चाष्टपेले सन्तलन कार्य्यम् । तत आमलकस्वरमस्य द्वादशशराविण पद्याशद्गुडपलान्यालोङ्य, तत पूत्वा मन्तलितकुष्मायङादिकमेन्द्रस्य क्ष्मिण्यानि क तते। गुडपाकविषया अवतारिते पिष्पल्यादिचूर्णस्य प्रचेष इत्स्य क्ष्मिणमात्री क प्राय क्षांदेनेत्याहु ॥ ३६॥

रसपर्धिका

याम्लिपत्ते विधातव्या गुडिका च नुभावहीः तत्र प्रोक्षविधा गुद्धौ समानौ रसगन्धको । सम्मर्ध कज्जलाभन्तु कुर्यात् पात्रे दृढाश्रये । नतो वाद्रविद्वस्थलोहपात्रे द्रवीकृतम् ॥ गोमयोपिर विन्यस्तकद्लीपत्रपातनात् । कुर्यात् पर्पटिकाकारमस्य रिक्तद्वयं कमात् ॥ द्वादशरिक्षकां यावत् प्रयोग प्रहारार्द्धतः । तद्द्ध्वं वहुपृगस्य भक्तणं दिवसे पुनः ॥ तृतीय पव मांसाज्यदुग्धाद्यत्र विधीयते ॥ वर्ज्यं विदाहिस्त्रीरम्भामूलं तेलञ्च सार्षपम् । जुद्रमत्स्याम्बुजखगांस्त्यक्त्वोित्रद्वः पयः पिवेत् ॥ ग्रहणीक्तयकुष्ठार्शःशोपाजीर्णविनाशिनी । रसपर्पटिका ख्याता निवद्धा चक्रपाणिना ॥ ३७॥

मिद्धफला रसपर्पटीमाह याम्लत्यादि—तत्रेति तत्र चुधावत्या भोक्तविधा यो रसगन्धकशुद्धिप्रकारो वक्तव्य , तेन शुद्धावित्यर्थ । नत्र सगन्धक रस दृढाअये खल्विशालाया सम्मर्थ कञ्जलाम चूर्ण कुट्यात । वादरविह्नस्थिति वदरदारुसन्धु- चिताशिस्य इत्यर्थ । शुद्धपारदक्षरे १, शुद्धगन्धककर्ष १, पूत्रद् ह्य खल्वे तावद्धपेणीय लोहदर्गेद्धन पापाणदर्गेद्धन वा, यावत् कञ्जलाम् अवित तिती सिंद्र्विकाया- मेतच्चूर्णं दस्वा वदरागारोपिर विन्यस्य लोह्नदर्गेद्धन सञ्चाल्य यदा द्रवीभूत् सुवित,

तदा आईगोमयिष्ण्डेष्पिरस्थापितकोमलकदलापित्र दालनीयम्, अपरम्प्रलीपयान्तरेण मम्मीक्य पर्पिटकाकृति कार्या । राक्तिस्य कमादिति अथम गुआसुगल्, पितिहन-मेकैकवृद्धिते। भक्त्यमिति क्रमादित्यर्थ । पर्थे कृत्वा मम्भद्द्य छिनुसभामका जीरक-सुआद्द्यक्य भक्तणीयम् । तत च्या स्थित्वा दन्तादिलस्य प्रचाल्य जलचुल्का पातन्यमित्सुपदेशः । प्रहगदंत इति प्रहराद्धंभ्यन्तरे । तदृद्ध्वमिति प्रहगर्झादृष्ट्वम् नृतीये दिश्वम बित् मेम्बन्थ ॥ ३७॥

ताम्रयोगः

स्थाल्यां सम्मर्च दातव्यौ मापिकौ रसगन्धका।
नखलुएएं तदुपरि तएहलीयं द्विमापिकम् ॥
ततो नैपालताम्रादि विधाय सुकरालितम् ॥
पाश्चना पूर्यदृष्ट्वं सर्वा स्थालीं ततोऽनल ॥
स्थाल्यधो नालिकां यावदेयस्तेन मृतस्य च।
ताम्री ताम्रस्य रक्त्येका त्रिफलाचूर्ण्रिकका ॥
त्रयूपणस्य च रक्त्येका विडहस्य च तन्मधु।
घृतेनालोड्य लेढव्य प्रथमे दिवमे ततः॥
रिक्षवृद्धि प्रतिदिनं कार्या ताम्रादिपु त्रिषु।
स्थिरा विडहरिकस्तु यदा भेदो विचित्तितः।
नदा विडहरिकस्तु यदा भेदो विचित्ततः।
नदा विडहरिकस्तु यदा भेदो विचित्तितः।
बादशाहं योगवृद्धिस्ततो हासकमोऽप्ययम्
प्रह्णीमम्लिपत्तञ्च त्त्रयं युतं च सर्वदा।
नाम्रयोगो जयत्येप चलवणीयिवद्येनः॥ ३६॥

इति ग्रह्णीचिकित्सा।

तात्रयोगमाह म्याल्यामिखादि सत्रापि रसगन्धकौ नुधावतीगुडिकोक्त-विषया शोधितं। आर्द्धा। सुकरालितामिति पिष्टमक्तासिवथकेन नीरन्ध्रलेपितामित्यथे। पाशुना वालुक्तया। नालिका घटीमेका यावदनलञ्चाला म्याल्यथे। देयेत्यथे। त्रिफलाया मिलित्वा चूर्णरिक्तका एव त्रिकटोरि। सर्वामद चूर्ण विडद्वान्त महुष्टताभ्यामालोक्य लेह । विडद्वरिक्तका पुन स्थिरा न न्यूनाधिकमात्रा रत्यर्थ। यदा पुनः कोष्ठिवनधाध्मानादिषु विरेकोऽपेचितो मर्वति, तैदेव पर विडक्षस्य रिक्तद्य याद्यमित्यर्थ । अस्य च पत्री यथा—शोधितरसगन्धकप्रमा १, एतद् द्वय कज्जलीकृत्य दृदन्तनपातिलिकाया स्थाप्यम् । तदुपरि तण्डुलीयकशाकमूलचूर्णस्य माषकद्वयमङ्गुलीद्वयेन गृहीत्वा देयम् । अनन्तरमेतत् सर्व कर्यटक्वेषयोग्येन नैपालताअपञ्चदशमापकेण कृतताअथा अम्बरोलिरसमावितया ढक्षनीयम् । ढिक्षत्वा पिष्टमक्षसिक्थकेन ताञ्जिकाया रम्भलेपन कार्य्यम् । तत स्थालोमध्यस्मितायास्ता- जिकाया उपित ता स्थालो वाञ्जकया पूरियत्वा, तदधी घटिका यावत् ज्वाला देया । यव कृतताअदिक १, मिलितिश्रकलाचूर्णरिक १, तथा मिलितिश्रकडचूर्णरिक १, विडगचूर्णरिक १, पतत् सर्व कृतमधुम्यामालोक्य लेखम् , शीतलजलमनुपयेम् , प्रथमितने । पव द्वादशदिनपर्यम्त रिक्रमेका कृत्वा वृद्धि । वृद्धिवत् हासक्रमोऽपि एवमेव क्षेयम् । रसगन्धकलचाणञ्च योगरलाकरे यथा—'मुक्ताफलसम किग्ध वन निम्पटल गुरु । चपल चपल शस्त वदन्ति भिषजा वरा वपलमिति रम्, द्वितीय वपलमिति चञ्चलम् । भुक्तपिच्छममच्छायो नवनीतममप्रम । मस्य कठिन किग्ध अष्ठो गन्धक उच्यते । वृतमासरमादीनाञ्चाश्राहारविधिवीध्य ।

इति ग्रह्णीचिकित्माविवृति ।

अथार्राश्चिकित्सा।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धां परिकीर्त्तितः। भेपजज्ञारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते॥ यद्वायोरानुलोम्याय यद्ग्नियलबुद्धये। श्रजुपानीषधद्रव्यं तत् सेव्यं नित्यमशेसैः॥ श्रुष्कार्शसां प्रलेपादिकिया तीक्णा विधीयने। स्नाविणां रक्तमालोक्य किया कार्य्यास्रपैत्तिकी॥

पूर्वाक्षमगत्मैव ग्रहण्यनन्तरमशिश्चिकित्सितमुच्यते दुर्नाम्नामित्यादि—श्राध इति भेषजोपाय । विस्तरेख वच्यमाणा चिकित्सा सारोद्धारेणाह यद्वायोरि-त्यादि—चरकस्य । श्रशंसैरित्यगोरोगयुकै. । शुष्कार्शमामित्यादि—श्रादिशस्दात् स्वदादीना ग्रहणम् ॥ १ ॥

प्रलेपमाह—

्रस्तुक्त्तीरं रजनीयुक्तं लेपाद् दुर्नीमनाशनम् । कोपातकीरजोघपीनिपतन्ति गुदोद्भवाः॥२॥

लेपादीनाह स्तुक्त्वीरामत्यादि—स्तुहीत्तारेण हरिद्राचूर्णमाद्रं कृत्वा लेप । उक्त हि वाग्मेट 'स्तुक्त्वीरार्द्रनिशालेप ' इति । कीपातकी घोषक ॥॥॥

श्रर्कत्तीरं सुधात्तीरं तिक्रतुम्ब्याश्च पत्नवा । करञ्जो वस्तमृत्रञ्च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥३॥

श्रर्केत्यादी-करअस्य त्वक्, मुशाचीरिमत्यत्र सुधाकारहश्चरके वाग्मटे च इश्यते ॥ ३ ॥

श्रर्शोद्यी गुद्गा वर्त्तिर्गुडघोपाफलोद्भवा। ज्योत्स्त्रिकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हित ॥ ४॥

वित्तं फलवित्तं । गुड जलेन द्रवीकृत्य घोष।फलचूर्णं प्रक्रिप्य पक्तवा वित्तं कार्य्या । ज्योत्सिका घोषक ॥ ४॥

तुम्वीवीजं सोद्भिदन्तु काञ्जीपिष्टं गुडीत्रयम् । श्रशींद्दरं गुदस्यं स्याद्धि माहिषमश्रतः ॥ ४ ॥ बिद्रदमुल्गिरिकालवृत्त शाम्मिरिलवय वा ॥ ४ ॥ महावोधिप्रदेशस्य पथ्या कोपातकीरज । कफेन लेपतो हन्ति लिङ्गवित्तमसंशयम् ॥ ६ ॥

महानोधिप्रदेशस्येति—महानोधिर्मगधे प्रसिद्ध । पथ्या हरीतकी । कफेन केष्मणा, ममुद्रफेनेनेत्यन्ये, उदधिकफत्नादिति भान । मुष्टियोगतया पूर्वन्याख्या साध्वी । तिगनिर्तितिगार्शे ॥ ६ ॥

श्रपमार्गाड् घ्रिजः चारो हरितालेन संयुत । लेपनं लिइसम्भूतमर्शो नाशयति ध्रुवम् ॥ वातातीसारविद्धश्रवर्चास्यर्शीस्युपाचरेत् । उदावर्त्तविधानेन गाढविद्कानि चासकृत् ॥ ७ ॥ श्रपामार्गेलादि सप्टम् । बातातीमारविति वातातीमारिविक्तिसावत् ॥ ७ ॥ विद्विवन्धे हितं तक्तं यमानीविडसंयुतम्।
वातश्लेष्मार्शसां तकात् परं नास्तीह भेषजम्॥
तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्त्रेहं रूक्तमेव वा।
न विरोहिन्त गुद्जा पुनस्तकसमाहताः॥ ८॥
विद्विवन्ध इलादि स्पष्टम्। वातश्रेष्मार्शमामिलादि—चरकस्य॥ ८॥
तक्तं विज्ञकमृलस्य पिष्ट्वा कुम्मं प्रलेपयेत्।
तक्तं वा दिध वा तत्र जातमर्शोहरं पिवेत्॥ ६॥
तत्रमिलादि—तस्त्रेव। विज्ञकमृललव पिष्ट्वा तिलोत्सेषमात्र कुम्मगर्मे

पित्रस्रेष्मप्रशमनी कच्छुकराङ्गरजापहा।
गुदजान् नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया॥
सगुडां पिष्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम्।
त्रिबृद्दन्तियुतां वापि भत्त्ययेदानुलोमिकीम्॥ १०॥
गुदजानिलात्र मामाकुरानिति शेष, तेन पुलिक्षता उपपन्ना। सगुडामिसादि स्पष्टम्॥ १०॥

तिलारुष्करसंयोगं मक्तयेदग्निवर्द्धनम् । कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ तिलमज्ञातकं पथ्या गुडश्चेति समांशिकम् । दुर्नामकासभ्वासम्नं सीहपाएडज्वरापहम् ॥११॥

तिलारुष्करेत्यादि-सयुज्यते प्रयुज्यतेऽयमिति सयोग प्रयोग एव । अन्ये तु तिलारुष्करयोः सयोगो यत्रेत्याहु ॥ ११ ॥

गोमूत्रव्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्। पञ्चकोलकयुक्तं वा तक्रमसौ प्रदापयेत्॥ १२॥

गोमूत्रन्युषितामित्यादि—चरकस्य । रात्रौ गोमूत्रस्थितामिति चक्र । सगु-डामित्यन्त एको योगः । वाशब्दः पूर्वयोगापेचया, चरके हि 'सगुडामभया वाथ प्राशयेत् पौर्वभिक्तकीम्' इत्यभिधाय तदनन्तरमय योग उक्तः, ऋतो भिन्नयोगत्वेन न पौनरुक्त्य स्यादिति । पतेन गोमूत्रन्युषितामिति प्रयोगानुरोधात् पुनरिप तन्त्रा- न्तरीयगुद्रहरीतक्यभिहितिति निश्चलेनोक्तमसगतम्, योगद्रयस्येव चरकोक्तत्वात् इति । पञ्चकोलयुक्तभिति पञ्चकोलच्येशुक्तम् ॥ १२॥

मृक्तिप्तं शौरणं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुटपाकयत्। श्रद्यात् सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये॥ १३॥

मृश्लिप्निस्यादि--वाग्मटस्य । शौरण कन्दमिति वन्यशर्गणमूलम् , एव मर्वन्नाशीसि, तदभावे आम्यणरंग्छोऽपीत्यन्ये ॥ १३ ॥

स्तिम्न वार्चाकुफलं घोषायाः चारजेन सलिलेन । तद् घृतभृष्ट युक्तं गुडेनातृप्तितो योऽचि ॥ पिवति च तकं नूनं तस्याश्वेवातिवृद्धगुद्जानि । यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ १४ ॥ स्तिन्निपत्यादि—घोषकवारोटकेन पड्गुणैनैकविशतिवारपरिस्नुतेन उत्स्वेध धेत भृष्ट्वा अनुरूपगुढेन भयोज्य भववेदिति ॥ १४ ॥

> श्रसितानां तिलानां प्राक् प्रकुश्चं शीनवार्थ्यनु । खादतोऽशासि नश्यन्ति हिजदार्ख्योद्गपुष्टिदम् ॥१४॥

श्रमितानामित्यादि — तिलाना प्रकुष्त पलम्, प्राक् खादत श्रनु पक्षाच्छी-तवारि खादत इति योज्यम् । द्विजदादर्शम् वन्तदार्द्धम् ॥ १५॥

दन्त्यरिष्टम्

दन्तीचित्रकम्लानामुभयोः पश्चम्लयो ।
भागान् पलाशानापाथ्य जलहोणे विपाचयेत् ॥
तिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् ॥
रसे चतुर्थशेषे तु प्तशीते प्रदापयेत् ।
तुलां गुडस्य तत् तिष्ठेन्मासाई घृतभाजने ॥
तन्मात्रया पिवेत्रित्यमर्शोभ्यो विप्रमुच्यते ।
प्रहणीपागृहरोगम्नं वातवचीऽनुलोमनम् ।
दीपनञ्चारुचिमञ्च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः ॥
पात्रेऽरिष्टादिसन्धानं धातकीलोम्नलेपिते ॥ १६ ॥

दन्तीत्यादि—चरकस्य । अत्र उमयोरितिवचनवलात् पञ्चमूलयो प्रत्येक भागा याह्या , त्रिफलाया इत्यत्र तु निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् मिलितित्रिफलाया एव पलत्रय याह्यम् । मासाई मिति तन्त्रान्तरे तु मासमित्युक्तम् , यथा— 'त्रिफला-दशमूलाग्निकुम्माना पल पलम् । बारिद्रोखे स्थित पादशेषो गुडतुलायुत । आज्यभाएंडे स्थितो माम दन्त्यरिष्टो निषेवित ' इति, उभयमपि प्रमाण स्मृति-देधवत् ॥ १६॥

सनागरारुष्करवृद्धदारकं गुडेन यो मोदकमन्युदारकम् । श्रशंषदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् । चूर्णे चूर्णसमो क्षेयो मोदके द्विगुणो गुड ॥ १७ ॥

सनागरेत्यादि — अरुकरं महातकम् । वृद्धमित्यत्र आत्मानमिति राष । उदारकमिति महाफलम् । अस्य येगस्य चतु समसज्ञामाह भन्यदत्त । तन्मते समेनैन गुढेन किञ्चिक्तल दस्त्राग्नी विपक्षेन मोदकविधानम् । चक्रस्तु मोदकत्वात् गुढस्य द्वेगुण्यमाह । अन्य तु मोदके भोदके द्विगुण्य गुढ रे इति कस्यचित् अभियुक्तस्य वाक्यमनापैमिति कृत्वा नाहियन्ते, उक्तगित्या समेनापि गुढेन मोदक-तोपपत्तिति ॥ १७॥

प्राणदा गुडिका

त्रिपलं श्रक्षंवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च।
पिष्पल्याः कुडवाईश्च चन्यस्य पलमेव च॥
तालीशपत्रस्य पलं पलाई केशरस्य च।
द्वे पले पिष्पलीमुलादईकर्षश्च पत्रकात्॥
सूदमैलाकर्षमेकन्तु कर्षं त्वङ्मुणालयोः।
गुडात् पलानि तु त्रिंशच्चूर्णमेकत्र कारयेत्॥
श्रक्षप्रमाणा गुडिका प्राण्देति च सा स्मृता।
पूर्वं भत्त्या च पश्चानु मोजनस्य यथाबलम्।
मद्यं मांसरसं यूषं द्वीरं तोयं पिवेत् तथा॥

हन्यादशींसि सर्वाणि सहजान्यस्रजानि च ।
वातिपत्तकफोत्थानि सिन्निपातोद्भवानि च ॥
पानात्यये मूत्रकुच्छे वातरोगगलग्रहे ।
विपमज्वरे च मन्देऽशी पाण्डरोगे तथ्व च ॥
क्रिमिहद्रोगिणाञ्चैव गुल्मग्रलार्त्तिनां तथा ।
श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा ॥
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विद्यहे पित्तपायुजे ॥
प्राण्देयं सितां दत्वा चूर्णमानाचतुर्गुणाम् ।
श्रम्लापत्ताश्चमान्यादौ भयोज्या गुदजातुरे ॥

त्रिपलमित्यादि — चतुर्थं मरिचम्येति पलमेकमित्यर्थ । केगरम्य नागकेश-रस्य । त्वड्मुखालयोरिति त्वक् गुडत्वक् , अमृखालमुरीरम् , अनयोगिलित्वा कर्षे । पूर्व भस्या तु पथाश्व भोजनस्यति भोजनस्य पूर्व भागनाव्यवद्विनपूर्वकाले गुटिका भक्ता, तु पश्चाच मचादिक विवेदिति वे। ज्यम । न तु मगङ्रादिवद मे। जनस्य पूर्वपश्चाद्भावेन अच्येति कल्पनीयम् , ऋशंसि कविदय्यस्य विधेरदृष्टत्वात् । मध बातकफेऽनुपेयन्, मासरमे। बान, वित्ते सार, मुद्रयूप. कफे, तोयमुण्ण वातकफे, प्रवमन्यत्राप्यनुपानमेदी दोषमेदेन कल्पनीय । वाग्मटे पुनर्य योगी शहर्णी-चिकिरिसते प्रयते, तत्र चातुर्जातसुर्गारस प्रत्येक कर्पमानसुरा, तथा—' तालीग-पत्रमरिचचन्यानान्तु पल पलम् । कृष्णा तन्मूलयोदें दे पेल गुण्ठीपलत्रयम् । चतु जीतमुरीरिष्ठ कर्पारी सहस्यचृश्वितम् । गुढेन बटक इत्वा त्रिगुर्यन मटा भजेत् । मुद्रयूपरसाविष्टमस्तुपेयापयोऽनुप । बातरेक्षमोल्बणा छिद्दि महर्णा पार्श्वहदुजाम् । गुदश्रवशुपायञ्जलगुरमपानात्यवार्शमास् । प्रेमकपीनसश्वासकासानाञ्च निवृत्तवे । भनया नागरस्थाने दद्याशार्थन निट्यहे । छर्चादिपु च पैत्तेषु चतुगुंखसितान्निता । पनलेन गुडिका कार्या गुष्टेन सितयापि वा। पर हि बहिनम्पर्काह्मधिमान मनीन्त ता ' इति । शुण्छ्या स्थान दत्यादि—चूर्णमानादिति समुदितचूर्ण मानात् । केविचु गुडमानाचतुर्गुणमिति पठन्ति, तन्न, नाग्मटविगोपात्, प्रभूतरार्क-राप्रमगान्य अत्र दोपमेटेनानुपानमात्रामेदमाए अनुपानमित्यादि ॥ १८ ॥

काङ्कायनमोदकः

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्या मरिचस्य च ।
पिष्पलीपिष्पलीमूल-चव्यचित्रकनागरा. ॥
पलाभिवृद्धाः क्रमशो यवत्तारपलद्धयम् ।
भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्धिगुणो मतः ॥
द्धिगुणेन गुडेनैषां चटकानत्तसम्मितान् ।
कृत्वैनं भत्तयेत् प्रातस्तकमम्मोऽनु वा पिवेत् ॥
मन्दाग्नि दीपयत्येष प्रहणीपागृहरोगनुत् ॥
काङ्कायनेन शिष्येभ्य शस्त्रत्ताराग्निभिविना ।
मिषग्जितमिति प्रोक्तं श्रेष्ठमशौविकारिणाम् ॥ १६॥

पथ्यत्यादौ—मरिचस्यत्यत्राप्येकामिति सम्बध्यते । तेन मरिचस्य पलमेक-मित्यर्थ । पलामिनृद्धा क्रमश इति यथाक्रम पलेन वृद्धा । कन्दस्तु द्विगुख इति षोडशपतः । द्विगुखेन गुडेनेति समुदितचूर्णापेचया । श्रवसम्मितानिति कर्षसम्मिन्तान्, व्यवहारस्तु बडष्टमापकैरिति ॥ १६ ॥

माणिभद्रो मोदकः

विडक्सरामलकाभयानां
पतं पतं स्यात् त्रिवृतात्रयश्च ।
गुडस्य षड् द्वादशभागयुक्ता
मासेन त्रिशद् गुडिका विधेयाः ॥
निवारणे यत्तवरेण सष्टः
स माणिमद्र. किल शाक्यभित्तवे ।
श्रयं हि कासत्त्वयकुष्ठनाशनो
भगन्दरप्रीहजलोदराशसाम् ॥
यथेप्रवेष्टात्रविहारसेवी
श्रोन वृद्धस्तक्णो भवेच्च ॥ २०॥

विडगसारेत्यादौ-अवृतात्रयमिति त्रिवृतायाः पजनयम् , गुष्टस्य च पद्-

षलानि, द्वादशमागयुक्ता इति द्वादशपलरूपविभागेन युक्ता कृता । मासेनेति मासेनोपयोक्कन्यमिति शेष । श्रयमर्थ —द्वादशपलानि विभन्य मासेनोपयोक्कन्यमिति शेष । श्रयमर्थ —द्वादशपलानि विभन्य मासेनोपयोज्यम् । विश्वत्युद्धिका समभागेन कुर्यात् इति तेन एकैकग्रीहका पद्किकाधिकनवमाध-कोपेतकर्षमाना भवति । कपं १, माप ६, रक्ति ६, । न्यवद्वारस्तु दशिमरप्टामिर्वा मापकैरिति । निवारण इत्यत्र गुदनानामिति शेष । देश इत्यन्ते ॥ २०॥

खल्पशूरगमोदकः

मरिचमहौषधिचत्रकशूर्यभागा यथोत्तर द्विगुणा ।
सर्वसमो गुडभागः
सेक्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥
ज्वलन ज्वलयति जठरमुन्मूलयति शूलगुल्मगदान् ।
निःशेपयति स्ठीपदमर्शीसि नाश्यत्याश्च ॥ २१ ॥
स्वल्यस्यामोदक स्वद्य ॥ २१ ॥

बृहच्छूर्णमोदकः

ग्रूरणपोडशभागा वहेरणै महौषधस्यातः।
श्राद्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन ॥
त्रिफला कणा समूला तालीशायण्करिकामिन्नानाम्।
भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥
भागः ग्रूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि।
भृक्तेले मरिचांशे सर्वाएयेकत्र सञ्चूएर्य ॥
दिगुणेन गुढेन युत सेव्योऽयं मोदक प्रकामधने।
गुरुवृष्यभोज्यरिहतेष्वितरेषूपद्रवं कुर्य्यात्॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्यस्य योगराजेन।
भीमस्य मारुतरिष येन तौ महाश्वनौ जातौ॥
श्रिश्चलखुद्धिहेतुनं केवलं ग्रूरणो महावीर्थ्य।
प्रभवति शस्त्रकाराश्चिभिर्विनाप्यर्शसामेष ॥

श्वयथुरुरोपद्जिद् प्रहृणीमपि कफवातसम्भूताम् । नाशयति वलीपलितं मेघां कुरुते वृषत्वञ्च ॥ हिक्कां श्वासं कासं सराजयन्मप्रमेहांश्च । सीहानञ्चाथोग्रं हन्तीति रसायनं पुंसाम् ॥ २२॥

श्रूरणपोडराभागा इत्यादौ — त्रिफलाकणासम्लातालीशारुकरिक्रिमियाना भागा महीषधसमा इति त्रिफलादीना प्रत्येक महीषधसमा मागा , त्रिफलायाश्च प्रत्येक कम्। कणा मम्ला इति पिप्पल्या फल मृलश्चेत्यर्थं । समूला इत्यन्न स्त्रियाः पुवद्भापितपुरकादनृह् इत्यादिना पुवद्भावो नोद्भावनीय । तस्योत्तरपदे स्त्रीप्रत्य-यान्ते परतो विधानात्। विशेषणत्वादस्य पूर्वानेपातोऽपि नोद्भावनीय , विवत्नावशा-दस्येव विशेष्यत्वात् । उहनश्चित्रक , स्रौले मरिचारो प्रत्येकम् , स्रुक्ष गुढत्वक् । गुरुवृष्यमोज्यरहितेष्विन प्रकामधनप्रतियोगितया दरिद्रेषु, उपद्रविमिति ब्या-पत्तिम् ॥ २२ ॥

शूरगाविगडी

चूर्णीकृता षोडश शूरणस्य भागास्ततोऽर्द्धेन च चित्रकस्य । महौषधाद् द्वौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिएडी ॥ षिएड्यां गुडो मोदकवत् पिएडत्वापत्तिकारक ॥ २३॥

चूर्णीकृता इत्यादि—वाग्मटस्य । मोदकविदिति दिगुण इत्यर्थ ॥ २३ ॥

व्योषाद्यं चूर्णम्

व्योषाग्न्यरुष्करविडङ्गतिलाभयानां चूर्णे गुडेन सहितन्तु सदोपयोज्यम्। दुर्नामकुष्ठगरशोथशकदिवद्धा-

नक्नेर्जयत्यबलतां क्रिमिपाराइताञ्च॥ २४॥

च्योषाद्वीत्यादि —अत्र गुडस्यैकभागत्व चूर्थयोगत्वात् इति । किन्त्वय योगो विभीतकामलकयोगात् गुडिकापि क्रियते, यदाह वाग्मट — गुडच्योषामयारेखु-तिलाहष्करचित्रकै । अशासि हन्ति गुडिका त्वश्विकारण्य शीलिता र इति॥२४॥ 2

समश्करं चूर्णम् श्रुग्ठीकणामरिचनागद्दलत्वेगलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमृद्ध्वमन्त्यात्। खादेदिदं समसितं गुद्जाग्निमान्ध-कासारुचिश्वसनकग्ठहृदामयेषु॥ २४॥

शुष्ठीत्यादि-नाग नागवेशरचूर्णम्, दल तेजपत्रम् । क्रमविवर्दितमूर्ष्व-मन्त्यादिति श्रन्तस्थितद्रन्यादारम्य तदुपरितनद्रन्यमेकद्रित्यादिक्रमेण वद्धयेदित्यर्थ । समिनिर्मिति मिलित-मर्वचूर्णममशर्करम्, श्रमनिमिति श्रास् ॥ १५ ॥

लवणात्तमाद्यं चूर्णम्

ल्बणोत्तमविहकालिङ्गयवां-श्चिरिविल्बमहापिचुमर्वयुतान्। पिव सप्तदिनं मथितालुलितान् यदि मर्टितुमिच्छसि पायुरुहान्॥ २६॥

लवणोत्तमेत्यादि—नाग्मटस्य । लवणोत्तम सैन्धवम्, विह्निश्चित्रकः, कालिश-यव इन्द्रयवः । चिरिनित्व करः , तस्य मूलम्, यद् पुनरस्य सुश्रुते फलम्हण्यस्क तच्छोधने छेयम् । महापिचुमदं पर्वतिनम्ब , निम्बमदृश्रबृहरूपत्रो वृज्ञ , वाकाय-नोति लोकस्यातः । मामनिम्ब एव पर्वतमवत्वेन पर्वतिनम्ब इत्याहुरन्ये, ऋस्य त्वम् आधाः । मधिताञ्जलितानिति तक्षेणालोटितान् ॥ २६॥

नागार्जुनयोगः

त्रिफला पश्चलवर्णं कुष्टं कद्धकरोहिणी।
देवदारुविडङ्गानि पिचुमर्द्फलानि च ॥
वला चातिवला चैव हरिद्धे हे सुवर्चला।
एतत् सम्भृतसम्भारं करञ्जत्वग्रसेन च ॥
पिष्ट्वा च गुडिकां कृत्वा वहरास्थिसमां कुछ ।
एकैकां ता समुद्धृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥
उप्लेन वारिणा पीता शान्तमां प्रदीपयेत्।

श्रशंसि हन्ति तकेण गुल्ममम्लेन निर्हरेत्॥
जन्तुदएन्तु तोयेन त्वग्दोपं खादिराम्बुना।
मूत्रकुच्छुन्तु तोयेन हृद्रोगं तेलसंयुता॥
इन्द्रस्वरससंयुक्षा सर्वज्वरिवनाशिनी।
मातुलुद्गरसेनाथ सद्यः श्र्लहरी स्मृता॥
कापित्थितिन्दुकानान्तु रसेन सह मिश्रिता।
विपाणि हन्ति सर्वाणि पानाशनप्रयोगतः॥
गोशकुद्रससंयुक्षा हन्यात् कुष्ठानि सर्वशः।
श्यामाकपायसहिता जलोदरिवनाशिनी॥
भक्षच्छुन्दं जनयति भुक्षस्योपिर मिस्ता।
श्राचिरोगेषु सर्वेषु मधुनाघृष्य चाञ्जयेत्॥
लेहमात्रण नारीणां सद्यः प्रदरनाशिनी॥
व्यवहारे तथा खूते संश्रामे मृगयादिषु।
समालभ्य नरो ह्यां चिप्रं विजयमाप्नुयात्॥२०॥

त्रिफलेत्यादौ — अतिवला खेतवला, सुवर्चला स्ट्यांवर्त । मम्मृतमम्भारिमिति षाठः । मम्मृत्य सम्भारिमिति पाठेऽपि सम्भार त्रिफलाचौषधजात मम्मृत्य मेल-यित्वा करज्ञत्वश्रमेन पिच्ट्वेति योज्यम् । पृथक् पृथक् इत्यस्य पानारानप्रयोगत इत्यनेन वस्यमाणेन सम्बन्ध । तेन रोगे रोगे पृथक् पृथक् पानारानप्रयोगन उपयुक्षीतिति रोपः । गुलममम्लेनेति काञ्चिकेन, जन्तुर्वृक्षिकादि , इन्द्रस्वरस्त आकाराजलम् , स्यामाकषायित्ववृताकाथ , मक्तच्छन्द मक्ताकाचाम् । व्यवहार इति वाग्व्यवहाररूपे वदि, समालम्येति आलिप्य ॥ २७॥

विजयचूर्णम्

त्रिकत्रयवचाहिंगुपाठाचारानिशाद्वयम्।
चव्यतिक्राकलिङ्गानि शताद्वालवणानि च ॥
श्रान्थिविल्वाजमोदा च गणोऽप्टाविशितिर्मतः।
पतानि सममागानि श्रुच्णचूर्णानि कारयेत्॥
ततो विडालपदकं पिवेदुष्णेन वारिणा।

परगडतेलयुक्षन्तु सदा लिह्यात् ततो नरः ॥
कास हन्यात् तथा शोधमशीसि च भगन्दरम् ।
हच्छूलं पार्श्वश्रलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥
हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाग्हरोगताम् ।
श्रामान्वयमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धि गुदं किमीन् ॥
श्रान्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्तिताः ॥
महाज्यरोपसृष्टानां भूतोपहत्वेतसाम् ।
श्राजानान्तु नारीणां प्रजावद्दैनमेव च ।

विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ २८ ॥

त्रिकत्रयामित्यादि—।त्रेकड त्रिकला त्रिजात त्रिकत्रयम् । ये त्र त्रिजातस्थाने मुस्तविष्टक्षचित्रकरूप त्रिमदमाहुः, तन्मते चन्यतिकाकित्राधीत्यत्राधिसम्देन महातक द्रेयम् । लवणानीति पद्य लवणानि, अन्यथा अष्टाविंशतिसख्या
नेगपध्यते । अन्य पिष्पलीमूलम्, अजमोदा यमानि । विद्यालपदकमिति कर्षम् ।
असिमिति केवल आसम्, हिक्काश्वासेनि हिक्कासिहत श्वास द्रवर्थं, अतो न
पौनरुक्त्यम् । अन्ये तु श्वाममित्यत्र कासीमिति पठ्नित । रोगान् जयतीति कृत्वा
विजयसञ्चा ॥ २८ ॥

श्रीबाहुशालो गुडः

तिवृत् तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रक शटी।
गवाचीमुस्तिबिट्वाह्मविडङ्गानि हरीतकी॥
पलोन्मितिन चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्।
पट्पलं वृद्धदारस्य श्रूरणस्य तु षोडश॥
जलद्रोणद्वये काथ्यं चतुर्भागावशेषितम्।
पूतन्तु तं रसं भूयः काथ्येभ्यिर्झिगुणो गुडः॥
लेहं पचेत् तु तं तावद् यावद्वींप्रलेपनम्।
अवतार्थ्यं ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्॥
तिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशिकान्।
पलात्वङ्मिरचञ्चापि गजाह्मञ्चापि षटपलाम्॥

द्वात्रिशतं पत्तान्येवं चूर्णं दत्वा निघापयेत् । ततो मात्रां प्रयुक्षीत जीर्गे चीररसाशनः॥ पश्च गुल्मान् प्रमेहांश्च पाएहरोगं हलीमकम्। जयेदशांिस सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च॥ दीपयेत् ग्रहणीं मन्दां यदमाणञ्चापकषीति। श्रपीनसं प्रतिश्यायमाद्यवात तथैव च ॥ श्रयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तम । दुर्नामारिरयञ्चाशु दृष्टो वारसदस्रश ॥ भवन्त्येनं प्रयुक्षाना शतवर्षं निरामया । श्रायुषो दैर्ध्यजननो वलीपलितनाशन ॥ रसायनवरश्चेष मेघाजनन उत्तम गुड श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारि प्रकीर्तित ॥ तोयपूर्णे यदा पात्रे क्तिया न प्लवते गुडः॥ चिप्तश्च निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्य्यते । यदा दर्वीप्रलेप स्याद् यावद्वा तन्तुलीमवेत्॥ एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः। सुखमई सुबस्पशों गुड पाकमुपागत ॥ पीडितो भजते मुद्रां गन्धवर्णरसान्वित ॥ २६॥

त्रिवृत् तेजीवतीत्यादि — कस्यचित् तन्त्रस्य । तेजीवती चवी, एव सर्वत्र । यत्र पुनश्चवी तेजीवती चास्ति तत्र पर तेजीवत्या ज्योतिष्मती गृह्यते, यथा गुग्गुलु- पञ्चतिक्षके ग्रेते । गवाची गोरचककंटी, तस्या मूलम्, एव सर्वत्र । न तु गवाची भेतापराजिता, कानि टीकाक्रद्भिरच्याख्यात्त्वात् । काथ्येभ्याक्षगुणो गुढ इति एकचत्वारिशत्पलकाथ्यापेच्या त्रेगुण्येन गुडस्य त्रयोविशतिपलाधिकशतपल भवति । कन्दः श्रद्रण , त्रिवृदादीना द्विपलस्वम् , एलादीनाञ्च षट्पलत्वम् । यद्यपि निर्टे- शास्य द्रव्यप्रधानत्वादेव प्रत्येक सिध्यति, तथापि दात्रिशतपलानीति यद्यक तत् कचित् द्रव्यप्रधाननिर्देशेऽपि प्रत्येकता नास्तीति स्चनार्थम् । तेन कैशोरकगुग्गुलौ त्रिकटोश्चूर्णं पडचपरिमाण्यमित्यत्र मिलित्वेव त्रिकटचूर्णंपडचपरिमतता वृद्यव्यन

हारिमिद्रेति बोध्यम् । द्वार्शिशत पलान्यव पाठोऽन्यथा च्छ्रन्द्रोमङ्ग स्यात् । कविध्य द्वार्शिश्च पलान्यविमिति पाठ । अपीनमिति प्रतिश्यायमेद । पीनेसे च प्रति-प्रयाय इति पाठेऽपि म पत्रार्थ । अत्र अनुपानमनुक्तमिप वातकफे कोष्णाम्यु, पित्ते द्वीरादिक ज्ञेयम् । न चात्र महातकप्रविशादुम्णजलम् अयुक्तमिति गद्धनीयम्, यतो महातकलेह एव उच्णजलिपेषो न महातकयोगमात्रे । तथा चेक्तम्— " उप्णोटकानुपानन्तु लेहानामध शस्यते । अते महातकलेहात् तत्र तोयन्तु शांतलम् " इति । बृद्धान्तु शांतलोयेन व्यवहरन्ति । तोयपूर्णे यदा पात्र इत्यादि गुद्धपक्तव्यम् । बृद्धान्तु तोयपूर्णपत्रोपित कोमलकदलीपत्र दत्ता, गुहस्य मुद्रापक निरूपपित । न प्लवते न तरित पतित । पात्राधोगतो यदि न शांर्यने न विस्तीर्णता याति ॥ २६ ॥

गुडभल्लातकः

भस्नातकसहस्रे हे जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषे रसे तस्मिन् पचेद् गुडतुलां मिपक् ॥
भस्नातकसहस्रार्द्धं छिन्वा तत्रैव दापयेत्।
सिद्धेश्स्मिस्त्रिफलाव्योपयमानीमुस्तसैन्धवम्।
कर्पाशसमितं दद्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ॥
खादेदशिवलापेनी प्रातकत्थाय मानव ॥
कुष्टार्श कामलामेदप्रहणीगुल्मपाण्डता ।
दृन्यात् प्लीद्दोदरं कासिकिमिरोगमगन्दरात्।
गुडभक्षातको ह्यप् श्रेष्ठश्चाशौविकारिणाम् ॥ ३०॥

गुडमझातके मझातकसहस्रे हे इति मझातकाना महस्रदयम्, एव मर्वत्र पलादिमानविरहे, यथा मैन्धनाधतेले मझातकास्थानि विशितिरिति । यत्र तु पलादिमुतिस्तत्र तथेव व्यवहर्त्तव्यम् । यथा बाहुशालगुढे, '' पलान्यष्टावरुष्करा-दिति ।'' एव हरीतक्यादाविष श्रेयम् । मझातकसहस्रादं ज्ञिस्तेति हिधा कृत्वा गुडमहितकाथ यव पक्तव्य हरीतकीवत् । त्रिफलादीनाञ्च प्रत्येकमेव कर्षमानम् ॥ ३०॥

> त्रपरो गुडभद्वातकः दशम्लासता भागीं श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी।

महातकसहस्रश्च प्रलांशं काथयेद् बुधः।
पादशेषे जलद्रोणे रसे तस्मिन् विपाचयेत्।
दत्वा गुडतुलामेकां लेहीभूतं समुद्धरेत्॥
मान्तिकं पिष्पलीं तैलमौरुवूकञ्च दापयेत्।
कुडवं कुडवञ्चात्र त्वगेला मरिचं तथा॥
स्रशः कासमुदावर्त्तं पाग्हत्वं शोथमेव च।
नाशयेद्विसादञ्च गुडमह्मातकः स्मृतः॥ ३१॥

दितीयगुडमल्लातके पलाशिमित दशमूलादिमि सम्बध्यते। मल्लातकसहस्र पूर्ववदाकृतिमानात् । काथयेदिति पूर्वोक्तमञ्जातकगुडमवादात्, स्रशापि जलद्रोणे किंवा काथ्यद्रव्येभ्योऽष्टगुणे जले । मान्निक मधु । श्रीरुवुकच्च तैलमेर्यडतैलम्, एतच्च प्रथमतः निद्वेव गुड पक्तव्य । सिद्धे मधुपिप्पलिन्यूणीदि प्रन्नेप्यम् । एक कुडव शब्दो मान्निकादिमि सम्बध्यते, अपरश्च त्वगेलादिमि । मान्निकर्यडतैलयोश्च द्रवत्वात् प्रत्येकमध्ये पलानि । त्वगेलामरिचादीनान्तु कुडव मिलित्वेति केचित्, प्रत्येकमित्यन्य । पतदेव युक्त द्रव्यप्रधानत्वात् निर्देशस्य । आधुवेदसारेऽप्युक्तम्— 'मञ्जानकसहस्र हि शटीदहनगोन्जरान् । दशमूल्यमरामार्गी पलाशा । सविपाच्य व । दत्त्वा गुडतुला तत्र लेहवत् साधु साध्येत् । पिप्पल्या मधुन मिद्धे तैलस्यो-रुवुक्तस्य च । प्रत्येक कुडव दत्त्वा त्वगेलामरिचस्य व । मिश्चित मन्नयेन्नित्यमर्शं कामोदरापहम् ' इति । श्रतप्य आयुवेदसारसवादात् कुडवार्कञ्च त्वगेलामरिच-मिति पाठान्तरमि प्रतिचेपणीयम् ॥ ३१॥

चन्याद्यं घृतम्

चव्यं त्रिकद्धकं पाठां ज्ञारं कुस्तुम्बुक्षिण् च।
यमानी पिष्पलीमूलमुमे च बिडसैन्धवे॥
चित्रकं विव्वममयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
शक्कद्वातानुलोम्यार्थं जाते दिम चतुर्पुणे॥
प्रवाहिकां गुदश्रंशं मूत्रकृष्ट्वं परिस्रवम्॥
गुदवङ्त्तणश्रलञ्च घृतमेतद् व्यपोहिति॥ ३२॥
चन्यमित्यादि—चरकस्य। कुस्तुम्बुरु धनीयकम्। जाते दिम्नीति सुजाते।

श्रत्र केचिद् 'स्वरमज्ञीरमाङ्गल्यै पाको यत्रेतित कचिद् । चतुर्गुण जल नत्र वीर्य्याधानार्थमावेषद् व स्वाद्धः। परिस्रविमिति गुदपरिस्नावम् ॥ ३२ ॥

व्योपाद्यं घृतम्

ब्योपगर्भे पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि ॥ साधितं पिवतः सर्पि पतन्त्यशास्यसंशयम् ॥ ३३॥ म्योषाय श्व स्वष्टम् ॥ ३३ ॥

उद्कपट्पलं घृतम् सत्तारे पञ्चके।लैस्तु पिलकैस्त्रिगुणोदके । समत्तीरं घृतप्रस्थं ज्वराशेःसीहकासनुत् ॥ ३४ ॥ व्यक्षपट्षलप्रत सप्टम् ॥ ३४ ॥

सिंह्यमृतं घृतम्

पचेद्वारिचतुर्द्वेषे कर्ष्टकार्घ्यमृताशतम् । तत्राग्नित्रफलाव्योपपृतिकत्वक्किलिङ्गकैः ॥ सकाश्मर्घ्यविडङ्गैस्तु सिद्धं दुर्नाममहनुत् । घृतं सिद्यमृतं नाम दोधिसत्वेन भापितम् ॥ ३४॥

पचेदित्यादी—कण्टकारीगुड्च्योमिलित्वा रात, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । अन्ये तु द्रवसूयस्त्वदर्शनात् प्रत्येकमेव शतमाहु । चतुद्रीणे द्रोणावशेष , अतोऽस प्रतादक बेध्यम् । चतुर्रीणे न पाकस्योत्सर्गमिद्धत्वात् । प्रस्थपचे तु पोढश-गुणलेमव पाकस्य । अभिरत्व चित्रक , पूर्तीकस्य करश्वस्य त्वक्, काशमर्यं गाम्मारीफलम्, कल्कस्य तु सेहापचेया पादिकत्वमेव वेधिसत्त्वेनिति योगिविशेषण्, अन्ये तु लेकनाथेनेत्याहुः ॥ ३५ ॥

पिप्पल्याद्यं तैलम्

पिष्पली मधुकं विल्वं शताहां मदनं धचाम्। कुष्ठं शटीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च॥ पिष्ट्वा तैलं विपक्षव्यं द्विगुण्जीरसंयुतम्। श्रश्सां मूदवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥
गुदिनःसरणं शूलं मूत्रक्रच्छं प्रवाहिकाम् ।
कटश्वरृष्ठदौर्वत्यमानाहं वङ्चणाश्रयम् ॥
पिच्छास्नावं गुदे शोथं वातवचौविनिग्रहम् ।
उत्थानं वहुदोषञ्च जयेचैवानुवासनात् ॥ ३६॥

पिष्पत्यादतेले विलव विलवशलाङ , पुष्कराख्यमिति पुष्करमृत, तदभावे कुष्ठमेव दिगुण प्राह्मम् । अत्र द्रवान्तरस्यानिविष्टत्वात् दिगुण पव पाक शित केचित् । अन्य तु चतुर्गुणपाकस्य उत्सर्गसिद्धत्वात् जलमप्यत्र दिगुणमिच्छन्ति । अपरे तु ' क्षारदध्यारनालैस्तु पाको यसेरित कवित् । जल चतुर्गुण तस वीर्याधानाथेमावेषत् ' शति वचनात् जलमपि चतुर्गुणमाचक्ते, युक्तकेतत्, यदाह वृद्धसुश्रुत ' शटीपुष्करकृष्णाह्मामदनामरदाक्षि । शताह्माकुष्ठयष्ट्याह्मचाबिल्व- हताशने । स्रिपष्ट द्विगुण कीर तेल तोयचतुर्गुणम् । पक्त्वा वस्तौ निधातव्य मृद्धावातानुलोमनम् ' शति ॥ ३६ ॥

रक्नार्शिश्विकत्सा

रक्तार्शसामुपेत्रेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक् । दुष्टास्र निगृहीते तु श्रुलानाहावसुग्गदाः ॥ ३७॥ ८

रक्षारीसा चिकित्सामाइ रक्षारीसामित्यादि—उपेचेत, न तु स्तम्मयेत्। निगृहीत इति स्तम्भिते । असुरगदा इति वीसर्पादय ॥ ३७॥

। लाजै. पेया पीता चुक्रिकाकेशरोत्पलैः सिद्धाः हत्त्यस्रसावं तथा बलापृश्चिपर्णीभ्याम् ॥ ३०॥

लाजै. पेयेत्यादि । चुकिका चाक्रेरी; केगर नागकेशरम् । तथा बलापृश्चि-पर्खीन्यामिति द्वितीयो योग । तथेत्यनेन लाजै पेयेत्यनुवर्तते ॥ ३८ ॥

> शक्रकाथः साविश्वो वा किंवा विल्वशलाटवः। योज्या रक्ताशंसैस्तद्वज्न्योत्सिकामृललेपनम्॥३६॥

शक्रकाथ इत्यादि-स्राक कुटन., उक्त हि रक्तनोवे ' वृत्तकः शक्रपर्यायो वत्सको गिरिमिल्लका ' इति । तद्वल्कलकाथ., उक्त चरके ' कुटजल्वङ्निर्य्यूह स्नागर. किरयो रक्तसम्रहण ' इति । वाग्मेटेऽप्युक्त ' सकफे प्रपिवेत् पाक्य शुग्ठीकुटजवल्कलम् १ इति । निश्चलस्तु इन्द्रयवकाथ इत्याह । सनागर ईपन्नागर स च प्रद्मेपविधिनिति केचित् । अन्य तु उक्तवारमटवचनसवादात् शुग्ठीकुटजवल्क-लयां काथ इत्याह् । बिल्वशलाटव इत्यत्रापि सनागर इति योज्यम् । अन्य तु केवल विल्व पिच्द्वा पेयमित्याहु । ज्योत्सिका कोषातकी धोषकभेट ॥ ३ ६ ॥

ेर्नवनीतितिलाभ्यासात् केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दिवसरमिथताभ्यासाद् गुदजाः शाम्यन्ति रक्षवहाः ॥४०॥

नवनीतितलाभ्यामादित्यादि—योगत्रयमेतत्। त्रत्र केशर पद्यकेशर, रक्ष-स्तम्मनत्वात्, यदाद्यवाग्मट 'शर्कराम्मोजिक्ष्यल्क-सिंहत सद्य वा तिले । श्रम्यस्त रक्षग्रदजान् नवनीत नियच्छति ' इति । श्राधानिकास्तु नागेकशेरण व्यव-हरन्ति । दिधमरस्य अथित तक दिधसरमिथतम्, उक्ष हि जलुक्यों 'नवनीत निलेयुंक्ष रार्करा केशरेण वा । नवनीत छत वाच दक्षी वा खिजत मर ' रित ॥ ४०॥

समङ्गीत्पतमीचाह्न तिरीटतिलचन्दनैः। छागचीरं प्रयोक्तव्यं गुद्जे शोणितापहम् ॥ ४१ ॥

ममद्देल(दि—समझा वराहकान्ता, उत्पल नीलोत्पलम्, मोचक शालमली-वेटकम्, तिराट पट्टिकालोधम्, एपा करकरछागचीरे खालोड्य पेय.। उक्त हि वाग्मटे ' लोध तिल मोचरस सूमझा चन्दनोत्पलम् । पायथित्वाजदुरेधन शालीस्तेनैव भोज-येद हति । अन्ये तु श्वीरपारिमापया च्छागकीर पक्तवा पेयमित्याहु ॥ ४१ ॥

कुटजलेह:

कुटजत्वक्पलयतं जलद्रोगे विपाचयेत् । श्रष्टमागाविशयन्तु कपायमवतारयेत् ॥ वस्त्रपूतं पुन काथं पचेम्नहत्वमागतम् । भम्नातकं विडङ्गानि त्रिकद्व श्रिफलां तथा ॥ रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च । वचामतिविपां विल्वं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ त्रिंशत्पलानि गुडस्य चूर्णीकृत्य निघापयेत् । मधुन कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ एप लेहः शमयति चाशौं रक्षसमुद्भवम् । वातिक पैत्तिकञ्चैव श्रौष्मिकं सान्निणतिकम् ॥ ये च दुर्नामजा रोगास्तान् सर्वान् नाशयत्यपि । श्रम्लपित्तमतीसारं पागहरोगमरोचकम् ॥ श्रह्णीमार्दवं काश्यं श्वयथुं कामलामपि । श्रमुपानं घृतं दद्यान्मधु तकं जलं पयः । रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते ॥ ४२ ॥

कुटजत्वक्पलशतामित्यत्र केचित् पलस्थाने फलमिति पर्ठान्तः, तन्मते बुटजत्वक् फलयोमितित्वैव पलशतम् । चन्द्राटेऽष्टमागावशिष्टामित्यत्र चतुर्भागावशिष्टमिति पठ्यते । सत्र ष्टतकुडव प्रथम दस्ता लेह पक्तन्य , मिद्धे तस्मिन् मल्लातकादि-चूर्णप्रतेष । मधुन कुडवोऽष्टो पलानि, ध्रतंकुडवोऽप्येवम् कुडवद्देगुर्थन्तु पूर्वमेव स्थापितमिति ॥ ४२ ॥

कुटजरसाक्रिया

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमाई महेन्द्रसालिलेन।
यावत् स्यादरसं तद् द्रव्यं स रसस्ततो श्राह्यः॥
मोचरसः समङ्गा फालिनी पलांशिमिस्त्रिभिस्तैश्च।
वत्सकवीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम्॥
पूतोत्कथितः सान्द्रः स रसो दवींप्रलेपनो ग्राह्यः।
मात्राकालोपहिता रसिक्रयेषा जयत्यस्क् स्नावम्॥
छागलीपयसा युक्ता पेया मएडेनाथवा यथाग्निवलम्।
जीर्णोषधश्च शालीन् पयसा छागेन भुद्धीत॥
रक्तगुद्जातीसारं शूलं सास्युजो निहन्त्याशु।
वलवच्च रक्कपित्तं रसिक्रयेषा ह्यमयभागम्॥ ४३॥

कुटजलच इत्यादि—अत्र पलशत तुला, तेन 'तुलाइच्ये जलद्रोण ' इति वचनात् द्रोणमात्र जल ग्राह्मम्, तच 'यावत् स्यादरमम् ' इति वचनाच-तुर्मागावशिष्ट कार्यम्, उक्त हि 'चतुर्भागजले प्रायो द्रव्य गतरसं मवेत् ' इति। यन्ये तु तन्त्रान्तरीययोगान्तरे 'होणंडम्मस पलशत विपाच्य कुटजलचोड- हमागस्थ ' इत्यहमागावशिष्टदर्शनात् अत्राप्यष्टमागावशेष' काथो याह्य इत्याहु'। व्यवहारस्तु पूर्वेथव । महेन्द्रमलिनमान्तरीक्षजलन् ' तदमावे सूमिस्थजल तदनु-कारि ब्राह्मन् । यद्क-' किञ्चित्तुवरानु सतनु लघु शोत द्यगिन्ध द्यरमञ्च । अनिमध्यन्दि च यत् तत् चितिस्थमेन्द्रबच्चेयन् ' फलिनी प्रियमु । दर्वीप्रलेपनो ब्राह्म इति द्रवीप्रलेपावस्थायामवतारणीय इत्यर्थ । तेन रसिक्रया लेपस्पैन, वाग्मदेऽप्युक्तन्—' एक्त्वावेनह लीड्ना च तद्यथाप्रिवल पिनेत् ' इत्यादि । उमयमागिनित यद्यपि युपपदूद्ध्वांध प्रवृत्तरक्षित्तस्थामाध्यत्न, तथाप्युभयभाग हन्नीत्यम्य क्रमेरीयद्धंगमधोगञ्च इन्तीत्यर्थ, तत्राप्यभागस्य याप्यत्वात् तत्प्रति-यापनमेव निहन्यादित्यस्यार्थो होय । अन्ये तु योगशकेरिचन्त्यत्वादसाध्यमपि—इन्तीत्थर्थमाहु ॥ ४३॥

कुटजाद्यं घृतम्

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोधधानकीकल्कै । सिद्धं घृतं विधेयं ग्रूलरक्काशसा भिषजा ॥ ४४ ॥

हुटजायप्टेन-कुटजस्य फल बल्कलञ्च, बल्करान्द्रो बल्कलबन्नन , क्वितु बल्कलमिति पाठ । अत्र जल चतुर्जुणमर्थवसात् ॥ ४४ ॥

सुनिषएणक-चाङ्गरीघृतम्

श्रवाक्षुणी वला दावीं पृश्चिपणी त्रिक्तएटकम् ।
न्यग्रोधोडम्बराश्वत्थश्चद्वाश्च द्विपलोनिमताः ॥
कवाय एप पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।
पिष्पली पिष्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥
किलक्षं शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्द्रनमञ्जनम् ।
कदफलं चित्रकं मुस्तं प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा ॥
पद्मोत्पलानां किञ्चलकः समङ्गा सनिदिग्धिका ।
विद्वं मोचरसं पाठा भागा स्यु कार्षिका पृथक् ।
चतुः प्रस्थश्यतं प्रस्थं कषायमवतारयेत् ।
विश्वत्पलानि तु प्रस्थो विश्वयो द्विपलाधिकः ॥
सुनिपण्णक-चाङ्गेर्य्यो प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।

संवेरेतैर्यथोहिष्टेष्ट्रेतप्रस्थं विपाचयत् ॥
पतदर्श स्वतीसारे त्रिदोषे किंधरस्रुतौ ।
प्रवाहणे गुद्धंशे पिच्छासु विविधासु च ॥
उत्थाने चातिवहुश शोश्रश्लगुदामये ।
सूत्रप्रहे सूढवाते मन्दाग्रावक्चावपि ॥
प्रयोज्यं विधिवत् सर्पिवलवणीशिवर्द्धनम् ।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ४४ ॥

श्रवाक्षुण्पात्यादि — अवाक्षुष्पो ऐठवहली । प्याञ्चाष्टाना प्रत्येक पलद्वर्यमिति मिलित्वा पोट्रगण्न काथ्य मवति । तथा सुनिपण्णकनाक्षेट्योमिलित्वा
प्रस्थद्वय, मानप्रधानत्वानिर्देशस्य । वीरा अत्र जीरकाकोली । चतु प्रस्थन्त प्रत्थमित्यादि—यद्यपि पोडश्पले काथो चतु प्रस्थ जलमुत्मगीमिद्धमेव तथा शेषोऽपि चतुर्थो
भाग प्रस्थ प्रव भवति, तथापि यदेतच्यतु प्रस्थन्यनित्यादि वचन, तद् काथ्याचतुर्युष
वारीत्यादिपिरिभाषाया स्वक नेयम् । तथा ' त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विश्वेषो दिपलाधिक ' इत्यपि वचन द्वद्वेगुण्यपरिभाषास्चकत्वेनैव अयम् । प्रनेदेव हृष्ट्वा दृदवलमस्कोरऽपि द्वदेगुण्यमुक्तम् । किंवा परिभाषानिद्धमिष द्वदेशुण्य यदिद्द
निदिशति तद् द्वदेगुण्यपरिभाषा किचिद्वाधितापि भवतीति स्वयति । तन कुडवप्रस्थादिक गृदीत्वेव द्वगुण्य, न कुटवादवीक् इत्यर्थं मिद्धो भवति । अन्ये तु
दाद्यीर्थमशयितशिष्यपुद्धिवृद्ध्यथमतद्वननित्याद्व । त्रिंशत्यलाविशेषण्यतया यद्यपि
दिवलाधिकानीति निर्देशी युज्यते, तथापि प्रस्थविशेषणतया पुलिक्षस्य एकवचनस्य
च निर्देश समर्थनीय । उत्थाने वहुश इति स्तोकस्तोकातिमरणे ॥ ४५ ॥

^{८, ज}न्तारः

प्रशस्ते उहानि नक्षत्रे कृतमङ्गलपूर्वकम् । कालमुष्ककमाहृत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥ श्रादकन्त्वेकमादाय जलद्रोणे पचेद्भिपक् । चतुर्भागाविशिष्टेन वस्त्रपूर्तेन वारिणा ॥ शङ्खचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत् पुनः । शनै शनैस्तु मृदृशौ यावत् सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ सर्जिकायावश्काभ्या शुरुठी मरिचिषण्यली । वचा चातिविषा चैव हिङ्कुचित्रकयोस्तथा ॥ एषां चूर्णानि निक्तिष्य पृथक्तवेनाष्ट्रमापकम् । दृव्या सङ्घाद्दिनञ्चापि स्थापयेदायसे घटे । एष विद्वसमः सार कीर्तित काश्यपादिभिः ॥ ४६ ॥

इदानीं चारपाकविधिमाह प्रशस्त इत्यादि—कालमुष्कक कृष्णपुष्पो घरटा-पारिल , म श्रेष्ठगुण , यदाह विश्वामिल 'श्रेतपुष्प कृष्णपुष्पो रक्षपुष्परत्येव च। पीतोऽन्योऽपि वरस्तपु कृष्णपुष्प प्रकीतितः ' इति । तस्य च काष्ठ तिलनालैदंग्ध्वा भस्म कर्तव्यम् , इत्यमेव सुश्रुताभिधानात् । भाटकमिति भस्मनश्चतु पष्टिपलानि । जलद्रोण इति देगुण्याचतु षष्टिशरावे, भन्ये तु अत्र हेगुण्य नेच्छन्ति । शाखचूर्णस्य कृटवश्चतु पल , पोडशांशेनाकृतदेगुण्यात् । परिस्नावितपादावशिष्टचारोदकादका-दिति चन्द्रिका । भागमप्रामाण्यसिद्धवद् हेगुण्यपचे तु द्वात्रिंशाशेनेति बोध्यम् । भायस इति लोहमथे, एनच पात्रविशेषकथन गुणोत्कर्षार्थम्, ' यथा कुर्वन्ति स वपाय ' इत्युके । चार इति प्रतिसारणीय चार इत्यर्थ , प्रतिसारणीयश्च ब्रद्ध-खीय इत्यर्थ ॥ ४६ ॥

तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद् मस्माढकं पड्गुणे पात्रे लोहमेय दृढे विपुलधीर्द्व्या शनैर्धष्टयन् ।

दग्ध्वाग्नौ वहुशङ्खनाभिशकलान् पूतावशेषे लिपेद् यद्येरएडजनालमेष दृहति लारो वरो वाक्शतात् ॥ प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मित्रच्छुपैच्छिल्यरक्रता । सञ्जायते तदास्राव्य लाराम्मो प्राह्यामिष्यते ॥ तुर्प्येणाप्टमकेन पोडशमवेनाशेन संव्यूहिमो मध्य श्रेष्ठ इति क्रमेण विहित लारोदकाच्छुङ्खक ॥ नातिसान्द्रो नातितनु लारपाक उदाहतः । दुर्नामकादौ निर्दिष्ठ लारोऽयं प्रतिसारणः ॥ पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशातम् । स्रावयत् पडगुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ ४७ ॥

· तोये कालकसुष्ककस्येति—षड्गुयेति षडाढके व्यवहारादऋतद्विगुये, अतपव वृन्देनोक्त-'द्वैगुएय नाढकेऽप्यत्र मागमात्रीपलचणात् । इति । एतचान्ये दूप-यन्ति, आढकादिश्रुत्या द्रवे यद्देशुर्य सर्वागमसिद्ध तत् कथ वाधनीयम्, न च क्षचित् तन्त्र भागमात्रमुक्तम्, येन भागमात्रोपलच्यामिति वाच्यम्, अतएव चक्रिया-स्वरसादेव हैगुण्यार्थ न किमपि लिखितम् । दण्ध्वाग्नी वहुशह्वनामिशकलान् प्तावशेषे चिपिदिति त्रिमागशेषेखाच्छ्यं चिछल्याहिलच्छोदये कल्कमपनीय छान-थित्वा चाराम्बु ब्राह्मम्, तत पुन पचेत्, पश्चादासन्नपाके बहुशह्वनाभिशकला नमी दग्ध्वा तस्य चूर्ण तुर्चेयात्यादि वस्त्यमायानुसारेख चिपेत्। अन्ये तु त्रिमाग-रोषे चतुर्मागावरोषे वा चारादके वक्तपूते राखचूर्णं दत्वा पुन. पक्तव्य, यथा नाति-मान्द्र नातितरलब्च स्यादित्याहु.। पूतावशेष इत्यत्र पूताब्धि शेषे इति केचित् पठन्ति, तन्मते च चतुर्थाशावशेषे चारोदक इत्यर्थ । सम्यक् सिद्धचारलच्यामाह यथे-रण्टजनालिमत्यादि-एप इति पक शीत चारा यदि निस्त्वचमेरण्डनाल लेपेन वाकराताच्छोटिकराताद् दहति, तदा वर श्रेष्ठ इत्यर्थ । पूतावरोषे इत्युक्त, तच कियदवशिष्ट स्थाप्यम् इत्याह प्रायिक्तमाग इत्यादि । आस्त्राच्येति वस्त्रेण गाल-यिता । इदानीं प्रक्षेप्यराक्षचूर्णस्य मानमेदेन प्रतिसारणीयचारस्य मृद्दादिमेद-माइ तुर्येथेलादि—चारोदकात् इति त्रिमागावशिष्टवारोदकमपेच्य । शह्नक शङ्क-चूर्णं यदि तुर्व्येण चतुर्थारोन निहित प्रयुक्तो भवति, तदा सन्यूहिम इति मृदु-चारी भवति । सञ्यूहिम इति मृदुत्तारसङ्गा । अष्टमकेन।प्टमारोन यदि शह्वचूर्य दीयते, तदा मध्य चारः, पोडरामवेनारोन यदि राक्क्चूर्यं दीयते तदा श्रष्ठ चार उलार्थ.। यद्यपि सन्यूहिमे चारोदकाचतुर्थारीन दायमान राह्वचूर्य मध्यश्रेष्ठचारे दीयमानराक्षचूर्णापेचया प्रभूतमेव, तथापि चारस्य मृदुत्वमेव भूयसी शक्षचूर्णेन चारीदकस्य तीच्यताया श्रमिभृतत्वात्। पानीयचारे तु न शहःचूर्णयोग इति तस्य नैते भेदा. । प्रतिसारणीयचारपाकलचण तथा तदिपयञ्चाह नातिसान्द्र इत्यादि-प्रतिसारण इति अञ्चणप्रयोजक । पातन्यचारोदकस्य विधान विषयञ्चाह पानीय इत्यादि-पानीय इति पातच्यो य चार , त चार पद्गुणे चतुर्शेणे वा जले पाक विनैव एकविंशतिवरान् परिस्नान्य चारोदक आह्मम्। अन्ये तु चतुर्गुणे जले पक्तवा अर्द्धावशिष्ट कृत्वा कल्कमपसार्य्य चारोदक एकविंशतिवारान् परिस्नावयेदेव, न प्रतिसारखीयचारवत् अस्य पुन. पाक इति तात्पर्यार्थ इत्याहु. । विश्वामित्रोऽप्याह ' पानाय मावनायाथ परिस्नान्य चतुरीये । जले चार्डावशिष्टे च चाराम्मी माहामिष्यते ' इति पानाय यद्भावन चारोदकविधान

तदर्थमित्यर्थ- । पानीयद्यारमात्रा व पलित्रकर्पाद्धेपलरूपा क्रमादुत्तममध्यमाधमनला-नलविषया शेया ॥ ४७ ॥

चारसूत्रम्

भावितं रजनीचूर्णे स्तुद्दीक्तीरे पुन पुन । यन्धनात् सुदृढं सूत्रं भिनन्यशों भगन्दरम् ॥ प्राग्दित्तणं ततो वामं पृष्ठजञ्चाप्रजं कमात् । पञ्चतिक्तेन सस्नेद्य दहेत् कारेण विद्वना ॥ वातजं श्रेष्मजञ्चार्थः कारेणास्रज-पित्तजे । महान्ति तनुमूलानि च्छिन्वैव विलनो दहेत् । चर्मकीलं तथा च्छिन्वा दहेदन्यतरेण वा । पक्षजम्वूपमो वर्ण कारदग्धः प्रशस्यते ॥ ४८॥

चारस्त्रमाह मावितिमित्यादि—पुन पुनरिति सप्ताहमित्यर्थ । प्राग्दिचणमित्यादि—पत्तच क्रमोपदर्शन मक्कलार्थमस्मिदिशिष्टपुरुपगम्य वा, एव च क्रमो
यस्य चतुर्ध्वेव पार्थेष्वर्शासि सन्ति त प्रत्येव बोध्यः, यस्य पुनरेकतमपार्थ, तस्य
तदेव दहनीयम्, एप च क्रम चारे चारस्त्रेऽम्रो च । अध्रजमिति अयदकोपममोपस्यम्, अस्य च दाहो वृद्धवैद्येनं क्रियते पायद्यभयात् । पञ्चातिकेनेति पञ्च
निक्तपुतेन पानादिना सेहियत्वेत्यर्थ । चारेण बहिना च उभयमेव कृष्यज्ञ वातजञ्च दहेत् । रक्षजे पित्तेज पुन चारेणैव दहेत् । चारो हि सर्वत्रैवोचित ।
यदाह सुधुत — चारस्तु सवत्रैवाप्रतिपिदो नत्विम्न ' इति । अन्यतरेणिति
चारेण बहिना वा । चारेण सम्यग्दग्यस्य लच्चणमाह पक्षेत्यादि—पक्षजम्बूपमः
किम्धकृष्णवर्ण इत्यर्थ ॥ ४८॥

गोजीशेफालिकापत्रैर्श संलिख्य लेपयेत्। चारेण वाक्शतं तिष्ठेद् यन्त्रद्वारं पिघाय च ॥ तज्वापनीय बीचेत पकजम्बूफलोपमम्। यदि च स्यात् ततो भद्रं नो चिच्चम्पेत् तथा पुनः॥ तचुपाम्बुप्लुतं साज्यं यष्टीकल्केन लेपयेत्। न निसं तालवर्णामं विद्वराधं स्थिनास्त्रम्॥ निर्वाण्य अधुसर्पिभ्यां विद्वसञ्जातवेद्नाम्।
सम्यग्दग्धे तुगान्तिरिप्तन्तवन्दनगैरिकैः॥
सामृतै सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक्।
मुद्दर्नमुपवेश्यासौ तोयपूर्णेऽथ माजने॥
नारमुष्णाम्बुना पाय्यं विवन्धे मूत्रवर्वसोः।
दाहे वस्त्यादिजे लेप शतधौतेन सर्पिषा॥
नवात्रं माषतकादि सेव्यं पाकाय जानता।
पिवेद् वण्विशुद्धधर्थं वराक्ताथं सगुग्गुलुम्॥
जीर्णे शाल्यन्नमुद्गादि पथ्य तिक्ताज्यसैन्धवम्।
कृढसर्वव्रणं वैद्यः न्नारं द्वानुवासयेत्।
पिष्पल्याद्येन तैलेन सेवेद्दीपनपाचनम्॥ ४६॥

प्रतिमारणियचारो यथोपयोज्यस्तदाह गोजीत्यादि —गोजी शाखोटक । चारेण लेपयेदित्यन्वय । लध्वचरीचारखकाली वाक्, तस्या रात, छोटीशत वा । यन्त्रद्वार गुदस्थितयन्त्रस्य द्वार पिथाय कर्पटादिना ढक्कयित्वा। पक्कजन्त्रुक्तोपम सम्यग्दग्धे. हीनदग्धे तु ले।हित भवति । यदाह वाग्भट — पक्तवम्यूनिम शस्त सम्यग्दग्ध विपर्ययात् । तात्राभ तोदकण्ड्वाढ्य दुर्गन्ध तत पुनर्देष्टेत् । अतिदग्धे स्रवेद्रक्त मूच्छां-दाहज्वरादयः । गुदे विशेषादिरम्त्रसरोधो वातिवर्चनम् । वातिपत्तप्रशमनी शीता तत्र किया हिता' इति । तुपाम्यु काजिकम् । न निम्नमिलादिना सम्यग्बह्दियभ-लज्ञ्यम् । विद्वदर्थमिति विद्वना सम्यन्दर्थ, न निम्नमिलादि लज्ज्यस्क भव-तीत्यर्थ । तालवर्णां मिनित पक्षतालसमवर्णम् , तालवृन्ताभमिति पाठेऽपि पक्ष-तालवन्तसमवर्णमित्यर्थ । स्थितामजिमिति स्थितरकम्, एतच यदा अर्शशिक्षच्वा टहाते तदा श्रेयम् । दाहश्च शिरामद्गोचलेन रक्तस्तम्मक शति । दाहानन्तर यदि-धेय तदाह निर्वाप्येत्यादि—सम्यग्दग्धेऽशंसीत्यर्थ । तुगाचीरी वंशलोचना. तदमावे तालचीरी, सच पर्कटि , तस्य वल्कलम् , अष्टता गुह्ची, यद्यपि गुह्ची पाकादुम्खावाच्या तथापि स्पर्शाच्छातिव, यथा काजिकमम्लमपि मच्चात् पित्तकर स्परेंग शीतिमिनि कृत्वा पित्तहर मवति, तेन गुहूच्या निर्वापण्यतं चिन्त्यमिति केनचिदुक्तम्, तदप्यपास्तम्, किं वा उष्णवीर्याया अपि गुहूच्या द्रच्यान्तर-सयोगमहिस्त्रवात्र दाहप्रशमकत्व श्रेयम् । तोयपूर्णं इति को म्यतोयपूर्णं इत्याहु.।

चारमुष्णाम्ब्रेनेति, चार यवचारम् । वराकाधनिति वरा त्रिफला, तिकाज्य पश्च-निक्तपृतम् । चार ठत्त्वेनि चारवर्सि दत्त्वा चारविन्तित्रानानन्तर पिप्पन्याचेन तैनेनानुवामयेतिन्यर्थ ॥ ४६ ॥

त्राग्रिमुखं लीहम्

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुएडीस्तुहीमुऐएडतिकाद्यटाः। प्रत्येकशोऽप्रपलिका जलहोणे विपाचयेत्॥ पलत्रयं विडद्गस्य व्योपात् ऋपेत्रयं पृथक्। त्रिफलायाः पञ्चपलं शिलाजतुपलं न्यसेत्॥ दिञ्यौपधिहतस्यापि वैकद्भतहनस्य वा। पल्डाटशकं देयं रुक्मलाहस्य चृर्णिनम्॥ पलैश्चतुर्विशतिभिमेधुशर्करयोर्युतम्। धनीभूते सुशीते च टापयेटवतारिते ॥ एतटब्रिमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम्। सममञ्जि करोत्याश्च कालाग्निसमतेजसम्॥ पर्वता अपि जीर्ज्यन्ति प्राशनाटस्य देहिन । गुरुवृष्याञ्चपानानि पयो मांसरसो हितः॥ हुर्नामपार्डभ्वय्युकुष्टश्रीहोटरापहम्। -श्रकालपलितञ्चैतदामवातगुदामयम् ॥ न स रोगोऽस्ति यञ्चापि न निहन्यादिदं चण्ति। करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्जयेत्। म्रवत्यतोऽन्यथा लोहं देहाद् किट्टञ्च दुर्जरम् ॥४०॥

प्रमिद्धफलमग्निमुखनौहमाह त्रिष्टित्रिक्षेत्रकेत्यादि—प्रत्र सुण्डितिका सुण्डिरी अञ्जदा मून्यामलकी, अस्या स्थाने जेटीत पाठे त्रिष्ट्दादीना मूर्लामल्यमं १ एपाञ्च जलद्रीण क्षामञ्जर्षमागाविष्ट षोडगशरावरूपोऽभैवसादेव सिद्ध । प्रथितिस-नम स्थापन्य प्रत्येक त्रिक्षमानन्त्रम्, त्रिफलायाद्य मिलित्वा पश्च पलानि । एषात्र विडङ्गादिशिलाजत्वन्त्रपूर्णाना पाकावतारसमये प्रदेष । दिन्योपि स्वर्णमान्तिक मन शिला वा गालिकोकनो वा, अन्यत्र तु मन शिलाहतस्यिनिपाठान्तरदर्णवा- न्मन शिलेति युक्तम् । लीहमारकत्वात् तु मर्वाययेवाविरुद्धानि । वैकद्गतहतस्य वेति राढाया विह्नि त्यातम् , वारेन्द्रयादिषु वयोवङ्कोलिरिति ख्यातम् । किन्तु म्वर्णमान्निकादिक विना मम्यग् लीहमारण न सिन्यति, अवश्य तत्साधन इयसमुचयेनापि कर्त्तव्यम् । म्वमलीह कान्तव्यतिरिक्त वज्रपायक्व्यदिकृष्णलीहम् ; तदुक्तं विषयटौ 'तीह्यमय उत्तरापथिषट क्वम क्वमकुट्टि कृष्णलीहनामानि '। अत्रानुक्तस्यापि गव्यष्टतस्य चतुर्विशतिपलानि पाकारम्मममय एव वृद्धवेधैदीयन्ते, े श्वत विना किचिद्रपि लीहस्य पाकादर्शनात्, अत एव किचित्त् पलैश्वतुर्विशत्याक्यशर्करयोरपीति पाठान्तर केचित् पठन्ति । मधुशकंरयोश्वतुर्विशतिपलानि मिलित्वा गर्कराधताभ्या पाके रात्रिपर्य्युपिते शाते मधुन प्रदेषः, तेन शर्कराया द्वादशपलानि, मधुनो द्वाटश पलानि, वृतस्य च चतुर्विशतिपलानीति । मच्चयविधिरचनमारलीहवत् ॥ ५० ॥

भल्लातकलौहम्

चित्रकं त्रिफला मुस्तं प्रस्थिकं चित्रकाऽस्ता।
हिस्तिपिण्पल्यापामार्गद्गडोत्पलकुठेरकाः॥
पपां चतुष्पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्।
भक्षातकसहस्रे हे छित्वा तत्रैव दापयेत्॥
तेन पादावशेपेण लौहपाते पचेद्भिषक्।
तुलाई तीन्एलौहस्य घृतस्य कुडवह्यम्॥
ज्यूपणं त्रिफला विहः सैन्धवं विडमोद्भिदम्।
सौवर्चलविडद्गानि पलिकांशानि कल्पयेत्।
कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च॥
श्रूरणस्य पलान्यष्टी चूर्णं कृत्वा विनिव्चित्।
सिद्धे शिते प्रदातव्यं मधुनः कुडवह्यम्॥
प्रातमोजनकाले च तत सादेद् यथावलम्।
श्रशांसि ग्रहणीदोषं पाग्रहरोगमरोचकम्॥
श्रिमिश्रहमाश्मरीमहान् श्रूलञ्चाश्च व्यपोहिति॥
करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम्।

रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ ४१ ॥

मञ्जातकलीहे कुठेरक. पर्णाश । मञ्जातकसहस्रे दे इत्याकृतिमानात् । तत्र-वेति जलद्रोगे । तीच्णलौइस्येति वज्रपायट्यादिलौइस्य । गन्यप्रतस्य बुखवद्रयमिति दैगुण्यात् पोडरा पलानि, एव मधुनोऽपि । निद्धे च व्यूपणादीना प्रचेप , सर्व-मपरममृतसारवत् । श्रत्रामृतसारोक्तविधिना पुटित यथान्याधि प्रत्यनीकद्रव्यपुटि-तञ्ज लीह बाह्य मन्नणानिविधिरिप तथैव ॥ ५१ ॥

रसगुडिका

रुसस्तु पादिकस्तुल्या विडद्गमरिचाभ्रकाः। गद्गापालङ्कजरसे खल्वयित्वा पुन पुन ॥ रक्षिमात्रा गुदार्शीमी बह्नरत्यर्थदीपनी । वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानमुत्कटकासनम् ॥ यथास्य दोपलञ्चान्नमर्शस परिवर्जयेत ॥ ४२ ॥

इति अशीश्चिकित्सा ।

रसस्तु पादिक इति विडङ्गादीनामेकतमभागापेत्रया, तेन विटङ्गमरिचाञ्च-काणा प्रत्येक त्रयो भागा , पारदस्यैको माग इत्यर्थ । शोधितपारद २ मापा मारिताञ्चचूर्ण विडङ्ग मरिच, प्र०६ माथा । अन्यान्तरेऽपि रसभागापेचया विडङ्गम रिचान्रकाणा प्रत्येक मागत्रयसुक्तम् । गङ्गापालद्वेति पालङ्कसदृशपत्र गङ्गापालङ्क गाङ्गराइ इति ख्यातम् । पुन पुनिरिति मप्ताइमात्र कृत नियम इत्यर्थ । रसाञ्रक रोाधनञ्ज जुधावत्युक्तविधर्यव विधेयम् । पृष्ठयान हस्त्यश्वादिपृष्ठे गमनम् ॥ ५२ ॥

इति अशोश्चिकित्साविवृति ।

समस्य रज्ञ्णं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः। तीच्णे पिचप्रसीकारो मन्दे ऋष्मविशोधनम् ॥१॥ श्वरं.कार्यत्वात् तदनन्तरमग्निमान्धादिचिकित्सामाह समस्यत्यादि—रच्चण-मिति पालनम् । वात्तिग्रहो वातस्य प्रशमनमित्यर्थ ॥ १॥

हिङ्ग्वष्टकं चूर्णम्

त्रिकदुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिंगुमागः। प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-

ज्जनयति जठराग्नि, वातरोगांश्च हन्यात् ॥२॥

त्रिकटुकिमित्यादि—वाग्मटेनाय योगो गुल्माधिकारे पठित । अजमोदा यमानी, एव सर्वत्रान्त.परिमार्जने, वहि.सम्मार्जने पुनरजमोदिव, चक्त हि 'मन्त -मम्मार्जने प्रायोऽजमोदा च यमानिका । वहि सम्मार्जने श्रेया चाजमोदाऽजमोदिका' इति । समधरणधृतानामिति धरण तुला, तया सम यथा स्यात् तथा धृतानाम्, अन्ये तु पलदशमारो। धरणम्, समाश्च ते धरणधृताश्चेति विग्रह । अष्टमो हिंगु-भाग इति त्रिकट्वादीना सप्तमागास्तदेकभागसमो हिंगुभाग इत्यर्थ । वातरोगाश्च इन्तीत्वत्र वाग्मटे वातगुल्माश्च इन्तीति क्रचित् पाठ ॥ २॥

> समयवश्कमहौषधचूर्ण लीढं घृतेन गोसर्गे । कुरुते चुघां सुखोदकपीतं विश्वौषधं वैकम् ॥ ३॥

समेत्यादौ-यनग्रको यनचार । विश्वीषध बैकमिति वाशम्द पूर्वयोगा-पेचया, इवार्थे वाशन्दो वा । गेसमें गो सर्व्यकिरणस्य सर्गे मोचे प्रातिरत्यर्थ ॥३॥

> श्रन्नमग्रं पिवेदुष्णं हिंगुसौवर्चलान्वितम्। विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः॥ ४॥

श्रत्नमग्रहमित्यादि —श्रत्नस्य मण्ड श्रत्नमण्ड इति केचित् । श्रन्ये तु चतुर्दशगुणाम्बुसाधित एव मण्डे।ऽन्नमण्डशब्देनोच्यते, श्रन्नपद सुरामण्डादि-निरासार्थमित्यादुः ॥ ४ ॥

अन्नम्परगुणाः

चुद्वोघनो वस्तिविशोधनश्च प्रागुप्रदः शोगितवर्द्धनश्च ।

ज्वरापहारी कफापित्तहन्ता वायुं जयेदष्टगुणो हि मगड ॥ ४॥

चुद्दोयन इत्यादि — अष्टगुणो हि मण्ड इति — सुतण्डुलाना प्रस्तद्वयन्य (तद्दं मुद्द व दुक्तक) कुस्तुम्बुरु सैन्थविद्दं गुतेलम् । यभिश्र सर्वे मण्ड इत्यस्यानन्तर-मेव । यथिप माधवकरेण द्रव्यगुणे सुतण्डुलेत्यादिवचनान्तर चुद्दे।धेनत्यादि पध पठित तथाप्यन्नमण्डस्यापि मण्डत्वमामान्यादेतत् गुणाष्टक श्रेयम् । कुस्तुम्बरु धन्याक, तच्च मनाग्मृष्ट ग्राह्मम्, विधि पुनरस्य यथोक्तमानी तण्डुलमुद्दी तक्त जले युक्त्या दत्वा विपाच्य मण्डा ग्राह्म । पश्चात् त्रिकटुकादिभियया मस्कार इति ॥ ४ ॥

तीच्णामिचिकित्सा

नारीक्तिरेण संगुक्तां पिवेदौह्रम्बरीं त्वचम्। श्राभ्यां वा पायसं सिद्धं पिवेदत्यग्निशान्तये॥ यत्किञ्चिद् गुरु मेध्यञ्च श्रुष्मकारि च भेषज्ञम्। सर्व तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा॥ ६॥

श्रत्याभिचिकित्मामाह नारीचीरेखेत्यादि—वडुम्बरत्वचः कर्ष , पायमपचे तु वडुम्बरत्वच पलम् , तर्ग्डुल नारीचीरञ्चानुरूप दक्ता पायम कार्य्य । यिकाञ्चि-दित्यादि महिपीदुग्धादि ॥ ६ ॥

/ मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यमस्योपकरुपयेत्। निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न निपातयेत्॥ ७॥

मृदुर्मुद्विरित्यादिः—तथाजीर्श्वऽपि मुदुर्मुदुर्मोज्यमस्योपकरपयेत्, यथा निरिन्थनोऽप्ति, अन्तरमित्यवकाण लब्ध्वा, एनमातुर न निपातयेत् न मारयेत्, धातु-पाकादिति भाव । उक्त हि " अहारमित्र पचित दोषानाहारवित्ति । धातुन् चिषेषु न जीवेद् धातुसच्चये " इति ॥ ७॥

विश्वाभयागुङ्चीनां कपायेण षङ्कपण्म् ।

पिवेत् श्रेष्माणि मन्देऽग्नौ त्वक्पत्रसुरभीकृतम् ॥
पञ्चकोलं समिरिचं पङ्कपण्मुदाहृतम् ॥ = ॥
विश्वाभयेत्यादि—लक् गृष्टलक्, लक्षेत्र सुरमियात्रलकारके देये । पञ्च-

कोल समिरिच पद्मण्यमिति, तदुक्त 'मिरिच पिष्पली शुएठी त्र्यूषण ममुदाहृतम्। पिष्पलीमूलसयुक्त चतुरूषणमुच्यते। माग्नि पञ्चोषणञ्चैव सचन्यञ्च षद्मणम् ' इति । पतच षद्भण्य प्रचेपविषये ज्ञेयम्॥ ८॥

हरीतकी भक्यमाणा नागरेण गुडेन वा। सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी॥ ६॥

हरीतक्रीत्यादि—सुश्रुतस्य । योगत्रयमतत्, शुण्ट्या कर्फ, गुडेन वाते, मैन्थवेन दोषत्र्येऽपि विशेषाद्वातकफे ॥ ६ ॥

सिन्धृत्थपथ्यमगघोद्भवविद्वचूर्ण-मुण्णाम्बुना पिवति यः खलु नष्टविद्व । तस्यामिषेण सघृतेन वरं नवान्नं भस्मीभवत्यशितमात्रीमह न्रोणेन ॥ १०॥

सिन्ध्रथेत्यादि — पथ्या हरीतकी, हस्तत्विमह छान्द्रमत्वात् । मगधेाद्भवा विप्यली, श्रत्रापि पूर्ववद् हस्ववत्वम् । वर प्रक्रष्टमिति यावत्, मासहताभ्यामाधिकः मपीत्यर्थ । केचिदिह सन्धवादीना मानभेदार्थ नातिप्रसिद्ध हरिश्चन्द्रमत वर्ण-यन्ति । तद्यथा — हरीतकी हरिहरतुल्यषङ्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विना मिप्पली । हिचितक वरवदनैकसैन्थव रसायन कुरु नृप विह्नदीपनम् ' इति । व्यवहारस्तु समभागेनेति ॥ १ ० ॥

्रिसन्धृत्यहिंगुत्रिफलायमानी-व्योषेर्गुडांशेर्गुडिकान् प्रकुर्यात् । तैर्भिक्तिस्तृप्तिमवाप्जुवन् ना भुक्षीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम् ॥ ११ ॥

मिन्ध्रियादी—गुडाशैरिति एकद्रव्यसमोऽत्र गुडमान , प्रायेण हि श्रेष्मा-धिकेऽग्निसादे श्रेष्मणि च गुडो बहुतरों न युक्त इत्याहुरेके । अन्ये तु सर्वचूर्णा-पेच्चया हिगुणो गुड , तसाद् गुडादर्ब समुदितचूर्णम् , तेन गुडाशमिति, मोदके हिगुणो गुड इति वचनमनुगृहीत भवतीत्याहु । तृप्तिमवाप्नुविश्वति मन्दाग्निरि तावद् प्रभूत मुद्दे यावद् तृप्तिमवाप्नोति । अनाप्नुविश्वति पाठे पुनरत्यिन्नत्वाद् प्रभूतभोजनेऽपि न तृप्तिमाप्नोतित्यर्थ ॥ ११॥

विडद्गभह्णातकचित्रकामृताः सनागरास्तुल्यगुडेन सर्पिषा। लिहन्ति ये मन्दहुताशना नरा भवन्ति ते वाडवतुल्यवंद्वयः॥१२॥

विडगेत्यादि — तुल्यगुढेनेत्यत्र युक्ता इत्यध्याहार्य्यम् तेनैव भागममा गुड । केवलप्रतेनैव लिहन्तीति व्याख्यानयन्ति केचित् । अन्ये तु तुल्यगुढेनेति पद मर्पि- विशेषण वर्णयित्वा ममुदितचूर्णपेषचया द्विगुणेन मिलित्वा गुटमर्पिपा लेह इति व्याचचते, गुरुष्ठेतत् नागार्जुनोक्तवचनसवादात्; तथा हि " मन्त्वूर्णिता गुड्ची विह्यमञ्चातकनागरहुतामां । ज्वलयन्ति जठराग्नि ममेन गुडमर्पिपा लीढा " इति ॥ १०॥

गुडेन ग्रुग्ठीमथवोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा । श्रामेष्वजीर्षेषु गुदामयेषु वर्षोविवन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ १३॥

गुढेन शुरठीमित्यादि—पथ्या तृतीयामिति समस्तमममस्तन्न । तत्र समस्त-पद्मे गुढेनेति पदम्, तथा पथ्या तृतीयामिति पदन्न शुरुद्ध्यादिषु प्रत्येक योज्यम्, तेन गुढेन पथ्या तृतीया शुरठीमित्येको योग । तथा गुढेन पथ्या तृतीया शुरुठीमित्येको योग । तथा गुढेन पथ्या तृतीया शुरुठीमित्येको योग । तथा गुढेन पथ्या तृतीय दाढिममिति लिक्कविपरिणामेन योज्यमिति योगत्रय यथामख्यमामाजीर्णादिषु रोगेषु योज्यम् । यन्तु गुटशुरठीमच्चण गुढिपिपलीमच्चण वा, तदिसन् व्याख्याने प्रयोगान्तरमेव । यदा तु पथ्या तृतीयामित्यसमस्तपाठस्तदा गुढेनेति पद शुरुद्ध्यादिषु चतुर्षु प्रत्येक योज्यम् । तेन चत्वारो योगा यथाक्रममामादिषु योज्या । श्रासिन् पच्चे तृतीयामिति पद योग-व्यवच्छेदार्थं क्रेयम् ॥ १३॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्नाकएठविशोघनम्। अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकमत्त्रणम्॥ १४॥

मोजनाये इत्यादि स्पष्टम्—इमन्तु योग सर्वेऽप्यादियन्ते प्रत्यक्षफलत्वात् सङ्जलभ्यत्वाञ्च ॥ १४ ॥

कपित्थतकचाहेरीमरिवाजाजिवित्रकै । कफवातहरो ग्राही खडो दीपनपाचन ॥ १४॥

किपित्थेत्यादौ-कफनातहर इत्येव पाठ, न तु कफापित्तहर इति, द्रव्यगुण-पर्न्यालोचनया किपित्थादीना नातकफहन्तृत्वात् । खड इति यूषविशेषस्य पारि-भाषिको सञ्चा, अस्य विधानद्वातीसाराधिकार एवोक्षम् ॥ १४॥

शार्दूलकाञ्जिकः

पिष्पली शृङ्गवेरञ्च देवदार सविवकम् ।
चिवकां विख्वपेशीञ्चाजमोदाञ्च हरीतकीम् ॥
महौपघं यमानीञ्च घान्यकं मरिचं तथा ।
जीरकञ्चापि हिडुञ्च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ॥
पप शार्चूलको नाम काश्जिकोऽग्निवलप्रदः ।
सिद्धार्थतेलसम्मृष्टो दश रोगान् व्यपोहति ॥
कासं श्वासमतीसारं पाग्रहरोगं सकामलम् ।
श्रामञ्च गुल्मश्लञ्च वातगुल्मं सवेदनम् ॥
श्रशांसि श्वयथुञ्चैव भुक्ते पीते च सात्म्यत ।
चीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ १६॥

विष्पलीत्यादौ—विल्वपेशी विल्वशलाड , शृह्मवेरम् आर्द्रकम् । पाकात् त्रिमागरोपे किक्षके कट्टतैले सन्तलनम् , हिंगुजारक्षयेश्च प्रचेप इत्युपदिशन्ति षृद्धा । सात्म्यतोऽभ्यासादित्यर्थ । चीरपाकविधाननेति द्रव्यादष्टगुण चीरमित्यादि-परिमापया, अतप्रवेक्षमन्यत्र " चीरमस्त्वारनालाना नास्ति पाकोऽम्भसा विना । सम्यक् पाको न गच्छेत्तु तस्मात् तोय चतुर्गुणम् " इति ॥ १६॥

अप्रिमुखं चूर्णम्

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च हिगुणा भवेत्। पिप्पली त्रिगुणा चैव श्रङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥ यमानिका पश्चगुणा पड्गुणा च हरीतकी। चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठश्चाष्टगुणं भवेत्॥ पतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया ।
पिवेद् दभा मस्तुना वा सुर्या कोप्णवारिणा ॥
सोटावर्चमजीर्णञ्च सीहानमुढरं तथा ।
श्रद्धानि यस्य शीर्थ्यन्ते विपं वा येन भिन्नतम् ॥
श्रशोंहरं टीपनञ्च श्लेप्मभं गुल्मनाशनम् ॥
कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव यटमनाशनम् ॥
चूर्णमित्रमुखं नाम न कचित् प्रतिहन्यते ॥ १७ ॥

हिनुमान इत्यादी—दिगुणित्याधमानापेखवा एव त्रिगुरोति । प्रसन्नयेति सनिन्द्दवाते, दक्षेति शुद्धवाते, मन्तुनेति अन्यकफवाते, सुरया कफवाते, सञ्च-वारिया सामवाते कफे च ॥ १७॥

पानीयभक्तगुडिका

रसोऽर्द्वभागिकस्तुल्या विडह्ममरिचाश्रका । भक्तोद्दकेन सम्मर्ध कुर्याद् गुज्ञानिभान् गुडान ॥ भक्तोद्दकानुपानेन सेव्या विह्नप्रदीपनी। वार्यव्रभाजनञ्चात्र प्रयोगे सात्म्यमिष्यते ॥ १८॥

पानीतमक्तगृटिकाया—स्माऽद्यंमागिक इत्येकमानापेच्या, केचिटत्र कन्न-हिकार्थ मन्याद्यं गन्थक द्विपन्नि । विट्ठाईग्ना प्रत्येक रमापेच्या द्विनुणो माग । भगोऽधिकाराक्षण्मगुटिकायान्तु विट्ठादीना रसापेच्या प्रत्येक त्रिगुणो भाग इति भेद । मक्षोठकेनेन्यत्रमक्कपानीयेन ॥ १ = ॥

ब्हद्यिमुखं चूर्णम्

हैं। जारौ चित्रकं पाठाकरञ्जलवणानि च । स्टमलापत्रकं भागीं किमिश्नं हिंदु पौष्करम् ॥ शटी दावीं त्रित्रुन्मुस्तं वचा सेन्डयवा तथा । धात्रीजीरकवृत्ताम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ श्रम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च । श्रम्यातिविषा ज्यामा हवुपारन्वधं समम् ॥ तिलमुष्ककशिशृणां कोकिलाचपलाशयोः।
चाराणि लौहिकिष्टञ्च तप्तगोमूत्रसेचितम् ॥
सर्वाणि समभागानि स्टमचूर्णानि कारयेत्।
मातुलुद्गरसेनेव भावयेच दिनत्रयम् ॥
दिनत्रयञ्च श्रुक्तेन चार्द्रकस्वरसेन च।
श्रत्यशिकारकं चूर्णं प्रदीप्ताशिसमप्रमम् ॥
उपयुक्तविधानेन नाश्यत्यचिराद्वदान्।
श्रज्ञीणिकमयो गुल्मं मीहानं गुद्रजानि च ॥
उद्राण्यन्त्रवृद्धिञ्च श्रष्टीलां वातशोणितम्।
प्रणुदत्युल्वणान् रोगान् नप्टमशिज्व दीपयेत् ॥
समस्तव्यक्षनोपेतं भक्तं दत्वा सुभाजने।
दापयेदस्य चूर्णस्य विडालपदमात्रकम्।
गोदोहमात्रात् तत् सर्वं द्रवीभवित सोष्मकम् ॥१६॥

गृहदग्निमुखे—करअ करअमूलस्य त्वक्, यत्तु एतस्य मुश्रुतेन कोविदार-पूर्वांणा फलिमित्यनेन फलग्रहणमुपिद्दम्, तच्छोधनिवयय श्रेयम् । लवणानि पञ्चलवणानि, वृत्ताम्ल महादंक, श्रेयमी गजिपपली, एव सर्वत्रामिदीपनयोगे, वाते पर श्रेयस्या रास्ता गृह्यते । उपकुञ्चिका स्वल्पकृष्णजीरकम्, श्रम्लिका तिन्तिही एव मर्वत्रामिदीपनयोगे । पुरीप—सग्रहादी, पुनरिक्तका चाहेरी गृह्यते । स्वामा वृद्धदारकः श्रारम्वथस्य फलम्, तिलशान्देनात्र तिलनालग्रहण चारार्थत्वाद्, मुष्कक घण्टापारिल लौहिकिष्ट मण्डूरम्, तच्च पुराण ग्राह्मम् । जेज्जटस्तु किष्ट पृथ्रगेव पार्थिवद्ग्व्य मण्ड्रादिति । तप्त गोमूत्रसेचितमिति श्रम्भवर्णे कृत्वा सप्तथा गोमूत्रानिवीपितमित्यर्थं, एव सर्वत्र मण्ड्ररशोधन हेथम् । शुक्तेनेति ग्रहण्युक्त-मन्धानिवेशेपेण, तदमावे काजिकेन । एवमन्यत्रापि वोध्यम् । गोदोप्तात्रात् गोदोहनमात्रकालात् ॥ १६॥

भास्करलवर्णम्

पिष्पत्ती पिष्पत्तीमूलं धन्याकं कृष्णजीरकम् । , सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीशकेशरम् ॥ एपां द्विपलिकान् भागान् पत्र्य सौवर्चलस्य च। मरिचाजाजिञ्जरहीनामेकैकस्य पर्लं पलम्॥ त्वगेले चाईभागे च सामुद्रात् कुडवद्रयम् । राडिमात् कुडवञ्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात्॥ पतच्चूर्णीकृतं श्रद्शं गन्धाद्यमसृतोपमम्। लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम्॥ जगतस्तु हितार्थाय वातऋेष्मामयापहम् । चातगुल्मं निद्दन्त्येतद् चातश्रुलानि यानि च। तक्रमस्तुसुरासीधुशुक्रकाञ्जिकयोजितम्॥ जाङ्गलानान्तु मांसेन रसेषु विविधेषु च। मन्दाग्नेरश्चत शक्तो भवेदार्वेव पावकः॥ श्रशीसि त्रहणीदोपं कुष्टामयभगन्डरान् । हद्रोगमामदोपांश्च विविधानुदरस्थितान्॥ प्तीहानमश्मरीञ्चेव श्वासकासोदरिकमीन्। विशेषत शर्करादीन् रोगान् नानाविधांस्तथा। पाएडरोगांश्च विविधान् नाशयत्यशनिर्यथा ॥ २०॥

भान्करणवर्षे — केशर नागेकशरपुष्पम् । पञ्च मैं।वर्चलस्येति पञ्चपलानि सौवर्चलस्येत्यर्थे । त्वगेले चार्द्धमागिके इति पलापेक्वपा, तेन त्वगेलयाः प्रत्येकमर्द्धपलमित्यर्थ । गन्धाट्यमिति पञ्चनालीशादिद्वन्ययोगादेव, न पुनर-पर्चातुर्जातप्रचेषण् ॥ २०॥

अग्निघृतम्

पिष्पत्ती पिष्पत्तीसूतं चित्रको हस्तिपिष्पत्ती। हिंगु चन्याजमोदा च पञ्चैव तवणानि च ॥ हो चारौ हबुपा चैव टद्याटईपत्तीनिमतान्। टिघकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ॥ श्रार्ट्रक्तस्त्रमस्यं घृतप्रस्यं विपाचयेत्। पत्रदिप्तृत्वां नाम मन्द्राग्नीनां प्रशस्यते॥

श्रर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम्। प्रन्थ्यर्धुदापचीकासकफमेदोऽनिलानिप ॥ नाशयेद् ग्रह्णीदोषं श्वयथुं समगन्दरम् ॥ ये च विस्तिगता रोगा ये च कुव्तिसमाश्रिताः। सर्वीस्तान् नाशयत्याश्च सूर्य्यस्तम इवोदित ॥ २१ ॥ पिप्पलीत्यादि—स्वल्पाधिष्टते हिस्तिपिप्पली गनपिप्पली; अनमोदा बस्त-गन्धा (वनयमानी), दौ चारौ यवचार सर्जिकाचारश्च ॥ २१ ॥

मस्तुषद्पलकं घृतम्

पितकः पञ्चकोलस्तु घृतं मस्तुचतुर्गुणम् । सत्तारेः सिद्धमलपाशिकफगुल्मं विनाशयेत् ॥ २२ ॥ मस्तुपद्पलके—धतस्य प्रस्य , 'अनिदिष्टप्रमाणाना केहाना प्रस्य स्थतः' स्त्युक्ते । पिलके प्रत्येकशः , कल्कस्तु केहपादिक स्त्युक्ते ॥ २२ ॥

बडवामुखचूर्णम्

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जविस्वाग्निभः सितातुस्यैः । वडवामुखं विजयते गुरुतरमपि भोजनं चूर्णम् ॥ २३ ॥ पथ्येत्यादौ—कृष्णा पिप्पली, अग्निक्षित्रकः ॥२३॥

ब्हद्शिष्ट्रतम्

भक्षातकसहस्राई जलद्रोणे विपाचयेत्।
श्रष्टभागावशेषञ्च कषायमवतारयेत्॥
घृतप्रस्थं समादाय करकानीमानि दापयेत्।
ज्यूषणं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली ॥
हिंगुचन्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च।
द्यौ चारौ हबुषा चैव दद्यादईपलोन्मितान्॥
दिधकाञ्जिकश्रुक्षानि स्नेहमात्रासमानि च।
श्राईकस्वरसञ्चैव शोभाञ्जनरसं तथा॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा श्रनैर्मृद्दश्चिना पचेत्।

एतद्ग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ श्रशंसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवाताजुलेमनम् ॥ कफवातोद्भवे गुल्मे श्रीपदे च दकोदरे ॥ शोधं पाएड्वामयं कासं प्रहणीं श्वासमेव च । एतान् विनाशयत्याशु तमः स्टर्थं इवेदितः ॥ २४ ॥

बृहद्शिष्टते-महातकमहस्रार्द्धिमत्याकृतिमानात्, शोभाश्चनरम् शोभाश्चनस्य मूलसच स्वरम् ॥ २४ ॥

चारगुड:

द्वे पञ्चमूले विफलामर्कमूलं शतावरीम्। दन्तीं चित्रकमास्फोतां रास्नां पाठां सुधां शटीम् ॥ पृथग्दशपलान् भागान् दग्ध्वा भस्म समावपेत्। तिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणे च गालयेत्॥ तद्रस साधयेदग्नौ चतुर्भागावशेषितम्। ततो गुडतुलां दच्वा साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ सिद्धं गुडन्तु विश्वाय चूर्णानीमानि दापयेत्। वृश्चिकालीं द्विकाकोल्यी यवत्तारं समावपेत्॥ एते पञ्चपला भागाः पृथक् पञ्च पलानि च। हरीतकी त्रिकरुकं सर्जिकां चित्रकं वचाम्॥ हिङ्ग्बम्लवेतसाभ्याञ्च हे पले तत्र दापयेत्। श्रच्यमाणां गुडिकां कत्वा खादेद् यथावलम् ॥ श्रजीर्शं जरयत्येष जीर्शे सन्दीपयत्यपि । मुक्तं मुक्तञ्च जीर्च्येते पाग्हत्वमपकर्षाते ॥ प्तीहार्शे श्वययुञ्चैव श्लेष्मकासमराचकम्। मन्दाग्निविषमाग्नीनां कफे कर्य्योरासि स्थिते॥ कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मञ्चाशु व्यपोहति। ख्यातः चारगुडो होष रोगयुक्ते प्रयोजयेत् ॥ २४॥

कारगुढे श्रास्फोता नवमित्तका हाफरमाली इति ख्याता; सुधा स्नुही, तस्या मूलम् । त्रि मसक्रत्व इत्येकिविशतिवारान् वाराभिधेये क्रत्वस्प्रत्ययः । वृश्चिकाली वृश्चिकपत्री, काकोल्यौ काकोलीविरिकाकोल्यौ । एते पञ्चपला मागा पृथगिनि च्छेद । पञ्चपलानीत्यत्र पषामिति शेष , तेन हरीतक्यादीना वचान्तानां मिलित्वा पञ्च पलानीत्यर्थः । हिंग्वम्लवेतसयोरि मिलित्वैव हे पले । रोगयुक्त इति न तु खम्भे, सौम्यधातुच्यभयात् ॥ २५ ॥

चित्रकगुड:

नासारोगे विधातव्या या चित्रकहरीतकी। विना धात्रीरसं सोऽस्मिन् प्रोक्तश्चितगुडोऽग्निदः॥२६॥ नासारोग स्त्यादि स्पष्टम्॥ २६॥

आमाजीर्याचिकित्सा

वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥ २७ ॥

श्रक्षिमान्धाजीर्णयो परस्परकारणत्वादिश्वमान्धप्रकरण एवाजीर्णिचिकिस्सा-माह वचेत्यादि--वचालवणकल्कयुक्तेनोच्णोदकेन किंवा वचया श्रद्धंश्रुतेनोच्णोदकेन भलवणेन वा वमनम् ॥ २७ ॥

> विदग्धाजीशिचिकित्सा श्रन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं शीताम्बुना वै परिपाकमेति । तद्धश्यस्य शैत्थेन निहन्ति पित्त-

माक्केदिभावाच नयत्यघस्तात्॥२८॥

निदम्धाजीर्णिचिकित्सामाह अन्निमित्यादि — सुम्रुतस्य । शीताम्बुना परिपाक-मेतीति यदुक्त तदेवीपपादयति तद्धयस्यत्यादि । हिशब्दो हेतौ । तदिति शीताम्बु; अस्याजीर्णिन पित्त निहन्तीत्यन्वय । आक्रोदिमावादिति द्रवत्वात् ॥ २०॥

विद्द्यते यस्य च भुक्तमातं द्द्येत हत्कोष्ठगलञ्च यस्य। द्रात्तासितामान्तिकसम्बयुक्तां लीद्वामयां वै स सुखं लमेत्॥ हरीतकी धान्यतुषेद्दिसद्धा संपिष्णली सैन्धवहिक्रुयुक्ता।

सोद्गारधृमं भृशमप्यजीर्णे विजित्य सद्यो जनयत् जुधाञ्च ॥२६॥

विद्यात इत्यादि — सुश्रुतस्य । सुक्षमात्रमिति मात्रशब्द कात्स्न्यें यावद् सुक्षमित्यर्थ , सुक्षमाक्रमे मात्रशब्दो वर्तते । किंवा सुक्षमात्रमिति मोजनानन्तर, तत्कालमेवेत्यर्थ । 'श्रुष्त विद्या हि नरस्य शीघ्रम् श्रे स्त्यादि वाक्य, तथा 'विद्यात तस्य तु सुक्षमात्रम् श्रे स्त्यादि वाक्य, तथा 'मवेदजीर्ण प्रति यस्य शङ्का श्रे स्त्यादि वस्यमायन्तु सौश्रुतवचनमनार्थमिति, अजीर्थे मेषजनिषेधम्य स्वयमेव सुश्रुतेनोक्ष-त्वात्, लह्वनाधुपदेशाद्यः, तत्म केनाप्यश्यवैद्यन पस्यत्वेद्येन प्रकल्पित योगत्रयमिद्यमित्याह जेक्जट । अपरे तु प्रचाराद् भूरिपाठदर्शनाद्य योगत्रयमेतदर्थं मन्यन्त एव, किन्तु स्वल्पाजीर्थं वोध्यमेतत्, प्रभृताजीर्थे तु मेषजसम्बन्य न कुर्यात्, अल्पाजीर्थे तु श्रीपथ सेव्यमिति । हरीतकीत्यादी —धान्यतुपीद मन्धानविशेष , तदमावे काञ्जिक, तेन मिद्धा उत्स्विद्या ॥ २१ ॥

विष्टब्धाजीर्श्यचिकित्सा

्रविष्टब्धे खेदनं पथ्यं पेयञ्च लवणोदकम् ॥ ३०॥
रसरोपे दिवाखप्तो लङ्घन वातवर्जनम् ।
व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्कान्तानतीसारिण श्रुलश्वासवतस्तृपापिरगतान् हिकामरुत्पीडितान् ।

च्रीणान् चीणकफाञ्चिग्रन् मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्थिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान् कामं दिवा स्वापयेत्॥ ३१॥

विष्टव्याजीर्यंचिकित्सामाह विष्टच्य इत्यादि । लवयोदक सैन्धवयुक्तमुच्योन्दक्तित्यर्थ । रसरोपे दिवास्त्रम इत्यल्पदोपापेच्या, महति च लङ्घनमुचितम् । लङ्घनमित्युपवास , अन्ये तु लङ्घनरान्देनात्र लाधवकरो विधिरिच्यते, तेन लच्चन्न अया जरणार्थं कालप्रतीच्य पाचनौपध तथा स्वेदस्र प्राप्यते, न पुनलेङ्घनमुपवास , दोपस्याल्पत्यादित्याहु । वातवर्जनमिति वातस्यासेवनम् । व्यायामत्यादि । रतेति मावे क , रतमनुरिक्तरासिकारिति यावत्, तेन व्यायामादावितरतत्वेन ये क्षान्ता-स्वानित्यर्थं , न तु रत सुरत, तस्य प्रमदामहर्येनेव लब्धत्वात् । वाहनस्र हस्त्यादि-यानम् । व्यायामादिक्षान्तानान्त्र धातुपुष्ट्यर्थम् । यदुकं 'स्वमप्रसङ्गाच नरे। वराह इव पुष्यति ' इति । अतीसारे दिवास्याप कप्तवर्दकत्या स्रोत मरोधकतया

प्रमावादाः हित, म च सर्वातीसारे कफवर्ज्ये श्रेय । ग्रलश्वासतष्णादिष वात-शान्त्या प्रभावदा हित । चीणानिति धातुचीणान्; तेन सुश्रुतीकरसादिधातु-चयेऽपि दिवास्ताप प्राप्यते । चीगुकफानिति स्वतन्त्र किंवा न्यायामादिष्वपि योज्य, तेन व्यायामादिकान्तान चीण्यक्षानेव दिवा खापयेत. शिशनाञ्च निदा-मात्म्यत्वाच दिवानिद्रा । मदहतानिति प्रमत्तान्, तेषाञ्च मधजरणार्थं दिवास्वाप । वृद्धान् प्रति भातु-पुष्ट्यर्थम् । रमाजीिंग्जो रसिवरीवपाकार्यं दिवानिद्रा रात्राविष् निदितस्यैवाहारपाकस्य दृष्टत्वात् । किञ्च निद्राणस्य स्नोत सङ्कीचादनिर्भच्छन् देहोष्मा जठरानलमुद्दीपयति, तेन शीव्रमजीर्थस्य पाक । न च दिवास्वप्नात् कफ-पित्तयो प्रकापा मवति. तद्क चरके - दिवास्त्रपात् केष्मिपत्ते प्रकुप्यते र इति तत्प्रकीपाचाग्न्यप्रवात एव कथ स्यादिति वाच्य, यत. स्रोत मह्रोचादपजात-जठराग्निजीठराजीर्णपाचक एव न तदा कफिपत्तयो प्रकोप , प्रतिनियतशिक्तक-त्वाद भेषजानामिति । ऋस्तु वा कफपित्तप्रकोपस्तथापि नाग्निमान्य. तथाविध-दोषद्च्यसयोगामावात, न चाय नियम यत् कफशकोषेऽवश्यमग्न्युपघात इति कफपित्तप्रकोपजन्यतिमिरादी मत्यपि कफपित्तप्रकोपेऽग्न्यपवातादृष्टत्वादिति । रात्री जागरिताना जागरणजनितवातकोमप्रशमनार्थमेव दिवास्वप्त . म च रात्रिजागरण-कालादर्द कार्य , यदाह वाग्मट,—' असाल्याज्ञागरादूर्ध प्रातः सुप्यादत-न्द्रित १ इति । निरशनानिति । श्रतएव हारीते-- 'मुक्त्वा स्वय्नमसेवेत स्वस्थी-ुप्यस्विथता भवेत इति ॥ ३० ॥ ३१ ॥

> त्रालिप्य जठरं प्राज्ञां हिंगुज्यूषणसैन्धवैः। दिवास्वमं प्रकुवर्ति सर्वाजीर्णप्रणाशनम्॥ ३२॥

श्रालिप्येत्यादि स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

धान्यनागरसिद्धन्तु ते।यं दद्याद्विचत्त्रणः । श्रामाजीर्गप्रशमनं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ ३३ ॥

धान्यनागरेत्यादि — कर्षार्द्धं वा कखाशुण्ड्योरित्यादिवचनेन तीक्त्यद्रव्यस्याल्य-मानत्वमुक्त , तेनेद्दापि तीक्त्यातीक्त्ययोर्धान्यनागरयोरक्तमात्राया पले गृह्यमाखे धान्य सार्द्धत्रिकर्षमान नागरन्तु कर्षार्द्धमान आद्यम् । यतु धान्यशुण्ठ्युपयोगे शुण्ड्याख्य धान्यनस्त्रयमिति केनिचिद्धकः , तदनार्षत्वान्नाद्रियते । वैद्यप्रचारस्तु शुट्या. षण्मापका. , धान्यस्य दश एव कर्षेणिति ॥ ३३ ॥ पथ्यात्रिकम्

पथ्यापिष्पलिसंयुक्तं चूर्णं सीवर्वलं पिवेत्।

मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगार्ते भिषक्॥

चतुर्विधमजीर्णेञ्च मन्दानलमथारुचिम्।

श्राष्टमानं वात्युल्मञ्च सूलञ्चाश्च नियच्छति ॥३४॥

पथ्यत्यादि—पथ्यादीना त्रयाणा नमे। भाग , तच मिलिता कर्णप्रमार

ग्राह्म कर्षश्च्रेष्त्य क्लक्त्रेत्यादिवचनात्॥ ३४॥

भवेदजीर्णं प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्वलिनोऽन्नकाले । पूर्वं सशुरुठीममयामशङ्क

स प्राश्य भुञ्जीत हित हिताशी॥ ३४॥

भनेदजीर्णमित्यादि सुशुतस्य। रसरेषाजीर्णविषयक्तमिद वाक्यम् । भोजनीं-पदेशात् रसरेषि हि स्नल्पदेष , तेन तत्रीषधपूर्वक मोजन सम्भवतीति । पूर्विमिति प्रात काले, यस्य पुरुषस्याजीर्णं प्रति राद्वा भनेत् सोऽज्ञकाले यस्य पुरुषस्य य मोजनकाल तरिमन् सुशुग्ठीं शुग्रठीं सुग्रठीं साक्ष्मिम् अभया सम्प्रास्य मुक्तीतेति बोजना, न तु पूर्व सम्प्रास्येत्यनेनेव पूर्वकालस्य लन्धत्वादिति ॥ ३५ ॥

> किञ्चिद्मिन मन्दाग्निरभयागुडनागरम्। जग्भ्वा तकेण भुञ्जीत युक्केनान्नं षहूपणे ॥३६॥

किञ्चिदित्यादि — यद्यपि गुडेन शुरुठीत्यादिवचन पूर्वमुक्त तथापि तक्रपडू-पणमम्बन्धाद् योगान्तरिमवैतदोध्यम् ॥ ३६ ॥

विस्विकाचिकित्सा

विस्चिकायां विमतं विरिक्कं सुलिह्नतं चा मनुजं विदित्वा। पेयादिमिदीपनपाचनैश्च

सम्यक् जुधार्चं समुपक्रमेच्च ॥ ३७॥ विस्चिकाचिकित्सामाह, विस्चिकायामित्यदि—सुशुतस्य । पेयादीनाष्ट्र दीपनपाचनत्वम्, दीपन-पाचन-धान्यपञ्चकादि-सस्कारात् ॥ ३७ ॥

र्कुष्टसैन्धवया कल्कं चुकतैलसमिन्वतम्। विस्च्यां मर्दनं कोष्ण खल्वीश्रलनिवारणम्॥ ३८॥

कुष्ठित्यादि—आतुरस्य तात्कालिकी पीड़ा महती, तदहे च तैल पक्तुमश-क्यम्, अत किन्चिच्चुक तैलञ्च दत्त्वा कुष्ठमैन्धवयो कल्केन कदुष्णेन मर्दन कार्य-मित्याहुर्वृद्धा तैलपाकपन्न तु कुष्ठसैन्धवयो कल्क पादिक , चुक्रञ्च चतुर्गुग्णम् । खल्वी हस्तादौ शिरामोटन रूपा वेदना ॥ ३८॥

करञ्जनिम्बिशाखरीगुडूच्यर्जकवत्सकै'। पीतः कषाया वमनाद्योरां हन्ति विसूचिकाम्॥३६॥

करखेत्यादि —करअस्य फलम्, शिखरी अपामार्गस्तस्य बीजम्। अर्जेक भेतपणीश इति टल्वण , तथा वृन्दटीकाया चन्द्राटेऽप्यर्जेक इति पठ्यते तस्मात् अर्जेकस्थाने अर्जुनेति प्रमादपाठ । वत्सक कुटज । पीत कथायो वमनादिति वमनार्थेच्च कथाय 'काथ्यद्रव्याञ्जली चुण्णा अपियत्वा जलाढके । अर्द्धभागावशेषञ्च वमनेष्ववचारयेत् ' इति परिभाषया अर्द्धश्वत कार्य्य । अर्द्धभागावशेषमित्यत्र चतुर्मागावशेष इति पाठो दृश्यते तच्च निश्चलो नानुमन्यते । वमनश्चातीच्णम्, स्तोक-स्तोकविमकारकार्जार्थीनिरासार्थम् ॥ ३६ ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रां मूलं समावाप्य च मातुलुङ्गवाः। छायाविश्रष्का गुडिकाः कृतास्ता हृत्युर्विसूचीं नयनाञ्जनेन॥ ४०॥

व्योपित्यादि — सुश्रुतस्य । मातुन्तकी मधुकुनकुटी । विस्चीशब्देनात्र विस्चीजिनतमूर्च्छाप्रमीलकशिरोरोगादयो गृद्यन्ते, कारणे काय्योपचारात् । किं वा श्रक्षनेन प्रमावादेव विस्ची हन्यते इति सुश्रुतटीकाकृतो व्याचचते ॥ ४०॥

गुडपुष्पसारशिखरितग्डलगिरिकर्णिकाहरिद्राभि । श्रञ्जनगुडिका विलयति विस्चिकां तिकटुसनाथा ॥ ४१॥

गुडपुष्पेत्यादि—गुडपुष्पे मधुकवृत्त , तस्य सारो आहाः । शिखरितग्डुला अपामार्गवीजानि । गिरिकर्णिका व्यतापराजिता तस्या मूल आहाम् । त्रिकडकान्त एको बोग । विलयति रामयनि ॥ ४१ ॥
्रत्वक्पत्ररास्तागुरुशिग्रुकुष्ठैः
रम्लेन पिष्टैः सवचाशताह्रै ।
उद्वर्त्तनं खल्विविस्विकाम्न
तेलं विपक्षक्व तदर्थकारि ॥ ४२ ॥

त्वक्पत्रेत्यादि—त्वक् गुडत्वक्, पत्र तेज पत्रम् । अम्लिपिष्टिरिति क्रांजिकपिष्टै । शताह्वा सुल्लुफा (सोया) इति ख्याता, शताहिरित्यत्र जटाहिरित्यन्ये पठिन्त, यथा
'राजापत्रागुरुमामीकुष्ठशियुत्वचो वचा । पिष्टमम्लेन तच्छ्रेष्ठ विस्च्यामक्षमर्दनम्' ।
सुभुते तु शतपुष्पी जटामासी चेति द्वयमि न दृश्यते, यथा—'कुष्ठञ्चागुरुपत्रश्च
राज्ञा शियुत्वचा वचा । पिष्टमम्लेन तच्छ्रेष्ठ विस्च्यामक्षमदर्भम्' इति । तेल
विपक्षम्च तदर्थकारीति, त्वक्पत्रादिमि कल्कीष्ठते काक्षिकेन द्रवेण चतुर्गुणेन
तेल पक्ष खल्कीविस्चिकाम्न भवतीत्यर्थ ॥ ४१ ॥

पिपासायामन्द्रक्षेशे लवक्षस्याम्बु शस्यते ।

जातीफलस्य वा शीतं श्रतं भद्रधनस्य वा ॥ ४३ ॥
विस्च्यामतिवृद्धायां पाण्योदाहः प्रशस्यते॥ ४४ ॥

पिपासायामित्यादी—अनूत्कलेश ब्लुत्कामिका, ठिकरीति लोके ख्याता इति
निश्चल , अन्य त्वनृत्वलेश ब्रीपदुत्विलष्ट दीप ब्रत्याहु । लवहाम्बु अर्द्धश्वतशीतम्,
ध्व जातिफलाम्बु अद्रधनाम्बु च क्षेयम् । अद्रधन अद्रमुस्तकम्, अत्रान्तरे
योगान्तर दृष्टफलमत्र वीद्धव्यम्— आधाय तिहिशेषक्षो मानुलुद्धफलत्वचम् ।
पीत्वा मद्रधनकाथमनृत्क्लेशादिमुच्यते । पाष्ययोदीह् इति पादपार्ष्टिणुयुगदाहस्तु
मृच्छीरान्यर्थम् , मृच्छेतरलक्षणामावे सति मसशरादिशलाकया पाददाह । म च
प्रमावात् पाददेशे एव कृतो हितो अवतीति वचनादुत्रीयते । मुख्रोतऽज्युक्त भाष्याछ्र
'प्रशस्त पाष्ययोदिहनम् ' इति । चन्द्रोटऽज्युक्त ' धृदाया विस्वया पार्ष्यिदेशे च
दाह ' इति । अत पार्ष्यिदेशे इत्यत्र पार्थदेश इति ये पठन्ति ते आन्ता । पार्ष्यिदाहम्य सर्वतन्त्रविहितत्वात् ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वमनन्त्वलसे पूर्वे शवण्नोप्णवारिणाः । स्वेदो वर्त्तिर्लङ्गनम्ब क्रमश्चातोऽग्निवर्द्धनः ॥

सरुक् चानद्रमुद्रमम्लिपष्टैः प्रलेपयेत्। दारुहैमवतीक्षष्ट्रशताह्वाहिंगुसैन्धवै ॥ तकेण युक्तं यवचूर्णमुज्णं सत्तारमर्ति जठरे निह्न्यात्। स्वेदो घटैर्वा बहुवाष्पपूर्णै-रुष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापै ॥ ४४ ॥ तीव्रात्तिरपि नाजीर्णी पिवेच्छूलझमौषधम्। दोषाच्छन्नो उनलो नालं पक्तुं दोषौपघाशनम् ॥ ४६॥

इत्यग्रिमान्द्यचिकित्सा ।

भलमकचिकित्सामाह वमनमित्यादि-नविशेन सैन्थवेन । विचिरिति फलब्रिंग मा चोटावर्चे वस्यमाणा । श्रत इति श्रत उद्ध्वीमत्यर्थ । सरुगति सग्र लम् । इमवती वचा । तक्रेणेत्यादि--चरकस्य । मचारमिति सह यवचारम् तत्सर्व घटे प्रचिप्य उदरे स्वेद इत्याह कश्चित्, तन्न, चरकेऽस्य योगस्य प्रदेहप्रक-रखे पठितत्वात्। तस्माद् यवचूर्णयवद्यारी तक्रेख पिष्ट्वा किश्चिदुष्ण कृत्वा उटरे लेप: कार्य । स्वेदा घटैना बहुवाष्पपूर्णैरिति तप्तकाक्षिकादिभिनांष्पूर्णैर्धटैस्तथा-न्येरुम्पैर्वस्वपटकादिभिस्तथा हस्ततापैरिप रवेद इति योज्यम् । तीत्रासिरित्यादि-वाग्मटस्य। ना पुरुषः । दोषाच्छन्न इति आमदोषाभिभृत । नालमिति न समर्थ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इत्यग्रिमान्धांचिकित्साविवृति ।

अथ क्रिमिचिकित्सा ।

पारसीकयमानीका पीता पर्य्युषितवारिणा प्रातः। गुडपूर्वी क्रिमिजातं कोष्टगतं पातयत्याशु ॥ १॥

अजीर्णात् क्रिमिमम्मव इत्यजीर्णानन्तर क्रिमिचिकित्मामाह पारसीकेत्यादि-पारसीक्यमानी खोरामनी यमानीति 'ख्याता । गुडपूर्वेति गुड' पूर्वो यस्या इति, गुड मद्मवित्वा मनाक् विलम्ब कृत्वा सा पातब्येत्यर्थ । पेषणमाप पर्स्युषितवारि-येति ॥ १ ॥

> पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं चौद्रयुतं पिवेत् । केबुकस्य रसं वापि पत्त्रस्याथवा रसम् ॥ लिह्यात् चौद्रेण वैडद्गं चूर्ण किमिविनाशनम् ॥ २॥

पारियद्वेत्यादि--पारियद्वक मन्दारिवरीष । केवुकस्यिति केबुकस्य कि उन्ताहा इति ख्यानस्य तस्य मूनस्वरम ब्राह्मम् , एव पत्त्रस्य, पत्त्र राशिल्छः, चौद्रयुतिमिति पद केबुकरमे पत्त्रस्य थोज्यम् । लिह्मादित्यादि स्पष्टम् ॥ २ ॥

मुस्ताखुपर्णीफलशिष्ठदाह-काथ सक्त ज्याकिमिशतुकरकः। मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् किमीन् निहन्ति किमिजांश्च रोगान्॥३॥

मुस्तेत्यादे(—माखुपर्णी मृपिकपर्णी दन्तीभेदो वा, फलशब्देन।त्र त्रिफला ग्राह्मा रविग्रुप्तमवादार । क्रिमिशत्रुविङक्तमार ॥ ३ ॥

> श्राखुपर्णीदलै पिष्टै पिष्टकेन च पूपिकाम्। जन्म्वा सौवीरकञ्चानु पिवेत् क्रिमिहरं परम्॥४॥

श्राद्धपर्यादलैरित्यादि—शाखुपर्या द्रवन्ती मूपकपर्यी उन्तीभेदो वा,
मगड्कपर्यात्वन्ते, दल कीमलदलम् । यदाह वाग्मट ' श्राखुपर्याकिमलयैः
सुपिष्टै पिष्टमिश्रिते । पक्ता पूपलिका खादेद् धान्याम्लक्ष पिवेदनु ' इति । पिष्ट-केनेति वविष्टकेन क्रिमिहरत्वादिति सुश्रुतटीकाकृत । शालितगड्लिपिष्टकेनेति निक्षल । श्राखुपर्यापत्रस्य भागत्रय पिष्टकस्य त्वेको माग इत्याद्ध । मौदीर फाकिकम्, ययपि सुश्रुते वाग्मटे च चीराशि मासानित्यादिनाम्लमात्रस्यैव वर्णनमुक्त तथापि विशेषवचनादत्र माजिकानुपानमिति न विराधमावहति ॥४॥

पलाशयीजस्वरसं पिचेद्वा चौद्रसंयुतम्। पिवेत् तद्वीजकस्कं वा तक्रेण किमिनाशनम् ॥४॥ भलाशवीजमिलादि—भलाशवीजसः स्वरसः, तदीनकन्को वा तक्रेणेतिः तराडुलाम्बुनाप्यय योगा श्रेय । तदुक्त सुश्रुते 'पलागनीजस्वर्सं कल्क वा तराडुलाम्बुना रहित ॥ ५ ॥

> सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोषयोजयेत्। विडद्गसैन्धवत्तारकम्पिक्षकहरीतकीः। पिवेत् तकेण सम्पिष्य सर्वक्रिमिनिवृत्तये॥ ६॥

सुरसाटिगया मौश्रुत , मर्वथैवेति कल्ककषायकल्पना । विडङ्गसैन्धवेत्यादौ-काम्पिल्लको गुग्रहारोचना कमलागुटी (कमीला) इनि ख्याता ॥ ६ ॥

विडङ्गपिष्पलीमूलशिष्ट्रभिमेरिचेन च।
तक्रसिद्धा यवागूः स्यात् क्रिमिन्नी ससुवर्धिका॥
्रीतं विम्वीघृतं हन्ति पक्षामाशयगान् क्रिमीन्॥ ७॥

विडडेलादि—वरकस्य । तक्रामिद्धेति तक्रमत्राद्धोदक धाद्यम्, श्रन्यथात्य-स्तता स्यादित्यादु । सुनर्विका मर्जिकाचार , त दत्त्वा मचयेत् । विम्बीष्टत-मिनि—विम्बीष्टने विपक्षिण्योफलस्य कत्कश्चतुर्गुण जलम् ॥ ७॥

त्रिफलाघृतम्

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा कम्पिलकं तथा। सिद्धमेमिर्गवां मूत्रे सिप्: क्रिमिविनाशनम्॥ =॥

त्रिफलाष्टते दन्ती नागठन्ती, मा च स्थूलमूलेत्याहु । 'तदुक्त ' त्रिकृत्क-न्पिल्लकृतवचानागदन्तीफलत्रयै । गोमूत्रमधित मीप पानत क्रिमिनाशनम् ' इति ॥ म ॥

विडङ्गघृतम्

शिक्ततायास्त्रय प्रस्था विडङ्गप्रस्थ एव च।

हिपलं दशमूलञ्च लामत समुपाचरेत्॥

पादशेषे जलद्रोणे श्रृंत सिर्पिर्विपाचयेत्।

प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं किमिनाशनम्॥,

विडङ्गधृतमेतच लेहं शर्करया सह।

सर्वान् किमीन् प्रणुटति वज्रं मुक्रामिवासुरान्॥॥।

त्रिफलाया इत्यादि स्पष्टम् । विडग्नश्चत किचत् पुस्तके, तथा कृन्दे च । नच टीकाकृद्धिनं धृत इत्यधिकमेविति श्रेयम् ॥ ६ ॥

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धुस्तूरपत्रजः। ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो यूकविनाशन ॥ १० ॥

रसेन्द्रेखेत्यादौ---रमेन्द्र पारदः । ताम्बूलपत्र पर्छ । लेपन यौकनाशनिक्षित्त पाठे यौक यूकवृन्दम् ॥ १०॥

विडङ्गतैलम्

सविडङ्गगन्धकशिलासिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम् । श्राजन्म नयति नाश लित्तासिहतांस्तु यूकांश्च ॥ ११ ॥ इति क्रिमिचिकित्सा ।

सविद्धन्नेत्यादै।—शिला मन शिलित केचिदाहु, अन्य तु गन्धकशिला गन्धकपाषाय्यमेवेतिः वदन्ति । सुरभीजल गोमृत्र तच चतुर्गुण प्राप्यम् ॥ ११॥ इति क्रिभि चिकित्साविष्यति ।

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा ।

साध्यन्तु पाएड्वामयिनं समीत्य स्निग्धं घृतेनोद्ध्वमधश्च शुद्धम्। सम्पाद्येत् सोद्रघृतप्रगादै-ईरीतकीसूर्णमयैः प्रयोगैः॥१॥

पुरीपिकमित पाण्डुरोगस्य प्राहुर्भावात् किम्यनन्तर पाण्डुरोगिविकित्मामाह् माध्यमित्वादि—सुग्रुतस्य । ममीद्येति अनुवन्ध्यानुबन्धरूप तदोपिविशेष सम्यग्रुपलम्य किम्थमेन, न स्वित्र पाण्डुरोगे स्वेदनिषेधात् । उक्त हि सुश्रुते 'पाण्डुमेंही रक्तिपेत्ती तृपार्च चतन्त्वीखो दुवेलोऽजीर्थमुक्त । दकोदरी गर्भिणी पीतमचो नैते स्वेद्या यक्ष मत्तोऽतिसारी 'हित । छतेनेति- न तु तैलादिना सर्वपार्द्युरोगाखा पित्तप्रधानत्वात् रक्तदृष्यत्वाद्य । उक्त हि सुश्रुते 'व्यायाममम्ल

लवणानि मध मृद दिवास्तममतीव तीच्णच्। निषेवमाणस्य प्रदूष्य रक्त दीयास्त्रच्य पायद्वरता नयन्ति ' इति । पित्ते घ्रन्तिव प्राधान्यात् छतनेव सहन युक्तम्, धृतन्न भणनसम्क्रनमेव देय वहुगुण्यतात् । उक्त हि चरके ' कल्याणक पन्नगन्य महातिक्तमथापि वा । स्नेहनार्थ धृत द्यात् कामलापाण्डुरोगिणे ' इति । उक्त हि
सुश्रुते च ' केवलेनेव छतेनेत्याहु ।' उद्ध्विमिति वमनेन, श्रव इति विरेचनेन ।
वधिष पाण्डुरोगपाडितम् ' इति तथापि पाडितमिति वचनेन प्रवृद्धपाण्डुगेगविषय
तद्भन श्रेयम्; उपक्रमे तु कालक्तुंदोषाधपेच्या कफोद्रेकावस्थाया मृद्वमन श्रेयम् ।
वधाव हारोत 'कालक्तुंदोषपञ्चति शरीर समीद्य द्याद्वमन विधिष्ठ ' इति ।
सुश्रुतेऽप्युक्तम् ' एतेऽप्यनीर्णभ्यथिता वम्या ये च विषातुराः । अतीव
चोल्वणक्तपास्ते च स्थुर्मधुकाम्बना ' इति । विरेचनन्तु तीस्त्यमेव, यदुक्त ' वान्तस्य
तीक्त्यान्यनुलोमनानि कफोपदिष्टानि मिषिन्यस्थात् ' इति । इदानी सरोभनानन्तर कृत्यसर्थनकमस्य दोपविशेषरामनार्थमाह सम्पाद्येदित्यादि—हरीवकी
चूर्णमयं प्रयोगैर्वस्यमार्थर्नवायसादिनिर्हरीतकीचूर्णवहुलैरित्यर्थः । हरीवकीचूर्णमयं प्रयोगैर्वस्यमार्थर्गवायसादिनिर्हरीतकीचूर्णवहुलैरित्यर्थः । हरीवकीचूर्णसुतिरिति पाठान्तरम् ॥ १॥

पिवेद् घृतं वा रजनीविपकं सत्तैफलं तैल्वकमेच चापि। विरेचनद्रव्यकृताम् पिवेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन॥२॥

रजनीविपक्षमिति हरिद्राकलककाथाभ्या सिद्धमिति गयदास । तम्न, कलक-काथकरणस्य गण्विषयत्वात् तस्मात् हरिद्राकलकिमिद्धमिलन्ये, मन्ये तु वस्यमाण्-हरिद्राण्तिमिलाहुः । तम्न, चरकज्ञात्वात्, इद वाक्य मौश्रुतमिति । त्रैफलिमिति विफलाकाथकल्किसिद्धम् , त्रिफलापटोलापिनुमर्देलादि कुष्ठोक्तम् , वातरोगोक्त वा हेवम् । तैल्वकिमिति वातन्याध्युक्तम् । विरेचनद्दन्यक्रनिमिति त्रिंगृदादिद्वन्यसस्कृत प्रतम् ; इद हि वाक्य सौश्रुतम् । योगाश्च वैरेचिनकानिति मौश्रुतिविरेचनाध्यायोक्तान् इतेन पिनेदिति ॥ र ॥

हेतुप्रत्यनीकाचिकित्सा
्रीविधः स्निग्धस्त वातोत्थे तिक्षशीतस्त पैत्तिके।
ऋषिके कटुक्तोष्णः कार्य्यो मिश्रस्तु मिश्रके॥३॥

हेतुप्रस्नांकाचिकिन्सामाह विधिरिसादि । मिश्रक र्रात इन्हें ॥ ३ ॥ हिश्यक्रेरं तित्रृच्चृर्णे पलाई पैत्तिके पिवेत् । कफपाग्रहस्तु गोमूत्रक्षिन्नयुक्तां हरीतकीम् ॥ नागरं सौहचूर्णं वा कृष्णा पथ्या तथाश्मजम् ॥ गुग्गुलुं वाथ मूत्रेण कफपाग्रह्वामयी पिवेत् ॥ सप्तरात्र गवां मूत्रे भावितं वाप्ययोरज । पाग्रहरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिवेन्नर ॥ ४॥

दिशकरिमलादि ।— त्रिवृच्चृणमेत्र डिगुणगंक सत् पलाइंमान पिनेत् तेन गकरा कप । मा ५ गंकन ४ । त्रिवृच्चृण मापा ६० गंकन ६ एव मिलित्वा पलादमिलार्थ न तु त्रिवृच्चृण पलादं मत् डिगंकर पल्मेकम्, एव मिलित्वा माद्यप्लेमक प्रलादेपयोगेऽस्या मात्राया अनहंत्वात् । गोमृत्राक्त्रत्राक्षमानं गोमृत्रेण क्लिता पिष्टा नटनु गोमृत्र्यं युक्तामालोडिना पिनेदित्यथ , वृद्ध-वाग्मेटेऽत्युक्त "गोमृत्रेण वा हरांतकी किल्किता " इत्यादि, अन्ये तु गोमृत्रेण क्लितामुत्विदितामिलाहु , अन्य तु चरकवस्यमाणयोगे आर्ग्वथरमेनेनि पाठत्वा आर्ग्वथरसेन हरीनका पिनेदिति पृवण योजयन्ति किल्नु वाग्मटमवाद्यात् पूर्वपाट एव सासु , । नागरिमलादि — नागर्लाहचूर्णाभ्यामेको योग , कृष्णपथ्याम्या हितीय , अन्य ति शालाजतु अय योगम्त्रतीय , गुग्गुलुमिति चतुर्थ , गोमृत्रेणित सम्बध्यते मर्वत्रव । लाहचूर्णन्तु जारिन पुटिनञ्च प्राद्य तत्रभावे लाहपत्रिका प्राद्या, मा च गालिञ्चरमित्रकाकार्थ पुटपाकेन ममाथनाया, एव मर्वत्र , त्य मापकमेक. गुण्ठीचृण्च मापकचतुष्टयमिलाहु । एवगुण पिष्यलाहरीनकीचूण्, तथा गुदरालाचनु मापा ३, श्रतपितगुन्गुलु मापा ६, मर्वत्रव गोमृत्रेण पानम् । मारात्रमिलादि —स्पष्टम् ॥ ४॥

फलिकामृताचासातिक्षाभूनिम्यनिम्यनः। काथः नौष्ठयुतो हन्यात् पारहरोगं सकामलम्। फर्नाक्षेत्रादौ।—अनृता गृहची, तिक्ना कटकी, म्निनश्चिरता॥ ४॥ श्रयस्तिल्ञ्यूपणकोलभागैः

श्रयस्तिलञ्यूपणकोलभागैः सर्वे समं माजिकघातुचूर्णम्। तैमोटकः जौद्रयुतोऽनुनकः

पागड्वामये दूरगते अपि शस्तः॥ ६॥

श्रयिस्तिलेखदाँ — कोल शुष्कवदर न तु कर्षार्ढ, यदाह सुदान्तसेन श्रन्य कोलितिलच्योप समैर्माचिकधातुना । मधुना वटकान् कृत्वा जम्ध्वा तक पिवेदनु ' इति । तिलोऽपि कृष्ण , माचिकधातु स्वर्णमाचिक, तदिष शुद्ध श्राह्म, तच्छोधनश्च लोहप्रदीपादौ वोध्यम् । श्रनुतक इति तकानुपान ॥ ६॥

> श्रयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रसंचितम् । मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह मक्केन योजयेत् ॥ दीपनश्चाग्निजननं शोथपाग्ड्वामयापहम् ॥७॥

श्रयोमलिमित्यादि—श्रयोमल पुराणमण्डूर, भूयो गोमूत्रशोधितमिति सप्तवा-रान् । ईट्रास्य मण्डरचूर्णस्य मापकदय त्रिधा विभन्यातो दर्शनात् मोननादिम-व्यान्तेषु मधुमिपन्यां लेखा, पश्चादभ्यासक्रमेख माषक वर्डयेत् । श्रनुपानिमह तक दुर्भ वा ॥ ७ ॥

नवायसं लोहम्

ज्यूषणं तिफलामुस्तविडङ्गचित्रका समाः। नवायो रजसो भागास्तज्ज्यूणं मधुसर्पिषा॥ भ भज्ञयेत् पाण्डहद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम्॥ ज॥

त्र्यूयणिस्वादि—पक्षभागोपचया नवगुण मण्डूरचूर्णम्। श्रादौ रिक्रिद्य घतमधुम्या लीहपात्रे लोहमुपिलक्या विमर्च लिह्यात्, रिक्रिद्य कृत्वा वृद्धि कार्य्या मापकद्वय याविति व्यवहार । वाग्भेट तु तक्राचनुपानच्चोक्ष, यथा 'व्योपाग्नि-त्रिफलावेल्लमुस्तैस्तुल्यमयोरज । चूर्णित त्क्रमध्वाज्यकोष्णाभ्मोमि प्रयोजितम्' इति । एतदेव नवायसं सुभूते प्रमेहचिकित्साया पठितम् ॥ = ॥

योगराजः

त्रिफलायास्रयो भागास्त्रयिक्षकडुकस्य च ॥ भागिश्चत्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च । माचिकस्य च ग्रद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥ भ्रष्टौ भागाः सितायाश्च तत् सर्वे श्वरूणचूर्णितम्। माज्ञिकणाष्तुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ।
उद्धम्बरसमां मात्रां तत खादेद् यथाग्निना ॥
दिने दिनं प्रयोगेण जीर्णे भोज्ये यथेप्सितम् ।
वर्जायत्वा कुलत्थांश्च काकमाचीं कपोतकान् ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपम ।
रस्तायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ।
पाएहरोग विप कासं यदमाणं विषमज्वरम् ।
कुष्ठान्यजरकं मेहं श्वासं हिकामरोचकम् ।
विश्वाद्धन्त्यपसारं कामलां गुदजानि च ॥ ६॥

त्रिकलाया इत्यादि—चरकत्य । त्रिकलायास्यो मागा इति मिलित्या त्रयो।
मागा , पव निकदुकत्यापि, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । चित्रकाविद्वह्नयोरिष प्रत्येक
पलम् । शिलाजत्वादिलीहचूर्यान्ताना प्रत्येक पश्च पलानि, शर्करायाश्चादी पलानि,
शिलाजतु च शिवागुद्धिकोक्कविधिना शाह्मम् । रूप्यमलस्य चेति रूप्यस्यावध्मायमानस्य यत् किट्ट निर्गेच्छति तद्र्प्यमल, माज्ञिकत्येति मारणपुटनादिना शुद्धस्य
स्वर्णमाज्ञिकस्य । अन्ये पञ्चाशमजतुनो भागा पञ्च रूप्यमलस्य चेत्रत्र तथा रूप्यमलस्य इति पठन्ति, तेन रूप्यमलस्येति शिलाजतुविशेषण्, ततश्च रमायनाधिकारे
राजत कद्धक श्वतमित्यादिना यिच्छलाजतु रूप्यमलस्येनोक्ष तदिह गृह्यते इत्याद्ध ।
पतत्तु न व्यवहरन्ति वृद्धा । वाग्मटे तु लीहस्याने रूप्य पठितम्, यथा 'ताप्यादि
चरूत्यायोमला पञ्च पला पृथक् । चित्रकत्रिफलाव्योधविटक्षे पलिकं नह । शर्क
राष्टपलोन्मिश्राश्चूर्यिता मधुनाप्छता ' इति तदत्र प्रयोगे भेदाद्यविरोध , उक्ष हि
'मुवर्यमथवा रूप्य योगे यत्र न लम्यते । तत्र लीहन कर्म स्यात् भिपम् कुर्य्यादिचच्च ' इति । पूर्वोक्तव्यवस्थापि शिलाजनुलीहमलसर्यमाचिकलीहरजोमिश्चनुमिदेव दृश्यते, तेन तन्त्रकारवचनयोर्न विरोध इति । उद्धम्बर कर्ष । अजरकम्
अतीर्यम् । यथाशिनेत्यत्र ना पुरुष ॥ ६ ॥

विशालाकद्वकामुस्तकुष्ठदारुकालिङ्गका ।
कर्षाशा द्विपिचुर्मूर्वा कर्षाद्वां च घुण्पिया।
पीत्वा तच्चूर्णमम्मोभि सुखं लिह्यात् ततो मधु॥
पाएहरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम्।

गुल्मानाहामवातांश्च रक्षापित्तञ्च तज्जयेत् ॥१०॥

विशालेलादि—विशाला गोरज्ञकाँटी । कर्षाशा च घुणप्रिया इत्यपपाठ किन्तु वर्षाद्वांशिति । उक्त हि चरके 'विशालाकदुकामुस्तकुष्ठदारुकलिक्षकान् । कर्षो निमतानितिवया कर्षाद्वां अप्रदापयेत् । कर्षो मधुरपाद् द्वौ च सर्वचूर्णं मुखाम्बुना । मृदित त रम पूत पीत्वा लिह्यात्तु माज्ञिकम् ' इति, अतस्व वचनवलात् कल्ककथय-विधानमध्यत्र योगे बोध्यम्, तेन तच्चूर्णं सुखै कदुष्णरम्भोभिश्चूर्णपेक्षया चतुर्यु-सर्मृदित्वा वस्तपूत् कृत्वा पिवेत्, अनन्तरस्य मधु लिह्यादित्थर्थ ॥ १०॥

लौहपात्रे श्रतं चीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः।
पिवेत् पाएड्वामयी शोधी त्रहणीदोषपीडित ॥
कल्याणकं पञ्चगव्यं महातिक्रमथापि वा।
स्नेहनार्थे घृतं दद्यात् कामलापाएडरोगिणे ॥
रेचनं कामलार्चस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत्।
तत प्रशमनी कार्या किया वैद्येन जानता ॥ ११ ॥

लीहपात्र स्त्यादि—अत्र जल चतुर्गुण बोध्य पाकानुपपते । कल्याणप्टत पञ्चगन्यप्टतञ्च उन्मादे बत्त्यति, महातिकञ्च कुष्टे, रेचनञ्च पित्तहरत्वेन ॥११॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रस । प्रातमीचिकसंयुक्त शीलित कामलापह ॥ १२॥

त्रिफलाया इत्यादि —स्पष्टम् ॥ १२ ॥

श्रक्षनं कामलात्तीनां द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः। निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा सम्प्रकरूपयेत्॥ १३॥ 🗸

श्रश्ननित्यादि —श्रञ्जन नेत्राञ्चन, द्रोण्पुणी दयडकलस इति केचित्। निशादिभिरंचुण्डिन कार्य्यं, तदुक तन्त्रान्तरे निशागिरिकधात्रीणा चूर्णरत्राञ्चन मतम्। र पत्च मध्वकशलाकया कार्य्यमित्याहु ॥ १३॥

नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनीफलम् ॥ १४॥

नस्यमित्यादौ-कर्नोटमूलामिति कर्नोटमूलरस इत्यर्थ । जालिनी पीत-

श्रयोरजोव्योषविडद्गचूर्णं लिहेद्धरिद्धां त्रिफलान्विता वा । संशर्करा कामलिनां त्रिभगडी हिता गवाक्ती संगुडा च शुगठीं ॥ १४ ॥

सशकेरेत्यादि—सुश्रुतस्य । त्रिमण्डी त्रिवृता, रेचनार्थमय योग । गवाची गोरचकर्कटी, श्वतापराजिता इत्यन्ये, श्रत्रापि मशकेरेत्यादि योज्यमित्याह निश्चल । कार्तिकस्तु सगुडा च शुण्ठीत्यत्र चकार, भिन्नक्रम योजयित्वा शुण्ठी मगुढेति ब्याख्याय गवाचीमपि सगुडामाह । एव सुश्रुतटीकाया डल्वणोऽपि व्याख्यातवान् ॥ १५॥

दावीं सत्रिफला व्योषविडङ्गान्ययसो रजः। मधुसर्पिर्युतं लिह्यात् कामलापागृहरोगवान् ॥ १६॥ औ टाबीत्यादि—चरकस्य। दार्व्यास्त्वत् ॥ १६॥

तुल्या त्रयोरजःपथ्याहरिद्राः चौद्रसर्पिषा । चूर्णिता कामली लिह्याद् गुडचौद्रेण वाभयाम् ॥१७॥

तुला इत्यादि—स्पष्टम् ॥ १७ ॥

धात्रीलौहरजोव्योषनिशाचौद्राज्यशर्कराः। लीद्वा निवारयत्याग्र कामलामुद्धतामपि ॥१८॥

थात्रोत्यादि स्पष्टम् ॥ १८॥

दग्ध्वात्तकाष्ठैर्मलमायसन्तु

गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान्।
विचूर्ण्यं लीढं मधुना चिरेण्
कुम्माह्रयं पारहगदं निद्दन्ति॥ १६ ॥

दग्ध्वेत्यादि — ग्रुश्रुतस्य । अचन्रज्ञो विमीतकष्ट्यः । ग्रुश्रुते बहुपुस्तकेषु चन्द्राटादिषु गोमूत्रनिर्वापितसप्तवारमित्येव पाठो दृश्यते, अन्य तु गोमृत्रनिर्वापित-मष्टवारमित्यव पठन्ति ॥ १६ ॥

्र पाहरोगिक्रयां सर्वा योजयेच हलीमके । कामलायाञ्च या दृष्टा सापि कार्य्या भिषम्वरैः ॥ २०॥ पायडुरोगकामलाचिकित्सा इलीमकेऽप्यतिदिशति पायडुरोगिकयामित्यादि । किया विरेचनादिरूपा ॥ २०॥

विडड़ाद्यं लौहम्

विडक्षमुस्तित्रिफलादेवदारुषद्वष्णै । तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्॥ तैरज्ञमात्रां गुडिकां रुत्वा खादेद् दिने दिने। कामलापाग्हरोगार्च सुखमापद्यतेऽचिरात्॥२१॥

विडक्षलाहे तुल्यमात्रमयश्चूर्णमिति मिलितविडक्ष चूर्णदिसर्व चूर्णमममयश्चूर्ण मित्यर्थ । त्रत्र लोहस्य प्राधान्यात् तरपेत्रयेवाष्ट्रगुर्णगोम् त्रेष लोहचूर्ण पक्तवावतारिते च विडक्षादिचूर्णस्य प्रतेष इति केचित् । अन्य तु विडक्षादिचूर्णसिहतस्यैव लोहचूर्णस्य पाकः; गोमृत्रस्याष्टगुर्णत्व सर्वचूर्णपेत्तयैव । अत्र द्रवद्देगुर्ण्य न व्यव-हरन्ति वृद्धा । पाकक्षात्र मुद्रापाकेनेत्याहु । अत्तमात्रा गुडिका कुर्ण्यात् न तु तत्त्रमाण खादेत् । मात्रा देहादिवलापोक्षिणी, अत्रण्य वृद्ध्या विभन्य कर्त्तव्या ॥ २१ ॥

त्र्यूषणाद्यं मराहरम्

ज्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडक्नं चव्यविज्ञकौ। दार्वीत्वझाचिको धातुर्प्रन्थिकं देवदारु च॥ एषां द्विपलिकान् भागांश्चूणं कृत्वा पृथक् पृथक्। मग्र्इरं द्विगुणं चूर्णाञ्छुद्धमञ्जनसिन्नम्॥ मूत्रे चाष्रगुणे पक्त्वा तस्मिस्तु प्रक्षिपेत् ततः। उद्युद्धत्समान् कुर्थाद् वटकांस्तान् यथावलम्॥ उपसुञ्जीत तकेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम्। मग्र्इरवटका होते प्राणदा पाग्रहरोगिणाम्॥ कुष्ठान्यजरकं शोथमूरुस्तम्मं कफामयान्। प्रशासि कामलामेहान् सीहानं शमयन्ति च॥ निर्वाप्य वहुशो सूत्रे मग्रहरं ग्राह्मामिष्यते। प्राह्यन्त्यष्टगुणितं सूत्रं मग्रहर्चूणितः॥ २२॥

च्यूपणमित्यादि-चरकस्य । दावीत्वगिति पष्टीममाम , न तु दार्य। त्वक् चेति, ताप्य दार्ब्यास्त्वच चन्यम् ' इति वाग्मटवचनात् । य्रान्थिक पिष्पलामूलम् । रमिश्चतुर्दशद्रव्यं पृथग्दिपलेरप्टाविशतिपलानि भवन्ति । मग्रङ्रस्त्र समुदिन-चूर्णाद् द्विगुरण मत् पट्पञ्चाशत्पलमान मनीत । गोमूत्रश्च मिलितचूर्णापेचयाष्ट-गुणम्, पह्नोलेखागतत्वेन द्वेगुण्यमपि नास्ति । श्रन्ये तु मूत्रमष्टगुणं प्रत्यामस्या मर्स्ट्रापेच्चयेव वदान्ति । चक्रेखाप्यनुमतोऽय पच अतो दीपकायामेव पच प्रतिभातीत्युक्तम् । ण्तच न युक्त, यदाह वाग्मट 'ताप्य टार्च्यान्त्वचा चन्ध मन्यिक देवदारु च । ब्योपादिनवकक्षेत्र चूर्णयेद् द्विगुण तत । मण्ड्राजाक्षन निभ मर्वतोऽष्टगुखे पचेत्। पृथग्विपके गोमूत्रे वटकीकरखनमे । प्रीचप्य वट-कान् कुर्यात् तान् छादेत् तक्षभोजनम् ' इति । वाग्मटटीकायाञ्च मर्वत दति मण्डूरतिहतचूणादष्टगुण गोमूत्रमिति व्याख्यातम् । वृद्धवाग्मटेऽपि मूत्र मर्वतोsष्ट्युखिमत्युक्तम् । पृथक् पृथगिति एकपृथक्राच्दा दिपलिकानीत्यनेन मन्बध्यते, द्वितीयपृथक्राच्याच मण्डूरचूर्णमेन पृथक कृत्ना पक्षन्यम् , तिसमन्नासनपाके न्यूप खादिचूर्यप्रचेप चूर्यबहुलत्वात् , एव सर्वत्र बहुचूर्यप्रचेपविषये आसन्नपाक प्व प्रचेप , स्तरपचूर्णस्य तु प्रचेप मन्यक्षाके सत्येव, अतप्योक्त ' प्रायो न पाक-रचूर्णाना भूरिचूर्णस्य तेन हि । आमन्नपाके प्रचेप स्तल्पस्य पाकमागते । 'पाक-मागते इति सम्यक् पाक ब्लार्थ । पाकलच्छान्च 'रमो गन्ध शुभ पाके वित्त स्याद् गाढमर्दनात् ' इति । उडुम्बरममानिति कर्पमानान् , पत्रपट्मापकेण प्रायेण प्रचार । अजरकमजीर्थम् । बहुण इति मप्त वारान् । चक्रेख तु श्राहयन्त्यष्टगुणित मूत्र मण्डूरचूर्णत इत्येव पाठा लिखित । यना दीपिकाया मण्डूरापेर्स्वयवाष्ट्रगुण-त्वम्, तेनायमव पद्म प्रतिभातीति वदता म्वीकृतम्, गोमूत्र मर्वचूर्णत इति तु केनापि प्रतिसस्कृत्य लिखितम् ॥ २२ ॥

पुनर्नवामण्डूरम्

पुनर्नवात्रिवृच्छुएठी पिष्पली मरिचानि च।
विडक्नं देवकाष्ठव्य चित्रकं पुष्कराह्मयम्॥
त्रिफलां द्वे हरिद्रे च दन्तीव्य चिवकं तथा।
कुटजस्य फलं तिक्ना पिष्पलीमूलमुस्तकम्॥
पतानि सममागानि मएडूरं द्विगुणं तत।
गामूत्रेऽएगुणे पक्त्वा स्थापयेत् स्निग्धमाजने॥

पाग्रहरायोदरानाहशूलार्श क्रिमिगुल्मनुत् ॥ २३ ॥ पुनर्भवामण्डूरे गोमूत्रस्थाष्ट्रगुणुल्व मण्डूरापेच्चयेव, सिन्निहितलात् व्यवहा-राच्च भ्रत्रापि देगुण्य न व्यवहरन्ति ॥ २३ ॥

वजनटकमग्रहरम्

पञ्चकोलं समिरचं देवदारुफलित्रकम् ।
विडक्षमुस्तयुक्षाश्च भागास्त्रिपलसिमता ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मग्हूरं द्विगुणं ततः ।
पक्त्वा चाएगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥
नतोऽलमात्रान् वटकान् पिवेत् तक्षेण तक्षमुक् ।
पाग्हरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥
श्चर्शासि शहणीरोगमूरुस्तम्भमथापि वा ।
क्रिमि प्लीहानमुद्दं गलरोगञ्च नाश्येत् ।
मग्हूरवज्जनामायं रोगनीकविनाशन ॥ २४॥

मण्डूरवज्ञवटके विडङ्गमुस्तयुकाश्च भागास्त्रिपलसन्मिता इति पञ्चकोलादिमागा विडङ्गमुस्तमहितास्त्रिपलसम्मिता इत्यर्थ । अत्रापि मण्डूरापेक्तयैव। प्रगुणत्व मृत्रस्य श्रोहगुरयञ्च पूर्ववत् ॥ २४ ॥

घात्र्यरिष्टम्

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडियत्वा रसं भिषक्।
चौद्राष्टमागं पिष्पल्याश्चर्र्णाईकुडवान्वितम् ॥
शर्कराईतुलोन्मिश्रं पक्वं सिग्धघटे स्थितम् ।
प्रिपेवत् पार्हरोगातों जीर्णे हितमिताशन ॥
कामलापार्हहद्रोगवातास्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासानेषोऽरिष्ट प्रणाशयेत्॥ २४॥
धात्रीफलेत्यादि—चरकस्य । चौद्राष्टमागमिति चौद्रस्याष्टमो माग , तेनामलकस्वरसस्य मप्त भागा इति सिध्यति, शर्कराईतुला पञ्चाशत् पलानि, अर्द्रपलेति
लेखकदोषात् प्रमादपाठ ॥ २५॥

द्राचाघृतम्

पुराणसर्पिपः प्रस्थो द्वात्तार्द्वप्रस्थसाधितः। कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिञ्वरमेहोदरापहः॥ २६॥

पुराण्यपिष इति पुराणं दशवपियत मपि । जलमत्र चतुर्र्ण्यमथात् । अन्य तु पिष्ट्वा गोस्त्रनिकायास्तु पलान्यष्टा नमावपेत् । पुराण्यपिष प्रस्थ पचेत् जीरचतुर्रुज्यन् इति हारीतदर्शनात् चीरमत्र चतुर्गुज्यमाहु ॥ २६ ॥

हरिद्राष्ट्रतम्

हरिद्रात्रिफलानिम्ववलामधुकसाधितम् । सत्तीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ २७ ॥ हन्द्रियार्दः—क्षरं वर्तुगुंखन् ॥ २७ ॥

मूर्वीद्यं घृतम्

मूर्वातिक्वानिशावासाकृष्णाचन्दनपर्पटे ॥ त्रायन्तीवत्सभूनिम्व-पटोलाम्बुद्दारुभि ॥ श्रक्तमात्रैर्धृतप्रस्थं सिङं ज्ञीरचतुर्गुणम् । पाग्हताज्वरविस्फोट-शोथार्शोरक्वपित्तनुत् ॥ २०॥ मूर्वाकृतं बल्पकेन बल्पकफल बाह्यम् ॥ २०॥

व्योपाद्यं घृतम्

्रव्योपं विस्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवा। प्रस्तान्ययोरजः पाठा विडक्नं देवदारु च॥ वृश्चिकाली च भागीं च सक्तीरस्तै श्टतं घृतम्। सर्वोन् प्रशमयत्येतद्विकारान् मृत्तिकाकृतान्॥ २६॥

इति पाएडरोगचिकित्सा ।

- 103 H 55 F

न्योपमित्यादि—वामग्टस्य । विस्त विस्तरालाटुः । श्रयोरजोऽत्र पुटादि-शोधिन प्राधन् । दक्षिकाली विद्यादीति स्थाता । चीरमत्र चतुर्गुए वोध्यम् श्रमण्यत्त चीर वतममम्, जलन्तु चतुर्गुणमित्याह ॥ २६ ॥ इति पाण्डुरोगचिकित्साविवृति ।

रक्तिपत्त-चिकित्सा।

नोदिक्षमादौ संग्राह्यं वित्तनो अप्यश्नतश्च यत्।

हत्पाएड प्रह्मिदोषण्लीहगुलमञ्चरादिकत्।

उद्ध्वे प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः॥
श्रद्मीणवालमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपत्रण्णम्।
उद्ध्वेगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यम्यत्रण्णम्।
प्रागधोगमने पेया वमनञ्च यथावलम्॥१॥

पायद्वरोगवत् रक्षित्तस्यापि पित्तरक्षकारखलाव्यभिचारात् पायद्वरोगानन्तर रक्षिपित्तमाह नोद्रिक्षमित्यादि—नोदिक्षमित्यादिना सौश्रुतिक्रयामाह, उदिक्रमित्यादिन प्रवृत्तमुखम् । अश्रत इत्यनेन सन्तर्पखोत्थितत्व दशेयति । श्रादी समहखे दोषमाह हदित्यादि । रोगशब्दस्य हदादिमि सम्बन्ध , प्रत्येकमिति रोष । ऊद्र्ष्वं प्रवृत्तदेषस्येति—सुश्रुतस्य । श्रातप्रवृद्धदोषस्येति पाठान्तरम् । अपत्रपंख लह्वनम् , चरके रक्षित्ते लहुनकरखोपपात्तर्दार्शता, यथा 'प्रायेख हित-मुत्रिक्तष्ट सामदोषाच वारिणा । वृद्धि प्रयाति पित्तास्क् तस्माञ्जद्वनमादित ' इति । दोषनिदानापेचया यत् कर्त्तन्य तदाह उद्ध्वंग इत्यादि । यदाह चरकः 'मार्ग दोषानुवन्धज्ञ निदान प्रसमीत्त्य च । लङ्कन रक्षित्तादौ तर्पण् वा प्रयोजयेत ' इति अस्यार्थ —यदि उद्ध्वंमार्गग साम पित्त कप्रस्थो दोष क्षिग्योध्यञ्च निदान तदा लहुनम् , श्रन्यथा तर्पण्म तर्पयतीति तर्पण्मशनम् , तेन यवागृत्र्पण्च प्रावमम् । ये तु राक्तुतर्पणे तर्पणमिति, तन्मते यवागृदानपचो न सगृहीत स्यादित्याह प्रागिथोवमन इति, अथोगे रक्षपित्ते पाक् पूर्व पेयादिकमित्यर्थ ॥ १ ॥

तर्पणं सघृतज्ञौद्रलाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।

जद्ध्वंगं रक्षिपत्तं तत् पीतं काले व्यपोद्दति ।

जलं खर्जूरमृद्दीकामधुकैः सपरूषकैः ।

श्वतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥ २ ॥

तर्पयमिलादि — चरकस्य । स्पष्टम् । येन द्रवेश शक्तुनामालाटन कार्यं तदाइ जलमिलादि — अथ खर्जूरादिना जल पडद्गविधानेन कार्यंभ् । एतच जलमलर्थं मधुरमप्यूद्धंगे कफसम्बन्धे रक्षपित्तव्याधिप्रत्यनीकतया यौगिक श्चेयम् ॥२॥

/ तिवृता तिफला-श्यामा पिष्पली शर्करा मधु। मोदक सन्निपातोद्ध्वरक्षपित्तज्वरापहः॥३॥

विरेचनमाह त्रिवृतेखादि—त्रिवृतेति अरणमूलाः श्यामिति श्याममूला त्रिवृत्, न तु श्यामलता वृद्धदारको वा, चरके श्यामात्रिवृत कल्पस्थाने पठितत्वात्। अत्र 'मोदके दिग्रणो गुढं ' इति वचनात् शर्करायाश्चुर्णाद् द्वैगुण्यमिच्छन्ति, मधु पुनरेकद्रव्यसम किंवा मधुशकरे मिलित्वा चूर्णाट् द्विगुण्यम्, उभयोरपि मोदकाईत्यात्। अय योग सुश्रुतेऽपि पठयते, तद्दीकाकारस्तु त्रिकलाया प्रत्येक भाग , शर्करामा-चिकन्तु मोदकयोग्यमाह ॥ ३ ॥

र्शालपर्र्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते । वमन मदनोन्मिश्रो मन्थः सत्तौद्रशर्करः ॥ ४॥

शालपर्यादिना मिद्धेति—शालपर्यादि स्वल्पपञ्चमूल तथातिसारे उर्का हो च स्वल्पमहद्भेदात् एव शालपर्यादित्रयमेव दोषायपेचया देयमित्याहु । व्यवहारन्तु प्राय स्वल्पञ्चमूलेनेति । वमनिर्मिति—मन्था द्वद्रव्यालाहिता शक्तव ॥ ४॥

शालिषिषकनीवारकोरदूषप्रशातिका ।
श्यामाकश्च प्रियक्तृश्च भोजनं रक्षपित्तिनाम् ॥
मस्रमुद्रचणका समुकुष्टाढकीफला ।
प्रशस्ताः सूपयूषार्थे किल्पता रक्षपित्तिनाम् ॥
शाकं पटोलवेताप्रतगृडलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादिश्शैणहरिणादिजम् ॥ ४ ॥

रालीखादी—नीवार उहिया, कोरदूप कोद्रव, स चेइ पुरातनी प्राध , तेन कोरदूपस्य यद्रक्तिपित्तेहतुल चरके निदानस्थाने प्रोक्त तदिमनवाभि-प्रायेखेति केचित्। अन्ये तु निष्पावमाषपूपादियुक्तस्यैव कोरदूपस्य सयोगमहिम्ना रक्तिपत्तिहेतुल निदाने प्रोक्तम्, केवलस्य तु कषायमधुरलघुत्वात् रक्तिपत्तहन्तृत्व-मेवाहु । प्रशातिका रक्तश्रक्ता, रक्त उहिया इति ख्याता, सा जलमध्ये प्रायो भवति। प्रियगु कगु कायोनीति लोके । आदकी तुवरी ॥ ५॥

- √ विना शुग्ठी पडङ्गेन सिद्धं तोयञ्च दापयेत् ॥ ६ ॥ विना शुग्ठीमिलादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥
- ्र चीं स्थानं वालं वृद्धं शोपानुवन्धिनम् । श्रवम्यमविरेच्यञ्च स्तम्भने समुपाचरेत् ॥ ७ ॥ निषद्धवमनिवरेचनमाइ चीं सेलादि—शोषानुवन्धिन यद्मानुवन्धयुतम् ॥७॥ वृपपत्रासि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ।

पिवेत् तेन शमं याति रक्षपित्तं सुदारुणम् ॥ = ॥

स्तम्भनयोगानाह वृषेत्यादि — वृषस्य पत्राणि पुटपाकविधिना उत्स्वच ततो रमो ग्राह्म । श्रन्यथा तत्पत्रस्वरसो दुर्भहो भवति । श्रयश्च योग जन्द्भंगे बोध्य दत्याहु । योगोऽय मधुरार्करान्यातिरकेण तत्कृतकपायेणापि वेष्ध्य , यदाह वाग्मट. 'पित्तास्तृ रामयेष् पीतो निर्यासो वाटरूपन । रार्करामधुमञ्जूक केवलो वा श्रादेशि वा ' रति ॥ = ॥

त्राटरूपकिनर्य्यूहे प्रियहुर्मृत्तिकाञ्जने । विनीय लोधं सत्तौद्रं रक्षपित्तहरं पिवेत् ॥ ६॥

श्राटर पकिनर्यू इ इत्यादि — श्राटडरूपे वामक , मृत्तिका माराष्ट्री मृत् , नद्रभाव पद्गपर्यी, श्रक्षन रमाञ्जनम् , चांद्रान्तोऽय योग । उक्त च वाग्भेट 'वासारमेन फिलनीमृद्रसाञ्जनमाचिकम् । पित्तास्क् रामयेत् पीतम् ' इति । विनीय कर्त्तीकृत्य प्रिचिप्येति वा । प्रियग्वादीना मिलिताना कर्ष चौद्रस्य च कर्ष प्रचिप्य पिवेत् , परिमापावलात् । उक्त द्याविगेन कर्षश्चर्यस्य कर्त्कस्यत्यादि, तथा मात्रा चौद्रपृतादीनामिति । श्रन्ये त्वाद्य — चूर्णादीना कर्षमानत्व स्वतन्त्रप्रयोग एव भवति । यदि पुनरत्रोक्तपरिमापानुमारेख प्रियग्वादीना प्रत्येक गृद्यते तदा मेपज-भूयस्व स्यात् , प्रियग्वादीनामल्पत्व युक्त भवति , व्यवद्वारस्तु प्रियग्वादिकरूक-चौद्रयो प्रत्येक चतु पञ्चमायक प्रचेष इति ॥ १ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्त्रियङ्गुलोधाञ्जनाम्भोरुद्दकेशराणि।
पीत्वा सिताज्ञौद्रयुतानि हन्यात्।
पित्त(सुजो वेगमुदीर्णमाश्च॥ १०॥

वामाकषाय इत्यादि—सुश्रुतस्य । उत्पनादोना र्घाद्रान्ताना प्रचेष । निश्रनस्तु मितामधुनो प्रत्येक शाख , उत्पनादीना मिलित्वा शाख इत्याद्द ॥१०॥

/तालीशचूर्णसंयुक्तः पेयः चौद्रेण वासकस्वरसः। कफिपत्ततमकश्वास-स्वरभेदरक्रिपत्तहरः॥ ११॥

तालीशित्यादि—अत्र बामकस्वरमस्य पणम्, तालीशन्वूर्णस्य मापकदयम्, मधु मापन्वतुष्टयमिति व्यवहरन्ति ॥ ११॥

त्राटक्ष्पकमृद्धीका-पथ्याकाथ सर्शकरः । चौद्राख्य कसनश्वासरक्षपित्तनिवर्द्दश् ॥ १२॥ भाटक्षकेसादि—चरकस्याय योगे।ऽनार्थं इति नेक्वट , दृश्यते स्वय चन्द्रा-टादिषु बद्धनमहेष्वपीति ॥ १२॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्षपिची चयी कासी किमर्थमवसीद्ति॥१४॥ बासायामिलादि स्वष्टम्॥१३॥

> समाचिक फल्गुफलोद्भवो वा पीतो रसः शोखितमाश्च हन्ति ॥ १४॥

समाचिक इत्यादि-फल्गुफल काकोडुम्बरिकाफलम् । श्रय यीगोऽधोगे मवति ॥ १४ ॥

मदयन्त्यङ्घिज काथस्तद्वत् समधुशकरः॥ १४॥
मदयन्त्वइविति मदयन्ती मिल्लकामेद , तथा मृलम् ॥ १४॥
अतसीकुसुमसमङ्गावटावरोहत्वगम्भसा पीता।
प्रशामयति रक्षपित्ते यदि मुङ्के मुद्गयूपेण्॥ १६॥
भतमीलादी—नटावरोहत्विगिति वटावरोहस्य त्वक्। ण्तत् मवं पिष्ट्वा
अम्भमा पेयम्॥ १६॥

कपाययोगैर्विविधैर्दीप्ताग्नौ निर्जिते कफे। √रक्षपित्तं न चेच्छाम्येत् तत्र वातोत्वणे पयः॥ छागं पयोऽधवा गव्यं श्रतं पञ्चगुणे जले। श्रम्यसेत् ससिताचौद्रं पञ्चमूलीश्यतं पयः॥ १७॥ चीरपानविषयमाह कषाययोगैरित्यादि—नाग्मटस्य । कषायाश्चूर्यकल्का-दय । पद्ममूली स्वल्पा, चीरपाकविधानेन पद्ममूलीसाधित पय. । अन्नापि मिनाचौद्रमिति योज्यम् । उक्त हि वाग्मटे ' पद्ममूलेन लघुना श्वतन्न ससिता-मधु ' इति ॥ १७ ॥

द्राज्ञया पर्शिनीभिर्वा वलया मधुकेन वा। भवदंष्ट्रया शतावर्थ्या रक्षजित् साधितं पय ॥ १८॥

द्राच्चयेत्वादि — एते पड्योगा । पर्णिनीभिरिति शालपणीं-पृश्चिपणीं — मुद्रपर्णामापपणींभिरिति, एव सर्वत्र बहुवचनान्ते, द्विचनान्ते त्वाचे दे । एते योगा
विशेषण मूत्रमार्गेने रक्षित्ते श्रेयाः । तथा घतस्य शर्कराया प्रच्नपोऽत्र बोध्य ।
यदुक्त वाग्मटे जीवकर्षमकी द्राचावलामधुकगोद्धरै । पृथक् पृथक् श्वतः चीर
मध्त मितवापि वा । गोकण्टकामीरुश्वत पर्णिनीभिस्तथा पय । इन्त्याशु
रक्त मरुज विशेषान्मूत्रमार्गगम् रहित । एवच्च मजीवक सर्वमकमित्यादि चरकेणाप्युक्तम् ॥ १ = ॥

पक्कोडम्बरकाश्मर्थ्य-पथ्याखर्जूरगोस्तना । मधुना व्रति संलीढा रक्कपित्तं पृथक् पृथक् ॥ १६॥

पकोडम्बरेलादि—उडुम्बरादीना फलानि पक्तानि, ततस्तेषा चूर्णाना मधुना लेह । काश्मर्य्य गाम्भारीफलम्, खर्जूर पिण्डखर्जूरम्, गोस्तना द्राचा । मधुनेत्योदेर्देवादप्राप्ती अनर्हत्वे वा सर्वत्र शार्कर जल वहसेनरसं कदल्यादिकुसुम-सम्भव वा ब्राह्मित्यर्थ । नासाप्रवृत्तरुथिरेऽपि पक्तोडुम्बरफल मधुना गुडेन च दृश्यते, उक्त हि विन्दुसारे ' उडुम्बराणि पक्तानि गुडेन मधुनापि वा । उपयुक्तानि निक्नन्ति नासारक्त नृणा धुवम् ' इति ॥ १६ ॥

भद्रशाखोरकत्वग्रसविन्दुद्धितययुतो घृतद्विगुण् । भूनिम्वकल्क ऊद्र्ध्वगिपत्तास्रकासश्वासम्न ॥ २०॥ भद्रेलादि—भद्रसरुणः॥ २०॥

खिद्रस्य प्रियङ्गुणां कोविदारस्य शालमले ।
पुष्पचूर्णन्तु मधुना लीद्वा चारोग्यमश्रुते ॥ २१॥

खदिरस्थेत्वादि—चरकस्य। चरके तु पुष्पचूर्यानि मधुना लिह्यादा रक्षपित्त-नुदिति पाठः; टीकाकारोऽपि चूर्यानि तस्य रक्षपित्तनुदिति निशेषय नोपपद्यत इति कृत्वा पुरुषिरोपण्त्वमाह । सग्रहकारैश्च पुष्पचूर्णीनि मधुना लीढ्व। चारे।ग्य-मरनुते इति प्रतिसस्कृत्य लिखितम् । भयश्च पुष्पचूर्णलेहो व्यस्त , मर्वत्र विभनत्य-न्तत्वेन निर्देशादिति वृन्दिटप्पणी, किन्तु चरकटीकाक्रिक् वं व्याख्यातोऽयमर्थ ॥२१॥

> त्रभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता । श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति श्लंगतिसारनुत् ॥ २२ ॥

श्रमयेलादि--- श्रथ योगो यद्यपि पक्षोडुम्बर्र्काश्मर्य्येलादियोगमध्ये पठित एव तथापि फलविशेषकथनार्थमिह पुनरुक्तम् ॥ २२ ॥

वासकरत्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्रपित्तं द्रुतं जयेत्।
भावनायां द्रवो देय सम्यगार्द्रत्वकारकः॥ २३॥

वासकस्वरस इत्यादि—कृष्णा च वामकस्वरसे भावितेति योज्यम्, भावना च मप्ताइम्, उक्त हि चन्द्राटे 'दिवा दिवातपे शुष्क रात्री रात्री च वासयेत् । शुष्क-चूर्णीकृत द्रव्य सप्ताइ भावनाविधि । द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयाईता त्रेजेत् । तावत्प्रमाण निर्दिष्ट भिष्ग्भिर्मावनाविधी । द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयाईता त्रेजेत् ।

एलागुडिका

पलापतत्वचोऽद्धीचा पिष्पल्यद्धेपलं तथा।
सितामधुकखर्जूरमृद्धीकाश्च पलोन्मिताः॥
संचूर्ण्यं मधुना युक्त्या गुहिका कारयेद्धिषक्।
श्रचमात्रां ततश्चैका भच्चयेत्तु दिने दिने॥
कासं श्वासं ज्वरं दिकां छुदिं मूच्छीं मदं श्रमम्।
रक्षनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वश्रलमरोचकम्।
शोधप्तीद्दाङ्यवातांश्च सरभेदं चतच्चयम्।
गुहिका तर्पणी वृष्या रक्षपित्तश्च नाशयेत्॥ २४॥

प्लेत्यादि—इतचीये चरकस्य । श्रद्धीचा इति प्रत्येक कर्पार्द्धमाना । एव मितादयश्च प्रत्येक प्लोनिमता । युक्त्या इति यावता मधुना गुडिका भवति तावन्मान मधु देर्यम् । श्राड्यवात वातरक्ष करुस्तम्ममित्यन्ये ॥ २४ ॥

लोहगन्धिनि निश्वासे चोद्गारे रक्तगन्धिनि । पृथ्वीकां शाणमात्रान्तु खादेद् द्विगुणशर्कराम् ॥२४॥

पृथ्वीका शाणमात्रामिति पृथ्वीका कृष्णजीरक न तु सूहेमला, टीकाक्तिद्रिर-व्याख्यातत्वात् । शाणो मामचतुष्टयम् । कृष्णजीरकस्य तीच्णत्वे उष्णत्वेऽपि द्विपु-णशर्करायोगात् प्रभावादा पित्तहन्तृत्वन् ॥ २∤ ॥

्र नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्रुच्णपिष्टमामलकम् । सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्भि प्रलेपेन ॥ २६॥

नामेत्यादि । श्रामलक ष्टते भृष्ट्वा काश्विके पिष्ट्वा शिरिम लेपो देय ॥२६॥

वाण्यवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा। द्रानारसं चीरघृतं पियेद्वा सशर्करञ्जेन्त्ररसं हितं वा॥ २०॥

व्राणप्रवृत्त इत्यादि — सुश्रुतस्य । जलादयः सशर्कराः पञ्च नस्ययोगा इति गयदासः । तथा डल्वणोऽिष व्राणप्रवृत्ते सशर्कर पानीयम्, पयोऽिष सगर्करम्, तथा द्राचारसमिष सशर्कर नासिकया पिवेत् । तथा चीरप्रत चारमथनोद्भूतप्रत तच सशर्कर नामिकया पिवेत् । यदास्य चारमथनोद्भूतप्रत तच सशर्कर नामिकया पिवेत् । यदास्य चारमथनोद्भूतप्रत न नस्यमित्युक्तम्, इदमिष युक्तम्, यदाह चरकः। 'द्राचारसस्य चुरसस्य नस्य चीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव' इति । चक्रस्तु नामिकया इत्यत्र नस्तकयेति पिठत्वा नासापुर्व्यारिति विवृतवान् । केचित् तु मूर्धि लेपेनेत्यतो मूर्धि इति पदमनुवृत्य अत्र मूर्धि जल देयमित्यर्थमातु । तत्र, नामाप्रवृत्तशिरमिन्त्यादि चरकवचनमः, व्राणप्रवृत्त इत्यादि सौश्रुतम्, तस्मात् दुरन्वय । हित वेत्यत्र हिम वेति पाठोऽपि श्रेय ॥ २७ ॥

र्नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा। त्राम्रास्थिज पलागडोर्वा नासिकास्रुतरक्रजित्॥२=॥

नस्यमित्यादि—चत्वारो योगाः चरकेऽप्युक्त 'द्राचारसस्येचुरसस्य नस्य चीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव । यवासंमूलानि पलाग्रहुमूल नस्यं तथा दाहिमपुष्यतोर्थे ' इति । एव वाग्मटेऽप्युक्तम् । केचित् तु 'रसे दाडिमगुष्पस्य दूर्वारससमन्विते ' इति तन्त्रान्तरप्रदर्शनादत्रापि दूर्वारस–दाडिमरसाम्यामेक एव योग इत्याहु'॥ २८॥

मेद्रोऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तरसंक्षितः। श्वतं त्तीरं पिवेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्नया॥ २६॥

मेद्रग इत्यादि—पञ्चमूल्या तृषाह्यति तृषापञ्चमूल्या, यद्का झुश्ते 'कुरा-काशशरेद्धदर्मा ' इति । अत्र दर्भ उलुवासः । चरके तु 'शरेद्धकाशदभाषा शालीना मूलमेव च ' इति । उमयमपि शस्तम् ॥ २६ ॥

द्वधिं घृतम्

दूर्वा सोत्पलिकिञ्जल्का मञ्जिष्ठा सैलवालुका। सिता शीतमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ विपचेत् कार्षिकैरतैः सर्पिराजं सुखान्निमा। तएडलाम्बु त्वजाचीरं दत्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते। कर्णाभ्यां यस्य गच्छेतु तस्य कर्णी प्रपूरयेत्॥ चन्द्रास्त्राविण रक्ते तु पूरयेत् तेन चन्नुषी। मेद्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्मस्र तद्दितम्॥ रोमकूपप्रवृत्ते तु तद्भयक्ने प्रयोजयेत्॥ ३०॥

द्वांष्टते रीति श्रेतवन्दनमिति वृन्दः । अन्ये तु बहुवारत्वर्च रमाभन वेलाहु । त्रयायामिव रत्नशालादौ शीतसज्ञकत्वेनोक्तत्वात् । व्यवहारस्तु प्राय श्रेतचन्दनेनेति । तण्डुलाम्बु त्वजाचीरञ्ज प्रत्येक चतुर्गुणम्, दत्वा चैवेनि चकारादित्वाहु ॥ ३ • ॥

शतावरीघृतम्

शतावरी दाडिमतिन्तिडीकं काकोलिमेदे मधुकं विदारीम्। पिष्द्वा च मूलं फलपूरकस्य घृतं पचेत् क्रीरचतुर्गुणं क्रः॥

कासज्वरानाहाविवनधग्रुलं

तद्रक्रपित्तं घृतमाशु हन्यात् ॥ ३१ ॥

रातावरीत्।दि—चरकस्य । केचिदत्र दाडिमफलम् क्रांत्तरापथिकामित्याहु । तिन्तिटीक महार्द्रकम् । काकोलायुक्ते मेदे काकोलीमेदे, मध्यपदलोपी ममाम , किंवा काकोलीशब्द प्रथमैकवचनान्तस्त्रीलिक्षशब्द , मेदे इति मेदाइयम् , तन्त्रान्तरप्रमा-णात् , उक्त हि 'काकोली मधुक मेदे तिन्तिटीक सदाटिमम् । शतावरी विदारीञ्च वीजपूरजटान्विताम् । पिष्ट्वा चतुर्गुये तोये पक्तमाज्य ज्वरापहम् ' इति ॥ ३१॥

बृहच्छतावरी घृतम्

शतावर्थ्यास्तु मूलानां रसप्रस्वद्वयं मतम्। तत्समञ्च भवत् चीरं घृतप्रसं विपाचयेत्॥ जीवकर्षभकी मेदा महामेदा तथैव च। काकोली चीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा। मुद्गपर्शी माषपर्शी विदारी रक्कचन्दनम्। शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्नावयेद्भिषक् ॥ रक्रपित्तविकारेषु वातरक्रगदेषु च। चीणशुकेषु दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम्॥ श्रद्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम्। योनिश्रलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छुञ्च पैत्तिकम् ॥ पतान् रोगान् निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः। शतावरीसिंपिरिदं वलवणीग्नेवर्द्धनम्॥ स्नेहपादः स्पृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे । . इति वाक्यवलात् स्नेहे प्रक्षेप्यं पादिकं भवेत् ॥ ३२ ॥ बृहच्छतावरीष्टते - रार्करामधुमयुतिमिति मिद्धराति मधुरार्करयोगिलित्वा पादिक प्रदेष, अतरवाह सेहपाद शत्यादि ॥ ३२ ॥

वासाद्यं घृतम् √ वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः। प्रदाय करकं विपचेद् घृत तत् सत्तौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम्॥ शणस्य कोविदारस्य वृपस्य ककुमस्य च।

कलकाढ्यत्वात् पुष्पकलकं प्रस्थे पलचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥ वामामित्याडि-चरकत्य। अत्रार्हाया विधानात् काथविधाने न द्वैनुएयम् । 'नित्यमार्दा प्रयोक्तन्या न तामा द्विगुणो भवेत् ' इति वचनात् । प्रश्राष्ट्रगुण जल उत्त्वा अष्टाशशेष क्षाय कार्य्य । उक हि वाग्मेट ' ममूलमस्नक पिष्ट वृष-मष्ट्राेखेऽन्मिम । पक्ताधाशावेशेपण एत तेन विपाचियत् । तत् पुष्यगर्म तच्द्रीत सबीद पित्तमोखितम् ' इत्यादि । अत्र नामापुष्यकत्क , अत प्रस्थऽपि पलचतुः ष्ट्यम् , राणन्य कोविदारस्य वृपस्येति वस्यमाखपरिभाषावलात् । श्रत्रानिर्दिष्टप्रमा-णत्वात् स्नेहस्य प्रस्थ एव पक्तन्य । अत्रथ्वोक्तम् , ' अनिर्दिष्टप्रमाणाना लेहाना प्रस्थ इप्यते 'इति । यस पुन ' लेहपाकविधी यत्र प्रमाख नेरित किनित्। केहन्य कुटव तत्र पचेत् कल्कपलेन तु 'इति परिमापया स्नेहकुडवपाकाभिधान तत् तु नस्यविषय द्वेयम् । मजीद्रमिति कल्कवन्मधुशकीर इति वचनेन प्रतात् पादि-कत्व श्रेयम् । अन्य तु कल्कधर्ममधुराकीरे इत्यतिदेशवलात् कल्कस्यात्र चतुप्पल त्वात् मधुनीऽपि चनुष्यलत्वमाहु । अत्र केचिच्चरके 'काम उनर पित्तभवज्ञ ग्रल गुल्म यक्तत्पनीहगदाश्च हन्ति 'इति फलमइ पठन्ति । वाग्मटेऽप्युक्त ' पित्त-गुल्मयक्वच्छ्वामकासङ्क्य्राहकामला । तिभिरच्वरवीमर्थ-स्वरभेदाश्च नारोयत् ' इति ॥ ३३ ॥

कामदेवघृतम्

श्रश्वागन्धापलशतं तदर्दं गोच्चरस्य च ।
शतावरी विदारी च शालपणीं वला तथा ॥
श्रश्वत्थस्य च श्रद्धानि पद्मवीं पुनर्नवा ।
काश्मरीफलमेतचु मापवीं तथैव च ॥
पृथग्दशपलान् भागाश्चतुद्दें लेऽम्मस पचेत्।
चतुर्भागावशेपन्तु कपायमवतारयेत् ॥
मुद्दीका पद्मकं कुष्ठं पिष्पली रक्षचन्दनम् ।
वालकं नागपुष्पश्च श्रात्मगुप्ताफलं तथा।

निलोत्पल शारिवे द्वे जीवनीयं त्रिशेषतः।
पृथक् कर्षसमञ्जैव शर्कराया पलद्वयम् ॥
रसस्य पौर्ड्केच्लूणामाढकं तत्र दापयेत्।
चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
रक्षपितं चतचीणं कामलां वातशोणितम्।
हलीमकं तथा शोथं स्वरभदं बलच्चयम्।
श्ररोचकं मूत्रकृच्छं पार्श्वश्लक्ष नाशयेत्।
पतद्राक्षां प्रयोक्षयं वह्नन्त पुरचारिणाम् ॥
श्रीणाञ्चवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम्।
श्रेष्ठं वलकरं दृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम् ॥
श्रोजस्तेजस्करञ्चेव श्रायु प्राण्विवद्धर्नम्।
संवर्द्यति श्रुकञ्च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम् ॥
सर्वरोगाविर्निमुक्षस्तायसिक्षा यथा दुम ।
कामदेव इति ख्यातः सर्वर्जुषु च शस्यते ॥ ३४॥

श्रभगनेशस्यादि—तद्रद्धिमिति गोच्चरस्य पञ्चाशत् पलानिः, शतावर्यादीना बलान्तानाच्च प्रत्येक पञ्चाशत् पलानीत्यर्थं , श्रभस्थशुद्धादीनाच्च पञ्चाना पृथक् दश-पलानि, ततो मिलित्वा पलशतचतुष्टेये काथ्ये प्रतिशत जलद्रोयो देय तुलाद्रव्ये जलद्रोया इत्युक्तेः । नागपुष्प नागकशरम्, श्रात्मगुप्ताया, श्रक्तशिम्ब्या फलम्, जीवनीयमिति जीवनीयदशकम्, शर्करान्त कल्कः । तेजस्करमुत्माइ-वर्द्धकम् ॥ ३४॥

सप्तप्रस्थघृतम्

शतावरीपयोद्राचा-विदारीक्वामलै रसे । सर्पिषा सह संयुक्ते सप्तप्रस्थं पचेद् घृतम् ॥ शर्करापादसंयुक्तं रक्तपित्तहरं पिवेत् । उर चते पित्तशूले चोष्णवाते अप्यसुग्दरे ॥ बल्यमूर्जस्करं वृष्यं चयहद्रोगनाशनम् ॥ ३४ ॥

चक्रद्तः।

शनावरीत्यादि-स्थानवर्थादीना पर्णा मिलित्वा रसप्रस्था पर्, प्टन स्पेक प्रस्थ इति सप्त प्रस्थाः ॥ ३५ ॥

खराडकूष्माराडकः

कृष्माराडकात् पलशत सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्। पचेत् तसे घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दढे॥ यदा मधुनिभः पाकस्तदा खएडशतं न्यसेत्। कृष्मार्खपीडनात् तोयेनाढकेन पुनः पचेत्॥ युक्रसर्पियंदा पश्येत् तदा सिद्धेऽत्र निह्मिपत्। पिष्पलीश्टइवेराभ्यां हे पले जीरकस्य च ॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकाना पलाईकम्। न्यस्येत् चूर्णीकृतं तत्र दव्यां सङ्घट्येत् पुनः ॥ तत् पकं स्थापयेझाएडे द्वा होद्रं घृताईकम्। नद् यथाग्निवतं खादेद् रक्षपिची चतच्ची॥ कासभ्वासतमभ्छदितृष्णाज्वरानिपीडित । वृष्यं पुनर्नवकर वलवर्णप्रसाधनम् ॥ उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरवर्द्धनम् । श्रश्विभ्या निर्मितं सिद्ध कूष्माएडकरसायनम्॥ खरडामलकमानानुसारात् क्रूष्मारहकद्रवात्। पात्रं पाकाय दातव्यं यावान् वात्र रसो भवेत्। श्रत्रापि मुद्रया पाको निस्तवचं निष्कुलीकृतम्॥ ३६॥

कूष्मायहकादिति—निष्कुलोकृत निस्त्वगम्यकितम्, किश्चित् जल दस्वा छित्सव छीमे निष्पीह्य झातेष मनाक् मशोष्य पिष्ट्वा च पलशत गृहीत्वा पक्तज्वम् । द्वे पले जीरकस्य चेति कषाशुष्ट्यो प्रत्येक पलद्वयम्, जीरकस्य च द्वे पले, तमान्तरसम्मतन्त्रेतत् । तद्यथा 'द्विपलाशं कषाशुष्टिं जीरकैरवचूिर्विते ' इति । वयप्रमारकेऽप्येवमेवीकम् । व्यवहारीऽपीत्थमेव । अन्य तु पलाद्विकमिति परेण मम्बन्धात् जीरकस्य पलाद्विमित्याहु , तम्र तन्त्रान्तरिवरीषात् । त्वगेलादीनाञ्च

पन्चाना प्रत्येक पलार्द्धम् । श्रायुर्वेदसारेऽप्युक्त 'कृष्म। यहकाना रूढाना स्विन्न शतपल पचेत् । प्रतप्ते इनिष प्रस्थे मधुवर्थेऽत्र वीचिते । खयडाच्छत कणाजाज्यो-द्विपल नागरादिषे । धान्योषण त्रिगन्धन्च पृथगर्द्धपलाशिकम् । धतार्द्धं माचिको-पेत तत् खादेदस्रिपत्तिजित् हति । धतार्द्धमिति प्रस्थार्द्धमानमित्यर्थ ।

खण्डामलकमानानुमारादित्यादि । खण्डामलके कृष्माण्डरसामलकरसयीः प्रत्येक प्रस्य इत्युक्त , तेन कृष्माण्डरातपले पात्रमिति देगुण्येन प्रस्यचतुष्टय दातव्य-मित्यर्थ । पचान्तरमाह यावान् वात्र रसो मवेदिति । खित्रकृष्माण्डस्यातिपिंडनेन यावान् रसो भवित तावतैव पाक इत्यर्थ । व्यवहारोऽप्यनेनैव । युक्तश्चाय पच , उक्त हि तन्त्रान्तरे 'वृद्ध पुरातनव्यापि कृष्माण्ड कठिन वृद्ध । त्वक्शिराभ्या विनिर्मुक्तमन्तर्वाजीविवाजितम् । खिन्न सुपिष्ट दृशदि वक्षेणव प्रपिडितम् । विशुष्क-मातपे किव्चिद् प्राह्म तत् तुलया धृतम् । श्रीडुम्बरकटाहे तु पचेत् प्रस्य च मिष्व । कृत्वा चौद्धनिम तसिन् चिपेत् खण्डशत भिषक् । कृष्माण्डपीडनात् तोय यत् तेन विपवेत् पुन इति । मुद्रया पाक इत्यादि—अगुलिपीडनजन्य चिह्न मुद्रा, तया पाको क्षेय । एतचे। पत्वे। पत्वे। पक्तक्तण्य हेयम् ॥ ३६॥

वासाखएडकूष्माएडकः

पञ्चाशच पर्ल स्विनं कूष्माएडात् प्रस्थमाज्यत ।
प्राह्मं पलशतं खएडं वासाकाथाढके पचेत् ॥
मुस्ताधात्रीशुमामागीत्रिद्धगन्धेश्च कार्षिकैः ।
ऐलेयविश्वधन्याक-मरिचैश्च पलांशिकैः ॥
पिष्पलीकुडवश्चैव मधुमाणीं प्रदापयेत् ।
एतच्चूणींकृतं तत्र दृव्यां सङ्घर्येत् पुन ॥
तद् यथाग्निवलं खादेद् रक्रिपिची चृतच्यी ।
वृष्यं पुननेवकरं वलवर्षकरश्च तत् ॥
कासं श्वासं च्यं हिकां रक्षिचं हलीमकम् ।
हद्रोगमम्लिपचिश्च पीनसञ्च व्यपोहति ॥ ३७ ॥

पन्वाशच पलिमत्यादि—अत्रापि पूर्ववत् खिन्नम्, सस्कृतकूष्मायदात् पञ्चा-शत्पलम् । न चात्र खरडकूष्मायद्ववत् कूष्मायद्वरसो माध्य , पाकार्थं वासाकाथस्येव डक्षत्वात् । वामायाश्चतु पष्टि पलानि, जलस्यापि चतु पष्टि शराका , स्याप्यनतु षोडगशरावरूपमाडकम् । शुमा वशलोचना, ण्लेयन् ण्लवालुकम् । मधुमार्याति
मधुनोऽष्टी पलानि । अत्र केचित् मार्यिकाया द्वगुर्व्यमिच्छन्तिः किन्तु 'मार्यिकाकुडवी चिति या वा मख्या पले कृमा । आर्द्रज्ये द्ववे चैव न तत्र द्विगुर्व्य विदु
द्वित वचनात्, तथा चारपायिवचने मार्यिकार्ष्टा पलान्येवेत्यवधारणाद्यविव पलानि, न तद् द्वैगुर्व्यात् पोडश पलानीत्यर्थ । चरकेऽपि पूर्णं गगविमत्यत्र पूर्णपदेन शराव ईगुर्व्यामाव स्वित् , तथाहि पूर्णपद द्वगुर्व्यप्रिने
चेपपरम्, अन्यथा पूर्वपद व्यर्थं स्थात् । चकस्तु मार्यिकाकुटवी चेति वचनस्य
केनापि किचित्रव्यलिखितत्वादनार्पत्वमाशङ्क्य मार्यिकाया द्वगुर्व्यमिच्छन् चरकोक्षल
गुनादिवृते मार्यिकया पोडशपलत्व व्याख्यातवान् ॥ ३७॥

· वासाखएडः

तुलामादाय वासाया पचेद्ष्युणे जले।
तेन पादावरोपेण पाचयेदाढकं भिपक्॥
चूर्णानामभयानाञ्च सएडाच्छुद्धाच्छतं तथा।
द्वे पले पिष्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च मानिकात्॥
कुडवं पलमातन्तु चातुर्जातं सुचूर्णितम्।
चिष्प्या विलोडितं खादेद् रक्षपित्ती चतन्तयी।
श्वासकासपरीतश्च यदमणा च प्रपीडितः॥ ३८॥

तुलामाटायेत्यादि — श्रश्नार्ट्टा वामा, एव नवत्र, निम्बाटिकमि । उक्त हि वामानिम्बपटालकेतकवलाक्ष्मायडकेन्द्रांवरी । वर्षामुकुटवाश्वगन्थसहिते हे पूर्ति-गन्धारते । माम नागवला महाचरपुरा हिङ्ग्वादके नित्यशा आह्यास्तत्वस्वयमेव न हिंगुण्यता ये चेन्नुजाता वना ' इति । अप्टगुण जल इति गरावशते, नान्न हेगुण्यम्, 'न हैगुण्य जुलामाने पलोहिखागते तथा ' इत्युक्ते । पाटशेषाश्च पञ्चित्रातिशरावा । चूर्णामामिति इरीनकीचूर्णानामाढक चतु पष्टिपलानीत्यर्थ , प्राया न पाकश्चर्णानामिति प्राय शब्दात्व पाकोऽप्यन्तीति स्वयिन, तेन चूर्णाना पाकिऽपि न विरोध । चातुर्जात पलमानमिनि प्रत्येक पलमानम्, निर्टेगस्य मानप्रधानत्वात् ॥ ३ ८॥

खएडकाद्यो लौहः

शतावरी छिन्नरुहा वृषमुारिडतिका बला। तालमूली च गायती तिफलायास्त्वचस्तथा। भागीं पुष्करमूलञ्च पृथक् पञ्च पलानि च। जलद्रोगे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि माजिकेण हतस्य वा । पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्शितम्॥ खराडतुल्यं घृतं देयं पलपोडशिकं बुधै । पचेत् ताम्रमये पाते गुडपाको यथा मतः॥ प्रस्थार्द्ध मधुना देयं शुभाश्मजतुकत्वच । श्रद्गी विडक्नं कृष्णा च शुग्ठ्यजाजी पलं पलम् ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं द्यत्तं मरिचकेशरम्। चूर्यं दच्वा सुमाथितं स्निग्धे भारांडे निधापयेत्॥ यथाकालं प्रयुक्षीत विडालपदकं तत । गन्यचीरानुपानञ्च सेन्यं मांसरसं पय । गुरुवृष्यात्रपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहण्म्॥ रक्रपित्तं चयं कासं पक्तिश्रलं विशेषत । वातरक्षं प्रमेहञ्च शीतिपत्तं वर्मि किमीन्॥ श्वयथु पाएडुगेगञ्च कुष्टं प्लीहोद्रं तथा। श्रानाहं रक्ससंस्रावमम्लिपत्तं निहान्ति च॥ श्रारोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम्। चजुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ श्रीकरं लाघवकरं खगडकाद्यं प्रकीर्त्तितम्॥ छागं पारावतं मांसं तिचिरि क्रकराः शशाः। कुरङ्गा कृष्णसाराश्च तेषां मांसानि योजयेत्। नारिकेलपंय पानं सुनिषएणकवास्तुकम्। शुष्कमूलकजीराख्यं पटोलं वृहतीफलम्॥

फलं वार्त्तांकु पकाम्रं खर्जूरं खादु दादिमम् ककारपूर्वकं यच मांसञ्चानूपसम्भवम् ॥ वर्जनीयं विशेषण खरुडकाद्यं प्रकुर्वता । लोहान्तरवद्त्रापि पुटनादिकियप्यते ॥ ३६ ॥ यच पित्तज्वरे प्रोक्तं वहिरन्तस्त्र भेपजम् । रक्तपित्ते हितं तच नीणत्ततिहतञ्च यत् ॥ ४० ॥ इति रक्तपित्तीविकित्सा ।

---:-0- ----

रारटाच लौहमाह शतावरीत्यादि-दिनग्हा गुहुची, वृषे। वामक, मुण्डितिका मुण्डीरी, गायत्री खदिर । त्रिफलायास्त्रच द्वित निर्म्थित्रिफलाया । दिच्योषधिर्मन शिला, कखामूल वा, माचिक स्वर्णमाधिकम्, मन शिलाखर्ण-माज्ञिकाभ्या प्रत्येक मिलित्वा वा प्रशिष्य दग्ध्वा न लीह गारणीयम् । गएउ-तुल्यीमति च्छेदः, तेन खण्डस्यापि दादम पलानि । केचित् तु रक्षापित्तएन्त्रत्वान् खण्डस्य प्रचुरतरमेवाधिकरोतीति प्रतपेदन सह खण्डतुल्यमिति याजयन्ति, नत् तु न सन्यक् लाह्यागत्वादव लाहप्राधान्यन तन्मानापकपरयायुकत्वान्, रक्षपित्तप्रत्यनीकन्तु लें।हस्य स्वरूपत एव महाशाकिकत्वात् विशेषते। रक्षापित्तहरम्। तत् तु द्रन्य पुटादिमावितत्वेन महावीय्यंकनयोपपन्नम् । न्यवहारक्षः लीएनमत्वैव । प्रन्थार्द्धमिति पेडिश पलानि । शुभा वशलाचना, अश्मजतुक शिलाजतु, त्वक गुडलक्, शुभादीना जीरकान्ताना प्रत्येक पलम्, त्रिफलादीना केरारान्ताना प्रत्येक इथन कर्भइयमित्यर्थ । विटालपदक कर्ष , एतच पूर्वयुगपुरपाभिप्रायेख मानमुक्त, व्यवहारस्तु राकित्रिचतु पन्चकादारभ्य राकिदयपृट्ध्या मापकचतुष्टय थानत् वृद्धि । गन्यचीरानुपानमिति लीहोपेचया चतु पष्टिगुणम्, लीहान्तरे तथा दर्शनात् । उक्त हि 'अनुपान चतु पष्टिगुण प्राहु सदा नुधा ' इति । जीराल्य-मिति जीराख्यशाक मारियाकार चम्पकादौ जीरेति ख्यातम् । ककारपूर्वकिमिनि विहितान् ककरकुरक्रकृष्णसारान् विहाय, दद्यात् । ककारपूर्वकं कपोतककोटादि नत् परित्याज्यम् । श्रमृतमारलै।हबदसापि बलिमन्त्रादि द्वेय मधुष्टतमदनादिकच्च । अत्र केचित् गन्धकाश्ररससयोग कुर्वन्ति, ण्तदनुकूलञ्च वचन पठन्ति, ' न रसेन विना लेाह गन्धकञ्चाञ्चक विना' इति, तथा 'चपलेन दिना लाह य. करोनि पुमानिह । उदरे तस्य किट्टानि जायन्ते नाक्ष सराय ' इति । प्नत् नु न व्यवहारिमद्भम् । यत रमाञ्रमिहतलौहप्रयोगस्य प्रशस्तताप्रतिपादानार्थं तथाञ्रक-गृत्यलीहे क्रिमिकिट्टादिव्यापच्छक्दानिवृत्त्पर्थमञ्रकस्यावश्य प्रचेषपणार्थव्य फलाति-श्यप्रतिपादनार्थमिति चतु ममलोहे वाक्यद्वयमिद पठितम् । पुमानिहेति, इहशब्दात् वचनद्वयमि तत्रव वोध्य, नान्यत्र । श्रन्यथा मामान्यत एव परिमाषितिमिद स्यादिति ॥ ३६ ॥ ४० ॥

इति रक्तिपत्त-चिकित्मा-विष्टति ॥

अथ यक्ष्मचिकित्सा ।

とのできる

शालिपष्टिकगोधूमयवर्मुद्राद्य श्रमाः ।

मद्यानि जाङ्गलाः पित्तमृगाः शस्ता विश्वष्यताम् ॥
शुष्यतां ज्ञीणमांसानां किल्पतानि विधानवित् ।
दद्यात् क्रव्यादमांसानि वृहणानि विशेषतः ॥ १॥

यद्मरूपेषु पितासस्य चागम शति रक्षापितानन्तर राजयद्मि चिकित्सितमुच्यते । शालीत्यादि — शाल्यादिक सवत्मरातिकान्त, यदाह वाग्मटः 'शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्ध समातीतम्' शति । क्रव्यादमासानीति क्रव्यादा व्याघ्रगृधादयः ।
एषाच्च मासमितिशेयन् मासकर भवति । उक्ष हि 'मामेनोपिचताङ्गाना माम
मामकर परम् ।' एतच भद्यच्छागादिमासव्याजेन देयम् । उक्ष हि 'काकोलूकष्टकद्वीपिगवाश्वनकुलोरगम् । गृध्रचासखरोष्ट्रव्च हित हस्त्योतुसहितम् ' इति ।
सुश्रुतेऽप्युक्ष 'काकानुलूकान् नकुलान् विद्यालान् गण्डूपदान् व्यालविलेशयाख्न्
गृधाश्च दद्यादिविधैः प्रकारे समैन्धवान् सर्वपतैलभृष्टान् । देयानि मासानि च
जाङ्गलानि । मुद्रादक्षीस्परसाश्च ह्या । खरोष्ट्रनागाश्वतराश्वज्ञाने देयानि मासानि
सुकित्पतानि मासोपदराश्च पिवेदरिष्टान् माध्वीकश्चका मदिराश्च सेन्या '
शति । सुकित्पतानीति सद्दशास्त्रोक्षानिथया उपकित्पतानि ॥ १ ॥

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम्।

स्निहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम्॥
श्रद्धकोष्ठस्य युक्षीत विधि बृंहण्दीपनम्।

शुकायत्तं वलं पुंसां मलायत्तं हि जीविनम् । नस्माद् यत्नेन मंरत्तेद् यविमणा मलरेनमी ॥ २॥

नेथाधिकानामित्यादि — नरकस्य । सरेतहमीधरेगह्म । यण कर्षण्मित्यंनन वमनविरेन्नयोरत्र मृदुनोरनलापापक्षणयो प्रयोग दशयति । सुक्रित्यादि — वारभट्य । शुक्रस्य मंबधानुमारत्वात् तदर्धान शांकल नण यनम्, मम्बयधा हि जीवितमिति । यद्यपि मर्वयोगव जीवित मनाधीन ममस्य शरारम्भग्नश्य तथापि विरेश्यद्वाजयादिमणे जीवित मनाधीनम् । उप्र हि 'तिम्मृ गर्भे प्रमत्यापियदेश केष्ठिमाधतम् । मन् नवित नम् प्राय कन्येत किञ्चित्रोजमे । तस्मात् पुरीप मरद्य विशेषाद्वाजयदिमण् । मर्नथातृनयाद्याप्य यल शम्य हि विट्यलम् ' इति ॥ २॥

सिपण्यलीकं सयव सकुलत्थ मनागरम् । हाडिमामलकोपेत क्तिग्धमाजग्म पियेत् ॥ तेन पड् विनिवर्त्तन्ते विकाग पीनमादय । ग्से द्रव्याम्यु पयावत् स्दशातवशादिह ॥ पलानि हादश प्रस्थे घनेऽश तनुकं तु पर । मासस्य वटकं कुर्यात् पलमच्छतरे ग्से ॥ ३॥

मिष्यलीकित्यादि—अत्र केचित् यवकुलत्यारन्यत्रच्यापे तथा ६ नुर्ग रेथी व्ययोनित्वात्, पिष्पला शुवठी च तावता देवा वावता कटु ववाध त्यात्, प्यानन्त त्वार्थ वावता हेवा वावता कटु ववाध त्यात्, प्यानन्त लार्थ वादिमामलकवेदां नम्, पतत् मर्व पिष्पल्यान्त्रिच्योपव्या दिग्रामामेन ल्ह प्योक्तत्याष्ट्रगुण्याले कथनाय, तत् पादम्य प्रतेन मग्रत्य उपयो न्यांगिति । वृद्धीया रत्तु पिष्पलीशुटो प्रत्येक मापकचतुष्ट्य याव्य, समुद्रिनद्रच्योपन्या माम दिगुण धान्यः, मवमेकीकृत्याष्ट्रगुण्यके कथनीय, तत्पादम्य प्रतेन मग्रत्य उपया विस्थातु । चत्रस्ताकृत्याष्ट्रगुण्यके कथनीय, तत्पादम्य प्रतेन मग्रत्य उपया विस्थातु । चत्रस्ताव्यक्ति एक्तवादि पट्टप्तिमापया हन्य चलन्य प्रतित्यक्तिम्याविक्षान्यात्रम्यत्वेश्त कार्य्यं, तेनार्द्वशृतकांथन पलानि दादशप्रम्य द्वारि । वदयमाण्यून्यान्ताक्तिमापानुमारेख परिमित पिष्ट्वा पयत्वा वृष् कार्य इति । व्यरहारस्यु पृत्राक्तवृद्धीय-दिष्ट एव तेय । पीनमादय क्त्यादिशन्दाचरकोक्तानि शिर स्वश्वामकाम्यद्वय-पार्थस्यानि वोध्यानि । रमे हन्याम्युप्याविद्वस्यादी पेयावित्यनेन यथा काथमाध्य

पेयाया पडद्मपिश्माषया द्रच्यचलये। व्यवस्था तथा मासरसेऽपात्यर्थ । मासन्तु सद्द-रााले। त वचनानुसारेख ग्राह्मित्याह पलानीत्यादि - श्रस्यार्थ सर्वत्रापि पिष्ट्वेति नेष । प्रस्ये द्रवं यदि धनरम कर्त्तव्यस्तदा मासस्य द्वादश पलानि पिष्ट्वा वटक कुर्य्यात् । तथा प्रस्य द्रवं यदि तनुको ऽच्छरस कर्त्तव्यस्तदा मासस्य षट्प-लानि पिष्ट्वा वटक कुर्य्यात्, एव प्रस्थे द्रवं यदि श्रच्छतरे। रस कर्त्तव्यस्तदा मासस्य पल पिष्ट्वा वटक कुर्य्यादिति । षटक्षयूषे पुन पडक्षपरिमाषानुसारेख प्रस्यमात्र जलमर्द्धशृत सत् प्रस्थाद्धेमेव भवित, तेन तल धनरसे मामस्य पट् पलानि तनुके पलत्रयम्, श्रच्छतरेऽद्धंपलमिति ॥ ३ ॥

त्रयोदशाङ्गः

धन्याकिषण्यलीविश्व-दशमूलीजलं पिवेत्। पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये॥ ४॥ धन्याकिषण्यलीत्यादि—वातकफोत्तरे योगोऽयम्॥ ४॥

श्रश्वगन्धासृताभीरुद्शमूलीवलावृषा ।
पुष्करातिविषे झन्ति ज्ञयं ज्ञीररसाशिन ॥ ४॥
श्रश्यगन्धेत्यादि—श्रभीरु शतमूली, वृषी वासकः । काधेनाय योग ।
श्रतमासानदेशादिह पुष्करातिविषयो प्रेचपत्वामिति वृन्दिष्पणी ॥ ४॥

दशमूलवलाराम्नापुष्करसुरदारुनागरै. कथितम् । पयं पार्श्वासशिरोरुक्त्यकासादिशान्तये सलिलम् ॥६॥ दशमूलवलेत्यादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥

ककुमत्वङ्नागबलावानिरवीजानि चृर्णितं पयिस । पकं मधुघृतयुक्तं ससितं यदमादिकासहरम्॥ ७॥ ।

क्तुमेत्यादि क्तुमत्वक् श्रज्जैनवल्कल, नागवला गोरचतण्डुला, श्रस्या मूल मर्वत्र वोध्यम्, नानरी श्र्क्तशिम्बी, एषा चूर्णं प्रत्येकमेकपल १, शर्करा पल१, दुग्धशराव २, सर्वमिद पक्तवा उत्कारिका कार्य्या, परिमर्जनार्थ वृतकर्ष २, सुगीते मधु किन्चित् दत्त्वा मच्यम् ॥ ७॥

> पाराधतकिष्ठागकुरङ्गाणां पृथक् पृथक् । मांसच्चूर्णमजान्तीरं पीतं यदमहरं परम्॥ =॥

पारावतित्यादि स्पष्टम् ॥ ८ ॥

घृतकुसुमसारलीढं त्तयं त्तयं नयति गजवलामूलम्।
दुग्धेन केवलेन तु वायसजङ्घा निर्पातेत्र ॥ ६॥

धृतेत्यादी-कुसुममारो मधु, गजबला गोगनतराडुलेति रूयाता । वायम-जहा काकजहा ॥ ६ ॥

कृष्णाद्वान्नासितालेह न्नयहा नौद्रतेलवान्।
मधुसर्पिर्युतो वाश्वगन्धाकृष्णासितोद्भव ॥
श्र भरामधुसयुक्ष नवनीतं लिहन् न्नयी।
नीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाल्यमान्तिके ॥ १०॥
कृष्णेत्यादि मितोद्भव इत्यन्त योगहय स्पष्टम्। श्रतुस्थे वाल्यमान्तिके इत्यिष योगान्तरम्, श्रत्रापि लिहन् न्नयी नीराणी लभते पुष्टिमिति बोग्यम्॥ १०॥

सिवापलादिलेह:

सितोपलातुगाचीरीपिप्पलीयहुलात्वच ।

श्रन्त्यादृद्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत् चौद्रसर्पिपा॥
चूर्णितं प्राश्येदेतत् श्वासकामच्चयापहम्।

सुप्तजिह्वारोचिकिनमल्पाग्नं पार्श्वशालिनम्।
हस्तापादांसदाहेषु ज्वरे रक्ने तथोद्ध्वंगे॥ ११॥

मितोपलेत्याडि—न्वरकस्य । मितोपल। शर्करा, तुनानोरी वशलीचना, वहुला एला, त्वक् गुडत्वक् । अन्त्याद्द्र्धं दिगुणितमिति अन्त्यायास्त्वच एको भाग , । एलाया द्वा, पिष्पल्याक्षत्वार , तुगाचीच्या अर्ष्टा, मितोपलाया पोडशेत्यथं । यद्यपू-द्र्धंशब्दोऽनागतमिभभेते यथा 'अत कद्र्धं अवस्यामि यवाग्विविधोपथा. विवायया विवचावशादतीतमप्यभिभत्ते । चूर्णं वा प्राश्येडित्यमेन मधुष्ट्त विनापि मच्या वीथयति ॥ ११॥

लवङ्गाद्यं चूर्णम् लवङ्गककोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलजीरकं समम्। त्रुटिः सक्तष्णागुरुभृद्गकेशरं
कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुद्गम् ॥
श्रहीन्द्रजातीफलवंशलोचना
सिताष्ट्रभागं समस्दमचूर्णितम् ।
सुरोचनं नर्पणमग्निदीपनं
वलपदं वृष्यतमं त्रिदोषितत् ॥
उरो विवद्धं तमकं गलग्रद्धं
सकासहिक्कारुचियन्मपीनसम् ।
श्रह्मयतीसारभगन्दरार्बदं

प्रमेहगृत्मांश्च निहन्ति सज्वरान् ॥ १२ ॥
नवद्गमित्यादौ—नत तगरपादिका, तदमावे सियलीक्षोपर । मिललोत्पलपत्र नीरकामिति पाठे पत्र तेन पत्रम् । त्रुटि स्क्मैला, मृद्ग गुडत्वक्, नलद
मामी । सहाम्बुनेति पाठे श्रम्यु वालकम् । श्रहीन्द्रोऽनन्तमूलम् । शर्कराया एकमागापेचयाष्टां भागा श्रम्ये तु मिलितचूर्णापेचयेत्याहु । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥१२॥

तालीशाद्यं चूर्णं मोदकश्र

तालीशपत्रं मिरचं नागरं पिण्पली श्रमा।

यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चाईभागिके॥

पिष्पल्यप्रगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा।

श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम्॥

हत्पागहुप्रहणीरोगण्लीहशोषज्वरापहम्।

इर्धतीसारश्लझं मूढवातानुलोमनम्॥

कल्पयद् गुडिकाश्चेतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम्।

गुडिका ह्यश्चित्योगाच्चूर्णोह्मधुतरा स्मृताः।

पेतिके प्राह्यन्त्येके श्रभया वंशलोचनाम्॥ १३॥

नालीशपत्रमित्यादौ—शुमेति पिष्पलीविशेषण्, न तुवशलोचना, ममानतन्त्रे

हारीतादावदृष्टत्वात्। किन्तु सग्रहकारा प्रवलिचे शुभया वशलोचना प्राह्मिति

लिखन्ति। पन्तेमवार्थं कक्षिष्टिखति यथा ' तालीशमिरचनागरमागिषकावशलो-

चना क्रमश ा बृद्धास्त्वगेलाई कृष्णाया मिता भवेदष्टगुणा इति । त्रगेले चाई-भागिक इति । प्रथमभागापेच्चया त्वगेलयो, प्रत्येकमईभागत्वम्, पिप्पल्यष्टगुणिति पिप्पलीभागापेच्चया श्रष्टगुणा सितशकैरा । गुटिकापचे मम जलेन शर्वत्रादाक कुर्वन्ति बृद्धा ॥ १३ ॥

शृङ्गचर्जुनाद्यचूर्णम्

श्टङ्गधर्जुनाश्वगन्धानागवलापुष्कराभयाच्छित्रचहा । तालोशादिसमेता लेह्या मधुसर्पिभ्या यदमहराः॥ १४॥

श्वित्यादी—छिन्नरुद्दा । तालीशादिममता इत्यनेन तालीशादिद्रन्य-मात्रमनुक्षेति, न तु तत्रोक्तभागवृद्धिक्रममि, यथा वस्यमाणचैतमवृते कल्याण्यस्य चान्नेनेत्युक्तत्वेऽपि कल्याण्यतोक्तकल्कद्रन्यमात्रमिति, तेनात्र शङ्क्यादीना ममभाग-तया तालीशाद्योऽपि ममभागा एव प्राह्या ॥ १४॥

> मधुताप्यविडद्गाश्मजतुलौद्दघृताभयाः । झन्ति यच्माणमत्युत्र सेव्यमाना हिताशिना ॥ १४ ॥

मधुताप्येत्यादि — मधुष्टताभ्या लेह । लौहमत्रायश्चूर्यं पुटादिशोधित, न तु लौहमगुर रसायनत्वात् । लौहमगुविति वृन्दिटिप्पणी । ताप्य स्वर्णमान्तिक, तन्धामृतमारवन्त्यमाणविधिना शोधिन बाह्मम् । श्रश्मजतु शिलाजतु, तदिपि वन्त्यमाणशिवागुडिकाविधिना शोधित बाह्मम् । श्रयारंजश्चात्र मिलितेत्र चूर्णममम् ।
लीहचूर्णमत्र रमायनतया श्रेष्ठत्वात् महावीर्व्यत्वान्च महाव्याधिप्रशमनहेतुत्व युज्यत
हति ॥ १५॥

विन्ध्यवासियोगः

व्योपं शतावरी त्रीणि फलानि क्वे वले तथा। सर्वामयहरो योगः सोऽयं लौहरजोऽन्वित ॥ एप वज्ञः चतं हन्ति कएठजांश्च गदांस्तथा। राजयन्माणमत्युग्रं वाहुस्तम्ममथार्दितम्॥ १६॥

विन्ध्यनासियोगे त्रीिख फलानीति त्रिफला, द्वे वले इति नागवलावले, न तु श्वेतपीतमेदात् । अत्र लौहचूर्णं रसायनतया अग्रत्वात् यागिकत्वात् महावीर्थ्यं त्वाच मिलितन्योषादिचूर्येन सम आह्मम्, अत्रपव व्योषादिपाठात् विच्छिष लाइरजाेऽन्वितामिति पिंठनम् । चूर्णयोग एवाय धनमधुनारशु त्वात् । भ्रम्ये तु लेइ एवाय धतमयुभ्या कर्त्तन्य , लेइप्रकरणविहिनत्वादित्याहु । युक्तन्वेतत् ॥१६॥

रसेन्द्रगुडिका

कर्ष शुद्धं रसेन्द्रस्य स्वरसेन जयाद्वेयो ।
शिलायां खल्वयेत् तावद् यावत् पिएढं घनं ततः॥
जलकर्णाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत् पुनः।
सौगन्धिकपलं भृद्धस्वरसेन विभावितम्॥
चूर्णितं रससंयुक्षमजाचीरपलद्वये।
खिलातं घनपिएडन्तु गुडीं स्विन्नकलायवत्॥
कृत्वादौ शिवमभ्यच्यं द्विजातीन् परितोष्य च।
जीर्णाको भन्नयेदेकां चीरमांसरसाशन ॥
सर्वक्षपं च्यं श्वासं रक्षपित्तमगोचकम्।
श्रिप वैद्यशतैस्यक्तमम्लिपत्तं नियच्छिति॥१७॥१

कपिमत्यादि—रमेन्द्र पारदस्तस्य शोधन वस्यमायन्त्रधावतीग्रिटिकाया वस्त्यमायविधिना कार्यम् । तदनुक्रमेया जयाया जयन्त्या स्वरमेन सङ्गिशिलाया सम्मधं पियदाकार कुर्यात् । तदनु जलकार्या मोग्टा तम्या रमेनासान्य प्रत्येक मप्तथा भावयेत् , नतः भीगान्धिक भद्रगन्धक तदिष चुधावत्या वस्यमायिविधिना शोधिन पलपरिमित पारदेन मह घपयीयम् तदनन्तरमजाचीरपलद्वये सङ्गिशिला-स्थिते खिल्लत घनपियद्वतापत्रे तु स्वित्रकलायप्रमाया गुडिका कुर्यात् , तदनु प्रत्यहमेका गुडिका जीर्यान्ने मच्चेत् । श्रमुपानन्य दुग्धादिकमेव ॥ १७॥

एलादिमन्थः

प्लाजमोदामलकाभयात्त-गायत्रिनिम्यासनशालसारान् । विडद्गभल्लातकचित्रकांश्च कदुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकाश्च ॥ पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पि-स्नास्मिन् सुसिडे त्ववनारिने च । त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया
दद्यात् तुगान्नीरिपलानि पट् च ॥
प्रस्थे घृतस्य हिगुणं च दद्यात्
चाँद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात् ॥
पल पलं प्रातरतो लिहेश्च
पश्चात् पिवेत् चीरमतन्द्रितश्च ।
पतिद्वं मध्य परमं पवित्रं
चल्लुष्यमायुष्यतमं तथेव ॥
यद्माणमाशु व्यपहान्ति श्ल
पाण्ड्वामयश्चापि भगन्दरश्च ।
न चात्र किञ्चित् परिवर्जनीयं
रसायने च तदुपास्यमाने ॥ १८ ॥

ण्लेत्यादि — सुश्रुतस्य । अजमोदा यमानी, अच विभीतक गायशी दिदर , अमन पीतशाल , गायश्यादीना शालान्ताना चतुर्णा मारा प्राह्म । मीराष्ट्रजा स्राप्ट्य । एलाटीना मीराष्ट्राताना प्रथगष्टा पलानि गृह्यन्ते । जल पोष्टरागुण दश्म पीटराश स्थापेयत् , तेन काथेन केवलेनव प्रतप्रस्थ पान्यत् । प्रतप्रस्थानेवाया वाग्मटवचन पठित्तं, यथा ' एलाजमोदात्रिफला—मीराष्ट्रीच्योपचित्रकान् । मारानिरिष्टगायत्री—शालवाजकमम्मवान् । महातक विटक्तच्च पृथगप्रपलिमिनम् । सिलंलं पोढशागुणं पोढशाश स्थित पचेत् । पुनस्तेन प्रतप्रस्थ सिद्धे चास्मिन् पलानि पद् । तुगाचीयां चिपेत् त्रिशत मिताया द्विगुण मधु । तत्तिस्त्रजातित्रकल तत्ते लीढ खजाहतम् । पयोऽनुपान तत्त प्राह्ण रमायनमयन्त्रण्यम् ' दत्यादि । पत्रदर्शनात् त्रिजातकमिप बोध्य सीगन्ध्यर्थम् , अत्र तु न पठित तद्वयतिरेकेणापि व्याधिहन्त्वात् । अन्य त्वाहु सुश्रुतोकयोगेऽस्मित्रम्मोदपाठात् त्रिजातामावाचोगान्तरमेवेदम् । तदा प्रतप्रस्थस्य साध्यत्वादेलादीना सप्तदशाना मिलित्वा चतु पप्ति पलानि, जलस्य तु चतु पित्र शरावा , रोपा पोढशरारावा इति ॥ १८॥

्रवला विदारी हस्वाच पञ्चमूली पुनर्नवा। पञ्चानां जीरिवृद्धाणां श्रुङ्गा मुष्ट्यंशिकाः पृथक्॥ पषां कपाये द्वित्तीरे विदार्याजरसांशिके ।
जीवनीयै पचेत् कल्कैरक्तमात्रैष्ट्रंताढकम् ॥
सितापलानि पूते च शीते द्वात्रिशदावपत् ।
गोध्रमिपण्यलीवांशी-चूण् श्रृङ्गाटकस्य च ॥
समान्तिकं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्व्छितम् ।
स्त्यानं सर्पिगुंडान् कृत्वा भूज्ंपत्रेण् वेष्ठयेत् ॥
तान् जण्वा पलिकान् चीरं मद्यञ्चानुपिवेत् कफे ।
शोषे कासे चत्त्वीणे अमस्त्रीभारकर्शिते ॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि स्थिते ।
शस्ताः पार्श्वशिर श्ले भेदे च स्वरवर्णयो ॥
काथ्ये त्रयोदशपले द्रव्यालपत्वभयाजलम् ।
अप्रगुणं काथसमौ विदार्थाजरसौ पृथक् ।
केविद् यथोक्रकाथ्ये तु काथं घृतसमं जगु ॥ १६ ॥)

वलेत्यादि—भय योगश्चरके चतचीयांचिकित्सितं ढकः । चीरिवृचा सचवेतमे। डुम्बराश्वरथवदा, । रालाक्यं तु वेतमस्थान मध्क निचित्य पण्चचीरिवृचा

श्चाख्याता , यथा "उडुम्बरो वटोऽश्वरथा मध्क सच एव च । पण्चैते चीरियोवृच्चा. अस्मिस्तन्त्र प्रकीर्तिता." इति । अस्मिस्तन्त्र इति वचनेन रालाक्याधिकारव्यतिरिक्ते स्थाने पूर्ववृच्चा उका युक्ता । अन्ये तु वतसस्थान कपीतनमाडु । कपीतनी

गर्दमायड । शुक्ता इत्यिविकितितपत्रमुकुलम् । मुख्यशिका. पलमाना । अत्र बलादिकाथ्ये त्रयोदशपले जलद्रोयो देयस्तस्य पादावशेषादद्यावश्यस्य भागानम् ।

दिचीर इति दिप्रकार चीर यत्रेति तथा । चीरद्वयञ्चात्र प्राधान्यादाज गन्यव्य

श्राह्मम् । आजरमञ्जागमासरस । एपा चतुर्गुयामि द्रवाया काथसमत्वमेव माइचर्च्यादिति पञ्चगुयपाकः । चीरानुपानञ्च पित्ते श्चरम् । उक्तार्थमवादकतन्त्रान्तर

यथा 'पुनर्नवा बला हस्वा पञ्चमूर्ली विदारिकाम् । उडुम्बरवटाश्वरथसचेवतसशुगकान् ।

पलिकाशान् जलद्रीयो पक्ता पादावशिषते । पादाशेश्वरागगोचीरविदार्थ्या स्वरसैः

पृथक् । कर्षशिजीवनीयेश्व कल्कैराज्यादक पचेत् । कृष्यगोघूमश्चगादवाशीचौद्रार्जील

पृथक् । सिद्धे प्रस्थौ सितायाश्च दत्ता खादेत् खजाइतम् । एतद् गुडीकृत सिर्पिटे

मूर्जान्विते स्थितम् । अनुपान पिनेत् चीर पिते मथ कफे हितम् । चतव्याम्लिपत्तन

ज्वरशोपप्रगाशनम् १ इति । अत्र पादांशैरिति पादस्थकाथसमभागैरिति । चक्रस्त्वार्ध काथ्ये त्रयोदशपले द्रव्यालपत्वभयाज्जलम् । अष्टगुण काथममी विदार्यात्ररमी पृथक् । केचित् यथोसकाध्ये त काथ प्रतसम जगुरिति । अस्यार्थ अयोदशपले काध्येऽष्ट-गुण जल श्रयोदराशरावपरिमित भवति, तस्य तु पादरीपात् सपादशरावश्रय काथ वदन्ति। काथममश्च विदारीरमश्र्वांगमासरमश्च, चीरञ्च काथापेचया विगुणमिति मार्द षट शरावा , एव धृताढके पक्तव्ये त्रिंशत्पलाधिक द्रवपलशतिमह भवति । एवध्र मति द्रव्यात्पस्य स्मादिति मयात् केचिदत्र यथोक्त एव काथ्ये त्रयोदशपलरूपे तथा पानीय देय यथा पादशेपात् काथी प्रतसम स्यात्, तेनात्र त्रयोदशपलेऽपि काथ्ये जलद्रोगः दत्वा पाद।वशिष्टकाथस्य घृतसमत्व कल्पनीयमिति जगुरुक्तवन्तः । श्ररिमन् पहे दीर द्विग्रण दत्वा विदारीमासरमै। च मिलित्वा एतसमाविति चतुर्ग्रणद्रवेण पाक जलगीमद्धी मदित, चतुर्शणद्रवेण तु स्नेहपाकीन्सर्गत्वात् । जतुकर्णेनापि काध्यमानमनियतमेवोक्त काथस्तु तथापि स्नेहसम एव, पञ्चमश्रुति यत्र स्युरित्युक्ते । ऋषि च यथा षृश्चीर पञ्चमूल बला विदारी वटादिशुगाश्च । निष्काथ्य द्विचीरे छागवि-दारीरसे च समे । तद् जीवनीयगणकरके पक्ता छनाडकमित्यादि । अन्य तु ' द्रव्य-मापोथित काथ्य दक्ता पोडिशिक जलम् । पादावशेष कर्त्तव्य एप काथविधि स्मृत ै इति कृष्णात्रेयपीरमाषातुमारेण नवाथ्ये पोडरागुण जल दीयमान पड्विरातिशराव मनीत, पादशेपाच मार्कपट्शरावक्वाथी मनीत, द्विचीर इति काथापेच्या चीरस्य दैगुण्यात् त्रयोदश शरावा , मिलितौ विदार्थ्याजरसाविष कषायापेचया दिगुणाविति, एव मिलित्वा मार्दाद्विशच्छरावद्रवे पाक शित व्याचक्रते । व्यवहार पुन प्रायेक अनेनेद । खने। मन्यानटण्ड । भूजैपन्ने वेष्टनच्च शक्त्युत्कपर्धिम् ॥ १६ ॥

च्यवनप्राशः

विल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्थं पाटली वला।
पर्ण्यश्चतस्र पिष्पल्य श्वदंष्ट्रा वृहतीद्वयम् ॥
श्दक्षी तामलकी द्वाचा जीवन्ती पुष्करागुरु।
श्रमया सामृता ऋदिजीवकषमकौ शटी॥
मुक्तं पुनर्नवामेदे सूदमैलोत्पलचन्दने।
विदारी वृपमूलानि काकोली काकनासिका।
पर्णं पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य स्न ॥

पञ्च दद्यात् तदैकध्यं जलद्रोणं विपाचयेत्।

श्वात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम्॥
तद्यामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसपिंषो ।

पलद्वादशके भृष्ट्वा दच्वा चार्द्वतुलां भिपक्॥

मत्स्यिण्डिकायाः पूतायाः लेहवत् साधु साधयेत्।

पद्पलं मधुनश्चात्व सिद्धशीते प्रदापयेत्॥

चतुष्पलं तुगाचीर्य्या पिष्पल्या द्विपलं तथा।

पलमकं निद्ध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात्॥

इत्ययं चयवनप्राशः परमुक्तो रसायनः।

कासश्वासहरश्चेव विशेषणोपिदश्यते॥

चीण्चतानां वृद्धानां वालानाञ्चाद्ववर्धनम्।

स्वरच्यमुरोरोगं हद्दोगं वातशोणितम्॥

पिपासां मूत्रशुक्षस्थान् दोषांश्चेवापकर्षति।

श्रस्य मात्रां प्रयुक्षीत योपक्ष्यान्न भोजनम्॥

श्रस्य प्रयोगाच्च्यवन सुवृद्धोऽभृत् पुनर्युवा॥

मेघां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वं वपु प्रकर्षं वलमिन्द्रियाणाम् । स्त्रीषु प्रहर्षे परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् । रसायनस्यास्य नर प्रयोगात् लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवशात्। जराकृतं पूर्वमपास्य कृषं विभर्तिं कृषं नवयौवनस्य ॥

सिता मत्स्यिएडकालाभे धाव्याश्च सदुभर्जनम् । चतुर्भागजले प्रायो द्रच्यं गतरसं भवेत् ॥ २०॥

विल्वेत्यादी — पर्ण्यक्षतस्र इति शालपणीं पृश्लीपणीं सुद्गपणीं माषपण्यं । तामलकी भूम्यामलकी । जीवन्ती स्वनाम् स्थाता । पुनर्नवामेदे इति पुनर्नवा च मेदा च इति द्वन्द न तु मेदाद्वयम्, 'पणिन्य पिप्पली श्रृष्ट्वी मेदा तामलकी श्रुटि शित वाग्मटवचनात् । उत्पल नीलीत्पल न तु कुष्ठम्, सर्विस्मिन्नव तन्त्रान्तरे कुष्ठमिति पाठस्य तट्टीकाकौर रच्याख्यातत्वात् । काकनासिका कायुयाद्वटी, जेज्जटस्तु रम फलमित्याद् । शतान्यामलकस्योति श्राकृतिमानत्वात् श्रामलकोफलस्य पञ्चशतानि,

पतानि कपेट पेट्टिकी कृत्वा अपरैः काश्यद्रव्ये सह कथनीयम्। गतरसत्यध्य द्रव्याणा चतुर्भागावशेषेण क्यायेनेति स्वयेमत बच्यितः अतण्य पादावशेष इति वाग्यटोक्तम्। अन्य त्वष्टमागावशेष इत्याष्ठः, तत्तु न व्यवहारसिद्धम्। निष्कुलिभिति शिरास्थिर-हिनम्, तन्च चौमादिधर्षणेन कार्य्यम्। पलद्वादशकः इति मिलित्वा, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात्, पव त्वगेलापत्रकेशराविष मिलित्वेष पलम्। ये तु ममासकरण-सामर्थ्यात् मिलित्यहणमाहु तन्मते अगस्त्यहरीतक्यादी दशमूलस्यापि मिलित्वा दिपलता स्यात्, दशमूलीित ममासनिर्देशादिनि क्षयम्। अत्र ममयोरिष मध्विष-पोईव्यान्तरसयोगादेव न विकद्धतः ध्यम्, किंवा खामलकमर्जनेन एतस्योपचीणत्वात् समत्वमेव नास्तीित। यद्यपि मत्स्यिष्टकापेच्या शर्करा विमला तथाप्युपात्तत्वादिष्ट सेव प्रशस्ता तदभावे शर्करा खण्डा वा गृह्यत, चेकण तु शर्करंवोक्ता। च्यवनस्य मुने प्राश इति धन् । योपकन्ध्यान्न स्वाजनिति या प्रथमान्नभोजनोपयुका जर्णेन दित्तीयान्नकाले भोजने।पराथ न करोतीत्यर्थः, यदुकः 'क्षादि नैकमाहार या सा मान्ना जरा प्रति 'इति। कुटीप्रवेशादिति वातातपपरिहारेणस्यर्थं ॥ २०॥

जीवन्त्याद्यं घृतम्

जीवन्तीं मधुकं द्राक्तां फलानि कुटजस्य च । शठीं पुष्करमूलञ्च व्याघीं गोजुरकं वलाम् ॥ नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालमाम् । पिष्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ पतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् । रूपेमकादशविधं सर्पिरस्यं व्यपोहति ॥ २१ ॥

जीवन्ती।मित्यादि—चरकस्य , अत्र जलमेव चतुर्गुराम् । केचित्तु चरके श्वद्रष्ट्राष्ट्रतानन्तरमय योग उक्त अतः प्रत्यामत्त्या पूर्वयोगोक्त छीरमेवान्नाधि प्रवमिच्छन्ति, किन्तु वाग्मटादपि न दुग्धमतो जलमेव युक्तम् ॥ २१ ॥

पिप्पली घृतम्,

पिष्पलीगुडसंसिद्धं छागत्तीरयुतं घृतम्। पतद्गिप्रवृद्धधर्थं सर्पिश्च त्तयकासिनाम्॥ २२॥ पिष्पलीत्यादि—विष्पलीगुडी कल्की, छागत्तीर चतुर्गुणम्॥ २२॥

पाराशरघृतम्

यप्टीवलागुङ्ग्चरूपपञ्चमूलीतुलां पचेत्। शूपेंऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रं पचेद् घृतम्॥ धात्रीविदारीज्ञुरसे त्रिपात्रे पयसोर्मणे। सुपिप्टेर्जीवनीयेश्च पाराशरिमदं घृतम्॥ ससैन्यं राजयन्माणमुनमूलयित शीलितम्॥ २३॥

यशित्यादि—नाग्भटस्य । यश्यादीना मिलित्वा तुला । सर्प इति द्रोखद्दये, उत्त इदन्तेन ' कुम्भो द्रोखद्दय सर्पे. ' इति । चारपाणिनाप्युक्त ' द्रोखद्दयन्तु सर्पे. स्वात् कुम्भ इत्यभिधीयते ', नस्मात् द्रोणपर्याय सर्पे इति इन्दिलिखितमत नादरणीयम् । यद्यपि तुलाद्रन्ये एक एव जलद्रोण उनितस्क्षापि निर्देष्टत्वादिद् तोय द्रोणद्दयमेव देयमः, यथा बन्त्यमाणदितीयच्छागलादिष्टते छागमासतुलाया जल द्रोणद्वयमिति । धान्यादिरसाना मिलित्वा त्रिपात्रम्, पात्रमादकम्॥ २३॥

छागलाद्यं घृतम्

ह्यागमांसतुलां गृह्य साधयेन्नस्वणेऽम्भसि ।
पादशेषेण तेनैव सिर्णः प्रस्थं विपाचयेत् ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
काकोलीक्षीरकाकोलीकरूकैः पृथक् पलोन्मितैः ॥
सम्यक् सिद्धे चावतार्थ्य शीते तस्मिन् प्रदापयेत् ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥
पलं पलं पिवेत् प्रातर्यदमाणं हन्ति दुर्जयम्।
चतत्त्वयञ्च कासञ्च पार्श्वश्रलमरोचकम् ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात् सुदारुणम् ।
वर्षं मांसकरं वृष्यमश्चिसन्दीपनं परम् ॥ २४ ॥
क्षागलावे नल्वणो होणः ॥ २४ ॥

त्रपरं छागलादं घृतम् नोयद्रोणद्वितये छागलमांसस्य पलशतं पक्त्वा। जलमण्रंशं सुरुनं तिसन् विपचेद् घृतं प्रस्यम्॥

कल्केन जीवनीयानां कुडवेन तु भाससर्पिरिदम । पित्तानिलं निद्दन्यात् नज्जानपि रसकयोजितं पीतम्॥ कासभ्वासाबुद्रौ यदमाएं पार्श्वहद्रजां घोराम्। श्रध्वव्यवायशोप शमयति चैवापरं किञ्चित्॥ २४॥ तायेत्यादी--जीवनायाना दरााना कुडवेनेनि मिलित्वा। तत्नानिति पित्ताः

निलजान् व्याधीन् । रमकयोजितमिति मासरमावचारितमित्यर्थ ॥ २५ ॥

अजापञ्चकं घृतम्

बागशरुद्रसम्बन्धिर्देशा च साधितं सर्पिः। सत्तार यहमहरं कासश्वासोपशान्तये परमम्॥ २६॥ श्रजापञ्चकप्रने मर्पिरप्यजाया एव. दथि न । यवज्ञारम्याप्यश्र प्रेतेपत्व-माइ ॥ २६॥

वलागर्भ घृतम् डिपञ्चमूलस्य पचेत् कपाये प्रस्थद्वये मांसरसस्य चैकं। कल्क वलायाः सुनियोज्य गर्भ सिद्धं पय प्रस्थयुतं घृतञ्ज्ञ ॥ , सर्वाभिघातोत्थितयसमग्रूल-

चतत्त्रयोत्कासहरं प्रदिएम्॥ २७॥

द्विपञ्चमूलस्येति दगमूलस्य मिलित्वा दात्रिशत्पलानि, जलस्य च दात्रि-राच्छरावास्तत प्रस्थद्वय राष । मामरमस्य चक र्रात छागमामरमस्य एकस्मिन् प्रस्थ इत्यर्थ । गर्भमित्यन्त ॥ २७॥

नागवलाघृतम्

पादशेषे जलझोणे पचेत्रागवलातुलाम् । तेन क्राथेन तुल्यांशं घृतं त्तीरञ्च साघयेत्॥ पलार्द्धिकैश्चातिवला वलायप्टिपुनर्नचा । प्रपौरहरीककाश्मर्थ्यपियालकपिकच्छुभि ॥

ष्रश्यगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकर्छकैः।
मृणालविसशाल्कश्वकाटककशेरुकै ॥
पतन्नागवलासपीं रक्षपित्तत्तत्त्वयम्।
हन्ति दाहं भ्रमं तृष्णां वलपुष्टिकरं परम्॥
वल्यमोजस्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम्।
उपयुक्षीत षर्गमाषान् मृद्धोऽपि तरुणायते॥ २०॥

पादशेषमित्यादि —नाग्मटस्य । पादशेषमित्येन पाठ । पादशेष यथा मनति (था पनेदिति । अन्य तु पादशेष कर्त्तेन्य इति न्याचन्नते । नागनला गोरच्च-त्यञ्जला, अतिनला गोरचत्यञ्जलेन । मृखालिनिसे म्वल्पमहद्भेदात् । मृखालमुशीर विमं पद्ममूलिमत्यन्ते ॥ २ ॥

निर्गुएडीघृतम्

समूलफलपताया निर्गुएड्या खरसैर्घृतम् । ' सिद्धं पीत्वा चतचीणो निर्व्याधिर्माति देववत् ॥ २६॥ निर्गुएडीष्टतमकत्कन् ॥ २६॥

वलाद्यं घृतम्

वलां श्वद्रष्ट्रां वृहतीं कलसीं धावनीं स्थिरास्।
निम्वं पर्पटकं मुस्तं तायमाणां दुरालभाम्॥
कृत्वा कषायं पेण्यार्थे द्यात् तामलकीं शटीम्।
द्राचापुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च॥
धृतं पयश्च तिसद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम्।
चयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरुजापहम्॥
चरकोदितवासाद्यभृतानन्तरमुक्तितः।
चदन्तीह भृतात् काथं पयश्च द्विगुणं धृथक्॥ ३०॥

वलामित्यादि—चरकस्य । ध्वरिचिकित्तिदेश योग । कलसी पृश्विपणी, धावनी कण्टकारिका, स्थिरा शालपणी । चरकोहितेत्यादि—चरके हि वासाष्टतानन्त-रमय योग ठक , तत्र च क्वाथ. पथश्च प्रत्येक छताद् द्विगुणम्, तत्साहचर्य्यादिहापि त्रथैवेति । छतमम चीरम्, क्वाथश्च विग्रण इत्यन्ये ॥ ३० ॥

चन्दनाद्यं तैलम्

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टीशेलेयपद्मकम् ।
मिश्रिष्टा सरलं दारु शट्येला पूितकेशरम् ॥ ॥
पत्रं शैलं मुरामांसी कक्कोलं विनताम्बुदम् ।
हरिद्रे शारिवे तिक्का लवद्वागुरुकुद्भुमम् ॥
त्वश्रेणु निलका चैभिस्तैलं मस्तुचतुर्गुणम् ।
लाचारससमं सिद्धं श्रद्धं चलवर्णकृत् ॥
श्रपसारज्वरोन्मादकृत्यालद्मीविनाशनम् ।
श्रागुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३१॥

चन्दनादितेल-अम्बु नालकम्, वाप्य कुष्ठम्, पूर्ति खट्टाशीः, रैाल शिलारस , वनिता प्रियतु , तिका लताकरत्रो, रेणु रेणकम्, निलका नालुका । लाक्षारमा लाक्षाक्ताय ; लाक्षाया पोडराणलम्, पाकार्थजल पोडराशरावम्, राप प्रम्थकम् ॥३१॥

बागं मांसं पयश्झाग झागं सर्पिः सशकेरम् । छागोपसेवा शयनं झागमध्ये तु यदमनुत्॥ षागमिसादि स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

उरो मत्वा चतं लाचां पयसा मधुसंयुताम्। सद्य एव पिवेज्ञीर्थे पयसाद्यात् सशर्करम्॥ ३३॥

उर् इत्यादिना उर क्तिनिकित्सामाह—उर कत मत्वा लाका प्यमा मध्-सयुता पिवेदित्यर्थ । जीचे पयमा सरार्करमञ्ज मुखोतेत्यन्वय ॥ ३३॥

इच्वालिकाविसम्रन्थि-पद्मकेश्रारचन्द्नैः।

े श्रतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिवेत् त्तयी ॥ ३४॥ इत्त्वालिकेत्यादि—इत्त्वालिका वनखगरीति ख्याता, विसम्रन्थि मृणाल-र्मान्य , पद्मकेरार पद्मिकअल्कम् । सन्धानार्थमिति चतोर सन्धानार्थम् ॥ ३४॥

बलाश्वगन्धा श्रीपर्णीबहुपुतीपुर्ननचाः । पयसा नित्यमभ्यस्ता चपयन्ति चतच्यम् ॥ ३४ ॥ बलेलादी—श्रीपर्णा गाम्भार्थाः फलम्, बहुपुत्ती रातावरी । बलादयो व्यस्ता. समस्ता वा बोध्या ॥ ३४ ॥

वलाद्यघृतम्

र्ष्यृतं वलानागवलार्जुनाम्बुसिद्धं स्वयष्टीमधुकल्कपादम् । हृद्रोगग्रल्लत्तरक्रिपत्तकासानिलासृक्शमयत्युदीर्थम् ॥३६॥ इति यदमिविकित्सा ।

ष्ट्रतीमत्यादि स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

ł

इति यद्मचिकित्साविषृति ॥

अथ कासचिकित्सा ।

-ARIGHT

वातकासचिकित्सा

वास्त्को वायसिशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् ।
्रे सेहास्तैलादयो भच्याः चीरेचुरसगौडिकाः ॥
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च ॥
शस्यते वातकासेषु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥
ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषवी भोजयेद्वितान् ॥ १ ॥
पञ्चमूलीकृत काथः पिष्पलीचूर्णसंयुतः ।
रसान्नमश्रतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ २ ॥

यदमरूपेषु कासपाठात् कासापेचया च यदमासभवात् यदमानन्तर कास-चिकित्सामाह वास्तृक इत्यादि—वायसी काकमाची। षश्चमूलीत्यादि—पञ्चमूली महती, उष्णवीर्थ्यतया विशेषेण वातप्रत्यनीकत्वात्। अन्ये तु स्वल्पामाहु । रसान्न मासरसोपहिनमन्नम् ॥ १॥ २॥

श्रपराजितलेहः

शटीश्टङ्गीकणाभागीगुडवारिदयासकैः। सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः॥३॥ चूर्णिता विश्वहु स्पर्शाश्वद्गीता ज्ञाश्वद्गीसता । लीदा तेलेन वातोन्धं कामं जयित दारुणम् ॥ ४ ॥ अग्जिद्गालाश्वदीश्वद्गीपिप्पलीविश्वमेपते । गुडतेलयुतो लेहो हिता माचनकासिनाम् ॥ ४ ॥ गश्चाहि—योगबेयेऽपि कर्दतेन तेष्ट श्रीत क्ट्रिय्पर्णा, किन्तु दीना इहिनं स्वास्थातेऽपम्थं ॥ ३—४ ॥

पित्तकासंचिकित्सा

पित्तकासे तनुकके त्रिवृतां मधुरैर्युनाम् । दद्याद्धनकके तिक्कैविरेकार्थ युनां भिषक् ॥ ६ ॥ पित्तकान इन्यादि—वरक्य तनुकक इन्यवनक्षेत्र । क्षण्य तनुक्व वनन्व द क्षण्योगीन नर्थ्यभाषकपस्य दर्शनादेव देवस् ॥ ६ ॥

मधुरैर्जाङ्गलरसं स्यामाकयवकोष्ठवा । मुद्दादियुपं शाकेख तिक्षकेमावया हिनाः॥ ७॥ मधुरिति—नधुज्येद्वंना विवृत्तामिति न्यन्यः । अन्ये तु मधुरनीवनीद-दर्गकिरित्यह् । मधुर्द्धांहनर्गनित्यत्र नर्धाः न्यादुनि किंवा नीवनीदन्यन्ते ॥७॥

वलाद्विगृहतीवासाद्राचामि कथितं जलम्। पिचकासापद्दं पेयं शर्करामधुयोजितम्॥ =॥ •नेन्यात्र न्यस्य ॥ =॥

शरादिपञ्चमृतस्य पिप्पलीद्राचयोस्तथा। कपायेण श्रतं जीरं पियेत् समधुशकरम्॥६॥ काकोलीवृह्दतीमेटायुग्मं सबृपनागरः। पिचकासे रसजीरयूपांखान्युपकत्पयेत्॥१०॥

पित्तकासे रसस्तीरयूपांखाप्युपकत्पयेत् ॥ १० ॥
गर्गावादि—चन्द्रन्य। गाविषद्रमूनन् भे सुद्रभंकाममान्यस्त्रेषा तृत्र हेन्त् । कत्र पद्धपरिमापदा क्रद्रश्तन्यपित चतुर्गेतन दुग्ध नाध्यम् । नादो-नीत्यादि—सत्र सुर्गिति वाकोन्यादिभि सन्तर्थतं द्राद चन्न । सन्ये तु दृहता-मेदान्या सुन्यद्र द्रात, सुक्केत्रत्, स्द्राह् न्तृक्य- वृण्द्राकोन्थासुरदीनदादृहर्दी-सुनिनित् ॥ ६॥ १० ॥ द्राज्ञामलकखर्जूरं पिष्पलीमरिचान्वितम्। पिचकासापद्दं द्यतिह्वद्यान्माज्ञिकसर्पिषा॥ ११॥ ः

द्राचेत्यादि—इद कफानु क्षेष्ठे श्रेयम्, पित्तोद्रेके तु मरिचस्थाने शर्करा श्रेया, यदाइ चारपाणि 'पिप्पल्यामलके द्राचा खर्जूर शर्करा मधु। लेहोऽय सप्तो लीढ: मपित्तचयजकासजित् 'इति ॥ ११॥

खर्जूरिपप्पलीद्राचासितालाजा समांशिका । मधुसर्पिर्युतो लेहः पित्तकासहरः परः ॥ १२॥ खर्जूरेलादि स्पष्टम्॥ १२॥

शटीहीवेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् । पिष्ट्वा रसं पिवेत् पूतं सघृतं पित्तकासनुत् ॥ १३ ॥ मधुना पद्मवीजानां चूर्ण पैत्तिककासनुत् ॥ १४ ॥

शटीत्यादि—नाग्मटस्य । तत्र शट्यादिक जले पिष्ट्वा तद्रम वस्त्रपूत कृत्वा धृतमम्मिश्र पिवेत् । बृहती चात्र कायटकारी कामहन्तृत्वात् । उक्त हि चरके ' शर्करानागरोदिच्य-कयटकारीशटीसमम् । पिष्ट्वा रस पिवेत् पूत वस्त्रेण धृतमूर्विञ्चतम् ' इति ॥ १३ ॥ १४ ॥

कफकासचिकित्सा

विलनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनम् ।
यवान्नैः कटुरूद्योप्णैः कफ्रमश्चाप्युपाचरेत् ॥ १४ ॥
पिप्पलीद्यारकैर्यूपैः कौलत्थर्मूलकस्य च ।
लघून्यन्नानि भुजीत रसैर्वा कटुकान्वितः ॥ १६ ॥
पश्चकोलैः श्टतं द्यारं कफ्रमं लघु शस्यते ।
श्वासकासज्वरहरं वलवर्णाभिवर्द्यनम् ॥१७॥

वित्तमित्यादिना कफाचिकित्सामाह । पिप्पलीचारकैरिति पिप्पलीयव-चारसरकृतैरित्यर्थ ॥ १४ ॥ १७॥

पौष्करकद्फलभागींविश्वपिष्पलिसाधितम्। पिवेत् काथं कफोद्रेके कासे श्वासे च हृद्ग्रहे॥ स्वरसं श्टङ्गवेरस्य मान्निकेश समन्वितम्॥ पाचयेच्छ्घासकासम्नं प्रतिश्यायकफापहम्॥ १८॥ शेष्करीमत्यादि—कफापह पर्यन्त स्पटन्॥ १८॥

नवाङ्गयूपः

मुद्रामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां
कर्कन्धुना मूलकश्चण्डकेन ।
शुण्ठीकणाभ्याञ्च कुलत्धकेन
थुयो नवाइ-कफरोगहन्ता॥ १६॥

नवाइन्यूपे यवामलकदाडिमकर्बन्धुनूलकशुण्डकै पहत्रपरिमापया ऋदंश्वन कृत्वा सुद्रकुलत्यौ सुक्ष्या प्रजुदी दत्त्वा न्य. नाघ्य , पश्चात् कदुत्वार्थ शुर्यठीः पिष्पलीचूर्यदानन्, किंवा मकलमेव द्रव्य ययोचितमात्रया गृहीत्वा काथविधानेन पञ्चसुष्टिकवत् चूप. कार्य्य दत्याहु ॥ १६ ॥

पार्श्वग्रते ज्वरे कासे श्वासे श्रेष्मसमुद्भवे ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिवेत् ॥ २०॥ पार्श्वग्रहः स्वाठि सप्टन् ॥ २०॥

कर्फलादिः

कर्फलं कतृणं भागीं मुस्तं धान्यं वचामया।
श्रृङ्गी पर्पटकं श्रुणी सुराहा च जले श्रुतम् ॥
मधुर्हिगुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके।
कर्छरोगे च्ये ग्रूले श्वासिहक्काज्वरेषु च ॥ २१ ॥
कर्फलित्यादौ कृष्य गन्धरूषम् ॥ २१ ॥
कर्टकारीकृतः काध सकृष्णः सर्वकासहा ॥ २२ ॥
कर्ण्डकारीकृतः काध सकृष्णः सर्वकासहा ॥ २२ ॥
विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् ।
स्विश्वमन्नौ हरेत् कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ॥ २३ ॥
विभीतकिमित्यादि सप्टम् ॥ २३ ॥

वासकस्वंरसः पेयो मधुयुक्को हिताशिना।
पित्तन्धेष्मकृते कासे रक्कपित्ते विशेषत ॥ २४ ॥
वासकस्यादि च स्पष्टम् ॥ २४ ॥
मधुकं पिष्पली द्राचा लाचा श्टक्की शतावरी।

द्विगुणा च तुगाचीरी सिता सर्वैश्वतुर्गुणा ॥ तं लिह्यान्मधुसर्पिभ्यों चतकासनिवृत्तये ॥ २४ ॥ मधुकमित्यादि—तुगाचीरी वशलोचना एकमागोपचया द्विगुणा, सर्वचूर्णा-

वेचया चतुर्गुणा सिता ॥ २५ ॥

पिष्पली पद्मकं द्राचा सम्पकं वृहतीफलम् । घृतचौद्रयुतो लेहः श्वासकासनिवर्हणः॥ २६॥

विष्पलीत्यदि स्पष्टम् ॥ २६ ॥

हरीतकीनागरमुस्तचूर्ये

गुडेन तुल्यं गुडिका विधेया । निवारयत्यास्यविधारितोऽयं

श्वासं प्रवृद्धं प्रवत्श्च कासम् ॥ १७ ॥ इरीतकीत्यादौ—समुदितचूर्णेन तुल्यो गुड ॥ २७ ॥

मरिचाद्यं चूर्णम्

कर्षः कर्षार्द्धमथो पलं पलद्वयमथार्द्धकर्षश्च।
मरिचस्य पिष्पलीनां दाडिमगुडयावश्कानाम् ॥
सर्वोषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यविवर्जिताः।
श्रिप पूर्व इर्दयतां तेषामिदमाषद्यं पथ्यम् ॥ २८॥

कर्षे इत्यादि—मरिचकर्षे १, पिप्पती तीलक १, अम्लदाविमवीज पल १, गुड पल २, ववचार तीलक १। वाग्मटेऽप्युक्त ''गुडचारीषणक्या दाडिम श्वाम-कासजित्। क्रमात् पलद्वयाद्दीच-कर्षकाद्वपलोन्मितम्'' इति ॥ २८॥

समशर्करं चूर्णम्

लवङ्गजातीफलपिष्पलीनां भागान् प्रकल्प्यच्युतानमीषाम् । पलार्द्रमेकं मरिचस्य दद्यात् पलानि चत्वारि महौषघस्य॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसद्य रोगानिमानाशु वर्तानिहन्यात्। कासज्वरारोचकमेह्गुल्मश्वासाशिमान्यग्रहणुपिदोपान् ॥२६॥

लवगेत्यादि-पलाईसेकमिल्यत्र एकपद छोकपूरणार्थमेवोक्तम् । वलानिति अर्शादित्वादच्, वलवतो रागानित्यर्थ । तेन प्रसद्ध श्लानेन न पौनरुक्षयम् ॥ २६॥

हर्रातकीकणाशुग्ठीमरिचं गुडसंयुतम्। कासन्नो मोदकः प्रोक्षस्तृष्णारोचकनाशन ॥ ३०॥ हरीतकीलादि—मोदकलार गुटा दिगुख ॥ ३०॥

च्योपान्तिका गुडिका

तालीशविद्वदीप्यकचिकाम्लवेतसव्यौपैः।
तुल्यैस्त्रिसुगन्धियुत्तैर्गुडेन गुडिका प्रकर्तव्या॥
कासश्वासारोचकपीनसहत्कगठवाड्निरोधेषु।
प्रह्यीगदोद्धवेषु गुडिका व्योपान्तिका नाम॥ ३१॥

तालीरोत्यादी—विद्वश्चित्रक, दीव्यक यमानी, त्रिम्रगन्धियुतिरिति सर्वचूर्या-पेच्चया चतुर्यारोन मिलित त्रिम्रगन्धिचूर्यामित्यादुः । व्यापान्तिकेति, अत्रान्तराव्य उपान्तमाह व्योपत्यान्तिस्यतित्रमुगन्धात् पूर्वमवस्थितत्वात् । किंवा तालीशादीना विरोपयप्रधानत्वादेपच्यैवान्तो हेय ॥ ३१ ॥

मनःशिलालमधुकमांसीमुस्तेष्कुदै पिवेत् । धूमं त्र्यहञ्च तस्यानु सगुडञ्च पयः पिवेत् । एप कासान् पृथग्द्धन्द्वसर्वदोपसमुद्भवान् । शतैरपि प्रयोगाणां साघयेदप्रसाधितान् ॥ ३२ ॥

मन शिलालेलादि—आल इरितालम्, इङ्गद पुत्रश्रीवफलमध्यम्, फलल-गिलम्ये, युक्तश्रेतत्, "मन शिलालमधुक मामीमुस्तेगुदीत्वच " इति वाग्मटवच-नात्। अत्र मन शिलादीनां पेषण छागमूत्रेण बोध्यम्, छागलाम्बुपिष्टेरिति सुश्रुत दर्शनात्। अत्र मधुकस्थाने मरिच केचित् षठन्ति, तम्न, शिलालेगुदयष्ट्याह-मासीभूप पिनेत् त्र्यहम्" इति तन्त्रान्तरदर्शनात्। अत्र मनःशिलादिक कल्कीकृत्य श्रुत्त्यवस्रखयड लिम्पेत्, तत्त आतपे शोषयित्वा वार्चे विधाय शरावमम्पुटम्यवदराद्वार-वही निविष्य यथोक्तनलिकया भूमपान कार्य्यम्, विश्राम्य किञ्चित् मगुडचीर पेयम्, भूमस्र तीच्यात्वेनोज चयादिति॥ ३२॥ मनःशिलालिप्तदलं बद्य्यातपशोषितम्। सत्तीरं धूमपानञ्च सर्वकासानिवारणम्॥ ३३॥

मन शिलादी—नद्रयातपशोषितीमित नद्रया मन शिलालिप्तदलम्, श्रातपे शोषितमिति योजना । नद्रयातपेति श्रसन्धिविधेरानित्यत्वात् सन्धि ॥ ३३॥

श्रक्तेच्छ्रह्माशिले तुल्ये ततो ऽर्द्धेन कद्वित्रक्तम् । चूर्णितं विद्धिनित्तिप्तं पिवेद् धूमन्तु योगिवित् ॥ भत्त्येद्य ताम्वूलं पिवेद् दुग्धमधाम्बु वा । कासाः पञ्चिविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥ ३४॥ श्रक्षच्छ्रह्मेत्यादि—श्रक्षच्छ्रह्म श्रक्षमूललक्, शिला मन शिला, ततोऽद्धेन कद्वाहिकमिति तत उमयोर्द्धन मिलित विकद्यकम् ॥ ३४॥

मरिचशिलार्कक्तिरैविक्तिकीं त्वचमाश्चभावितां शुष्काम्। कृत्वा विधिना धूमं पिबतः कासा शमं यान्ति॥ ३४॥ मिरवेलादि स्पष्टम्॥ ३४॥

दशमूलघृतम्

दशमूलीकषायेण भागींकरकं पचेद् घृतम्।
दत्ततित्तिरिनिर्यूहे तत्परं वातकासनुत्॥ ३६॥
दशमूलीकषायेणेत्यादि—दत्त कुक्कुट, दत्तित्तिरिम्या मिलित्वैव काथः।
दशमूलकाथेन दत्तित्तिरकाथेन च मिलित्वा चातुर्गुण्यम्॥ ३६॥

दशमूलाइं घृतम्

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्यात्तसमैः पचेत्।
पुष्कराह्वशटीवित्वसुरसक्योषहिङ्गुभि ॥
पेयानुपानं तत् पयं कासे वातकपाधिके।
श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ३७॥

दशमूलाढक इत्यादि—वाग्मटस्य । अत्र दशमूलस्य काथ्यस्यादकमानत्वम्, तेन काथ्यसमो मत ' इति वचनात् पादावशिष्टकाथोऽप्यादकमानो मवित । विल्व बिल्वमूलम्, सुरस पर्यास । पेयानुपानिमत्यत्र पयोऽनुपानिमिति केचित् पठान्ते, किन्त्वत्र पेयैव वातकपहन्तुत्वात् सुका ॥ ३७ ॥

दशमृलपर्पलकं घृतम्

दशमूलीचतुः प्रस्थे रसे प्रस्थोनियतं हिवः । सनारः पञ्चकोलेस्तु किल्ततं साधु साधितम् ॥ कासहत्पार्ण्वशृत्वः हिकाश्वासनिवारणम् । कर्त्कं पट्पलेमवात्र प्राहयन्ति भियग्वराः ॥ ३८ ॥ दशनृतपट्पतक रा स्टन् ॥ ३८ ॥

क्रारकारीवृतम्

क्रिंदिकारीगुह्चीभ्यां पृथक् विश्रत्यलाद्रसे । प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वहिद्योपन ॥ ३६॥ अपरं क्रिंदिकारीघृतम्

वृतं रास्त्रावलाव्योपश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् । कएटकारीरसे सर्पि पञ्चकासनिष्टनम् ॥ ४०॥

कर्दकारीतादि—कर्दकारीगुड्न्सोमिनिया पन ६०, बल गराव ६०, गैप ११ । क्रमे तु वल्डोरा दत्ता गेप १६ इत्याहु ॥ क्रदकारीम इति क्रदकारीलरस्वतुर्गुच, उत्तक्ष किडिग्मिकाया त्वरसं आहेदेड् यन्त्रपीटिन्म् । वर्त्राचे रने तिलान् ष्टतप्रस्थं विपाचेषद् श्रेष्यादि ॥ ३६—४०॥

बृहत्कएटकारी घृतम्

समूलपत्रशाखायाः कएरकार्थ्या रसाहके । युतप्रस्थं वलाव्योषविडद्गशरीचित्रके ॥ सौवर्चलयवज्ञारिवल्वामलकपुष्करैः । वृश्चीरवृहतीपथ्यायमानीदाडिमार्डिमिः ॥ द्राज्ञापुनर्नवाचव्यधन्त्रयासाम्लवेतसे । शृद्धीतामलकीभार्गीराख्यागोजुरकै पचेत् ॥ कल्केस्तु सर्वकासेपु हिक्काश्वासे च शस्यते । कएरकारीयृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ४१ ॥ चन्नेव्यादि— व्यवं वोगश्रके वाग्यदे च पश्चेत । वत्र वेद्यक्षभेदात् पुन-

र्नवाडयम् ॥ ४१ ॥

रास्ताद्यं घृतम्

द्रोणेऽपां साध्येद्रास्नां दशमूली शतावरीम् ।
पिलकां माणिकांशांस्त्रीन् कुलत्थान् बद्रान् यवान् ॥
तुलांद्वं छागमांसस्य पादशेषेण तेन च ।
घृताढकं समन्तीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥
सिद्धं तद्दशभिः कल्कैनंस्यपानानुवासने ।
समीन्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥
पश्च कासान् न्तर्यं श्वासं पार्श्वश्चलमरोचकम् ।
सर्वाङ्गेकाङ्गरोगांश्च सप्लोहोद्ध्वानिलं जयेत् ॥
जीवन्ती मधुकश्चैव दशको जोवको गण् ॥ ४२॥

द्रोणेऽपामित्यादि—अयमपि योगश्चरेक वाग्गेट च पठ्यते । पिलकामिति रास्नादित्र्येया सम्बध्यते, दशमूलमिप प्रत्येक पलागम् । पिलकानिति पाठे रास्ना-दिशतावर्य्यन्ताना पिलकान् भागानिति मम्बन्धः । माणिका शाख अष्टै। पलानि । अत्र रास्नादिच्छागमासान्तकाथ्ये द्रोखप्रमाख जलम् , तच पादावरेषादाढकम् , चीरमप्याढकम् , अतो द्विगुख पाक ॥ ४२॥

अगस्त्यहरीतकी

दशमूली स्वयंगुत्रां शङ्खपुष्पीं शटीं बलाम्।
हस्तिपिष्पत्यपामागिप्पलीमूलिचित्रकान्॥
भागीपुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवादकम्।
हरीतकीशतञ्चेकं जले पञ्चादके पचेत्॥
यवैः स्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम्।
पचेद् गुडतुलां दक्षा कुडवञ्च पृथग् घृतात्॥
तैलात् सपिष्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च मान्निकात्।
लिह्याद् हे चाभये नित्यमतः खादेदसायनात्॥
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णांयुर्वलवर्द्धनम्॥

पञ्चकासान् च्रयं श्वासं हिकां सविपमज्वरान्। हन्यात् तथा ब्रह्म्यशाँहद्रोगारुचिपीनसान्॥ श्रगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्टं रसायनम्॥ ४३॥

🐔 च्याघीहरीतकी

समृत्तपुष्पच्छटकग्रह्मार्थ्यास्तुतां जलद्रोग्णपरिष्तुनाञ्च।
हरीतकीनाञ्च शतं निद्ध्यादथात पक्त्वा चरणावशेषम् ॥
गुडस्य द्व्वा शतमेतदग्नी
विपक्तमुत्तार्थ्य नतः सुशीते।
कडुत्रिकञ्च द्विपलप्रमाणं
पतानि पद् पुष्परसस्य तत्न ॥
चिपेश्चतुर्जातपतं यथाग्नि
भग्रुस्यमानो विधिनावलेह ।

वातात्मकं पित्तकफात्मकञ्च डिदोषकासानपि यांस्त्रिदेषाम् ॥ स्रयोद्भवञ्च स्तत्रञ्च ह्न्यात् स्रपीनसश्चासमुरःस्ततञ्च । यद्माणेमकादशरूपमुत्रं भृगूपदिष्टं हि रसायने स्यात् ॥ ४४ ॥ इति कासचिकित्सा ।

न्याश्रीहरीतक्यां कडुत्रिक प्रत्येक पलद्रयम् । चातुर्जातमिति मिलित्वा पलम् ॥ ४४ ॥

इति कासाचिकित्साविवृति ।

अथ हिकाश्वासचिकित्सा।

हिकाश्वासातुरे पूर्व तैलाक्ने स्वद इष्यते। । स्मिग्चैर्लवणयोगैश्व मृदु वातानुलोमनम्॥ उद्ध्वीध शोधनं शक्ने दुवेले शमनं मतम्॥१॥

तुल्यनिदानलाट् कासानन्तर हिक्काश्वासिचिकित्सामाह हिक्काश्वासातुर इत्यादि—तैलाक इति लनणसयोगे सह तैलाक इति योज्यम्, तेन सैन्धवसयुक्तेन तैलेनाभ्यक इत्यर्थ । स्त्रिग्धेरिति स्त्रिग्धेर्द्व्ये स्वेद इति योज्य नाग्मटसनादात्। मृदु नातानुलोमनिमिति कद्ध्वाध शोधनस्य निशेषण् नाग्मटसनादात्, किंना सन्ययोगेरुपलचित शोधनीमिति योज्यम् ॥ १॥

केलिमजाञ्जनं लाजास्तिक्षा काञ्चनगैरिकम्।
कृष्णा धात्री सिता शुगठी काशीशं द्धिनाम च ॥
पाटल्या सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमस्तकम्।
पडेते पादिका लेहा हिकाझा मधुसंयुताः॥२॥
शमनमाहकोलेत्यादि—कोलमञ्जा बदरास्थिमञ्जा, अञ्चनमत्र मौनीराञ्जनम्;

तिका कडकी, काञ्चनगेरिकमिति उत्तमले। हितगैरिकम्, काशाश थातुकाशिशम्, कास्यमाचिकमित्यन्ये, दथिनाम कपित्थफलम् ॥ २ ॥

> मधुकं मधुसंयुक्त पिष्पली शर्करान्विता । नागरं गुडसंयुक्त हिकाघ्नं नावनत्रयम् ॥ ३ ॥ स्तन्येन मित्तकाविष्ठानस्यं वालक्षकाम्बुना। योज्यं हिकाभिभृताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥ ४॥ मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिवेत्॥ ४॥ द्विकार्त्तस्य पयश्ञुागं हितं नागरसाधितम् ॥ ६॥ कृष्णामलकशुर्ठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥ ७ ॥ मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिकाश्वासनिवर्हणम् ॥ ८॥ हिकाश्वासोद्भव भागी सविश्वामुण्णवारिणा। नागरं वा सिताभागीं-सौवर्चलसमन्वितम् ॥ ६॥ मधुकामित्यादि सौवर्चलान्त स्पष्टम् ॥ ३--- ६ ॥ श्रुड्गीर्कद्विकंफलंत्रयक्रएटकारी भागीं सपुष्करजटा लवणानि पञ्च । चूर्ण पिवेदि शिशिरंग जलेन हिका-श्वासोद्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ १०॥ श्वक्षीत्यादी-पुष्करजटा पुष्करमूलम् ॥ १०॥ श्रभयानागरकल्कं पौष्करयवश्कमरिचकल्कं वा । तोयेनोप्णेन पिवेत् श्वासी हिकी च तच्छान्त्ये॥ ११॥ भमयेत्यादि-योगद्रय स्पष्टम् ॥११॥

पर्गासपश्चकम्

श्रमृतानागरफञ्जी-च्याघ्रीपर्णाससाधितः काथः । पीत सकणाचूर्ण कासश्वासौ निद्दन्त्याशु ॥ १२ ॥ अमृतेलादौ—फक्षा ब्रह्मपृष्टि ॥ १२ ॥

दशमूर्लीकपायस्तु पुष्करेणावचृर्णितः ।

कासभ्वासप्रशमनः पार्श्वहुच्छूलनाशन ॥ १३॥ कुलत्थनागरव्याघ्रीवासामिः कथितं जलम् । पीतं पुष्करसंयुक्तं हिकाश्वासनिवर्हणम् ॥ १४॥ गुडं कडुकतैलेन भिश्रयित्वा समं लिहेत्। विसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत्॥ १४॥

दरामृलीकपाय इत्यादि जयेदित्यन्त स्पष्टम् ॥ १३---१५ ॥

श्टङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां चूर्ण शटीमरिचशर्करया समेतम् । काथेन पीतममृतावृपपञ्चमूल्याः श्वासं ज्यहेण शमयेदतिदोषमुत्रम् ॥ १६॥

श्वहीत्यादि--श्रग्यादीना चूर्णं काष्ट्रयात् पादिकम्, प्रचेपत्वात् । अत्र पञ्च-मूली महती, वातकफहन्त्रत्वादित्याहुः 11 १६ ॥

> हरिद्रां मरिचं द्रात्तां गुडं रास्नां कणां शटीम्। जह्यात् तेलेन विलिहन् श्वासान् प्राणहरानिष ॥ १७॥ इरिद्रामिलादि—बुशुतस्य। स्पष्टीमदम्॥ १७॥

हिकां हरित प्रवलां प्रवलं श्वासं च नाश्यत्याशु । शिखिपुच्छभूतिपिष्पलीचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥ १८॥ हिकामिलादौ—शिखी मय्रस्तरपुच्छस्य भृतिभेस तथा पिष्पनीचूर्णं च नम मधुना लेखम् ॥ १८॥

> कर्ष कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमधुमिश्रम्। श्राचिराद्धरति श्वासं प्रवलामुद्धंसिकाञ्चेव ॥ १६॥ कर्षमिलादि—कलिफल विमोतकम् ॥ १६॥

हिंस्राद्यं घृतम् हिंस्राविडद्गपूतीकत्रिफलाव्योपचित्रकैः। द्वित्तीरं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजलान्वितम्॥ कोलमातैः पचेत् नद्धि श्वासकासौ व्यपोहति।

श्रर्शोस्यरोचकं गुल्मं शक्तद्भेदं त्तयं तथा ॥ २०॥

हिस्तेलादि — मुशुतस्य । हिस्रा काला श्रोकडा, पूर्तिक लाटाकरअस्य मूलम् । कोलमात्रैरिति यद्यीप कोलशब्देन माणकाष्टक कर्पश्चोच्यते, यदाह हारपाणि 'शाण-काभ्यान्तु जानीयात् कोल वटकद्रच्याम् । ताभ्या कर्प पिचुश्चाच स्वर्ण पाणितल तथा । विडालपदक कोल किञ्चिच्च समुदाहृतम्' इति, तथापि कर्प एवात्र प्राद्य । श्रन्यथा कल्कस्यालपीयस्त्व स्थात् । शृद्धकाश्यपेनाप्येवमुक्तम्, तस्मात् माध्वीय व्याख्येति ॥ २०॥

तेजोवत्याद्यं घृतम्

तेजोवत्यभया कुछं पिष्पली कहुरोहिणी।
भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चितकं शटी॥
सौवर्चलन्त्वामलकी सैन्धवं वित्वपेशिका।
तालीशपत्रं जीवन्तां वचा तैरस्तसिम्मते॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत् तोयचतुर्गुणे।
पतद् यथावंलं पीत्वा हिक्काश्वासी जयेन्नर॥
शोधानिलाशोंत्रहणीहत्पार्श्वरुज एव च॥ २१॥

तेनोवतीत्यादि — चरकस्य । तेनोवती चिवका, भृतिक कचूणम् । हिगु- - पादैरित्येकमागमेपस्य, तेन हिब्बनश्चतारो माणका ॥ २१॥

भागींगुडः

शतं संगृद्य भाग्यांस्तु दशमूल्यास्तथापरम् । शतं हरीतकीनाञ्च पचेत् तोयचतुर्गुणे ॥ पादावशेषे तस्मिस्तु रसे वस्त्रपरिस्नृते । श्रालोड्य च तुलां पृतां गुडस्य त्वभयां ततः ॥ पुन पचेत्तु मृद्धभौ यावल्लेहत्वमागतम् । शीते तु मधुनश्चात षद् पलानि प्रदापयेत् ॥ त्रिकदु तिसुगन्धञ्च पलिकानि पृथक् पृथक् । कर्षद्वयं यवलारं सञ्चूर्ण्यं प्रक्षिपेत् तत ॥ भत्तयेदमयामेकां लेहस्याईपलं लिहेत्।
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चिवधं तथा।
स्वरवर्णप्रदो होष जठराग्नेश्च दीपन ॥
पलेलिखागते माने न देगुणयिमहेष्यते॥
हरीतकीशतस्यात प्रस्थत्वादाढकं जलम्॥ २२॥

<

भागीगुंड दशमूल्यि मिलित्वा । तोथे चतुर्गुण इति श्रक्तद्वेगुण्यात् दशमूलीशत भागीशतन्त्र मिलित्वा जलस्य शरावशत देयमित्याहु । हरीतकीशतस्यात्र
प्रस्थत्वादादक जलमिति वस्यिति, तेन जलस्य षोडशशरावाधिकशरावशतमित्यर्थ ।
वृन्दस्तु हरीतकीशतैकस्य वारिप्रस्थमिदाधिकमित्याह । वृद्धास्तु सम्यक् वीवर्धधानार्थमत्र द्रवस्य देगुण्यमिच्छान्ति, तन्मते जलशरावशतद्वयम् । अनैनेव हरीतक्या
श्रापि पाकः । व्यवहारस्तु प्रायश्चतुर्गुण्यजेलनाकृतदेगुण्येन ॥ २२ ॥

कुलत्थगुड:

कुलत्थं दशमूलञ्च तथैव द्विजयष्टिका।

शतं शतञ्च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्॥

पादावशेषे तिसमंस्तु गुडस्यार्द्वतुलां चिपेत्।

शीतीभूते च पके च मधुनोऽष्टौ पलानि च॥

पद् पलानि तुगाचीर्थ्या पिष्पल्याश्च पलद्वयम्।

तिसुगन्धि सुगन्धं तत् खादेदश्चिवलं प्रति॥

श्वासं कासं उवरं हिकां नाशयेत् तमकं तथा।

प्रतिशतं द्रोणिनियमाज्ज्ञेयं द्रोणित्रयन्त्विह॥ २३॥

इति हिकाश्वासाचिकित्सा।

कुलत्थिमित्यादौ--जलद्रोण इति प्रतिशतिमत्यर्थ , पतत्तु चक्रमतम्, षृन्द-स्ताह 'योगमन्दर्शनादत्र वृद्धवैद्योपदेशतः । जल चतुर्गुण देयमल्पत्वाद्र द्रोण-वारिण । मानमात्रिध्यसवादाद् द्विपल विद्यगन्धित 'इति । योगसन्दर्शनादिति समानद्गन्यप्रमाणकुलत्थगुडान्तरे चतुर्गुणजलसन्दर्शनादित्यथं , इदन्तु न गृद्यते

द्राणपदस्य साझादुपादानात्, तस्य चतुर्शुग्यत्वकल्पने द्रोणपदस्य वैयथ्ये न्यात्। पिप्पलीपलद्रयमान्निध्यात्, लिसुगन्धि च मिलित्वा पलद्रय तथा तन्त्रान्तरमवा-दाच, यथा पतज्जातीयकुलत्थगुडान्तरे 'मधुन कुडव दचात् लिसुगन्धिपलद्रयम् ' इति ॥ २३ ॥

इति हिकाश्वासचिकित्साविवृति ।

अथ स्वरभेदचिकित्सा।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सार्पं समान्तिकम्। कफे सनारकदुकं चौद्रं कवल इण्यते॥ गले तालुनि जिह्वाया दन्तमूलेषु चाश्रित। तेन निष्कृष्यते स्रोष्मा स्वरश्चास्य प्रसीद्ति॥१॥

प्राचोडानदुष्टिसाधम्यौत् हिकाश्वामानन्तर स्वरभदिचिकित्मामाह वात इत्यादि—तैलमत्र कदुच्या कृत्वा कवल कार्य्य इत्याहु । चारो यवचार ॥ १॥

श्राद्ये कोष्णं जलं पेयं जग्ध्वा घृतगुडौदनम् । चीरान्नपानं पिचीत्थे पिवेत् सर्पिरतन्द्रितः ॥ पिष्पर्ली पिष्पलीमूलं मिरेन्नं विश्वभेषजम् । पिवेन्मूत्रेण मितमान् कफजे स्वरसंद्ये ॥ २ ॥

श्राच इति वातस्वरभेदे पिवेत् । सिंपिरिति यद्यपि सामान्येनैवोक्त तथापि सुश्रुते श्रासोक्त वासाप्टत पित्तकासोक्त वा विदारीगन्धोत्पलशारिवेत्यादिनोक्त श्रेयमित्यादुः । पिप्पलीमित्यादि—पिप्पलीत्यादिन्पूर्णं गोमूत्रेण पेयम् । स्वरमञ्चय इति स्वरभेदे ॥ २॥

सरोपघाते मेदोजे कफविद्धिघिरिष्यते ॥ ३ ॥ र्वे चयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ४ ॥

स्तरोपघात इत्यादि—सुश्रुतस्य । कफनदिति कफजस्वरमेदवत् । स्रयजे सर्वजे चापीत्यिपशस्यकात् मेदोअसहज्ञयो परिग्रहः । तन्श्रान्तरे हि अनयोरप्य-माध्यत्वमुक्तम्, यथा 'सीग्रास्य बृदस्य क्रशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजात ।

मेदिस्तन सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति। ' क्रिया चात चयजे चयकामोका सर्वजे तु प्रत्येकदोषोक्तंव मिलित्वा कार्य्या ॥ ३ । ४ ॥

चव्याम्लवेतसकडुितकितिन्तडीक-तालीशजीवकतुगादहने समांशः। चूर्णे गुडप्रमृदितं तिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्थ्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम्॥४॥

चन्याम्लवेतसेत्यादौ — तिन्तिडीक महार्द्रकम्, तुगा वरालोचना, दहन-श्चित्रक । गुडोऽत्र समुदितचूर्णसम । त्रिसुगन्धि प्रत्येकमेकमागापेच्चया चतुर्थारोनेति केचित्, एकमागमम मिलितमित्यन्ये ॥ ॥ ॥ ॥

तैलाक्तं स्वरभेदे वा खदिरं धारयेन्मुखे।
पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां संयुक्तां नागरेण वा ॥
श्रजमोदां निशां धातीं ज्ञारं विद्वं विचूर्णयं च।
मधुसिंपर्युतं लीढ्वा स्वरभेदं व्यपोद्दति ॥ ६॥

तैलाक्तमित्यादि—श्लोकदय स्पष्टम् ॥ ६ ॥

कित्तरुफलिसन्धुकणाचूर्णं तकेण लीडमपहरित । स्वरभेदं गोपयसा पीतं वामलकचूर्णञ्ज ॥ ७॥

कलितरुफलेत्यादि —कलितरुफल विभीतकफलम् । तक्रेथेत्यत्र चुक्रेथेति पाठान्तरम् ॥ ७ ॥

वद्रीपत्रकरकं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम्। स्त्रोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत्॥ ॥॥

बदरीपत्रकल्क वेत्यादि —वदरीपत्र समैन्धव बहुष्टते मृष्ट्वा तेनैव ष्टतेनालोड्य लिहेत् ॥ = ॥

शर्करामधुमिश्राणि श्रतानि मधुरै सह । पिवेत् पर्यांसि यस्योचैर्वदतोऽभिहत स्वर ॥ ६॥

शर्करेत्यादि — सुश्रुतस्य । मधुरैरिति काकोल्याटिगर्गे । पथ साधनामिह चीरपाकपरिमाषया ॥ ६ ॥

कएटकारीघृतम्

व्याद्रीखरसविपकं रास्नावाट्यालगोन्तुरव्योपै । सपि खरापघातं हन्यात् कासञ्च पञ्चविधम् ॥ शुक्कद्रव्यमुपादाय खरसानामसम्भवे। वारिएयप्रगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १०॥

व्याघोत्यादि — यद्यापे इद एत रास्नेत्यादिना कामेऽप्युक्त नथाप्यश्च स्वरभेट-इन्तृत्वप्रतिपादनार्थं पुनरप्युक्तम् । स्वरसस्यामावे काथम्बस्यमाह गुप्कद्रन्यमिन्याटि-पादस्तु चतुर्थमाग । अत्र केचित् स्वरसानुकल्पत्वादद्यावशिष्ट एव काथो युक्ते पुरुत्वा-दिति । पादशब्दस्य मूलवचनत्वेनात्रापि पादशब्दोऽय मूल्मंभूतमाधभागमाह, तेन यद्भागापेखया अष्टगुण्यत्व तावानेव भाग स्थापनीय इत्याहु । अन्य तु पादावशे-पितमित्यत्र मागावशिषतमिति पठित्वा मागशब्दोऽत्राष्टमो माग इत्याहु । व्यवहारस्तु चतुर्थमागेनेव ॥ १०॥

भृद्गराजाद्यं घृतम्

भृद्गराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्दरसैः । सर्पिः सपिष्पलीकं सिद्धं सरभेदकासजिन्मधुना ॥११॥

मृहराजेत्यादि — मृहराजादीना काथश्चतुर्गुण , पिप्पल्या पादिक कल्क सिद्धराति तु छनात् पादिक मधु प्रचेप्यम् ॥ ११ ॥

शति त्वरमेदाचिकित्साविवृति ।

अथारोचकचिकित्सा।

विस्त समीरणे पित्ते विरेकं वमनं करे।
कुर्याद् हृद्यानुकूलानि हर्षण्ञ मनोझजे ॥१॥
वान्तो वचाद्भिरनिले विधिवत् पिवेत्तु
स्नेहोष्णतोयमदिरान्यतमेन चूर्णम्।
कृष्णाविडद्गयनभसहरेखुमार्गीरास्नेलहिङ्गलवणोत्तमनागराणाम्॥२॥

श्रराचकस्याप्यूद्ध्वंगविकारत्वेन स्वरभेदानन्तरमरोचकमाह, वस्तिमिलादि— मनोझजे इति मनोवेदनोहेतुशोकादित । एतच्चोपलच्चण तेन कायादिजेऽपि श्रेयम् । वान्त इत्यादि—सुश्रुतस्य । विधिवत् वान्त कृतवमन , विधिवदिल्यनेन लाजपेया-दिक्रमञ्ज वोधयति तेन वान्त सन् पेयादिक्रमेण जातवलः सन् चूर्ण पिवेन्न सह-सेति। श्रनिल इति कारणे कार्योपचारात् श्रानिलजे, श्रनिलजेऽपि वमनिमह कफ-स्थानगतत्वाद्देदितव्यम् । स्रोहरैतलिमह वातहन्त्रत्वादिति वृन्दिष्पणो, तम्न, धृतमेव युक्तम्, वद्त्यमाणवाग्भटवचनात् । यवभस्य इति यवचार । लवणोत्तम सैन्धवम् । एल एलवालुकामिति कार्तिकः, एलेल्यन्य, युक्तज्ञैतत् वाग्भटसवादात् ॥ १ । २ ॥

पैत्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं लेह ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः। निम्वाम्बु छर्दितवतः कफजे तु पानं राजदुमाम्बु मधुना सह दीप्यकास्त्रम्। चूर्णं यदुक्रमथवानिलजे तदेव सर्वेश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेच॥३॥

गुडान्तुमधुरिरिति गुडान्तुयोगान्मधुरैर्वमनयोगै; अत्र मदनफलयोगोऽपि श्रेय , केवलगुडोदकेन वमनस्यासम्भवात, अन्ये तु मधुरशब्दनाष्टवर्गमाहु॰, अपरे तु मधुरै-रिखत्र मधुकैरिति पठन्ति । निम्वान्तुष्ठदितवत, श्रंत आगमशासनमनित्यमिति आगमामावादत्र केवलश्क्षकार , तेन न अन्दोभद्गः। चन्द्राटस्तु निम्वान्तुवमितवत शित पठित । राजद्रुमान्तुमधुनेति राजद्रुम आरग्वधस्तस्य फलकाथो मधुना सहित इत्यर्थ , कारिकस्तु राजद्रुमशब्देन आरग्वधादिगणमाह, कफाधिनयेऽस्यैवोचितत्वादिति, किन्तु वाग्मेट एव नोक्ष तेन आरग्वधादिगणमहण् न प्रमाणिति । दीप्यकाद्यमिति यवानीचूर्णमत्र प्रचेप्यम् । चूर्णं यद्रक्षमथवेति अनिलने यत् चूर्णमुक्ष कृष्णादिनागरान्त तदेवेह राजद्रुमान्तुना पिवेत् । अयञ्च विधिवीतानुबन्धे सित श्रेयः । सर्वेश्य सर्वकृतमिति प्रत्येकदोषोक्ष मेलायत्वा सर्वदोषजमरोचकमुपाचरेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

कुष्ठसौवर्चलाजाजी श्रकरामरिचं विडम्। धाञ्येलापद्मकोशीरपिष्पलीचन्दनोत्पलम्॥ लोधं तेजोवती पथ्या ज्यूषणं सयवायजम्। स्राईदाडिमनियासश्चाजाजीशर्करायुतः॥ स्रोतमाज्ञिकाश्चेते चन्दार कवत्रहाः। चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वातांद्यक्तस्वजान्॥ ४॥ न्वड्नुलमेता घान्यानि नुलनानत्वानि च। न्वक् च वार्वी यमान्यश्च पिन्यहमलेजोवत्यपि॥ यमानी विन्तिडीक्श्च पश्चेते मुख्योवनाः। स्रोक्षाहर्यमहिनाः सर्वारोचकनारानाः॥ ४॥

हुदेयदि-न्यास्य । ननाये येगाः स्यष्टः । त्वर्टनेयादि-नार् ग्रास्त्रः देवेन्त्री ननं । रम न्येन विद्यार्थर् नर्यान्यपु । द्वाग्रीयन् वदि दुन्-न्योग्योगनः । ४ " ४ "

> श्रन्तीका गुडतेषञ्च न्वगेतामरिचान्वितम् । श्रमक्षव्यन्दरोगेषु शस्तं कवतवारखम् ॥ ६॥

क्रम्बेन्द्रारि-क्रम्बेन्ट प्रवितिहोत्रम्, यहव पुराननं प्रकृतियपुः। सोमानसङ्ख्याने स्थापन्य प्रकृतसम्। ६ १

कारव्यकाकीमरिचं द्वाजावृक्ताम्तवादिमम् । सौवर्षतं गुडं कोंद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ ७॥ कविकार-कार्व कृष्णकेक वृक्षणं नद्द्रंक्यः। शुडेक प्रवा-रमण्डमम् दुढे क्ष्येचडु ॥ ७॥

> त्रीर्युपर्ति त्रिकता रजनीहयझ चूर्लीकृतानि यवयूकविमित्रितानि । जोड्रान्वितानि वितरेन्मुखयार्र्तार्थ-मन्यानि तिक्षकडुकानि च मेपजानि ॥ = ॥

होरीय हि—दुष्ट्राय । सुत्वर स्वयं नित्र व्या सुत्रके वन यं नित्र । इन्सानि तिक्तरहरू नि वा नेप्यानीति वोगादित हैतानि स्वानि, व्युक्तं क्षित स्वत्र स्वं व्यक्तिकारीयको । तिहाद बीहिए संपुक्तन्यन्यं दुनः पुनः । स्ति ए = ६

> विद्चृर्पमधुसंयुक्तो रस्रो दाहिमसम्मवः! श्रमाच्यानपि संहन्यादृरुचि वक्त्रवारितः॥ ६॥

विट्चूर्णेत्यादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥

यमानीषाडवः

यमानीतिन्तिडीकञ्च नागरञ्चाम्लवेतसम्।
दाडिमं वद्रश्चाम्लं कार्षिकाएयुपकल्पयेत्॥
धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम्।
पिष्पलीनां शतञ्चेकं द्वे शते मरिचस्य च॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत्।
जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्षरोचनम्॥
हृत्पीडापार्श्वश्चल्नं विवन्धानाहनाशनम्।
कासभ्वासहरं प्राहि ग्रह्र्एयश्चेतिकारनुत्॥ १०॥

यमानोपाडव. अम्लमिति वदराविशेषख, वराई गुडलक् । पिप्पलीना शतमत्याकृतिमानात् । एव मरिचस्यापि शतदयम् । एतञ्चूर्णं मुखे धृत्वा रानै शनैर्गलाथ करणीयामित्युपदिशन्ति । षाडव इति मधुरान्नयोगस्य सन्ना, यमान्योप-लच्चित. षाडवो यमानीषाडव ॥ १०॥

कलहंस:

श्रष्टादश शिग्रुफलानि दश मिरचानि विशतिश्च विष्पत्य । श्राईकपलं गुडपलं प्रस्थत्रयमारनालस्य ॥ एतद्विडलवण्युनं खजाहतं सुरिमगन्धाद्यम् । व्यञ्जनसहस्रघाति श्चेयं कलहंसकं नाम ॥ ११ ॥

इत्यरोचकचिकित्सा।

श्रष्टादरोत्यादि—शियुफलानि शोमाश्चनवीजानि । सुरभिगन्धाट्य चातु-र्जातकाट्यमित्यर्थे. । स्वरवद्यानाडीशुद्धिकरणत्वेन इसस्वरजनकत्वेन कलहम-सङ्गा ॥ ११ ॥

इत्यरोचकचिकित्साविवृति ॥

अथ छर्दिचिकित्सा।

भिन्न श्रामाशयोत्क्षेशभवा हि सर्वाः श्रुद्धों मता लह्वनमेच तस्मात्। प्राक् कारयेन्मास्तजां विमुच्य संशोधन वा कफापित्तहारि॥१॥

श्रीचकवत् पद्मविधत्वात् तथा छर्षामयेऽप्यक्ते मम्भवादरीचकानन्तरं छर्दिचिकित्तितमुच्यते, श्रामाशयेत्यादि—चरकत्य । श्राम श्रामरम , तस्याशय श्रामाशयः, तत्रेतिकारश दोषाणामुदीरण, तद्भित्वकारछर्दय , किंवा श्रामाशयस्यारायविशेषस्योत्केश इति । हिशक्दी हेती । यसमादामाशयोत्केशेन एते छ्रदेय , श्रामाशयसमुत्ये च रोगे लब्बनमुक्त, तस्मादित्यंथ । उत्सर्गमुक्ता श्रपवादमाह प्राक् कारयेदित्यादिना । यथि वातजायामप्यामशयसम्बन्धन कफीऽप्यिति लद्धन साध्यश्च तथािष वातस्य महात्ययस्याशुकारिणो लक्बनशोधनाभ्या षृद्धिन छ्रत्ययक्रोर स्यादिति भाव । श्रत्र लद्धनमल्दोषविषय, शोधनम्र बहुदोधविषयमिति । सशोधनशब्देनाश्च वमनविरेचनयोरेव श्रहणम् , उत्तरम्यापि वमनस्य वद्यमाण त्वात् । श्रन्ये त्वत्र मशोधनशब्देन प्रतिमागेहरणतया श्रत्यथिहित विरेचनमेव वर्णयन्ति ॥ १ ॥

हन्यात् ज्ञीरोदकं पीतं छिँदं पवनसम्भवाम् । ससैन्घवं पिवेत् सर्पिर्वातच्छिदिनिवारणम् ॥ २ ॥

हन्यादित्यादि — सुश्रुतस्य । चौरोदक्षिस्यत्र चार्ष्टनामिति टल्वण पठिति, न्याचेष्ट च—चीरमधनादुद्भृत धत चौर्धत चीरयुक्त वा धत चौर्धतमिति, किन्तु वाग्मेट पीत तुल्याम्बुना पय इत्युक्त, तेन चीरोदक्षमिति पाठ । नर्मन्थव पिनेत् सर्पिरित्यत्र पक ष्टनम् ॥ २ ॥

मुद्रामलकयूपं वा ससर्पिष्कं ससैन्घवम्। यवाग्रं मधुमिश्रां वा पश्चमूलीकृतां पिवेत्॥ ३॥

सुद्रामलक्षयूष वा ससींपेष्किमिति ससींपेरिष्ट यूपसन्तलनार्थम् । यवाग् मित्यादि---सुश्रुतस्य । पञ्चमूली स्वल्पा इति चक्र , महतीति गयदाम , वात-जायामप्यामाशयसमुरिथतत्वेनानुबन्धस्यस्य कफस्य विद्यमानत्वात् ॥ ३ ॥ पित्तात्मिकायान्त्वनुलोमनार्थं द्राज्ञाविदारीज्ञुरसैस्त्रिवृत् स्यात्। कफाशयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धं

पित्तं जयेत् स्वादुभिरूद्ध्वमेव ॥ ४॥ स्थः शुद्धस्य काले मधुशर्कराभ्यां

लाजैश्च मन्थं यदि वापि पेयाम् । प्रदापयेन्मुद्गरसेन वापि

शाल्योदनं जाद्गलजै रसैर्वा ॥ ४॥ ११५५

पित्तत्यादि — चरकस्य । चूर्णिकृता त्रिशृदिति द्राचादिरसै प्रत्येकसुपयोज्य-मित्याहु । कफाशयस्थमिति आमाशयोद् र्वंभागस्थम । स्वादुमिरूद् ध्वंमेवेति अनन्तरोक्षेद्रीचादिभिरेव । ऊर्ध्वमिति वमनेन हरेदित्यर्थ , अत्रानुक्तमि मदनफल वसनयोग्यतया श्रेथम् , अन्य तु केवलमेव द्राचादिरममाकर्यठ पीत्वा वमन कार्यं-मित्याहु । काल इति मन्यग्वुभुचाकाले । यदि वापि पेयामिति सन्दामि प्रति पेया श्रेया ॥ ४॥ ४॥

चन्दनेनात्तमात्रेण संयोज्यामलकीरसम्।
पिवेत् मान्तिकसंयुक्तं छुर्दिस्तेन निवर्त्तते ॥ ६ ॥
चन्दनञ्चामृणालञ्च बालकं नागरं वृषम्।
सत्यद्धलोदकत्तोद्धः पीतः कल्को वीम जयेत्॥ ७ ॥

चन्दनेत्यादि —चरकमवादात् श्वेतचन्दन श्रेयम् । चन्दनकल्कापेचया चामलकीरमश्चतुर्गुण , पातन्यश्च चतुर्दव इत्युक्ते । चन्दनमित्यादौ — अमृणाल-मुशीरम् ॥ ६ ॥ ७ ॥

कपायो मृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः। छुर्चतीसारतङ्दाहज्वरघः सम्प्रकाशित ॥ = ॥

कषाय इत्यादि--- मुद्र मृष्ट्वा काथविधिना कषाय कार्य्यस्ततो लाज-चूर्णादिप्रचेप ॥ ८ ॥

> हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माचिकसंयुतम्। श्रधीभागीकृते देषि छुदिः चित्रं निवर्तते॥ ६॥

हरीतकीनामित्यादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥
गुद्धचीत्रिफलारिष्टपटोले कथितं पिवेत् ।
चौद्रयुक्तं निहन्त्याशु छुदिं पिचाम्लसम्मवाम् ॥१०॥
गुद्धचीत्यादी—पिजान्लमम्मवामिति अन्लिपत्तमम्मवाम् ॥ १० ॥
काथ पर्पटजः पीत सचौद्रण्छितिनाशन ॥ ११ ॥
कफातिमकायां वमनं प्रशस्तं
सपिष्पलीसपेपनिम्वतीयैः ।
पिग्डीतके सैन्धवसंप्रयुक्तेश्लुद्धां कफामाश्रयशोधनार्थम् ॥ १२ ॥

कफारिमकायामित्याद्यां — मिष्णिनीमर्पपिनम्बतीयैरिति निम्बवस्कलस्याद्धश्चेत काथ पिष्पल्यादीनां प्रचेष इति इन्दिटप्पणी, अन्य तु तीयशम्देनात्र उप्णोदक- मुन्यते, तेन पिष्पल्यादिकस्कमुष्णोदकेन पिवेदित्याहु , वाग्मेटऽप्युक्त कफ्काया विभिन्नम्बद्धापिण्डीतर्स्वर्षेषे । युक्तेन कोष्णतीयेन शहीत, तत्रानुक्तमिष वमन-योग्यत्वेन सैन्धव बोष्यम् । पिण्टीतको मदनफलम् । कफामागयगोधनार्थिमिन कफपूर्णामाशयशोधनार्थम्, कफस्यामागयस्य च शोधनार्थमित्यन्ये ॥ १०॥

विडङ्गित्रफलाविश्वचूर्ण मधुयुतं जयेत्। विडङ्गसवयुग्डीनामथवा न्रेष्ठण्मजां विमम् ॥ १३॥ विडङ्गत्यारी—सव कैवर्णमुलकम् ॥१३॥ सजाम्ववं वा वद्रस्य चूर्णं मुस्तायुतां कर्कटकस्य श्रङ्गीम्। दुरालमां वा मधुसम्प्रयुक्गां लिह्यात्कफच्छिदिंविनिग्रहार्थम्॥ १४॥

सजाम्बनित्यादि--जाम्बन जम्बुफलास्थि । वदरस्य चूर्णमिति वदराम्न-पूर्णमिति चरके पट्यते, तन्मते अन्तवदास्यैव चूर्णम्, अन्ये तु वदरस्य चूर्णमिनि पठित्वा वदरास्थिमन्जचूर्णमित्याहुः । मुस्तायुता कर्कटकस्य मृद्दीमिति दितीयो योग । दुरालमा वेति चुनीयो योगः योगश्रयेऽपि मृद्यु सम्बध्यते॥ १४॥ तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामि भेषजम्। "कृतं गुडूच्या विधिवत् कषायं हिमसंज्ञितम्। " ' ' तिसृष्विप भवेत् पथ्यं माचिकेण समायुतम्॥ १४॥

तर्पेश्वत्यादि—तर्पश तोयाविष्त्रता शक्तव । तिस्रशामिति 'पृथग्वातादि-जानाम्, श्रन्यथा वहुवचननानुपपात्ति.। प्रेतन तिदोपवच्छार्दिहरत्वमस्योक्त भवति, यत पृथग्वातादिच्छार्दिभेषजयुक्तमेव सान्निपातिकच्छार्दिभेषज भवति, चरके तथो-कत्त्वात् । कृतमित्यादि—सुश्रुतस्य । श्रत्रापि पूर्ववत् व्याख्येयम् ॥ १५ ॥

द्रव्यादापेधितात् तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात् । कषायो योऽभिनियाति स शीत समुदाहृतः ॥ पड्भिःपलेश्चतुर्भिर्वा सलिलात् शीतफाएटयो। श्राप्तृतं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम् ॥ १६॥

हिमसिकतिमिति शीतकषायसिकत, तर्वश्मेव कृष्णात्रयपरिमाषामाह द्रव्या-दित्यादि—व्यवहारस्तु प्रायेण भेपआर्द्भपल जलपलद्भयमिति । रसाख्याया पलदय-मिति स्वरमामावे यत्र भेषजचूर्णमुष्णोदके प्रविष्य स्वरमानुकलप क्रियेते तस्मिन् काथे कर्त्तब्ये भेषजस्य पलद्भय दन्ता स्वरसानुकलप कार्य्य ॥ १६॥

श्रीफलस्य गुङ्गच्या वा कषायो मधुसंयुतः। पेयश्कुर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तगृहलाम्युना ॥ १७ ॥

श्रीफलस्येत्यादि —श्रीफला विल्व तस्य मूल श्राह्म, 'विल्वमूल मस्त् श्रेष्म-च्छादिश न च पित्तकृत्' इति गुणपाठात्, एवमन्यत्रापि । गुहूच्या वा कपाय इति गुहूच्या काथ एव शीतल कार्य्य, न तु शीतकषायः, नागार्जुनसवादे तस्योक्ष-त्वात् यथा—' छिन्नरुहाया काथ मुशीत यो नरः पिवेन्मधुना । छार्दे स वात-पित्तश्रेष्मममुत्था निवारयति ' इत्यादि ॥ १७॥

जम्बाम्रपह्मगवेधुकधान्यसेव्यं हीवेरवारि मधुना पिवताऽल्पमल्पम्। छुर्दि प्रयाति शमनं हिसुगन्धियुक्ता लीढा निद्दन्ति मधुनाथ दुरालमा वा॥ १८॥ जम्बाम्रेत्यादि—गवेधुको गुल्मम्, धान्य धान्यकम्, सेव्यसुशीरम्, वारि शीतकपाय इत्यर्थ । पुनर्दुरालमेति स्रोकानुरोधादुक त्रिसुगान्धियोगन योगान्तरस्वाह न पीनस्कत्यस्य ॥ १८ ॥

जातीधात्री

जात्या रस कपित्थस्य पिष्पलीमरिच।न्विन । चौद्रेण युक्त शमयेलेहोऽयं छुर्दिमुल्ब्रणाम् ॥ १६ ॥ जात्या क्यादि—जाती श्रामलको, कपित्थस्येति कपित्थफलन्य । एक प्वाय

योगः ॥ १६ ॥

पिद्धा धात्रीफलं डात्तां स्रकेराश्च पलोन्मिनाम् । दत्त्वा मधुपलञ्चात्र कुडवं सालिलस्य च । वाससा गालितं पीतं हन्ति छुर्दि त्रिदापजाम् ॥२०॥ विद्वेत्यादि—ध्टन्तु अन्यायपेवमा वेयम्, शेष त्याच्यम् ॥ २०॥

एलादिचुर्णम्

पतातवद्गगजकेशरकोत्तमज्ञ-लाजािशयङ्गुधनचन्दनिपण्पत्तीनाम् । चूर्णानि माचिकसितासिहतािन तीद्वा छदिं निहन्ति कफमारुनिपत्तजाञ्च ॥ २१॥ ।

ण्लेत्यादि स्पष्टम् ॥ २१ ॥

कोलामलकमजानौ मिद्यकाविद् सिता मधु। सकृष्णातगृहलो लेहरछुर्दिमाशु नियचछुति॥ २२॥

कोलेत्पादि — कोल बदर तदस्थिमञ्जा आद्या । कृष्णात्यदुल पिप्पती तप्दुल ॥ २२ ॥

श्राप्वतथवत्कल श्रुष्कं द्ग्ध्वा निर्वापित जले। तत्तोयपानमात्रेण छदिं जयति दुस्तराम्॥ २३॥ श्रम्यवेत्यादि स्वष्टम्॥ २३॥ यष्ट्याहं चन्द्रनोपेतं सम्यक् जीरप्रपेषितम्। तेनैवाले। उच पातव्यं रुधिरच्छुर्दिनाशनम् ॥ २४॥
यध्याह्मित्यादी—तेन इति चौरेख ॥ २४॥
लाजाकिपित्थमधुमागिवकोषणानां ।
चौद्राभयात्रिकदुधान्यकजीरकाणाम् ।
पथ्यामृतामिरचमाचिकिपिष्पलीनां
लेहास्त्रय सकलवम्यरुचिप्रशान्त्ये ॥ २४॥
लाजेत्यादी—क्षित्थस्य फलम्, क्ष्म्य मिर्चम्, जीरकोऽजाजी ॥ २४॥

पद्मकाद्यं घृतम्

पद्मकामृतिनम्वानां धान्यचन्दनयोः पचेत्। कल्के काथे च हविषः प्रस्थं छुर्दिनिवारणम्॥ तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम्॥ २६॥ इति छुर्दिचिकित्सा॥

पद्मकष्टते काथ कल्कश्च पद्मकादिपञ्चकस्य ॥ २६ ॥ इति क्षरिंचिकित्साविवृति ।

अथ ८०गाचिकित्सा।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं द्घि शस्यते। रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव च ॥१॥ पञ्चाङ्गकाः पञ्चगणाः य उक्का-

स्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा । पिवेत् सुखोष्णं मनुजोऽल्पशो वा तृष्णोपरोघं न कदापि कुर्य्यात् ॥ २॥

छर्चान्तुष्योपद्रवत्वाच्छर्बनन्तर तृष्णाचिकित्सामाह तृष्णायामित्यादि— वाग्भरस्य । सगुड दधीति गुड प्रचेष्यम् । पञ्चाङ्गका इत्यादि —सुश्रुतस्य । पच श्रद्भावि येषाम् एवम्भूता ये पञ्चगणाः स्वल्पबृहत्तृत्यवल्लीकण्टकीसज्ञकानि पञ्च पज्रमूलानि सुश्रुतोस्तानि तेषु । यम्बु सिद्धमिति अन्तु काथोऽद्यश्य वा । एत च पञ्च योगा , प्रत्येक काथनिधानात , प्रथमो गर्णा विदारीगम्धिदः मीश्रुत । अपण इति स्तोक स्तोकम्, अन्य तु अल्पश्च इति सृष्णाविरोपण व्याख्याय अल्पणम्तृष्णाया रामनम्, महत्यां वमनिस्याहु । तृष्णोपरोध न कदापि कुर्गाणित अपाडणादपः जलदानात् तृष्णाया उपरोध दु य कदापि न कुर्गात, किया किमधं पुनिस्म मल्पादप जल दोयते इत्याह नृष्णियादि, यम्मात् तृष्णाया उपरोध भित प्राणस्याग स्यात् अत पुन्य कदापि नृष्णोपरोध न कुर्यादिस्यधं । एत्वणम्तु 'पियन सुलोप्ण मनुजोऽचिरेण तृषो विमुच्येत हि वातज्ञाया ' इति पठित । याधिनु विवेत सुलोपण मनुजोऽन्रिस् तृषो विमुच्येत हि वातज्ञाया ' इति पठित । याधिनु विवेत सुलोपण मनुजोऽन्त्रिस् जलोपणहरूष्य त्रैष पानिर्मित ॥१ । २ ॥

पिचोत्थिना पित्तहरैर्विपक निहन्ति तोयं पय ण्य वापि ॥ ३ ॥

पित्तात्थिताभित्यादि — सुश्रुतस्य । पित्तहर्रिति काकोल्यादिनि । उत्य-एन्तु 'पित्तवर्गेन्तु इत कप्राय मशकंर जीव्रयुत सुशोत । पीतम्मृषा पित्त द्वारो निह्नि सीर श्रुत वाष्यथ जीव्नीयैः' इति पठति, व्यानष्टे च पित्तप्तवंगीरिन्युत्प-लादिभि काकोल्यादिभिक्षेति ॥ ३ ॥

काश्मर्थ्यशर्करायुक्तं चन्दनेश्शीरपष्मकम्। द्राचामधुकसंयुक्तं पित्ततर्पे जलं पियेत्॥ ४॥

काष्ट्रमर्थ्यादिमधुकान्तं एको बेह्म । शीतकवायाऽयम । अन्य नु ५ पा कृत्की जलेन पेय स्त्याह्य ॥ ४ ॥

पित्तजायान्तु तृष्णायां पकोहम्वरजो रसः। नत्काथो वा हिमस्तद्वच्छारिवादिगणाम्बु वा ॥४॥

पित्तज्ञायामित्यादि — वाग्मटस्य । पकोडुम्बरज इत्यपपाठः सुभुनवनना ए । इस इति शातकषाय । तद्वदिति हिम इत्यर्थः शारिवादिगणस्न वाग्मटोकः ॥४॥

स्याजीवनीयसिद्ध चीरघृत वा पित्तजे तर्पे ॥६॥

म्यार्जीवनीयस्यादि—चरकस्य । चीरश्रतिमिन चीरोत्य श्रतम । पित्तजे तर्प इति वातजे चेत्यर्थ , न तु भक्षमैजे, तेषामस्भितत्वात् . किंवा अमृत्रितानामिप उन्ह जाना गुल्मानामिभ्याने यो न्याय म प्वात्राप्यनुमरणीय इति ॥ ६ ॥

तद्दद् द्वाचाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुनं नोयम् ॥७॥

नद्दित्यादी—नीय शीतकषायमित्याहु चक्रस्तु तद्ददित्यत्र पैत्त इति पठित, स्याचष्टे च पैत इत्यन्न तर्ष इति मम्बन्ध इति ॥७॥

सशारिवादौ तृणपञ्चमूले
तथोत्पलादौ मधुरे गणे वा ।
कुर्यात् कपायांश्च तथैव युक्तान्
मधूकपुष्पादिषु चापरेषु ॥ = ॥

मशारिवेत्यादि — सुश्रुतस्य । सप्तमी षष्ठथर्ये, तेन शारिवादिगणचतुष्टयस्य यापाय कुर्य्यादित्यर्थ । मधुरो गण काकोल्यादि ; मधुरो गण कृत्यत्र प्रथमो गण कृति इत्वर्श पिठत्वा विदारीगन्धादिगण इति व्याचष्टे, तन्न प्रामाणिक, वहुिभरस्थास्यातत्वात् । अनेन गणचतुष्टयेन चत्वार कथायाः कार्याः इति चत्वार एव योगा । तथेव युक्तानिति शीतकषायविधिना कृतान्, सुश्रुते कषायप्रसावे अस्य वचनस्य पठितत्वात्, इत्वणस्तु तथेव युक्तानित्यत्र यथेरितान् वेति, पूर्वोक्तिविधानेन एतेन जल दत्त्वा प्रवाते निशि वासन कुर्यात् । मधूकपुष्पादिषु चापरेष्विति एषाञ्च शीतकपाय कुर्यादित्यर्थ । मधूकपुष्पादीने तु मधूकरोभाज्ञनको-विदारप्रियक्रपुष्पाणि चत्वारि रक्तिपिचन्नत्वेनेह पठितानि, किंवा आदिशब्द प्रकार-वाची, तेन मधूकपुष्पद्राचाकाशमर्य्यकर्त्र्राणीति चत्वारि ॥ = ॥

विल्वाढकीधातिकपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ॥ ६ ॥
हितं भवेच्छ्रद्रेनमेव चात्र
तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ १० ॥
सजीरकाएयार्द्रकश्टक्तवेरसौवर्वलान्यर्द्धजलप्लुतानि ।
मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति

पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥ ११ ॥

विल्वाढकीत्यादि—विल्वस्य मूलम्, आढको तुवरी । सिद्धमित्यत पर जल-मिति शेष , जलमिति षढद्गविघानेनेति चक्र , अन्ये काथमाहु । अत्र सुश्रुतटी-काकृते। धातकीपञ्चकोलस्थाने धान्यकपञ्चमूलमिति पठिन्त, पञ्चमूल स्वल्पमित्याहु , मर्वासु तृष्णासु पित्तमम्मवत्वेन पञ्चकोलमनुचितमित्याहु । दर्भ चल्लक । निम्त्रप्रस्तोद्यक्तेनिति निम्दन्तगुद्भवक्षायेनेनि चक्र निम्द्रपुराक्षायेनेत्यक्ण निमन् पह्नवक्षायेनेनि वेद्यट , युक्तवीत् नन्त्रान्तरस्वादात् । आदेक्यद्ववेरसंविचलान्ना-त्यर्ग आदिन्तात्, आदंक्यद्ववेरम् आदंक्तनेन । जीरकादिकञ्च मीरमकद्वन्त्रमाय-कर्त्क देयम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

> चते।ियतां रुग्विनिवार्णेन जयेद्रसानामस्जश्च पानैः॥ १२॥ चयोत्थितां कीरजलं निहन्या-न्मांसोदकं वाथ मध्दकं वा। गुवैन्नजामुलिसनैजेयेनु

चयादते सर्वकृताञ्च रुप्णाम् ॥ १३ ॥

षवोशिवामिन्याहि—सार्दशोक मुश्रुनस्य । गरिवनिवारणैनिन व प्रवेहनः-निर्वापचन काग्योक्केशद तलाब्यंस्या क्टना नृष्या गाम्यर्कत्वर्थ । मान-मिति मासरकानाम् । अस्यव्य पानिरिति एए।दिरकस्य सवस्वस्य पानिरित्यर्थ प्रवासर्थगोपितनुतौ ससा देवन् । स्रवोधिनानिन्यादौ । स्रोदन्यमिति सार-मिश्रित न्लामिति, चीरवलिमत्वत्र चीरब्रुतिमिति टल्व्य. पठिन, व्याचेष्ट न चौरेत्य पत चीरसहित वा प्रतिमिति । मामादकमिति माम्यम एव, मन्य नु मापोठकमिति पठित्वा मापसूपमिति व्याचचते । मब्दक वेति मधुमिशिनमुठक-मित्पर्थः । उटकन्नात्र मेन्द्र तदनुकारि म्निष्ठनुटक वा बाकसवाटात् । न 🖘 निरोष , अतुत्योपयोगात् - चक्र हि चुश्रुते मध्यन्तुनी मधुर्नापेपी मानतस्तुन्य नार्शामादिति । नतु चयाया वृहर्यमेवोचिन मध्दक्तु रूप्पमिनि तत् कथमन्न प्रयुक्तमिति (नेव. चयनापि दोषत्रयेख बन्यते, यंदुक ' रमक्याट या चयमम्बना मा ता मनियातादिति केचिदाहु. रे दित । तत्र यदापि कफिपतं वा ऋषिकं तदा मध्रक देयन् । डल्वएस्तु मध्रकमेवेति पठित्वा व्यावष्टे यष्टिमधुद्धत्यिति, नन्न युक्त, चरक्संबाटाद । रक्षिखनिगित वमनैः । न केतल गुर्वस्रजामेन वर्मनर्वयेद किन्तार्हे, मन्दामपीत्याह वयाद्वे उन्यादि । चयोत्पन्नापि म्वंदीपारच्या. नस्या वीराषातुत्वाद् वनन न कार्यंन् । संवक्तामिति स्वेटोपस्तामामनामिति कार्तिक.. अन्ये हु चयाहते सर्वकृतान्तु तृष्या इति पटन्ति, द्ययना विहाय अन्या. नवान स्तुम्या वातपिचक्रजामगुर्वर्थे इपान्तुम्या वननैजेपेटिति ब्याल्यानयिन । मन्मिन् पत्ते गुर्वन्नजाया पृथनस्मित्रानं विशेषार्थम् । १२ ॥ १३ ॥

लाजोदकं मधुयुतं श्रीतं गुडविमर्दितम् । काश्मर्थ्यश्रकरायुक्तं पिवेत् तृष्णार्दितो नरः॥ १४॥

लाजोदकिन्त्यादि—लाजचूर्णमानितमुदक शीतकषायो ना । काश्मर्थ्यं गाम्भारोफलम् ॥ १४॥

श्रतिकत्तदुर्वलानां तर्षं शमयेन्द्रणामिहाशु पयः।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मघुरो रसो हृद्यः॥ १४॥
अतिरुवेत्यादि—मधुरगणसाधितेनात्र सन्यक्षधुरता क्षेया॥ १४॥
श्राम्रजम्बुकषायं वा पिवेन्मात्तिकसंयुतम्।
छुदि सर्वो प्रसुद्धित तृष्णाश्चेवापकषीति॥ १६॥
भाष्रजम्बुकषाय वेति भाष्रजम्बोः फलासि उच्यते; पह्नवक्षायोऽपि युन्यते,
'जन्वाभ्रपन्नवश्रत चौद्ध दस्ता सुशीतलम्' इति पठितत्वात्॥ १६॥

वटश्चद्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु। पिवेत् तग्इलतोयेन च्छर्दितृष्णानिवारणम्॥१७॥ वटेलादां गुक्नदीना चूण्म्॥१७॥

गोस्तनेचुरसः चीरयष्टीमधुमधृत्पत्तैः। नियतं नस्यनः पानैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ १८ ॥ चीरेचुरसमाध्वीकै. चौद्रशीधुगुडोदकैः। चुचाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तानुशोषनिवारणाः॥ १६॥

गोस्तनेत्यादि —गोस्तना द्राचा। एमि प्रत्येक नस्यम् । माहेश्वरे तु

द्राचादित्रय द्राचायप्टिमधुनीलोरपल कल्कीकृत्य प्रविष्य मधु च प्रक्तिप्य सर्वमालोड्य

पेयमिति । तथा वन्त्यमाणचीरादिमि प्रत्येक गण्डूषा , वहुवचननिर्देशात् ।

यद्यपि तातुरोषि एत निषिद्ध, यदुक्त 'तृष्णाच्छि रिपराताश्च गर्भिण्यस्तातुरोषिण ।

न पिनेयुर्षृतम् र हति तथापि चरकमवादादत्र बलवतो वृष्यान्नयुक्त एतपान

नोध्यम् , अतो विशिष्टविधित्वाच विरोध , यथा वलवाश्च तातुरोषेऽपि पिनेद् एत

वृष्यमन्नमभ्यस्थेचिति, किंवा वातोल्वणावस्थायामेतद् एतपान वोध्यम् । तातुरोषिश्च

नृष्णाप्रकार एव, तेनेह सङ्गतमस्याभिषानम् ॥ १८॥

तालुशोषे पिवेत् सर्पिंधृतमग्रहमथापि चा॥ २०॥

मूच्छीच्छिदितपादाहस्रीमचम्रशकर्शिताः। पिषेयु शीतलं वारि रक्तपित्ते मदास्यये॥२१॥

ष्टतमराडीमिति एतस्योपिरमाग , अतएव एतस्योपिर स्त्यानो भाग इति काम-चिकित्सिते चक्रेयाप्युक्त । श्रीकराठस्तु एतस्योपिरच्छन्नभाग एतमराडिमित्याहु । मुच्छेत्यादि—स्पष्टम् ॥ २० ॥ २१ ॥

धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् । तदेवालवणं पीतं मुखशोपहरं परम् ॥ २२ ॥ धान्याम्लमिलादि—धान्याम्ल काजिकम् ॥ २२ ॥ वैशद्यं जनयत्यास्य सन्द्धाति मुखं व्यणान् । दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगगडूपधारणम् ॥ २३ ॥ सन्दशति मुखे व्रणानिति रोपवतीलर्थं ॥ २३ ॥

कोलदाडिमवृत्ताम्लचुकीकाचुकिकारसः।
पञ्चाम्लको मुखालेप सद्यस्तुप्णां नियन्छति॥ २४॥

कोलेखादौ — चुक्रीका चान्नेरी, चुक्रिकेति चुकार इति ख्याता । गुरमक्षेप इति गुखनुहरे लेप , कपोलादौ लेप इति तु निश्चल ॥ २४॥

वारि शीतं मधुयुतमाकराठाद्वा पिपासितम् । पाययेद्वामयेचापि तेन तृष्णा प्रशास्यति ॥ २४ ॥

नारि शीतिमित्यादि—पिचतृन्यायामय योग । श्राक्रयहतोयपानादनु किञ्चित् मधुपानिमत्युपदिशन्ति वृद्धा ॥ २५ ॥

वटश्रक्षामयसौद्धलाजनीलोत्पलैर्डढा।
गुटिका वदनन्यस्ता चिप्रं तुप्णां नियच्छति ॥ २६ ॥
श्रीद्नं रक्षशालीनां शीतं माद्धिकसंयुतम्।
भोजयत् तेन शाम्येजु छुर्दिस्तृष्णा चिरोत्थिता ॥ २७ ॥
वय्रोक्षलादि—वय्राको वय्यरोह , श्रामम जुहम्। मधु तु यावता कार्ठना गुहिका भवति तावन्मात्र देयम्। श्रोदन रक्षशालीना शीतमिति मधस्क-पानीयमकम् ॥ २६ ॥ २७ ॥

पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन्।

न लभेत चेदाश्वेव मरणमामोति दीर्घरोर्ग वा ॥ तृषितो मोहमायाति मोहात् प्राणान् विभुञ्जति । तस्मात् सर्वास्ववस्थासु न कविद्वारि वार्य्यते ॥ २८ ॥ ' इति तृष्णाचिकित्सा ।

प्रमह्म तृष्णाया जलस्याप्रदाने दोषमाह पूर्वामयेत्यादि—-पूर्वामयातुर. सन् ज्वरस्किषित्तादिरोगिकिष्ट सन्। दीन इति तृष्णापीडितत्वेनैव क्लान्तमना । कथ वित्रयत इत्याह तृषित इत्यादि ॥ २८ ॥

इति तृष्णाचिकित्सा-विवृति ।

अथ मुर्च्छाचिकित्सा।

सेकावगाही मण्यः सहाराः

शीताः प्रदेहा व्यजनानिलश्च। शीतानि पानानि च गन्धवन्ति ' सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ १ ॥

चृष्णाया मोहो मवतीत्यनन्तर मोहचिकित्सामाह, नेकेत्यादि—सुश्रुतस्य । मण्यो मुकास्फटिकप्रभृतय ते च सहारा हारारे।पिता इत्यर्थ । पानानि च गन्धवन्तीति कर्पूरादियोगात् सुरमीणि पानीयानीत्यर्थ । मनीसु मूर्च्छांस्वनिवारि-नानीत्यनेन वातकफक्कताया मूर्च्छांयामपि हेतुप्रत्यनीकचिकित्साक्षरणे वारणाहिता, एत शीतिविधयो व्याधिप्रत्यनीकतया पित्तानुवन्धाच न वारणीया इति वर्शयति ॥ १॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पर्यासि सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च । तथा यवा लोहितशालयश्च

मूर्च्छासु शस्ताश्च सतीनमुद्राः ॥ २ ॥

वर्गे मधुर इति काकोल्यादि । सदाडिमा इति—दाडिमाम्लमहिता इत्यर्थः। मतीनो वर्त्तुलकलाय ॥ २ ॥ यथादोषं कपायाणि ज्वरघ्रानि प्रयोजयेत्। रक्तजायान्तु मूच्छाया हिनः शीतिकयाविधि ॥३॥

यथादीय कपायाणि जनरामानि प्रयोजेथदिति वातादिम् च्छीस यथाकम वातादि-कपायाशि यानि तानि प्रयोजयेदित्यथै । रक्षजायामिति रक्षदर्शनजायाम् ॥ ३ ॥

मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् । विपजायां विषम्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ मद्यजायामिति मद्यसेवनजायाम् ॥ ४ ॥

ू कोलमज्जोपणोशीरकेशरं शीतवारिणा। पीतं मूच्छी जयेत् लीद्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम्॥४॥ कोलमञ्जादी--जपण मरिचम् ॥ ५ ॥

महौषघामृताचुद्रापौष्करत्रन्थिकोद्भवम् । पिवेत् कणायुतं काथं मूर्च्छायेषु मदेषु च ॥ ६॥ शतावरीवलामूलद्रात्तासिद्धं पयः पियेत्। ससितं भ्रमनाशाय वीजं वाट्यालकस्य वा ॥ ७ ॥ पिवेद् दुरालभाकाथं सघृतं भ्रमशान्तये । त्रिफलाया प्रयोगो वा प्रयोग पयसोऽपि वा ॥ = ॥ मद्दीपथेत्यार्टा-चुद्रा करटकारी, ब्रान्थिक पिष्पलीमूलम् । अम स्मृति-अरो। मेाहश्रकवद्श्रान्तिश्च । प्रयोगोऽम्याम ॥ ६--- ॥

रसायनानां कौम्भस्य सर्पियो वा प्रशस्यते ॥ ६॥ मधुना इन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडाईकं प्रातः। सप्ताहात् पथ्यभुजो मद्मूच्छ्रीकासकामलोन्मादान् ॥१०॥ कौम्म माधिदेशनपात्मकन्, अन्ये तु ' स्थिन वर्षशत क्षेष्ठ काम्म माधिरगद-

च्यते । १ ॥ १०॥

श्रक्षनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च । स्वीभिस्तोद्नं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ ११॥ अअनानीति तीक्षान्यअनानि अपस्मारोक्षानि । अवपीडा नासिकाया निर्गुयट्यादिरसा अन्योज्य वे दीयन्ते । धूमा वैरेचनधृमा । प्रथमनं चूर्णनस्यम्। मन्तित्यादी पोडा नखानार शित नखमांसवीर्मध्ये पोडनम् ॥ ११ ॥
खुञ्चनं केशरोम्णाञ्च दन्तैर्दशनमेव च ।
श्रात्मगुप्तावधर्पश्च हितास्तस्याववोधने ॥ १२ ॥
इति सूच्छीचिकित्सा ।

भात्मग्रुप्ता श्कशिम्बी ॥ १२ ॥ इति मूच्छोचिकित्सा-विवृति ।

अथ मदात्ययचिकित्सा।

मूर्च्छात्रन्मदात्ययम्यापि मद्यजन्यत्वात् मूर्च्छानन्तर मदात्ययचिकित्नामाह । मद प्रवात्ययकारको मदात्यय , किंवा मदशस्त्रेनेहे मदहेतुत्या मद्यमुच्यते, तेन कृतोऽत्ययो मदात्यय । मन्ध इत्यादि । द्रवेणालोखितशक्तवो मन्धा , द्रवश्चेह वर्न्गादीना प्राण्ण । श्रम्लीका तिन्तिखीफलम् । छन्दोऽनुरोधाद् हस्व । मतीनिति मतानो वर्त्तुलकलाय । मतीनमुद्रमिश्र वेति पाठ छागरमस्य विशेषण्, चरेक हि एनइचनात् पूर्व छागरसमित्युक्तम् ॥ १ ॥

सतीनमुद्दमिश्रान् वा दाडिमामलकान्वितान्। द्रान्तामलकखर्जूरपरूपकरसेन वा। कल्पयेत् तर्पणान् यूपान् रसांश्च विविधात्मकान्॥२॥

मयमित्यादि—सीवर्चलन्योपन्तु लवखकडुत्वमात्रकारक देयम् । किञ्चित्तल-मष्टमागिकमित्याहु ॥ २ ॥

> मद्यं सौवर्चलव्योपयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् । जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ३ ॥ मुद्रयूप सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः।

पित्तपानात्यये योज्यः सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ ४ ॥
पानात्यये कफोद्भृते लहुनञ्च यथावलम् ।
दीपनीयौपघोपेतं पिवेन्मद्यं समाहित ॥ ४ ॥
सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ।
श्रामिः क्रियामिर्मिश्रामि शान्ति याति मदात्यय ॥
न चेन्मद्यक्रमं मुक्त्वा ज्ञीरमस्य प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥
अद्वर्ष स्वादि—स्वादुरित्यनेन सस्कारार्थं कटुद्रच्योपयोगोऽत्र न कार्यं
हित दर्शयित ॥ ३—६ ॥

लङ्घनाद्यैः कफे चीगे जातदीवैल्यलाघव । श्रोजस्तुल्यगुर्णं चीरं विपरीतश्च मद्यतः ॥ ७ ॥ यस्यामवस्थाया चीरप्रयोग कर्जव्यस्तामाह लङ्घनादिशिति—आवश्यदात् शोधनादीना ग्रहणम् ॥ ७ ॥

चीरप्रयोगं मद्यं वा क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥ द ॥ चीरप्रयोगमित्यादि — एतद्दवनात् पूर्वं पयसा च हते रोगे वले जाते निव-चेंबेदिति वचनयन्ति, तेनात्र चीरप्रयोगमित्यत्र, पूर्वोक्तेन निवर्त्तयेदित्यनेन सम्ब-न्थात् चीरप्रयोग क्रमेण निवर्त्तयेत्, मध्य क्रमेणाल्पाचरेदित्यर्थ ॥ द ॥

पुनर्नवाद्यं घृतम्

पय पुनर्भवाकाथयप्रीकल्कप्रसाधितम्। घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानदृतौजसः॥ ६॥ पय पुनर्भवाकाथत्यादी—चीर ध्तममन् , काथसिग्रवायतुर्गेको वेत्याहु ॥ ६॥

अप्टाइलवणम्

सौवर्धलमजाज्यश्च वृत्ताम्लं साम्लवेतसम्।
त्वेगलामरिचार्द्धाशं शर्कराभागयोजितम्॥
दितं लवणमण्डङ्गमग्निसन्दीपनं परम्।
मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशोधनम्॥ १०॥
मौवर्चलत्याटि—अत्र मौवर्चलादीना सममागता, लगेलामरिचानाः

मेकमागापेचया प्रत्येकमर्द्धमागिकत्वम्, शर्करामागोऽपि सीवर्चलोधकनमद्रव्य-सम ॥ १०॥

> चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं विश्वदीप्यकम्। चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम्॥ ११॥

चन्यभित्यादौ---पृरक वीजपूरस्य फलत्वगिति निश्चल. । दीप्यक यमानी ॥ ११ ॥

जलाप्लुतश्चन्द्नरूषिताङ्गः
स्नग्वी समक्षां पिशितोपदंशाम् ।
पिवन् सुरां नैव लभेत रोगान्
मनोमतिझञ्च मदं न याति ॥ १२ ॥

मध येन प्रकारेण विकार न जनयेत् तदाह जलेत्यादि—सुश्रुतस्य । चन्दनेन रूपित लिप्तमङ्ग यस्य । पिशित मास उपदश मस्यो यस्या सा तथा । मनोमिति झिंमिति विशेषणात् द्वितीयादिमद न प्राम्नोति, प्रथमन्तु मनोऽनुप्यातक लमत एवेल्थ्य ॥ १२॥

द्राचाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् तत् पानविभ्रमहरं मधुशर्कराख्यम् ॥ १३॥

द्राचेत्याटि--- सुश्रुतस्य । द्राचाटिमि पानक स्दराखानुमारेख कार्यम् ॥१३॥

पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धातीरसेन वा।
सिर्पः कल्याणकं वापि मद्मूच्छ्राहरं पिवेत् ॥ १४ ॥
सच्छ्रिद्मूच्छ्रातिसारं मदं पूगफलोद्भवम् ।
सद्य प्रश्नमयेत् पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ १४ ॥
वन्यकरीपद्याणाजलपानाञ्चवणमत्त्रणाद्वापि ।
शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णंच्जा शर्कराकवलात् ॥ १६ ॥
शङ्खचूर्ण्रंरजोद्याणात् स्वल्पं मदमपोहति ॥ १७ ॥
कूप्माग्डकरसः सगुड शमयति मदमाश्च मदनकोद्रवजम् ॥१८॥

धौस्तूरजञ्च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ १६ ॥ इति मदात्ययचिकित्सा ।

इति मदात्ययचिकित्सा-विद्यति ॥

श्रथ दाहचिकित्सा।

यत् पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत् सर्वमिण्यते ॥ १ ॥ शतधौतघृताभ्यक्तं दिखाद्वा यवशक्तुभि । कोलामलकयुक्तेर्वा धान्याम्लैरिप वुद्धिमान् ॥ २ ॥ छादयेत् तस्य सर्वाङ्गमारनालार्द्रवाससा । लामज्जेनाथ श्रुक्तेन चन्देननानुलेपयेत् ॥ ३ ॥ चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालचृन्तोपचीजित ॥ ४ ॥ सुप्याद्दाहार्दितोऽममोजकदलीदलसंस्तरे ॥ ४ ॥ परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने । शस्यते शिशिरं तोयं दण्णादाहप्रशान्तये ॥ ६ ॥

मदात्ययवदाहस्यापि मयपानजन्यत्वात् मदात्ययाधिकार एव दाहचिकित्सा । बिद्यादि-कोलेत्यादि द्वितीयो योगः, अत्रापि दिद्यादिति योज्यम् । लामज्नमु-राँगर, शुक्त सन्धानविरोप , तालवृन्त तालपत्रनिर्मितन्यजनम् ॥ १-६॥

चीरैं चीरिकपायैश्च सुशीतैश्चन्द्नान्वितः। श्रन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैरन्यैश्च श्रीतलें ॥ ७॥ 1

चोरिकपायो, वटोडुम्बरादिकाथ । चीरादिकब्रैतत् पानपरिषेकादी योज्यम् ॥ ७॥

कुशाद्यं तैलं घृतश्च

कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम् । तैलं चृतं वा दाहन्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ ८॥

कुगादीत्यादि — कुशादिपञ्चमूल तृष्णपञ्चमूल, तश्च सुश्रुतीक्त कुशकासनलदर्भ-कार्यडे सुमूलरूपन् । अत्र शालपणीशच्देन विदारीगन्धादिगणस्य ग्रहणमिति वृन्द-दिप्पणी, अन्ये तु शालपण्यीदिपञ्चमूलस्य ग्रहणमित्याहु । निश्चलस्त्वादिशन्दा-भावात् शालपणीमात्रस्वैष ग्रहणमित्याह । जीवकाणनेति जीवकाणप्रवर्गेषा, जीव-काणप्रवर्गश्च जीवकर्षमकमेदामहामेदाकाकोलीचीरकाकोलीऋदिवृद्ध्य, एव सर्वत्र सुश्रुतयोगे जीवनीयाप्टकन् । चरकयोगे पुनरेव ऋदिष्ठदिरहित्तमाषपणीमुद्गपणी जीवन्ती-मधुकमहित जीवनीयप्रश्वतं श्चेयम् । अत्र कुशादिशालपणीभिः काथ , जीवकाणने कल्कः । अन्य तु कल्ककाथावनिदेशे गणात् नस्तात् समावपेत् । इति वचनात् मेंबरेव कल्ककाथाविसादुः ॥ = ॥

फिलनी लोधसेव्याम्बु हमपतं कुटन्नटम् । कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ६॥

फिलिनीत्यादी—फिलिनी प्रियंतु । मेन्यमुरारिन्, अन्तु नालकः हेम नाग-केगर, पत्र तेज पत्र, कुटलट कैन्तमुस्तकः, कालीयक कालीया इति ख्यान, पीत-काष्ठ, गन्धद्रच्यविशेष , अतचन्द्रनमिति काश्चित्, कालीयककाथश्च पेपणार्थमिति वृद्यन्ति ॥ ६ ॥

हीवेरपद्मकोशीरचन्टनस्रोद्धारिणा। सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणी दाहार्दितो नरः॥ १०॥ इति दाहचिकित्सा।

हिनिरेत्यादौ-चोद चूर्णम् । एषा चूर्णानि शीतलजलेन मिश्रयित्वा अवगा-इन कार्म्यम् ॥ १०॥

इति टाइचिकित्मा-विवृति ।



अथोन्मादचिकित्सा।

उन्मादे वातिके पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम्।
पित्तंत कफडे वान्तिः परो वस्त्यादिक क्रमः॥१॥
यचोपदेक्यते विञ्चिदपसार्यचिकित्सते।
उन्मादे तच कर्त्तव्यं सामान्यादेतुदूष्ययो॥२॥

यद्यपि मदालयस्य उन्मादित्दृशालेन तथा पूर्वोक्षरीत्या च मदालयानना-सुन्माददाहादेव बकुमुचितो, तथापि च्चिकटाहन्यायेन टाहमभिषाय उन्मादिकि-लिनतुच्यते उन्माद दलादि—परो बल्ल्यादिककम इति पश्चात् केहबितिनिक्षण-शिरोविरेचनात्मकः कम कार्यः। चरकेऽप्युक्तः निल्ह्यः केहबितः शिरमश्च विरेचनम्। तन कुर्य्यात् यथादेष तेषा मृयन्त्वमाचरेत्' इति । मामान्यादेतुदृष्य-प्रोरिति, उन्मादापसारयोहेतुर्मन उपवानादि दृष्यञ्च हृदय ममानमिन्यकः। नामा-न्याहोषदृष्ययोगिति केचित् पठनिन ॥ १॥ २॥

त्राह्मीकृष्माएडीफलपड्त्रन्थाराह्मपुष्पिकाखरसा । उन्मादहतो दृष्टा पृथगेते कुष्टमघुमिश्राः ॥ ३ ॥ दशमूलाम्बु सघृनं युक्तं मांसरसेन वा । ससिद्धार्थकचूर्णं वा पुराणं वैककं घृतम् ॥ ४ ॥ माह्मीसाद्यक्षवारो योगा.।कृष्मायक्षीकनमत्र पुराय वार्षाम्याह ॥३-८।

उत्रगन्धं पुराणं स्थाइशवर्षस्थितं घृतम्। लाज्ञारसनिमं शीतं प्रपुराणमन परम्॥४॥

पुगणपतलस्याञ्चाह स्थानन्यभित्यादि—न्यरकस्य । चरकेटीकाष्ट्रतस्तु केचिन् रम स्रोकमनापं बटन्ति, केचिटक्तवर्षातीन प्रनं पुगणिमिति अवति तन्त्रान्तरमनाटात् ॥ १ ॥

> श्वेतोन्मचोत्तरिंड्मूलसिद्धस्तु पायसः । गुडाज्यसंयुतो हन्ति सर्वोन्मादांस्तु दोपज्ञान् ॥ ६ ॥

मेतेत्यादि—मेतोन्मच नेतत्युत्त्त्त्वन्य उत्तरदिनि स्थिन मूल आद्यम । महेमान्तु उत्तरदिनि न्यितं धवलयुत्त्र्म्न पिष्ट्वा पल १, जुद्रत्तरहुत पन ४, दुग्ध गराव ४, पायम माध्य, तदनुरूपे गुडश्ते टक्ता खावमिलाह ॥ ६ ॥ उन्मादे समधुः पेय शुद्धो वा तालशाखज । रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलिमिष्येत ॥ ७ ॥

उन्माद इत्यादि—शुद्ध इति केवल.। तालशाखन इति छान्दसत्नात् इत्व । रम इति छद , तेन कीमलतालशाखाभवी रम मधुप्रचेषेण, शुद्धी वा मधुना विनापि ॥ ७॥

> श्रपक्षचटकीन्तीरपीतोन्मादविनाशिनी। वद्धं सार्पपतैलाक्समुत्तानञ्चातपे न्यसेत्॥ =॥

श्रपकचटकीति श्रामचटकी कल्कीछूल । बद्धमिलादि । एतच स्रोतोविशुर्ध्य-थमुद्रेजनार्थेछ ॥ = ॥

सिद्धार्थको हिंद्रु वचा कर औ देवदारु च।
मिश्रिष्ठा त्रिफला श्वेता कट मीत्वक् कटु लिकम् ॥
समांशानि प्रियद्गुश्च शिरीषो रजनी द्वयम् ।
यस्तमूत्रेण पिष्टो ऽयमगद पानमञ्जनम् ॥
नस्यमालेपनश्चेव स्नानमुद्धत्तेनं तथा।
श्रापस्मारिवषोन्मादकृत्यालद्दमी ज्वराषद्दः॥
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते।
सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगोमूतं तदर्थकृत्॥ ६॥

निद्धार्थक इत्यादि — श्रव करअद्वयस्य विगत्याहु, श्रेता श्रेतापराजिता, कटमा लताफटकीति ख्याता, श्रन्ये तु करइ इत्याहु, शिरीपस्य फलम्। श्रगद् इति मयोगविषहर, कृत्या श्रमचार, राजद्वारे त्र शस्यते वशीकरणत्वात् । एतेनेति निद्धार्थकादीना कल्केन ॥ ६ ॥

ज्यूषणाद्या वर्तिः ज्यूषणं हिङ्गुलवणं वचा कटुकरोहिणीः शिरीपनक्रमालानां वीजं श्वेताश्च सर्पपाः॥ गोमूलिपिष्टेरेतैर्वा वर्त्तिनेंद्वाञ्चने हिता। चातुर्थकमपस्मारमुन्मादश्च नियच्छ्नि ॥ १० ॥
श्रृद्धस्याचारिव स्रंशे तीच्णं नावनमञ्जनम् ।
ताडनश्च मनोवुद्धिस्मृतिसवेजनं हितम् ॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्पणं भयम् ।
विस्मयो विस्मृतर्देतोर्नयन्ति प्रकृति मनः ॥ ११ ॥
कामशोकभयकोधहर्पेर्ष्यां लोभभसम्भवान् ।
परस्परं प्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १२ ॥
इष्टद्रव्यविनाशान्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदश्मातं सान्त्वाश्वासश्च तान् जयेत् ॥१३॥
प्रदेहोत्सादनाभ्यद्गधृमाः पानश्च सर्पिपः ।
प्रयोक्षव्यं मनोवुद्धिस्मृतिसंक्षाप्रवेधनम् ॥
कल्याणकं महद्वापि द्याद्वा चैतस घृतम् ॥
तैतं नारायणञ्चापि महानारायणं नथा ॥ १४ ॥

शुद्धसेत्यादि — चरकस्य । गुद्धस्येति यमितस्य आचारविश्वशे आत्युन्माने । संवेजनमुद्देजनः नर्जन वचसा, विम्मृतेहेंते।रिति उन्मादहेतुभयहपादिविश्वरायक्षाया प्रमावदिव मन प्रकृति स्वमाव नयन्ति । परस्परप्रतिह्वन्देरिति अन्योन्यप्रत्यनीर्कः । तस्य तत्मदृशप्राप्तीरिति भावे का , तत्मदृशप्राप्तीरित्यर्थे । सान्त्याश्वीमिरिति सान्त्व सामप्रयोग वशीभृतकर्यार्थे उपायविशेष , आश्वाम मन्तोषवचनम् । उत्मादनः चृष्णप्रपंगम् । नारायर्थतेल महानारायर्थतेलक्ष वात्व्यार्थं। वस्यित ॥ ११-१४॥

पानीयकल्याणकं घृतम् विशाला त्रिफला कौन्ती देवदावेलवालुकम् । स्थिरा नतं रजन्यौ द्वे शारिवे के प्रियद्गुका ॥ नीलोत्पललामाञ्जिष्ठावन्तीवाडिमकेशरम् । तालीशपतं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ विडक्षं पृक्षिपणीं च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ । श्रष्टाविंशतिभि कल्कैरेतंग्रचसमन्त्रिते । चतुर्गुणं जलं दत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥
त्रपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानल ज्ञये।
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके॥
वम्यश्रीमूत्रकुच्छ्रेषु विसर्पोपहतेषु च।
कर्ण्डूपाण्ड्वामयोन्मादे विषमेहगरेषु च॥
मूतोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम्॥
शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानामायुर्वण्वलप्रदम्॥
श्रलद्मीपापरत्तोन्नं सर्वग्रहविनाशनम्।
किल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च॥ १४॥

विशालत्यादि—विशाला गोरचकर्कटी, कौन्तीरेणुका, एलवाजुक स्वनाम-र्मात मुगन्धिद्रव्य, स्थिरा शालपणी, नत तगरपादुका, तदभावे शियली छोपर , केशरं नागेकेशर, मालती जाती, तस्या कुम्रम, नविमित कुम्रमविशेषसम् । प्रधाविशतित्व कल्काना पाठादेव सिद्ध, किमध्मुच्यते अष्टाविशतिभिरिति श अत्र यद्यपि त्रिफलाया प्रत्येकमेव मागो गृह्यते उत्सर्गसिद्धत्वाद, तथापि त्रिफलाया प्रत्येकभागग्रहणदाद्ध्यार्थम् अष्टाविशतिभिरित्युक्तम् । यद्यपि त्रिफलाराब्देन द्राचा-काश्मर्थ्यपस्पका उच्यन्ते तथापि हरीतक्यादित्रिफलाया एवात्र ग्रहण प्राथान्यादेव, एवमन्यत्रापि । पुसवनेष्विति पुत्रकारकयोगेषु ॥ १३॥

चीरकल्यासकं घृतम्

द्विजलं सचतु द्वीरं द्वीरकल्याणकन्त्वदम् ॥ १६ ॥ तदेव धत यदा जलस्याधे शरावान्, चीरम्य पेटिश शरावान् बत्ता पच्यते नटा चीरकल्याणक भवति ॥ १६ ॥

महाकल्यागकं घृतम्
पभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम्।
रसे तस्मिन् पचेत् सर्पिगृष्टिचीरं चतुर्गुणम्॥
वीराद्विमाषकाकोलीस्वयंगुप्तर्षमर्द्धिमिः।
मेदया च समैः कल्कैस्तत् स्यात् कल्यागकं महत्॥
वृंहगीयं विशेषेण सिन्निपातहरं परम्॥ १७॥

पत्रमूलस्यापि प्रहण स्यादत आह प्रतिवंशतिमिति, तद्गुणमिवशनबहुनीहिशहान्निरासार्थं वा पतिवंशतिमित्युक्तम् । गृष्टिरेक्तरप्रस्ता भेतु । अत्र चतुर्गुणचिरस्य निरिसार्थं वा पतिवंशतिमित्युक्तम् । गृष्टिरेक्तरप्रस्ता भेतु । अत्र चतुर्गुणचारस्य निर्दिष्टत्वादुत्मगिसिद्धो द्रव एव देय , तेनानिर्दिष्टमानकाभेऽत्र रेक्षसम प्रवेति पत्रगुण पाक , युक्तचैतत्, पत्रम्मति यत्र सुरित्यादिपरिमापार्थनास्यार्थस्य ममानन्यायत्वादिति केचित् । अन्ये तु नीरेणैवात्र चर्तुर्गुण प्राप्तेऽत्य कपाय ' एकेनिप चातुर्गुण्यम् दत्यादिपरिमापाया अविषयत्वन 'किहात् तोय चतुर्गुण्यम् दत्यादिपरिमापाया अविषयत्वन 'किहात् तोय चतुर्गुण्यम् दिति द्रवचातुर्गुण्यपरिमापाया क्षीरमानमाह वर्यादा चतुर्गुणो होय इति वदिनि । वीरा पृक्षिपणों, चीरिवदारीत्यन्य । दिमाषत्येनन राजमाप—केत्रमापयोर्ग्यहणमिति केचित् अन्ये तु मुद्रपर्णीमाषपर्योर्ग्रहणमित्याहु । अपरे तु द्विशच्यस्य काकोन्वित्यनेन सम्बन्धाद् चीराक्रमोपित पाठान्तरम्, आर्द्रमापोऽशुप्कमाष इति व्याचनि । वीरोदीन्यपरिमितगृह्वतानीत्येके, वीरार्दाना प्रत्येक्रमेक्पलिति महस्य ॥१९॥।

चैतसं घृतम्

पञ्चमूल्यावकाशमय्ये रास्नैरएडितचुद्रला ।
मूर्वा शतावरी चेति काथैर्डिपलिकैरिमै ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्घृतं चैतसं स्मृतम् ॥
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ।
घृतप्रस्थाऽत पक्षच्यः काथो होणाभ्भसा घृतात् ।
चतुर्गुशोऽत्र सम्पाद्यः कल्क कल्याणकेरित ॥ १८ ॥

पञ्चमूल्याविति दशमूली गान्भारीरहिता । द्विपालिकेरिति एपा प्रत्येक द्विप-लन् । कल्यायकस्य चाक्नेनीत पानीयकल्यायकोक्षकल्केन यथोक्षमानेनेत्यर्थ , अन्य तु अन्नोक्षमान परित्यच्य धनात् पादिक मान गृह्गित । यद्यपि । द्वयमापा-त्यित कार्यं दस्ता षोटशिक जलम् । पादावशिष्ट कर्चन्यमेष काथविषि स्मृत । शति कृष्णात्रेयपरिभाषया त्रिंशत्यले काथ्ये पष्टि शरावा भवन्ति जलस्य, नथापि काथस्य धनाचातुर्गुययार्थं द्वेश्यान्मसेति चक्रेखोक्षम् ॥ १ = ॥

महापेशाचिकं घृतम् जटिला प्तना केशी चारटी मर्कटी वचा।

त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी॥
वय स्था श्रूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलद्भण।
महापुरुषद्न्ता च वय स्था नाकुलीद्वयम्॥
कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव च तैर्घृतम्।
सिद्धं चातुर्थकोन्माद्रग्रहापस्मारनाशनम्॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद् यथासृतम्।
मेघावुद्धिस्मृतिकरं वालानाञ्चाङ्गवर्द्धनम्॥ १६॥

नहापैशाचिके जटिला मामी, पूतना हरीतकी, केशी भूतकेशी, चारटी कुम्मार, पद्मस्यालिमस्यन्ये, महायष्टीत्यपरे, मर्कटी ग्रक्तिशम्बी, जया जयन्ती, बीरा जीरकाकोली, पृश्चिपपीत्यपरे; चीरकक्षीरपुष्पी, वय स्था माझी, गुड्ची-स्यन्ये अपरे तु निगुंपडीत्याहु; ग्रक्तरी वाराहिका, नदमावे चर्मकारालुकः, छन्ना मधुरिका, आतिच्छना शतपुष्पा; पलद्भवा गुग्गुल , महापुरुपपदन्ना शतावरी; यय न्या शुकानना, माझीत्यन्ये, नाकुलीद्वय राखाद्वय राखा गन्धराला च, कट-न्मरा कटमी प्रसारणी वा, वृश्चिकानी वृश्चिकपत्री, विछाटीति स्थाता, न्यिग शालपणी । स्वल्पपैशाचिकत्यामावात् महच्छव्दोऽय महागुणकारकत्वादित्याह , अन्ये तु जटिला स्थिरान्तु भूकेशीत्यादिना स्वल्पपैशाचिकत्यापि नन्त्रान्तरे प्रकित-त्वात् तटपेचयास्य महत्त्वमाह ॥ १६ ॥

हिङ्ग्वाद्यं घृतम्

हिंगु सोवर्चलव्योपैर्द्धिपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ २०॥ हिन्तिलाडी-न्योषस्य प्रत्येक हिपलाशता ॥ २०॥

लशुनाद्यं घृतम्

लशुनस्याविनष्टस्य तुलार्द्धे निस्तुपीकृतम् । नद्द्धं दशमूल्यास्तु द्वषाढकेऽपां विपाचयेत् ॥ पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा । कोलमूलकवृत्ताम्लमानुजुङ्गाईकै रसैः ॥ दाडिमाम्बुसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लेस्तद्धिकैः।
साधयेत् त्रिफलादाकलवण्योषदीप्यकैः॥
यमानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्च पलार्द्धिकैः।
सिद्धमेतत् पिवेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम्॥
वश्चपाण्ड्वामयण्लीह्योनिदोपिकामिज्वरान्।
वातश्चेष्मामयांश्चान्यानुनमादांश्चापकर्षति॥ २१॥

लशुनस्थत्यादौ—भिनिष्टस्थेति विशुद्धस्यः, तुलार्द्धं पञ्चारात् पलानि,
नददं दरामूलस्थिति दरामूलस्य पञ्चाविशिति पलानि, पादशेष इत्यादके, लशुनस्थ
रम तथिति प्रस्थेमव । दाविमास्य दाविमरस । तदिंदिकैरिलात्र तच्छव्देन प्राधान्यात् प्रत्यासत्त्या च धृतपरिमाखात् कोलादिरमै प्रत्येकमद्धंप्रस्थेरित्यर्थं , अन्ये तु
नदिंदिकैरित्यत्र तच्छव्देन पादावशिष्टकषाय परिमिष्यते, तेन लशुनस्य रमादीना
दराानामेन शरावादिकत्वेन प्रत्येक प्रस्थमानिमत्याहु ॥ २१॥

सर्पि पानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विवि ॥ पूजावस्युपद्दारेश्विः। जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि श्रुचिर्भिषक्॥ २२॥

श्रागन्तुन्मादिचिकित्सामाह मपिंरित्यादि—मिंपिरेह भूतहर चैतसादि । पूजेत्वादौ वित पूजोपकरयाम्, उपहार उपढोकनम् । किंवा पूजावल्युपहार उपढोकनमेव । श्रञ्जनादिभिरिति श्रादिशब्दात् स्वस्त्ययनादिक बोध्यम्, यदुक्त भूगानामिषप देव्मीशान जगत प्रमुम् । पूजयन् यक्षतो नित्य नुदत्युन्माडज भयम् दिति ॥ २२॥

कृष्णामरिचसिन्धृत्यमधुगोपित्तनिर्मितम् । श्रञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ॥ २३ ॥ कृषोलादौ—गोपित्त गोरोचना ॥ २३ ॥

दावींमधुभ्यां पुष्पायां कृतञ्च गुडिकाक्षनम् । मरिचं वातपे मासं सपित्तं हितमञ्जनम् । वैकृतं पश्यतः कार्य्यं दोषमृतहतस्मृते ॥ २४ ॥ दानात्यादि सप्टम् । मरिचामित्यादि—मरिच गोरोचनया मातेष मामैक मानितमजन कर्त्तन्यम् । दोषभृतइतस्कृतेरिति दोषेण भूतेन वा हता स्कृतिर्थस्य-स्थर्थ ॥ २४ ॥

निम्यपत्रवचार्हिगुसपैनिर्मोकसर्षपै । डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ २४॥ निम्त्रेत्यादि स्पष्टम ॥ २४॥

कार्पासास्थिमयूरिषच्छवृहतीनिर्मास्यिपिएडीतकै-स्त्वग्वांशीवृषदंशिवद्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः। गोश्टङ्गद्विपदन्तहिङ्गुमिरिवैस्तुस्यैस्तु धूपः कृतः स्कन्दोन्मादिषशाचराचससुरावेशज्वरघः स्मृतः॥२६॥

कार्पामेत्यादि—कार्पासास्थि कार्पासवीजम्, निमाल्य शिवनिर्माल्यम्, पिरटी-तक मदनफलम्, त्वग्वाशीति त्वग्रशीरम्, वाशी वशलोचना, अन्य तु त्वग्वाशी वशस्य त्विगित्वाहु । वृषदशो विढालः, तस्य विट् पुरीषम्, केशी भूतकेशी, वाल दन्यपरे ॥ २६॥

ब्रह्मरात्तसजित्तस्यं पक्षेन्द्रीफलमूत्रजम् । साज्यं भूतहरं नस्यं श्वेताज्येष्टाम्बुनिर्मितम् ॥ २७ ॥ महोसादि—पक्षेन्द्रीफल परिखनगेरत्तकर्त्यीफल गोमूनेख मह योज्य नस्य विधेयम् । माञ्यमित्यादौ धेता श्वेतापराजिता, ज्येष्टाम्बु तय्हुलाम्बु ॥ २७॥

> देवर्षिपित्गन्धर्वेरुन्मत्तस्य च वुद्धिमान्। वर्जयेदश्जनादीनि तीन्णानि कूरमेव च॥ २८॥

देवेत्याटी---करिमित ताडनबन्धनादिकम् । पतच परिवर्जन वैद्यातुरे।पघात-परिहारार्थम्, उक्तज्ञ 'वैद्यातुरो विनिञ्चन्ति एव क्रडा महीजम ' इति ॥ २= ॥

> प्रसादश्चोन्द्रयार्थानां वुद्धवात्ममनसां तथा । धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलज्ञणम् ॥ २६ ॥ इत्युन्मादिचिकित्सा ।

प्रमाट इत्यादि—स्पष्टम् ॥ २६ ॥

इत्युन्मादीचीकत्साविवृति ।

अथापस्मारचिकित्सा।

वातिकं बस्तिभि प्राय पैत्तं प्रायो विरेचनै । श्रुष्टिमकं वमनप्रायेरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥ तुल्यचिकित्सितलादुन्मादानन्तरमपसारचिकित्सितमुच्यते, वार्तिकिमच्यादि-वमनप्रायेरिति वमनप्रधाने ॥ १ ॥

सर्वत सुविशुद्धस्य सम्यगाश्वसितस्य च। श्रपसारविमोत्तार्थे योगान् संशमनान् श्रयाः ॥ २ ॥ मर्वतं रत्युद्ध्वमध्य शुद्धलः। भाषसितस्येति सरोधनानन्तरं मर्मर्जनक्रमेय

मजातबलस्य ॥ २ ॥

मनोह्ना तार्च्यजञ्जेव शरुत् पारावतस्य च । श्रञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्ज विशेषतः ॥ ३॥ मनोह्ना मन शिला, तार्च्यंव रसाजनम् ॥ ३॥

यिष्टिहिङ्गुवचावक्राशिरीपलश्चनामयैः। साजामूत्रैरपसारे सोन्मादे नावनाञ्जने॥४॥ यद्यालादी—वक्र तगरम्, शिरीपस्य फलम्, मामय कुष्टम्॥४॥

पुष्योद्धृतं श्रुनः पित्तमपस्मारम् स्वनम् । नदेव सर्पिपा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ ४ ॥ नकुलोलूकमार्जारगृभ्रकीटाहिकाकजैः । तुएडै पत्ते पुरीपैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥ पुष्यसादि—पुष्यानवत्रे यदृष्क्षया मृतकुक्तस्य पित्तम्, ग्राह्मामिलाहु ,

उल्क पेचक ,कीट पश्चिमदेशजो पश्चिक । एषां तुरुखाटिक यथामन्मव आह्मन् । १ । १ ।।

कायस्थान् शारदान् मुद्गान् मुस्तोशीरयवांस्तथा । सव्योपान् वस्तमृत्नेण पिष्ट्वा वर्त्ती प्रकल्पेयत् ॥ श्रपसारे तथोन्मादे सर्पदेष्टे गरार्दिते । विपपीते जलमृते चैता स्युरमृतोपमा ॥ ७॥ काय्यस्थानित्यादि —कायस्थे निर्गुग्दी । शारदानिति मुद्गविशेषण ज्येष्ठ-मामोद्भवमुद्गनिरामार्थम् । वर्त्तीरित्यञ्जनवर्ती । विषपीत इति पीतिविषे, गर सयोग-विषम् । जलमृत इति जलपानेन मृतप्राये, मर्वथा मृते हि भषज विफलमिति । जलमृतलच्या यथा 'विष्टम्थपायुमूर्द्धाचमाध्मातोदरमेहनम् । विद्याज्ञलमृत जन्तु गानपादकराननम्" इति ॥ ७॥

> श्रपेतरात्तसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः। उत्सादनं मूत्रपिष्टमूत्तैरेवावसेचनम्॥ =॥

अपेतरार्चसीत्यादि—अपेतराचसी श्वततुलसी, तस्या स्वरम इत्यर्थ । पूतना इरीतकी, केशी भूतकेशी, चोरश्चारपुष्पी । चरके।क्षपूर्वयोगे वस्तमूत्रसन्दर्शनादत्रा-पि वस्तमूत्रमेवेत्याहुः । किंवा प्रधानकल्पतयात्र गोमूत्रमेव मूत्रशब्दवाच्यम् ॥ ॥ ॥

> जतुकाशकृना तद्वइग्धैर्चा वस्तरोमभि । श्रपस्मारहरा लेपो मूत्रसिद्धार्थशिव्रभिः॥ ६॥

जतुकाशकृतेति, जतुका चर्मचटक तस्या पुरीधेष तद्दित्युत्मादनम् । टग्धेरिति वस्तरोमिमिरित्यनेन योज्यम् । अपन्मारेत्यादौ मूत्र गोमूत्रम् ॥ ६॥

य खादेत् ज्ञीरभक्ताशी माज्ञिकेण वचारजः। श्रपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम्॥ १०॥ य खोददित्यादौ—माज्ञिकेण मधुना॥ १०॥

ज्ञाम्बितनरत्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी । शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मरमुद्धतम् ॥ ११ ॥ उन्नम्बित उद्दन्धनमृतो नर , तस्य भीवापाश भीवावन्धनरञ्जुम् ॥११॥

प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी। ब्राह्मीरसम्ब मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १२ ॥

प्रयोज्यमित्यादि योगत्रय स्पष्टम् ॥ १२ ॥

हृत्कम्पे। उत्तिक्जा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता । दशमूलीजल तस्य फल्याणाज्यञ्च योजयेत् ॥ १४ ॥ इत्कम्प श्लादि स्पष्टम् ॥ १४ ॥

स्वल्पपश्चगव्यं घृतम्
गोशकृद्रसद्भ्यम्लज्ञीरमूत्रे समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १४ ॥
गोशकृदित्यादी—दध्यम्म परिखतद्यि । समशब्दोऽत्र दध्यादिगिक्ष सम्बन्ध्यते ॥ १४ ॥

बृहत्पश्चगव्यं घृतम्

हे पश्चमूले त्रिफलां रजन्यो कुटजत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ शम्पाक फल्गुमूलश्च पौष्करं सदुरालभम् । हिपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशिपते ॥ भागीं पाठां त्रिकटुकं त्रित्रुतां निचुलानि च । श्चेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्यचित्रका । हे शारिवे रोहिपश्च भूतिकं मदयन्तिकाम् । चिपेत् पिष्ट्वाचमात्राणि तै। प्रस्थं सर्पिप पचेत् ॥ गोशकृद्रसद्ध्यम्लिचीरम्त्रेश्च तत्समे । पश्चगव्यमिति ख्यातं महत् तद्मृतोपमम् ॥ श्चपस्मारे ज्वेर कासे श्वयथावुदरेषु च । गुल्मार्श पाएहरोगेषु कामलायां हलीमके । श्चलक्मीश्चहरन्नोझं चातुर्थकविनाशनम् ॥ १६॥

द्दे पद्ममूल इत्यादि—दे पद्ममूले विदारीगन्धादिके, रजन्याविति इरिद्रा-दयम्, वाग्मटेऽपि 'दिपद्ममूलीत्रिफला—दिनिशाकुटजल्वच ' इत्युक्तम् । मप्तपर्णं सप्तपर्णस्य त्वक्, अपामार्गम् अपामार्गस्य मूल, नीलिनी स्वनामरुवाता, राग्पा-क आरम्बभ, फल्यु काकोडुम्बीरकाफल, दुमर इति लोके, पौष्कर मूल-मित्यन्वय । मार्गी भागीमूल, त्रिवृता त्रिवृतामूल, निचुलानि इज्ज्ञलस्य फलानि, श्रेयसीं हस्तिपिप्पलीम्, श्राहको तुनरी, तस्या नीजः, रोहिष गन्धतृषाभेट, भूतिक यमानीः, मदयन्तिका ननमिल्लकाम् । श्रत्र पादानशिष्टकपायश्चतुर्गुण , गोशकृदिति गोशकृद्रसादयश्च ष्टतसमा , तेनाष्टगुणः पाक ॥ १६॥

महाँचेतसं घृतम्।

शणिस्तवृत् तथैरण्डो दश्यमूली शतावरी।
राम्ना मागधिकाशिय काथ्यं द्विपलिकं भवेत्॥
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा।
पिभे खर्जूरमृद्धिकाभीरुयुआतगोत्तुरै ॥
चैतसस्य घृतस्याङ्गे पक्षव्यं घृतमुत्तमम्।
महाचैतसंक्षन्तु संवीपसारनाशनम्॥
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान्।
पापालदम्यौ जयेदेतत् सर्वग्रह्मिनाशनम्॥
श्वासकासहरञ्जैव शुक्रार्त्तविद्योधनम्।
घृतमानं काथविधिरिह् चैतसवन्मतः॥
कल्कश्चेतसकल्कोक्तद्रव्यः सार्द्वञ्च पादिकः।
नित्यं युआतकाप्राप्तौ तालमस्तकमिण्यते॥ १७॥

महाचैतसे राणस्य मूल बीज वा, व्यवहारस्तु वीजेनेति । मागिषका पिप्पली ।
काथ्य दिपलिक भवेदित्यन्तेन काथ , काथाऽपि पूर्ववत् चैतसकाथवत् द्रोणाम्मसा
कार्य्य । विदारीप्रभृति कल्क । मेदे मेदे दे, खजूर खजूरस्य फलम्,
श्रभीरु रातावरी, युआतम् श्रीत्तरपाधिक कन्द , तदमावे तालमस्तकम् । चैतमस्य
हतस्याद्गरिति पूर्वोक्षचैतमम्द्रतकल्कैविशालादिमिः । चैतसस्येत्यादि कल्याणकस्याद्रिति वक्षच्येऽतिदेशातिदेशकरणम्, अत्रोक्षकल्कद्रव्येण सद्द पादिकार्थम् , अन्यया
कल्याणके तत्राचममन्वितिरित्युक्तत्वादत्रापि अचमान प्रसच्यते, अतो विशालात्रिफलेत्यादिना कल्केन सद्द विदारीमधुकादे कल्कस्य मिलित्वा द्यतात् पादिकत्व क्षेयम् ।
अतएव वस्यति कल्कश्रैतसकल्कोकद्रव्ये सार्देश्च पादिकमिति ॥ १७ ॥

कूष्माग्डकघृतम् कूष्माग्डकरसे सर्पिरद्यादशगुरे। पचेत् । यप्टयाह्वकरकं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ १८ ॥ कृष्मायडकप्रत स्पष्टम् ॥ १८ ॥

त्राक्षीघृतम्

ब्राह्मीरसे वचाकुष्टशङ्खपुष्पीभिरेव च । पुराणं मेध्यमुन्मादयद्वापसारनुद् घृतम् ॥ १६॥ ब्राह्मीको — नतुर्रेणे ब्राह्मीरसे क्ष्तपान ॥ १६॥

पलङ्कपाद्यं तैलम्

पलद्भपावचापथ्यातृश्चिकात्यर्कसंपंपै । जिटलापूतनोकशीनाकुलीहिङ्गुचोरकैः ॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्टैविंड्भिश्च पत्तिणाम् । मांसाशिनां यथालामं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपसारिवनाशनम् ॥ २०॥

पलद्गेपत्यादि — पलद्गपा गुग्गुल , जटिला मामी । पूतनाकेशी भूनकेशी इति केचित , अन्ये तु पूतना हरीतकीभेद केशी भूतकेशीत्याह , जतुकर्खं गोलोमी पट्यते, न तु पूतना । नाकुली महापैशाचिका व्यवहता । अतिरमा जलयष्टिमधु, अन्ये तु ज्योतिष्मतीत्याह , जतुकर्खे मधुकमित । चित्रा उन्ना । मामाशिना पद्मिणामिति गृधादीनाम् ॥ २०॥

श्रभ्यद्गः सार्पपं तैलं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे। सिद्धं स्पद्गोशकुन्मूत्रे स्नानोत्साटनमेव च ॥२१॥ इत्यपसारचिकित्सा।

श्रम्यङ्ग इत्यादि—श्रकल्कामद तैलन् । गोशकृता उत्सादनसुद्रर्तन गोनृ-त्रेण लानमिति यथायोग्यतमा बोध्यम् ॥ २१ ॥

श्लपस्मारिचिकित्साविवृति ।

अथ वातव्याधिचिकित्सा

साद्रम्लवर्णैः स्निग्धैराहारैर्चातरोगिणः। श्रम्यक्रसेद्दवस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत्॥ १॥ वातविशेषस्य। चेपकादेरपस्मारवद्वेगकर्तृत्वात् तथा प्रायस्तुल्यचिकित्सितत्वाचा-पस्मारानन्तर वातव्याधिरुच्यते । यद्यपि वातव्याधिरित्युकेरिवकृते वा यावित प्रसङ्ग , तथापि व्याधिपदमामानाधिकरण्यादिकृतो दु खकारी वातो व्याधिरित्यथों क्षेय । ननु वातव्याधिवत् पित्तकफाविकारा अपि तुषत्तेषतृष्त्यादय किमिति पृथक्षरणेन नोच्यन्ते १ नैवम् , वायोरतिबलत्वेन गरीयस्त्वात् , तदिकाराणामेव तु दुःसाध्य-त्वात् स्राभेवात्ययकरस्वात् विशिष्टचिकित्तिःतत्ताः पृथक्करणेनाभिधान युक्तम् । कफपित्तविकाराणान्तु यथाविधित्वात् विरेचनवमनादिकफपित्तसामान्यचिकित्सोक्षयाः चिकित्सोकेति श्रेया । साधारणिचिकित्सामाह स्वाद्वम्लेत्यादि ॥ १ ॥

> विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते ज्ञारं पिवेन्नरः॥२॥ त्रामाशयस्थे शुद्धस्य यथादोपहरी क्रिया॥३॥

विशेषत इत्यादौ—चार यवचार किंवा ग्रहण्यध्यायनिर्दिष्ट दीपनचारम् । श्रामाशयस इत्यादि—शुद्धस्य वमनविरेचनादिना शुद्धस्य ॥ २ ॥ ३ ॥

श्रामाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम्।
देयः षड्धरणो योग सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥
वित्रकेन्द्रयवाः पाठा कटुकातिविषामयाः।
महाव्याधिप्रशमनो योग षड्धरण स्मृत ॥
पलदशमांशो धरणं योगोऽयं सौश्रुतस्ततस्तस्य।
मापेण पञ्चगुञ्जकमानेन प्रत्यहं देय ॥ ४॥

श्रामारायगत इत्यादि — मुशुतस्य । छदिताय यथाक्रममिति लेहसेदपेयादिक्रमानिक्रमेण, वातस्यापि कफस्थानगतलेन । यदुक्त 'स्थानात् स्थानगत दोष स्थानबत् समुपाचरेत्' इति । षष्ट्धरण्योगे महान्याधिप्रशमन इति मेदः कफाष्टतन्याधिः
महान्याधि । षष्ट्धरण् इति पण्णा चित्रकादीना प्रत्येक धरण्य पलदशमाशरूप मान
यत्र स तथा, पतदेवाह पलदशमाशो धरण्यमिति । ननु पलद्रन्यन्यवस्थापि चरकमुः
शुतमतमेदेन दिघोक्ता, तदिह चरकस्य पलस्य दशमाशो धरण्यम्, इत्यत आह योगोऽयमिति, अय चित्रकेत्यादियोगः सौंश्रुत इति कृत्वा तस्य मुशुतस्य पञ्चगुक्रकमानेन माषेण् यत् पल मवति तस्यैव पलस्य दशमो भागः प्रत्येक चित्रकादीना पण्णा
प्रत्यह सप्तदिन यावहेय इत्यर्थ । एवञ्च पञ्चगुक्रकमानानुसारात् पलदशमाशेन
रिक्रिद्याधिकपण्मापका मवन्ति, षष्ट्मिर्धरणैक्ष मिलित्वा पञ्चरिक्तकापानुसारेण

सरिक्षद्रयपयमापाधिककर्षद्रय स्यात्, ण्यदेय व्यविष्यमायान दशरिक्षकमावेण सर-किद्रयमापत्रयाधिककर्षमान भवित तादृह्मानज्ञ प्रत्यामेन मगरात्र यावत् देयम् । उत्सर्गतो हि कर्पश्चूर्यास्य देयो भवित, अत्र सरिक्षियमापकत्रयाधिकपर्षप्राप्तार्थं विशेषवचनमेवेति ॥ ४ ॥

पकाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम्।

चस्तय शोधनीया या प्राशास्त्र लवणात्तरा ॥ ४॥
वस्तय शोधनीया या इति शोधनवस्तयः, यथा 'शोधनद्रम्यनि काधाम्तत्
व लक्केहसैन्यवै । युक्ता एजेन मधिता वस्तयः शोधना मता ' इति । प्राशाश्च लक्षोत्तरा इति लक्षप्रधाना आहारा किंवा लक्षोत्तरा प्राशा रेनहलक्ष्यस्या-यलक्षणात्तर ॥ ४॥

स्रोहलवणम्

स्तुहीलवणावार्त्ताकुस्नेहारछ्ने घटे दहेत्। गोमयैः स्नेहलवणं तत्परं वातनाशनम्॥६॥

तदेव सेहलवर्णमाह स्तुईत्यादि—स्त्रत्र लवर्णानि पद्म, वेबहाश्वसार ; छप्त इति शरावादिपिष्टिते लिप्तमुखे । गोर्मयिरिति स्तुई।पञ्चलवर्णवार्षाकुफलानि तदनु-ष्टततैलवनामज्जिम स्निन्धिकृत्य घटे कृत्वा मुरामालिप्य गोमयात्रिना दग्धव्यानि, स्रत कोष्ठ विभव्य उपयोज्यानि ॥ ६ ॥

> कार्यो वस्तिगते चापि विधिवस्तिविशोधनः॥ ७॥ त्वड्मांसास्क्शिराप्राप्ते कुर्याचास्यिमोत्तराम्॥ =॥

विधिर्वस्तिविशोधन इति मूत्राधाताशमरीचिकित्माविधि । त्विगित्यादि— प्रत्र त्वद्मासादिगतवाते रक्तमोच्चयस्पमेकमेव चिकित्मितम् आवरकरक्तव्यपगमतया बोध्यम् । अन्य स्वेद्दास्पद्गोपनाद्दाक्ष मर्दनालपनानि चेति सुश्रुतवाक्यस्य त्वदमामा- सक्शिराप्राप्त इत्यनेन सह सम्बन्ध विदर्धात । ततक्ष त्वद्मास स्गतवाते स्वद्मान्य- क्वादिकम्, रक्तगतवाते तु योग्यतया रक्तमोच्चयोमेवत्याद्व ॥ ७॥ ८॥

स्नेद्दोपनाद्दाग्निकर्मवन्धनोन्मद्दनानि च ।
 स्नायुसन्ध्यस्थिसम्प्राप्ते कुर्य्याद्वाते विचन्नणः ॥ ६ ॥
 क्षेद्दोपनाद्देत्यादि—कायुसन्ध्यस्थिगतवातिचिकित्सामादः ॥ ६ ॥
 सेद्दाभ्यक्वावगादांश्च द्वद्यञ्चान्नं त्वगाश्चिते ॥ १० ॥

शिताः प्रदेहा रक्तस्ये विरेको रक्तमो स्त्राम् ॥ ११ ॥ स्वेदाभ्यक्तेत्यादिना रसगतानिलचिकित्सामाह । इद्यमित्यत्र स्पष्टामिति जेज्जट पठिति, किन्त्वत्र त्वक्राच्देन त्वक्सत्वाद्रम उच्यते, त्वगाश्रयित्व स्मस्य सर्वगतत्वाद्भवति । अतस्य धातुगतकुष्ठामिधाने त्वग्गतत्वेनैव रसगत्वमुक्तमिति कृत्वा रसगतकुष्ठलस्य म्रथुतेनोक्तम् । अतो रसस्य विशेषेण इदयाश्रितत्वात् इद्यमेव पाठो युक्त इत्याहु । शीता प्रदेहा इति शीतप्रदेहादिरूपचिकित्साकथनार्थामेह लिखितम्, तेन त्वङ्मासान्वगित्यादिसुश्रुतवचनेन पूर्वेकिनास्य पानस्क्रय नाशक्कत्य नाशको । १० ॥ ११ ॥

विरेको मांसमेद स्थे निरूद्दा शमनानि च ॥ १२ ॥ वाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत् ॥ १३ ॥

मेद स्थानिशचिकित्सामाह विरेक इत्यादि—मज्जगतानिलचिकित्सामाह बाह्येत्यादि ॥ १२ ॥ १३ ॥

वर्षोऽत्रपानं ग्रुकस्थे वलग्रुककरं हितम् । द्रं विवद्धमार्गं ग्रुक्रन्तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम् ॥ १४ ॥ ग्रुक्स्यानिलविकित्सामाह हुपं इति मनसः ॥ १४ ॥

गर्भे ग्रुष्के तु वातेन वालानाञ्चापि ग्रुष्यताम् । सितामधुककाश्मर्थ्येहितमुत्थापने पयः ॥ १४ ॥ शिरोगतेऽनिले वातशिरोरोगहरी किया ॥ १६ ॥

गर्भ इत्यादी—मधुककाश्मर्थ्यफलाभ्या दुग्ध साध्य, सिता तु प्रचेपणीया, केचित् तु मित्रादिर्दुग्ध साध्यमित्यादुः । उत्थापने पृष्टिजनने ॥ १५ ॥ १६ ॥

व्यादितास्ये हनुं सिन्नामंगुष्टाभ्यां प्रपीड्य च।
प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य चित्रुकोन्नामनं हितम् ॥ १७ ॥
प्रादिते नवनीतेन खादेन्माषेणडरीं नरः।
चीरमांसरसैभुक्त्वा दशमूलीरसं पिवेत् ॥
स्नेहाभ्यङ्गशिरोबस्तिपाननस्यपरायणः।
प्रादितं स जहेत् सर्पिः पिवेदौत्तरमिक्तकम्॥ १८ ॥

न्यादितास्य इत्यादि —न्यादितास्ये विषृतास्ये, प्रदेशिनी अगुष्ठानन्तरागुली। उन्नम्यत्यत्र चितुकमिति शेष । मापेण्डरी मापिष्टकविकृति.। मापेण्डरीमच्या-

नन्तर क्षारमामर्रभरत्र मुक्त्वा तते। दगमूलीजल पिनेदित्यर्थ । श्रीचरभक्तिकमिति भोजनानन्तरकालीनम् ॥ १७ ॥ १८ ॥

पञ्चमूलीकृतः काथो दशमूलीकृतोऽथवा ।
रुत्तः खेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्मे प्रशस्यते ॥ १६ ॥
वाताद्वारधमनीदुष्टौ स्नद्वगर्यस्यारणम् ॥ २० ॥
पञ्चमूलीत्यादि स्पष्टन् । बातादित्यादी—शार्थमनी वाग्वादिनी वमनी
॥ १६ ॥ २० ॥

कल्या खकले हः

सहरिद्रा वचा कुछं पिष्पली विश्वभेपजम् ।
श्रजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्यवम् ॥
पतानि सममागानि रुद्रव्णचूर्णानि कारपेत् ।
तच्चूर्णं सर्पिपालोख्य मत्यद्दं मत्त्रयेश्वरः ॥
पक्षविशतिरात्रेण भवेच्छुतिघरो नर ।
मेघदुन्दुमिनिर्घोपो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥
जडगद्गद्मूकत्वं लेद्दः कल्याणको जयेत् ॥ २१ ॥
महरिदेलाडी—श्रजाजी कृष्णजीरकम्, श्रजमोदा यमानो, यष्टिमधुकराम्देन महायद्दीति शीक्ष्यद्वरो न्याचेष्ट्र, तत्तु न न्यवद्दारिमद्ध नापि दीकान्तेर
दृष्टमिनि ॥ २१ ॥

वज्ञस्त्रिकस्कन्धगतं वायुं मन्यागतं तथा। वमनं हन्ति नस्यञ्च कुशलेन प्रयोजित ॥ २२॥

वचं इत्यादि-सुश्रुतस्य । त्रिकमिष्ट असद्धयान्तरमन्धि , म हि छेष्मस्थान, तद्गन म्व वाते वमन नस्यञ्च याँ।गिकम् । नस्यमिष्ट शिरोविरेचनिमिति । कुरालेन प्रवोजितमिति विशेषणात् प्रतिमर्थं विना चतुर्विषमप्यत्र नम्यमित्येके ॥ २२ ॥

मापवलादिः

मापवलाग्रुकशिम्त्रीकचृणरास्नाभ्वागन्धोरुवृकाणाम् । काथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वित कोप्णः॥

श्रपहरति पत्तवातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम् । दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ २३ ॥

मापवलेत्यादि—कनृत्य गन्धत्यम् ; अश्वगन्धाया मूलम् । काथमात्रा चात्र
मुखेन पेयकाथतुल्याः; यस्तु तावन्त काथ नासिकया पातु न शक्कोनि, तेनासं
ग्तोकस्त्याच्य । रामठ हिंगु, तस्य रिक्षकाद्वय सैन्धवस्य तु प्रापकदय प्रिचिनित्त
गृद्धा । यसिन् पार्श्वे पीडा तत्पार्श्वनासापुटेन भोजनसमाप्ती सायकाने शक्त्यनुरूप
पयश्चाय काथ ॥ २३॥

दशमूलीवलामापकाथं तैलाज्यमिश्रितम् । सायं भुक्तवा पिवेन्नस्यं विश्वाच्यामववाहुकें ॥ २४ ॥

दशमूलीत्यादी —तैलाज्यमिश्रितमिति तैलाज्य प्रचेपणीयम् । सुनत्वेति भोज-नानन्तर सायकाले शक्त्यनुरूप नासिकया पिवेत् ॥ २४ ॥

> मूलं वलायास्त्वथ पारिभद्गत् तथात्मगुप्तास्वरसं पिवेद्या। नस्यन्तु यो मांसरसेन कुय्यो नमासादसौ वज्रसमानवाहु ॥ २४॥

मूलमित्यादि—मूल वलाया इत्येको योग , पारिभद्राच मूलमिति द्वितीय , भन्यो स्वरस काथो वा । आत्मगुप्तास्वरस पिनेदिति तृतीय , पानमेषा नासिकया। नम्यन्तु यो मासरमेनेति चतुर्थ । अत्र तैजसैन्थेव प्रिच्चित्व वृद्धा , अन्ये भैन्थवचूर्णमात्र प्रविपन्ति । नस्यन्तु यो मासरसेनेत्यत्र तयोमीसरसेनेति पठित्वा विशाच्यववाहकयोरिति व्याख्यानयन्त्येके ॥ २५ ॥

माषात्मगुप्तकैरएडवाट्यालकश्टतं पिवेत्। हिड्गुसैन्थवसंयुक्तं पत्ताघातनिवारणम् ॥ २६॥ मापत्यादि वचन सप्टम् ॥ २६॥

वाहुशोषे पिवेत् सर्पिर्भुक्त्वा कल्याणकं महत्॥ २७॥ हिद प्रकुपिते वाते चांशुमत्या पयो हितम्॥ २८॥

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवञ्चाम्लवेतसम्। घृतमात्रासमायुक्तमपतानकनाशनम्॥ २६॥

हरीतकीत्यादि — काथन चूर्येन वाय योग । काथपचे मैन्धवप्रते प्रानिपेत्, चृर्यपचे घनकपढेयेन, चूर्यस्याधी मापका पेया इत्यर्थ ॥ २६॥

खल्परसोनिपएड:

पलमर्छपलञ्चेव रस्नोनस्य सुकुद्दितम् ।
दिङ्गुजीरकसिन्धृत्थैः सौवर्चलकद्वत्रये ॥
चृिर्णितमीपकोन्मानैरवचूर्ण्यं विलोडितम् ।
यथाग्नि भित्ततं प्राता रुवुकाथानुपानतः ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमकं निरन्तरम् ।
यातरोगं निहन्त्याग्च त्रदितं सापतन्त्रकम् ॥
पकाक्तरोगिणे चैव नथा सर्वोक्तरोगिणे ।
करस्तममे च गुभ्रस्यां क्रिमिकोष्ठे विशेषतः ।
कटीपृष्ठामयं हन्यादुद्रञ्च विशेषतः ॥ ३०॥

पलमर्द्धपल नेति सार्द्धपलम् ण्व वाराख्दा पूर्वयोगापेख्या, इवार्ये वाराब्दा वा। पलमर्द्धपलझेनेत्यपि पाठ । त्वगादिरहितिष्टरमानस्य किश्चिदातेषन शुम्कस्य सार्द्ध-पलमेक, मापकाष्टक मापकदशकवा प्रतिदिन मेवनीयम् । श्रनथैय माश्रया मासमेक मेवनेषयुक्त न स्यात् श्रत पुनरिष रमानिष्यः करणीय । न च वाच्य यावत्या मात्रया मात्रया मात्रया मात्रया मात्रया मात्रया मात्रया मात्रया सादित्याद्ध ॥ ३०॥

हिन्त प्राग्मोजनात् पीतं दध्यम्लं सवचोपण्म् । श्रपतानकमन्योऽपि वातव्याधिकमो हितः ॥ ३१ ॥ इन्तीत्यादी—सवचोपणमिति वचामरिचचूर्णसितिमित्यर्थ ॥ ११ ॥ वातमैदंशमूल्या च नवं कुब्जमुपाचरेत् । स्त्रहेर्मास्त्रस्वापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥ वातमैरिति महदानंदिगणै , दरामूली च विख्यातैव गणत्यात्, प्रते काथसेहोपनाहादिक कुर्यात् । नवतन्तु कुम्बस्य यावत् न स्वाष्ट्रदिरिति ॥३२॥ पिष्पल्यादिरजस्त्नीप्रतित्नयो सुखाम्बुना।
पिवेद्वा स्नेहलवर्णं सघृतं चारिहङ्गु वा॥ ३३॥
प्राध्माने लङ्घनं पाणितापश्च फलवर्त्तय।
दीपनं पाचनश्चैव बस्तिश्चाप्यत्र शोधन ॥ ३४॥

पिष्पल्यादिगयाः सौश्रुत । रजश्चूर्णम् । लेहलवयात्र स्तुई।लवयावार्ताकुलेहानित्यादिना पूर्वमुक्तम्, इदमपि मुखाम्बनैन पिनेदिति । सष्टत चारिष्कः, विति

प्रतेनैन यवचारिष्कानीश्र पानम् । प्रतस्य कर्षेकः, यवचारस्य चतुर्माषकः, विद्वन

पद्रिकिकिमिति दीपन पाचनञ्जेति लब्धनानन्तर दोपशेषशमनार्थं दीपन पाचनञ्च

भवज देयम् ॥ ११ ॥ १४ ॥

प्रत्याध्माने तु वमनं लह्वनं दीपनं तथा ॥ ३६ ॥
प्रत्याष्टीलाष्टीलिकयोरन्तार्वेद्विधुन्मवत् ॥ ३६ ॥
प्रत्याध्माने तु वमनमिति प्रत्याध्मानस्यामाशयसमुत्यत्वात् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥
दशमूलीवलारास्नागुङ्क्वीविश्वमेषज्ञम् ।
पिवेदेरएडतेलेन गृध्यसीखञ्जपङ्गुषु ॥ ३७ ॥
दशमूलीत्यादि—दशमूल्यादोना काथे प्रयद्तेल प्रवेप्यम् ॥ ३७ ॥
शेफालिकादले काथो मृद्वाग्नेपरिसाधितः ।
दुर्वारं गृध्यसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत् ॥ ३८ ॥
शेफालिकत्यादि वचन स्पष्टम् ॥ ३८ ॥
पञ्चमूलीकषायन्तु रुव्वतेलं त्रिचृद्घृतम् ।
पञ्चमूलीत्यादि—पश्चमूलो महती ॥ ३६ ॥
पञ्चमूलीत्यादि—पश्चमूलो महती ॥ ३६ ॥
तैलं धृतं वार्दकमातुलुङ्ग्यो

रसं सचुकं सगुडं पिवेद्वा। कट्यूरुपृष्ठतिकगुल्मग्रुल-

गृध्रस्युदावर्त्तहर प्रदिष्ट ॥ ४०॥

तेल धत वेत्यादी—श्राद्रकरसमातुलुद्रफलरसचुक्रगुढादीना तुल्यो भाग , नले धत वा दस्त्रा पिवेदिति । पिवेदिति वा शब्दः पूर्वयोगापेच्रया, किंवा नैल- मेव सचुक्रगुडिमित्येको योग , तथा घतमिष सचुक्रगुडिमिति हितीय तथा मिलि-ताईकरम मातुलुङ्गीरसोऽिष मचुक्रगुड इति तृतीयो योग । मातुलुङ्गी मधु-कुनकुटी ॥ ४० ॥

> तैलमेरएडअं वापि गोमूत्रेण पिवेन्नर । मासमेकं प्रयोगोऽयं गुधस्युच्य्रहापहः॥ ४१॥

तंलमेरयटजिमत्याटि—योगोऽय विरेचकत्वेनाल्पमात्रया प्रत्यह मास याव दुपयोज्य । भूरिमान्नापयोगे तु बलहानि स्यात्, तेन गामूत्रस्य पल किञ्चिन्यून या, तथा परयडतैलमपि मापकाष्टक किञ्चिन्यून वा कोष्ठावपेश्वया प्रत्यह मान्न यावदुपयोज्यम् ॥ ४१ ॥

> गोम् त्रैरएडतेलाभ्यां रूप्णा पीता सुचूर्णिता। दीर्घकालोत्थितां दृन्ति गृधसीं कफवातजाम्॥ ४२॥

गामूत्रैरयडतैलाञ्यामित्यादि—गोमूत्रैरण्डतैलयोभितित्वा कर्षद्वम, विष्वर्ला-चूणस्य मावकचतुष्टयमिति व्यवहरन्ति वृद्धा ॥ ४२ ॥

श्रश्नाति यो नरः सिद्धांमरएडतेलसाधिताम् । वार्ताकुं गृधसीचीणः पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम् ॥४३॥ श्रश्नातीत्यादी—परएडतेलमाधिता सन्ततितामित्यर्थः ॥ ४३॥ पिष्द्वरएडफलं चीरे सविश्वं वा फलं रुवा । पायसो मजित सिद्धो गृधसीकिटिश्रलजुत्॥ ४४॥

पिष्ट्वेत्यादि — लग्राहितमरयहवीज कर्ष किञ्चित्तयहुलान् दस्वा चारेख विरेचनार्थ पायस साध्य । मिवश्य वेति पूर्वयोगोपद्यया वा शब्द , अत्रापि किञ्चि-त्तयहुलादीन् दस्वा शुरुक्षेरयटफलाभ्या पिष्टाम्या कर्षार्श्व वा कखाशुरुक्षेत्रित्यादि-परिभाषया पायस माध्य ॥ ४४ ॥

रास्नायास्तु पलञ्चैकं कर्पान् पञ्च च गुरंगुलो । सर्पिपा गुडिकां कृत्वा खादेद्वा गृश्रसीहराम् ॥ ४४ ॥ गृश्रस्यार्त्त नरं सम्यक् पाचनाचैविंशोधितम् । क्षात्वा नरं प्रदीप्ताप्ति वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ ४६ ॥ राक्षाया स्त्यादि—खावन्तु मायकाष्टकम्, तप्तत्रसम्तुपानम् ॥४५॥४६॥ नादौ वस्तिविधि कुर्याद् यावदूर्ध्व न शुध्यति । स्निहो निर्धकस्तस्य भस्मन्येवाद्वृतिर्यथा ॥ ४७ ॥ नादौ वस्तिविधि कुर्यादित्यादौ—याबद्द्र्ध्व न शुध्यतीति, उद्र्धिमत्यत्र पकागयादिति शेषः, तेन याबिद्रेकवमनाभ्या श्रामाशयो न शुध्यतीत्यर्थ ॥४७॥

गृधस्यार्तस्य जङ्घाया केहस्वेदे कते भृशम्।
पद्भ्यां निर्मिदितायाश्च स्दममार्गेण गृधसीम् ॥
श्रवतार्थ्यांगुलौ सम्यक् किनष्ठायां शनैः शनैः।
श्रात्वा समुन्नतं श्रान्थ कएडरायां व्यवस्थितम् ॥
तं शस्त्रेण विदार्थ्याशु प्रवालांकुरसिन्नमम्।
समुद्धृत्याग्निना दग्ध्वा लिम्पेद् यष्ट्याह्वचन्दनै ॥
विध्येत् शिरामिन्द्रवस्तरधस्ताचतुरंगुले।
यदि नोपशमं गच्छेदहेत् पादकनिष्ठिकाम् ॥ ४८ ॥
गृधसीत्यादि—जद्द्या सकाशात् गृधसी किनष्ठायामगुलौ अवतार्थिति
थे।जना। कण्डरा किनष्ठागुलिसङ्गा स्थूलशिरा। इन्द्रवस्तिरिह गुल्फजङ्क्योर्म-

तगरस्य शिफां साद्री पिष्ट्वा तकेण यः पिवेत्। वङ्क्षणानिलरोगार्च स क्षणोदेव मुख्यते॥ ४६॥ '' तगरम्येत्यादि—तगर पिण्डतगर ॥ ४६॥

दशमूलीकषायेण पिवेद् वा नागराम्भसा ।
'कटीश्र्लेषु सर्वेपु तैलमेरगडसम्भवम् ॥ ४० ॥
दशमूलीत्यादि—दशमूलीकाथनागरकाथी एरण्डतैल प्रक्षिप्य पिवेत् । नागराम्भ इति श्रत्यन्तसामताया बोध्यम् ॥ ४० ॥

विश्वाच्यां खञ्जपङ्ग्वोश्च दाहे हर्षे च पादयोः।
क्रोण्टुशीर्षे विकारे च विकारे वातकएटके।
शिरां यथोक्कां निर्विध्य चिकित्सा वातरोगनुत् ॥४१॥
शिराव्यघ पाददाहे वातकएटकवत् क्रिया॥ ४२॥
शतधौतघृतोन्मिश्रैर्नागकेशरकएटकैः।
पिष्टै प्रलेपः सेकश्च दशमूल्यम्बुनेष्यते॥ ४३॥

श्रातिष्य नवनीतेन स्वेदो हस्तादिदाहहा। श्रितितेष्टकाखण्डं काञ्जिकैः परिषिच्य तु। तहाष्पस्वेदनं कार्य्यं पादहर्पविनाशनम्॥ ४४॥ दशमूलस्य निर्य्यूहो हिड्गुपुष्करसंयुतः। शमयेत् परिपीतस्तु वातं भिन्निभिनसंक्षितम्॥ ४४॥

शिरा यथे।क्षामिति शिरान्यधिकध्यनीतक्रमेण वातकीपमयादल्पमल्पन्न रक्ष स्रान्यम् । राजपग्वादौ देशो नोक्षरंतन खडादिष्यि रक्षावृतवातवेदनाया असु।दि-सन्धिगतव शिरा व्यथ्या भवतीति मानुमती ॥ ५१—५५ ॥

गुग्गुलुं कोण्डुशीर्षे च गुडूचीत्रिफलाम्भसा। चीरेणैरएडतेलं वा पिवेद्वा वृद्धदारकम् ॥ ४६॥ रक्षावसेचनं कुर्यादमीह्णं वातकएटके। पिवेदेरएडतेलं वा दहेत् स्वीभिरेव वा॥ ४७॥ ५ कुप्रसैन्धवयो कल्कश्चुक्रतेलसमन्वितः। सुखोष्णो मईने योज्य सल्लीश्रूलनिवारणः॥

गुग्गुलुमित्यादि-पर्यडकायेन त्रिफलाकायेन वा शोधियत्वा गुग्गुलुर्माद्य । प्रतरेणत्यादि-वृत्येण दुन्धेन एर्यडतैलेन पिथ्न्, 'बहुदोपे विरेकार्थ जीयें चीरान्नभोजनम् दत्यादि वाग्मट-दर्शनात् । पिवेदा वृद्धदारकामिति अन्नापि चीरोणीत योज्यम् ॥ ५६--५७॥

स्राट्यां सिग्धाम्ललवर्षे स्वेद्मर्दोपनाइनम् ॥ ४=॥
नल्यामितादी मम्लमिति काञ्चकम् ॥ ५=॥-

श्रादित्यपाकगुगगुलुवटकः

पृथक् पलांशा त्रिफला पिष्पली चेति चूर्णिनम् । दशम्लार्म्बुना भाव्यं त्वगेलार्द्धपलान्वितम् ॥ दखा फलानि पञ्चैव गुग्गुलेवर्टकीस्रतः । एप मांसरसाभ्यासाद्वातरोगान् विशेषतः । इन्ति सन्ध्यस्थिमद्धस्थान् वृत्तमिन्द्राशीर्न्यथा ॥ भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं काथोऽष्टांशस्तु तेन च ॥ श्राद्रं याविद्दनं भाव्यं सप्ताहं भावनाविधिः॥ ४६॥

पृथगित्यादी—त्वगेलयोर्मिलित्वाद्धंपल बोध्यम्, अत्र त्रिफलादिगुग्गुल्वन्त सर्वमेकोक्कत्य वोध्यम् । मान्येत्यादि काथविशेष । तेनेति अष्टांशरोषकाथेनाद्धं कृत्वा दिनैक यावद्गान्यम्, मावनाविधिसमाप्तिरत्तु सप्ताहादिति । इयञ्च परिमाषा वाग्मट-मतानुसारिणी, तेनास्या अमूलकत्व नाशङ्कर्नायम् । वृन्दस्तु 'लेहवद्दिगुणेन्वायमालोड्य चातपे स्थित । दशमूलाम्बना शोध्य सप्तवारञ्च गुग्गुलु ' इत्युक्त-वान्, तत् पुनरनार्पमिति निश्चल ॥ ५६॥

त्रयोदशाङ्गगुगुजुः श्राभाश्वगन्धा ह्रवुषा गुडूची शतावरी गोचुरवृद्धदारकम्। रास्ना शताहा सशरी यमानी सनागरा चेति समैश्च चूर्णम्॥ तुल्यं भवेत् कौशिकमत्र मध्ये देयं तथा सर्पिरतोऽईभागम्। श्रर्ङी जमात्रन्त्वथ तत् प्रयोगात् कृत्वानुपानं सुरयाथ यूपै ॥ महोन वा कोष्णजलेन वाथ चीरेण वा मांसरसेन वापि॥ कटीग्रहे गृधसिवाहुपृष्ठे हनुष्रहे जानुनि पादयुग्मे। सन्धिस्थित चास्थिगते च वाते मजाश्रिते सायुगते च कोष्ठे॥ रोगान् जयद्वातकफानुविद्धान् वातेरितान् हृद्ग्रहयोनिदोषान्। भग्नास्थिविद्धेषु च खश्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ६० ॥ त्रयोदशाङ्गगुलौ श्राममिति स्वनामस्यात विश्वजद्रव्यम् । हृतुपा म्वनामग्याता । मैमेरिति सैभेभीगैरुपलचितम् । तुल्य भवेत् कौशिकमिति समुदितसर्वन्यंसमो गुग्गुलुरित्यर्थ । श्रतोऽर्द्धभागमिति कौशिकार्द्धभागम् । भिषजस्तु यावता
ध्रतेन गुग्गुलो पेषण् भवति ताबदेव ध्रत गृह्नन्ति । सुराधनुपानभेदो दे।पेभदापेचया ॥ ६०॥

जित्वावरकमंत्रे तु वाते वातहरं हितम् ॥ ६१ ॥ श्रक्राचृते तदुल्लेखां दीपनं पाचनं लघु ॥ ६२ ॥ स्रुप्तिवाते त्वसृक्ष्मोद्धं कारयेद्वहुशो वुधः । विद्याच लवणागारधूमस्तैलविमर्दिते ॥ ६३ ॥ सक्षेपादावृतवातिकित्मामाह जिल्लेति—आवरक्षमिति वायोरावरको यो नेषस्तम् । तदुल्लेख इति अवस्य वमनम् ॥ ६१—६३ ॥

सिंप्स्तैलवसामजापानाभ्यञ्जनवस्तय ।
स्वेदा क्रिग्घा निवातञ्च स्थानं प्रावरणांनि च ॥
रसाः पर्यासि भोज्यानि स्वाद्धम्ललवणानि च ।
यहणं यत्तु तत् सर्वं कर्चन्यं वातरोगिणाम् ॥ ६४ ॥
मिंपित्लादि क्रियस्त्र चर्कस्य ॥ ६४ ॥
पटोलफलकैर्यृपो वृष्यो वातहरो लघुः ।

वाट्यालकरुतो यूपः परं वातिवनाशन ॥ ६४ ॥
परोलफलकैरित्यादौ, तथा वाट्यालकरूतो यूप इत्यादौ—पूपयीनित्वान्सुड़ादशेऽपि वोध्या, अन्य तु केवलयोरेन परोलफलवाट्यालकयोयूपविवेत्याहु ॥ ६५॥

वलाया पञ्चमूलस्य दशमूलस्य वा रसे। श्रिजाशीर्षाम्बुजानूपक्रव्यादापिशितैः पृथक् ॥ आजियान् रसान् स्निम्धान् दध्यम्लव्योपसंस्कृतान्। भोजयेद्वातरोगार्त्तं तैर्व्यक्षलक्ष्णैर्नरम्॥ ६६॥

वलाया इत्यादि — बलाविभिस्तिमि साथनद्रव्येरजाशीर्षादयस्तु चत्वार पृथक् साध्या , तेन द्वादश रसा मवन्ति । बलादिभिर्द्धश्वत ऋत्वा तेन मासरम कर्ग्याय इत्याहु । अन्ये तु प्रास्थिकेऽम्मिस् कर्षमान वलामूलमनुरूपमजाशीर्पमामञ्च प्रविष्य पाचनीयम् , परिशिष्टे पलचतुष्टये सित ब्लेख छानयित्वा परिभर्जनीयम् । तटनुमैन्धवाम्लदाधित्रिकटून्यनुरूपाणि दत्त्वा सस्कार्य्यम् । एव बृहत्पच्चमूलेन च माधनम् । श्रजाशीर्षवत् कूर्मकर्कटायम्बुजाना मामेन, तथा मिहववराहादीनामानू-पाना मासेन, तथा क्रन्यादाना मासेन रससाधन कुर्य्यादिति ॥ ६६ ॥

पञ्चमूलीवलासिद्धं द्विरं वातामय हितम् ॥ ६७ ॥ पञ्चमूलीत्यादि—स्वल्पा पञ्चमूली ॥ ६७ ॥

वाजिगन्धा वलास्तिस्रो दशमूली महौषधम्। द्वे गृधनख्यौ रास्ना च गलो मारुतनाशनः॥ ६८॥

वाजिगन्धेत्यादी — बलास्तिस्र इति वला, आतिवला, नागवला चेति ख्याता.। अत्र बला पीतपुष्पा, आतिवला धेतपुष्पा, नागवला गोरस्रतगडुला । गृध्रमखीदय श्वेतरक्षपुष्पभेदात् । गणस्वादनेन सर्वा काथादिकलपना कार्या ॥ ६८॥

> कोलं कुलत्थं सुरदारु रास्ना माषातसीतैलफलानि कुष्टम्। वचाशतोद्वे यवचुर्णमम्ला

> > न्युष्णानि वातामयिना प्रदेहः ॥ ६६ ॥

कोलिमित्यादि—कोल बदरफलम् , श्रतसी तिसीति भाषा, नैलफल तैल-विशिष्टफलम् । एतानि समभागचूर्णीनि काञ्जिकन पिष्ट्वा तर्साष्ट्रत्य लेपो देयः ॥ ६६ ॥

त्रान्पवेशवारोष्णप्रदेहो वातनाशनः । निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् । कृष्णामारिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतः ॥ ७०॥ भान्पवेशवार इति वराहादिमामकृत । तस्य पारिभाषिकी सज्ञामाह निरस्थीत्यादि ॥ ७०॥

शाल्वग्रस्वेदः

काकं ाल्यादिः संवातमः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः । सानूपमांसः सुस्वित्रः सर्वस्नेहसमावृतः । सुस्रोण्णः स्पष्टलवणः शास्त्रणः परिकार्तितः॥ तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम्॥ वातभ्रो भद्रदावादिः काकोल्यादिस्तु साँभ्रतः । मांसेनात्रापघं नुल्यं यावताम्लेन चाम्लता । पद्वी स्यात् खद्रनार्थञ्च काञ्जिकाद्यम्लभिष्यते । चतुं सेद्वोऽत्र तावान् स्यात् सुखिन्नन्तं यता भवत् ॥ समस्तं वर्गमर्ज्ञं वा यथालाभमथापि वा । प्रयुक्षीतेति वचनं स्वत्र गणकर्मण् ॥ ७१ ॥

गाल्य मेरमण्ड काको न्यार्टिररमार न्याकी न्यार्टिरिति काकोल्यार्ट-गए । बात्र इति महहाबांहि।एत्य नद्य । नवांन्नहत्य काञ्चिक सुना नीवा-न्तुपाडनाडि । नानूपनाम इति, श्रानूपाख ग्रहराज्य । सर्वनेवहाः मिप्नेलव-मामञ्जान । उपनाइ डान उप्पनहुलप्रनेप । उक्तमेन गाल्नएमेन्ड निवृद्योनि बातव इत्यादि । मौश्रुत इति विभेषानेन सुश्रुतोक्षकाके ल्याहिनयो बाह्य न पुनरप्टव मिटित इति । बृद्धर्माश्रुते तु काकोल्याहिर्यथा 'काकोल्या मधुकामेहे नीवछवमको सह । ऋ देवृद्धिन्तुगाची पुरदर्शक नमप्रात्न्य । बीवन्ती मासृता श्रमा मुद्दोन्ना नेति कुन्ननित् । कानोल्यादित्य । पित्तगोरितानितनागन. १ इति । महदार्बाहिर्यथा 'महदारु निशे मार्गी बन्दो नेषश्वितका । बदा किएटी बाच-गनी बगगोजु तर्दुना । अर्की श्रद्धा गरिका युक्तुन्द्राञ्चनेदक । बरी स्थित पाटनास्क् वर्यामुबद्धको यव । महदार्वाफीरत्येष गर्यो बातविनारान. रहि । मासेनात्रीपत तुल्यमिति काकील्यादि महदानादिगएडयमीपथ माम्न तुल्य बाह्यम् यथानामपेद्रेडिप माम तुल्य देयम् तेन व तापहम् । मृन्द्रस्ताह भ्रम्लादिमिश्च म्म्कार्यं काकोल्यादित्रय त्रिमि ' इति। प्रत्यार्थ -प्रम्मादिमि प्रम्मकेहलब्लाके मेस्कार कार्य । मस्कारलाटक त्रय तावन्मात्र देश यावडम्मस्किरधनवरान्वमात्र न्यादित्पर्ध । काकोल्यादिन्तथा महदाबादित्तयानुषमासम् पद्रत्वयन्तु स्त्कार्यम् । मस्कार्व्यनाटन्य प्राधान्यम् तेन त्रयमेव मन्कार्व्यतात् प्रत्येक नुल्यभागमिति । दावनान्तेन चान्नता पट्वी स्माटिनि प्रसाव्टात् ईप् प्रन्यदः स्यादिनि व्यक्तिः काञ्चिकादिशन्ताव सुरामीबारतुषोडक्य न्यान्नद्रियम्स्वन्तिकाकालाहीना अहरास 11 97 11

> अश्वगन्धाद्यं घृतम् अश्वगन्धाकषाये च कल्के चीरचतुर्गुण्म् । घृनं पक्कनतु बातम्नं बृष्यं मांसविर्वदनम् ॥ ७२ ॥

श्रथगन्थार्षेतं चतुर्गुं स्वाहित्यर्थादश्वगन्धाकाथोऽपि चतुर्गुस्य । कल्का-ऽप्यथगन्थाया एव ॥ ७२ ॥

> दशमूलाद्यं घृतम् दशमूलस्य निर्य्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितै । चीरेख च घृतं पकं तर्पसं पवनार्त्तिजित् ॥

काथोऽत्र त्रिगुणः सर्पिःप्रस्थः साध्य पयःसमः ॥ ७३॥ दशमृलघेन दशमृलकाथोऽपि त्रिगुण , चीरन्तु लेहसममिति चक । जेजन्दमेन तु लेहश्चतुर्गुण काथ चीर ले सममिति । अस्मित्रधे परिमापा 'एकदित्रि-द्रवेद्रंथे कुर्यात् तेहचतुर्गुणम् । चीर तेहमम दणाचतुर्मिश्च चतुर्गुणम् रहति । अस्मार्थ — यथेको द्रव नम्न तेनैव चातुर्गुण्यम् , यत्र तु द्वी वा तत्र द्वाभ्याम् , यत्र नयस्तत्र त्रिभिरिति चातुगुण्य मिलित्वा, चीरन्तु लेहसमम् , चतुर्भिरिप मिलित्वेव चातुर्गुण्यम् , एव मर्वत्र व्याख्येयम् । जावनीयैरित्यत्र जीवनीयदराकम् , अन्तकसञ्चत्वादनेनैव कल्क ॥ ७३॥

छागलाद्यं घृतम्

श्राजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तश्रह खुरादिकम् ।
पञ्चमूली इयञ्चैच जल द्रोणे चिपाचयेत् ।
तन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
जीवनीयैः सयण्ट्याद्धेः सीरञ्चैच शतावरीम् ॥
छागलाद्यमिदं नामा सर्ववातिकार उत् ॥
श्रादिंते कर्णश्रले च वाधिय्ये मूकिमिन्मिने ।
जडगद्रद्पंगूनां खंखे गृधिसकु ज्ञयोः ।
श्रापताने उपतन्त्रे च सर्पिरेतत् प्रशस्यते ॥
द्रोणे द्रव्यतुलाश्रत्या स्याच्छागदशम्लया ।
पृथक् तुलार्ख यण्ट्याह्रद्वयं देयं द्विधोक्तित ॥ ७४ ॥

पृथक् तुला स यण्ट्याहरूय प्यास्त्रपाता । जिस्ता स्थान वर्मविनिर्मुक्तिमत्यादि — चर्मादिहीन तरुणच्छागमास द्वानिरात्पलमान गृहीत्वा, दशमूलञ्च द्वानिरात्पलमान जलद्रोणे पक्तव्यमित्याह वृन्द । चक्रस्त्वाह त्यक्तम्यद्वसुरादिकमिति अहणयोग्यतादर्शनार्थम्, न युनगक्ततिमानम्रहणार्थञ्च

अत पद्माशत्पलानि मासस्य दशम्लस्य च, अतएव वस्यीत द्रीण इति, एव मय्रादिषु धतेष्वपि । वृद्धवेद्यव्यवहारस्त्वाकृतिमानेन । केचित्तु शतावर्था कल्क-माहु रसस्यानुके , तदयुक्तम्, यतः कल्कद्रव्यमध्ये नोक्त , अत चीरसाहचर्येण रसो प्राध्यः । चीर-शतावरीरसा प्रत्येक खेहसमी । यध्याहृद्ध्य देय द्विभोक्तित इति स्थलजनलजमेदेन यष्टिमधुद्धय श्राद्धामित्ययं । वृन्दस्तु ' वृत तैले च योगे च यद्द्वय पुनक्च्यते । तज्ज्ञातव्यमिहार्थेण मागते। हिगुणन च ' इति वचनाल् यष्टिमधुने। मागद्वय श्राद्धामित्याहु । व्यवहारस्तु वृन्दोक्तमेतेनव ॥७४॥

एलादितैलम्

प्लामुरासरलशैल जदारकौन्तीचएडाशटीनलद्चम्पकहेमपुष्पम् ॥
स्थौऐयगन्घरसपूतिदलामृणालश्रीवासकुन्दुरुनलाम्बुवराङ्गकुष्ठम् ॥
कालीयकं जलदककेटचन्दनश्रीजीत्याः फलं सविकसं सहकुङ्कुमञ्च ।
पृक्षातुरुष्कलघु लाभतया विनीय
तैलं वलाकथनदुग्धयुतञ्च दथ्ना ।
सार्द्ध पवेत्तु हितमेतदुदाहरन्ति
वातामयेषु वलवर्णवय प्रकारि ॥ ७४ ॥

प्लेत्यादि—कीन्ती रेणुकम्, चयडा चोरपुष्पी, नलद मासी, हेमपुष्प नागकेशरपुष्पम्, स्थौणय अन्धिपर्यम्, गन्धरसः स्वनामस्यात , पृति खट्टाशी, दल तेजपत्रम्, अमृणानम् उशीरम्, श्रीवासा नवनीतखादिः, कुन्दुरुः कुन्दुरु-वीटिः, नख नखाः, अम्यु बालकम्, वराङ्ग गुडत्वक्, कर्कटः समुद्रकर्कटकः ; चन्द्रनश्री श्रेतचन्द्रनम्, अन्य द्व श्रीः काष्ठखोटिरित्याहु , जात्याः फल जातिफलम्, सविकमिमिति विकसा मिश्रिष्ठा, पृक्ता पिष्डिकपुष्प (पिर्डि इति माषा) तुरुष्कः सिल्हक , लघु अगुरु । लामतयिति यथालाम द्रव्य मानञ्च प्राह्मम्, लम्यत इति लाम , कर्मिण धन्न्, नेष्ठ भावप्रत्यय । विनीय-कर्क्कीकृत्य। तैलसुरमर्गन प्रस्थपरिमितम्, नलाकथन बलाकाथ तस्य च प्रस्थद्रयम्, दुष्ध दिध च प्रत्येक लेहसमम्, एव मिलित्वा चतुर्गुण पाक । अन्ये तु काथश्चतुर्गुण, दिध दुन्ध प्रत्येक लेहसममित्याहु । व्यवहार पुनरनेनेव । इदमेव तैलम् अन्य पाकमेदेन पठिन्त, यथा,—तिलतेल श. ४, उपेचार्थ तिलतेल पल ४, पाकार्थ दिध श ४ दुन्ध श ४, कल्कार्थ मिलिष्ठा कर्ष १२, इति प्रथमः पाकः । काथार्थ वारियाला मृल पल ३२, पानीय शः ३२, शेष श ६, कल्कार्थ रेणुका चोरहुल गन्धरस पुरुष्तक १८। तेजपत्र उशीर कुड मुणा पृका सरल शैलज बला ऐषा प्रत्येक कर्ष १, इति द्वितीयः पाक । तृतीयपाके तु कल्कार्थ एलाचि मुरा चम्पककालिका आढका नागेश्वर गाठियाला खट्टाशी नवनीतखाटी कुन्दर नखी श्वतचन्दनशोधितसमुद्रकर्कट कालीयक जातीफल कुकुम सिल्हक अगुरु मासी कुड एतत् सर्व चूर्णाकृय गन्धोदकेन तैलसमेन तृतीयः पाक ॥ ७४ ॥

बलाशैरीयतैले

वलानि काथकल्काभ्यां तैलं पकं पयोऽन्वितम् । सर्ववातविकारझमेवं शैरीयसाधितम् ॥ ७६॥

नलातेले नलाकायस्त्रिगुण , चीरन्तु स्नेहसमम्। अन्य तु नलाकाथश्चतुर्गुण , दुग्वन्तु इतसममित्याहुः। एव शैरीयतैलम् ॥ ७६ ॥

महावलातैलम्

वलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च।
यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसा तथा॥
श्रष्टावण्टो श्रुमा मागास्तैलादेकस्तदेकतः।
पचेदावाप्य मघुरं गणं सैन्घवसंयुतम्॥
तथागुरु सर्जरसं सरलं देवदारु च।
मिश्रष्टां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम्॥
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम्।
शतावरीमध्वगन्धां शतपुष्पं पुनर्नवाम्॥
तत् साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृगमयेऽिप वा।
प्रिचिप्य कलशे सम्यक् सुनिगुप्तं निधापयेत्॥
वलातैलीमदं नाम्ना सर्ववातिवकारनुत्।

4

यथावलमतो मात्रां स्तिकाये प्रदापयेत्।
या च गर्भार्थिनी नारी क्षिण्युमश्च यः पुमान् ॥
क्षिण्वाते मर्महतेऽभिहते मथितेऽपि वा।
भन्ने श्रमाभिषन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत्॥
सर्वानाक्षेपकादीश्च वातव्याधीन् व्यपोहति।
हिकाकासमधीमन्थं गुल्मश्वास सुदारुणम्॥
पर्णमासानुषयुज्यैतदन्त्रवृद्धिगपोहति।
प्रत्यप्रधातुः पुरुषा भवेच स्थिरयावनः॥
पतिद्ध राहा कर्त्रव्यं राजमात्राश्च ये नराः।
सुषिन सुकुमाराश्च धनिनश्चेव ये नराः॥ ७७॥

बलामूलकपायस्यत्यादि — मुश्रुतस्य । अत्र दशमूलस्य मिलित्वेव काथ, यत्र केलकुलत्थानास्य मिलित्वा अपरकायस्य, ण्व बलाक्रांभन मह त्रयः काथास्त्रधाययः स्वित द्रवचतुष्टयम् । ण्या चतुर्णा द्रवाणा प्रत्येक तैलप्रस्थापेष्ययाष्ट्रगुणा भाग ण्वज्ञ मिलित्वा तैलात् द्वाज्ञिशद् गुणा द्रवा भवित । तैलक्ष्व मानिवेशपानिक्ष्त्रात् प्रत्यपरिमितमेव प्राह्मम् । ण्वत्र इति एक्तिकृत्य । आवाष्य मधुर गगमिति काकोल्यादिगण कल्कोङ्त्य । मैन्धवसयुतमिति मैन्धवमगुवादि च कल्काकृत्य पक्तवम् । कालानुमारिवा तगरपादिका, तदमावे शियलाङ्घोषड । तगर पिर्यात्वगरम्ल, शारिवा स्थामलता, पुननवान्त कल्क । सुनिग्रुप्तमिति वातातपादिपित्वार्त्य सुनु रिवतम् । तैलिमिद सुश्रुते मृदगर्भे पिठत्, तेन सृतिकाय प्रदापयिति विशेषेणोक्षम् । अन्त्रवृद्धिमपोहतीति अप्राप्तक्तकोषामन्त्रवृद्धि व्यपोहतीति, प्राप्तकन्तकोषयो पुनरमाध्यत्वात् । राजमात्रा इति राज्ञ इव मात्रा परिच्छद्र। येषा ने तथा ॥ ७७॥

विष्णुतैलम्

शालपर्णी पृश्चिपर्णी चला च वहुपुतिका।
परएडस्य च मूलानि वृहत्यो पृतिकस्य च॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
पपान्तु पलिकै कल्कैस्तैलप्रस्यं विपाचयेत्॥

श्राजं वा यदि वा गव्यं त्तीरं दद्या चतुर्गुण्म्।
श्रस्य तैलस्य पकस्य श्र्णु वीर्घ्यमतः परम्॥
श्रश्यानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम्।
तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्वव्याधिनिवारण्म्॥
श्रायुष्मांश्च नर पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत्।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा॥
हृज्ञूलं पार्श्वश्रलञ्च तथैवाद्यीवभेदकम्।
कामलापार्ग्हरोगमं शर्कराश्मरीनाशनम्॥
त्रीलेन्द्रिया नष्टश्रुका जरया जर्जरीकृता।
येषाञ्चेव त्रयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दृष्टणा॥
श्रिदितं गलगरहञ्च वातशोणितमेव च।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाञ्चेव प्रयोजयेत्॥
एतद्दं वरं तैलं विष्णुना परिकीर्त्तितम्॥ ७८॥
शालपणीत्यादि—स्रष्टम्॥ ॥ ॥

नारायखतैलम्

बिल्वाग्निमन्थः श्योणाकः पाटला पारिभद्रक ।
प्रसारणयश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥
वला चातिवला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ।
पषां दशपलान् भागांश्चतुद्रों गुं अभ्यसः पचेत् ॥
पादशेषं परिस्नाव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पर्णीचतुष्ट्यम् ।
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुननवम् ॥
पषां द्विपलिकान् भागान् पेषायित्वा विनिन्निपेत् ।
शतावरीरसञ्चेव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥
श्राजं वा यदि वा गव्यं नीरं दत्वा चतुर्गुगम् ।
पाने बस्तौ तथाभ्यक्ते भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥

श्रश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ।
पङ्गुल पीठसपीं च तैलेनानेन सिध्यति ॥
श्रयोभागे च ये बाताः शिरोमध्यगतास्च ये ।
दन्तग्रले हनुस्तम्मे मन्यास्तम्मे गलग्रहे ॥
यस्य श्रुप्यति चैकाइं गतिर्यस्य च विद्वला ।
चीथिरा लक्षजिह्वास्य मन्दमेधस पव च ।
श्रव्यत्रा च या नारी या च गर्भ न विन्दति ॥
वातात्तीं वृपणी येपामन्त्रवृद्धिश्च टारुणा ।
पतत् तैलवरं तेपां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥
तगरं नतमत्र स्यादमाये शीतली जटा ॥ ७६॥

नारायर्णतेले पारिमद्रक पालितामादार इति प्रमिख, प्रसारणा गन्धभादा-लिया इति ख्याता, ऋतिकला गोरचतण्डुला, तगर तगरपादिका, तदभावे शियलिछो-पड पिण्टतगरम्लिमित्यन्ये । आज व यदि वा गन्यमिति यद्यपि गन्याजपयमा प्राया गुणमाम्य तथा च गोचीरेण पक्ष तलिमित्यनिषयन्दि प्रिटोपहरक्र भवतीनि प्रत्येतन्यम्, अन्ये त्वाहु चीरान्तरिनवृत्त्यर्थे विशेषख्यापकमिति । नारायणमञ्जा चास्य विष्णुनिर्मितत्वाद्, शतावरीरससाधितत्वादा ॥ ७६ ॥

महानारायणतेलम्

शतावरी चांश्रमती पृश्लिपणीं शटी वला।
परण्डस्य च सूलानि वृह्तयोः पूतिकस्य च।
गवेधुकस्य सूलानि तथा सहचरस्य च।
पपां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्॥
पादावरेणे पृते च गर्भञ्चैनं समावपेत्।
पुनर्नवा वचा दारु शताहा चन्दनागुरु॥
शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा वला।
श्रश्वाहा सन्धवं रास्ना पलार्द्यानि च पेपयेत्॥

गन्याजपयसो - प्रस्थी हो द्वावत्र प्रदापयेत्।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपावयेत्।
श्रस्य तैलस्य सिद्धस्य शृश्च वीर्ध्यमत परम्।
श्रश्वानां वातभग्नानां कुश्वराणां नृणां तथा।
तैलमेतत् प्रदातव्यं सर्ववातनिवारणम् ॥
श्रायुष्मांश्च नरः पीत्वा विश्वयेन दढो भवेत्।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात् कि पुनर्मानुषी तथा॥
हच्छूलं पार्श्वश्रलञ्च तथैवाद्धीवभेदकम्।
श्रप्वीं गण्डमालाञ्च वातरक्तं हनुत्रहम्।
कामलां पाण्हरोगञ्च श्रश्मरीञ्चापि नाशयेत्॥
तैलमेतद् भगवता विष्णुना परिकीर्तितम्।
नारायण्मिति ख्यातं वातान्तकरणं परम्॥ ५०॥

महानारायणतेले अशुमता शालपणीं; पृतिकस्य नाटाकरन्न इति ख्यातस्य मूल श्राद्धः, गवेधुक गोरवतपडुला, सहचरो किएटी, शताह्य शुल्का (सीया) इति ख्याती, चन्दन रक्तचन्दन, शेलेय रीलजं; तगर तगरपादिका, स्थिरा शालपणीं, अश्राह्म अश्रगन्था। एवा कल्काना प्रत्येक पलार्द्धम्। प्रस्थी दौ द्वाविति पृथग् दौ दौ प्रस्थी। ८०॥

अश्वगन्धातेलम्

शतं पक्तवाश्वगन्घाया जलद्रोगेऽशंशेषितम्। विकाव्य विपचेत् तैलं त्तीरं दत्वा चतुर्गुणम्। कल्केर्मृणालशाल्क-विसक्षिञ्जल्कमालती-पुष्पेहीवरमधुक शारिवाष्मकेशरैः॥ मेदापुर्नवादात्तामश्चिष्ठाबृहतीद्वये। पत्तैलवालुत्रिफला मुस्तचन्दनपमके॥ पकं रक्षाश्रयं वातं रक्षपित्तमस्ग्दरम्। इन्यात् पुष्टिबलं कुर्यात् कृशानां मांसवर्दनम्॥

रेतोयोनिविकारझं व्रणदोषापकर्पणम्।* पण्डानिप चृपान् कुर्य्यात् पानाभ्यक्वानुवासनै ॥¤१॥

श्रश्वगन्धातिले श्रशशोषितमिति पादशोपिनम् । शृयाल स्थूलमृयाल, निसन्तु स्वल्पमृयाल, विमशन्देन मृयालनिर्गत प्रतान , किञ्चलक पद्मवराट , पद्मकेशरस्य उक्तत्वात् , श्रन्ये तु तत्पलिकन्जलकमित्याहु । मेदास्थाने सहिति पाठे सहा महा महा मापपर्यो ॥ ६ १॥

मुलकाद्यं तैलम्

म्लकस्वरसं तैलं चीरद्ध्यम्लकाञ्जिकम् ।
तुल्यं विपाचयेत् कल्कैर्यलाचित्रकसैन्यचै ॥
पिष्पल्यतिविषारास्ना-चिवकागुरुचित्रकै ।
भल्लातकवचाकुष्ठ-श्वदंष्ट्राविश्वमेपजैः ॥
पुष्कराह्नशटीविल्वशताह्वानतद्दास्त्रीः ।
तत् सिद्धं पीतमत्युष्रान् द्दित वातात्मकान् गद्दान् ॥

दश

मूलकेत्यादि—चरकस्य । मूलकत्वरसादीनि चत्वारि द्रवाणि तैलममानि । बलाचित्रकमैन्धवैरित्यत्र बलाशिग्रुकमैन्धवैरित्येव पाठश्चरकेषु दृश्यते, अन्ये तु उभयत्र चित्रकदर्शनात् एकत्र चित्रकराष्ट्रेनैरण्डमूल व्याचचते, तत्तु टीकाक्टाइनं व्याख्यातमिति ॥ ८२ ॥

रसोनतैलम्

रसोनकल्कस्वरसेन पर्क तैलं पिवेद् यस्त्वनिलामयार्च ॥ तस्याशु नश्यन्ति च वातरोगा प्रनथा विशाला इव दुर्गृहीता ॥ =३॥

रमोनकल्कस्वरमेन पक्षमिति रसानकाथकल्कान्यामित्यर्थ । अत्र स्वरम एव चतुर्गुण, अन्ये तु स्वरम केहमम, तीय त्रिगुणमिति । तथा वातरीगाः नस्यन्ति यथा विशाला दुर्गृहीताः अनिधगतवाक्यार्थाः असम्प्रता वा प्रन्था शास्त्राणि ॥ ८३ ॥ केतक्याद्यं तैलम्

केतिकनागवलातिबलानां

यद् बहुलन रसेन विपक्षम्।

तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं

मारुतमस्थिगतं विनिद्दन्ति॥

श्रनल्पवचनात् तत्र तुल्ये काथतुषोदके।

श्रल्को अपि भवेत् स्नेहो य साध्य केवले द्रवे॥ ८४ ॥

केतकीत्यादि—वाग्मटस्य । केतक्यादीनामितवलान्ताना मिलिताना काथ । बहुलेनेति घनेन, बहुलेनेति वचनात् अष्टभागावाशिष्टल काथस्य, स च चतुर्गुण । अनल्पेति वचनात् कांक्षिकमपि चतुर्गुणमिति चक्र , अतोऽष्टगुण पाक स्त्यर्थ ॥ प्रशा

सैन्धवाद्यं तैलम्

द्वे पत्ते सैन्धवात् पञ्च शुगुरुवा ग्रन्थिक-चित्रकात्।
द्वे द्वे मञ्जातकास्थानि विशातिर्द्वे तथाढके ॥
श्रारनालात् पचेत् प्रस्थं तैलमतैरपत्यदम्।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोऽर्तिसवैवातिवकारनुत्॥ ८५॥
सैन्थवाबे मञ्जातकास्थानि विशातिरित्याकृतिगणनात ॥ ८५॥

स्वल्पमापतैलम्

तैलं संकुचिते अध्यक्को माषसैन्धवसाधितम् ।
वाहुशीर्षगते नस्यं पानञ्जीत्तरमक्किकम् ॥
काथोऽत्र माषनिष्पाद्यः सैन्धवं कल्कमेव च ॥ ८६ ॥
स्वल्पमाषतैले माषसैन्धवसाधितमिति माषकस्य काथः, सैन्धवस्य द्व कल्क
इति चक्र । अन्ये द्व केवलसैन्धवस्य कुत्रापि कल्कादर्शनान्माषसैन्धवयोः कल्कः,
अनुक्षद्रवलाञ्जल चतुर्शुणमित्याद्व ॥ ८६ ॥

त्रथमं मापतैलंम्

माषात्मगुप्तातिविषोरुवूक-रास्त्राशताह्वालवर्गैः प्रपिष्टै । चतुर्राणे मापवलाकपाये,

तैलं कृतं हन्ति च पत्तवातम् ॥ ८७ ॥

मापात्मगुप्तेत्यादौ श्रतिविषा मूर्नेति निस्नल , यष्टिमान्त्रित्यन्ये । मापनलयोश्च

मिलित्वा चतुर्गुण काथ ॥ ८७ ॥

द्वितीयं मापतैलम्

माप्रस्थं संमावाप्य पचेत् सम्यग्जलाढकं ।
पादशेषे रसे तस्मिन् चीरं दत्वा चतुर्गुण्म् ॥
प्रस्थञ्च तिलतेलस्य कल्कं दत्वाचसम्मितम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ।
रास्नात्मगुप्तामधुकं चलाव्योपं त्रिकण्टकम् ॥
पचाधातेऽदिते वाते कर्णश्रले सुटारुणे ।
मन्दश्रतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोपजे ॥
इस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामववाहुके ।
शस्तं कलायखं च पानाभ्यञ्जनवस्तिमि ॥
मापतेलिमदं श्रेष्टमृद्ध्वजनुगदापहम् ॥ ८८॥
मापतेलिमदं श्रेष्टमृद्ध्वजनुगदापहम् ॥ ८८॥
मापतेलिमदं श्रेष्टमृद्ध्वजनुगदापहम् ॥ ८८॥

तृतीयं मापतैलम् मापातसीयवकुरएटककएटकारी-

गोकगटदुगद्धकजटाकिपकच्छुतोयै । कार्पासकास्थिशग्वीजकुलत्थकोल-काथेन वस्तिपशितस्य रसेन चापि॥

शुरुव्या समागधिकया शतपुष्पया च सरराडमूलसपुनर्नवया सरराया ।

रास्नावलामृनलताकटुकैर्विपकं मापाच्यमेतद्ववाहुहरञ्ज तैलम्॥ श्रद्धाङ्गशोपमपतानकमाढ्यवात-ो हान् मालेपकं समुजकम्पशिर प्रकम्पम्।

नस्येन वस्तिविधिना परिषेचनेन

हन्यात् कटीजघनजानुरुजस्य सर्वाः ॥ ८६ ॥

मापानमीत्यादी—अतसी वर्जुलकलाय , कश्चिदतिविषेत्याह, कुरयस्को
कियरी, गोकयरको गोच्चर , द्रयद्धकजदा श्योखाकमूल, किपकच्छु स्क्रशिम्बी । मापादिकिपिकच्छ्वनतेनैकः काथ , कार्पासास्थिप्रमृतिना कोलान्तेनापर
काथ , कोलब्च शुंक्कवदरम् । तथा वस्तिपिशितस्य छागमांसस्य काथस्तृतीय ।
विभिद्रविभिलित्वा चातुर्गुख्यम् , 'एकिद्विजिद्रवद्गव्ये कुर्यात् लेह चतुर्गुखम् '
इति वचनात् । सरणी प्रसारणी अमृतलता गुड्ची, कट्टक मरिच न तु लताकन्त्री ॥ ८६ ॥

महामापतैलम्

मापस्याद्धांढकं दत्वा तुलांद्धं दशमूलतः। '
पलानि च्छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसं पचेत्॥
पूतशीते कपायं च चतुर्थाशावतारिते।
प्रस्थव्व तिलतैलस्य पयो दत्वा चतुर्गुणम् ॥
श्रात्मगुप्तोखवूकश्च शताद्धा लवणत्रयम्।
जीवनीयानि मिल्रष्ठा चव्यचित्रककद्फलम् ॥
सव्योपं पिष्पलीमूलं रास्नामधुकसैन्धवम्।
देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शटी।
पत्तरस्तसमे कल्के साध्येन्मगुद्दनाग्निना॥
पत्ताधार्तादिते वाते वाधिय्ये हनुसंग्रहे।
कर्णनादे शिरःशले तिमिरे च त्रिदोषजे॥
पाणिपाद्शिरोग्रीवाश्रमणे मन्दचंकमे।
कलायखञ्ज पांगुलेय गृश्रस्यामववाहुके॥
पाने वस्तौ तथाभ्यक्ते नस्यकर्णानिपूरणे।
तैलमेतत् प्रशंसन्ति सर्ववात्वजापहम्॥ ६०॥

त्रिशतीयप्रसारणीयतेलम् समूलपत्रशाखाञ्च जातसारां प्रसारणीम् । कुट्टियत्वा पलशतं दशमूलशतं तथा ।

श्रश्वगन्धापलशतं कटाहे समधित्रिपेत्। वारिद्रोगे पृथक् पक्तवा पादशेपावतारितम्। कषाया सममात्रास्तु तैलपात्रं प्रदापयेत्॥ द्धस्तथाढकं दत्वा द्विगुण्ज्वापि काञ्जिकम्। चतुर्गुेेेेेेेे पर्वा जीवनीये पर्वान्मिते ॥ श्रुक्षवेरपलान् पञ्च त्रिंशद्भृद्धातकानि च। द्वे पले पिष्पलीमूलाचित्रकस्य पलद्वयम्॥ यवत्तारपले हे चं मधुकस्य पलद्वयम्। प्रसारगीपले हे च सैन्धवस्य पलहयम्॥ सौदर्वलपले द्वे च मिल्लाया पलद्यम्। सवीर्येतानि संस्कृत्य शनैर्मृद्वश्निना पचेत् ॥ एतदभ्यक्षने श्रेष्ठं चस्तिकर्मनिस्हिण । पाने नस्ये च दातव्यं न कचित् प्रतिद्दन्यते ॥ श्रशीति वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच पैत्तिकान्। विश्राति श्रीष्मकांश्चेव सर्वानेतान् व्यपोहति॥ गृधसीमस्थिभङ्गञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्। अपसार्मथोन्मादं विश्रमं मन्दगामिताम्॥ त्वग्गताश्चेव ये वाता शिरासन्धिगताश्च ये। जानुसन्धिगताश्चेच पाद्पृष्ठगतास्तथा॥ श्रश्वो वाताच सम्भग्नो गजो वा यदि वा नर । प्रसारयति यसाद्धि तसादेषा प्रसार्गी॥ इन्द्रियाणां प्रजननी वृद्धानाञ्च रसायनी। पतेनान्धकचूष्णीनां कृतं पुंसवनं महत्॥ प्रसारशीतैलमिदं वलवर्णाशिवर्द्धनम्। भ्रपनयति वलीपांलतमुत्पाटयाति पत्ताघातम् । वातस्तम्भं सर्वाङ्गगतं वातगुल्मञ्च नाशयति । पतदुपसेव्यमानः प्रसन्नवर्गेन्द्रियो भवति ॥ ६१ ॥ म।पस्यार्द्धांडकमित्यादि—श्रद्धांडक द्वातिशत् पलानि । श्रत्रापि पूर्वेनत् यष्टि-मधुकस्य भागद्वयम् । लनणत्रयमिति सौवर्चल विड सैन्धवन्व, पुन मैन्धवमिति वचनात् सैन्धवस्यापि भागद्वयम् । जीवनीयानि इति जीवनीयदशकम् । पाणिपादशरोधीवाश्रमण इति पाणिपादादिकम्प इस्पर्थ ॥ ६०॥ ६१॥

बृहन्मायतैलम्

माषकाथे बलाकाथे राक्षाया दशमूलजे।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसमवे पृथक्॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं त्तीरं दत्वा चतुर्गुग्गम्।
राक्षात्मगुप्तासिन्धृत्थ-शताहैरग्रहमुस्तकै॥
जावनीयेवेलाव्योषैः पचेदत्तसमैर्नुघः।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽववाहुके॥
वाधिर्ये कर्णश्रले च कर्णनादे च दारुग।
विश्वाच्यामिदिते कुव्जे गृधस्यामपतानके॥
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावनेषु च दापयेत्।
माषतैलिमदं श्रेष्ठमूद्ध्वजञ्जगदापहम्।
काथे प्रस्था पडेवात्र विभक्त्यन्तेन भाषिताः॥ १२॥

मप्तप्रस्थमापतिले काथस्य प्रस्थस्याप्यत्वान्मापादीना प्रत्येक प्रस्थो आद्यः । मिलितदशमूलप्रस्यः, तथा यवकोलकुलत्थाना मिलित्वैन प्रस्यः । सर्वेत्रैन चतुर्गुर्यः अल देयम्, चतुर्भागोऽनशेष्यः । श्रतप्रवादः काथप्रस्थाः पहेनान्नेत्यादि—जीवनी-वैरिति जीवनीयदशकै ॥ ६२॥

महामापतैलम्

द्विपञ्चमूर्ली नि काथ्य तैलात् षोडशभिर्युणै । माषादकं साधियत्वा तं निर्च्यूहं चतुर्गुणम् ॥ ग्राहियत्वा तु विपचेत् तैलप्रस्थं पयःसमम् । कल्कार्थञ्च समावाष्य भिषग् द्रव्याणि बुद्धिमान् ॥ श्रश्यगन्धां शर्टां दारु वलां रास्तां प्रसारणीम् ।
कुष्ठं परूषकं भागीं द्वे विदार्थ्यों पुनर्नवाम् ॥
मातुलुङ्गफलाजाज्यो रामठं शतपुष्पिकाम् ।
शतावरीं गोचुरकं पिष्पलीमूलिविष्ठकम् ॥
जीवनीयगणं सर्व संहृत्येव ससैन्धवम् ।
तत् साधु सिद्ध विद्याय माषतेलिभदं महत ।
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् ॥
पद्माधाते हृनुस्तम्भे श्रदिते सापतन्त्रके ।
श्रववाहुकविश्वाच्योः सञ्जपंगुलयोरिप ।
हृनुमन्याप्रदे चैव श्रधिमन्थे च वातिके ॥
श्रक्तये कर्णनादे कर्णश्ले च दारुणे ।
कलायसञ्जरामने भैषज्यमिदमादिशेत् ॥
दश्मूलादकं द्रोणे निःकाथ्य पादिको मवेत् ।
काथश्चतुर्गुणस्तैलान्माषकाथेऽप्ययं विधिः ॥ ६३ ॥

दिपन्चमूलीमित्यादि — अत्र मापस्य काथस्यादकमानत्वमुक्तम्, तत्माहचर्याद्शमूलस्यापि काथस्यादक श्रेयम् । तैलात् पोहराभिगुँखेरिति तैलप्रस्योपत्तया

षोहरागुयाजलैरित्यर्थं, प्रस्य पोहरागुया सन् द्रोया मवति, तेन जलद्रोयोनत्यर्थ ।

माषदकन्व तैलात् पोहरागुर्योजेले साथित्विति योज्यम् । त दशमूलकाथ तथा

माषाकाथन्व तैलाञ्चतुर्गुया यथा स्यात् तथा प्राह्यित्वा तैलप्रस्य विपचितिति योज्यम् ।

पय मममिति दुग्ध तुल्य तेन नवगुर्या पाक इति चंक्र । अत्यव बच्यति दशमूलाहक

दोया इत्यादि । अन्ये तु दिपन्चमूलीं माधादकन्वैकीकृत्य जलद्रोयामात्रेया साथयित्याहु

तन्मते पन्चगुर्य पाक । अपरे तु दशमूलकथायेया तैलात् षोहरागुर्येन माधादक साथयि
त्वा तेन पादावरेषेया तैलप्रस्थपाक इत्याहु । अत्र पच्चे मिलितदश्रमूलपल २५६, जल
साराव २५६, रोगशाराव ६४, किन्तु अय पच्चे चृढैर्जाद्रियते कुत्रापि ध्वविधकल्पना
या अदृष्टलात् । दे विदार्यो विदारी कन्द चीरविदारी च, मातुलुङ्गफल मातुलुङ्गस्य

फलम् । जीवनीयगर्यामिति जीवनीयदशकम् ॥ ६३ ॥

मजसेह:

प्राम्यान् पौद्कानान्तु भिन्नास्थानि पर्वे ज्ञलं । तं स्नेहं दशमूलस्य कषायेण पुनः पर्वत् ॥ जीवकर्षभकास्फोता विदारीकपिकच्छुभिः । वातम्रेजीवनीयेश्च कल्कैर्द्धिचीरभागिकम् ॥ तत् सिद्धं नावनाभ्यक्कात् तथा पानानुवासनात् । शिरापवीस्थिकोष्ठस्थं प्रखुद्त्याशु मारुतम् ॥ ये स्यु प्रचित्यम्जान चित्रशुक्कौजसन्ध्य थे । वलपुष्टिकरं तेषामतत् स्याद्मृतोपमम् ॥ ६४ ॥

याम्यन्पौदकानामित्यादौ—दिग्रणचीरसाहचर्यादशम्लीक्वाथोऽपि दिग्रण पत्र याद्य ; अन्ये तु चतुर्श्रणभित्याहु. । वातक्षेतिरिति मधुरलवणस्कन्धायुक्षैर्वातहर-द्रन्ये भद्रदाविदिगर्णे । जीवकर्षभकयोः पुन पाठे भागद्दयग्रहणार्थः । आस्फोता हाफरमालीति स्याता ॥ ६४ ॥

चतुःस्नेहः

प्रश्च स्यात् त्रिफलायास्तु कुलत्थकुडवद्वयम् ।
कृष्णगन्धात्वगाढक्यो पृथक् पञ्चपलं भवेत् ॥
रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूलं पलोन्मितम् ।
जलद्रोण पचेत् पाद्शेषं प्रश्लोन्मितं पृथक् ॥
सुरारनालद्ध्यम्लसीवीरकतुषोदकम् ।
कोलदाडिमवृत्ताम्लरसं तैलं घृतं वसाम् ॥
मज्जानञ्च पयश्चैव जीवनीयपलानि पट् ।
कल्कं दन्वा महासेहं सम्यगेनं विपाचयेत् ॥
शिरामजास्थिगे वाते सर्वाङ्गैकाङ्गरोगिषु ।
वेपनाचेपग्रलेषु तमभ्यक्ने भदापयेत् ॥ ६५ ॥

प्रसा स्यादित्यादि—अत्र त्रिफलाया मिलित्वा प्रस्यः, कृष्णगन्धा शोभा-•जनम् अस्यास्त्वक् मृतत्वक् । अन्ये तु कृष्णगन्धा शमीत्याहुः, तन्न जत्कर्णे 'त्रिफ- लापम्य जुलत्यार्द शिग्रुत्वगादकी'' इत्यादि पाठात् । दशमूल पलोन्मितमिति प्रत्येक-म् । प्रम्थोन्मित पृथगिति सुरादीनां पयोऽन्तानां प्रत्येक प्रस्य इत्यर्थ । जीवनीय-पलानि पहिति मिलित्वा । मेहासेह इति चतु स्नेहस्य सम्रा ॥ ६५ ॥

कुब्जप्रसारगीतैलम्

प्रसारणीशत छुएणं पचेत् तोयामेणे शुभे। पादशेषं समं तैलं दिघ दद्यात् सकाञ्जिकम् ॥ दिगुणव्य पयो दत्या कलकांन् द्विपलिकांस्तथा। विवकं पिष्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम् ॥ शतपुष्पां देवदार राम्नां वारणिप्पलीम्। प्रसारएयाश्च मूलानि मासी भन्नातकानि च। पचेन्यदिशना तैलं सर्ववातिकारनुत्॥ श्रशीतिं नरनारोस्थान् वातरोगान् व्यपोहति। छुव्जस्तिभितपङ्गुत्वं गृधसीं खुडकार्दितम्। इन्तुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं वापि नियच्छति॥ ६६॥

कुण्जममारणीतैले समिति पादावारीष्टवाथसमस्, आदक्तिमत्यर्थः । दिधि द्यात् मकाश्रिकमिति दिषकाश्रिके तैलसभे । तेन तैलदिथकाश्रिकामां प्रत्येकमाढ-सम्, द्विगुण्छ पय इति आढकद्वमित्यर्थः । अन्य द्व सकाश्रिकमिति पथेविरोषण् कृत्वा काश्रिकस्यिप द्वेगुण्यमिच्छन्ति, व्यवहारस्तु पूर्वेग्वेव । खुढको अन्थिवातः,

मन्य तु वातकण्टक इत्याहु ॥ १६॥

त्रिशतीयप्रसारणीतेलम्
प्रसारण्यास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलत ।
तुलां तुलां पृथग्वारिद्रोणे पादावशेषिते ॥
तैलाढकं चतु चीरं द्रधितुल्यं द्विकाञ्चिकम् ।
द्विपलैप्रीन्यकचारप्रसारण्यक् नैन्धवे ।
समञ्जिष्ठान्नियञ्चाहै पलिकै जीवनीयकै ॥
शुरुव्याः पञ्चपलं द्रवा विश्वद्भह्नातकानि च ।
पचेद्वस्त्यादिना वातं द्वन्ति सन्धिश्चरास्थिगम् ॥

पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञाबलवर्णाग्निसिद्धये । प्रसारणीयं त्रिशती श्रद्धं सौवर्चलन्त्विह ॥ ६७ ॥

प्रसार एयास्तुलामित्यादौ-दशमूलस्य मिलित्वा, तुला । पृथक् वारिद्रोण इति तिस्पु तुलासु प्रत्येक जलद्रोणदानमित्यर्थः । सैन्धवसान्निध्यादद्य मौवर्चल गृह्णन्ति वृद्धाः । प्रन्थ्यादीनां यष्टशाह्यान्ताना प्रत्येक द्विपलम्, जीवनीयदशकन्तु प्रत्येक पिलकम् । त्रिशद् मह्मातकानीत्याकृतिमानात् ॥ ६७

सप्तशातिकं प्रसारणीतैलम्

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम् । शतं ग्राह्यं सद्दचरात् शतावय्या शतं तथा॥ बलात्मगुप्ताश्वगन्धा-केतकीनां शतं शतम्। पचेचतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं भिषक्॥ मस्तु मांसरसं चुकं पयथ्याढकमाढकम्। द्ध्यादकसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ द्रव्याणान्तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलोन्मिता। तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम्॥ रास्ना सैन्धवपिष्पल्या मांसी मञ्जिष्ठयप्रिका । तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ तथा। शतपुष्पा ब्याघनसं श्रुग्ठी देवाह्रमेव च। काकोली चीरकाकोली वचा भह्नातकं तथा॥ पेपयित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारणी । नातिपकं न हीनञ्च सिद्धं पूर्तं निघापयेत्॥ यत्र यत्र प्रदात्व्या तन्मे निगदत् शृखु । कुञ्जानामथ पङ्गूनां वामनानां तथैव च ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः। वातशोणितदुष्टानां वातोपद्दतचेतसाम् ॥ स्त्रीमद्यर्ताण्युकाणां वाजीकरण्युत्तमम्।

वस्तौ पाने तथाभ्यद्गे नस्ये चैव प्रदापयेत्। प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान् गदान्॥ध्न॥

ममूलपत्रामित्यादी—रात प्राह्ममिति प्रमारयया इत्यर्थ । तथा शब्दात्
महत्त्राच्च शतमित्यन्वय । केतकी केन्नोडा इति ख्याता । पत्रेच्चतुर्गुणे तीय इत्यत्र
पनोक्षरागतमानत्वाचतुर्गुणतायस्य न द्वैगुण्यम् । अन्ये तु सम्यग् वीर्व्याधानार्थं
द्वेगुण्यम् चतुर्गुणमष्टगुण गृहन्ति, इदन्तु न व्यवहारमिद्धम् । द्वैदिति प्रमारएयादीना केतन्यन्ताना पादावशिष्टकाथे । चुक ग्रहण्यधिकारोक्तविधिना कार्य्यमित्येके, अन्ये तु महाराजप्रसारयया वद्यमाग्रेन चिष्टिनत्याहुः । द्वन्याणामिति
कत्कद्रव्याणाम् । अर्व्यप्ताशिका इति अर्व्यप्तमाना । तगर पूर्ववद्याख्येयम्, केशर
नागकेगरम् , मिक्षप्रयष्टिका इति मिक्षष्ठायाश्रद्धान्दसत्वाद् इस्व , यष्टिका यष्टिमधु ।
व्यावनस्य नसी, देवाह देवदानः । मह्नातकासहत्वे रक्तचन्दन देवम् ॥ ६ = ॥

एकादशशतिकं प्रसारणीतैलम्

शासामूलदलै प्रसारिणतुलास्त्रिस कुरुण्टात् तुले छित्रायाश्च तुले तुले रुवुकतो राम्नाशिरीपात् तुलाम्। देवाह्न सकेतकाद् घटशते नि काथ्य कुम्भाशिके तोये नैलघट तुपाम्बे कलसी दत्त्वाढकं मस्तुंन ॥ शुक्राच्छागरसादथेजुरसतः चीराच द्वाढकं पृक्षाकर्केटजीवकाद्यविकसाकाकोलिकाकच्छुरा-सूदमेलाघनसारकुन्दुसरलाकाश्मीरमांसीनसैं कालीयोत्पलपद्मकाह्मयनिशाककोलकग्रन्थिकै ॥ चाम्पेयाभयचे।चपुगकटुकाजातीफलाभीरुमि श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धृद्भवै । . तेलाम्भोदकम्टमरांघ्रिनलिकावृश्चीरकचोरकै कस्त्रीदशमूलकेतकननध्यामार्थ्यगन्धाम्बुर्भि ॥ कौन्तीत।र्च्यजशस्त्रकीफललघुश्यामाशताद्वाम्यै महातित्रफलाव्जकेशरमहाश्यामात्रवङ्गान्वितैः। सव्योपैस्त्रिपलैमहीयसि पचनमन्देन पात्रेऽग्निना पानाभ्यक्षनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् ॥

सर्वार्द्धाङ्गगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्ञाश्रितं
न्रेष्णमोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान्।
धातृन् वृंहयति स्थिरञ्च कुरुते पुंसां नवं यौवनं
वृद्धस्यापि वलं करोति सुमहद्धन्ध्यासु गर्भप्रदम् ॥
पीत्वा तैलिमदं जरत्यिप सुतं स्तेऽमुना भूरुहा
सिक्ना शोषमुपागताश्चफिलनः स्निग्धा भवन्ति स्थिरा ।
भग्नाङ्गा सुदृढीभवन्ति मनुजा गावो हृयाः कुञ्जराः ॥६६॥

शाखामूलटलरित्यादि-अत्र नृतीया सहाथे विशेषणे वा । कुरुएटो नील-किएटी । रास्नाशिरीषयोर्मिलित्वा एका तुला । देवदारुकेतक्योर्पि मिलित्वैव तुला । घटशत इति द्रोखशते, कुम्माशिक इति द्रोखद्रयशेषे, तदुक्त द्रोखद्रयन्तु गर्प स्थाञ्जेयः कुम्मं म एवं च। 'अन्ये तु कुम्भो द्रोणिमत्याहु , 'नल्वणार्मखो-न्मानघटकुम्मकलमा॰ पर्य्याया इति वृद्धवाग्मटवचनात् कुम्मशब्दोऽत्र द्रोश्य-पर्याय.। तेन कुन्माशिके इत्यस्य द्रोखशेषे इत्यर्थ., किन्तु व्यवहार. पूर्वेखैव । श्रत्र द्रव्यजलयो बहुलत्वारेकिसम् पात्रे काथा दुष्कर तेन द्रव्य विमन्य जल तदनुमारेख दत्त्वा कथनीयम् । तेलघट तेलद्रोखम् । तुषान्तुकलसाविति काञ्जि-कस्य द्रोत्यद्वयम् । शुक्तादीनाञ्च चारान्ताना प्रत्येकमाढकम् । जीवकाष जीवनी-यदशकमष्टवर्गो वा, काकील्या भागद्वय जीवनीयगर्थेऽप्यस्था पठितत्वात्, विकमा मिलिष्ठा, कच्छुरा श्रक्तशिन्बी, दुरालभेत्यन्ये, घनसार कर्पूरम्, कुन्दु कुन्दुरू-मज्ञकम् सुगन्धि गन्धद्रव्यम्, कुन्दुरखेटिरिनि ख्यानम् । मरला सरलकाष्ट्रम्, न तु त्रिवृता, सुान्धिद्रव्यान्त पठितत्वात् , एव त्रन्धिकमिष् प्रन्थिपणीं, न तु पिप्पलीमूलम् उत्पलमप्युत्पलपुष्पं न तु कुष्ठम् , तस्य वद्यमाखत्वात् । चाम्पय चम्पकृतिलका, नागकेस्रो वा, अभयमुशीरम्, चोच गुडत्वक्, पूरा पूराफलम्, पूरावृत्तत्वागित्यन्ये, कड्का लताकस्तुरी, अमीरुः शतमूली, श्रीवासी नवनीतखोटि, चन्दन श्रेतचन्दनम्; तूँल मिल्हकम्, कटम्मरा प्रमारखी वृश्चिकपत्री वा, तस्या अधिर्मूलम् , दृक्षीर वितपुनर्नवा, कञ्चीरको गन्धराटी; ध्याम गन्धतृत्वम्, कौन्ती ' रेणुका, तार्द्यंज रमाञ्जनम्, फल कट्फल मदनफल वा, लघु अगुरु, श्यामा प्रियगु., महाश्यामा श्यामालता, एषा प्रत्येक त्रिपलन्, न्योषस्य मिलित्वा त्रिपल याद्यम् । अत्र कल्कभूयरत्वादेलादितैलवद्धमैर्गन्धद्रव्ये प्रथमः पाक , मध्यमस्तु दितीयः, उत्तरीन्तु तृतीय रति । अत्र गन्धवृद्धयर्थं कर्पूरकस्त्रीन्या पत्रकल्कः

कार्यः। पत्रकलकत्त्वस्यञ्चाचे वाच्यम् । पत्रकलकस्य तः मानमत्र तैलानुरूपतः, सुगन्धितैलान्तरोक्तमानानुसागद्वा श्रेयम् ॥ ६६ ॥

अष्टादशशतिकं प्रसारणीतैलम्

समूलदलशाखायाः प्रसारएयाः शतत्रयम् । शतमेकं शतावय्या अश्वगन्धाशतं तथा॥ केतकीनां शतञ्चेकं दलमूलाच्छतं शतम्। शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च ॥ जलद्रोणशतं दत्वा शतभागावशेषितम् ॥ तच्छेषेण कषायेण कषायद्विगुणिन च । सुव्यक्तेनारनालेन दाधमएडाढकेन च॥ चीरश्रुक्षेचुनिर्यासच्छागमांसरसादकैः। तैलाद् द्रोंखं समायुक्तं दढे पात्रे निधापेयत्॥ द्रन्यारि यानि पेष्यारि तानि वस्यास्यतः परम्। मज्ञातकं नतं शुरुठी पिष्पली चित्रकं शटी ॥ वचा पृक्का मसारएया पिष्पल्या मूलमेव च। देवदार शताह्वा च स्दमैला त्वक् च वालकम्॥ कुङ्कमं मदमञ्जिष्ठा तुरुष्कं निखकागुरुः। कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गध्यामचन्दनम् ॥ ककोलं निलका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम्। शटीहरेखुशैलेयश्रीवासञ्च सकेतकम्॥ त्रिफला कच्छुराभीरु सरला पद्मकेशरम्। भियंग्शीरनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा॥ दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम् । कडुकाजातिपूगानां फलानि शल्लकीरस ॥ भागांश्चिपत्तिकान् दत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ विस्तीर्षे सुद्दे पाते पाक्यैषा तु प्रसारणी।

प्रयोगः षड्विधश्चात रोगार्त्तानां विधीयते । अभ्यङ्गात् त्वग्गतं द्दन्ति पानात् कोष्ठगतं तथा ॥ पकाशयगते वस्तिर्निरूह सार्वकायिके। भोजनात् सूच्मनाडीस्थान् नस्यादूष्वीगतं तथा ॥ एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम्। प्तदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि॥ श्रनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमा । सिक्का पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिन ॥ चुद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ न प्रसूते च या नारी सा च पीत्वा प्रसूयते। श्रवजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा सुतं लभेत्॥ श्रशीति वातजान् रोगान् श्रीष्मकान् पित्तजानिप । सांश्वपातसमुत्थांश्च नाशयेत् (चित्रमेव तु ॥ पतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत्। कृत्वा विष्णेर्विलञ्चापि तैलमेतत् प्रयोजयेत् ॥ काथे तुलाई रास्नायाः किलिमस्य च दीयते। भन्नातकासहत्वे तु तत् स्थाने रक्रचन्दनम् ॥ त्वक्पत्रपत्रमधुरी-कुष्ठचम्पककेरिकाः । ग्रन्थिकोपौ मरुवकमधिकत्वेन दीयते ॥ कर्पूरमददानब्च शुक्रगन्धोदकिकया। द्रव्यशुद्धिः पाकविधिभीविप्रसारगीसमः॥ १००॥

नम्लद्लेत्यादि—दशम्लाच्छत शतिमिति विल्वादीनां दशाना प्रत्येक शतिमत्यर्थ.
धृद्धा अत्र काथमध्ये राखादेवदारुणोरिष प्रत्येक पञ्चाशत्पलानि प्रक्षिपन्ति, अतः ध्व चक्रोऽपि काथे तुलाईतिमत्यादि वच्यति। जलन्तु यथोक्षमेव देयं नत्वधिकम्। कषायदिगुणेनारनालेन द्रोणदेयनेत्यर्थ.। चीरादीना प्रत्येकमादकम्। समायुक्तिमिति पद कषायेणेत्यादिमिस्तृतीयान्त्रैयोंज्यम्। प्रसारण्या अपि मूलिमत्यन्वयः। त्वक् गुडत्वक्, मद.कस्तूरी, तुरुष्क सिल्हकः। गयदासस्तु अत्र तुरुष्क नसचोरकिमिति पठित्वा अगुरुखाने चीरपुष्प लिखति । उत्पलम् उत्पलपुष्प, ध्याम गन्धुरुषम् . पत्र तेजपत्रम्, राटा गन्धराटी, श्रीवास नवनीतखोटि । स्रकेतकिमस्यत्र मेटगन्न भिति पठित्वा एडगजबीजमाह गयदाम । कच्छुरा श्र्कारिम्बीमूलम्, भरला मरल-काष्ठम्, पद्मिक्शरारं पद्मिक्शलकः, नलद मासी, जीवकाध जीवनीयदशकम्, नागपुष्प नागकेरारपुष्पचृर्णम्, कद्धका लताकरत्रो, फलानीति कदुकादिभिक्षिभ मम्बध्यते । शह्मि स्वनामख्याता, रसो गन्धरमः । अत्र त्रिफलाया मिलित्वा प्रत्रत्रयम्, एय जीवनीयदशम् लयोराप्, प्रत्येकन्तु त्रिगलभ्रष्टणं कल्कस्यातिवाहुल्यम् स्यादिति । अत्रापि कल्कभ्यस्त्वात् पूर्ववत् अधम सुगन्धिद्रव्ये प्रथम पाक , मध्यमेग्तु दिन्तीय , उत्तरेसर्तिय इति । अत्रापि तृतीयपाको गन्धे।देकन्, केचिन्तु द्वितीय पाको-ऽपि गन्धोदकेन-छन्ति । अत्रोपदेशादनुक्षमप्याधिक गन्धद्रक्य देयमित्वाह त्वकपत्र-त्यादि, त्वक्ष्म् तेजपत्रम्, पत्रन्तु तेजपत्रम्, प्रतिविध्याह कर्प्रत्यादि ॥ १०० ॥

महाराजप्रसारणीतैलम्

शतत्रयं प्रसारण्या द्व च पातसहाचरात्।
श्रश्मगन्यैरण्डवला वरी राम्ना पुनर्नवा ॥
केतकी दशमूलञ्च पृथक् त्वक् पारिभद्रतः।
प्रत्येकमेषान्तु तुला तुलाई किलिमात् तथा ॥
तुलाई स्थाञ्छरीपाञ्च लाक्तायाः पञ्चविंशति ।
पलानि लोभ्राञ्च तथा सर्वमेकत साध्येत् ॥
जलपञ्चादकशते सपादे तत्र शेषयेत्।
द्रोण्द्रयं काञ्चिकञ्च पड्विंशत्यादकोन्मितम् ॥
चीरदभो पृथक् प्रस्थान् दश मस्त्वादकं तथा।
रच्चरसादकौ चैव छागमांसतुलावये ॥
जलपञ्चचत्वारिंशत्यस्थान् पके तु शेपयेत्।
सम्दश रस-प्रस्थान् मञ्जिष्ठाकाथ पव च।
कुडवोनादकोन्मानो द्रवैरेतैस्तु साध्येत्।
सुश्चितिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥

काञ्जिकं मानतो द्रेाणं शुक्तेनात्र विधीयते । श्राद्य एभिद्रेवे पाक करको भन्नातकं कर्णा। नागरं मरिचड्चैव प्रत्येकं पद्पलोन्मितम्। भन्नातकासहत्वे तु रक्षचन्दनमुच्यते ॥ पथ्याचधात्र्याः सरलं शताह्वा कर्कटो वचा । चोरपुष्पी शटी मुस्ताद्वयं पद्मञ्च सोत्पलम् ॥ पिष्पलीमुलमञ्जिष्ठा साश्वगन्या पुनर्नवा । दशमूलं समुदितं चक्रमदी रसाञ्जनम्॥ गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयगण्स्नथा। एवां त्रिपलिकैभीगैराद्य पाका विधीयते॥ ेदेवपुष्पीबोलपत्रं श्रत्नकीरसशैलजे। प्रियद्ग्रंशीरमधुरीमांसीदारुवलाचलम्॥ श्रीवासी नलिका खोटि सूत्मेला कुन्दुरुर्मुरा। नस्रीत्रयञ्च त्वक्पत्रीमपरां पृतिचम्पकम् ॥ मदनं रेखुका पृका मरुवञ्च पलत्रयम्। प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ गंन्धोदकन्तु त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम्। प्रत्येकं सवलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः॥ कुष्ठार्द्धभागोऽत्र जलप्रस्थास्तु पञ्चविंशति । श्रद्धीवशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्मणि ॥ गन्धाम्बु चन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्येत । कलकोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक् कालीयककुडूमम्॥ भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं तताकस्त्रिका तथा। लवङ्गागुरुककोलजातीकोषफलानि च॥ एला लवङ्गञ्जली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम्। कस्त्री पद्पलं चन्द्रात् पतं साईव्च गृह्यते ॥ वेधार्थञ्च पुनश्चन्द्रमदौ देयौ तथोन्मितौ।

महाप्रसारणी सेयं राजभीग्या प्रकार्त्तिता ॥ गुणान् प्रसारणीनान्तु वहत्येपा वलोत्तमान् । काञ्जिकं माननी द्रोणः श्रुक्तेनात्र विधीयते ॥ १०१ ॥

रातत्रयामिलादि-दरामूल पृथक् तुलेत्यन्वय , दशमूलस्य प्रत्येक शतपल प्राह्मम् । किलिम देवदार । लोधाच तथेति पञ्चविशति पलानीसर्थ । जलपञादकशते सपाद इत्यादकशतस्य पाद पद्मविशत्यादकास्त्रेन जलस्य पत्रविशत्यादकाधिक पद्मशतादक मिलर्थ । तत्र रापयेद् द्रोणद्रयभिति तेषु द्रीलद्भय स्थाप्यमिलर्थ । यद्यपि कान्जिकस्य पटविशत्यादकास्तथापि काश्चिकद्रोखमात्रेख व्यवहार अन्यथा काञ्जिकस्येव गन्ध. स्यादिति श्रतएव चक्ता बच्चति काञ्जिक मानता द्रायमिति । मञ्जिष्ठाकाथ कुटवीना-दहीत्मान इति पश्चत्रशारावपरिमित । एभिईवैरिति काथकाञ्चिकादिभि मर्वे । नागर सुषठी। अत्र मञ्जानकामहत्वे तु रह चन्टन देयम् । श्रत पव बदयित मञ्जातके त्यादि। अस विभातकन् , पद्म पद्मपुष्पम् , उत्पल नीलोत्पलम् दशम्ल ममुदितमिनि, तेन दरामूलस्य मिलित्वा पलत्रयमित्यर्थ । चक्रमर्द एडगजवीजन् । जीवनीयो गण इति जीवनीयदराकन्। पथ्याचधात्र्य इत्यन्न त्रिफलायाश्च प्रत्येकमेव पलत्र्य प्राधान् इह समुदितमिति पदाभावात् । हिनीयपाकमाह देवपुष्पीत्यादि-देवपुष्पादीना कलक । देवपुर्मी टेबहुली, बोलो गन्धरस । शलकीरम शल्लक्या रम , अन्ये तु राह्मभीरसराब्देन कुन्दुरुमाहु , यदुक्ष शष्टार्थवे ' कुन्दुरस्तीद्यान्ध स्यात् भीषण राष्ट्रकीरस ।' तन्मते भागदय कुन्दुरा । वला वालकम्, चल मिल्हक , खीटि काष्ठखेरि । नर्खात्रयीमति यद्यपि पञ्चनस्या भवन्ति, यदुका [।]नर्खा पञ्चविधा द्या गन्धार्थ गन्धतत्वरै । काचिद्रदरपत्रामा तथोत्पलदलाऽपरा । काचिदश्रसुरा-कारा गजकर्णसमाऽपरा । वराहकर्णमद्वाशा पद्ममी परिकीचिना' इति । तथाप्य-त्राचासु चतसपु मध्ये नखीत्रय आहाम, वराटकिंग्वनाया निषिद्धत्वात्, यथा---करिकर्ण तुरगखुर नाम प्रयुक्षात गन्थयोगेषु । घृषेषु वदरोत्पलपत्र न वराहकर्णमुम-यत्रापि ।' त्वक्पत्री नेजपत्रम्, पृ्ति राष्ट्राणी, चम्पक चम्पककालिका, प्रत्येक पलत्रय-मिलन्वय , । गन्धोदके त्वक्पत्री तेजपत्रम्, पत्रन्तु सुगन्धि पत्रान्तरं तेजपत्रसदृश वाटियापत्रमिति ख्यातम् । वलामूल वाट्यालकस्य मूलम् । कुष्ठाद्वभाग इति कुष्ठस्य मर्दिद्धादशपलीमत्वर्थ । गन्थाम्बुचन्द्रनाम्बुग्यामिति गन्धाम्बु गन्धादक तचीक्षमेव चन्दनाम्तु चन्दनमात्रेखाई शृतम्, अन्ये तु सुपिष्टशीखरहचन्दनमिश्र वारिमात्र वदन्ति । नातीकोषफलानीति नातीकोषो रममार , तथा जातीफलकेलथं । भट्ट-

श्रिय श्वतचन्दनम्, लवङ्गद्रञ्जो लवङ्गवल्कलम्। चन्द्र कर्पूर्, वेधार्थं पत्रकल्कार्थम्। श्रस्य तेलस्य पत्रिका लिख्यते,--कृष्णतिलतेल श ६८, प्रतिशत काथार्थ-गन्थ-भादालिया पल ३००, पीर्तामण्डीमूल पल २००, अश्वगन्धा १०० पल, एरएट-मूल पल १००, वारियालामूल १०० पल, शतमूली १०० पल, गस्ना १०० पल, पुर्ननवा १०० पल, केतकांमूल १०० पल, दशमूल प्रत्यक १०० पल, पालि-तमादार छाल १०० पर्ल, देवदार ५० पल, शिरीधमूल ५०पल, लाचा २५ पल लोध २५ पल, पाकार्यं जल ३४३ शराव, समुदायेन तु जलशराव ८४०० द्रोंखमानेन तु द्रोख १३१, श १६, सरमानेन तु २०४००, प्रतिशत शेषश ५, पल १, तो ६, ममुदाय शेष १२० शराव, शुक्त ६४ शराव, दुग्ध ४० शराव, दिध ४० शरान, दिधमस्तु १६ शरान, इत्तुरस ३२ शरान, झाग मास पल ३०० पल, पाकार्थ जलशराव १८०, शेष ६८ शराव, मिल्रष्टा ६० पल, पाकार्थ जल ६० शराव, शेष ग १५। कल्कार्थ-रक्तचन्दन त्रिकटु एवा चतुर्णी प्रातिपल ६, हरीतको, बहेडा, आमलकी, सरल, शलुफा, समुद्रकर्कट, काकडाश्रङ्गीत्यन्ये बच, चोरहुली, शटी, नागरमुथा, केउंटामुथा, पश्चपुष्प, नीलीत्पल, पिप्पलीमूल, मिलाहा, अश्वगन्धा, पुनर्नवा, एडची, रसाजन, गन्धतृष्ण, हरिद्रा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोलो, चीरकाकोलो, मुगानी, मापाणी, जीवन्ती, वष्टिमधु पदा प्रत्येक पल ३, दरामूल मिलित्वा पल ३, इति प्रथमः पाक । द्वितीयपाके गन्धकल्कार्थं—देवहुली, गन्धरस,तेजपत्र, राल्लकोरम, रैालज, भियगु, वीरणमूल, महुरी, जटामासी, देवदारु, बलामूल, मिल्हक नवनीतखाटि, नालुका, काष्ठखोटि, सूत्रमेला, कुन्दुरु, मुरा, नदरपत्र नखो, अश्वखुर-नर्खी, उत्पलपत्र नखी, तेजपत्र, पोयारा, खट्टाशी, चम्पककालिका, मदनक, रेगुका, पिडिङ्गफूल, स्वल्पपत्र तुलसी, एषा प्रत्येक पल ३ । गन्धोदकार्थ तेजपत्र, पत्रक, वाटियापत्र, वीरसमूल, मुरा वरेलामूल एवा प्रति पल २५ कुष्ठ पल १२ तोला ४, पाकार्थ जल १०० शराव, राष ५० शराव । अनेन गन्धोदकेन द्वितीय पार्क तृतीयपाके कल्कार्थं –नागकेशर, कुड, गुडत्वक्, कलम्बक, कुकुम, श्रेतचन्दन, गाठियाना. लताकस्तूरी, लवड, अगुरु, कक्कोल, रमवास, जातीफल, एलाची, लवझवाकल एषा प्रत्येक ३ पल, कस्तूरी पल ६, कर्पूर तोला १२। चन्द्रनोदकार्थं - अतचन्द्रन पल ५०, पाकाथ जल शराव ५०, शेप शराव २५ । अथवा सुपिष्टचन्दन जले गोलियित्वा चन्दनोदक कार्यं, द्वितीय-पाकोक्षगन्धोदक शराव २४ । तनस्तृतोयपाक्रवेधार्थं कर्पूर तोला १२, कस्तृरी पल ६,

ij

ण्य मिद्धे तेले कपूराहि पिष्ट्वा नच्चृर्णमन्प्रतेलञ्ज माजन द्वन्ता मिश्रणीय, नटनु मिद्धोप्णमकर्नातेलेन मम्यक् मिश्रायेत्वा शरोवेण पिवाय स्थापनायमिति वेधनविधि । गुणान् प्रमारणीनामिति पूर्वाक्षप्रमारणीतैनाना ये गुणान्नानेव वलीत्तमानित्य पिकतेवन वहुत्वेनेत्यर्थ ॥ १०१ ॥

शुक्रकरणम्

श्रत्र शुक्रविधिर्मग्ड प्रस्थ पञ्चाढकांन्मिनम् ।
काञ्जिकं कुडवो दभो गुडपस्थोऽम्लम्लकात् ॥
पलान्यद्यौ शोधितार्द्रात् पलपोडशकं तथा ।
कणाजीरकसिन्धृत्थहरिद्रामरिचं पृथक् ॥
द्विपलं भाविते भाग्डे चृतेनाप्ट-दिनस्थितम् ।
सिदं भवति तच्छुकं यदावनार्थ्यं गृह्यते ॥
तदा देयं चतुर्जातं पृथक्षपत्रयोन्मिनम् ॥ १०२॥

काशिकमञ्ज्ञनात्र मुक्त यात्वामित्युक्तम्, अत्र यथा कर्तव्य तटाह् अन्नेत्यादि । —मण्टस्य मक्तमण्डस्य प्रथ्य । कुडवी द्रम इति इवेद्वे गुण्याच्छरावृद्धयम्। गृहस्य
प्रथ्य इति पोटम पत्नानि । श्रम्नमूलक काश्रिकाथ स्थिनमक्तमित्रस्था इति व्यवहर्नित, अन्य तु काशिकस्थ मूलकक्तम्यमातु । शोधिताद्रोदिनि त्वमिह्तार्द्रकात् ।
भाविने भाण्डे घनेनेनि प्रोने साविते माण्डे इत्यन्त्रयः । इदः मत्रं माण्डे कृत्वा
सप्टिन यावत् स्थित मत् शुक्त मिद्ध सविन, अप्टिनानन्तर यदा नेले अपयुत्योन
तटा चतुर्जान दस्ता तैले देयम । अन्य तु प्रस्थ तण्डुलतेयन इत्यादिनैव मुक्त
कुर्निन ॥ १०२ ॥

गन्धद्रव्यशुद्धिः

पञ्चपञ्चत्रतियेन गन्धानां ज्ञालनं नथा। शोधनञ्चापि संस्कारो विशेषश्चाव वन्यते॥ श्राम्रजम्बूकपित्थानां वीजपूरकविल्वयाः नान्यकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपञ्चवम्॥ १०३॥ अवानोरे गन्धद्रव्यगृद्धर्थं प्रकरणमाह पञ्चपञ्चवतेथेनेति॥ १०३॥

नखीशुद्धिः

चएडीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिडीजलै । नखं संकाथयेदेभिरमावे मृएमयेन तु । पुनरुद्धृत्य प्रचाल्य भर्जियत्वा निषेचयेत् । गुडपथ्याम्बुना ह्येवं शुष्यते नात संशय ॥ १०४॥

नखीशुद्धिमाह चयडीत्यादि—चयडी महिषी, उक्त हि 'महिषी चाच्येत चयडी सीरभी च निगचते' इति । अस्या गोमय मलमित्यर्थ । महिषीमल सलि-लना नोड्य नख्या उत्स्वदन कार्य्यमित्यर्थ , किन्तु गोमयेनाप्युत्स्वद उक्त । 'गोविट् काञ्जितिच्छाम्लयुस्विन्ना' इति तिन्तिडी जलैरितिं निन्तिडी सलिले । लाभे मृण्मये-नापि कृष्णमृत्तिकामिश्रितनलेनेत्यर्थ । उक्त हि 'काथेयेत् करज कृष्णमृत्तिकामिश्रि-तजेल ।' समुदक्केटशुद्धिप्रकारोऽप्येव तत्रैवोक्तम् 'भनेनेव प्रकारेण शुद्धिमायाति कर्भट ।। १०४॥

वचाशुद्धिः

गोमूत्रे चालम्बुषके पक्त्वा पञ्चदलादेके। पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्तदेन स्वेदयेत्। गन्धोत्रा शुध्यते होवं रजनी च विशेषतः॥ १०४॥

वचाशुद्धिमाह गोमूत्र इत्यादि—अलंग्नुषक इति अलग्नुषासहितोदके, अल-म्नुषा च मुण्डिरी । सुरिमितोय गन्धोदकम्, अनेन बाष्पसेदः कार्य्यं । गन्धोदक स्थाल्या निचिष्य तदुपीर मच्छिद्र स्थाल्यनन्तर दक्ता मृदा स्थालीह्रयावकाशमालिष्य, मच्छिद्रस्थालीमध्ये वचा निचिष्य तत शरावेण पिधाय अधो ज्वाला देया इति बाष्पसेदिविधि । गन्धोया वचा रजनी च विशेषत इत्यनेन हरिद्राशुद्धिमपि बचा-शुद्धिविधयेव कुर्यादिति बोधयित ॥ १०५ ॥

. मुस्तकशुद्धिः

मुस्तकन्तु मनाक् चुएएं काञ्जिके,त्रिद्विनोषितम् । पञ्चपञ्चवपानीयस्त्रिक्षमानपशोषितम् ॥ गुड्गम्बुना सिच्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत् ततः । श्राजशोभाञ्जनजलैर्मावयेष्ट्यति शुध्यति ॥ १०६८॥, मुस्तकशुद्धिमाह मुस्तकमिखादि—मनाक् चुरुणमिति दरदिनतम् किञ्चित्पेषि तम् अनस्य जल मूत्रम् ॥ ॥ १०६ ॥

शैलजशुद्धिः

काञ्जिके कथितं शैलं मृष्ट्वा पथ्यागुडाम्बुना । सिञ्चेदेवं पुनः पुण्पेविविधैरिधवासयेत् ॥ १०७ ॥

रैालजशुद्धिमाह काञ्जिक इत्यादि—शैलिमिति शैलज काञ्जिके विषाच्य पत्र-पञ्चवतीयेम चालनमित्युपदेश ॥ १०७॥

बङ्घाशीशुद्धिः

यथालाभमपामार्गस्तुह्यादिद्वारलेपितम् । वाष्पस्तेदेन संस्वेद्य पूर्ति निर्लोमतां नयेत् ॥ दोलापकं पचेत् पश्चात् पञ्चपल्लववारिणि । खलः साधुमिवोत्पीड्य ततो नि स्नेहतां नयेत् ॥ श्राजशोभाक्षजनजलैर्भावयेद्य पुनः पुनः । शिग्रुमूलं च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् । पचेदेवं विशुद्धः सन् मृगनाभिसमो भवेत् ॥ १०८ ॥

खट्टारीासुद्धिमाह यथालामित्यादि—दोलापक्षमिति खट्टारीासुहक बस्नेख पोट्टली बद्ध्या पञ्चपञ्चकाथमध्ये दोलावज्ञम्बमानी पचेत्, तत श्राक्ट्य निष्पोड्य नि केहता नेयत्, तदनु रोगमाञ्चनादि काथे बद्धमा मानेयत् । तदनु पिष्टरोभाञ्चन-मूलक्रेत पिग्रहे तिश्रिषाय तदनु केतकीपुष्पपत्रवेष्टियित्वा कुरान बद्ध्या पद्मेनालिध्य पुटपानेन पचेत्, तदनु जात्यादिनुसुमेराधिवामयेदित्सुपदेश ॥ १० ॥

तुरुकं मधुना माव्यं काश्मीरञ्चापि सर्पिषा।
रिधिरेणायसं प्राक्षेगों मूर्त्रेशन्थिपर्णकम्॥
मधूदकेन मधुरीं पत्रकं तएइलाम्बुना॥ १०६॥
र्घेषत् चारातुगन्धा तु दग्धा याति न मस्रताम्।
पीता केतकगन्धाद्या लघुक्तिग्धा मृगोत्तमा॥ ११०॥
पक्कात् कर्प्रतः प्राहुरपकं गुणवत्तरम्।

ततापि स्याद् यदचुद्रं स्फटिकामं तदुत्तमम् ॥१११॥
पक्षश्च सदलं क्रिग्धं हरितद्युति चोत्तमम् ।
भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः ॥११२॥
मृगोश्टङ्गोपमं कुष्ठं चन्दनं रक्षपीतकम् ।
काकतुण्डाकृतिः क्रिग्धो गुरुश्चैवोत्तमोऽगुरुः ॥११३॥
क्रिग्धाल्पकेशरन्त्वस्रं शालिजो वृत्तमांसलः ।
मुरा पीता चरा प्रोक्षा मांसी पिङ्गजटाकृतिः ॥११४॥
रेणुका मुद्गसंस्थाना शस्तमानूपजं धनम् ।
जातीफलं सशब्दश्च क्रिग्धं गुरु च शस्यते ॥११४॥
पला सूद्मफला श्रेष्ठा त्रियङ्गः श्यामपाण्डरा ।
नखमश्चखुरं हस्तिकर्ण्ञचैव प्रशस्यते ॥
पतेषामपरेषाञ्च नवता प्रचलो गुण् ॥११६॥

सिल्हकादिशुद्धिमाह तुरुष्किमित्यादि । तुरुष्क सिल्हकम् । रुधिरेखेति कुनु-मेन श्रायसिम्तियगुरु, भान्यमिति सर्वत्र योज्यम् । इटानीं गन्धद्रव्याया प्रशस्ताना लक्षणमाह ईषदिस्यादि—ईषत् चारगन्धेनानुगतो मृगो मृगमद॰ । रक्षपीतकिमितिः किश्चिष्टकपीतसारम् । श्रस्तमिति कुकुमम । शालिज॰ खट्टाशी ॥ १०६—-११६॥

महासुगन्धि-लच्मीविलासतैले

जिक्कीचोरकदेवदारुसरलन्याघीवचाचेलकत्वक्पत्रे सहगन्धपत्रकशटोपथ्याचघात्रीघने ॥
एते शोधितसंस्कृतेः पलयुगत्याख्यातया संख्यया
तैलप्पस्थमवस्थितैः स्थिरमितः करके पचेद्रान्धिकैः॥
मांसीमुरामदनचम्पकसुन्द्रीत्वग्-

ग्रन्थ्यम्बुरुद्धारुवकैद्धिपतैः सपृकैः। श्रीवासकुन्दुरुनखीनतिकामिसीनाम् प्रत्येकतः पत्तमुपाज्यं पुनः पचेत्तु॥ पत्तातवङ्गचतवन्दनजातिपृति- ककोलकागुरुलताघुसुणै पलार्दैः। कस्तूरिकाच्तमहितामलदीप्तियुक्तेः

पक्तवा तु मन्दशिखिनैव महासुगन्धम् ॥
पञ्चिद्दिकेन वार्डेन मदात् कर्पूरामिप्यते ।
कर्पूरमदयोरर्डे पत्रकत्कादिहेण्यते ॥
पक्षपूतेऽज्युण्ण एव सम्यक् पेपणवर्तितम् ।
दियते गन्धवृद्धश्र्यं पत्रकत्कं तदुच्यते ॥
प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिह तैः पुनः ।
छिगुणैर्लदमीविलासः स्यादयं च तैलसत्तमः ॥
पञ्चपत्राम्तुना चाद्यो द्वितीयो गन्धवारिणा ।
दतीयोऽपि च तेनैव पाका वा धूपिताम्त्रुना ॥
तैलयुग्ममिदं तूर्णे विकारान् वातसम्भवान् ।
चपयेज्जनयेत् पुष्टि कार्नित मेधां धृति धियम् ॥ ११७॥

निक्षीत्यादि — जिक्को माजिषा, न्याघा विह्नोति ख्यात सुगिन्थद्रव्यम्, नर्खात्यादि — जिक्को माजिषा, न्याघा विह्नोति ख्यात सुगिन्थद्रव्यम्, नर्खात्या । चेलकत्वक् ग्रुवाकष्ट्रचस्य त्वक्ः, पत्र तेजपत्रम्, गन्धपत्र वाद्यियापत्रम् । पत्र कर्लके प्रथम पात्रः । पत्र कर्लके प्रथम पात्रः । विद्वीयपाकार्थं कर्लकमाह मासीत्यादि — सुन्दरी प्रियगुः, त्वक् गुढत्वक्, प्रान्थि प्रान्थित्याम्, अन्यु वालकम्, रुक् जुष्ठम्, निल्का नालुका, मिनि मधुरी, गुयामोहरीति लेकि । प्रिमर्गानीपत्रिरिष्यते दिनीय पाकः । छत्तायपाकार्थं कर्लकमाह प्रेलत्यादि । चलः सिल्हकः, चन्द्रन श्रेतचन्द्रनम्, जाति जातिकलम् पृति खट्टारी, लता लताकस्तुरी, प्रसुण कुकुमम्, अचसिहता कपपरिमितेत्यर्थं, अमलदीत चन्द्र तत्रामत्वात् कर्प्रमित्यर्थं । प्रमिस्तृतीय पाकः । कर्पूर कियन्मान प्राह्मानित्यत् आह पञ्चत्यादि — मदात् निर्दिष्टकस्तृरिका कर्पात्, पञ्चभा विमकात् तत्रको मागा रिक्तिकाद्याधिकमापत्रय मवति, तथा मानेन कर्प्रस्य द्रौ मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अतः कर्प्रस्य रिक्ताच्याधिकमापत्रय मवति, तथा मानेन कर्प्रस्य द्रौ मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अतः कर्प्रस्य रिक्ताच्याधिकमापत्रय सवित् तथा मानेन कर्प्रस्य द्रौ मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अतः कर्प्रस्य रिक्ताच्याधिकमापत्रय सवित् तथा मानेन कर्प्रस्य द्रौ मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अतः कर्प्रस्य देवावित्यत् आहः कर्प्रसद्योरित्यादि, इहः तैलकन्ते पत्रकर्को कियन्मानौ कर्प्रसदी देवावित्यत् आहः कर्प्रसदीरित्यादि, इहः तैलकन्ते पत्रकर्कामानमपेद्य कर्प्रसदीदिन तेले कर्कल्के त तद्येचया दिगुर्खा कर्प्रसदी

देयाविति पत्रकल्कमानमपि मङ्गया कथित मनित, तेन पत्रकल्के कस्तूर्यां कर्षद्वम, कर्पूरस्य तु श्रष्टरिक्तकाधिका द्वादश मापका किंवा कर्ष इति । पत्रकल्कशब्दस्यार्थ-माह पकपूत इत्यादि । पूर्वोक्तौ गन्थाना शुद्धिमस्कारावश्रापि काय्यो तथा ते पूर्वोक्तमहासुगन्धितैलसाधनद्वये जिड्ग्यादिभिद्धिगुर्थयदि तैलमेतत् साध्यते, तदा इदमेव तेल लद्दमीविलाससङ्कच्च मनतीत्याह प्रागुक्तावित्यादि ॥ पाकार्थमुमयोरिप तेलयोः क्रमात् द्रवद्वयमाह पन्चपत्राम्बनेत्यादि स्वाप्तपत्र कम्पूपत्र कपित्थपत्र विल्वपत्र वीजपूरकपत्रम्, एतत्मवमप्रगुण जल दत्त्वा चार्द्धभागावशेष पचेत् । गन्धादकेन तच्चोक्तमेव । धूपिताम्बनेति श्रगुर्वादिधूपितजलेनेत्यर्थः ॥१२२॥

इति वातव्याधिचिकित्साविवृति ।

ं अथ वातरक्तचिकित्सा।

वाद्यं लेपाभ्यङ्गसेकोपानाहैं र्वातशोणितम्। विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गमभीरमाचरेत्॥ द्रयोर्मञ्चेदस्क् श्रद्धस्च्यलावुजलौकसा। देशाहेशं व्रजेत् स्नाब्यं शिराभिः प्रच्छनेन वा। श्रद्धग्लोनौ च न स्नाब्यं रुक्ने वातोत्तरे च यत्॥१॥

वातव्याधिविशेषत्वाद्वातरक्षचिकित्सामाह वाद्यमित्यादि वाद्यमित्युत्तान स्वद्यासाश्रयमित्यर्थ । गम्भीरन्तु मेद प्रमृतिधात्वाश्रय तथा चोक्ष ' त्वद्यासाश्रय- मुत्तान गम्भीरन्तव्यत्तराश्रयम् ' इति । द्वयोरिति उत्तानगम्भीरयो । देशादेश क्षजोदिति स्थानान्तरप्रसर्खशीलम्, श्रद्भग्लानाविति कार्श्वे ॥ ॥

श्रमृतानागरधन्याक-कर्पत्रयेण पाचनं सिद्धम् । जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ २॥ श्रमृतेत्यादि-प्रत्येकमेककर्षं गृहीला कर्पत्रयमिलर्थ ॥ २॥ वत्साद-युद्धवः काथः पीतो गुग्गुलुसंयुतः। समीरणसमायुक्तं शोणितं सम्प्रसाधयेत्॥ ३॥ । वत्सादनीत्यादौ—पीतो गुग्गुलुम्युन इति शोधनार्थं प्रायेण गुग्गुली कर्षः, कर्पादे वा, मरामनार्थन्तु नापकचतुष्टयमितिः, एव मर्वत्र ॥ ३॥

वासागुङ्जीचतुरङ्गुलानामेरएडनैलेन पियेत् कपायम्। क्रमेण् सर्वोङ्गजमप्यशेपं जयेद्ख्ग्वातभवं विकारम्॥॥॥ वामेखादी—चतुरङ्ग् शोनालुफ्लम् । नन्त्रान्तरमवाददिककाथ्योपेष्नया

द्विगुणमेवैरण्डतेल प्रवेप्यमित्याहु ॥ ४ ॥

लीद्वा मुरडीतिकाचूर्णं मधुसर्पिःसमायुतम् । छिन्नाकाथं पिवन् हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम् ॥ ४ ॥ लीद्वेलानी—मुर्व्हातिका सुर्विहरीनि ख्वाता ॥ ४ ॥ तिस्रोऽथवा पञ्च गुडेन पथ्या जग्म्वा पिवेच्छिन्नस्हाकपायम् ।

तद्वातरकं शमयत्युदीर्ण-

माजानुसम्भिन्नमपि खनश्यम्॥ ६॥

तिलोऽथवेति पुरुषमपेस्य श्राकृतिमानात् तिल्ल पञ्च वा पथ्या. पिम्ट्वा समगुढेन लादेत्, तदनु गुङ्ख्या कपायमनुपेयम् ॥ ६ ॥

> घृतेन वातं सगुडा विवन्धम् पित्तं सिताद्या मधुना कफञ्च । वातासगुत्रं रुवुतैलिमिश्रा

ग्रुएठ्यामवातं श्रमयेद् गुङ्क्ची ॥ ७ ॥

ष्टतेनेत्यादि—षड् योगा ॥ ७॥

गुडूच्याः स्वरसं कर्कं चूर्णं वा काथमेव वा प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोखिनात्॥ = ॥ गुडूच्या लरमेन काथेन चूर्णेन वा॥ = ॥

दशमूलीश्दर्तं चीरं सद्य शूलिनवारणम् । परिपेकोऽनिलप्राये तद्वत् कोप्णेन सर्पिपा ॥६॥ दशमूलीलादा —दशमूलीश्व चीर परिषेक झते योज्यन्, न तु पेयन् ॥ श्रल वातरक्तप्रदेशे व्यथा । तद्वदिति परिषेक ॥ ६ ॥

पटोलकडुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम् । काथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥१०॥ पटोलेखीदी—कडुका कडुरोहिणीः, श्रमीरु शतावरीः, श्रमृत गुहृची । छान्दसत्वात् हस्त श्रय योग पिचोत्तरे ॥ १०॥

> गोधूमचूर्णाजपयो घृतश्च सच्छागदुग्धो रुबुवीजकल्कैः । लेपे विधेयं शतधौतसर्पिः

> > सेके पयश्चाविकमेव शस्तम्॥ ११॥

गोधूमेलादि — गोधूमचूर्णं छागदुग्धष्टताभ्या सन्धाय कोष्ण इत्वा वातो-त्तरे लेप , शीत रक्षोत्तरे । बृन्दे तु अस्मिन् योगे वृत न पठ्यते, तेन वृत विनाप्यय योग । सष्टत पुनरय चरके पठ्यते, यथा— 'वाते सरके सप्टत प्रदेहो गोधूमचूर्णं छगलीपयश्च ' इति । उभयमिप प्रमाण स्वृतिद्वैधवत् ॥ ११ ॥

लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ १२ ॥

लेप इत्यादी—निलान् दुग्धेन पिष्ट्वा तती भृष्ट्वा पुनर्दुग्धे निर्वापये-दित्यर्थ. वृद्धवाग्मटसवादात्, किन्तु खोलकभृष्टातिलान् दुग्धे निर्वापितान् तेनैव दुग्धेन पिष्ट्वा लेप इति व्यवहरन्ति वृद्धा. । तद्ददित्यनेन पूर्वोक्तयोगफलमित-दिश्यते ॥ १२ ॥

कडुकासृतयष्ट्याद्वश्चरठीकल्कं समाचिकम्। गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोखितम्॥ १३ ॥

कड़केलादि-कड़का कड़रोहिया। एषा चतुर्यो प्रत्येक दिमाषक कल्की-कृत्य चतुर्माषकेख मधुना गोमूत्रपलार्द्धेन च पेयम्॥ १३॥

घात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा कफाधिके । कोकिलाचामृताकाथे पिबेत् कृष्णां कफाधिके ॥ १४ ॥ पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् । कफरक्रप्रशमनं कच्छुवीसर्पनाशनम् ॥ वातरक्रप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥ १४ ॥—— कोकिलाचे का दी — कोकिलाचमूल प्राह्मम् । हव गुड एतमिति श्राहार विहाय गुड छतेनैव समभागेन सौहित्य कर्त्ते व्यमित्याहु । कच्छ्वा दृष्टफलमेतत् ॥ १४—-१५॥

संसर्गेषु यथोद्रेकं मिश्र वा प्रतिकारयेत् ॥ १६ ॥ सर्वेषु सगुडां पथ्या गुडूचीकाथमेव वा । पिष्पलीवर्द्धमानं वा शीलयेत् सुसमाहितः ॥ १७ ॥

गुहूचीतैलम्

्र गुंडूचीकाथकल्काभ्यां पचेत् तैलं तिलस्य च । पयसा च समं पक्त्वा भिषङ्मन्देन चित्तना ॥ हन्ति चात तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् । त्वग्दोपं व्रणवीसर्पकराडूदद्वविनाशनम् ॥ १८॥

ससर्गेष्विति । ससर्गेजेषु इन्द्रजेषु यथोद्रेकमित्येकदेशिल्वस्, मिश्रमिति समकुपिते ॥ १६—-१८ ॥

नवकार्यिकः

त्रिफलानिम्बमिक्षिष्ठा वचा कटुकरोहिणी। वत्सादनी दारुनिशा कपायो नवकार्षिकः॥ वातरक्षं तथा कुष्ठं पामानं रक्षमग्डलम्। कुष्ठ कापालिकाकुष्ठ पानादेवापकपीति॥ पञ्चरिक्षकंमापेण काय्योऽयं नवकार्षिकः। किन्त्वेवं साधिते काथे योग्या मात्रात्र दीयते॥ १६॥

नवकार्षिके दारुनिशा दारुहरिद्रा । पद्मरिक्तकमापेण मानेन त्रिफलादीना नव कर्पान् गृहीत्ना अष्टगुर्णेन जलेन काथ , किंवा च्यवहारिभिरेव नवकर्षे काथ कार्य । परन्तुं अत्र चायोग्यमात्रापेचया अधिक यस्त्वति तत्त् त्याज्यम् , पतदेवाह पन्नरिक्तकमापेणेत्यादि । अष्टगुर्णजलदानार्थेच बृन्देन कर्पादी तु पल यावदित्यादि परिभाषा लिखितेव ॥ १६ ॥

गुडूचीघृतम्

गुड्डचीकाथकलकाभ्यां सपयस्कं श्रतं घृतम्। हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम्॥२०॥ गुडूचीष्टते काथश्चतुर्गुण , चीरन्तु स्नेहसममिति व्यवहरन्ति॥२०॥

शतावरीघृतम्

शतावरीकल्कगर्भ रसे तस्याश्चतुर्गुणे। चीरतुल्यं घृतं पर्के वातशोणितनाशनम्॥२१॥ पव शतावरीष्टतम्॥ २१॥

अमृताद्यं घृतम्

श्रमृता मधुकं द्राचा त्रिफला नागरं वला।
वासारग्वधवृश्चीर-देवदाक्तिकग्रटकम् ॥
कटुका स्वरी कृष्णा काश्मर्थ्यस्य फलानि च।
रास्नाचुरकगन्धर्व-वृद्धदारघनोत्पलैः ॥
कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सिंप प्रस्थं विपाचयेत् ।
धातीरसं समं दत्वा वारित्रिगुणसंयुतम् ॥
सम्यक्सिद्धन्तु विज्ञाय भोज्ये पाने च शस्यते ।
वहुदोपान्वितं वातं रक्षेन सह मूर्चिञ्जतम् ।
उत्तानश्चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोषजानुजम् ।
कोण्डशीर्षे महाग्रले चामवाते सुदावणे ॥
वातरोगोपसृष्टस्य वेदनाश्चातिदुस्तराम् ।
मूत्रकृच्छुमुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥
एतान् सर्वान् निह्न्त्याश्च वातिपत्तकफोद्भवान् ॥
सर्वकालोपयोगन वर्णायुर्वलवर्द्धनम् ।
श्राध्वभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ २२॥

श्रमृतेलादौ — नरी शतावरी तया सह वर्चमानेति सवरी । गन्धर्ने, एरएड , उत्पत्त नीलीत्पज्ञम् ॥ २२ ॥

दशपाकवलातैलम्

वलाकपायकल्काभ्यां तैलं ज्ञीरचतुर्गुणम्। दशपाकं भवेदेतद्वातास्वग्वातिपत्तित्॥ धन्यं पुंसवनञ्चेव नराणां शुक्रवर्द्धनम्। रेतोयोनिविकारघ्रमेतद्वातिवकारत्रुत्॥ २३॥

दशपाकवलातेले वलाकाथक्षद्वर्शेण चतुर्गुखचीरसाहचर्थात्। तेलामर यथोक्षमानन द्रवेण कल्केन च दश वारान् पक्तन्यम् वांग्यांत्कर्पार्थम् । श्रमेन पाकेन रेण्णचयोऽप्यत्र नास्ति, चारगतरोहन न्यूनमागपूरणात् । श्रयद्य वपुपाकापदेश. प्रकृति
समसमवेतन्याध्यभिप्रायेण श्रेय । तेनान्यत्रापि प्रकृतिसमसमवेते न्याधी तलादिष्यनुकोऽपि बहुधा पाको वांग्यांत्कर्पार्थं युज्यत एव । विकृतिविषमसमवेते न्याधीमहिद्या न्याधिहरमय
कार्य्य नयोगराकेरिनिन्यत्वात्। तस्मात् विकृतिविषमसमवेते न्याधिमहिद्या न्याधिहरमेव भेषज दीयत इति कृत्वा यथोदिष्टमेव कार्य्यम्, प्रकृतिममममवेते तु दोषण्वयादेव
न्याधिचय इति दोषहरमेव मेषज दीयत इति, दोषप्रत्यनीकतया श्रमुक्तमिप क्रियत
एव । नच दोपहरमेव न्याधिहरमिति वाच्यम्, वातकारिणापि खदिरेण वातिककुष्ठानुपरायप्रसङ्गात्, खिटर हि वातजनकमिप कुष्टहरत्व प्रभावाद्दातिकमिप कुष्ठमुपशमयित,
न तु वातम्। किञ्च यदि दोषहरमेव न्याधिहरमिति सीत्रियते तदा प्रतिन्याधी वदु
प्रयोगकथनमि मुनीना न्यर्थं स्थात्। तत्तहोषप्रत्यनीकभेषजगणकथनेनैवान्यधामिद्धेः।
तस्याद्वयाधिहरे सयोगस्य प्रधानत्वात् यथोक्षविध्यनुमरणमेव रारणम् । दोषहरे तु
वीय्योक्तिपार्थम्। इति ॥ वष्ठुभा पाकोऽपि दोषप्रत्यनीकतया युक्त प्रवेत्याष्टु ।
किञ्च बहुवित्तन्ययायासमाध्यत्वात् वैदीनीयमनुगम्यते पन्या इति ॥ २३ ॥

गुडूच्यादितैलम्

गुडूचीकाथदुग्घाभ्यां तैलं द्वाचारसेन वा। सिद्धं मधुककाश्मर्थ्यरसैर्वा वातरक्रनुत्॥ २४॥ गुडूचीलादि—गुडूचीलादि तैलत्रयमकल्कम्॥ २४॥

खुड्डाकपद्मकतैलम्

पद्मकोशीरयष्ट्याह्नरजनीकाथसाधितम् । स्यात् पिष्टै सर्जमाञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनै ।

खुडुाकपञ्चकमिदं तैलं वातास्रदोषनुत्॥ २४॥

खुड्डाकपण्यकर्तेले वीरा चीरकाकोली । खुड्डाकपणक श्रेतपणम् ॥ २५ ॥

नागबद्धातैलम्

शुद्धां पंचेन्नागबलातुलान्तु
विस्नाव्य तैलाढकमत्र द्यात्।
त्रिज्ञापयस्तुल्यविमिश्रितन्तु
नतस्य यष्टीमधुकस्य कल्कम् ॥
पृथक् पचेत् पञ्चपलं विपकं
तद्वातरक्षं शमयत्युदीर्थम्।
विस्तिप्रदानादिह सप्तरात्रात्
पीतं दशाहात् प्रकरोत्यरोगम् ॥
तुलाद्दव्ये जलंद्रोगो द्रोगे द्रव्यतुला मता ॥ २६ ॥

नागवलातेले नागवला गोरचचाकुलियेति ख्याता। अजापयस्तैलतुल्य नत तगरपादिका॥ २६ ॥ *

पिएडतैलम्

समधूच्छिप्रसिष्ठं ससर्जरसशारिवम्। पिराडतेलं तद्भयद्वाद्वातरक्षरजापहम्॥ २७॥

मध्िल्लहेलादि । मध्िल्लहं मधुसिक्थकम्; सर्नरसो धृनक , शारिया अन-न्तमूलम् । जलल्लात्र चतुगुणम् । पिण्डतेलभाषया चात्र वस्तादिप्तमेवैतए तैलं कर्त्तन्यमित्याहु । वैद्यास्तु पूत्वैव व्यवहरन्ति, किन्तु चरके समध्िल्लहेत्यादे । पूर्वम्, 'श्रारनालाढके तैल पादसर्जरसं शृतम् । प्रभूते खिलत तोवे जनरदाहाित्तनुत् परम् ' इत्युक्तम्, तेन श्रारनालाढकसाध्यतेल एव, सर्जरसस्थाने मध्िल्लहादीना ' प्रचेपादिप पिण्डतेलत्वमनेनोच्यते इति चन्न । जतुक्रणैंऽज्युक्त 'काञ्जिके सर्नरस्थत खिलतम् । बहुना जलेन दाहिहत विकसानन्तासिक्थकसर्जरसैर्युक्त मिथत षा हति ॥ २७॥ महापिएडतैलम्

शारिवा सर्जमिखिष्ठा यष्टिसिक्थे पयोऽन्विने । तैलं पकं विमिक्षिष्ठं रुवोर्चा वातरम्तनुन् ॥ २८॥

श्रपरिपर्श्वनलद्वयमाह गारिवेन्यादि—यष्टियष्टिमधुनन् । पयश्चतुर्धयन्तु इह द्रवान्तराभावात् । विमाक्षिष्ठेरित्यादि तु तृनेग्य पिर्ग्टतन्तम् । विमाक्षिष्ठं मिलिष्ठा-रहितं गारिवादिभि वन्कै स्त्रोरेर्ग्टन्यं तृत्त चतुरुखेन पयमा मह पक नद् श्रपर पिर्ग्डनंत्त भवतात्यथं । विमाक्षिष्ठमिति पाठे कियाविगेष्यम् ॥ ३ म ॥

केशोरको गुग्गुलुः

वरमहिपलोचनोटर-सन्निभवर्णस्य गुग्गुलो प्रस्थम्। प्रजिप्य नोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ क्वार्त्विशच्छित्ररुहापलानि देयानि यत्नेन। विपचेत् तदप्रमत्तो दर्व्या सङ्ग्रह्यन् मुहुय्वित्। श्रर्दक्षियतं नायं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात्। श्रवतार्थ्य वस्त्रपृतं पुनरिप सम्पाचयेत् पात्रे ॥ सान्डीभृते तस्मिन्नवतार्थ्यं हिमोपलप्रये। त्रिफलाचूर्णाईपलं कर्प कर्प वित्रुहन्त्योः॥ पलमेकञ्च गुड्डया द्या ममृच्छुर्थ यत्नेन। उपयुज्य चानुपान यूपं तेर्थ सुगन्धिसलिलेन ॥ इच्छाहारविहारी भेपजमुपयुज्य मर्वकालमिद्रम्। तनुराधि वातशोणितमेकजमथ इन्डर्ज चिरोत्थञ्ज । जयति स्रुतं परिश्रुष्कं स्फुटितञ्चाजानुजञ्चापि॥ वर्णकासकुष्ठगुरुमं श्वयथृदरपाग्हमेहांश्च। मन्दाग्निञ्च विवन्धं प्रमेहिपेडकाश्च नारायत्याश्च ॥ सततं निपेव्यमाण कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् ।. अभिमृय जरादोपं याति हि कैशोरकं रूपम् ॥ भत्येकं त्रिफलायस्थो जलं तत पडाढकम्। गुडवद् गुग्गुलो पाकः सवन्धस्तु विशेपत ॥२६॥

केशोरगुष्गुलौ वरमहिषले।चनोदरमन्निभवर्णस्येति लोहितवर्शस्यत्यर्थ . मत्तमिह्मलोचनोदरवर्णो हि लोहित एव । त्रिफलाख यथोक्तपरिमाणामिति प्रत्येक प्रस्थामानाम् । छिन्नरुहा गुहूची तस्याद्वात्रिशत् पलानि । एव मिलित्वा षरण्वति पलानि काथ्यानि । श्रत्र हि द्रवेद्देयुरयात् उत्मर्गमिद्ध जल दीयमान परण्वति-गरावपरिमित भवति । षएणवातशरावैश्व पडाढका भवन्ति । एतत् सर्वमिभिधाय वच्यति प्रत्येक त्रिफलाप्रस्थ इत्यादि—श्रन्य त्वाहु त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणा-मिति मिलित्वा प्रस्थमाना ममुदायप्रधानत्वात्, निर्देशम्य । तेन गुग्गुलुप्रभृतीनि काथ्यानि मिलित्वा चतु पष्टिपलानि भवन्ति, तत्र चीत्सर्गसिद्ध जल चतु पष्टिशराव-. मेव, चतु पष्टिशरावैश्च द्रोेेेेेेेेेें भवति, तेन तोयराशिशब्देनात्र द्रोग्ग एव बोध्य इति। अत्र गुरगुलु पुटक बद्ध्वा अपरे काथ्ये मह तोयराशो कथनीय । पश्चात् गुरगुल् विद्वाय काथ्य त्यक्त्वा सिद्धे तदुष्णकाथे पुनस्त गुग्गुलु सम्मिश्र्य पाचनीय यावत् वनीमनति, दर्वीप्रलेपेऽनतार्थ्य त्रिफलादिचूर्णं प्रक्तिपेदिति, ये तु गुग्गुल विहाय काथ करना पश्चाद सिद्धे कदुम्लकाथे गुग्गुल गे।लयन्ति, तन्न युक्त, गुग्गुली काथले-नोक्तत्वात् । पव वच्यमाणामृताख्यगुग्गुलाविष द्रष्टव्यम् । हिमोपलप्रस्य इति हिम-शिलावत् शाते । अत्र चित्थमव शक्त्युत्कर्ष वचनादुत्रीयते । अन्यत्र तु कोष्णे प्व चूर्णांना दान दृश्येत । श्रत्र त्रिफलाचूर्णार्द्धपल मिलित्वैव युज्यते, मानप्रधानत्वात् निर्देशस्य, प्रत्येकन्तु व्यवहरन्ति । त्रिकटेश्चूर्णं षडचपरिमाणमिति मिलित्वा। किमिरिपुर्विडङ्ग । यूव तोयमित्यादौ वाशब्दो बोध्य । कैशोरक रूपमिति किशोरो यावनीन्मखोऽश्वशावक ॥ २६ ॥

अमृतागुग्गुलुः

प्रस्थमेकं गुडूच्यास्तु श्रर्द्धप्रस्थञ्च गुग्गुलोः।
प्रत्येकं तिफलायाश्च तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत्॥
सर्वमेकत्र संजुद्य साध्येत् त्वम्मेणेऽम्मिस ।
पादशेषं परिस्नाव्य पुनरग्नाविधश्रयेत्॥
तावत् पचेत् कपायं तं यावत् सान्द्रत्वमागतम्।
दन्तीव्योषविडद्गानि गुडूचीिकफलात्वचः॥
ततश्चार्द्वपलं पूतं गृह्वीियाच्च प्रति प्रति।
कर्षन्तु तिवृतायास्तु सर्वमेकत्न कारयत्॥

तिसन् सुसिद्धं विद्वाय कवोष्णे प्रत्तिपेद् वुधः । ततश्चाग्नियलं द्वात्या तस्य मात्रा प्रदापयेत् ॥ वातरक्षं तथा कुष्ठं गुद्जान्यग्निसादनम् । दुष्टव्रणप्रमेद्दांश्च सामवातं भगन्दरम् ॥ नाड्याद्यवातश्वयथून् सर्वानेतान् व्यपोद्दति । श्रश्विभ्या निर्मित पूर्वममृताख्यो हि गुग्गुलुः । श्रद्धप्रस्थ तिफलाया प्रत्येकिमह गृह्यते ॥ ३० ॥

श्रमुताख्यगुग्गुली तत्ममाणिमिति प्रस्थार्द्धम् । न्योषस्थार्द्धपलिमिति प्रस्येवम्, त्रिफलात्वच इति निरस्थित्रिफलाया प्रत्येकमर्द्धपलम् । तत्प्रमाणिमिति पदम्यायनाद्द श्रद्धप्रम्य त्रिफलाया इत्यादि ॥ ३० ॥

पुनर्नवागुग्गुलुः

श्रमृतायाश्च द्विप्रस्थ प्रस्थमेकञ्च गुग्गुल्रीः । प्रत्येक त्रिफलाप्रस्थ वर्षाभूप्रस्थमेव च॥ सर्वमेतच संजुद्य काथयेत्रत्वरोऽम्भितः। पुनः पचेत् पादशेप यावत् सान्द्रत्वमागतम् ॥ दन्तीचित्रकमूलाना कणाविश्वफलविकम्। गुडूचीत्विग्वडहाना प्रत्येकाईपलोनिमतम्॥ त्रिवृताकर्पमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत्। सिद्धे चेष्णे चिपेत् तत्र श्रमृतागुग्गुलोः परम् ॥ यथा चाग्निवलं खादेदम्लिपत्ती विशेपत । वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम्॥ दुएव्रण्यमेहाश्च सामवातं भगन्दरम्। नाड्याड्यवातं श्वयथून् इन्यात् सर्वामयानयम् ॥ श्रश्विभ्या निर्मितो ह्येषोऽमृताख्यो गुग्गुलुः पुरा ॥३१॥ पुनर्नवागुग्गुली त्वक् गुडत्वक् । अमृतागुग्गुली परमित्यनन्तर मात्रामिनि शेष तेनपरभित्यनन्तरममृतागुग्गुलोमीत्रा यथानहिषल खादेदित्वर्थ । श्रमृतात्त्य-गुर्गु पुरेति अमृतीनर्मितत्वादमृताख्य । यद्यप्यमृतायोगादमृताख्यगुरगु उन्तथापि

पुर्निवायोगात् पुर्निवागुग्गुलुरिति नामान्तर, पूर्वोक्तामृताख्यगुग्गुलोर्व्यवच्छेदार्थं वा ॥ ३१ ॥

योगसारामृतः

शतावरी नागवला दृद्धदारकमुच्चटा ।
पुनर्नवामृता रुप्णा वाजिगन्धा तिकण्टकम् ॥
पृथग्दशपलान्येषां स्ठदणचूर्णानि कारयेत् ।
तद्धंशर्करायुक्तं चूर्णं सम्मईयेद् बुधः ॥
स्थापयेत् सुद्दढे भागडे मध्वद्धाढकसंयुतम् ।
घृतप्रस्थेन चालोड्य तिसुगन्धिपलेन तु ॥
तं खादेदिप्टचेप्टात्मा यथाविद्ववलं नरः ।
वातरक्तं च्यं कुष्ठं कार्श्ये पित्तास्त्रसम्भवम् ॥
वातिपत्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तिद्धधान् ।
दृत्वा करोति पुरुषं वलीपलितवर्जितम् ॥
योगसारामृतं नाम लच्मीकान्तिववर्द्धनम् ॥ ३२ ॥

योगसारामृते तदर्कशर्करायुक्तमिति समुदितचूर्णार्कमाना शर्करा। त्रिसुगन्धि-पलेनेति प्रत्येकम् ॥ ३२ ॥

िदिवास्त्रप्राग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
कट्रष्णगुवीभेष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ ३३ ॥ 🛩 अत्राह्मा वितरके वर्जनीयान्याह—दिवास्कोत्यादि ॥३३॥

बृहद्गुडूचीतैलम्

तुलां पचेजालद्रोणे गुडूच्या पादशेषितम् । चरिद्रोणश्च ताभ्यान्तु पचेत् तैलाढकं शनैः ॥ कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयगणस्तथा। कुष्ठैलागुरुमृद्दीका मांसी व्याघीनखं नखी॥ हरेणु स्नाविणी व्योषं शताह्वा मृहशारिवे। त्वक्पने वचविकान्ता स्थिरा चामलकी तथा॥ नतं कशरहीचेरपद्मकात्पलचन्द्रने । सिद्ध कर्पसमेर्भाग पानाभ्यद्गानुवासने ॥ पर वातास्त्रज्ञान् हन्ति सर्वजानन्तगस्थितान । धन्य पुसवनं स्त्रीणा गर्भट वातिपत्तनुत् । स्वेदकगृङ्कजापामा-शिर कम्पार्दितामयान । हन्याद् वण्कतान् दोपान् गुद्धचित्तसुत्तमम् ॥ ३४ ॥ इति वानरक्षचितित्सा।

नुलामित्यादि ---म्पष्ट र् ॥३४॥ शत बातरक्षचिकित्साविष्टति ।

अथोरुस्तम्भ-चिकित्सा।

केरमणः चपण यत् स्यान्न च मारुनकापनम् । नत् सर्व मर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेपजम् ॥ १ ॥

्र न तस्य स्नेहनं कार्य्य न वस्तिनं विरेचनम्। पश्चाद्वातिनाशाय क्रत्याः कार्य्य क्रियाक्रमः॥ २॥
पश्चाद्वातिनाशाय क्रत्याः कार्य्य क्रियाक्रमः॥ २॥

करुस्तम्भे वेत्रह्नादिनिषेवमाहः न नस्यस्यादि—वेत्रहनिमितः पानान्यतान्यं किंवा वेत्रहनिमितः वस्तिकमविशेषणे, तेनानुवासनिमित्यर्थः । विरंचनगरनेनात्र वमनमपि वोध्यम्, करुन्तम्भे वमनस्यापि निषिद्धत्वात् ॥ २ ॥

शिलाजतु गुग्गुलुं वा पिष्पलीमथ नागरम् । उन्हरूतम्भे पिवेनमूत्रैर्दशमूलिरसेन वा ॥ ३ ॥ शिलाजतुमित्यादि—शिलाजतु गोधितमेनोपयोज्यम् । प्रत्येक शिलाजत्या- दीना गोमूत्रेण दशमूलीकाथेन वा पानम्॥ ३॥

मह्नातकेत्यादि — मह्नातकादिभिर्दशम्लान्तिर्मिलित्वा काथ इत्याहु । पिप्प-लीत्यादि । पिप्पल्यादीना त्रयाणा काथो वा देय, पिप्पल्यादीना कल्क इति चूर्णं मधुसिहत वा अवलेहरूपतया देय, किंवा पिप्पल्यादीना चूर्णं, पानयोग्य मधु दत्त्वा पेयम् ॥ ४॥

त्रिफलाचन्यकदुकं प्रन्थिकं मधुना लिहेत्।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिवेत्॥ ४॥
लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्ण चौद्रेण कटुकायुतम्।
सुखाम्बुना पिवेद्वापि चूर्ण षड्धरणं नर ॥ ६॥
पिष्पलीवर्द्धमानं वा मान्निकेण गुडेन वा।
ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गएडीरारिप्टमेव वा॥ ७॥

त्रिफलेत्यादि—कड्डक त्रिक्डकम् । पुरं मूत्रेण पिनेदिति । यद्यप्य योग शिलाजतु गुग्गुलु नेत्यादिना पूर्वमेनोक्तस्तथापि सम्पूर्णक्षोकानुरीधात् पुनरप्यत्र लिखित । कडुकायुतमिति त्रिकड्कयुत कडुरोहिणीयुक्त वा । षड्धरण वातन्या- वातुक्रम् । यद्यपि षड्धरण पिनेदित्येतावतेन सुखाम्बुना इति लम्मते, उष्णोदकेनैन षड्धरणपानस्य पूर्वमुक्तत्वात् , तथाप्यनन्तरोक्तचौद्रेण पानशद्भानिरासार्थमेतदुक्त भनति । पिप्पलीवर्द्धमान नेति पिप्पलीवर्द्धमाननियमक्रमेण पिप्पली गृहीत्वा चूर्ण- यित्वा मधुना गुडेन वा महोपयुजीत । गण्डीरारिष्टमेनेति गण्डीर रामठः, स तु स्थलजो याद्यः तीक्णत्वात् , तस्यारिष्ट सन्धान, तच्च गण्डीरशतपल जलद्रोणेन पक्ता पादानशेषे तिस्मन् गुडतुलामावाप्य धातकीलोभ्रालिसे कुम्भे सन्धानार्थम् , ईषदम्ल यदा मनति तदोपयोज्यम् , किंवा अरिष्टो निम्व । शभठनिम्वयोश्चूर्णमनन्तरोक्तेन मधुना गुडेन वा सहोपयोज्यम् ॥ ५—७॥

चव्याभयाग्निदारूणां समधुः स्यादूरुग्रहे। कल्को दिहेच मूत्राख्ये करञ्जफलसर्षपैः॥न॥ चन्थेलादि-—ममधु कल्क पेय इति बोज्यम् । दिऐदिलादि सर्पपेरिन्य त एको योग ॥=॥

> त्तौद्रस्पेपवल्मीकमृत्तिकासंग्रुत भिषक् । गादमुत्साद्नं कुर्च्यादृष्ठस्तम्भे सत्तेपनम् ॥६॥ कफत्त्रयार्थ व्यायामेष्वेनं शक्येपु योजयेत । स्थानान्याकामयेत् कल्यं प्रतिस्रोतो नदीं तरेत् ॥१०॥

उत्सादनमुद्रर्श्वनम् । स्थानानीत्युश्वप्रदेशात्रः, म्थलानीतिपाट म एवाध । कल्यमिति प्रातः, नीम्जिमित्यन्ये ॥ ६ ॥ १० ॥

अप्टकद्वरं तैलम्

पलाभ्यां पिष्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः । तैलप्रस्थः समो दभा गृधस्यूरुप्रहापदः । अष्टकट्वरतेलेऽसिस्तल सार्पपमिष्यते ॥११॥

श्रष्टकट्वरतेले पलाभ्यामिति विष्पलीमृतनागरादिति विष्पलीमृतनागरये। मिलित्वा पलदय मानप्रधानत्वाच् निर्देशस्य । चक्रोऽपि विष्पत्यादिमसुदायाच् पलाभ्यामित्याद् । ष्टन्दिष्पययामि विष्पलीमृत्ननागरये। प्रत्येकेमकपलिमत्युक्तम्, निद्यलस्तु प्रत्येक पलद्वयम्, अथवा कत्कस्यात्यन्तमत्पीयस्त्व स्यादित्याद्व । श्रष्टकटे-त्ररमिनि श्रष्टगुण कट्वर मस्नेद्दिषितक यश्र ॥११॥

कुष्टाद्यं तैलम्

कुप्टश्रीवेष्टकोदीच्यं सरल दार केशरम्। श्रजगन्धाश्वगन्धा च तैलं ते सार्पपं पचेत्। सत्तौद्र मात्रया तस्मादूरस्तम्भादित पिवेत्॥१२॥

कुष्टित्यादी—वतुर्शुणजेलन पाक । श्रीवेष्टक नवनीतिखाटि., श्रजगन्धा चेत्रयमानी । सचीद्रिमिति प्रचेपविधया, श्रयज्ञ स्नेष्ट्विधिरवस्यावित्रोपे बोध्य , उति हि चरके 'रूजाणा वातकोपश्चेशिद्रानाशार्चिपूर्वक । रेतद्दस्वद्रक्रमस्तत्र फान्या वातामयापद् ।' इति ॥ १ २॥

५ सैन्धवाद्यं हितं तैर्ल वर्षाभ्वमृतगुग्गुलुः ॥१३॥ इत्यू रुस्तम्भ-चिकित्सा ।

मेन्धवाद्यमित्यादौ—सैन्धवाद्य तैल वातव्याधावुक्तम्, पुनर्नवागुग्गुलुरसृता-गुग्गुलुश्च वातरक्ते चेक्तः ॥ १३॥

इत्यूरुस्तम्मचिकित्सा-विवृति ॥

अथामवात-चिकित्सा ।

लह्ननं खेदनं तिक्कं दीपनानि कटूनि च।
विरेचनं सृहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥
सैन्धवाद्यनानुवास्य द्वारबस्तिः प्रशस्यते ॥१॥
श्चामवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते ।
कत्त खेदः प्रकर्तव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥२॥
शटी शुग्रव्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृता।
कषायमामवातस्य पाचनं कत्तभोजनम् ॥३॥

सामवातजन्यत्व-सामान्याद्रुरुस्तम्मानन्तरमामवात-चिकित्सामाह लङ्घनमित्यादि विरेचनन्तु महेम्बरपत्रिकाया विरेषेणोक्तम्, एक हि— त्रिवृत्सेन्थवशुरुठीनामा-रनालेन चूर्णितम् । पीत्वा विरेचयेज्जन्तुमामवातहर परम् । सप्ताहञ्च त्रिवृच्चूर्णे त्रिवृत्काथेन भावितम् । काञ्चिकेन तु तत् पीत रेचनञ्चामवातिनाम् हित । तत् सर्वमत्र वोध्यम् । क्षेष्ठपानमिति लङ्घनादिभिरामचये जाते तदनन्तर रूचस्य वायो प्रशमनार्थं क्षेष्ठपान किंवा केद्दश्चरेनात्र विरेचकतया पर्यवतेल वोध्यम् । वस्तय हित शोधनवस्तय । रूच स्वेद हित रूचस्वेद तन्त्रान्तरोक्तः यथा— कार्पासास्थिन्क्रातिकातिल-यैवरेरयदम्लावसी वर्षाम्शाश्युकाञ्चिकञ्चतेर्वो पृथक् । स्वेद स्थादथ कूर्परोदरशिर स्फिक्षाणिपादाग्रिलग्रीवास्कन्थकटीरुजो विजयते सामा. समस्ता रूजः हित ॥ १ ॥ ३ ॥

शद्यीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूकाथसंयुतम् । सप्तरात्रं पिवेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥४॥

शर्धत्यादौ---उमा वचा ॥ ४ ॥

रास्नादशमूलकम्

दशमूलासृतैरएड-राम्नानागरदारुभिः। काथो रुवृकतैलेन सामं दृन्त्यनिलं गुरुम्॥४॥ दशमूलीकपायेण पिवेद्वा नागराम्भसा। कुत्तिवस्तिकटीशृले तैलमेरएडसम्भवम्॥ ६॥

रासा दशम्लेत्यादौ रुवृक्तैतेलेनित शोधनार्थम् एरण्डतेलस्य कप समधिको वा । शमनार्थं पुन पडशे मापका इति ॥ ५ ॥ ६ ॥

रास्नापञ्चकम्

रास्नां गुडूचीमेरएडं देवदारुमहौपधाः। पिवेत् सर्वाद्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जोग ॥ ७ ॥ —

रास्नासप्तकम्

- रास्नामृतारग्वधदेवदारु-

त्रिकएटकैरएडपुनर्नवानाम् । कार्थं पिवेन्नागरचूर्णमिश्रं

जङ्गोरुपृष्ठतिकपार्श्वश्रुली ॥ = ॥

रास्त्रापञ्चके पिनेदिति काथरूपतया । अत्र योगे तथा वद्यमाण रास्तामप्तेऽ-पि यदि विरेकश्चिकीपितो भवति, तदा परएडर्तल प्रचेप्यमिति वदन्ति ॥७——=॥

ग्रुग्ठीगोचुरककाथः प्रातः प्रातिनेपेवितः। सामवाते कटीग्रुले पाचनो रुक्प्रणाशन ॥ ६॥

शुष्ठीगोत्तुरककाथ इत्यादि—अत्र शुष्ठ्या सागमेकम् , गोत्तुरस्य भागत्रय एहन्ति, नोष्ठेमेदे कर्त्तन्ये यवचारमप्यत्र प्रतिपन्ति ॥ ६ ॥

श्रामवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिवेत् । , खादेडाप्यमयाविश्वं गुडूचीं नागरेण वा ॥ १०॥

अभयाविश्वमिति हरीतक्षीचूर्णं मा २, शुर्छीचूर्णं मा २, पिष्ट्वा खाद्य तप्तनलमनुपेयम् । गुद्द्वीं नागरेण वा इति काथेन व्यवहार । केचित्त पिष्ट्वा उच्छोदकेन मदयन्ति ॥ १०॥

श्रामवात-चिकित्सा।

परएडतैलसंयुक्षां हरीतकीं भन्नयेत्ररी विधिवत् । श्रामानिलातियुक्षो गृधसी-वृद्धर्यीर्देतो नित्यम् ॥ ११ ॥ एरग्डेत्यादि — हरीतकी चूर्णस्यरण्डतैलेनावलेह ॥ ११ ॥ कर्प नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिवेत् सदा । श्रामंवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १२ ॥

कर्प नागरचूर्णस्यत्यादि—गुर्ण्ठाचूर्णलवणयुक्तस्य काञ्जिकस्य भक्तेन महोपयोग प्रचरति॥ १२॥

पञ्चकोलकचूर्णञ्च पिवेदुष्णेन वारिणा ।
मन्दाग्निर्ह्सलगुल्माम कफारोचकनाशनम् ॥ १३ ॥
पज्ञकोलेत्यार्दि—सममागपञ्चकोलचूर्णं मापकाष्टकमुष्णजलेन पेयम् ॥१३॥
श्रमृतानागरगोच्चरमुरिडितिकावरुणकैः कृतं चूर्णेम् ।
मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ १४ ॥
श्रमृतेत्यादी—नरुण नंरुणंमूलम् ॥ १४ ॥

वैश्वानरं चूर्णम्

माणिमन्थस्य हो भागो यमान्यास्तहदेव तुं।
भागास्त्रयोऽजमोटाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥
दश हो च हरीतक्याः रुद्धणचूर्णीहृता शुभाः।
मस्त्वारनालतकेण सर्पिपोण्णोदकेन वा ॥
पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्धस्तिजान् गदान्।
प्लीहानं हन्ति शूलादीनानाहं गुदजानि च ॥
विवन्धं जाठरान् रोगांस्तथा वै हस्तपादजान्।
वातानुलोमनिमदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम्॥ १४॥

वैश्वानरचूर्णमाह माखिमन्थस्येत्यादि—माखिमन्थ सैन्धवम् । यमान्यास्तद्वदिति भागद्वयम् । भागाखयोऽजमोदाया इति अजमोदा यमानी, तेन पंत्रमागो यमान्या एव, एके यमानीस्थाने यवचार पठन्ति, केचिद्रनयमानीत्युपन्यस्य यमान्या भागद्वय प्रयच्छन्ति, अन्य त्वजमोदया वनयमानी गृहन्ति, किन्तवन्त परिमार्जने यमान्येव युका । दश दी चिति दादशमाग इत्यर्थ ॥ १५ ॥

अलम्बुपाद्यं चूर्णम्

श्रलम्बुपां गोच्चरकं गुडूचीं वृद्धदारकम्।
पिष्पलीं त्रिवृतां मुस्त वरुणं सपुनर्नवम्।
त्रिफलां नागरश्चेव श्रुच्णचूर्णानि कारयेत्।
मस्त्वारनालतकेण पयोमांसरसेन वा॥
श्रामवातं निहन्त्याशु श्वयशुं सन्धिसंस्थितम्।
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाश्यत्॥
श्रमिश्च कुरुते दीतं तेजोवृद्धि वलं तथा।
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानिष ॥ १६॥
भलन्तुपामिलादि—भलन्तुपा सुण्डितिका, वृद्धदारक वृद्धदारकमूलम्, वरुण्य

शतपुष्पाद्यं चूर्णम् शतपुष्पा विडद्गश्च सैन्धवं मारेवं समम्। चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसन्दोपनं परम्॥ १७॥ शतपुष्पेलाटि सप्टम्॥ १७॥

हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम्

हिङ्गु चव्यं विडं श्रुएठी कृष्णाजाजी सपौष्करम् । मागोत्तरमिदं चुर्ण पीत वातामजिद्भवेत् ॥ १८ ॥ हिन्नुव्यमित्यादौ—कृष्णा पिष्पली । श्रजाजी सितजीरकमिति निश्चल ; कृष्णानाजी कृष्णजीरकमिति वृन्दिव्यणी । भागोत्तरमिति यथोत्तर एकमागपरिवृद्ध । भीतमिति वष्णास्तुना ॥ १८ ॥

> योगराजगुग्गुलुः चित्रकं पिष्पलीमृतं यमानीं कारवीं तथा। विदङ्गान्यजमोदाश्च जीरकं सुरदारु च॥ चच्येला सैन्ध्रवं कुष्टं रास्नागोलुरधान्यकम्।

तिफलामुस्तकं व्योपं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥
तालीशपत्रं पत्रश्च शुरुक्णुर्चूर्णानि कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥
सम्मद्दर्थं सर्पिषा गाढं स्त्रिग्धं भाग्रेडं निधापयेत् ।
ततो मात्रां प्रयुक्षीत यथेष्टाहारवानिष ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
श्रामवातास्ववातादीन् किमिदुष्ट्रवणानिष ॥
सीहगुल्मोद्रानाह-दुर्नामानि विनाशयेत् ॥
श्रीश्च कुरुते दीतं तेजोवृद्धि वलं तथा ।
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानिष ॥ १६ ॥
योगरावगुगुलो कार्मा कृष्णजीरक, श्रवमोदा यमानी, शना-परिमार्जन-

वागराजगुरगुला कारवा कृष्णजारक, अजमादा यमाना, अन्ता-पारमाजन-त्वात, एवमन्यत्रापि । सम्मर्थ सर्पिषा गाडमिति प्रथम तावत् कृत दत्त्वा केवला गुरगुल पेषणीय , पश्चादल्पमल्प चूर्ण दस्वा पेषणीय । मन्यक् चूर्णे मिलिते तु त्विस्थमार्गेड निधेयः । मर्दनार्थे कृतमानञ्चात्र यावता चूर्णे मिलितं भवतिः, अन्य तु गुरगुलोर्द्धमानमित्याहु । ततो मात्रा प्रयुजीत इति, षडक्टमाषकरूपाम् । उष्णाम्बु-काजिकाधनुपेयमित्याहु ॥ १६॥

सिंहनादगुग्गुलु:

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम्।
सौगन्धिकपलञ्चैकं कौशिकस्य पलं तथा ॥
कुडवं वित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः।
पाचयेत् पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दढे ॥
हिन्त वातं तथा पित्तं ऋष्माणं खञ्जपङ्गताम्।
श्वासं सुदुर्जयं हिन्त कासं पञ्चविधं तथा॥
कुष्ठानि वातरक्षानि गुरुमश्रलोदराणि च।
श्रामवातं जयदेतदपि वैद्यविवर्जितम्॥
पतदभ्यासयोगेन जरापलितनाशनम्।
सर्पिस्तैलरसोपेतमश्रीयाच्छालिषष्टिकम्॥

सिंहनाद् इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा । विह्नवृद्धिकरः पुसा शाषितो दण्डपाणिना ॥ २०॥

पलन्नयमित्यादि — निफलाया काथस्य पलन्नय प्रत्येकम् । सुन्त्यिति मीर्गिन्यकपल्गिन्तिनेन सम्बध्यते । सीगन्धिकमिति गन्धकम्, तस्त्र शोधित याद्यम् । कीरिकस्येति गुग्गुलो । चित्रकतेलमित्येरण्डतेलम्, कुडविम्ल्यष्टी पलानि, अन्य त्र तैलस्य बहुलत्वेन पाक्ते दुर्ग्रह स्याद इति कृत्वा अकृतद्वेगुण्यमेवात्र कुडव गृहन्ति । त्रिफला प्रत्येक पल १, कर्ष २, काथाधेजल राराव ४, पल ४, गप रा १, पल १; शोधितगन्धकन्त्र्यं पल १, पर्यडतल पल ८ । पर्यडतल दन्त्र गन्धकन्त्र्योन सह गुग्गुल पेपणीय , तदनु त्रिफलारसेनालोड्य लेडिपत्रि पक्त-व्यम् , मनाक् तैलिन सर्यो सित सम्यक् पाक्ते श्रेय । प्रथमतो माषकह्य, अष्टी मापकान् यावत खाद्यम् ॥ २०॥

बृहार्त्सहनादगुग्गुलुः

पिषिडता गुग्गुलोर्माणीं कहुतैलपलाष्टके।
पत्येकं त्रिफलापस्था साईद्रोणे जले पचेत्॥
पादेशेष च पृतञ्च पुनरग्नावधिश्रयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडक्नामद्रद्दारु च॥
गुहूच्यग्नित्रितृद्दन्तीचचीश्ररणमानकम्।
पारदं गन्धकञ्चेव प्रत्येकं श्रुक्तिसम्मितम्॥
सहस्रकानकफलं सिद्धे सञ्चूर्ण्यं नििच्चित्॥
तता माषद्वयं जग्ध्वा-पिवेत् तप्तजलादिकम्॥ २१॥
विषिडताभित्यादि—स्पष्टम् ॥२१॥

श्रलम्बुपाद्यं चूर्णम्

श्रलम्बुपागोज्जरक-श्रिफलानागरामृताः। यथोत्तरं मागवृद्धधा श्यामाचूर्णश्च तृत्समम्॥ पिवेन्मस्तुसुरातक-काञ्जिकोष्णोदकेन वा। पीतं जयत्यामवातं सशोधं वातशोणितम्॥ त्रिकजान् रुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम् ॥ -पथ्यात्तघात्र्यस्त्रिफला मागवृद्धावयं क्रमः ॥ २२ ॥

श्रलम्बुपाषचूर्णे यथोत्तर मागवृद्धधेति यद् यत् पर तत्तदेकमागविद्धितिम-त्यर्थ.। श्यामा वृद्धदारक , तत्समिनिति मिलितचूर्णसमम् । त्रिफलाया येन क्रमेण भागवृद्धिं कुर्यात् त क्रममाह पथ्याचधात्र्य इत्यादि—श्रयमेव क्रमो वृद्धवैद्यव्यव-हारसिद्धो वृन्देनापि लिखित ॥ २२ ॥

पथ्याविश्वयमानीभिस्तुल्याभिश्चृिर्णतं पिषेत्। तक्रेणोप्णोदकेनापि अथवा काञ्जिकेन वा। आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाशितामपि॥ २३॥ पथ्यत्यादी—चूर्णतभिति माने क, तेन पथ्यादिभिः इत चूर्ण पिने-दित्यर्थ ॥ २३॥

बृहत्सैन्धवाद्यं तैलम्

सैन्धवं त्रिफला रास्ना पिष्पली गजपिष्पली।
सर्जिकाः मरिचं कुष्ठं श्रुएठी सौवर्चलं विडम् ॥
यमान्यौ पुष्कराजाजी मधुकं शतपुष्पिका।
पलार्द्धिकः पचेदेतैः प्रस्थमरएडतेलतः॥
प्रस्थाम्बु शतपुष्पायाः प्रत्येकं मस्तुकाञ्जिके।
दद्याद् द्विगुणिते पानबस्त्यभ्यक्तप्रयोजितम् ॥
श्रामवातहरं श्रेष्ठं सर्ववातन्नमग्निदम् ॥
कटीजानूरुसन्धिस्थे पार्श्वहद्भङ्क्षणाश्रये।
शस्तं वातान्त्रवृद्धौ च सैन्धवाद्यमिदं महत्॥ २४॥
क्षेत्रविमत्यादि—सष्टम् ॥२४॥

श्रजमोदाद्यवटकः

त्रजमोदामरिचपिष्पलिविडङ्गसुरदारुचित्रकशताद्धाः । सैन्धवपिष्पलिसूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ शुरुठी दशपलिका स्यात् पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ।। पथ्या पञ्चपलानि च सर्वमेकत्र कारयेञ्चूर्णम् ॥
समगुडवरकान् खादतश्चूर्णं वाप्युम्णवारिणा पिवतः।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकप्रास्तु॥
विस्चिकाप्रतित्र्णीहृद्रोगाश्च गृष्ठसी चोग्रा।
किरिवस्तिगुदस्फुरनञ्जैवास्थिजङ्वयोस्तीवम् ॥
श्वयशुस्तथाङ्कसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव स्ट्यांश्चविच्चस्तम्॥ २५॥

भनमोदाधवटके भनमोदा यमानी । नवकस्येति उक्तानमोदादि नवकस्य प्रत्येक पिलका मागा इत्यये । पलानि तावन्तीति दरापलानीत्यर्थे । समगुडवट कानिति समेनेव गुडेन किञ्चिज्जल दस्ता विद्यसम्बन्धाद् द्रवीकृतेन बटका कार्य्याः। अन्यथा वटकमानोऽस्य दुष्कर । चूर्णं वेति गुडयोग विना ॥ २५ ॥

शुएठीवृतम्

नागरकाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । चतुर्गुग्रेन तेनाथ केवलेनोदकेन वा ॥ वातन्रहेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् । नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामग्रलनाशनम् ॥ २६॥

शुण्ठीष्टते चतुर्श्येन तेनिति नागरकाथेन, केवलोदकेन वेति काथम्याने चतुर्श्य जल दत्त्वेत्यर्थे ॥ २६ ॥

गुङ्चीघृतय्

श्रमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषघात्। मृद्वग्निना घृतं प्रस्थं वातरक्कहरं परम्॥ श्रामवाताढ्यवातादीन् क्रिमिदुप्रव्रणानिष। श्रशीसि गुल्मांश्च तथा नाशयत्याशु योजितम्॥ २७॥

असताया इत्यादी—कल्केन चेति पद महीपधादित्यनेन सम्बच्यते । आख्य-वाते फरुसाम्मे ॥ २७ ॥

काञ्जिकषट्पलकं घृतम्

हिंगु त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च ।
कल्कान् कृत्वा च पलिकान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
श्रारनालाढकं द्वा तत्सिर्पिजेठरापहम् ।
श्रुलं विवन्धमानाहमामवातं कटीप्रहम् ॥
नाशयेद् प्रह्णीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ २८ ॥
काञ्जिकपट्पलके त्रिकडुक प्रत्येक पलिकम् । माणिमन्थ कैन्थवम् ॥ २८ ॥

पुष्टवर्थे पयसा साध्यं दभ्ना विरमूत्रसंग्रहे । दीपनार्थे मतिमता मस्तुना च प्रकीर्त्तितम् ॥ २६ ॥

पुष्टयर्थिमित्यादि—उक्तमेतत् काञ्जिकषट्पलक यदि पुष्टयर्थं कियते, तदा काञ्जिकस्थाने पया दत्त्वा साध्य , विष्मूत्रसम्रहे कार्य्ये दन्ना साध्य, दीपनार्थं यदि, तदा मस्तुना साध्यमित्यर्थं ॥ २६ ॥

शुएठीवृतम्

सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरकचतुर्गुण्म्। सिद्धमञ्जिकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम्॥ ३०॥ गुरुठीष्टत स्पष्टम् ॥ ३०॥

रसोनिपएडम्

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा।
हिंगु त्रिकदुकं चारौ द्वौ पञ्चलवणानि च मं
शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिष्पलीमूलिवत्रकौ।
श्रजमोदा यमानी च धन्याकञ्चापि वुद्धिमान्॥
प्रत्येकन्तु पलञ्चेषां श्रुक्णचूर्णानि कारयेत्।
घृतभाएंडे दढे चैतत् स्थापयेद् दिनषोडशम्॥
प्रिच्य तैलमाणीञ्च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च।
स्वादेत् कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेद्वु॥,
श्रामवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रिते।

श्रपस्मारेऽनले मॅन्दे काले श्वासे गरेषु च ॥ सोन्मादबातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ ३१॥

रसोनिषयं निस्त्वचा रसोनस्यापि पिष्टस्य एव तिलस्यापि । तैलस्य मार्या-त्यनेनाष्टी पलानि, द्वैगुज्यामानात् । प्रस्थाद्धमिति षोडशपलानि जन्तुष्विति क्रिमिषु ॥ ११ ॥

प्रसारणीसन्धानम्

प्रसारण्यादककाथे प्रस्था गुडरसोनयोः । पकः पञ्चोषण्रजःपादः स्यादामवातहा ॥ ३२ ॥

प्रसारयपाढकिमित्यादौ — प्रसारयया काथे आढके पोडशशरावपरिमित इत्यर्थ । गुडरसोनयोश्च मिलित्वा प्रस्थ । यक इति कालवशात् परियात सम्जा-तरस इत्यर्थ । कालश्च सप्ताद्व एव वस्त्यमायप्रयोगदर्शनात् । पञ्चोषयारज इति मिलितपञ्चकोलचूर्यंप्रस्थमपेस्य पादिक चतु पलिमित्यर्थ । गंन्धमादाली पल ६४, पाकार्थ पानीय शराव ६४, शेषशराव १६, गुडपल ८, रसोनपल ८, सन्धानवशात् परियात सित् प्रचेप मिलितपञ्चकोलेचूर्यं पल ४ । प्रसारयोसन्धानमेतत् ॥ ३२॥

रसोनसुरा

वल्कलायाः सुरायास्तु सुपकायाः शतं घटे।
ततोऽर्देन रसोनन्तु संश्रदं कृष्टितं लिपेत्॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलमजाजीकुष्ठवित्रकम्।
नागरं मिरचं चव्यं चूर्णितञ्जालसम्मितम्॥
सप्ताहात् परतः पया वातरोगामनाशिनी।
फिमिकुष्ठलयानाहगुलमाशैःसीहमेहनुत्।
श्रिमिसन्दीपनी चैव पाएहरोगविनाशिनी॥ ३३॥

वल्कलायाः सुराया इति वल्कलीति ख्याताया सुराया । शर्तामिति पलशत घटे घटमध्ये चिपेदित्यन्वयः । ततोऽर्द्धेन परिमित रसीनमिति पञ्चाशत्पलमित्यर्थः । सशुद्धमिति त्वक्शिरारदितम् ॥ ३३ ॥

> शिएडाकी सिद्धार्थकसलीपस्थं सुघौतं निस्तुपं जले ।

मग्डप्रस्थं विनिच्चित्य स्थापयेद्दिवसत्रयम् ॥ धान्यराशौ ततो दद्यात् सञ्चूर्ण्यं पिलकानि च । श्रलम्बुषा गोचुरकं शतपुष्पीपुननेवे । प्रसारणी वरुणत्वक् श्रुग्ठी मदनमेव च ॥ सम्यक् पाकन्तु विश्वाय सिद्धा तग्रुलमिश्रिता । भृष्द्वा सर्षपतेलेन हिंगुसैन्धवसंयुता । भाचिता लवणोपेता जयदामं महारुजम् । पक्जं द्वन्द्वजं साध्यं सान्निपातिकमेव च । कद्यूष्वातमानाहजानुजं त्रिकमागतम् । उदावर्त्तहरी पेया बलवणीग्निकारिणी ॥ ३४ ॥

सिद्धार्थक खिल प्रस्थिम त्यादि — सर्षप खर्ली चूर्णी कृत्य जले नाली ख्य छानयित्वा निस्तुर्धा कृत्य भाते प्रभाष्य याद्य पल १६, मण्डशराब ४, मिश्रथिता
धान्यराशौ दिनश्रय स्थाप्यम् । तत इति धान्यराशेराकृष्याल म्नुषादिचूर्णं प्रत्येक
पालक दचात् । ततो इन्लत्वेन सम्यक् पाक सम्यक् परिखतिमिति विद्याय स्थापनीयम् । ततः प्रत्यद्द याद्य कर्ष २, तण्डलचूर्ण पल १, पाकार्थं जल पल ६ यवागूः
पद्गुर्यो इन्मसित्युक्ते , भर्जनार्थं सर्षपतेलकर्ष १, हिंगुरित्त ५, सैन्धव माषा २, ततः
पुनरि किश्चिष्ठवण दत्त्वा मचर्णीयित परिपाटी किथिता । सिद्धा तण्डलमिश्रितेति
एषा शिर्यहाकी तण्डलमिश्रिता सती सिद्धा कार्य्या पेया कार्य्येत्यर्थ । अन्य तु
पिष्टतण्डलमिश्रयोन वटक कार्य्य इत्याद्य । शिर्यहाकीति सन्धानविशेषस्य सद्या
तीरमुक्तिप्रसिद्धा ॥ १४ ॥

सिध्मला

त्वगादिहीना संशुद्धा प्रत्यग्नाः शकुलाद्य ।
श्रुद्दणचूर्णीकृतं तेषां शीते पलशतत्रयम् ॥
शतेन कटुतैलस्य व्योषरामठघान्यकैः ।
क्रिमिन्नदीप्यकनिशा-चिकात्रन्थिकार्द्रकैः ॥
जीरकद्वयवृश्चीरसुरसार्जकशिशुकैः ।
दशमूलात्मगुष्ताभ्यां मार्कवैलवणैस्निमिः ॥

चूरिंते पालेकेः सार्द्धमारनालपरिप्लुतैः ।
ावन्यसित् स्नेहपात्रे तु धान्यराशौ पुनर्न्यसेत् ॥
सप्तरात्रात् समुद्भृत्य पानमज्ञणभोजनैः ।
सिध्मेलयं प्रयोक्तव्या सामे वायौ विशेषतः ॥
भग्नरुग्णाश्च्युतहृता कम्पिनाः पीठसपिंणः ।
गृभ्रसीमश्रिसाद्श्च श्रूलगुल्मोद्राणि च ॥
वलीपलितखालित्यं हृत्वा स्युरमलेन्द्रिया ॥ ३४ ॥
सिध्मलाया शीत इति शीतकाल । क्षर्क ग्रुरमक्षे पर्णामभेद । क्रारनाल
परिल्वतिशित तावन्यानमारनाल यावता परिष्तव सम्यक् मवति । क्षेहपात्रामिह कहु
तैलपात्रमेव यौगिकम् । मज्ञण्मिति चर्वण, मोजनमन्नादिभोजनम् ॥ ३४ ॥

्रि- द्िधमत्स्यगुडक्तीरपोतकीमापिएकम् । वर्जयेदामवातार्चो गुर्वभिष्यन्दकारि यत् ॥ ३६ ॥ इत्यामवातिचिकित्सा ।

मापपिष्टकमिति मापकृत पिष्टक, किंवा मापक पिष्टकन्च । अभिष्यन्दकारि दोपधातुमलकेदकारि ॥ ३६ ॥

इत्यामवातिचाकित्साविष्टति ।

अथ शूलचिकित्सा ।

वमन लङ्घनं स्वेद पाचनं फलवर्तयः।

चारचूर्णानि गुडिकाः श्रस्यन्ते श्रलशान्तये॥ १॥ —

पुंस श्रलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावह ।

पायसैः कृशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करै ॥ २॥

प्रामनातनत् श्रलस्याप्यामनन्यत्वेन तदनन्तर श्रलचिकित्सामाह वमन

मित्यादि— दुशुतस्य । वमनमुत्किष्टकफे, लङ्घनमामपाचनार्थ, स्वेद पित्त विद्वाय।

चार इति चारवस्ति चारमयोगो ना । चूर्णगुडिके दृद्दैव वस्यमाणे पुस इत्यन्न

नस्येति पाठान्तरम् । क्रशरिस्तलकल्कः । पायसादिभि पिग्डादिसम्बन्धात् स्वेदो बोध्य , पिशितेति भेकादिमासै ।

वातशूलचिकित्सा वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्रोहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः। ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः॥३॥

वातात्मकमित्यादि—यूप इति कुलत्थलावमासयोभितित्वा पल, जल षोढरापल, पलचतुष्टयस्थिते विमर्थं वक्षेण झानयित्वा हिंगुसहितेन इतेन भर्जनीय, तदनन्तर सैन्थवादीना चूर्णं मिलित्वा कर्षं प्रदेष, पश्चाहाढिमबीजरसो योज्य: ॥ ३॥

> वलापुनर्नवैरएडबृहतीद्वयगोजुरैः। सर्हिगुलवणं पीतं सद्यो वातरुजापहम्॥ ४॥

वलेत्यादियोगोऽय काथविधिना । हिंगु लव्यान्च प्रचेप्यम् । लव्यामत्र सौवर्चल, वातग्रलहरत्वादित्यादु ॥ ४ ॥

> श्रुली निरम्नकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिवेत्। हिंगुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः॥ ४॥ तुम्बुरूण्यभया हिंगु पौष्करं लवण्ययम्। पिवेद् यवाम्बुना वातश्रुलगुरुमापतन्त्रकी॥ ६॥

निरम्नकोष्ठ इति अमुक्त इत्यर्थः। अन्य तु अन्नम् अजीर्याम्न तच्छ्न्यकोष्ठ इत्याद्व । प्रतिनिषा अतिनिषा, तुम्बुरु स्वनामस्यात, यवाम्बुनेति यवकाथेन । यवैरपढाम्बुना पेयमिति तु पीठान्तर, तेन द्वाभ्यामेन काथ ॥ ४ ॥ ६ ॥

> श्यामा विडं शिम्रुफलानि पथ्या विडङ्गकम्पिल्लकमश्यमूत्री। कल्कं समं मद्ययुतञ्च पीत्वा

शूलं निद्दन्याद्निलात्मकन्तु ॥ ७ ॥ श्यामेत्यादि --श्यामा वृद्धदारक , कम्पिल्लको गुगडारोचनी, श्रश्वमूत्री राष्ट्रकी, चारी यवचार ॥ ७ ॥

यमानीहिंगुसिन्धृत्यज्ञारसौवर्चलाभयाः । सुरामगडेन पातन्या चातश्रूलनिषृद्नाः ॥ = ॥ यमानीत्यादौ-सुरामगडेनेति सुराया उपरितनसम्बद्धद्रवमागेन, एवमन्य-न्नापि ॥ = ॥

विश्वमेरएडजं मूलं काथियत्वा जलं पिवेत्।
हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः ग्रूलिनवारणम् ॥ ६ ॥
क्षिमित्यादि—परण्डमूलस्य भागत्रय शुण्ळाश्चैको माग इत्यर्थ. ॥६॥
हिंगुपुष्करमूलाभ्यां हिंगुसौवर्चलेन वा।
विश्वरएडयवकाथः सद्यः ग्रूलिनवारणः ॥ १० ॥
तद्वद्रवुयवकाथो हिंगुसौवर्चलान्वितः ॥ ११ ॥

हिंगुपुष्करेत्यादि, हिंगुपुष्करमूलाम्या हिंगुसीवर्चलेन विति उमयत्र सहार्थे एतीया । तहदिति सच मूलहर इत्यर्थे ॥ १० ॥ ११ ॥

> हिंग्वम्लकृष्णालवणं यमानीः ज्ञाराभयासैन्धवतुल्यभागम् । चूर्णं पिवेद्वारुणिमणडिमश्रं श्रुले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥ १२ ॥

नारिकेलखएडः

सुपक्षनारिकेलस्य शस्यं पलचतुष्टयम् । पिष्ट्वा घृतपले शृष्ट्वा चिपेत् खण्डचतुःपलम् ॥ नारिकेलस्य च प्रस्थे किञ्चिच्छस्यवतो जले । धन्याकं पिष्पली मुस्तं द्विजीरं वंशलोचनाम् ॥ शाणमानं चतुर्जातं चूर्णं शीते चिपेद् वृधः । दन्त्यम्लिपत्तमक्षेतं रक्षापितं च्यं विमम् ॥ श्रलञ्च पृष्ठश्रलञ्च पित्तकग्झं रसायनम् । विशेपाद्वलकृद् वृष्यं पुष्टिमोजस्करं स्मृतम् ॥ १३॥ हिंग्वम्लेत्यादि—अन्लोऽम्लवेतसः कृष्णा पिप्पलीः लवणिमह सौवर्चलं वेशेषतः स्लहरत्वात् । कांचित् कृष्णामलकमिति पाठः स च निश्चलस्यासम्मतः । नेश्चलस्तु कृष्णामलकमित्यत्र कृष्णववणिमिति पठितः, हारीतमवादात् । छुन्दोभङ्गी-पि नाशङ्कथः, अनन्तत्वात् पद्यमार्गस्येति व्याचिष्टः ॥ १२ ॥ १३ ॥

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैद्विगुणोत्तरः।
मातुलुक्षरसैः पिष्ट्वा गुडिकानिलग्रलनुत्॥ १४॥
हिंग्वम्लवेतसव्योप-यमानीलवणित्रकैः।
वीजपूररसोपतेर्गुडिका वातग्रलनुत्॥ १४॥
वीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत्।
जयेद् वातभवं ग्रलं कषमेकं प्रमाणतः॥ १६॥
सौवर्चलेत्यादौ--श्रम्लिका तिन्तिहो। दिगुणोत्तरेरिति उत्तरोत्तर दिगुणै-रेत्यर्थः। एवा गुडिका चतुर्मायकमिता उच्योदकानुपानेन मन्नणीया, एव वन्यमाणा गुडिकापि। वीजपूरकेत्यादि केवलवातने॥ १४-१६॥

विल्वमूलितलैरएडं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्मसा।
गुडिकां आमयेदुष्णां वातशूलिवनाशिनिम्॥१७॥
विल्वमूलेत्यादि—अम्लतुषाम्मः अम्लकाश्विकम्॥१७॥
तिलेश्च गुडिकां कृत्वा आमयेज्ञठरोपिर।
गुडिका शमयत्येषा शूलञ्चेवाति दुःसहम्॥१८॥
विलेशिति पिष्टं।गुहिकेय कोष्णा वदेर आमयितव्या॥१८॥
नामीलेपाज्ञयेच्छूलं मद्नः काश्विकान्वितः।
जीवन्तीमूलकल्केनापि लेप ॥१६॥

पित्तशूलिचिकित्सा

गुडशालियवाः त्तीरं सिपिःपानं विरेचनम्। जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तश्चालिनाम्॥ २०॥ सम्प्रति पित्तश्क्लिकित्सानाह गुढेत्यादि—गुढेाऽत्र पुरातन. उपहतमलश्च उयः, तस्य नातिपत्तहरत्वेन यौगिकत्वात्। उक्ष हि सुश्रुते—"पित्तश्चो मधुर. शुद्धा वातन्ने। इस्त्वाप्याधिकग्रण स्मृत पथ्यतमो ग्रह " ॥२०॥
पत्ते तु श्रूले वमनं पयो अबुरसेस्तथेद्धोः सपटोलिनम्बः
शीतावगाद्याः पुलिनाः सवाताः
कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥ २१ ॥

पैते तु शूले वयनमित्यादि—पित्तनेऽपि वयनमासाशयस्थपित्तहरणार्थम् । सपटोलनिम्वैरिति पटोलनिम्वक्तसुतै । मदनफलयोगमप्यत्र केचिदिच्छन्ति ॥२१॥

विरेचनं पित्तहरश्च शस्तं
रसाश्च शस्ता शशलावकानाम्।
सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं
योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः॥ २२॥
छुद्यी ज्वरे पित्तमवेऽपि श्रुले
घोरे विदाहे त्वतितर्षिते च।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्नां
पिवेत् सुशीतां मनुजः सुखार्थे॥ २३॥

विरेचन पित्तहरमिति पित्तहरमधुरगयो।पहितम्। सन्तर्पय लाजमधूपपन्नमिति लाजराक्षुमधुन्यां निर्मित सन्तर्पय । यवस्य पेयामिति यवस्य यवागृम् ॥२ २॥२३॥

> घाज्या रसं विदार्थ्या वा तायन्ती गोस्तनाम्बु वा। पिवेत् सशर्करं सद्यः पित्तश्रलनिस्दनम् ॥ २४ ॥

भाज्या रसिमत्यादि योगत्रयम् । भाज्या स्वरसं , विदार्थ्या भ्रापि स्वरमं , त्रायन्तीगोस्तनयो काथं , शर्करा सर्वत्र प्रद्यप्या ॥ २४ ॥

शतवरीरसं चौद्रयुतं प्रात पिवेन्नरः। दादृश्रुलोपशान्त्यर्थे सर्वेपित्तामयापद्दम्॥ २४॥

रातावरीरसमित्यादि स्पष्टम् ॥ २५ ॥

वृहत्यो गौजुरैरएडकुशकाशेजुरालिकाः। पीताः पित्तभवं श्रुलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ २६॥ ग्रहावादि—इन्तराविका खागरभेदा ॥ २६ ॥ श्रतावरीसयण्ड्याद्ध-वाट्यालकुशगोन्तुरैः । श्रतशितं पिवेत् तोयं सन्तौद्रगुडशकरम् । पित्तास्ग्दाहशूलझं सद्यो दाहज्वरापहम् ॥ २७ ॥ शतावरीत्यादौ—श्रतशीतिमिति श्रत शीतमेव व्यवनादिमि , न तु शीत-कपायम् ॥ २७ ॥

> त्रिफलानिम्बयण्ट्याद्ध-कद्धकारग्वधैः श्वतम् । पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहश्रूलोपशान्तये ॥ २८ ॥ तैलमरगड्जं चापि मधुककाथसंयुतम् । श्रूलं पित्तोद्भवं हन्याद् गुल्मं पैत्तिकमेव च ॥ २६ ॥

त्रिफलेत्यादौ —यण्ट्याह् यष्टिमधुक , कडका कडरोहियो । तैलमेरयहज-मिति तैल प्रक्षेप्यम् । श्रन्ये तु योगद्रयमाहु । तन्मते परयहज तैलमित्येक , मधु-सक्काथसंयुत्तेमरयहतैलमिति द्वितीय ॥ २८ । २६ ॥

त्रिफलारग्वधकाथं सत्तौद्रं शर्करान्वितम्।
पाययेद्रक्रिपत्तद्मं दाहशूलिनवारण्म् ॥ ३० ॥
प्रिलह्यात् पित्तशूलक्नं धात्रीचूर्णं समान्तिकम् ॥ ३१ ॥
श्रिफलेत्यादि—स्पष्टम् । शिलद्वादित्यादौ धात्रीचूर्णं आमलकीचूर्णम्
॥ ३०—३१ ॥

अपरनारिकेलखएडः

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्कराप्रस्थसंयुतम्।
तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पञ्च पलानि च॥
शुराठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं सीरमेव च।
सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्धग्निना पचेत्॥
तुगा त्रिकडुकं मुस्तं चतुर्जातं सधान्यकम्।
द्वे करेण कर्षयुग्मञ्ज जीरकञ्च पृथक् पृथक्॥
शुरुत्त्वचूर्णं विनिद्धिष्य स्थापयेद्भाजने मृदः।
खादेत् प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानिप॥

सर्वदोपभवं ग्र्लमामवातं विनाशयेत्।
परिणामभवं ग्र्लमम्लिपचञ्च नाशयेत्॥
वलपुष्टिकरञ्चेव वाजीकरणमुत्तमम्।
रक्षपिचहरं श्रेष्ठं छर्दिहद्रोगनाशनम्।
श्रीमसन्दीपनकरं सर्वरोगनिवर्हणम्॥ ३२॥

त्रिफलारग्वधकाथमित्यादि स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

कफशूलचिकित्सा

श्रेष्माधिके छुर्दनलङ्घनानि शिरोविरेकं मधुशीधुपानम् । मधूनि गोधूमयवानिरिष्टान् सेवेत रुज्ञान् कटुकांश्च सर्वान् ॥३३॥

रूप्पात्मक इत्यादि—मधुना कृत शोधुर्मेधुशीधु , अरिष्टानि सन्धानविशें-षान् ॥ ३३॥

पिष्पलीपिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

यवागूर्दीपनीया स्याच्छूलझी तोयसाधिता॥ ३४॥

पिष्णलीलादि सप्टम् ॥ ३४॥

लवण्वयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् । सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफग्रलविनाशनम् ॥ ३४ ॥

लनसत्ययुतमिति लनसत्य सीनर्चलसैन्धवनिष्टम् । समभागचूर्णादष्टमापक-सुष्योदकपलेनालाट्य पेयम् । सूर्यंनिषये योगोऽयम् ॥ ३५ ॥

विल्वमूलमथैरगढं चित्रकं विश्वभेषज्ञम् ।
हिङ्गुसैन्घवसंयुक्तं सद्यः श्रूलनिवारणम् ॥ ३६ ॥
विल्वमूलादिविश्वभेषजान्त अय योग कार्यविधिना ॥ ३६ ॥
अस्तं वचां तिक्रकरोहिणीञ्च
तथाभयां निर्दहनीञ्च तुल्याम् ।

पिवेत्तु गोमूत्रयुतां कफोत्थं श्रूलं तथामस्य च पाचनार्थम् ॥३७॥

मुक्तमिलादौ--निर्देहनी मूर्वा । मुक्तादि निर्देहन्यन्त एको योग । मुक्त-कादिक पिष्ट्वा गोमूत्रेण पेयम् ॥ ३७ ॥

वचाव्दाग्न्यभयातिक्काचूर्णं गोमूत्रसंयुतम्।
सत्तारं वा पिवेत् काथं विख्वादं कफश्र्लवान् ॥ ३८॥
वेचलादौ—अग्निश्चितकः। सत्तारिमलादित्तः द्वितीयो योगः विल्वादेर्दशः
मूलस्य काथ पिवेदिति ॥ ३८॥

मातुलुङ्गरसो वापि शियुकाथस्तथापरः ।
सत्तारो मधुना पीतः पार्श्वेद्वद्वस्तिशूलजुत् ॥ ३६ ॥
मातुलुङ्गरस रित मातुलुङ्गमूलकाथ । योगद्देयेऽपि मधुयवचारौ प्रचेप्यौ ॥३६॥
—श्रामशूले किया कार्य्यो कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वे यद्ग्निबलवर्द्धनम् ॥ ४० ॥
श्रामशूल रत्यादौ श्रामहर भूता यद्ग्विवद्विकर भवति पञ्चकोलादि, तत्
सेव्यम्, न तु द्यतादि ॥ ४० ॥

हिङ्ग्वादिः

सिहङ्गुतुम्बुरुव्योषयमानीचित्रकाभयाः ।
सत्तारलवणाश्चूर्णं पिबेत् प्रात सुखाम्बुना ।
विग्मूत्रानिलशूल्झं पाचनं चिह्नदीपनम् ॥ ४१ ॥
तुम्बुर विण्युत्व्यविशेषः ॥ ४१ ॥

धातीलौहम्

षद्पलं शुद्धमग्रूरं यवस्य कुडवं तथा।
पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं चतुर्भागावशेषितम्॥
शतमूलीरसस्याष्टावामलक्या रसस्तथा।
तथा दिधपयोभूमिक्कृष्माग्रहस्य चतुःपलम्॥
चतु पलं शर्कराया घृतस्य च चतुःपलम्।

प्रचेषं जीरकं धान्यं विजातं करिपिष्यलीम् ॥
मुक्तं हरीतकीञ्चैव श्रश्चं लौहं कहुवयम् ।
रेखुकं त्रिफलाञ्चैव तालीशं नागकेशेरम् ॥
प्रत्येकं कार्षिकं चूर्णं पेपिरत्या विनिच्चिष्त् ।
भोजनादो नथा मध्ये चान्ते चैव समाहितः ॥
तोलैकं भच्चयेशित्यमनुपानं पयोऽथ वा ।
ग्रलमप्रविध हान्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥
वातिक पैत्तिकञ्चैव श्लेष्मिकं सान्निपातिकम् ॥
पारिणामसमुत्थांश्च श्रन्नद्रवसमुद्भवान् ।
हन्हजान् पक्षिग्रलांश्च श्रम्लिपत्त सुदारुण्म् ॥
सर्वरोगहरं श्रष्टं धात्रीलौहिमिदं स्मृतम् ॥ ४२ ॥
पद्पलिमत्यादि—सप्टन्॥ ४२ ॥

चित्रकग्रन्थिकरएडश्रुग्ठीधान्यं जलैः श्रुतम् । श्रूलानाद्दिवन्धेषु सिंहगुविडसैन्धवम् ॥ ४३ ॥ वित्रकप्रित्यादां—प्रन्थिक पिप्पलीमृलम् । सिंहगुविडमैन्धविमत्यत्र महिंगु-विडदाडिमीमिति केवित् पठन्ति ॥ ४३ ॥

दिष्यक सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःपत्तम् ।
भृशं ग्रूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ४४ ॥
दीष्यक वमानी मन्दस्यातिमन्दस्य ॥ ४४ ॥
समाचिकं वृहत्यादिं पिवेत् पित्तानिलात्मके ।
व्यामिश्रं वा विधिं कुर्य्याञ्जूले पित्तानिलात्मके ॥
पित्ते कफजे वापि या किया कथिता पृथक् ।
पकीकृत्य प्रयुक्षीत तां कियां कफिपत्ते ॥ ४४ ॥

समाधिक वृहत्यादिभिति वृहत्यां गोच्चरैरण्डेत्यादिना पूर्वमुक्तम् , अन्य तु मित्रपातज्वरोक्त वृहत्यादिकमाहु । व्यवहारस्तु पूर्वेयंव । दन्द्रनश्लिचिकित्सा-माह व्यामिश्रीमत्यादि ॥ ४५ ॥

पटोलत्रिफलारिएकाथं मधुयुतं पिवेत्।

पित्तश्केष्मज्वरच्छविंदाहश्रुलोपशान्तये ॥ ४६॥ पटोलेत्यादौ---मरिष्टो निम्व ॥ ४६॥

रसोनं मद्यसंमिश्रं पिवेत् प्रातः प्रकांत्तितः । वातन्रेष्ठण्मभवं शूलं निहन्तुं वहिदीपनम् ॥ ४७॥ रमोनिमत्यादि—निस्तुषिष्टस्सोन माषा ६, मद्य पल १॥ ४७॥

बृहद्विश्वादिः

विश्वोरुवूकदशमूलयवाम्मसा तु
द्विज्ञारिहंगुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।
चूर्ण पिवेद् हृदयपार्श्वकटीत्रहामपकाशयांसभृशरुग्ज्वरगुल्मश्लो ॥
काथेन चूर्णपानं यत् तत्र काथप्रधानता ।
प्रवक्तेते न तेनात्र चूर्णपेज्ञी चतुर्दव ॥ ४८॥ /

विश्वीरवृक्तेत्यादि — अम्मसेति कायेन । अत्र हिंगुमीवर्चलिमत्यादि वच्य-माणयोगे ममुदितदशम्लयवयोद्देशे प्रत्येक तुल्यमागेन वृद्धाना व्यवहारदर्शना-द्रत्रापि तथैव मानमाह अक्षिरठ । तेन विश्वीरुवृक्दशम्लाना मिलितानामेको भाग , यवस्य चापरो भाग इति व्यवहारोऽपि इत्यमेव । दिचारादयस्तु प्रचप-विषये प्रयोज्या , न तु 'पातव्यक्ष चतुर्द्रवै.' इति परिमावया पानविषये, एव वच्यमाणव्यपि । एतटेवाह — काथेन चूर्णपान यदित्यादि । अस्मार्थस्तु ज्वरातीसा-रचिकित्सायामेनोका ॥ ४ = ॥

रुचकादिः

चूर्णं समं रुचकहिंगुमहौषधानां
शुएठ्यम्युना कफसमीरणसम्मवासु ।
हत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविस्विकासु
पेयं तथा यवरसेन तु विङ्विबन्धे ॥
समं शुएठ्यम्बुनत्येवं योजना क्रियते बुधैः।
तेनाल्पमानमेवात्र हिंगु सम्परिदीयते ॥ ४६ ॥

चूरं सम्मिन्दाति—न्दर्भ देववंत्तः । टोक्एवेन गुरुषाः कर्णकं स्वान्त्यः वा स्वरः । प्रदेश नीववंत मण १, गुर्छाचूर्यः मण २ हिंगुचि ६ । एत यव मेनेति स्वक्रकेन । सम गुरुष्ठाकृतेति सम्मान्त्रतः सुन्दर्भवे हिंगुनेश्वित स्वस्त्रक्षेत्रसम्मान्त्रेन स्कुणनता स्वाति सम्मानित पत्र सहार्थे देववर्षः ॥ ४६ ॥

> हिंगु सोवर्चलं पथ्याविडसैन्यवतुम्हरः । पोष्करञ्च पिवेच्चूरी दशमृलयवाम्मसा ॥ पार्श्वहत्कटिपृष्ठांसञ्जे नन्द्रापतानके । शोधे स्टेप्मयसेके च कर्णरोगे च शस्यते ॥ ४०॥

हिं। ईडवंनीन्यडी—ठगन्यवनननेति दगन्नवनोही- हारे-नेन्द्रह देन प्रवेद्यं दगन्त १ नामा ७ गीद, पवटरहुन १ तम पाल्यं उन गत्रव १ नेम पन १। मेडे विमेचित हिन्दातीना प्रदेग ॥ ५०॥

एरएडनम्कम्

परग्डिवल्बहवृतीष्ठयमातुलुङ्ग-पापाग्मित्त्रिकहमृतहतः कपायः । सज्जारिहहुलवणो रञ्जतेतमित्रः

श्रेाएयंसमेद्रहरयस्तनरचु पेय ॥ ४१॥

दारोकात्री—मातुनुकं मानुद्धम्य मृतम्, यागाप्तित् वापाप्तितीः विद्यायो गोनु,स्त्रम् मृतम् । स्वयान्य क्षेत्रकत् न तु संवर्षनम्, स्वयवस्य स्युक्षस्तिने प्रक्रमेति सामार्थुनक्षेत्रदाद । अवं योग अस्वते चल्लाहेन विद्या । अनुस्त्रम्यानि सुस्तिते ॥ ४१ ॥

हिष्टु त्रिकटुकं कुष्टं यवजारोऽध सैन्धवम् । मातुकुक्तरमोपेतं सीहग्रवापहं रज्ञः ॥ ४२ ॥ हिष्टुव्यक्तिको —नद्यक्तमो मत्युव्यक्तरूर, । व्यवे तु सतुर इक्टन्यकेन्वहः १ ४२ ॥

र्ग्यमनिर्गतपूर्म सुगम्हरं गोघृतेन सह पीतम्।

हृदयनितम्बजशृलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥४३॥ दग्धमित्यादि—सृगर्श्वतं हरिषाशृत्तम्, तच चूर्णाकृत्यान्तर्धूम यथा स्यात् तथा दग्धव्यमित्यर्थ ॥ ४३॥

क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं स्वरसेन वक्ससेनस्य । चपयत्यचिरान्नियतं लौहाजीर्णोद्भवं शूलम् ॥४४॥ क्रिमिरिपुचूर्णमित्यादौ—स्वरमेनेति वक्कसेनपत्रस्य वकपत्रस्य स्वरसेनेत्यर्थ.

11 28 11

✓विदारीदाडिमरसः सञ्योपलवणान्वितः। चौद्रयुक्को जयत्याश्च श्रुलं दोषत्रयोद्भवम्॥ ४४ ॥

विदारीत्यादि —विदारी-पक्तदां डिमफलयों स्वरसं, भूमिकूष्माग्रहरसं पक्ष-दांडिमफलरसं प्रत्येक कर्ष २ त्रिकटुसैन्थव प्र०मा ११ मधु मापा ४॥ ५५॥

प्रग्डद्वादशकम्

परगडफलमूलानि बृहतीद्वयगोत्तुरम् । पर्णिन्यः सहदेवा च सिंहपुच्छीत्तुरालिका ॥ तुल्येरेतैः श्टतं तोयं यवत्तारयुतं पिवेत् । ं पृथग्दोषभवं ग्रलं हन्यात् सर्वभवं तथा ॥ ४६ ॥

एरयडद्वादशके—एरयडस्य फल मूलज्ञ । पर्थिन्यश्चतस्र । सहदेवा दयडेात्पलभेद । सिंहपुच्छी पृश्चिपर्थिभेद , सा च कलम्बुपत्रसहशदीर्षपत्रा काटवा सिंहपुच्छीति ख्याता । इन्तुरालिका लटा वा नड इति नाम्ना ख्याता खग्गडी । डल्वयास्तु इन्तुरालिकास्थाने इन्तुरक पठति । एव सुश्रुतमतानुवादी चन्द्राटोऽपि ॥ ५६॥

> गोमूत्रशुद्धमग्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहन् मधुसर्पिभ्यां शूलं हन्ति त्रिदेषजम् ॥५०॥

गोमूत्रशुद्धमित्यादि--गोमूत्रे सप्तथा निर्वापणेन शुद्ध मण्हूर मिलित-त्रिफलाचूर्णेसम पन्न-षट्-सप्तमाषकाणामन्यतममानेनोपयोज्यम् ॥ ५७॥

शिक्षचूर्णे सत्तवणं सिंहक्षु व्योषसंयुतम् । उच्णोदकेन तत् पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥४८॥ राखचूर्येमित्यादि — मनाग् दग्धस्य राखस्य चूर्यं गृहन्ति । अस्य मापक-मेक किञ्चिद्धिक वा, लवयाच्योषयोध्य मिलित्वा मापद्भ्यम् , हिङ्कुनो रिक्रिद्ध्य त्रय वा पिनेदित्याहु । अन्य तु मागानुको सर्वमेव सर्मामिति वदन्ति । केष्मोत्तरेऽय योग ॥ ५८॥

> तीत्त्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलार्चूणमुत्तमम् । प्रयोज्यं मधुसर्पिभ्यी सर्वश्चलनिवारणम् ॥४६॥

तीच्याय इत्यादि —मारितपुटितवज्रलीहचूर्यं कर्ष १, माषा म, त्रिफलां-चूर्यं प्रत्येक मा म, मिलितचूर्यांच ब्रोध रित ४। द्यतमधुनी दत्त्वा लौहमुद्गरेय सम्मर्थे मचयीयम्। मात्रादिविधिक्ष लोहान्तरवत् अन्ये तु त्रिफलाया एकमागसम लौहचूर्यमिति वदन्ति ॥ ५१॥

मूत्रान्तःपाचितां ग्रुष्कां लेहिचूर्णसमन्विताम् । सगुडामभयामचात् सर्वग्रूलप्रशान्तये ॥ ६० ॥

त्रिफलाकाथभावितलौहपत्रिकया श्रय योगो यदि क्रियते तदा द्वित्रिचतु-र्माषकोपयोग । मूत्रान्त-पाचिताभिति गोमूत्रेखोत्स्वन्नाम् । लौहचूर्येन सहैव मूत्रे पाचितामित्यन्ये, शुष्काभित्यातपयोगात् । लौहचूर्यसमन्विताभिति लौहचूर्यञ्ज हरीतकीचूर्यसमम् । सगुडामिति चूर्यद्वयसमगुडाम् । श्रन्ये तु लौहचूर्यगुडहरी-तकीना प्रत्येक समानत्वभित्याहु ॥ ६०॥

दाधिकं घृतम्

पिण्पली नागरं विल्वं कारवी चव्यचित्रकम् । हिंगुदाडिमवृत्ताम्लवचात्ताराम्लवेतसम् ॥ वर्षाभूकृष्णलवणमजाजी वीजपूरकम् । दाघ त्रिंगुणितं सार्पेस्तत्सिद्धं दाधिकं घृतम् ॥ गुरमार्थःश्लीहहृत्पार्श्वश्र्लयोनिरुजापहम् । दोषसंशमनं श्रेष्ठ दाधिकं परमं स्मृतम् ॥

दाधिकष्टते विल्व विल्वस्य मूलम्, कृष्णल्वसन्तु सौवर्चलभेद । उक्त हिं 'न काललवर्णे गन्ध सीवर्चलगुर्यो हि स ' इति । वृद्धाम्ल महार्द्रकम्, कृष्ण-लवस्य सौवर्चलविशेष, वीजपूरक वीजपूरकमूलम् । दक्षा किंगुर्यनेव पाक ।

स्वरसचीरमाङ्गल्यैरित्यादि परिभाषावचनन्तु चतुर्ग्रेणजलदानार्थमुक्तम्, किन्तु प्रायो न ममादियते ॥ ६१ ॥

कम्वलावृतगात्रस्य प्राणायामं प्रकुर्वतः ।—
कहतैलाक्षराक्त्नां घूपः ग्रलहरः परः ॥ ६२ ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कहु वैदलम् ।
वेगरोधं शुवं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान् नरः ॥ ६३ ॥
इति ग्रलचिकित्सा ।

कम्बलेत्यादि—प्राणायामित्युच्छ्वासरोधनम्, कड्वैदलमित्यत्र ग्रुलिबैदल-मिति पाठ ग्रूल जन्यत्वेन ग्रह अस्तोति ग्रूलि बैदलिवशेषणम् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति ग्रलचिकित्साविद्यति ।

अथ परिणामग्रलचिकित्सा

वमनं तिक्रमधुरैविंरेकश्चापि शस्यते । वस्तयश्च द्विताः ग्रुले परिणामसमुद्भवे ॥ १ ॥ध्या

पूर्णविशेषत्वात् परिणामसूनमाइ वमनित्यादि—वकाराञ्चङ्गनमपि वोध्यम्।
तथा वस्तयोऽपि माधुतैलिकादयोऽत्र श्रेयाः। चक्त हि 'लङ्गन वमन शस्त विरेकस्थानुवासनम्। निरूहो वाजिगन्धादिमाधुतैलिकवस्तयः, इति। माधुतैलिकवस्तयस्य
मधुतैलप्रधाना सुश्रुतोक्ताः। उक्त हि 'वस्मान्मधु च तैलन्च प्राधान्येन प्रदीयते।
माधुतैलिकमित्येव भिषण्मिवस्तिरुच्यते।' वन्नामाशयस्य दोषे लङ्गनवमने, पच्यम(नाशयस्य द्व विरेकार्निरूहौ, पक्ताशयस्य चानुवासनमिति॥ १॥

विडङ्गादिमोदकः

विडङ्गतग्रह्णक्योपं त्रिवृद्दन्तीसचित्रकम् । सर्वाग्येतानि संहत्य श्रद्णचूर्णानि कारयेत् ॥ गुडेन मोदकं कृत्वा मत्त्येत् प्रातरुहियतः । उप्णोदकानुपानन्तु दद्यादिश्चिवर्द्धनम् ॥ जयत् त्रिदोपजं श्रःलं परिणामसमुद्भवम् ॥ २॥ विडङ्गत्यादि—विडङ्गतण्डुल विडङ्गस्य निस्तुषसारमाग । मोदकत्वादत्र दिग्रणो गुड ॥ २॥

नागरगुडितलकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् । उग्रं परिणतिभूलं तस्यापैति सप्तरात्रेण ॥ ३ ॥

नागरत्यादि— नागरादिकल्कमुत्कारिकावद यवागूवद् वा चीरेण साध-यित्वा भचयेत् । शुर्यठीचूण कपं १, पुरातनग्रुड कपं १, तिलचूर्ण पल १, गच्यदुग्ध शराव २ ॥ ३ ॥

भि शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोप्लोन तत् ज्ञालात् । पक्षिजं विनिद्दन्त्यतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ४॥ शम्बूकजमित्यादि—निर्मासस्वलशम्बूकमव भस्म मापकमेक द्वय वा बण्णा-

म्बुना गोलियत्वा धताभ्यक्षमुख्कुहरेख पेयम् । अय योग कफे ॥ ४ ॥

श्रव्यात्र्यमयाकृष्णाचूर्णं मधुयतं लिहेत्। द्धानूनसरेणाद्यात् सतीनयवशक्तुकान्॥ श्रविरान्मुच्यते श्रूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात्॥ ४॥ तिलनागरपथ्यानां भागं शम्वूकमस्पनाम्।

श्रदेत्यादी--श्रनुनसरेखेति श्रखिंदतिक्षेग्थमागेनेत्यर्थे । श्रत्नसरेखेति पाठे स प्वार्थ सतीनो वर्त्तुलकलाय । श्रद्भपरिवर्त्तोऽश्रपरिखामः ॥ ५ ॥

> हिभागगुडमंयुक्तां गुडीं कृत्वात्तभागिकाम् ॥ शीताम्वुपानं पूर्वाह्ने भत्त्वेत् त्त्रीरभोजन । सायाह्ने रसकं पीत्वा नरी मुच्येत दुर्जयात्। परिणामसमुत्थाच ग्रुलाचिरभवादि ॥ ६॥

तिलेत्यादि — तिलादीना शम्बूकमस्मान्तानां सममाग । मिलितचूर्यापेचया च गुडस्य भागद्वयम् । रसकमिति मासरसम् ॥ ६ ॥

शम्बूकं त्र्यूपण्ड्वैव पञ्चैव लवणानि च। समांशां गुडिकां कृत्वा कलम्वकरसेन वा॥ प्रातर्भोजनकाले वा भद्ययेत् तु यथावलम् । श्र्लाद्विमुच्यते जन्तु सहसा परिणामजात् ॥ यः पिवति सप्तरातं शक्र्नेकान् कलाययृषेण् । स जयति परिणामरुजं चिरजामपि किमुत् नूतनजाम् ॥=॥

शम्बूकिमत्यादी—कलम्बकरसेनेति वा शब्द पूर्वयोगापेत्रया, शम्बूकादि-चूर्णं कलम्बकरसेन सयोज्य चतुर्माषिका गुद्धिका कार्य्या । अत्र केचिच्छम्बूकशब्देन शम्बूकशस्य गृह्यन्ति, युक्तज्ञचैतत् तथा च तन्त्वान्तरमवादात् । 'मपञ्चलवण्योष-चूर्णं शम्बूक्रसम्मभि । गुद्धिका पिक्तश्रल्म्नी कलम्बीस्वरसे कृता' इति । शक्त्विति यवशक्त्न् । एकानिति केवलान् । कलाययूष वर्त्तुलकलाययूष । अय योग पित्तकफश्रुले युक्त ॥ ७॥ =॥

लौहचूर्णं वरायुक्तं विलीढ मधुसर्पिषा। परिणामश्रलं शमयेत् तन्मलं वा प्रयोजितम्॥ ६॥ स्वस्त्र

लीहचूर्णमित्यादि—वरा त्रिफला। लीहचूर्णस्येको माग, त्रिफलायाश्च प्रत्येक लीहचूर्णसममागत्वम्। तन्मल वेति लीहमल, एतदि प वरायुक्तमिति बोध्यमः। लीहमलस्य तु मिलितित्रिफलातुल्यो मागः। मारितपुटितलीहचूर्णं माषा = त्रिफला-चूर्णं प्रत्येक माषा =। अन्य तु लीहचूर्णस्य महाबीर्थ्यत्वात् ब्वाधिप्रत्यनीकत्वाच प्राधान्यमिति कृत्वा मिलितित्रिफलाचूर्णममत्वमित्यादुः। तन्मते त्रिफलाचूर्णं प्रवमा =, लीहचूर्णं कर्ष १, मा =, मिलितचूर्णात् प्रथमतो रिक्तचतुष्टय गृहीत्वा चत-मधुभ्या सम्मद्यं लेखम्। लीहान्तरवत् चीर चतुःषष्टिगुण षष्टिगुण वानुपेयम्। दिनत्रयानन्तर रिक्तद्वयंन वृद्धिमीषकद्वयं यावतः। सर्वमपर लीहान्तरवत् किया। तथा शोधितमयद्वरं पल १, मिलितित्रिफलाचूर्णं पल १, ततो मिलितचूर्णात् = माषा मधुष्टताभ्या लेखम्॥ ६॥

> कृष्णाभयालौहचूर्णं गुडेन सह भक्तयेत्। पक्तिग्रलं निहन्त्येज्जठराएयग्निमन्दताम्॥ म्रामवातविकारांश्च स्थौल्यञ्चैवापकर्षति॥१०॥

कृष्णित्यादि-प्रत्येक सममाग इति निश्चलः । अन्ये तु मिलितसर्वेचुर्णसम लौहचूर्णमित्याहु ॥ १०॥

पथ्यालोहरजः शुरुठीचूर्णं मान्तिकसर्पिषा।

परिणामरुजं हन्ति वातिपत्तकफात्मिकाम् ॥ ११ ॥

पथ्यत्यादि—अत्रापि हर्रातकीशुग्रस्थोभिलितः नूर्णेन मम लीहन्तूर्णे प्राह्मम् । प्रयोगश्च नवायमादिवदित्याहु । निश्चलस्तु पथ्यादीना त्रयाणा प्रत्यक समभागता-माह ॥ ११ ॥

सामुद्राद्यं चूर्णम्

सामुद्र सैन्धवं चारो रुचकं रोमकं विडम्।
दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरण्क समम्॥
दिधगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम्।
तद्यथाग्निवलं चूर्णं पिवेदुण्णेन वारिणा।
जीर्णेऽजीर्णं तु भुक्षीत मांसादि घृतसाधितम्॥
नाभिश्रलं यरुच्छूलं गुलमसीहरूतञ्च यत्।
विद्रध्यष्टीलिकां द्दन्ति कफवातोद्भवं तथा॥
श्रल्लानामिप सर्वेपामौषधं नास्ति तत्परम्।
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तक्रनमतम्॥ १२॥

सामुद्रमित्यादि—सामुद्र करकच, क्चक सीवर्चल, रोमक रुमानदीमव तदमावे साम्मरिलवणम् । लीहरन किट्टन्चेति मारित पुटित ले।इचूर्णम् । किट्टन्च गोमूत्रशोधितमयद्ररचूर्णम् । दिधिगोमूत्रपयसेति दध्यादित्रय मिलित्वा चतुर्गुण मिलितचूर्णसम वा, दत्त्वा सर्वमेव चूर्णमेकीकृत्य पक्तव्यम् आचूर्णीभावात् । व्यव-हारस्तु दध्यादिना चतुर्गुणेनैव ॥ १२ ॥

नारिकेलं सतोयञ्च लवेशन प्रपूरितम् । विपक्तमञ्जिना सम्यक् परिशामजग्रलनुत् ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव ऋष्टिमकं सान्निपातिकम् ॥ १३ ॥ नारिकेलिमत्यादि—नारिकेलिमह ग्रुपक्षम् ॥ १३ ॥

सप्तामृतं लोहम्

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं लिहन् । मधुसर्पिर्युतं सम्यग् गव्यं त्तीरं पिवेदनु ॥ छुर्दि सितिमिरां श्र्लमम्लिपित्तं ज्वरं क्लमम् । श्रानाहं मूत्रसङ्गञ्ज शोथञ्चेव निहन्ति सः ॥ १४ ॥ मधुकमित्यादि—अयारजः नमिति मिलितचूर्यसम लीहरजः । अन्ये लेकमागमम लीहरजश्चाहः । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ १४ ॥

गुडिपप्पलीघृतम्

सिपप्पतीगुडं सिपः पचेत् चीरचतुर्गुणे । विनिद्दन्त्यम्लिपत्तञ्च ग्रूलञ्च परिणामजम् ॥ १४ ॥ मिपपतीगुडमिति विप्पतीगुडा कल्को ॥ १४॥

पिप्पली घृत्म्

काथेन कल्केन च पिष्पलीनां सिद्धं घृतं मान्तिकसंप्रयुक्तम्। चीरानुपानस्य निद्दन्त्यवश्यं

ग्रूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ १६ ॥ काथेनेत्यादौ---माज्ञिकसप्रयुक्तमिति सिद्धशीते मधु पादिक प्रवेष्यम् ॥१६॥

कोलादिमएडूरम्

कोलाग्रन्थिकश्रुक्षवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम्। तं खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्तभुग्-जेतुं वातकफामयान् परिणतौ श्रुलञ्च श्रुलानि च॥१०॥

कोलेत्यादौ—कोला चनी, चपला पिप्पली, चारो यवचार । सस चूर्णित मण्डूरमिति मर्वचूर्णसम मण्डूरस । सुरभीजले गोमूत्रे । अष्टगुणित इति मण्डूरा-पेच्या । आसन्नपाके कोलादिचूर्णं प्रचेप्यम् । समुदितचूर्णं पेचयाष्ट्रश्य गोमूत्रामि-त्याहुरन्ये । श्र्लमिति सान्निपातिक, श्र्लानि चेति बातजादीनि ॥ १७॥

भीमवटकमएइरम्

कोलाग्रन्थिकसिहतैर्विश्वौषधमागधीयवचारैः। प्रस्थमयोरजसां पलिकांशैश्चूर्शितैर्मिश्रेः॥ श्रष्टगुण्मूत्रयुक्तं क्रमपाकात् पिण्डतां नयेत् सर्वम् । कोलप्रमाण्विटकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ च ॥ रससर्पियूपपयोमासरश्रम् नरो निवारयति । श्रव्यविवर्षनगूलं गुल्मं प्लीहाशिसादांश्च ॥ १८॥

सीमवटकमण्ड्रे कोलप्रमाणा इति मिलित्वा अष्टमाषकमाना । तेनाष्ट-मापंकरेवेति तिस्रो बटिका कार्य्याः। न्यवहारस्तु द्वित्रिचतुर्मापंकरिति । अत्रापि मूत्रस्याष्ट्रायात पूर्ववत् । अन्नविचर्तनम् परियामम्हलम् ॥ १८॥

चीरमण्डूरम्
लौहिकेड्पलान्यष्टौ गोमूत्रार्डाढके पचेत्।
चीरप्रस्थेन तत् सिद्धं पिक्षश्रलहरं नृणाम्। ी
चीरमण्डूर स्पष्टम् ॥ १६ ॥

चिकादिमगद्दरम्
लौहिकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रेऽष्ट्रगुणे पचेत्।
चिकानागरज्ञारिपप्पलीमृलिपपलीः॥
सञ्चूर्ण्यं निज्ञिपत् तस्मिन् पलांशाः सान्द्रतां गते।
गुडिका कल्पयेत् तेन पिक्षश्चलिनवारिणी ॥ २०॥
लाहिकिट्टेत्यारी चिकाम्भाने चपलापाठेऽपि चिक्केवार्थ, हित्तापिपालीलन्ये॥ २०॥

मराङ्गरं शोधितं पत्रीं लोहजां वा गुडेन तु । भक्तयेनमुच्यते श्रुलात् परिणामसमुद्धवात् ॥ २१ ॥ मराङ्गतियादां—लोहजा पत्री वज्रपार्यस्थादिजा मामान्यलोहजा बा प्रत्री पुटादिगोधिना याद्या ॥ २१ ॥

> शतावरीमएट्ट्रम् संशोध्य चूर्णितं इत्वा मरह्रस्य पलाएकम् । शतावरीरसस्याष्टी दशस्तु पयसस्तथा ॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिप ।

विपचेत् स्विमैकघ्यं यावत् पिएडत्वमागतम् ॥
सिद्धन्तु भच्चयन्मध्ये भाजनस्यात्रतोऽपि वा ।
वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम् ।
निद्धन्तेय द्वि योगोऽयं मएडूरस्य न संश्यः ॥ २२ ॥
शतावरीमण्डूरे—अत्रतोऽपि वेति वा शब्द ममुच्चवे, तेन मोजनान्ते मोजनमध्ये गोजनस्यात्रक्ष मच्चेयत् इति ॥ २२ ॥

4 4444 411 11 44 11

तारामराङ्ग्युडः

(विडक्नं चित्रकं चव्यं त्रिफला ज्यूषणानि च।
नवभागानि चैतानि लौहिकिष्टसमानि च॥
गोम्त्रं द्विगुणं द्वा मृतार्दिकगुडान्वितम्।
शनैर्मृद्विना पक्त्वा सुसिद्धं पिएडतां गतम्॥
सिग्धं भाएड विनिचिष्य भच्चयेत् कोलमात्रया।
प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः॥
योगोऽयं शमयत्याशु पिक्रश्रलं सुद्दा्रणम्।
कामलां पाएहरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि॥
ग्रशांसि प्रहणित्तेषं क्रिमिगुल्मोदराणि च।
नाश्येदम्लिपत्तञ्च स्थौल्यञ्चेवापकर्षति॥
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकद्वनि च।
पिक्रश्रलान्तको ह्येष गुडो मगहरसंह्यकः॥
श्रलात्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्तितः॥ २३॥

तारामण्डूरे नवमागानि चैतानीति विडङ्गादीना प्रत्येकमेकभागतया नव भागा त्राह्मा , वृद्धव्यवद्यारात्, ते चामश्रपाके प्रदोष्या । लोहिकेट्टसमानि चेति लोहिकेट्टस्यापि नत्रमागम् । गोमूत्र द्विगुण्यमिति मिलितचूर्णात् । अत्र पलोहिखा-गतमानत्वात् तथैव व्यवहारात्र द्वैगुण्यम्। मूत्राद्विकगुडान्वितमिति सर्वचूर्णसमो गुड इत्यर्थ- । कोलमात्रयेति अष्टमाषकमानेन ॥ २३ ॥

> राममग्रह्**रम्** वशिरं श्वेतवाट्यात्तं मधुपर्णी मयूरकम्।

तग्रहलीयञ्च कर्षार्द्धं दत्वाधश्चोद्धंमेव च ॥
पाक्यं सुजीर्णमग्रह्भर गोमूलेण दिनहयम् ।
श्चन्तर्वाष्पमद्ग्यञ्च तथा स्थाप्यं दिनहयम् ॥
विचृ्र्य हिगुर्णेनैव गुडेन सुविमर्हितम् ।
भोजनस्यादिमध्यान्तं मस्यं कर्प त्रिभागतः ॥
तकानुपानं वर्त्यञ्च वार्त्तमम्लकमत्र तु ।
श्चम्लापिते च शूले च हितमेतद् यथामृतम् ॥ २४ ॥

वशिरिमित्यादि—वशिर स्वर्यावर्त्तं , मधुपर्थी गुङ्ची, मयूरकोऽपामाग । पावय सुजीर्यमयङ्गिति गोमूत्रेण दिनत्रयमिति गोमूत्रमल्पमल्प दत्ता दिनद्वय पक्तव्य यथा मयङ्ग न दश्यते। गोमूत्रन्तु एकंदन वहुतर न देय तथा सत्युत्तानधारण कत्तुमराक्यमिति। त्रवतार्थ्यं शरिवेण पिधाय दिनद्वय स्थाप्यम्, तदनु प्रचाल्य शोध-वित्ता नाह्यम् । मन्त्य कर्षे त्रिमागत इति कपमेन भागतय कृत्वा साधम्, व्यवहारस्तु मापकचतुष्टयेन । वार्चम्लकमिति वदरीन्तिडीकादिकम् । रामकृतत्वाद्राममयङ्गर-मेतत्॥ २४॥

बृहच्छतावरीमएडूरम्

शतावरीरसप्रशे प्रशे च सुरभीजले।
श्रजायाः पयसः प्रशे प्रशे घात्तीरसस्य च।
लौहिकद्वपलान्यष्टौ शर्करायाश्च पोडश।
दत्त्वास्य कुडवञ्चैव पचेन्मृद्धश्चिना शनैः॥
सिद्धशीते घटे नीते चूर्णानीमानि दापयेत्।
विडद्गित्रफलाव्योपयमानीगजिपण्पली॥
द्विजीरकघनानाञ्च श्रुक्णारयत्तसमानि च।
लादेदश्चिवलापेत्ती भोजनादौ विचत्त्रणः॥
निद्दन्ति पिक्षश्चलञ्च श्रम्लिपत्तं सुद्दारुणम्।
रक्षपित्तञ्च श्रलञ्च पारहरोगं हलीमकम्॥ २४॥

शतावरीत्यादि—मुरमीजले गोमूत्रे ॥ २५ ॥

रसमएडूरम्

कुडवं पथ्याचूर्णं दिपलं गन्धाश्म लोहिकट्टब्च । शुद्धरसस्यार्द्धपलं सृद्धस्य रसञ्च केशराजस्य । प्रस्थोन्मितञ्च दन्वा लौहे पातेऽथ द्रश्डसहृष्टम् । शुष्कं घृतमधुयुक्तं सृदितं स्थाप्यञ्च माएडके स्निग्धे ॥ उपयुक्तमेतद्विरान्निहन्ति कफिपत्तजान् रोगान् । शूलं तथाम्लिपत्तं ग्रह्णीञ्च कामलामुग्राम् ॥ २६ ॥

कुटनिमत्यादौ-गन्धाशम शोधितगन्धकचूर्ण द्विपल शोधितलौहमलन्स प्रत्येक द्विपलिमत्यर्थः । रमगन्धकौ कज्जलीकृत्य हरीतकीमपद्धरचूर्णाभ्या सह मिश्री-कृत्य शृहराजस्वरस केशराजस्वरसन्न प्रत्येक प्रस्थमान दत्ता ताबद् धर्षणीय लोहपात्रे लौहदयदेनेन यावच्चूर्णपाय मनति, अत प्रथमतः रिकचतुष्टय गृहीत्वा धतमधुभ्या सम्मर्च लेद्यम्, चीराटिकमनुपेयम्। धन्तर रिकदय कृत्वा दृद्धिमीषकद्वय यांवत् ॥ २६ ॥

त्रिफलालौहः

त्रज्ञामलकशिवानां स्वरसैः पकं सुलोहजं चूर्णम्। सगुडं यद्युपयुङ्क्ते मुञ्चति हि त्रिदोषजं ग्रलम् ॥२७॥

श्रवामलकेत्यादौ — स्वरसेरिति मिलित्वा चतुर्गुणै., प्रत्येकमित्यन्ये । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव स्वरसामावे काथ । सगुडिमिति लौहरज समगुडम् । पाकश्चास्य मुद्रया । तदुक्त — 'गुडिदि प्रविरोद् यत्र तत्र पाकश्च मुद्रया ।' लौहान्तरविदेधिरश्च ॥ २७॥

लौहगुडिका

लोहस्य रजसो भागस्त्रिफलायास्त्रयस्तथा।
गुडस्याष्टौ तथा भागा गुडान्सूत्रं चतुर्गुण्म्॥
एतत् सर्वञ्च विपचेद् गुडपाकविघानवित्।
लिहेच तद् यथाशक्ति चये ग्रुले च पाकजे॥ २८॥
लौहस्वेत्यादि—माग इत्वेको मागः, त्रिफलायास्त्रय इति मिलित्ना। लिहेच

रिक चतुष्टयादिक्रमेखेत्याहु ॥२८॥

धात्रीलौहम्

धात्रीचूर्णस्याप्टी पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्य ।
यप्टीमधुकरजश्च द्विपलं द्यादुपलघृष्टम् ॥
श्रमृताकाथेनैतच्चूर्ण भाव्यञ्च सप्ताहम् ॥
चएडातपेषु शुष्कं भूय पिष्ट्वा नवे घट स्थाप्यम् ॥
घृतमधुना सह युक्तं भक्तादौ मध्यतोऽनंत च ।
श्रीनिप वारान् खादेत् पथ्यं दोषानुवन्धेन ॥
भक्तस्यादौ नाशयित व्याधीन् पित्तानिलोद्भवान् ।
भक्तस्यादौ नाशयित व्याधीन् पित्तानिलोद्भवान् ।
पनाष्ठतान् दोपान् भक्तान्ते शीलितं जयित ।
एवं जीर्यात चान्ने शूल नृणां सुकष्टमिप ॥
हरित सहसा युक्तो योगश्चायं जरित्यत्तम् ।
चनुष्यः पितत्रमः कफापित्तसमुद्भवान् जयेद्रोगान् ।
भसादयित च रक्त पाएइत्वं कामलां जयित ॥ २६ ॥
धान्नीत्यादि—अमृताकाथेनामलकीकाथेन । श्रन्य लमृता गुढ्वीमाह ।
वनहारस्त पूर्वयव । जरित्यत्तमन्त्रिपत्तम् ॥ २६ ॥

लौहामृतम्

तन्नि लोहपत्राणि तिलोत्सेघसमानि च ।
कशिकामूलकल्केन संलिप्य स्पेपेण वा ॥
विशोष्य सूर्य्यकिरणैः पुनरवावलेपयेत ।
तिफलाया जले घमातं वापयच पुनः पुनः ॥
ततः सञ्जूर्णितं कृत्वा कर्पटेन तु छानयत् ।
मन्त्रेयन्मधुसर्पिभ्यां यथाम्येतत् प्रयोजयेत् ॥
मापकं त्रिगुणं वाथ चतुर्गुणमथापि वा ।
छागस्य पयसः कुर्याद्नुपानमभावत ॥

गवां घृतेन दुग्धेन चतुःषि धृगुगेन च।
पिक्तिश्रलं निहन्त्येतन्मासेनैकेन निश्चितम्।
लोहासृतिमदं श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
ककारपूर्वकं यच यचाम्लं पिरकीर्तितम्।
सेव्यं तम्न भवेदत्व मांसञ्चानूपसम्भवम्॥ ३०॥

तन्नीत्यादि—कशिकामूलकल्केन श्रेतार्कमूलकल्केन, तथा श्रेतसंघपकल्केन वा पुन पुनः परिलिप्य पुन पुनः चातपं सशोष्य, ततो दग्ध्वा त्रिफलाक्काथे निर्वापय तावत् कार्य्यं यावत् मर्वलोहस्य जारयम् मवेत् । तत प्रचाल्य मशोष्य चूर्यीकृत्य रिक्तचतुष्टयादिक्रमेया नवायसादिवदस्योपयोग । कचिच्च अत्र कशिकामूलकल्केनेत्यत्र श्रेतसंघपकल्केन परिलिप्य पुन पुनिरिति पाठान्तरम् ॥ ३०॥

खरडामलकी

स्थित्रपीडितक्षणाएडात् तुलाई भृष्टमाज्यतः।
प्रश्याई खएडतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात्॥
प्रश्ये सुस्तिन्नकृष्माएडरसप्रश्ये विघट्टयन्।
दर्ज्या पाकं गते तिसंश्चूणींकृत्य विनिक्तिपेत्॥
दे द्वे पले कणाजाजीश्चएठीनां मरिचस्य च
पलं तालीश्चयन्याकचातुर्जातकमुस्तकम्।
कृष्प्रमाणं प्रत्येकं प्रश्याई मान्तिकस्य च॥
﴿ पृक्षिश्चलं निहन्त्येतद्दोषत्वयभवञ्च यत्।
छुर्चम्लिपत्तम्च्छिश्च कास्थ्वासावरोचकम्॥
द्वञ्चलं रक्षपित्तञ्च पृष्ठश्चलञ्च नारायेत्।
रसायनिमदं श्रेष्ठं खएडामलकसंक्षितम्॥ ३१।

खयडामलक्या खयडतुल्यमिति खयडस्य पद्माशत्पलानि । मरिचस्य तु पल-मिलन्वय । तालीशादिकञ्च प्रत्येक कर्षमानमित्यर्थ ॥ ३१ ॥

नारिकेलखएडः

्र कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं

पलपरिमितसर्पि पाचितं खएडतुल्यम् । निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपकं गुडवद्थ सुशीते शासभागान् क्षिपेच ॥ धन्याकपिष्पलिपयोदतुगाहिजीरान् शासं त्रिजातिमभकेशरवहिच्यूर्यं । हन्त्यम्लपित्तमकिं च्यमस्रपित्त शूलं वर्मि सकलपारुपकारि हारि ॥ ३२०॥

कुटविमलादि— अन्न के विन्नारिकेल स्यादंत्वेन देशुयर्गमच्छिन । अतण्यान - ' अष्टो पलानि कुटवो नारिकेल तथेव च ' इति । ये च न दंशुयर्गमच्छिति तेपामय-मिन्नायो नारिकेलस्याष्टपलत्वे रायउस्याप्यष्टपलत्व, खरउतुर्त्यमिति यननात् । अतश्रात्र नारिकेलार्याष्टपलत्वे रायउस्याप्यष्टपलत्व, खरउतुर्त्यमिति यननात् । अतश्रात्र नारिकेलार्यक्रसस्य द्रवत्वेनोपादानात् पाकस्य देशुय्य प्रमञ्यत्, ननृगुण् स्तुर्त्वातिद्व किन्न तनात्तरे चातुंशुय्यमप्युक्त यथा— 'कुउव नारिकेलाय क्रम् प्रदा्य इरादि पेपितम् । शुद्धखर्यस्य कुटव मर्वमेतचतुगुणे । आलोत्य नारिकेलाय क्रम् यद्विमना पचेत् होते। अस्पन् वचने राकंताया अपि कुउवसुक्तम्, तम च न देशुय्य 'प्राह्मास्तत्त्वणमेव न दिशुणिता ये चेत्तुनाता घनाः' इरसुके । अत्र च रायउतुत्य-मिति पर्यते। तत नारिकेलस्य राययकुटवाद् देशुण्येन परमनयोनीरिकेलर्गयत्यो ममन्ता स्यात्, नान्यथिति। तेन देशुय्यामानपच पव साधीयान् । नारिकेल तथेव चेति वाक्य नादर्यायमार्थेते प्रमाणाभावादित्याद्वः। तुगा वमलोचना। नागकेशरसिद्दित विज्ञात मिलित्वा सायामात्र पुन सायामित्युके । पौरप शुक्रम् । द्विर ननोदारि ॥ १२ ॥

कलायगुडिका

कलायचूर्णभागी द्वी लाहचूर्णस्य चापरः।
कारवेक्षपलाशानां रसेनैव विमर्दितः॥
कर्पमात्रां ततश्चैकां गुडिकां भक्तयेन्नरः।
मग्डाचुपानाज्जयित जरिपत्तं सुदुर्जयम्॥ ३३॥
कलायेलादि—कलाये वर्तुंलकलाय। लीहचूर्णस्मापर इत्येको भाग । पलारा।
नामिति पत्राणाम्। मगडो यवमण्ट । नरिसित्तमम्लापित्तम्॥ ३३॥

लिह्याडा त्रैफलं चूर्णमयश्चूर्णसमान्वतम्।

यिष्यूरेंपन वा युक्तं लिह्यात् त्रोडेण तद्गदे ॥ ३४॥ लिह्यादित्यादि—मिलितित्रिफलाचूर्णस्म लीहचूर्णसमत्वम् । श्रन्ये तु त्रिफलाया प्रत्येक लीहचूर्णसमोंऽश इत्याहुः । तद्गद शते जरिवते ॥ ३४॥

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तञ्च विरेचनम्।
श्रनद्रवे च तत्कार्य्यं जरित्पत्ते यदीरितम्।
श्रामपकाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम्।
माषेएडरी सतुषिका सिन्ना सर्पियुता हिता ॥ ३४॥

पित्तान्तीमत्यादौ—अन्नद्रव इति, "भुक्ते जीर्य्यति जीर्ये वा यच्छूलमुपजा-यते" इत्यादिनोकः ग्रलविशेषोऽन्नद्रव । माषेग्रहरी सतुषिकेति सतुषमाषक्रता माषेग्रहरी माषापिष्टकविकृतिर्भद्त्यविशेष ॥ ३५॥

> गोधूममएडकं तत सार्पेषा गुडसंयुतम्। सितं शीतदुग्धेन मृदितं वा हितं मतम्॥ शालितएडलमएडं वा कवोष्णं सिक्थवर्जितम्। वाट्यं चीरेण संसिद्धं घृतपूरं सर्शकरम्॥ ३६॥

गोधूममण्डको गोधूमकृतो मस्यिवशिष पश्चिमदेशे प्रसिद्ध । मृदित वा हित मतिमिति, मृदित सयावाकृतिलेह । वाट्य यवमण्डम् । वाट्यमिव मण्डिमिति पाठे शालितण्डुलकृतमण्ड इत्यर्थ । किन्तु यवस्य सर्वथा शृद्धान्तात् वाट्यमिति पाठ एव अयान् । गोधूमचूर्णकृत. मृष्टो पृतपूरो मस्यविशेष ॥ ३३॥

शर्करां भक्तयित्वा वा जीरमुत्कथितं पिवेत्। पटोलपत्रयूपेण खादेचणकशक्तुकान् ॥ ३७ ॥ श्रन्नद्रवे जरित्पत्ते विह्नमन्दो भवेद् यतः। तसादत्रान्नपानानि मात्नाहीनानि कल्पेयत् ॥ ३८ ॥ इति परिणामग्रलिचिकत्सा।

A CONTRACT

पटोलेत्यादी--यूषो मुद्गादियोगात्, किंवा काथ ॥ ३०॥ ३०॥ ३०॥ ३०॥

अथोदावर्त्त-चिकित्सा।

विवृत्सुधापत्रतिलादिशाक-ग्राम्योदकानूपरसैर्यवान्नम् । श्रन्येश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भि-रद्यात् मसन्नागुडशोधुपायी ॥ १ ॥

पवनाविनाभावित्वमाधर्मात् ग्रूलानन्तरमुदावर्षः । ददावर्ते हि मर्वत्र ग्रूल-वहवण्यस्मावा वाद्य । यदुकः मुश्रुते—'मर्वेप्वेतेषु विधिवदुदावर्षेषु कृत्वरा । वायो किया विधातं या स्वमागंप्रतिपत्त्यये इति । उङ्गतेन वेगविधारस्येनाष्ट्रतस्य निक-द्धवायोर्वर्षां वर्षेनमुदावर्षे इति निकृतिहरस्य । त्रिवृद्धिस्यिदि—त्रिवृद्ध्ययो पत्रम् न्नादिशब्दात् मप्तलादिपत्रपरिम्रहः । अन्यैरिति विस्मूत्राधनुलोमनैः चीराविधि । प्रमन्ना मिदराविश्वेषः, ग्रुडकृतशिक्षुर्युडशिक्षः ॥ १ ॥

श्रास्थापनं माठतजे क्रिग्धस्तिन्नस्य शस्यते । पुरीषजे तु कर्त्तन्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ २/॥

श्रास्थापनामित्यादि-सुक्षुनस्य। मारुतने इति मारुतनेगनिषातजे, पव पुरापन इत्यत्रापि न्याख्येयम् । निभिरानाधिक इति फलवर्त्यादिः ॥ २ ॥

्वारवैतरणौ वस्ती युञ्ज्यात् तत्र चिकित्सकः ॥ ३/॥ । श्यामा दन्ती द्रचन्तोत्वक् महाश्यामा स्नुही त्रिवृत् । सप्तला शिक्षुनी श्वेता राजवृत्तः स्तित्वकः ॥ किपल्लकः करञ्जस्य सर्णज्ञीरी त्वयं गण् । सर्णिस्तैलरजःकाथकल्केष्वन्यतमेन च ॥ उदावर्त्तांदरानाह्विपगुल्मविनाशनः ॥ ४ ॥ त्रिवृत्कृष्णाहर्रातक्यो द्विचतु पञ्चमागिकाः ।

भारवापन विष्ट्योति ज्ञारवैतरयावित्यादिना । श्यामेत्यादि — श्यामा श्याम-मूला त्रिवृत् । द्रवन्ती मूपिकपत्रा दन्ती, अस्यास्त्वक्, त्विगत्यत्र स्नुगिति पाठे मीजु-भेदो वा, किन्तु सुयुते वाग्मटे च स्नुहौंद्रय न पड्यते । महाश्यामा वृद्धदारक । त्रिवृदित्यरुणमूला त्रिवृत् । सप्तला चर्मकषा, नीलबुद्धेस्ते । राष्ट्रनी श्रेतबुद्धा । होलकलन्नीत्यन्ये । श्रेता श्रेतापराजिता कटभी वा । राजवृत्त राोणाञ्चफलम् । तिल्वकाऽत्र नावरलोध्र । किम्पिहो गुण्डारोचनी । देमचीरी ककुष्ठ । अन्यतमेनेति मीप-रादिकन्यमध्ये चैकतमेन कल्पेन प्रयुक्त इति राष ॥ ३॥ ४॥

गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विवन्धगदापहाः ॥ ४ ॥ विद्वित्यादौ—दिचतु पद्ममागिका इति यथाक्रमम् । गुडतुल्या इति ममु-दित्तमूर्णतुल्यो गुडमागः ॥ ४ ॥

हरीतकी यवदारः पीलुनी त्रिवृता तथा। घृतैश्चूर्णिमदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम्॥६॥

इरीतकीत्यादौ-पीछनीति मूर्वा, पीलूनी इति पाठान्तरे पीछ श्रीचरा-पथिकफलम्, इदमेव युक्त स्नसकत्वात् ॥ ६ ॥

• हिंदुकुष्ठवचासर्जी विडञ्चेति द्विरुत्तरम् । पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्चविनाशनम् ॥ ७ ॥ हिन्दित्यादि—सुश्रुतस्य । सर्विः सर्विद्यारः । दिरुत्तरमिति यथोत्तर दियुणम् ॥ ७ ॥

नाराचचूर्णम्

खरडपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्रद्यम्।
प्राग् भोजने च समघु विडालपदकं लिहेत् प्राझः॥
पतद् गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम्।
सुस्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णी नाराचको नासा॥ =॥
नाराचचूर्णे त्रिवृतामममिति त्रिवृच्चूर्णस्यापि पलम्। उपकुल्या पिप्पली।
प्राग्माजन इति मोजनपरिखामे भोजनसन्निष्ठाने वा॥ =॥

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिवेत् प्रातः प्रकाङ्क्तिस् । गुल्मोदावर्त्तश्रलद्गं दीपनं वलवर्द्धनम् ॥ १ ॥

रसेानिमत्यादि—यद्यप्ययं योगः श्र्लाधिकारे पूर्वमुक एव तथाप्युदावर्तेऽपि विहितत्वात् पुनरप्यत्र लिखितः ॥ ६॥

हिङ्गुमाचिकसिन्धूत्थः पक्तवा वर्त्ति सुनिर्मिताम्।

घृताभ्यक्षां गुदे दद्यादुटावर्त्तविनाशिनाम् ॥ १० ॥

हिंगुमाचिकत्यादि—हिंगु माया ८, मैन्धव कर्ष १, मधु पण १, एव स्या-हाराद् गृहीत्वा पवत्वा च फलवर्ति कुर्याद् । हिंगुसैन्धवे समे वर्तिकरणानित मधु देयमित्यन्ये । गुटपाकवदम्य पाक , तदवस्थायामेव वर्ति कराव्या । तता प्रेना-भ्यज्य गुदे चिपन् ॥ १० ॥

> मदनं पिष्पली कुछं वचा गौराश्च सर्पपाः। गुडनारसमायुक्षाः फलवर्त्तिः प्रशस्यते ॥ ११॥

मदनमित्यादी---गुजे मिलित वृष्णमम । गुटश मनाक् जल द्रदरा पश्चर च वर्षि कुर्यादित्यथ ॥ ११ ॥

> श्रागारधूमसिन्धृत्थ-तेलयुक्ताम्लमूलकम् । ज्जुएणं निर्गुरिडपत्रं वा स्विन्ने पायो जिपेद् युघ ॥१२॥

आगारभूगत्यादि—आगारभूमे। जन्भूम, अम्लमूलक काशिकमूलक अग्रष्ठ-लमम् अलन्भूममैन्थवचूर्यतेले अस्यित्वा न्यित गुदे प्रतिस्थम्। निगुवरी भिम्भु बारः। तत्यत्रमपि चूर्या हत्य चागारभूमादिग्रसिन रिग्ने गुदे नियेष्यम्॥१२॥

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मुत्रे त्वभिद्दते पिवेत्। एला वाण्यथ मद्येन चीरवारि पिवेद्य सः॥ १३॥

सीर्वचेतत्यादि—सुमुतस्य । त्रत्र मिन्धूत्यज्ञरणाणान्तु शाणिका चित्यत्रादि-पदेन समृहीतत्वात् मीर्वचनस्य मापकचतुष्ट्यम्, मिदरा चाहारज्ञ्यत्वात् प्रचुरा प्राचा । व्यवहारस्तु मिदरापलद्रयेन । ण्ला वाष्ययं मेवेनेति प्रणाचूर्णस्याद्यं मापकाः, मधस्य च पलद्रयमित्याहु चीरवारीति ममधारेण मिश्रित वारीत्ययः ॥ १३ ॥

> दुःस्पर्शास्वरसं वाापि कपाय ककुभस्य वा । पर्वारुवीजं तोयेन पियेद्वा लवखीकृतम् ॥ १४॥

दुःस्परींत्यादि—सुश्रुतस्य । दुःस्परों दुरालमा, दुःस्परा। न्वरमिति पाठे दुःस्परों कपटकारीत्यन्ये । ककुमोऽजुनः । ण्वामः ग्रीष्ममवा कर्कटोति उत्त्वण । मलवणीकृतमिति मैन्यवयोगादीपञ्चवणाकृतमिति। ण्वच प्रवांक्वीगमित्येनीव नम्बन्ध्यते, न तु पूर्वेष ॥ १४ ॥

पञ्चमूलीश्वतं चीरं द्वाचारसमथापि वा।

सर्वथैवोपयुक्षीत मूत्रकुच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १४ ॥

पद्ममूलीति—पद्ममूली स्वल्पा, समानतन्त्रमोजसवादात् । यथा,—
' लघुना पद्ममूलेन शृत चीर पिवेत्ररः'' इति । श्रीकरठदत्तस्तु तृर्णपद्ममूलीत्याह ।
सर्वयेव सुश्रुतेऽपि निरवशेषित इत्युक्तम् ॥ १५ ॥

स्नेहस्वेदैरुदावर्च जुम्भजं समुपाचरेत्॥ १६॥

्रश्रुमोत्तोऽश्रुजे कार्य्यः सप्तो मद्यं प्रियाः कथाः॥१०॥ त्तवजे त्तवपत्रेण प्राणस्थेनानयेत् त्तवम्।

- ्र तथोद्ध्वजहुगोऽभ्यङ्गः खेदो धूमः सनावनः॥
- , हितं वातझमाद्यश्च घृतश्चौत्तरमिककम् ॥ १८॥ उद्गारजे क्रमेपितं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ १६॥

क्षेहत्यादौ — जृम्भजिमित जृम्भावेगविद्यातजम्, एवमुत्तरत्रापि । अशुमी-चोऽश्रुनि सारणम्, तच तौच्णाञ्जनादिविधिना । चवपत्रेणेति हाञ्चियापत्रेण । कद्ध्वेजनुगोऽभ्यह इति कद्ध्वेजनुदेशगतोऽभ्यहः कार्यः । आद्य भद्यम् । क्रमी-पेतिमिति केहिकपूमपानोकक्रमगुक्षम् ॥ १६—१६ ॥

अर्घोघातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिजयेत्। भुक्त्वा प्रच्छदेनं धूमो लङ्घनं रक्षमोत्तराम्। कत्तान्नपानं व्यायामो विरेकश्चात्र शस्यते॥ २०॥

इधामातमित्यादि — सुश्रुतस्य इधामातमिति इधा नेगनिमातज रोग कुष्ठनि-सर्पादिकम्, कार्य्यकारणयोरमेदोपचारात्, पन चुद्धिमात इत्याधिप व्याख्ययम् । यथादोषमिति यस्तन्नानुदूषको दोषश्क्षदिनिमातजरोगे जातस्तद्विपरीतैर्नस्यादिमिर्जये-दित्यथः॥ २०॥

्रिवस्तिश्रुद्धिकरावापं चतुर्गुणुजलं पयः । श्रावारिनाशात् कथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥ रमयेयुः प्रिया नार्थ्यः श्रुकोदावर्त्तिनं नरम् । श्रत्राभ्यङ्गावगाद्यश्च मदिराश्चरणायुधाः । शालिः पयोनिक्दश्च हितं मैथुनमेव च ॥ २१ ॥ चुद्धिघाते हितं क्षिग्धमुष्णमल्पञ्च मोजनम् ॥ २२ ॥ तृष्णाद्याते पियेन्सन्थं ययाग्रं वापि शीतलाम् ॥ २३ ॥ विस्तुद्विकरावापिमत्यादि—विस्तुद्विकरायादि वृष्णप्रमूलवारनरादीनि, आवाप इति चीरसाधनार्थं वनक म यत्रं तत्त्रथा। रमयेयु मधुने योजयेयु । अव-गाहे। वातिपत्तहरद्वन्यकाथे कोष्णे वोध्य । चरणायुधाः कुम्कुटा । निरुष्टाधिनि निरुष्ट चत्त्रपतिर्वेसिक्षेति चकारात्॥ २१—२३॥

रसेनाद्यात् सुविश्रान्त श्रमश्वासातुरो नरः ॥ २४ ॥ - निद्राघाते पिवेत् द्वीरं सप्तः संवाहनानि च ॥ २४ ॥ इत्युदावर्त्ताचिकित्सा ।

मुनिथान्त इति विरतितयः। निद्राधात इत्यादी—चीरिमह माहिष, निद्रा-करत्वादित्याहुः। अन्ये तु प्रधानकन्यनया गोचीरम्, अत्रप्त तन्त्रान्नरे—'निद्रा-धाते पिनेत् चीर गो मुप्यादथ वा नर '' इति ॥ २४ ॥ २५ ॥ इत्युदावर्चिनिकन्साविनृति ।

अथानाहचिकित्सा।

उदावर्चिक्रयानाहे सामे लहुनपाचनम् ॥ १॥
हिरुत्तरा हिड्गु वचा सकुष्टा
सुवर्धिका चेति विउद्गचूर्णम् ।
सुक्षाम्बुनानाहिवस्चिकार्तिहृद्रोगगुल्मोद्र्यंसमीरण्ड्रम् ॥ २॥
वचामयाचित्रकयावध्रकान्
सपिप्यलीकातिविपान् सकुष्टान् ।
उप्णाम्बुनानाहिवसूढ्यातान्
पीत्वा जयेदाशु हितोदनाशी ॥ ३॥
भानाहिविक्तिमामाह उदावर्जेत्यादि—दिरुत्तग इत्यादि—यथोत्तर हिगुरा

इत्यर्थ । सुखाम्बुनेत्यनन्तर पातिमिति शेष ॥ १---३॥

तिवृद्धरीतकीश्यामाः स्तुद्दीचीरेण भावयेत्। वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाद्दभेदिकाः॥ ४॥

त्रिवृदित्यादि—त्रिवृदित्यरुणमूला त्रिवृद्, श्यामा श्याममूला त्रिवृद् । वि-केय माषकद्वेन व्यवद्वता । योगोऽयमतिकृतकोष्ठे ॥ ४ ॥

फलञ्च मूलञ्च विरेचनोक्तं
हिङ्ग्वर्कमूलं दशमूलमयश्यम्।
स्नुक्चित्रकौ चैव पुनर्नवा च
तुल्यानि सर्चेलवणानि पञ्च॥
स्नेहैः समूतैः सह जर्जराणि
शरावसन्धौ विपचेत् सुलिप्ते।
पक्तं सुपिष्टं लवणं तद्कैः
पानस्तथानाहरुजाञ्चमय्यम्॥४॥

फलक्रित्यादौ-विरेचनोक्तिमिति दीर्घक्रीवितीयेऽप्यमार्गतण्डुलीये वा विरेच-नकल्पे वा विरेचनकर्मणि यदुक्तम् । हिङ्गुस्थाने हिस्तेति पाठान्तरम् । शरावसन्धा-विति अन्त स्प्रेमपजस्थालीशरावसन्धावित्यर्थः । विषचेदिति दहेत् । पक्तमिति दग्धम्। अभ्ययमिति श्रेष्ठम् ॥ १॥

> राठधूमविडन्योषगुडम्हैर्तिर्वेपाचिता । गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्त्तिर्विधेयानाहशूलनुत् ॥ ६॥ 🚧

राठेत्यादि—राठो मदनफल, धूमा गृद्दधूम अलन्धूम इति यावत्। यावत्रा गुढेन मूत्रेण च पाकाद् वर्तिः कर्त्तुं शक्यते ताबदुमय देयमिति ॥ ६ ॥

वर्त्तिस्त्रिकदुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः।
मधुनि गुडे वा पक्त्वा पाय्वीरिता चाङ्गुष्ठपरिमाणा॥
वर्त्तिरियं दष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता।
श्रानाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुलमविनाशिनी॥ ७॥
भौतिरलादि—मिलिला त्रिकट्वादीनां कर्ष १, मधुपल १, गुडकर्ष १

इत्येके । युक्त्या त्रिकडुकादिक गृष्टीत्वा वर्षिः कर्त्तन्येत्यन्ये । गुटे वेति वाशम्दोऽपि पूर्वयोगापेत्तया ममुचये वा द्रष्टन्य ॥ ७ ॥

> शुष्कमूलकाद्यं घृतम् मूलकं श्रष्कमार्द्रश्च वर्षाभूमूलपञ्चकम् । श्रारेवतफलञ्चापि पिप्ट्या तेन पचेद् घृतम् । तत्पीयमानं शमयेदुदावर्त्तमसंशयम् ॥ ८ ॥

मूलकमित्यादि—सुश्रुतस्य । शुष्कमिति मूलकविशेषणम् । आर्द्रकमित्यार्ट-कक्ट । टल्वणस्तु शुष्कमिति मूलकाद्रयोविशेषणमाह । मूलप्राक्षभिति विल्वादि-पञ्चमूल, कफवातक्वतविवन्धइन्तृत्वादिति जेज्जट , स्वल्पपञ्चमूलमिति भानुमती । आरेवतफल स्वर्णालुफलम् । अकल्कमिद एतम् ॥ = ॥

स्थिराद्यं घृतम्

्रे स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः सम्पत्कपूर्तीककरञ्जयोश्च । सिद्धः कपायो द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात् स्यात् प्रतिरुद्धवाते ॥ ६॥ इत्यानाद्दचिकित्सा ।

स्थिरादौत्यादि—स्थिरादिवर्गस्य शालपण्यादिपन्नमृलस्य। सम्पाक शोणालु-फलम् । द्विवचनवलात् पूतिकेति करञ्जफलिशेषण्, तेन लाटाकरञ्ज इत्यर्थ ॥ १ ॥ इत्यानाहचिकित्माविवृति ।

अथ ग्रल्मचिकित्सा ।

र्लिष्वन्नं दीपनं स्निग्धमुण्णं वातानुलोमनम् । वृंहणं यद्भवेत् सर्व तद्भितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १॥ ्स्निग्धस्य भिपजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये । स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्वणम् ।
भित्वा विवन्धं सिग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ २ ॥ गुल्मेऽप्यानाहो मवतीत्यानाहानन्तर गुल्म ॥ १ ॥ २ ॥
कुम्भीपिएडं एकास्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक् ।
उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणाद्यः ॥ ३ ॥ कुम्भीत्यादि — सुश्रुतस्य । वातहरक्ताथादिमि पूर्णाभि अन्तर्भाणाभि
कुम्भीभि कलसीमि. स्वेदन, तथा उत्तिवन्नमाषादिपियडकैर्वस्त्रवद्धै स्वेद पियडस्वेद , इष्टक्या च तप्तया वातहरक्ताथसिक्तया स्वेद इष्टकास्वेदः । शाल्वणादय
इत्यादिशक्तेन वेशवारादिपरिग्रह् ॥ ३ ॥

स्थानावसेका रक्तस्य वाहुमध्ये शिराव्यधः।
स्वदोऽनुलोमनञ्जैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम्॥ ४॥

स्थानावसेको रक्तस्वेति—स्थिरगुलेम गुल्मस्थानाद्रकावसेक । बाहुमध्ये शिराज्यभ इति वाहुमध्ये सन्धेरभस्तात् स्वल्पशिरा वेभ्या, न तु मध्या न वा बृहती, तस्या ममत्वात् । शिराज्यभश्च यस्मिन् पार्थे गुल्मस्तत्पार्थस्थवाहै। अयञ्च विभि दोषचिकित्सया गुल्मस्याप्रशमने स्वेदादिना च शोखितदुष्टी सत्या बोध्य । स्वेद इत्वादिकञ्चार्दं पद्य सम्पूर्णकोकानुरोभादेवोक्तम् ॥ ४॥

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था घन्वजा रसाः।
स्वडाः सपश्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः॥ ४॥ न भाहारविधिमाह पेयेत्यादि—वातहरैर्दशम्लादिभि । पश्चमूलभ्रेह विल्वा-दिपश्चमूलम्, उष्णवीर्य्यत्या विशेषेण वातहरत्वात्॥ ४॥

वातगुल्मचिकित्सा

मातुलुङ्गरसो हिंगु दाडिमं विडसैन्घवम् । सुरामग्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम्॥ ६॥ 🔨

मातुल्रक्षेत्यादि—मातुल्रक्षरसादिक प्रसिष्य सुरामण्ड पेय सुरामण्ड-श्राहारद्रव्यतया प्रभूतो प्राह्म , न तु चूर्णाश्चतुर्गुण , एनमन्यत्रापि सुरया प्रेषज-पाने क्षेयम् ॥ ६ ॥

नागराईपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च।

तिलस्यैकं गुडपलं चीरेणोप्लेन पाययेत्। चातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशलञ्च नाशयेत्॥ ७॥

नागरेत्यादी—हिश्चितस्येति निस्तुपीकृतम्य । अयं च भूरिमानीपभी-पयोगी न्याभिमहिस्नेन मनतीति रेयम् । वाग्मेटे पुनरेतदर्द्धमानेनाय योगी पटाते । यथा,—'' शुण्ट्या कर्षे गुहत्य दी भौतात् कृष्णतिलात् पलम् । सादनिकाय सन्चूर्ये कीष्णकीरानु योजयेत्। वातहृद्दोगगुरुमाशीयानिकालशकृत्याराप् ' हि । अन्य तु नागराद्धंपलिमिति पुरुषस्य बलावल सुद्ध्वा, दीनपुरेषे तु नृतीयनानेन कर्त्तन्यिमत्याद्वाः॥ ७॥

> पिवेदेरएडतेलं वा वारुणीमएडिमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुरुमी पिवेन्नरः ॥ ८॥ 🛩

पिनेदित्यादि—योगद्वयम् । पूर्वयोग कफानुबन्धनायी, दितीयस्तु पिता-नुगे । चक्त हि चरके—" पूर्व कफानुबन्धे च हित पित्तानुगे परम्" शी, पूर्वमिति नामणीसयुक्तमेरण्डतेलम्, परमिति पय मस्क्रनमेरण्डतेलम् ॥ = ॥

साधयेच्छुष्कशुद्धस्य रसोनस्य चतुःपलम् । चीरोदकेऽप्रगुणिते चीरशेपश्च पाययेत् ॥ वातगुल्ममुदावर्त्त गृधसीं विपमज्वरम् । द्वद्रोगं विद्विध शोप नाशयत्याशु तत् पयः ॥ पवन्तु साधिते चीरे स्तोकमण्यत्र दीयते ॥ ६॥

साध्येदित्यादि—निस्तुपतया शुद्ध पूर्णवीयंतया च शुष्क इत्यर्थ । चीरीदकेऽष्टगुणित इति चीरीदकयोश्च समासकरणान्मिलिवंवाष्टगुणात इदम् , मागानुकेश्च सममागत्वमिति । तेन रमोनचतु पलापेचया मीरनीरया अत्यक्क चार्जुण्यान्मिलित्वा द्वाविशात्वानि स्यु । अनयाश्च द्वववेऽपि न द्वेगुण्यम् , रसोनपलोक्षेत्वेनाष्टगुणत्विधानात् । जलव्यादनशिष्ट चीरम् । यवपि घोष्टशपल-त्वेन यद्व मवित तथापि दीप्ताग्रयो महाकाया इत्यादि वचनाद् गुल्मस्य महुमात्रा-भिष्ठितवया पोडशपलचीरमि न दोपावहमितिः किंवा अग्न्युप्यानभयाप् स्तोक पेयम् , अत प्वोक्तम् एवन्तु माथित इत्यादिना । दुग्धरसोनयोक्षात्र न योगविरद्यन्तमाश्चन्त्वम् , व्याधिप्रभावान्महर्षिवचनाचित्यर्थ ॥ ६ ॥

सर्जिकाकुष्ठसद्दितः सारः केतकिजोऽपि वा।

तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १० ॥ 🚩

मिनिकत्यादि—सुश्रुतस्य । सिनिकाया मापकद्वयम्, एव कुष्ठस्यापि, केतकीजटाचारस्य मापकचतुष्ट्यमिति निश्चलः वाराच्य पूर्वचारयोगापेच्या । छल्वणस्तु
चारो यवचार । अत्र सिनिकाकुष्टसिहिता यवचारस्तैलेनेत्येको योगः । केतिकिजोऽपि वेत्यत्र चार इति सम्बध्यते, तेन केतिकिजोऽपि चारस्तैलेनेति, दितीयो
योग । गौडास्तु सिनिकाकुष्टसिहित केतिकिजचारस्तैलेनैकमेव योगमादुः । तैलेनिति
तिलतैलेन । अन्य तु यौगिकत्वादेरण्डतैलमादु ॥ १० ॥

वातगुरमे कफे वृद्धे वान्तिश्चूणीदिरिष्यते ॥ ११ ॥ अपन्य प्रवस्थाया क्रियास्त्रमाह वातगुरम इत्यादि—गुर्ले यथि "न वामयेत्" इत्यादिवचनात् वमन निषद्ध तथाप्यवस्थाविशेषेऽप्यपवादरूपतया तन्न दूष्यते । चूर्णादीत्यादिशाच्यात् फलवासिग्राहिकादयश्च ॥११॥

पित्तगुल्मचिकित्सा

पित्ते तु रेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोज्ञ्यम् ।
सिग्धोष्णेनोदिते गुल्मे पैत्तिके संसनं हितम् ॥ १२ ॥
पित्ते लित्यादि—किग्ध विरेचनमित्येरण्डतैलादिना ॥१२॥
कज्ञोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ।
काकोल्यादिमहातिक्रवासाद्येः पित्तगुल्मिनम् ।
स्नेहितं संस्यत् पृथ्वाद् योज्ञयद्वस्तिकर्मणा ॥ १३ ॥ "
स्वोम्णेन तु सम्भूत श्त्यन्नापि पैत्तिक इति शेष । काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्येरित्यनन्तर धतिरिति शेष. । काकोल्यादिगणकाथकल्कसाधित धत काकोल्यादिधतम् , महातिक्षशतञ्च कुष्ठोक्तम्, वासाद्यधतञ्च रक्तिपित्तोकम् । स्रस्येदिति विरेचयेत् । विरातकर्मणित्यनुवासननिरुद्दाभ्याम् ॥ १३ ॥

सिग्घोष्णुजे पित्तगुल्मे काम्पिल्लं मधुना लिहेत्। रेचनार्थी रसं वापि द्राज्ञायाः सगुडं पिवेत् ॥ १४ ॥ दाहशूलानिलचोमस्वप्ननाशास्त्रिज्वरैः । विद्यमानं जानीयाद् गुल्मं तमुपनाह्येत् ॥ १४ ॥ " पक्षे तु व्रण्वत् कार्य्यं व्यवशोधनरोपण्म् । स्वयमूद्र्ध्वमधो वापि स चेहोप प्रपद्यते ॥ द्वादशाहमुपेत्तेत रक्तन्नन्यानुपद्रवान् । परन्तु शोधनं सर्पिः श्रुद्धे समधु तिक्रकम् ॥ १६ ॥

क्षिग्धाष्णज इत्यादी-काम्बिल्ल ग्रण्टारीचनी । विद्राप्तमानीमीत पच्य-मानम् । उपानाह्येदिति व्रणशोधोक्तपाचनापय्डे प्रेलपयेत् । नतु सुकृते गुल्मस्य पाको निपिद यथा " स यस्मादात्मनि चय गच्छत्याप्त्यिव बुद्वुद । अन्त मर्रात यस्माच न पाकमुपयात्यत । अ इति । आत्मनीति स्वानयवे गुल्मारम्भकदे।परूपे: नतु मासन्कादौ । चयमिति वृद्धिम् । अप्तिव मुद्बुद इति यथा जलावकद्वी वायु-रेव जले बुर्बुररूपो भवति, तथा कफपित्ताभ्यामवरुदो वायुरेव क्रुएटलीभृतो ग्रलम इत्यर्थ । अन्त सरति यस्माच्च इत्यनेनापि रक्तादिरहितकोष्ठविवरमायाश्रय-त्वमस्य दरितम् । एतेन दोषमात्राश्रविणि गुलेम मासरो।णितये। पाकाश्रवयोर-भावादपाकित्वमुक्तम् । तत्राहु , गुल्मा यद्यपि दोषमात्राश्रय एव, तथापि यटा कारखबरादिश्रय मामादिकमासाच कृतवास्तुपरिग्रहो भवति वातोपरामनार्थ कृत स्वेदादिभिना दुष्ट रहं सहकारि लमते, तदा गुल्मस्यापि पाक कथ प्रेचपणीय ! केवल चरके गुल्मे इत्युच्यते सुयुत्ते तु विद्रधिसत्त्रंयति सञ्चामात्रे विवाद । अञ्चन-बास्तुपरिग्रहस्तु दे।पमात्राश्रयत्वान्न पन्येन इति चरकेखाप्यनुमत प्रवेति । भ्रन्य तु अपाकार्थमुक्तहेतुद्दयस्य वातिक एव मजितत्वादातिक एव गुल्मा न पच्यते श्रस्थि-रत्नाद्वास्त्वभावाचा अन्य तु पठन्ति भद पुनग्य विद्रिधगुल्मयो ,विद्रिधिरिचरका-लपाकश्चिरपाकश्च गुल्म इति । अतण्य माधवकरोऽध्याह " प्रायो न पच्यते गुल्मो बातनस्तु विशेषत । रक्षपित्तादिवृद्धत्वात् पच्यतेऽन्यो यदृच्ञ्यया" इति । स्वयमि-त्यादि स्वयमवान्तर्भिन्ने मति दोष पूयरूप कद्ध्वमधो वा गच्छिनि, तदा द्वाट-शाह्सुपेक्षत, न शोधनरोपखादिक कुर्यात् । उपद्रवान् व्नरादीन् । उपद्रवेभ्यो न्नरादिन्यश्चातुर रम्नक्षित्यर्थ । परन्तु शोधन सपिरिति हादशाहात् पर शोधन-द्रव्यसाधित १त पेयम् । मुद्धे समधुनिककमिति शुद्धे सति तिकद्रव्यसाधित १त पेयम् । शुद्धे समधुतिककमिति शुद्धे मित तिकद्रन्यसाधित वृतं समधु मधुमहित देय रोपणार्थमिति रोप ॥ १४—१६॥

रोहिणी कटुका निम्वं मधुकं त्रिफलात्वचः। कर्पाशास्त्रायमाणा च पटोलत्रिचृतापले॥ द्विपलञ्च मस्राणां साध्यमप्रगुणे जले। घृताच्छेषं घृतसमं सर्पिषश्च चतुःपत्तम् ॥
पिवेत् संमूर्विछतं तेन गुलमः शाम्यति पैत्तिकः ।
न्वरस्त्वण्णा च शूलञ्च भ्रमो मूच्छोऽरितस्तथा॥१७॥
दीप्ताग्नयो महाकायाः स्नहसात्म्या महावताः ।
गुलिमनः सर्पद्धाश्च विसर्पोपहताश्च ये ।
न्यष्ठां मात्रां पिवेयुस्त पत्तान्यष्टौ विशेषतः ॥ १८॥

रोहिणीत्यादि—रोहिणो कडुकेति कडुरे।हिणो । त्रिफलात्वच इति निर-नियत्रिकलायाः । एते त्रायमाणान्ताः प्रत्येक कर्षाशाः । पटोलत्रिवृतापेल इति दिवचनात् प्रत्येक पलमेकम् । अष्टगुणे इति वृतादष्टगुण योज्यम् ; वृत चतुःपल-भेवोक्तम् । तेन वृतेन सम्मूष्टितमेकोकृतम्, एतेन काथवृताम्या मिलित्वाष्टी पलानि । इयत्र मात्रा व्याधिमहिस्ना न दोषावहेत्येतदेवाह दीप्तान्नय इत्यादि ॥ १७॥ १८॥

कफगुल्मचिकित्सा

लङ्कोनत्यादी-धृत सत्तारकडुकमिति यवचारत्रिकडुवल्कसाथितमित्यर्थः । वमनोपग इति वमनेनोपगम्येत उपचर्यते यः स वमनोपगः । पूर्व वातिकगुल्म एवावस्थाया वमनमुक्तम्, इह तु कफगुल्म इत्येवेति न पोनरुक्तयम् ॥ १६॥

मन्दे उद्यावनिले सूढे शात्वा सम्नेहमाशयम्।
गुडिकाचूर्णनिर्च्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम्।
चारारिष्टगण्ळापि दाहशेषे विधीयते॥ २०॥

मूढ इत्यावृते । गुडिकादय इहैव हिंग्वादिप्रभृतयो वक्तव्याः । चारारिष्टगण इति प्रतिसारणीयचारस्यानुशास्त्रया शल्यतन्त्र एव तदिमधःन देयम् । पानीयचारा श्वात्रापि ग्रह्ययथ्यायोक्ताश्चानुसर्त्तव्याः । भरिष्टाश्चरकग्रह्ययशिकित्सितोकाः वेयाः । उक्त हि—"य एव प्रह्णीदोषे चारास्ते कफगुल्मिनाम् । श्रारिष्टयोगाः

सिद्धाक्ष ग्रहण्वराक्षिकित्मिते" इति । दाहस्तु शरलोहादिभि । उक्ष हि—"नस्य दाहो हते रक्ते शरलोहादिभिहित "इति । दाह रोष इनि दाहम्य दामणत्वात् कियान्तरामिद्धां रोष यव कर्चन्यता युक्ता ॥ २०॥

पञ्चमूलीश्रतं तोयं पुराणं वारणीरसम् ।

कफगुलमी पिवेत् कालं जीर्णं माध्वीकमेव वा ॥ २१ ॥

पश्चम्लीलाहि—पन्वन्ली महती ककप्रत्यनीकत्वात्। माध्वीक मधु ॥२१॥

तिलेरण्डातसीवीजसपंपैः परिलिप्य च ।

श्रेष्मगुलमामयं पातैः सुस्रोप्णैः स्वेद्येद्विपक् ॥ २२ ॥

यमानीचूर्णितं तक विडेन लवणीकृतम् ।

पिवेत् सन्दीपनं वातमूत्रवर्षोऽनुलोमनम् ॥ २३ ॥

व्यामिश्रदोपे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः ।

श्रस्त्रिपातोद्भवे गुल्मे तिरोपम्नो विधिर्हितः ।

स्वेत्रपातोद्भवे गुल्मे तिरोपम्नो विधिर्हितः ॥ २४॥

स्वेत्रमह तिलेलादि । गुल्मामयमिति गुल्मस्थानम् । विदीपमे विधिरिति

वातागुक्रयोगा एव एक्निक्त्य योज्या , मक्निनसमन्वेतत्वात्, विक्नतिविपननमवेतत्वा द्व चरिकेशसाम्यतीके ॥ २२—२४॥

वचाविद्याभयाशुएठीहिङ्गुकुष्ठाशिदीप्यकाः । द्वित्रपट्चतुरेकाष्टसप्तश्चांशिकाः क्रमात् ॥ चूर्णे मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहाद्रापहम् । शृक्षार्थःश्वासकासञ्चे ब्रह्स्यीदीपनं परम् ॥ २४॥ वेनेत्यादी—भभवा हरीतकीः अभिशिक्षक , दीप्यको यमानी । भादिशब्दा-दुष्णोदकादीना ब्रह्म् ॥ २४॥

यमानीहिङ्गुसिन्धृत्यत्तारसौवर्ज्ञलाभयाः । स्रुरामगृहेन पात्तव्या गुल्मभूलानिस्द्ननाः ॥ २६ ॥ यमानीत्यादी--वारो यववारः । योगोऽयनुष्णाम्नुना प्रचरित ॥ २६ ॥

हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम् हिङ्गु त्रिकडुकं पाठां हचुपामभयां शटीम् श्रजमोदाजगन्धं च तिन्तिडीकाम्लवेतसी॥
दाडिमं पौष्करं घान्यमजाजीं चित्रकं वचाम्।
द्यौ जारौ लवणे दे च चव्यश्चेकत्र चूर्णयेत्॥
चूर्णमेतत् प्रयोक्षव्यमक्रपानेष्वनत्ययम्।
प्राग्भुक्रमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा॥
पार्श्वहद्धस्तिश्लेखु गुल्मे वाते कफात्मके।
श्रानाहे मूत्रकुच्छे च गुदयोनिरुजासु च॥
श्रह्णयशौविकारे च सीद्धि पाग्ड्वामयेऽठचौ।
उरोविवन्धं हिकायां कासे श्वासे गलश्रहे॥
भावितं मातुजुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा।
वहुशो गुडिकाः कार्याः कार्म्युकाः स्युस्ततोऽधिकम्॥२७

हिड्ग्वादिच्यों श्रवमोदा यमानी, श्रवगन्धा चत्रयमानी, तिन्तिहीक महाईक, ही चारी यवचारसर्जिकाचारी, लवर्षे हे सैन्धव-सीवर्चले। प्राग्मुक्तमिति मोजनस्य प्राक् परिणामे, मोजनाव्यवहितपूर्वकाले वा। प्रकारान्तरमाह भावितामित्यादि। बहुश इति सप्ताह सात्रह भावनाविधिरित्युक्तत्वाद। मातुन्तद्वत्ररसन सप्तदिनान्यातेष भाव्य, तदनु चाष्टमापकमिता विदेका कार्य्या। एका खादित्वा तप्तजलाखनुपेयमिति। कार्मुका कर्मकारकाः॥ २७॥

पूतीकपत्रगजिनिभिटिचन्यविहः न्योषञ्च संस्तरिचतं स्वणोपघानम्। दग्धा विचूर्णयं दिधमस्तुयुतं प्रयोज्यं गुल्मोद्रश्वयथुपारह्यादोक्क्षेषु ॥ २८॥

पूर्ताकपनेत्यादि—वाग्मटस्य पूर्ताको लाटाकरञ्ज , गजचिर्मिटी गोरक्ष-कर्कटी, निद्धश्चित्रक , सस्तरिचतिमिति सस्तररूपतया विदितम् । लवणोपधान सैन्धवगर्मम् । सैन्धवश्च पूर्ताकपत्रादिकमम प्राद्यम् । सौश्रुतपत्रलवणविधौ टीका-क्राद्भित व्याख्यातत्वात् । पूर्ताकपत्रादिसस्तरे सैन्धव दस्ता तदुपरि पुन पूर्ताक-पत्रादिक विभज्य चान्तर्धूम दग्धव्यम् ॥ २८॥

हिंगुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकीम्।

ण्यामा विडं सैन्धवञ्च यवनारं महौपधम् ॥ यवकाथोडकेनैतद् घृतभृष्टन्तु पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्म सम्रत्नः सपरित्रहः ॥ २६॥

हिरिबत्यादी—तुम्बुक म्बनामन्यात, ग्यामा त्रिष्टतः । हिगुप्रमृतीना चृर्णे प्रमृत कृत्या स्थाप्य, ततो योग्या मात्रा गृहीत्वा यवकाथेन सावियता धूने पिनिन्दर्भ पायेपेडित्यर्थ । यवकाथेरकेन यवकाथेनोष्पोदिकेनेत्यर्थ । याम्मन् प्रयोगे हि वैद्यप्रमारके उप्पोदकेमेरयहतैन न्याधिक पिठिन, नद्रयथा,—' उप्पोदकेन पानव्यमेनत् मक्बुतेलकम् ' इति । अन्ये तु उदक्रमञ्जाऽय द्रववचन , तेन यवकाथरूपेग द्रवेणित्याह् । यवनागेरकेनेनि पाठान्तरममद्भनम् , युद्धवाग्मेटे यवकाथम्योकत्वात् । विश्वते विनीयने, न तु एक मन् मेद गच्छित । मपरिग्रह इनि वान्तुपरिग्रहमाहित मोप्टब इति वा ॥ २६ ॥

वचाद्यं चूर्णम्

वचाहरीतकीहिंगुसैन्यवं साम्लवतसम् । यवज्ञारं यमानीञ्च पियेदुण्लेन वारिला ॥ एतदि गुल्मनिचयं सग्रलं सपरिप्रहम् । भिनचि सप्तरात्रेल वहेर्नुद्धि करोति च ॥ ३०॥

वचेत्यादि—हारीनस्य । इम योग भोजनादिमध्यावमानेश्विष कारयन्नोनि निक्षल । तन्न, हारीते हि—'गान्यते योगराजेन त्रि प्रशुक्तेन योगनः' इसेवो-क्षम्, न तु भोजनादिमध्यावमानेष्यपीति ॥ ३०॥

पिष्पलीपिष्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः।
युक्का पीता सुरा हन्ति गुल्ममाश्च सुदुस्तरम्॥ ३१॥
विष्पलीत्यादि—अय योगो वानश्च्मिण ग्रेय ॥ ३१॥
नाद्येपीकुटजाकिशिसुयुद्दनीस्तुग्विल्यमलातक—
व्यामीकिशुकपारिमद्रकजटापामार्गनीपान्निकान्।
वासामुष्ककपाटलाः सलवणा द्रग्ध्वा जले पाचितं
हिंग्वादि प्रतिवापमेतदुदितं गुल्मोदराष्टीलिषु॥ ३२॥
नादेशीलादि—नादेशा भूमिजन्युका, व्यान्नो कण्टकारी, किञ्चक पनारा,

पारिभद्रकजटा पारिभद्रम्लम्, श्राग्नाश्चित्रकः । सलवणा ससैन्धवा, लवणा ज्योतिष्मतीत्येके । नादेयीप्रभृतीन् दग्ध्वा चारः कार्यः । श्रस्यादक पलरात वा पानीयचारिविधिना चतुर्गुणेन षड्गृणेन वा उटकेन पत्तवा चतुर्भागावरोषे कल्क-मपनीय, पकिंविशितवारान् परिस्नाच्य स्थापयेत् । श्रस्य कर्षमद्धंपल ना हिंग्वादिचूर्णं पादिक दत्त्वा मासप्रतचीराणामन्यतमेषु प्रचिप्य पिवेत्, मासरसादिभिश्च मोक्त-च्यमोजोरच्यार्थम् । श्रन्य त्वाद्ध पकदा विपाच्य स्थापिते चारोदकेऽम्लत्वादिदोष-राद्धा स्थात्, श्रतः कृतचाराच्येत्र्वाच्येत्त्वया पलादिपरिमित चार गृहीत्वा प्रत्यह-मनन्तरोक्तकाथविधिना चारादक कार्थ्यमिति । हिंग्वादिपतिवापिमिति हिंग्वादे पादिकस्य प्रतिवाप प्रचेषो यत्र तत् तथा । पतदिति काथचारज्ञम् । यस्य तन्त्रस्याय प्रयोगस्तचोक्तिधिग्वाचपरिज्ञानात् वस्यमाणिकिंग्वा दरनन्तरपठितत्वातः सग्रहकारस्याभिमतो लक्ष्यते ॥ ३२ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडशुरुखजाजी-हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् । भागोत्तरं चूर्णितमतदिष्टं गुरुमोदराजीर्णविस्चिकासु ॥ ३३॥

हिंग्वादी—उग्रगन्धा वचा । भागोत्तरमिति उत्तरोत्तरमेकभागवृद्धम् । उष्णान्त्रनास्य पानमुपदिशन्ति ॥ ३३ ॥

त्रिफलाकाञ्चनद्वीरीसप्तलानीलिनीवचाः ।

प्रायन्तीद्ववुषातिक्रात्रिवृत्सैन्धविपण्यलीः ॥

पिवेद्विचूर्यं मूत्रोष्णवारिमांसरसादिमिः ।

सर्वगुरुमोदरप्तीद्वकुष्टार्शःशोथपीडितः ॥ ३४॥

त्रिफलेत्यादौ—काञ्चनदीय्यो अमावाद कद्कुष्टमाइ । सप्तला चर्मकषा,

नीलिना नीलबुद्धा । विरेकाथोंऽय योग ॥ ३४॥

काङ्कायनगुडिका

्शर्टी पुष्करमूलञ्च दन्ती चित्रकमाढकीम् । श्रृङ्गवेरं वचाञ्चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ त्रिवृतायाः पलञ्चैव कुर्यात् त्रीणि च हिंहुनः। यवज्ञारपते द्वे च द्वे पते चाम्लवेतसात् ॥
यमान्यजाजीमरिच धन्याकञ्चेति कार्पिकम् ।
उपकुञ्च्यज्ञमोदाम्यां तथा चाएमिकामपि ॥
मातुजुङ्गरसेनैव गुडिकाः कारयेद्भिपक् ।
तासामेकां पिवेद् द्वे वा तिस्रो वापि सुखाम्बुना ॥
श्रम्लैश्च मद्यैयूपश्च घृतेन पयसाथवा ।
एपा काङ्कायनेनोक्का गुडिका गुल्मनाशिनी ॥
श्रशीहद्रागशमनी किमीणाञ्च विनाशिनी ।)
गोमूत्रयुक्का श्रमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥
चीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यरम्लैश्च वातिकम् ।
त्रिफलारसम् त्रैश्च नियच्छेत् सान्निपातिकम् ।
रक्कगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्तीरेण पाययेत् ॥ ३४॥

शटीमित्यादी--यमान्यादीना प्रत्येक कर्ष । उपकुद्धी कृष्णजीरकम्, अन-मोदा यमानी, अनयो प्रत्येकम् अष्टमिकामर्द्धपलिमत्यर्थ ॥ ३५ ॥

हबुपाद्यं घृतम्

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः।
साजाजीपिष्पलीमृलदीष्यकैर्विपचेद् घृतम्॥
सकोलमृलकरसं सत्तीरं दिध दाडिमम्।
तत् परं वातगुलमन्नं ग्रूलानाहिववन्धनुत्॥
योन्यशोंप्रहणीदोष्णवासकासारुचिच्चरान्।
पार्श्वहद्वस्तिश्लुक्च घृतमेतद्यपोहित॥ ३६॥

ह्वपेत्यादि—ह्वुपा स्वनामख्याता, पृथ्वीका कृष्णजीरकम्, हिङ्गपत्रिके-त्यन्ये, दीप्यको यमानी । सकोलमुलकरसमिति कोल शुष्कवदर तस्य काथ , मृलकस्यापि शुष्कस्य काथ , न पुनर्नवद्वयस्य स्वरस , तस्य ह्य गुल्मे निषिद्ध-त्वाद । दिक्षिस्याप्यत्र स्वरम , द्रवसाहचर्याद । विश्वामित्रेणापि दाटिमरम प्रवेक्तः । एव पद्मिर्वे प्रत्येक स्नेह्ममै पाक ॥ हह् ॥

पञ्चपलकं घृतम्

पिष्पल्याः पिचुरध्यद्धे दाडिमाद् हिपलं पलम् । धान्यत् पञ्च घृताच्छुग्ड्याः कर्षः त्तीरं चतुर्गुण्म् ॥ सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो चातगुल्मं चिकित्सित । योनिश्रलं शिरःश्रलमशीसि विपमन्वरान् ॥ ३७ ॥

पिष्पल्या इत्यादि-पिचुरध्यद्धं इति सार्द्धकर्षं । पल धान्यादिनि योज्यम् । पञ्च धतादिति पञ्च पलानीत्यर्थं । चीर चतुर्गुणिमिति धतपञ्चपलापेच्चया चतुर्गुण विंशति पलानि चीरस्येत्यर्थः॥ ३७॥

च्यूषगाद्यं घृतम्

ज्यूपण्तिफलाधान्यविडङ्गचव्यचित्रकैः । करकीकृतैर्घृतं सिद्धं सन्तीरं वातगुरुमनुत् ॥ ३५ ॥ ज्यूपण्यादेष्टते सन्तीरमिति चतुर्गुणनीरसहित, द्रवान्तरामाबाद ॥ १५ ॥

त्रायमाणाद्यं घृतम्

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुःपलम्।
पञ्चभागस्थितं पूतं करकैः संयोज्य कापिकैः॥
रोहिणीकदुकीमुस्त-त्रायमाणादुरालभाः।
करकैस्त्वामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः॥
रसस्यामलकीनाञ्च ज्ञीरस्य च घृतस्य च।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दन्वा सम्यग्विपाचयेत्॥
पित्तगुरुमं रक्षपित्तं विसर्पे पैत्तिकं ज्वरम्।
हद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम्॥
पलोक्षखागते माने न हैगुण्यमिहेण्यते।
चत्वारिशत्पलं तेन तोयं दशगुणं भवेत्॥ ३६॥

जल इत्यादी—पज्रभागस्थितिमिति पञ्चभागाविशिष्ट, तेन काथस्याष्टी पलानीत्यर्थः । कल्कीरित्यत्र न्यवहितैरप्यामलन्यादिभिः मम्बध्यते; न केवलमेतैः कल्कै कहरोहिएयादयध्य कल्का शति योजना । कल्का शति श्लोकपादपूरपार्थिमिति हरिचन्द्रः। वीरा चीरकाकीली । पलेक्षिखागनमानत्वादिह न देे गुण्यमित्वाह पलानीत्यादि ॥ १६ ॥

द्राचाद्यं घृतम्

द्रात्तामधुकखर्जुरं विदारीं सशतावरीम् । परूपकाणि त्रिफलां साधयेत् पलसम्मिताम् ॥ जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च । घृतमिन्तरसं ज्ञीरमभयाकरुकपादिकम् ॥ साधयेत तद्घृतं सिद्धं शर्करात्तोद्वपादिकम् । प्रयोगात् पित्तगुरम् संविपित्तविकारन्जत् । साहचर्यादिह पृथग्घृतादेः काथतुरुयता ॥ ४० ॥

द्राचेत्यादी-मधुक यष्टिमधु । शकराचीद्रपादिकमिति मिलित्वा । अत्र काथरोपस्य प्रस्थमानस्य साहचार्य्याद् श्रताडीनामपि प्रस्थमानत्विमत्याह माह-चर्यादित्यादि ॥ ४० ॥

चीरपद्पलकं घृतम्

- पिष्पलीपिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पलिकैः सयवलारैः सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥ चीरप्रस्थेन तत् सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । प्रह्मणीपागृहरोगम्नं सोहकासज्वरापद्दम् ॥ ४१ ॥ चीरप्र्यलके घते चीरप्रस्थेनैव केवलेन एनममेन पाक इति अनते, अन्ये त निगुण नल दहति, तन्न, मर्वथा द्रवानुकौ हि जल द्रव मवतीत्याह चक्र.॥ ४१ ॥

धात्रीपर्पलकं घृतम्

धात्रीफलानां स्वरसैः पडद्गं विपचेद् घृतम् । शर्करासैन्धवापेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ४२ ॥ भात्रीत्यादि— मुगुतस्य । भात्रीफलस्वरमश्चतुर्ग्य । षडद्गमिति यवज्ञार साहैतपन्नकोलकाल्कन प्रत्येक पलिकम् । उक्त हि—" पश्चकोलप्रत जीरै प्रत्येक पालिकै पचेत्। सीरे धात्रीरसे वापि मितासैन्धवयोजितम्।" शर्करासैन्धवोषेन-मिति शर्करासैन्धवयोमिलित्वा पादिकयो प्रस्तेप । अत्रापि शर्करापादत्रय, सैन्धव-स्थेकपाद इति वदन्ति ॥ ४२ ॥

भागींषद्पलकं घृतम्

पड्भिः पलैमेगधजाफलमूलचव्य-विश्वौषधज्वलनयावककल्कपक्षम् । प्रस्थं घृतस्य दशमूल्युरुवृक्षभागीं-काथेऽप्यथो पयसि दक्षि च पट्पलाख्यम् ॥ गुल्मोदरारुचिभगन्दरमग्निसाद-कासज्वरत्त्रयशिरोग्रह्णीविकारान् । सद्यः शमं नयति ये च कफानिलोत्था भाग्यांख्यषद्पलमिदं प्रवदन्ति वैद्याः ॥ ४३ ॥

षड्मि पलिरित्यादि—मगभजा पिप्पली, तस्या, फल मूलञ्च; ज्वलन-श्चित्रक, यावको यवचार । यावजेति पाठ स प्वार्थ अत्र चीर लेहसम, " द्रवा-न्तरेया योगे हि चीर लेहसम मनेद " हत्युक्ते । दिथकाथी तु मिलित्वा लेहाए त्रिपुत्या । अन चतुर्गुंख पाक, प्रकेनापि चातुर्गुंख्य त्रिमिरिप चातुर्गुंख्य चतुर्भि सममिति वचनात् । अन्ये तु काथो दिगुंख्, चीर दिष च प्रत्येक लेहसममित्याहु । निश्चलस्तु काथश्चतुर्गुंख, दिष च चतुर्गुंख, चीरन्तु लेह-सममिति नवगुंख पाक हत्याह । अन्ये तु दिष्काथी मिलित्वा चतुर्गुंखी चीरन्तु लेहसममिति पञ्चगुंख पाक हत्याह ॥ ४३॥

भन्नातकं घृतम्

भक्षातकानां द्विपतं पश्चमूतं पत्तोन्मितम् । साध्यं विदारीगन्धात्व्यमापोथ्य सत्तित्ताढके । पादावशेषे पूते च पिष्पत्तीं नागरं वचाम् । विडक्तं सैन्धवं हिंगु यावश्चकं विडं शटीम् ॥ चित्रकं मधुकं राद्यां पिष्द्वा कर्षसमान् भिषक् । प्रस्थव्च पयसो दावा घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ प्तद्भन्नातकं नाम कफगुल्महरं परम् । प्लीहपागङ्वामयश्वासग्रहगीकासगुल्मनुत् ॥ ४४ ॥

मञ्जातकप्रत दिगुणद्रवेशैव पक्तव्य, निर्दिष्ट तद्वदेव हि वचनात् । पन्नमृत स्वल्प, तदेव विदारीगन्धाढ्य प्रत्येक पलोन्मितम् । मञ्जातक नोमत्यनन्तर मर्पि-रिति शेप , चरके तु एनद्रश्लातकप्रत कफगुल्महर परिमत्येव पाठ ॥ ४४ ॥

रसोनाद्यं घृतम्

रसोनस्वरसे सिपः पञ्चमूलरसान्वितम् । सुरारनालद्ध्यम्लमूलकस्वरसे सह ॥ व्योपदाडिमवृत्ताम्लयमानीन्वव्यसैन्ध्वे । हिड्ग्वम्लवेतसाजाजीद्ध्यिकेश्च पलांशिकेः । सिद्धं गुल्मग्रह्ल्यशःश्वासोन्माद्त्त्यउचरान् । कासापस्मारमन्दाग्निप्लीहश्र्लानिलान् जयेत् ॥ ४४ ॥ रमोनेलादी—पञ्चमूल महत् पञ्चमूल वातकफहरत्वात् , तस्य रम काथ । रमोनस्तरसादीना परणा केहसमलन् । दीप्यक चेत्रयमानी ॥ ४५ ॥

दन्तीहरीतकी

जलद्रोणे विपक्षव्या विश्वतिः पञ्च चाभयाः ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ।
तेनाष्ट्रभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् ।
ताक्षाभयास्त्रिष्ट्रच्चूर्णात् तैलाचापि चतुःपलम् ॥
पलमेकं कणाग्रुग्रुग्योः सिद्धे लेहे च शीतले ।
सौद्रं तैलसमं दत्वा चातुर्जातपसं तथा ॥
ततो लेहपलं लीद्वा जग्ध्या चैकां हरीतकीम् ।
सुसं चिरिच्यते स्निग्धो दोपप्रस्थमनामयः ॥
प्लीहश्वययुगुल्मार्शो-हत्पागृहप्रहृणीगदाः ।
शाम्यन्त्युत्क्रेश्विषम-ज्वर्क्षप्रान्यरोचकाः ॥ ४६ ॥
नलद्रोण इत्यादी—विश्वतिः पञ्च चामया इत्याक्षतमानात् । हर्गतर्काः

फलानि कंपटे पोट्टलीं बद्ध्वा अगस्त्यहरीतकीवत् कथनीयानि।। तैलाईकुडविमिति पाठे च पलचतुष्ट्यमित्यर्थः। तंलमुत्स्वित्रहरीतकीभर्जनार्थः, न तु त्रिवृच्चूर्यपरि-भर्जनार्थः, भर्जनेन विरेचनशक्त्यपक्षप्रसङ्गात् । पलमक कणाशुरुद्धोमिलित्वा, पव चातुर्जातपलमि । प्रस्थमत्र दोषस्य साईत्रयोदशपलमानम् । उक हि भोजे—" वमने च विरेके च तथा शोखितमोच्चे । साईत्रयोदशपल प्रस्थमाहु र्मनीषिणः '' इति ॥ ४६ ॥

वृश्चीराद्यरिष्टः

वृश्चीरमित्यादि—वृश्चीर सेतपुनर्नवा । वृश्चीरादीना मिलित्वा पलरातम् । "द्रोणे द्रव्यतुला मता" इति वचनाद्, अन्ये त्वादकमाहु । मागर्था पिप्पली । मधुन प्रस्थमिति रारावचतुष्टयम् । पथ्याचूर्णाईनयुतमिति हरीतकीःचूर्णप्रस्थाईमष्टी पलानि, तेन मयुतन् । व्युपोपित तुषधान्यराशिमध्ये स्थितम् । जीर्णभक्त परिणता-हार लघुकोष्ठ इत्यर्थ । अस्य पलमईपल वा प्रातक्षयोज्यम् ॥ ४७ ॥

रौधिरस्य च गुल्मस्य गर्भकाले ब्यतिक्रमे । स्निग्धस्वित्रशरीराये दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥ ४८ ॥

रौधिरस्येत्यादौ—गभंकालव्यतिक्रम दित 'चित्तगर्मकालस्य दशमासरूप-कालस्य व्यतिक्रमे । 'त्रयञ्च सम्यनियमा रक्तगुल्मस्यौषधाईसमयप्रदर्शनार्थमेवोक्त. ज्वरे सप्तिविक्षतां परतः पाचनवंद । न तु गर्भकालराङ्गानिरासार्थम् , दशमासाति-क्रमेखापि गर्भावस्थादर्शनाद । जक्ष हि—' त स्त्री प्रस्ते सुचिरेख गर्भ पृष्टो यदा वर्षगणैरिप स्याद ' इति । तथा पिषिडतस्पन्दनमस्य गर्भलच्चणाद विरुद्धलच्चसुक्त 'य स्पन्दते पिषिडत एव नाह्नै ' इति एतेन दशमामादर्वागिप शोखितगुल्माव-धारण भवत्येव । तसाद् न्याधिमहिम्ना अस्य दशमासातिक्रमे सत्येव सुखचिकि-त्स्यत्वप्रदर्शनार्थमिदसुक्तम् । अवाक् चिकित्सायान्तु शोखितातिस्रुतौ गर्भासयोप- घातादिक स्यादिति ॥ ४८ ॥

शताह्याचिरिविल्वत्वग्दासभागींकणोद्भवः। कल्कः पीतो हरेद् गुल्मं तिलकाथेन रक्षजम्॥ ४६॥

शताहत्यादि—शताहादिकणान्ताना प्रचेष । चिरिवित्वत्वक् लाटाकरख-त्वक् । तिलकाथेनेति तिलफलकाथेनेत्यर्थे , ण्वमुत्तरयोगेऽपि तिलफलस्येव काथ । केचित्तु तिलनालककाथकृतचारोदकेनापि व्यवहरन्ति । रक्षजिमत्यात्तव-रक्षजम् ॥ ४६ ॥

्रित्तकाथो गुडव्योपिंधगुभागींयुतो भवेत्।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योपिताम् ॥ ५० ॥
तितकाय स्त्यादी—गुडादय प्रदेव्या । नष्टे पुष्पे स्त्यवृष्टा चिवे ॥ ५० ॥
सत्तारं त्र्यूपणं मद्यं प्रपिवेदसगुलिमनी ।
पत्नायत्तारतोयेन सिद्धं सिर्पेः पिवेच सा ॥ ५१ ॥

सक्षारेत्यादी—कारो वयटापाश्रत्यादिकृत , अन्ये तु यववार इत्याहु । पताशाचारति।येनेत्यादि—अकरूकमिद धतम् । पताशामस्मादकमुद्रकार्धकं नयोज्यामी नाधनीयम् । तत्राच्छ्रपै।च्छ्रत्यादिलच्चणोदये तृतीयमागेऽविशिष्टे ति सप्तवारान् परिस्नाव्य चारोदक द्वताचतुर्गुच प्राक्षम् , तेन द्वतस्य पाक इति चक्रः । अन्ये तु पाचीयचारिविधिना स्नावितचाराम्बुना द्यतपाकमुपदिशन्ति कार्त्तिक पुन पत्नाश चारते।येनेत्यनेन केहपाकोकाविधिना पत्नाशाचारकाथकरणिनत्याह ॥ ४१ ॥

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरास्ग्दरो हितः।
न प्रभिष्येत यद्यवं द्याद् योनिविशोधनम्॥
सारेण युक्तं पललं सुधास्तिरेण वा पुनः।
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी किया॥ ४२॥

उष्णैर्वेति—उष्णैरित्युष्णवीर्ये सुरासीवीरादिभि । भिन्न इति मृश स्रविति रक्षे । योनिविशोधनमिति वर्षिरूपतया योनिविरेचनमित्यर्थ । चारेणित्यादि—पलाशचारेण सद्द पलल तिलचूर्णं किञ्चिज्जल दत्ता वर्षि विभाय योन्यस्यन्तरे दद्यात् । अथवा पलाशादिचारितलचूर्णं सिञ्जचिरेण मिश्रणीयम्, तेन स्दमवस्र अच्चित्वा वर्षि कार्यो, सा च योन्यस्यन्तरे देया । स्थिर इत्यादि स्पष्टम् ॥५२॥

भन्नातकात् करककषायपकं सर्पिः पिबेच्छर्करया विमिश्रम्। तद्रक्षगुरुमं विनिद्दन्ति पीतं बलासगुरुमं मधुना समेतम्॥ ४३॥

महातकादित्यादि—अत्र पादिकशकरात्रवेपः, एव मध्वपि, 'कल्कवन्म-धुशंकरे ' श्लुके । बलास कफ । कफगुल्मे शर्करास्थाने मधु देयमिलर्थ ॥५३॥ वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम्। न खादेचालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ४४॥ " इति गुल्मिचिकित्सा।

वल्ल्र्सित्यादि—सुश्रुतस्य । वल्ल्र् शुष्कमासम्, शुष्कभूलकस्य वातहरत्वेन
प्रथमग्रः त्रिष्ट्रस्य । एतच हरितवणीपलच्च ग्रुतम हरितवर्णस्याप्यहितस्य ।
वैदल मुद्रादि, आलुक पियडालुकम् । मधुराणि फलानि चीरिवृचफलानि,
चारपाणां न्यत्रोधादिफलवर्गनस्योकत्वात् । चकारात् हरीतकीवर्गोपलच्चम्, गुल्मे
हरीनकीवर्गस्याप्यहितत्वात् ॥ ५४ ॥

इति गुल्म-चिकित्सा-विवृति ।

अथ हृद्रोग-चिकित्सा

वातोपसृष्टे हृद्ये वामयेत् स्निग्धमातुरम्। द्विपश्चमूलीकाथेन सस्नेह्लवणेन च ॥ १ ॥ पिप्पल्येलावचाहिंगुयवत्तारोऽथ सैन्घवम्। सौवर्ञ्वलमथो ग्रुग्ठी श्रजमोदा च चूर्णितम्॥ फलधान्याम्ल-कौलत्थ-द्धिमद्यासवादिभिः। पाययेच्छुद्धदेह्ञ्च स्नेहेनान्यतमेन वा॥ २॥

गुल्मस्य हृदय स्थानमुक्तम्, श्रत स्थानसाम्यात् तदनन्तर हृद्दोग उच्यते ।

वातोपसृष्ट इत्यादि — सुश्रुतस्य । अभानुक्षमि मदनफलान्निर्णं वेध्यम् , वमन-योग्यत्वात् । वातजेऽपि वमनविधान इत्यस्य कफस्यानत्वात् , उक्त हि 'म्यानिम्या-नगत त्रोप म्यानिवत् समुपाचरेत् ' इति । एव पिछवे वमन वोध्यम् । चर्षे रहद्रोगिणो यद्यप्यवम्या उक्ताम्तथापि कफोत्केणे वलीयिम मर्वेभव वमन द्ययम् । पिप्पलीत्याद्यन्यन-मेन वेत्यन्त सुश्रुतस्य । फलाम्ल मातुद्यक्षत्रादिमफलादि हृद्यत्वात् तम्य गमो ग्राम्य पानोपयोगित्वात् । वाते धान्याम्ल काश्विकम् । कालत्य कुलत्थयूप् । केहनात्यतमेन वेति धृनादोनामन्यतमेन, फलधान्याम्लादिवहुद्रवोपदर्शन मात्म्यापेनाम् ॥ १ ॥२॥

> नागरं वा पिवेदुप्ण कपायञ्चाग्निवर्द्धनम् । कासभ्यासानिलहर ग्र्लहद्रोगनाशनम् ॥ ३॥

नागरमित्यादि-नागर नागरकृतकपाय पिवेत् । वाशब्द पूर्वयोगा-पेचया ॥ ३ ॥

> श्रीपर्णीमधुकज्ञौद्र-सितागुइजलैर्वमेत् । पित्तोपसृष्टे हृद्ये सेवत मधुरै श्रतम् ॥ , घृत कपायांश्चोहिष्टान् पित्तन्वरविनाशनान् ॥ ४॥

पैत्तिकचिकित्सामाह श्रीपणीत्यादि—सुश्रुतस्य । श्रीपणी गाम्मारी तस्या फलमत्र देयम् । जल श्रीपणामधुकयोरेव तयोरेव योग्यत्वात्, जलमत्रार्द्ध-गृत्काथ । अत्र चौद्रसितागुडान् प्रचिच्य पित्तजे वमेत् । किंना जलस्य श्रीपण्यांशिभे पश्चिमे मम्बन्थात् पन्न योगा अमी । अत्राप्यनुक्तमि मद्रनफलादि पूर्ववद् वोध्यम् । डल्वणस्तु मितागुडर्जलरित्यत्र मितोत्पलजलरिति पठित्वा उत्पल कुष्ठ-मिति व्याचष्टे । मधुरै श्रुत श्रुतमिति काकोल्यादिगण्यकाथकल्कमाधित श्रुतम् ॥४॥

शीताः प्रदेहाः परिपेचनानि
तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।
हाज्ञासिताज्ञौद्धपरूपकैः स्यात्
श्रद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥
पिप्ट्वा पिचेहापि सिताजलेन
यण्ट्याह्नयं तिक्ककरोहिर्णिञ्च ॥ ४ ॥ '
शीना इत्यादां—द्राज्ञादिभिर्शुक्षमन्नपान मग्रद्धव्याहिपानवमन्नभिरेचनशुद्धे

कार्यामित्यर्थ इति केचित् । अन्ये तु-" पित्ते द्राक्षेत्तुनिर्यामसिताचौद्रपरूषेक । युक्तो विरेको ह्य स्यात् " इवि तन्त्रान्तरदर्शनात् द्राक्वादिभिर्युक्तो विरेक इत्याहु । सितानलेनेति शर्करामिश्रितजलेनत्यर्थ । मिता जलेनेति पाठोऽपि श्रेय. । उक्त हि वारमटे " यष्टीमधुककल्कव्च पिनेत् ससितमम्मसा इति ॥ ५ ॥

> श्रर्जुनस्य त्वचा सिद्धं चीरं योज्यं हृदामये । सितया पञ्चमूल्या वा वलया मधुकेन वा ॥ ६ ॥ घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिवन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये । हृद्रे।गजीर्शज्वररक्रपित्तं

हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते॥ ७॥

श्रर्जुनस्यत्यादि-- चीरपरिमाषया श्रर्जुनत्वगादिमि प्रत्येक साधित सितया मह पेयमिति चत्वारो थोगा । केचित्तु केवलवारिसाधितचीरे सितामचेपादिति पञ्च योगानाहु । पञ्चमूली चात्र स्वल्पा । एते च योगा वातिपत्ते श्वेया ।। ६-७ ॥

> वचानिम्वकपायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते। वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिष्पल्यादि च योजयेत्॥ = ॥

वचेत्यादि--- सुश्रुतस्य । वचाकनायेख निम्बक्तपायेख वा वमनम् , किंवी वचाकलको निम्बस्य कपाय ताम्या मिलित्वा वमनम् । हृदीति हृद्रोगे । तात्स्थ्यात् मञ्जा क्रीशन्तीतिवत् । वातह्द्रोगहृज्जूर्थं पिप्पल्यादि चेति । अत्रैव वातह्द्रोगे विप्पल्यादिना यञ्जूर्यामुक्त तत् पाययेदित्यर्थ. । वाग्मटेऽप्युक्तम्-कफोझवे वमेत् स्वित्र पिचुमर्दवचाम्मसा । कुलत्थधन्वोत्यरसर्तीक्ष्णमध्यवाशनः । पिवेच्चूर्ण वचाहिंगुलव्यद्वयनागरान्। सैलायमानीककणा यवचारान् मुखाम्बुना । फलधान्याम्ल-कोलत्थयूपामूत्रासवस्तथा ।" इति वातद्दृञ्चूर्णं पिप्पल्यादिक तथा पिप्पल्यादिगरा पाययेदित्याहरन्ये ॥ ८ ॥

> त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्या-दन्नज्ञ सर्वेषु हितं विधेयम् । हीनाधिमध्यत्वमवेद्य चैव कार्य्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥ ६॥

त्रिदोपज इत्यादि—लद्द्वनविधान इत्यस्य कफस्थानतया । त्रिदोपजे ६० कफ एवादी लङ्घनेन जेय इति मत्वा कृतम्। त्रिदोपजे डल्वणः दोषतया चिकित्मा-स्त्रमाह दीनाधात्यादि—अधिशब्दोऽधिकदोपहन्तृतया तत् कार्य्यमिति वाक्याथ ॥ १०॥

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माचिकेण समायुतम् । दृच्छूलश्वासकासम्नं त्तयदिक्कानिवारणम् ॥ १०॥ चूर्णमित्यादि सप्टम् ॥ १०॥

तैलाज्यगुडविपकं चूर्णं गोधूमपार्थजं वापि।

पिवति पर्योऽतु च से भवेजितसकलहदामयः पुरुषः ॥ ११ ॥

तैलाज्येत्यादि—तैलाज्यगुष्ठान् मिलित्वा पादिकान् दत्तवा गे।धूमपार्थचूर्णं-स्तोकमात्रेण तोयेनोत्कारिकावद्विपाच्य भद्यम् । किंवा गोधूमपार्थचूर्णसमो गुउ , तैलाज्ये तु सस्कारार्थं स्तोकमात्रेण देये । पाथोंऽर्जुनवृत्त । वाशब्द पूर्वयोगा-पेत्तया ॥ ११ ॥

गोधूमककुभचूर्णं छागपयो गव्यसर्पिपा पक्षम् । मधुर्शकेरासमेतं रामयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥१२॥ गोधूमेलादि—ककुमोऽकुंन. । अत्रापि योगे सर्पिमंधुरार्कराया पूर्वनन्मान हिला छागक्षरियोत्कारिकावत् पाक । मधु पर सिद्धरीते देवम् ॥ १२ ॥

मूलं नागवलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत्।
हजोगश्वासकासम्मं ककुमस्य च वरकलम्॥
रसायनं परं वर्ल्यं वातजिन्मासयोजितम्।
संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्पशतं भ्रुवम्॥ १३॥

मूल नागवलाया इति, मूल चूर्णमिति चूर्णरूप मूलमित्यर्थ । ककुमस्य बल्कलमिति ककुमस्य त्वक्चूर्णमिप दुग्धेन पेयम् । योगद्वयमेततः ॥ १३ ॥

> हिर्ग्यगन्धाविडविश्वकृष्णा कुष्टाभयाचित्रकयावशूकम् । पिवेश्व सौवर्धलपुष्कराढ्यं वचाम्भसा शूलहृदामयप्तम् ॥ १४ ॥

दशमूलीकषायन्तु लवण्कारसंयुतम्।
श्वासं कासञ्च हृद्रोगं गुल्मं ग्रूलञ्च नाशयेत्॥ १४॥
पाठां वचां यवक्तारमभयां साम्लवेतसाम्।
दुरालमां चित्रकञ्च ज्यूषणञ्च फलत्रयम्॥
श्रंटीं पुष्करमूलञ्च तिन्तिडीकं सदाडिमम्।
मातुलुङ्गस्य मूलानि स्रुक्णूचूर्णानि कारयेत्॥
सुखोदकेन मद्यैवां प्लुतान्येतानि पाययेत्।
प्रश्रीः ग्रूलञ्च हृद्रोगं गुल्मञ्चाग्र व्यपोहति॥ १६॥

हिंग्वित्यादि — पुष्करस्यामावात् कुष्ठस्यैव मागद्वयम् । हिंग्वादिपुष्करान्तानां चूर्णं यवकाथे प्रक्तिप्य पिवेत् ॥ १४ — १६ ॥

पुटदग्धमश्मिष्टं हरिणविषाणन्तु सर्पिषा पिबतः। हृत्पृष्ठशूलसुपशमसुपयात्यचिरेण कष्टमपि॥१७॥

पुटेलादि-हरिखम्ब कुरान स्वेष्ट्य मृदा प्रलिप्य च गोमयाद्री निर्धूमाङ्गारे वा दग्ध्वा शिलापिष्ट घतेन पेयमित्यर्थः ॥ १७॥

किमिहद्रोगिणं स्निग्धं मोजयेत् पिशितौदनम् । द्रमा च पत्तलोपेतं ज्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ सुगन्धिमिः सत्तवणैयोगे साजाजिशकीरैः । विडङ्गगाढं घान्याम्लं पाययेदितमुत्तमम् ॥ १८॥

किमीलादि—अत. परमिलन्त सुअनस्य । पिशितप्रधानमोदन पिशितौदनम्, तच दक्षा पललेन च सयुक्त च ज्यह मोजयेद् । पलल तिलचूर्णम् ।
एतच पिशितौदनमोनन किमीणासुरक्षेशार्थम् । पश्चादिति किम्युरक्षेशानन्तर
विरेचयेद् । कैविरेचयेदित्याह सुगन्धिमिरित्यादि—योगैरिति विरेचनयोगे ।
कीह्रौ: सुगन्धिमि. !—चातुर्जातकयोगैरिति रोष. । सौगन्ध्यकरणञ्च वान्तिराङ्काविरासार्थम् । वमनञ्च किमिह्दोगे निषद्धम्, किमिजर्जेरितहृदयत्वाद् । तथा
वमनेन किमिमि शिरोगतैरिन्द्रयोपघातमयाचेति । सलवर्णेरितश्च सपललेरिति
पिठला सम्युद्धतिलचूर्णेरिति व्याख्यानयन्ति केचित्। पीतविरेकस्यानुपानमाह विडङ्गगादिमिलादि—विडङ्गगाद विडङ्गचूर्णोत्लटम्; धान्याम्लिमिति काजिकम् । विडङ्गगादिरिति पाठे योगैरित्यस्य विशेषणम् ॥ १०॥

क्रिमिजे च पिवेन्म्चं विडहाम्यसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्यवमघस्तात् क्रिमग्रो नृणाम् । यवान्नं वितरेचासं संविडहमतः परम्॥ १६॥

विरेचनयोगान्तरमाह किमिने चेलाढि—विडक्षक्तप्रचूर्ण प्रिचिप्य गोमूत्र वा विरेकार्थ पिवेत् । यद्यप्यय योग सुश्रुते नास्ति तथापि तन्त्रान्तरीय एवाय विरेचन-प्रस्तावे सम्रहकारेण लिखित । विरेचनानन्तरमिक्षसन्धुक्रणार्थं परिशिष्टिकिमिन्विनारार्थश्चात्रसन्कारमाह यवात्रमिलाढि—यवात्रमिति ययेपयाडिकम् । मिव- इत्रमिति यडक्षविधना विडक्षकपायमाधितम् । अत परिमिति विरेकानन्तरिमयथ ॥ १६॥

वल्लभघृतम्

मुख्यं शताईश्च हरीतकानां सौवर्चलस्थापि पलइयश्च । एक घृतं वक्षभकेति नाम्ना

हुच्छ्वासग्रलोदरमारुत्रघम्॥ २०॥

वक्षभष्टने -- मुख्यमिति श्रेष्ठम् । हरीतकी मीर्वचलक्ष कन्क , धृनस्य प्रस्य , जलन च पाक ॥ २०॥

श्वदंष्ट्राद्यं घृतस्

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठावलाकाश्मर्य्वकनुण्म् । दर्भमूलं पृथक्पणीं पलाशपंभको स्थिरा ॥ पलिकानं साधयेत्तेपां रसे चीरे चतुर्गुणे । कल्के स्वगुप्तपंभकमेदाजीवन्तिजीवकैः॥ शतावर्य्यृद्धिमृद्धीकाशर्कराश्रावणीविसैः। प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातापित्तहद्रोगशलसुत्॥ मूत्रस्टस्त्रभमहार्थः श्वासकासत्त्रयापहः।

घनुःस्त्रीमद्यभाराध्वित्रानां वलमांसदः॥ २१॥

। श्रदच्योध-पलाश किंशुक , तस्य मूलम् । अन्ये तु पलाश राटोमाहु । एत-- रिमन्नेकादशपले काथ्येऽष्टगुरु जलमेकादशगराव दस्त्वा काथ्यं । पादशेपश्च पाडे। नशरावत्रयम्, ततश्चतुर्गुण चीरमेकादशशरावरूपमिति किञ्चिद्नचतुर्गुण पाक । अन्ये तु एकादशपले काध्य पवाढकजल दत्त्वा पादशेषश्च प्रस्थ इत्याहु । अतश्चतु-गुण चीरमाढक पव पञ्चगुण पाक इति । व्यवद्दारोऽपात्थमेव । आवणी मुण्डि-तिका । विस मृणालम् ॥ २१ ॥

बलाद्यं घृतम्

घृतं वलानागवलार्जुनाम्बु-सिद्धं सयष्टीमधु पादकल्कम् । हृद्रोगश्रलत्ततरक्षपित्तं

कासानिलास्क् शमयत्युदीर्गम् ॥ २२ ॥ धतमित्यादौ —वलाधते—नागवला गोरचतपडुला, अम्बु काथ ॥ २२ ॥

अर्जुनघृतम्

पार्थस्य करकस्वरसेन पकं शस्तं घृतं सर्वद्वदामयेषु ॥ २३॥ इति हद्रोगचिकित्सा।

श्चर्जनप्रत स्पष्टम् ॥ २३ ॥ इति द्वद्रोगचिकित्साविष्ट्रति ।

अथ मूत्रकुच्छ्रचिकित्सा ।

वातमूत्रकुच्छ्रे-

•

1

श्रभ्यञ्जनस्नेहिनस्रहवास्ति-स्वेदोपनाहोत्तरवास्तिसेकान्। स्थिरादिभिन्नातहरैश्च सिद्धान् दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकुच्छ्ने॥१॥

, सप्तोत्तरे मर्मशते त्रीणि मर्माणि शिरोहृदयनस्तय प्रधानानि। ततो हृद्रोगिच-कित्सामिधाय वस्तिरागिचिकित्सामाह अभ्यक्षनेत्यादि——स्थिरादिभिरिति शालप-एर्यादिभि पञ्चमूले । वातहरैरिति वातहरत्वेनोकौ ॥ १॥ श्रमृता नागरं धात्रीवाजिगन्धात्रिकगटकान्। प्रिपेवेद्वातरोगार्तः सग्रली मूत्रक्रच्छ्रवान्॥२॥ प्रमृतेसादि—योगोऽय कांधेन॥२॥

पित्तम्त्रकुच्छ्रे-

सेकावगाद्याः श्विशिराः प्रदेहा ग्रैष्मा विधिर्वस्तिपयोविकाराः । द्राज्ञाविदारीज्ञुरसैर्घृतैश्च कुच्छेपु पित्तप्रभवेषु कार्य्याः ॥ ३॥

र्यभो विधिरिति नशर्कर मन्यीमत्यादि वाग्मटस्य अशीतीयोकः । हासाविहारी-कुरमैष्ट्रनैक्षेति महार्थे तृतीया ॥ ३ ॥

> कुशः काशः शरो दर्भ इचुश्चेति तृष्णोद्भवम् । पित्तकुच्छुद्दरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् । एतिसद्धं पयः पीतं मेद्रगं हन्ति शोणितम् ॥ ४॥

कुश इत्यादी-- तृखोद्भव पश्चम्लमिति योज्यम् । दर्भ उल्लयामूलम् ॥ ४ ॥

शतावरीकाश-कुशभ्वदंष्ट्रा विदारिशाली जुकशक्काणाम्। काथं सुसिद्धं मधुशकेराक्षं

पिवन् जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छुम् ॥ ४॥

शतावरीत्यादी-राालीति शालिधान्यमूलम् ॥ ५ ॥

/ हरीतकीगेाचुरराजवृत्त-पापाणिभद्धन्वयवासकानाम् । काथं पिवेन्माचिकसम्प्रयुक्कं

काथ पिवनमाचिकसम्ययुक्त
कृष्ये सदाहे सरुजे विवन्धे ॥ ६ ॥
हरातकीलाटां—राजवृद्धः शोणालुफलम्, धन्वयनासको दुरालमा ॥ ६ ॥
गुडेनामलकं वृष्यं अमझं तर्पणं परम् ।
पित्रासम्दाहग्रुलझं मृतकुष्कुविनाशनम् ॥ ७ ॥

गुडेनेति गुडामलकफले तुल्यमाने ॥ ७ ॥

एवरिबीजं मधुकञ्च दावीं पैत्ते पिवेत् तगडुलधावनेन।

दावीं तथैवामलकीरसेन

समाचिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ ८ ॥ पर्वारु कर्कटी। समाचिकामित्यस्य दावींमित्यनेनैव सम्बन्ध , न तु पूर्वेण ॥ ८ ॥

कफमूत्रकुच्छ्रे—

स्तारोष्णतिक्णोषणमन्नपानं स्वेदो यवानं वमनं निरूहा । तकं सतिक्रोषधिसद्धतैला-

द्यभ्यद्गपानं कफमूत्रकुच्छ्रे ॥ ६ ॥

स्रोरत्यादि—कफकुच्छुमेषज स्रारदिभिर्युक्तमत्रपानम्। कषण त्रिकडुकामिति चक्र , अतप्त श्रीवथमिति पाठाऽशुद्ध एव, वाग्मटेऽपि ''कफजे वमनस्वेदौ तीस्णो-ष्णकडुमेजनम्'' इत्युक्तत्वाद् ॥ ६ ॥

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा । कफकुच्छुविनाशाय श्रुच्णं पिष्ट्वा त्रुटिं पिवेत् ॥ १० ॥

मूत्रेखेत्यादौ — दुटि स्त्मेला वाग्मटसवादात् । 'पिवेन्मूत्रेख स्त्मेला धात्रीफलरसेन वा। इति ।'' अन्ये तु एलामात्रमाहुः । कदलीस्वरसेनेति कदलीम्- लस्वरसेन व ॥ १०॥

तकेण युक्तं शितिमारकस्य
वीजं पिवेत् कृच्छ्रविनाशहेतोः।
पिवेत् तथा तग्डुलघावनेन
प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे॥ ११॥

श्वदंष्ट्रा विश्वतोयं वा कफकुच्छुविनाशनम् ॥ १२ ॥ तक्रेग्रेत्यादौ—शितिमारः शालिख , अवालो विद्रुम ॥ ११ ॥ १२ ॥

सर्व त्रिदेशपप्रभवे तु वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीद्य कार्य्यम्। त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात् पित्ते विरेक पवने तु वस्तिः॥ १३॥

ममकुपितदोषत्रयारक्षम् प्रकृच्छूचिकित्सामाह मर्वमित्यादि—वातजादिम् प्र- कृच्छूनिर्दिष्ट भेषज सर्व समान्नदोषजे मृत्रकृच्छू मिलित कार्य्यम् । तस्य यायो स्थानानुपूर्व्या कर्त्तव्य, न तु त्रिदोषज्ञज्वर इव कफरथानानुपूर्व्या । ममित्रदोपजा- रक्षमृत्रकृच्छूस्य वातस्थानमवत्वेन वायोरेव प्रथम चिकित्सा कार्य्या, चिकित्स्यत्वा- दिति माव । विषममित्रपात्रकृच्छूचिकित्सामाह त्रिभ्य इत्यादि—विभ्योऽधिक इति वावय कर्फ पित्ते वाते इत्येते क्रमेण सम्बध्यते । त्रत्र मृत्रकृच्छू।नारम्भवमाशयान्त- रत्थ कफमप्यपेक्य मृत्रकृच्छू।रम्भकफभागस्याधिक्यमस्तीति कृत्वा त्रिभ्योऽधिक इत्यु- कम् । एव पित्तपवनयोरपि ।पित्तपवनान्तरापेक्या आधिक्य व्याख्येयम् । अन्ये त्रिभ्य इति छान्दसत्वात् पष्टथ्ये पन्चमीत्याहु । तेन त्रयाणा मध्य इत्यर्थ ॥१३॥

वृहतीघावनीपाठायप्टीमधुकलिङ्गकाः । पाचानीयो बृहत्यादिः क्रच्छदोपत्रयापहः ॥ १४॥ बृहतीत्यादा—धावनी कण्टकारी । क्रच्छदोपत्रयापह इति क्रच्छ्रजनकः-दोपत्रयापह इत्यर्थ ॥ १४॥

, तथाभिघातजे कुर्यात् सद्योत्रणिविकित्सितम् ।
मूत्रकुरुके सदा चास्य कार्या वातहरी किया ॥ १४ ॥
स्वेदचूर्णिकियाभ्यक्तवस्तयः स्युः पुरीपजे ।
काथ गोजुरवीजस्य यवज्ञारयुतं पिवेत् ।
मूत्रकुरुके शरूरुकञ्च पीतः शीघं विनाशयत् ॥ १६ ॥
वातहरी कियेति भानाहोका किया । स्वेदेत्यादा—चूर्णिकियेति कुलवित् , किंवा विरेचनद्रस्यचूर्णं दला गुदे निक्वा फुल्करणम् ॥ १५ । १६ ॥

क्रिया हिता त्वश्मिरशर्करायां
 या मूत्रकुच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ १७ ॥
 लेख शुक्रविवन्धोत्थे शिलाजतु समान्तिकम् ।
 युष्पैर्वृहितधातोश्च विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ १८ ॥

श्रश्मरीशर्कराजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सामाइ क्रिया हितेत्यादि — श्रश्मरीशर्करा-भ्यामिति चरके पाठ ॥ १७ । १८ ॥

पलाहिहुयुतं त्तीरं सर्पिर्मिश्रं पिवेन्नरः।
मूत्रदोषविश्रद्धयर्थं श्रुक्षदोषहरश्च तत्॥ १६॥
यन्मूत्रकुच्छे विहितन्तु पैते

तत्कारयेच्छो। शितमूत्रक्रच्छ्रे ॥ २०॥

ण्लेलादौ-एलाहिंगुनी प्रक्षिप्य ससिप चीर पिनेदिलर्थ ॥१६॥२०॥

त्रिक**एटकारग्वधदर्भकाश**

दुरालभापर्वतभेदपथ्याः।

निझन्ति पीता मधुनाश्मरीञ्च

सम्प्रासमृत्योरिप मूत्रकुच्छुम् ॥२१॥

त्रिकरटकेत्यादौ---पर्वतमेद पाषाणमेदः। पषा कषाये मधु प्रक्षेप्यम् ॥ २१॥

कषायोऽतिवलामूल-साधितोऽशेषक्रच्छ्रजित् ॥२२॥

कपाय इत्यादी-प्रातिवला श्रेतवला ॥ २२ ॥

प्लाश्मभेदकशिला जतु पिप्पलीनां

चूर्णीनि तग्डलजलैर्जुलितानि पीत्वा।

यद्वा गुडेन सहितान्यवलिहा सम्यक्

श्रासन्नमृत्युरिप जीवति सूत्रकुच्छ्री ॥२३॥ 👕

एलादिचूर्णीन तरदुलजलेन पातन्यानि, किंना गुहेन लेह्यानीति ॥२३॥

श्रयोरजः श्रद्णपिष्टं मधुना सह योजितम्।

मूत्रकृष्ट्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ सितातुल्यो यवचारः सर्वकृष्ट्रविनाशनः।

निदिग्धिकारसो वापि सत्तौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥२४॥

श्रय इत्यादि—मारितपुटितवज्रादिलौहचूर्णं रित ४, मधुमाषेण लौहपात्रे मर्द्यित्वा लेह्य रिक्तकादिक्रमेण मापकद्वयपर्यंन्तम् । त्रिभिर्तेहिरिति दिनत्रयेशे-त्यर्थ । निदिग्धिकारस इति कण्टकारीस्वरसः । उक्त हि वाग्सटे—" स्वरस करटकार्थ्या वा पाययेन्माचिकान्वितम् " इति ॥ २४ ॥

शतावरीघृतचीरे

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा- विदारिकेच्वामलकेषु सिद्धम् । विदारिकेच्वामलकेषु सिद्धम् । सिर्वा सिर्वा विमिश्रं किन्द्रम् ॥ २४॥

शतावरीत्यादी-शतसाधनपद्ये शतावर्यादीना कलक जलब चतुर्गुणम्, शर्करा तु प्रदेप्या ॥ २५ ॥

त्रिकएटकाद्यं घृतम्

त्र त्रिक्एटकैरएडकुशाद्यमीरु-कर्कारुकेजुस्वरसेन सिद्धम् । सर्पिगुंडार्द्धाशयुतं प्रपेयं

कुच्छारमरीमूत्रविघातहेतोः॥ २६॥

त्रिकरटकेत्यादौ — कुशादि तृष्णपञ्चमूलम् अमीर शतावरी, कर्काणक कृष्मायटकेद कृष्मायटाकृति चत्कलदेशे प्रसिद्ध । प्रिकरटकादीना सर्वेषा स्वरम तदमावे कपाय । गुढादौरायुतमिति धृतापचया अदौरी सुट इति पे। इशपल इत्यर्थ । गुढश्च प्रचेष्य अन्ये तु गुढ दत्त्वेव पाक इत्याहु ॥ २६ ॥

सुकमारकुमारकघृतम्

पुनर्नवामूलतुला दशमूलं शतावरी ।
यला तुरगगन्धा च तृणमूलं चिकण्टकम् ॥
विदारिगन्धा नागाह्वा गुद्भच्यतिवला तथा ।
पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तेन पादावशेपेण घृतस्याद्धीढकं पवेत् ॥
मधुकं श्रुद्भवेरञ्च द्वाचासैन्धविपण्पलीः ।
दिपलिकाः पृथग्दद्याद् यमान्याः कुडवं तथा ॥
तिंशद् गुडपलान्यत्र तैलस्येरण्डजस्य च ।

प्रस्थं दःवा समालोड्य सम्यङ्मृद्वग्निना पचेत् ॥
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्मोजनमिनिद्तम् ।
राज्ञां राजसमानाञ्च बहुस्तीपतयश्च ये ॥
मूत्रकृष्क्वे कटीस्तम्मे तथा गाढपुरीषिणाम् ।
मेद्रवङ्चणग्रले च योनिग्रले प्रशस्यते ॥
यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितकाश्च ये ।
चल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ।
पुनर्नवाशते द्रोणो देयोऽन्येषु तथाऽपरः ॥२०॥

इति मूत्रकृच्छु-चिकित्सा।

पुनर्नवेत्यादौ —दशमूलस्य मिलित्वा दश पलानि त्यमूल त्यापञ्चमूलम् , एत-दिप मिलित्वा दशपलमानम् । विदारिगन्धा शालपर्यो । नागाहा नागवला, गोरचा-तयडुला इत्यर्थ । श्रतिवला श्रेषवला । द्रेश्य इति द्रव्यतुलाह्ये प्रत्येक द्रोख इत्यर्थ । द्विपलिका इति पलद्वयमाना । गुडमेरण्डतैलज्ज दन्वैव पाक । देयोऽन्येषु तथापर इति श्रन्येषु दशमूलादिष्वपरद्रोख इत्यर्थ । मुकुमोरिति सुकुमाराः मुखिन , कुमारा शिशव , एनदुमयोहितत्वात् मुकुमारकुमारकसङ्गा ॥ २७॥ इति मूत्रकृष्क्यविकित्माविवृति ॥

अथ मूत्राघात-चिकित्सा।

मूत्राघातान् यथादोषं मूत्रक्रच्छ्रहरैर्जयेत्। विस्तिमुत्तरवस्तिञ्च दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥ कल्क्रमेर्वारुवीज्ञानामत्तमात्रं ससैन्धवम्। क्रिज्ञ धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रघाताद्विमुच्यते॥१॥ क्रिज्ञ

मूत्रगतविकारसाधम्यादनन्तर मूत्राधातचिकित्सारम्यः ।—मूत्रस्थाधातो विवन्ध भूत्राधातः । मूत्राधातमूत्रकृच्छ्रयोश्चाय भेद ,—मूत्रकृच्छ्रे कृच्छ्रत्वमधिकमीषद्विवन्ध , मूत्राघाते तु विवन्धो महान् कृच्छूत्वमल्पमिति । कल्कमित्यादि—सुश्रुतस्य । एवारुर्धाण्मकर्कटोति डल्वणः । धान्याम्ल काञ्जिकम् ॥ १ ॥

> पाटल्या यावश्काच पारिभद्वात् तिलादिप । ज्ञारीदकेन मिटरां त्वर्गलायणसंयुताम् । पिवेद् गुडोपदंशान् वा लिह्यादेतान् पृथक् पृथक् ॥२॥

पाटल्या इत्यादि—ग्रुश्रुतस्य । तिलादिति तिलनालात् । इद्दापि वस्यमाण्य पृथक् पृथगिति सम्बन्धनीयम्, तेन पृथक् पाटल्यादीना चारस्रावीदकेन ममा मिदरा त्वालोयण्य प्रिचय् पिनत् । कपण्य मिद्वम् । अन्य तु पाटलीयावर्ग्कयोमिलित्वा चार । केवल्यवचारस्यादृष्टत्वात्, अतप्व नाग्मेट आयुर्वेदमारे च "पाटलीयावर्ग्कान्यामिति मिलित्वा पट्यते" इत्याद्ध । अरुणदत्तीऽध्येव नाग्मेटकाया व्याख्यात-वान् । कार्विकरत्व मिदरामित्यस्य स्थाने मितमानिति पाठ स्वीकृत्य चूर्णकमिति चान्याहत्य पव व्याचष्टे,—पाटल्यादीना चूर्णं चारोदकेन मुष्ककचारवारिणा पिनेटिनति । यदाइ विश्वामित्र "पाटले पारिमद्राद् वा तिलाद् वापि यवाम्रजात् । कर्णन्तात्वग् युत चूर्णं मुष्ककचारवारिणा । पिनेद् गुडेन मिश्र वा लिह्यान् मृत्रविघात-जित् ।" इति पत्त सवादात् । अत्र कपण पिप्पली । गुडे।पदशान् वा लिह्यात् । विति पतान् पृथक् पृथक् पाटल्यादिचारान् गुडोपदशान् गुडीमशान् वा लिह्यात् । व्यव्यस्तान् मित्रानित्यत्र ग्रिश्वानार्यमाइ ॥ २ ॥

त्रिफलाकल्कसंयुक्तं लवणं वापि पाययेत्। निदिग्घिकायाः खरसं पिवेद्वा तान्तवस्रतम्॥३॥

त्रिफलेत्यादि—सुश्रुतस्य । अत्रापि पान चारोदकेनेत्यनुवर्त्तयित कार्षिक । अन्य तु "अभयामलकाचाया कल्क बदरसीम्मतम् । अम्भसा लवयोपित पिवेन्मूत्र- रुजापहम्" इति वचन मूत्रकृष्च्चप्रतिपेषे सुश्रुतेनोक्तम् । अतस्तद्शंनादत्राप्यम्ममंव पानम्, तथा मिलित्वाष्टमापक मानञ्चेत्याद्ध । त्रिफलाकल्क मावा ६, मैन्धवमापा २ । दितीययोगे तान्तवस्रुतमिति वस्त्रगालितम् । मृधुयोगादप्यय योग पेय । यदाद्द वाग्मदः—"स्वरस कपटकार्यां वा पाययेन्माचिकान्वितम्" इति ॥ ३ ॥

जले कुड्कुमकलकं वा सचौद्रमुपितं निशि। सतैलं पाटलाभस चारवद्वा परिस्नुतम्॥ ४॥ जल इत्यादि—सुश्रुतस्य। अत्र कुकुमंत्रस्य शितकपायविधिना जले पर्णुषित प्रातंकस्रुत मचौद्र पिवेत्। "पिवन् कुकुमकर्षं वा मध्दकममाण्डतम्। रात्रिपर्णुषित प्रातस्था सुखमवाण्नुयात्" इति पाठान्तर सुश्रुतदीकाकृतः पठिन्ति, व्याख्यानयन्ति च, —कुकुमकर्षं मध्दकाभ्यामासाव्य रात्री स्थाप्य ततः पातव्यम्" इति। सतैल-मित्यादि द्वितीयो योग सुश्रुतस्यैव। वाशव्य पूर्वयोगायेच्या। चारवद्वा परिस्नुत-मिति, परिस्नुत पाटलाभसा। किं विशिष्ट बारवत् यवचारश्रुक्त पिवेदिति केचिद् व्याच्चते। अन्य तु चारवत् पानीयचारामिव सप्तकृत्व परिस्नुत पाटलाभस तेन महित पिवेदित्याहु। युक्तश्रेतत्, यदाह वाग्भट —''सतैल पाटलाचार सप्तकृत्वोऽथवा स्नृतम्" इति। सुश्रुतेऽपि मूत्रकृष्वप्रितिपेये—''प नाशचारमाहृत्य मप्तकृत्व परिस्तन्य पिवेन्मूत्रविकारम सस्यष्ट तैलमात्रया।" इति पठ्यते तैलस्य मात्रया स्तोकत्तेलेनत्यर्थ इति। यथामात्रा खादेद् बुसुचित इति॥ ४॥

खुरां सौवर्ञ्चलवतीं मूत्राघाती पिवेन्नरः। दाडिमाम्लयुतं मुख्यमेलावीजं सनागरम्। पीत्वा सुरां सलवणां मूत्राघाताद्विमुच्यते॥ ४।

पीत्वा सुरां सलवणां सूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ ४॥
सुरामित्यादि—सुश्रुतस्य । पिवेत्रर इत्यन्त एक प्वाय योग । वाग्मेटऽपि
'मीवचलाव्या मिदरां पिवेन्सूत्ररूजापद्दाम्'' इत्येवीक्तम् । दाविमेत्यादि नागरान्तो
दितीयो योगः। दाविमाम्बुयुत्तमिति दाविमरमयुतम् । रमामावे तु काथः। मुख्यमित्यलाबीजविशेषणम् । पीत्वा सुरा सलवणामिति तृतीयो योग । सलवणामिति सम्मन्यवाम् । वस्तुतस्तु दाविमाम्लयुता मुख्यामेलाजीरकनागरैरित्यनेन सुरामिति सम्मन्यते ।
'पीत्वा सुरा सलवणाम्'' इत्येव पाठ सुश्रुते पक्ष्यते टीकाकारैख व्याख्यात । तस्माद्
दाविमाम्लादि मलवणामित्यन्त एक प्वाय योगो युक्त', दाविमाम्लामिति दाविमयोगादम्लाम् । मुख्या सुरामिति पैष्टिजीम् ॥ ४॥

पिवेच्छिलाजतु काथे गणे वीरतरादिके। रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य घा ॥ ६॥

पिवेदित्यादा—वीरतराटिगणकाथे शिलाजतु प्रक्षिप्य पिवेदित्यर्थ । श्रत्र •याथी शिलाजतुनोऽत्यन्तयौगिकत्वेन दुरालमाकाथे वामककाथेऽपि शिलाजतु प्रक्षिपन्ति ॥ ६ ॥

> तिकग्टकैरग्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृग्पश्चमूतैः।

गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छादिषु शस्यने तत्॥ ७॥

त्रिकरटकेत्यादि —योगत्रयम् । गुडप्रगाढिमिति पूर्वेण योगद्देयन सम्बध्यते । त्रिकरटकादिमिद्ध वा तृरापच्चमूलामिद्ध वा पयो गुडप्रगाढ हितम् । मष्टत पय इति त्रतीयो योग ॥ ७ ॥

नलकुशकाशेजुशिफां कथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम्।

''' पिवतः प्रयाति नियत सूत्रग्रह इत्युवाच कचः ॥ ८॥

गोधावत्यां मूलं कथितं घृततैलगोरसैर्मिश्रम्।

'' पीत निरुद्धमचिराद्धिनित्त मूत्रस्य सङ्घातम्॥ ६॥

नलेखादां—शिफा मूलम्, तच नलादिमि प्रत्येक सम्बध्यते। कच शह
म्पते पुत्र । गोधावतो गोहालिया इति स्थाता। गोरमोऽत्र तक्रम्॥ ८॥

जलेन खिदरीबीज मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं रद्रजटायाश्च तकपीतं तदर्थकृत् ॥ १० ॥
गलेनेत्यादी—खिदरीबाजमरीकिवाजिमत्याहु ॥ १० ॥
मूत्रे विवन्धं कर्पूर-चूर्ण लिङ्गे प्रवेशयेत् ॥ ११ ॥
श्टतशीतपबोऽन्नाशी चन्दनं तगृहलाम्बना।
पिवेत् सश्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥
शीतोऽवगाह श्रावस्तेरुष्णवातिनवारणः।
कृष्मागृडकरसञ्चापि पीतः सन्नारश्करः ॥ १२॥

मूत्र इत्यादी—लिङ्ग इति लिङ्गरन्धे श्रद्याद्वांकाण्डादिना च कर्पूर्रज प्रतेष । पव श्वीयोनाविष, लिङ्गवचनस्य सामान्यवचनत्वात् । श्वेत्यादी—श्रेष्ठ चन्द्रनमिति योज्यम्, तेन श्वेतचन्द्रनमित्यर्थे । श्वतशासप्यसा श्रद्रमोजनशील. । श्रावस्तेदिति वस्तिमागपर्यन्तम् । कृष्माण्डरस कृष्माण्डमञ्जिकास्वरस ॥११॥१२॥

्रे स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणित यस्य सिच्यते ।

मैथुनोपरमश्चास्य वृंहणीयो हितो विधिः ॥ १३॥

मृत्रदोपप्रमङ्गेन मृत्रमार्गपृष्ट्तस्य रक्षस्यापि विधानमुपदिराष्ट्राह खीणामिन्
लाद्गि—सुकुतस्य । सुकुतेऽमु अन्थ कार्तिककुण्डो न पठति, शुक्रचयितद्गेनैवे।
कलात् । केव्वटस्तु प्रकरणान्तरत्वात् शिष्यहितैपितया पठति ॥ १३॥

स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेजुरसितारजः। समांशमर्खभागानि चीरचौद्रघृतानि च॥ सर्वे सम्यग्विमथ्याचमानं लीढ्वा पयः पिवेत्। इन्ति शुक्राश्योत्थांश्च दोषान् वन्ध्यासुतप्रदम्॥१४॥

स्वग्रसेलादी—स्वग्रसाफल श्कशिम्बीबीजम् । मृद्धीका द्राचा । कृष्णा पिप्पली, न तु कृष्णिति श्चुरकविशेषस्यम् सुश्रते पिप्पलीपाठात् । श्चुरक कोकिलाच तस्य बीजम् । सिता शर्करा । रजश्चूर्णम् । अर्द्धमागानि चीरचौद्रपृतानि चेति समुदितचूर्णात् चीरादीनि प्रत्येकमर्द्धमागानि । सुश्रते पुनरय योगोऽन्यथा पठ्यते,—चौद्रार्द्धमाग कर्चन्यो माग स्यात् चीरसपिषो । शर्करायाश्च चूर्णानि द्राचा-चूर्णञ्च तत्समम् । स्वयगुप्ताफलन्वैष तथेबच्चरकस्य च । पिप्पलीना तथा चूर्णमर्द्ध-माग प्रदापयेत्। तदैकथ्य समानीय खेजनामिप्रमध्य च । तस्य पाणितल चूर्णं लिह्यात् चीर तत्त पिवेत्। "श्वित ॥ १४॥

चित्रकाद्यं घृतम्

वित्रकं शारिवा वैव वला कालानुशारिवा।
द्राज्ञाविशालापिष्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत्॥
तथैव मधुकं दद्याद् दद्यादामलकानि च।
घृताढकं पचेदेभिः कल्कैरज्ञसमन्वितः॥
चीरद्रेशो जलद्रेशो तत् सिद्धमवतारयेत्।
श्रीतं परिस्रुतञ्चैव शक्रराप्रस्थसंयुतम्॥
तुगाच्चीर्ध्याश्च तत् सर्च मितमान् प्रतिमिश्रयेत्।
ततो मितं पिवेत् काले यथादोषं यथावलम्॥
वातरेताः पित्तरेताः श्रेष्मरेताश्च यो भवेत्।
रक्षरेता प्रन्थिरेताः पिवेदिच्छन्नरोगिताम्॥
जीवनीयञ्च वृष्यञ्च सर्विरोगापहं शिवम्॥
प्रजाहितञ्च धन्यञ्च सर्वरोगापहं शिवम्॥
सर्पिरेतत् प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भे लभतेऽचिरात्।

ग्रस्ग्दोपान् जयेचापि योनिदोपांश्च संहतान् । भूत्रदोपेषु सर्वेषु कुर्यादेतिष्विकित्सितम् ॥१४॥ इति मूत्राघातिविकित्सा ।

くるころう

चित्रकामित्यादि—सुश्रुतस्य । कालानुशारिवा तगरपाटिका । विशाला गोरचकार्या । विशालिति पाठे काष्ट्रपाटला व्यवहारस्तु विशालयेव । चित्रफला गोडु म्बाक्चर्याभेद । तुगाचीच्या इत्यत्र प्रम्थसयुतमित्येतत् समासप्रविष्टमप्याकृष्य सम्ब-प्रनीयम् । काले जीर्णाज्ञलच्ये । यथादोप यथाबलमिति मिलितदेहामिनलानुरूपम् सुश्रुन प्रनद् शतात् पूर्वमितवल नाम शतमुक्तम् । तेन सपिरेतन्महाबलिभित्यपि श्रुम्यास्य नामिति टीकाञ्चन ॥ १५ ॥

इति मूत्राघानिचिकित्माविवृतिः।

अथारमरी-चिकित्सा।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां श्रुएठीगोच्चरसंयुताम्। यवक्तारगुडं दःवा काथियत्वा पिथेद्धिताम्। श्रश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम्॥१॥ मृत्रविरोधित्वसामान्यादश्मरीचिकिस्सितमुच्यते वरुणस्येत्यादि —श्रेष्ठामिति कीटावनुषदताम्। यवजारग्रही प्रकेष्यां॥१॥

वीरतरादिगणः

वीरतरः सहचरौ दर्भो वृत्ताद्नी नलः।
गुन्द्राकाशकुशावश्मभेदमोरटहुएहुकाः॥
कुरुिएटका च विश्वरो वसुकः साग्निमन्थकः।
इन्द्रीवरी श्वदंष्ट्रा च तथा कपोतवक्त्रकः॥
वीरतरादिरित्येप गणो वातविकारनुत्। \
अश्मरीशर्करामूत्रकुच्छाघातरुजापहः॥२॥
वीरतर इत्यादी—वीरार शरः, महचरौ भिष्टीइय पीतनीलपुष्पमेदात्

दर्भ उलयातृयाः, वृत्तादनी वन्दाकः, गुन्द्रा गुलुञ्चः, मोरटामित्तुमृलः, द्वरद्वकः श्र्योयाकः, कुरुविटकाः श्रीहरितनी, ब्रह्मदत्तस्तु कृष्यस्त्रमफला वस्तकमञ्जरी दिन्तयः देशे नितचराख्येत्यादः । इन्दीवरः चुँआकः । वशिरः स्य्यावर्त्तमेदः, वसुको वसुद्दः, कपोतववत्रकः कढदं इति ख्यातः, स च शिरीषसदृशः स्वल्पपत्रः स्वल्पपत्रः वल्पविटपः । गण्यत्वादनेन सर्वकल्पना ॥ २ ॥

शुग्रव्यग्निमन्थपाषाण्शिग्रवरुण्गोन्तुरैः।
श्रभयारग्वघफलैः काथं कुर्य्याद्विचन्त्रणः॥
रामठन्तरलवण्चूर्णं दन्वा पिवेन्नरः।
श्रश्मरीमूत्रकृञ्ज्ञं पाचनं दीपनं परम्।
हन्यात् केष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुद्मेद्रगम्॥३॥
शुग्रहात्वादी—पाषाणः पाषणभेदी॥३॥

पाषाणभेदाद्यं घृतम्

पापाणभेदो वसुको विशरोऽश्मन्तकस्तथा।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कएटकारिका ॥
कपोतवक्त्रार्चगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः ॥
बृज्ञादनी भल्जुकम्य वरुणः शाकजं फलम् ॥
यवाः जुल्ततथाः कोलानि कतकस्य फलानि च ।
ऊपकादिप्रतीवापमेषां काथे श्रतं घृतम् ॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं ज्ञिपमेव तु ।
ज्ञारान् यवागः पेयानि कषायाणि पयांसि च ।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् वातनाशने ॥ ४॥

 चूर्णस्य द्वार पीयते, तदा विस्तिशोधनद्भवेख मस्त्वादिना । धारोदकपानपचे तु द्वारस्य कर्षद्रय कर्षत्रय वा पद्युखेन जलेन वहुण परिस्राव्य श्वत वेयम् । पेयानीति यूपरमादीनि, पेयाखेति पाठेऽपि यूपाडीनित्वर्थ । यूपाक्षेत्यपि पाठान्त रम् । पेयाखेति तु पाठ सुनुतपुस्तकेषु न दृश्यते, तट्टीकाक्वद्भिय न व्याख्यात । भोजनानीति विशेषीभक्षस्पलेख्यानि, यबाग्वश्च पृथगुपादान विशेषेण मूत्रप्रवर्तकत्त्वा प्राधान्यख्यापनार्थम् । वर्गेऽस्मिन् वातनात्रान इति पापाखभेदादिकत्कान्त-काथ्यस्य द्रव्यवर्गे । कपकादिकन्तु प्रतीवापद्रव्य कफहरमिति शक्तिविशेषसाधनार्थं सयोज्यमान द्वारादिष्वेव प्रत्वपविधया देयमित्याहु । अयमथो वृन्देनाप्युक्त यथा,—" कुर्याद द्वारादिक काव्यस्तिस्तिन् चुपमवापक " इति । चेपिनिति प्रद्वायम्, आवार्यकरिति आवापरूपै कल्कद्रव्यरित्यर्थ , छन्दोमङ्गानुरोधाद् हस्वत्वम्। एव वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशन इत्यादाविष व्याख्येयम् ॥ ४॥

ऊपकादिः

ऊपकं सैन्धवं हिङ्गु काशीशद्वयगुग्गुलुः । शिलाजतु तुत्थकञ्च ऊपकादिच्दाहृतः ॥ ऊपकादिः कफं हृन्ति गणी मेदाविशोधन । श्रश्मरीशर्करामूत्रश्रलद्वाः कफगुल्मनुत्॥ ४॥

जपकादिवर्गमाह जपकमित्यादि—सुश्रुतस्य । जपक चारमृतिका । तद्भव लवखमित्यन्ये । काशीशहयमिति धातुकाणीण पुष्पकाशीशञ्च, तत्राच मन्म मदृश किञ्चिदन्त, लवखरसञ्च, दितीयन्त्वीपत्पीत कषायरमम्, तुत्थक तृतिया इति प्रसिद्धम् ॥ १ ॥

कुशाद्यं घृतम्

, कुशः काशः शरो गुल्म उत्करो मोरटो असित्। दमों विदारी वाराही शालिम्लं त्रिकल्टकः॥ मल्लूकः पाटली पाठा पत्तेऽथ कुरल्टकः॥ पुनर्नवे शिरीपश्च कथितास्तेपु साधितम्॥ यृतं शिलाह्ममधुकवीजैरिन्दीवरस्य च। त्रपुपैर्वारुकादीनां वीजैश्चावापितं श्टतम्॥ भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं ज्ञित्रमेव च।

त्तारान् यवागुः पेयाश्च कषायाणि पर्यासि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् पित्तनायने ॥ ६॥

नुशा इत्यादी—सुश्रुतस्य । मोरट इन्तुम्लः, गुलम गुन्नुञ्च , दर्भ उन्तुया, वाराही वाराहीकन्द , नदमावे चर्मकारानुक, मल्लूक श्योनाक , पत्तरः शालिञ्च ; पुनर्नवे पुनर्नवाह्यमः , यदा सर्वेषा काथ । शिलाह्नादीना कल्क । शिलाह्मभुकन्वीजैरित्यत्र वीजपद समासप्रविष्टमपि इन्द्रीवरस्येत्यनेन मह सम्बन्धनीय, न तु बोजो वीजक पातशाल , वाग्मटमवादात् । यथा,—पिष्टेन त्रपुषादीना बीजेनेनन्द्रीवरस्य च । मधुकेन शिलाजेन तत् पित्ताशमिरनाशनम् " इति । इन्द्रीवरञ्च चुत्राक । पतेन " मधुक कृतहस्वलाद् बीजो बीजक उच्यते, इत्यपि वृन्दवचनम् मबोधिवन्यस्तमेव । अस्यार्थः—हस्वमधुकशन्देन यष्टिमधुकमेवोच्यते, न तु तस्य वीजेनान्यवहारात् वीजो बीजक इति । आवापित कल्किनम् ॥ ६ ॥

वरुणाद्यं घृतम्

गणे वरुणकादौ च गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः।
कुष्ठमुस्ताह्मिरिचचित्रकैः ससुराह्मयैः॥
पतैः सिद्धमजासिर्फिषकादिगणेन च।
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं चित्रमेव तु॥
चारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च।
भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् कफनाशने॥ ७॥
गण रत्यादि—ग्रुश्वतस्य। अत्र वरुणादिगणेन काथ, शेषेण च कत्क,
कषकादिगणेन कलकरुषेण निद्धमित्यर्थ। अजासीपिरित्यत्र वाग्यटे तु इतमित्येवोक्तम्॥७

वरुणादिगणः

वरुणेऽर्त्तगलः शिम्रुतकारीमघुशिम्रुकाः । मेषश्रक्षी करश्ची च बिम्ब्यग्निमन्थमोरटाः ॥ शैरीयौ वशिरो दमी वरी वसुकचित्रकौ । विल्वञ्चेवाजश्रक्षी च वृहतीह्रयमेव च ॥ वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः । विनिहन्ति शिर-श्रलं गुल्माचन्तरविद्रधीन् ॥ = ॥ वरुणत्वक्कपायस्तु पीतस्तु गुडसंयुनः। श्रश्मरीं पातयत्याशु वस्तिग्र्लविनाशनः ॥ ६ ॥

' तथा '' मिनित्त कफजामाशु साधित घतमश्मीरम् '' इति वरुणादिगणे प्रत्तेगल खग्मह , होगल इत्यन्ये, मर्जुन इति तु मानुमती । तर्कारी जयन्ती, तन्मूल, मधुशियु रक्तशोभाञ्चन, करञ्जो करञ्जलायकरञ्जो, विम्वी तेलाकुचा, मेरिट इन्तुमूलम् , अङ्कोलपुष्पमिति मानुमती, हस्तिकर्णप्रलाश इत्यन्ये । शिरीयो पीतनीलपुष्पिमण्टीह्र्यं, दर्भ गुश उन्तुया, वरी शतावरी, वसुको वसुहरु इति ख्यात , अजन्धकी आवर्त्तालेका ॥ ६ ॥

थवत्तारं गुडोपेतं पिवेत् पुष्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविबन्धम्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ १० ॥ पुष्पफलोद्भव रसमिति पुराणकृष्मायब्दसम् ॥ १० ॥

पिवेद्वरुणमूलत्वक् काथं तत् कल्कसंयुतम् ।
काथस्य शिमुमूलोत्थः कदुण्णोऽश्मरिनाशनः ॥ ११ ॥
नागरवरुणगोज्जरपाषाणभेदकपोतवक्त्रजः काथः ।
गुडयावश्कामिभः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ १२ ॥
वरुणत्वक्शिलाभेदश्चरुठीगोज्जरकैः कृतः ।
कषायः चारसंयुक्षः शर्करास्त्र भिनच्यपि ॥ १३ ॥
श्वदंष्ट्रैरएडपत्राणि नागरं वरुणत्वचम् ।
पतत् काथवरं प्रातः पिवेदश्मरिभेदनम् ॥ १४ ॥
पिवेदित्यादि—पिवेदश्मरीभेदनीमत्यन्त स्पष्टम् ॥ १४ ॥

मूलं श्वदंष्ट्रेसुरुकोरुवूकात् चीरेण पिष्टं बृहतीद्वयाच । श्रालोड्य द्धा मधुरेण पेयं

दिनानि सप्ताश्मरिभेदनार्थम्॥ १४ ॥

मूलमित्यादि बृहतीद्वयान्त एको योग । इत्तुरकः कोकिलाच । सर्व मिलित्वा मापकचतुष्टय दुग्धेन पिष्ट्वा अनम्लद्रश्चा पेयम् ॥ १५ ॥

पकेच्वाकुरसः चारः सितायुक्तोऽश्युरीहरः ॥

पाषाण्रोगपीडां सौवर्चलयुक्ता सुरा जयति । तद्धन्मधुदुग्धयुता त्रिरात्रं तिलनालभूतिश्च ॥ १६ ॥ पक्तत्यादी—श्क्वाकुस्तिकालायून्यस्या मिक्कास्वरम । पाषाण्रोगोऽम्मरी । तिलनालभूतिस्तिलनालस्रार ॥ १६ ॥

एलादिः

पत्तोपकुत्यामधुकाश्मभेदः कौन्तिश्वदंष्ट्रावृषकोरुवृकैः। काथं पिवेदश्मजतुप्रगाढं सर्गार्करे चाश्मरिमूत्रकुच्छ्रे॥ १७॥

एलेत्यादी--उपकुल्या पिष्पली । अत्र सोधितशिलाजतुनी मापकत्रय चतु-ष्टय वा प्रकेष्यित्याहु. ॥ १७ ॥

त्रिकरटकस्य वीजानां चूर्णं माज्ञिकसंयुतम् । श्रविचीरेण सप्ताहं पिवेदश्मरिनाशनम् ॥ १८॥ " श्रुकाश्मर्थ्यान्तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः॥ १६॥ श्रुकाश्मर्थान्तु सामान्यो विधिरिति अश्मरीमात्रसाधारणविधि ॥१८॥

पाषाणभेदाद्यं चूर्णं घृतश्च

पाषाण्मेदो वृषकः श्वदंष्ट्रा पाठाभयान्योषशटीनिकुम्भाः।

हिस्राखराश्वा सितमारकाणा-

मेर्वारुकाच त्रपुपाच वीजम् ॥ उपकुञ्चिका हिद्ग सवेतसाम्लं

स्याद् हे वृहत्यौ हबुषा वचा च । चुर्ण पिवेदश्मिरिभेदि पकं

स्पिश्च गोम्त्रचतुर्गुणं तैः ॥ २० ॥

पापाणमेद इत्यादी—निकुम्मा दन्ता, खरामा मनमोदा, मितमारक
शालिञ्चः, उपकुञ्चिका कृष्णजीरकम् । चूर्णं पिवेदिति विशेषानिभधानाज्ञलेनैव।
तैः पाषाणभेदादिभिरेव कल्करूपै. पक सर्पिश्च पेयमित्यन्त्रय ॥ २०॥

कुलत्थाद्यं घृतम्

कुलत्थिसिन्धूत्यविद्यक्षसारं
सर्शकेंरं शीतिलयावश्कम् ।
यीजानि कृष्माएडकगोचुराभ्यां
धृतं पचेन्ना वरुणस्य तोये ॥
दुःसाध्यसर्वाश्मिरिमूत्रकृष्कुं
सूत्राभिघातञ्च समूत्रवन्धम् ।
एतानि सर्वाणि निहृन्ति शीवं

प्रस्टबृज्ञानिव वज्रपातः ॥ २१ ॥

कुलत्थष्टते शीतली शियलीक्षोपड , तथाच रत्नकोप, "शीयली शातकुम्भी च शुक्रपुष्पा जलेद्भवा। कालानुशारिवा तस्याः परोचे नतवद्गुणै। "शित। श्रन्ये तु शीतलीयावराक शियतियवद्यार , स तु स्फटिकसैन्धवसङ्काश इत्याहु , व्यवहा-रस्तु पूर्वेणैव। शर्करापि कल्करूपा ॥ २१ ॥

शरादिपञ्चमूलघृतम्

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद् घृतम्। प्रस्थं गोचुरक्लकेन सिद्धमद्यात् सशकरम्॥ श्रश्मरीमूत्रकृच्छुन्नं रेतोमार्गवजापहम्॥ २२॥

शरादिपञ्चमूलामित्यत्र शरादीति विशेषणात् चरकोक छणपञ्चमूल ग्राह्म, वधा,—'शरेजुदर्भकाशाना शालीना मूलेमव च '' इति । अत्र शर्करा प्रद्विप्या । वा शब्दः पूर्वयोगापेद्यया ॥ २२ ॥

वरुगघृतम्

बरुणस्य तुलां चुएणां जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषं परिस्नाव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ घरुणं कदली विट्वं एणंजं पश्चमूलकम्। श्रमृता चाश्मजं देयं बीजञ्च अपुषोद्भवम्। श्रतपर्वा तिल्लारं पलाशलारमेव च। यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत्॥ श्रस्य मात्रां पिवेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेत्तया । जीर्णे तस्मिन् पिवेत् पूर्वे गुडं जीर्गन्तु मस्तुना । श्रश्मरीं शर्कराञ्चेव मूत्रकृष्ट्वश्च नाशयेत् ॥ २३ ॥

वन्णादिष्टते—कदल्याः फलमाम मूल वा, अश्मज शिलाजतु, त्रपुष माया-म्नुफलम्, शनपर्वा वशस्तस्य नली मूल वा। तस्मित्रिति धते, पूर्वमिति भोजनात् पूर्वम् ॥ २३ ॥

बीरतराद्यं तैलम्

व्रश्नाधिकारे यत् तैलं सैन्धवाद्यं प्रकीर्तितम्।
तत् तैलं द्विगुणं ज्ञीरं पचेत् वीरतरादिना ॥
काथेन पूर्वकल्केन साधितन्तु भिषग्वरैः।
पतत् तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणां विनाशनम् ॥
मूत्राधाते मूत्रकृच्छ्रे पिचिते मथितेऽपिवा।
भन्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रशस्यते ॥ २४॥

व्रशाधिकार इत्यादि—तत् तलिमिति व्रशाधिकारेकिविधिना सिद्ध तेल पुनरिप दिगुण चीर दन्ता वीरतरादिकाथेन चतुर्गुणेन दिगुणेन वा, पूर्वकल्केनिति सैन्थवा धकल्केन पचेत्। अन्य तु केवल तैलमेव दिगुणचीरादिना पचेदिनि वदन्ति, तनु न न्यवहारसिद्धम् । यद्यपि सैन्धवाधतेले तिलतेलमेरण्डतेले छोत्त तथाप्यत्र उत्तर-वस्त्यादौ तिलतेलस्येव स्ट्रमस्रोतोऽनुमारित्वेन योगिकत्वाद् ग्रहणिमत्याहु । पिचिन इत्यागन्तुकव्रणविशेषे, मिथत शित चूर्णिताल्यममे ॥ २४॥

वरुणाद्यं तैलम्

त्वक्पत्रपुष्पमूलस्य वरुणात् सित्रकण्टकात् । कषायेण पचेत् तैलं बस्तिनास्थापनेन च । शकेराश्मीरश्लक्षं मूत्रकुच्छुविनाशनम् ॥ २४ ॥ शल्यवित् तामशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ॥ २६ ॥ त्वक्पत्रेत्यादि—काथार्थं वरुणस्य यथालाम त्वक्पत्रमूलपुष्प पल ३२, गोद्धर पल ३२, जल श ६४, शेष श १६ । भकत्किमिय तैलम् ॥ २४ ॥ २६ ॥ पायुक्तिसङ्गुलिभ्यान्तु गुद्मेद्रान्तरीकृताम् ।
सेवन्याः संव्यपार्थे च यवमावं विमुच्य तु ।
व्रणं कृत्वाश्मरीमावं कर्षेत् तां शस्त्रकर्मावत् ॥
मिन्नेऽिष वस्तौ त्वश्चानान्मृत्युः स्यादश्मरीं विना ।
निःशेषामश्मरीं कुर्यात् वस्तौ रक्षञ्च निर्देरेत् ॥
हताश्मरीकमुष्णाम्बु गाह्येद्धोजयेच तम् ।
गुडं मूत्रविग्रुद्धथर्थ मध्वाज्याक्ष वर्णं ततः ॥
द्वात् साज्यां ज्यहं पेयां साधितां मूत्रशोधिभिः ।
श्राव्शाह् ततो द्वात् पयसा मृदुभोजनम् ॥
स्वेदयेद् यवमध्वाद्ध्य कषायैः चालयेद् व्रणम् ॥
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायप्रीलोष्ट्रश्च लेपयेत् ॥
पतैश्च सनिशै सिद्धं घृतमभ्यञ्जने हितम् ।
श्रव्रशान्ते तु सप्ताहाद् वृणं दाहोऽिष चेष्यते ।
दैवान्नाडे तु या लग्ना तां विपाट्यापकर्षयेत् ॥ २७ ॥

इत्यश्मरीचिकित्सा ।

-ARAMBIA

सन्वपार्श्व इति वामपार्श्व । नि शपामरमरी कुर्यादिति सरीपायान्तु पुनरप्यश्मवृद्धिसम्मवात् । वस्तौ रक्षञ्च निहेरदिति वस्तिगतरक्षमित्यर्थ । तथा सित वस्तिरसृज्।
न प्रपूर्यत इति माव । हतारमरीमित्यादी गुह मोजयदित्यन्वय । मूत्रशोधिभिरिति तृष्णपञ्चमूलादिभि । तत इति ज्यहादूर्क्षम्, झादशाह दशाहपर्यन्तम् ।
पमसा दुग्धेन मृदु भोजन कोमल मक्त दणातः, तथा स्वदेयन्तः, आदशाहमित्यनेन
दशाहाम्यन्तर एव स्वेदोऽप्युक्त , उक्त हि दशरात्रञ्जैनमप्रमत्त स्वदेयेत् " इति । स च
लेह एव स्वेदः रक्तिपत्तानुगतत्वादायोरिति गयदास । भोजऽप्युक्तम् "लेहस्वद
विधिन्नस्तु कुर्याद् वातम्जापहम्" इति यवमध्वाद्ध्यमिति मृदुभोजनिमत्यस्य विशेषषम्, यवकृत मन्त्यप्रधान मधुप्रधानज्ञेत्यर्थ, । कपायै ज्ञालयद् न्यामिति दशाहादूर्वमेव चीरिवृज्ञक्षायै ज्ञालन वोध्य मोजसवादात् । सिनेशिरित्येनन घृतसाधनद्र्य मम्बस्यते, न तु लेप इति सुश्रुतसवादात् ॥ २७ ॥

इत्यश्मरीचिकित्साविवृत्ति ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा।

कुशावलेह:

वीरण्श्च कुशः काशः कृष्णेचुः खागडस्तथां। एषां दशपलान् भागान् जलद्रोखे विपाचयेत्॥ श्रष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्। श्रवतार्थ्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्। मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारं त्रपुषं तथों॥ शुभामलकपत्राणि एलात्वङ्नागकेशरम् । वहणामृतप्रियङ्गणां प्रत्येकञ्चाच्तसम्मितम्॥ प्रमेहान् विंशतिञ्चेव मूत्राघातं तथाश्मरीम्। वातिकं पैत्तिकञ्चेव रैष्ठिमकं सान्निपातिकम्। हन्त्यरे।चक्रमवायं तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥ १॥ √श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणुकाढकी । कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा। 🤸 जाङ्गलं तिक्रशाकानि यवात्रञ्ज श्रमो मधु ॥ २ ॥ पारिजातजयानिम्बविद्वगायत्रीयां पृथक्। पाठायाः सागुरोः पीताद्वयस्य शारदस्य च ॥ जेलचुमद्यीसकताशनेर्ववण्पिष्ट्कान्। सान्द्रमेहान् कमाद् झन्ति चाष्टौ काथाः समाज्ञिकाः ॥३॥ १

अश्मर्थ्यनन्तर बस्तिविकृतिसाम्यात् प्रमहप्रतिकार उच्यते श्यामाकेत्यादि— उदालो वनकोद्रव, आढकी तुवरी, यवाश्रमिति यवशक्तवादिकंम्। पारिजात-त्यादि—पारिजात पारिभद्रः, जया जयन्तीः, विद्विश्वित्रकः, गायत्री खिद्ररः, पाठायाः सागुरे।रित्येकः काथः। पीताद्वय हरिद्राद्वयम्। अयमप्येकः। शारदः सप्तपर्णे । पारिभद्रेत्यादयाऽष्टौ काथाः। जलाधष्टौ मेहान् ऋमाद् झन्तीत्यन्वयः। १—३॥ दृर्वाकेशरुपूर्तीककुम्मीकस्रवशैवलम् । जलेन कथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ त्रिफलारम्बध्राचाकपायो मधुसंयुतः । पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं चृणाम् ॥ ४ ॥ लोभ्रामयाकद्फलमुस्तकानां विडक्षपाठार्जुनधन्वनानाम् फद्मवशालार्जुनदीप्यकानां विडक्षधात्रीवहुशल्यकानाम् । चत्वार पते मधुना कपायाः कफ्रममेहेषु निषेवणीयाः ॥ ४ ॥

द्रेंत्यादी—प्तिक करज तस्य त्वन्। कुन्मीक पाहा; सव कैवर्तमुन्तकम् । वोगेऽत्र मधु प्रचिपन्ति वृद्धा सुश्रुतमवादात् । विकलेखादि स्पष्टम् । लोगेद्धादि । योगद्धय वाग्मटस्य, कदम्बेखादि योगद्धय चग्कस्य, चक्रेण प्रतिसस्कृत्य लिखितम्। धन्वनो धामनी, दीव्यको यमानी, गल्यक खिदर, बहुशल्य इति खिदरस्य मछा, उक्त हि "वहुशल्यश्च मम्प्रोक्तो याष्टिक कुष्ठनाशन" इति । तेनैकदेशोऽपि महिन गमयनि यथा मीमो मोमसेन । उक्त हि चरके "दावी विवक्त खिदरो धवश्च" इति । बाग्मटेऽन्युक्त— "गायत्रीदावींक्तिमिजिद्धवानाम्" इति । अन्य तु शल्यक मटनफल-माह् ॥ ४ ॥ ४ ॥

स्रश्वत्थाचतुरकुलान्न्यप्रोघादे फलत्रयात् ।
सिजक्षीरक्षसाराच काथाः पञ्च समाचिकाः ॥
नीलहारिद्रश्रक्षाच्यचारमञ्जिष्ठकाद्वयान् ।
मेहान् हन्युः क्रमोदेते सचौद्रो रक्षमेहजित् ।
काथः खर्जूरकाश्मर्थातेन्द्रकास्थ्यमृताकृतः ॥ ६ ॥
लोध्राजुनोशारकुचन्द्रनानामिर्प्रसेन्यामलकाभयानाम् ।
घात्र्यजुनारिष्टकवत्सकानां
नीलोत्पलानां तिनिशार्जुनानाम् ॥

चत्वार एते विद्याः कषायाः पित्तप्रमेहे मधुसम्प्रयुक्ताः॥ ७॥

पित्तमेहस्य याप्यत्वेन यापनार्थं चिकित्सामाह अश्वत्थादित्यादि—नीलादिषु पञ्च मेहेषु क्रमेख पने पञ्च योगा वोध्याः । अत अश्वत्यकाथनेको योग , चतुरक्ष लादिति दिनाय , न्यप्रोथोड्रम्वराश्वत्थस्वमधुकककुमजम्मृद्वयीपयालमधुकरोष्टिखी-वन्जुलकदम्बदरितन्दुकशञ्चक्रीलोभ्रमञ्चातकपलाशनन्दीवृद्धाक्षिति, अन्न सच पाकि । ककुमोऽर्जुनः।नन्दीवृत्तो गन्धमुख्ड । अन्य तु न्यमोधादिशन्देन पञ्चवत्कलमाहु. । फलत्रयादिति चतुर्थ । सिजिहीरकसारादिति—जिही मिलिष्टा। रक्तसारो रक्तचन्द-नम् । अयन्तु पञ्चमः । हन्युरिति यापयेयुरित्यर्थ । किंवा ''अनत्यन्तदुष्टमेदि पित्त-जानामपि साध्यत्व ''साध्यास्तु मेदो यदि न प्रदुष्टम्' इति चरकवचनात् । शुक्ता-ख्यो मेहोऽन्लेमह । सुत्रुते कालेमहस्थाने अन्त्रमेह पठ्यने । उक्त हि सुत्रुते निदान-ख्योने ''अन्त्रमेहिन न्यप्रोधादिकषाय वा पाययेत्'' इति । रक्तमेहिनिकत्सामाह मचौद हत्यादिना कृत इत्यन्तन । अत्र खर्जूरकाशमर्थोः फलः, तिन्दुकस्य च फला-क्या ग्रम्ता ग्रह्चो । सुत्रुतेऽपि ''शोखितमेहिन ग्रह्चोतिन्दुकास्थिकाश्मर्थ्यक्तु-रक्षया मधुमधुर पाययेत्'' इति । लोभेलादौ—कुचन्दन रक्तचन्दन, अरिष्टो निम्न , सेन्यमुशारः नीलोत्यलानामित्यत्र नीलोत्यलेला इति पाठान्तर, किन्त्वार्ष न दृष्ट, तिनिश अहुक. ॥ ६ ॥ ७ ॥

छिन्नाविक्षकायेण पाठाकुट जरामठम् ।
तिक्षां कुछञ्च सञ्चूर्ण्यं सर्पिमेहे पिवेन्नरः ॥ = ॥
कदरखिदरपूगकाथं चौद्राह्मये पिवेत् ॥ ६ ॥
श्रिश्मिन्थकषायन्तु वसामेहे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
पाठाशिरीपदुःस्पर्शमूर्विक्षिश्चकितन्दुकम् ।
कपित्थानां भिषक् काथं हास्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥ ४

किम्पिसस्तर्छदशालजानि वैभीतरौहितककौटजानि । किपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि सौद्रेण लिह्यात् कफिपत्तमेही ॥ १२॥

इदानीमसाध्येष्वपि वातिकमेहेषु यापनार्थ योगानाह क्षिन्नेत्यादि—वहि-

श्चित्रकः । पाठादिकुष्ठान्ताना चूर्णं गुद्ध्वीचित्रकक्षपाये प्रिक्षिष्य पिवेतः । कदरो विट खिटरः, खिदरम्तु तिटतरः, पूग पूगफलम् । पाठेचादी—ितन्दुकक्षिप्तयो फलः, तिन्दुकक्ष तेन्दुफलम् । पाठादिकिपत्यान्तमेकमेव पदम् । वातमेहेष्वमाध्येष्विपि चि- कित्माविधानिमद मेहाना चिरानुविन्यत्वेन किश्चिद्दिशेषलामेन यापनाथम् । सुश्चेन- ऽप्युक्तम् "अन उद्ध्वमसाध्येष्विपि योगान् यापनार्थं वद्ध्यमः " इति । किम्पिल्लेखानी चूर्णानीति विशेष्यपद द्रष्ट्यम्, एव वैमीतकत्यादावपीति केचित् अन्य तु किपत्थपु- विषाणि चेति चकारात् किप्लिल्लानीमित कुसुममेव शाह्ममित्यातु । युक्तभैतत् । उक्त वि वागमेटे "शालसप्ताह्मकिपल्लाव्यान्तमित्यवम् । रोहीत्व च कुसुम मधुना- वात् मुर्शकरम् " इति । एव वृद्धवागमेटेऽपि शालावीनामिति कुसुमित्येवोक्तम् । कफ्तिपत्त्रमेहीति कफ्रमेही पित्तमेही चेत्यर्थः ॥ ध—१०॥

सर्वमेहहरो धाज्या रसः क्षौद्रनिशायुतः। कपायस्त्रिफलदारुमुस्तकैरथवा कृत ॥ १३॥

मर्वमेहेत्यादि—अय योगो वान्तिविरेकादिशुद्धे शेय सुश्रुतमवादात्। भाज्या रम स्वरस , स्वरस एव व्यवहारात् न तु काथ इत्याहु । कपाय इत्यादि-दिनीययोगेऽपि चौद्रनिशायुत इति सम्बन्धनीयम् ॥ १३ ॥

फलित्रकं टारुनिशां विशालां

मुस्तञ्च निःकाथ्य निशांशकरकम्।

पिवेत् कपायं मधुसम्प्रयुक्तं

सर्वप्रमेद्देपु समुत्थितेषु ॥ १४ ॥ /
कटद्वेटेरीमधुकित्रफलित्रकैः समैः।
सिद्धः कपायः पातव्य प्रमेहाणां विनाशनः॥ १४ ॥
त्रिफलाद्यव्यव्यक्तिथ सौद्रेण मेहहा॥ १६ ॥
फुटजाशनदार्व्यव्यक्तताऽथवा॥ १७ ॥

फनान्निकमित्यादी—दारुनिशा दारुहिदा, विशाला गोरचनर्कटा । निराशकरूकमिति—निशामागकरूक तत्मिहतमेव निफलादिद्रव्य नि काथ्य कपाय पिनेदित्येके । अन्य तु अशरान्द्रोऽद्बीमिधायी, तेन फलिन्नकादीना समुदितानामेको भाग , निशायाक्षापरो माग एतद्भागद्भय नि काथ्य कपाय पिनेदित्यर्थ । अपरे तु निशाया अशक्षतुर्थो माग समुदितकाथ्यापेचया म एव करूक प्रसेपरूप- श्चुणो यत्र तत्त्रभेति व्याचचते । व्यवहारस्त्वनेनैव । कटहूटेरी दारुहरिद्रा । कुटबाशनेत्यादाविष चौद्रेणेत्यनुवर्तते । श्रशन- पीतशाल । दावी ढारुहरिद्रा । प्रक्टो मुस्तकम् । निश्चलस्तु श्रक्टस्थाने प्रशीति पठित । व्यवहारस्तु मुस्तकेनैव ॥ १४ —१७ ॥

त्रिफलालौहिशिलाजतुपथ्याचूर्णञ्च लीढमेकैकम्।
मधुनामरास्वरस इव सर्वान् महान् निवारयति ॥१८॥
शालमुष्कककिपत्नकल्कमत्तसमं पिवेत्।
धात्रीरसेन सत्तौदं सर्वमेहहरं परम्॥ १६॥

त्रिफलत्यादि — समुदितित्रिफलयेवेको योग , तेन चत्वारा ग्रीगा । अमरा
गुड्नी, अयञ्च पञ्चमी योग । लोइच्च मारितपुटितवजादिलाह त्रूर्णम् । शालत्यादा — शालम्य मार. । मुष्कको षरटापाकली तस्या मूलम् । वास्पिल्लम्य त्वक्
॥ १=॥ १६॥

न्यग्रोधाद्यं चूर्णम्

न्यत्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योणाकारग्वधाशनम्। त्राम्रजम्बूकिपत्थञ्च पियालं ककुमं धवम् ॥ मधूको मधुकं लोधं वरुणः पारिमद्रकम् ॥ पटोलं मेषश्रद्धी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ करञ्जत्रिफलाशक्रमहातकफलानि च। एतानि समभागानि श्रद्धाचूणीनि कारयेत्। न्यत्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेह्येत्। फलत्रयरसाञ्चानुपिवेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ पतेन विश्वतिर्मेहा मूत्रकच्छ्राणि यानि च। प्रशमं यान्ति योगेन पिडका न च जायते। न्यग्रोधाद्यमिदन्त्वत्र चाम्रजम्ब्वस्थि गृह्यते ॥ २०॥

न्यत्राधासिन्त्ये — न्यत्रोधो वट , अशन पीतशाल । आझजन्त्र पित्थ-त्रिति आझजन्त्र कापित्थस्य तु फलिमत्यादु । ककुमोऽर्जुन । धव स्वनाम-स्थात । मधूको मधूकमार । आढकी तुपरी । करअस्य फलम् । शक कुटज ॥ २०॥

त्रिकएटकाद्यं घृतं तैलं यमकश्च

त्रिकएटकाश्मन्तकसोमवल्कैभेत्वातकैः सातिविषे सलोधैः।
चचापटोलार्जुनिम्बमुस्तैहिरिद्रया दीप्यकपद्मकैश्र॥
मिश्रपाठागुरुचन्दनैश्र
सर्वे समस्तैः कफवातजेषु।
मेहेषु तैलं विपचेद् घृतन्तु
पित्तेषु मिश्रं त्रिषु लच्चोषु॥ २१॥

त्रिकारकेत्यादी—अश्मन्तको मानुआक इति ख्यात । मोमवल्क खिट , न तु कट्फल जतुकर्णमवादात । सँवैरिरयुक्ते पृथगि सर्व केहसाधन स्यादत आह ममस्तौरिति मिलितैरित्यर्थ , यथालाभपरिहारार्थमिति वा । कफजेपु वातजेपु च मेहेपु तैलम् , पैचिकेषु धतम् , मिश्र त्रिपु लच्चपेष्विति देषत्रयलच्चपपादुर्मवि मित्र मिश्र तैलध्तयमक पचेदित्यर्थ । त्रिदोषजत्वज्ञ कफपिचमेहेष्वेवानुबन्ध्यानुबन्धकृत भन्नव्यम् । किंवा सर्वेषमिव मेहाना त्रिदोषजत्वादुद्भृतदोषाविर्माव कटाचिक्रवतीति श्रेयम् ॥२१॥

> कफमेदद्वरकाथसिद्धं सर्पिः कफे दितम् । पित्तमेद्वप्रनिर्च्यूहसिद्धं पित्ते द्वितं घृतम् ॥२२॥ कफमेद्देलादौ काथनिय्देदित पदोपादानादकत्कल बोध्यम् ॥ २२॥

धान्वन्तरं घृतम्

दशमूलं करको द्वौ देवदारु हरीतकी।
वर्षाभूर्वरुणे दन्ती चित्रकं सपुनर्गवम् ॥
सुधानीपकदम्वाश्च विल्वमस्नातक।नि च।
शटीपुष्करमूलञ्च पिष्पलीमूलमेव च॥
पृथम्दशपलान् भागान् ततस्तोयामेणे पचेत्॥
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थञ्च दापयेत्॥

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
निचुलं त्रिफला भागीं रोहिपं गजिपिपली ॥
श्रक्षवेरं विडक्कानि वचा किम्पिलकं तथा।
गर्भेणानेन तिसद्धं पाययेत्तु यथावलम् ॥
पतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिधत्तमम्।
कुष्ठं गुरुमप्रमेहांश्च श्वयथु वातशोणितम् ॥
सीहोदरं तथाशींसि विद्विधं पिडकाश्च याः।
श्रपसारं तथोन्मादं सिंपरेतिश्वयच्छिति ॥
।
श्रथक् तोयामेणे तत्र पचेत् द्रव्याच्छतं शतम् ॥
शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो मतम् ॥२३॥

दशमूलेत्यादी—करक्षयो फल न तु मूलम्, फलस्यन मेहहरत्वात् यदुक्तम्—'करक्षिंशुकारिष्टफल जन्तुप्रमेहनुत्' इति । सुधा स्तुही तस्या मूलम् तन्त्रान्तरे मूलपाठात् । नीपकदम्बी स्वल्पबृहत्कदम्बी, किंवा कदम्बो मूकदम्ब म् चालम्बुप , तन्त्रान्तरे भूमिकदम्बणठात्, नीपस्थाने कापि निम्च पठ्यते । पृथग्दरणपलान् भागानिति दशमूलमपि प्रत्येक दशपलम्, तत्र प्रतिशत तीयामंखदानम् । शतत्रयिके द्रव्ये पुनरुत्सर्गसिद्धमप्टगुखमेव जल देयम् । एनदेव वच्यति ' पृथक् तीयामंख' इत्यादि । क्षमेखो द्रोख , वृन्दस्त्वाह ' पाठान्तरे मत तीय काव्यादप्टगुखन्तिवह' इति । अस्यार्थ एतदेव एत तन्त्रान्तरेऽन्यथा पठ्यते । तत्र च कार्यार्थम् प्राचनिवह ' इति । अस्यार्थ एतदेव एत तन्त्रान्तरेऽन्यथा पठ्यते । तत्र च कार्यार्थम् प्राचनिवह ' इति । अस्यार्थ एतदेव एत तन्त्रान्तरेऽन्यथा पठ्यते । तत्र च कार्यार्थम् प्राचनिवह दश्तिको देवदारु करक्षद्वय वर्षाभूद्वय दन्ती भूमिकदम्ब महातक पुष्कर्म्मूलाकंमूल स्तुहोमूल वम्खमूल पिप्पलीमूलमिति प्रत्येक दशपलीन्तितानि । यवकोल-कुलत्यप्रस्थदय चाष्टगुखेऽन्मसि पादशेष कषायमवतारयेत्' इत्यादि । अमेखण्यव्यक्षेद्व भूरिजलोपलच्य इति वृन्दस्याशय । व्यवहारस्त्वधुना चक्रमतेनैव । निचुल इज्जल , रोहिष गन्धनृत्यम् ॥ २३ ॥

दाडिमाद्यं घृतम्

दाडिमस्य फलप्रस्थं यवप्रस्थौ तथैव च । कुलत्थकुडवञ्चापि काथियत्वा यथाविधि ।

तेन पादावरोपेण घृतप्रस्यं विपाचयेत्। चतुःपष्टिपलं चीरं चीरतुल्यं वरीरसम्॥ दत्वा मृहश्चिना कल्कैरचमात्रायुनै सह। द्राचाखर्जुरकाकोलीवन्तीवाडिमजीरकै।।। तथा मेटामहामेदात्रिफलादाहरेखुकै । विशालारजनीदारुहरिद्राविकपामथै।। क्रिमिघ्नभूमिकूष्माग्डश्यामैलाभिर्भिपग्वरः। पाने भोल्ये प्रदातव्य सर्वर्तुषु च मात्रया॥ प्रमेहान् विश्तिञ्चैव मूत्राघातास्तथाश्मरीम्। कुच्छं सुदारुणञ्जैव हन्योदतद्वसायनम् । शूलमप्रविधं दृन्ति ज्वरमप्रविधं तथा। कामला पाएडरोगांश्च हलीमकमथारुचिम्॥ श्हीपदञ्च विशेषेण घृतेनानेन नश्यति। इदमायुष्यमोजस्यं सर्वरोगहरं परम्। वाडिमाद्यमिदं नाम अश्विभ्यां निर्मितं महत्॥२४॥ दाडिमस्पेत्वाडि—स्पष्टम् ॥ २४॥

त्र्यूपणादिगुडिका

त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यगुग्गुलुना युतम् ।
गोलुरकाथसयुक्तं गुडिका कारयेद्भिपक् ॥
दोपकालवलापेची भद्मयेचानुलोमिकीम् ।
न चात्र परिद्वाराऽस्ति कर्म कुर्य्याद् यथेप्सितम् ॥
प्रमहान् सूत्रघातांश्च चातरोगोदरं जयेत् ॥ २४ ॥
त्रिक्षित्रफलत्यादि—त्रिकडित्रिफलाचूर्णेन तुल्य ग्रग्गुल, कि विशिष्टम्—
युक्त मित्रितम्, पुन कीदृशम्—गोल्जरक्षोयन सम्यग्युत मावितम्, एव इत्वा
गुडिका कारयेदित्यर्थ । मिलितित्रिकडुचूर्णं पल १, भिलितित्रिकछचूर्णं पल १, भिलितित्रिकछचूर्णं पल १, क्षाथार्थं जल न ४, द्वं
प्रमाहमात्रे भावयेत्, तदनु पट्टमापकमिता विदेका कार्या ॥ २४ ॥

शिलाजतुप्रयोगः

शालसारादितोयेन भावितं यिच्छलाजतु ।

पिवेत् तेनैव संशुद्धदेद्दः पिष्टं पथावत्तम् ॥

जाद्गलानां रसैः सार्द्धं तिस्मन् जीर्णे च भोजनम् ।
कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुज्जीत मानवः ॥

मधुमेदं विद्यायसौ शर्करामश्मरीं तथा ।

चपुर्वणवलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ २६ ॥

माज्ञिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याप्ययं गुणः ॥ २७ ॥

शालसारादिवर्गस्य काथे तु धनतां गते ॥

दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः लिपेत् ।

घनीभूतमद्ग्धञ्च प्राश्य मेद्दान् व्यपोद्दति ॥ २० ॥

पादत्रच्छत्ररहितो भिन्नाशी मुनिवद् यतः ।

पादत्रच्छत्ररहितो भिन्नाशी मुनिवद् यतः ।

पात्रच्छत्ररहितो निन्नाशी निन्तरम् ॥

मेद्दान् जेतुं वने वापि नीवारामलकाशनः ॥ २६ ॥

शालसारादितायेनेत्यादि —शालसारादि सीश्रुता गर्ण तस्य तोय. काथ ।
तिदिधान '' तुल्पं गिरिजेन जले चतुर्गुणे माननीषध काथ्यम् '' इत्यादि रसायननच्यमाणिविधना श्रेयम् । तेनैविति शालसारादितायेनैव पिनेत् । सशुद्धदेह
इति वमनादिना । पिष्टमिति चूर्णितम् । तुला यावदुपयुक्षीतेति प्रतिदिनमर्द्धकर्गादिमात्रया तावानुपयोगोऽस्य यावता तुला न पूर्य्यते न तु पिप्पलीवर्द्धमाननत् ।
मश्रुमेह विहायेति जत्पन्नमात्र मधुमेह जिला इत्यर्थः । चिरजस्य असाध्यत्वात्
किंवा महाप्रमानत्वात् । योगोऽयमसाध्यमपि मधुमेह माध्यति । कक्षविधि
स्वर्णमाचिकेऽप्यतिदिशति माचिक घातुमंप्येविमिति । शालसारादिवगंस्येत्यादि—
शालसारादिगणस्य चतुर्थमागाविशिष्टे काथे पुन पाकाद् वनीमृते दन्त्यादीना मिलिताना चूर्णे पादिक प्रचय्य कुटजलेहवत् । शिवा हरीतकी । कान्तिति—मारितपुटितकान्तलोहादिचूर्णम् , अस्य सवौ विधिलीहान्तरवत् । व्यायामजनितमिति
मह्ययुद्धादिजनितम् । नीवारेत्युपलचण्यम्, तेन श्यामाकादिकमिप बोध्य यदाह

मुत्रुतः — " महावने वा ज्यामाक-नीवारामलकक्तीप शतिन्दुकाण्मन्तकरूलन्दा-हारो मूर्ग नह बनेत " इति ॥ २६--- २६ ॥

> शराविकाद्याः पिडकाः साधयेच्छोथवद्धिपक् । पकाश्चिकित्सेद् व्रणवत् तासां पाने प्रशस्येत । काथं वनस्पतेर्वास्नं मृत्रञ्च त्रण्शोधनम् । पलादिकेन कुर्वीत नैलञ्च त्रणरोपणम् ॥ श्रारम्बंघादिना कुर्यात् काथमुद्दत्तेनानि च। शालसारादिसेकञ्च भोज्यादिञ्च कणादिना ॥ २० ॥ सोवीरकं सुरां शुक्तं तैलं चीरं घृतं गुडम्। श्रम्तेज्ञुरसिप्रान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ 🦯 प्रमेहिणां यदा मृत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विश्वं कट्ट तिक्षञ्च तटारोग्यं प्रचक्तते ॥ ३२॥

इति प्रमेहचिकित्सा।

प्रमेहपिटकाचिकि मामाह गराविकाचा इत्यादि-शायवदिति व्रवसायवद् । बनस्पेतरिति बटादे , बास्त मूत्र छा । मूत्रम् । पलाडिकेनेत्यादि---पलाडिगएस मौश्रुत , " कन्ककाथावनिर्देशे गयाचन्मात् समावेषत् " इति वन्यनात् पलादि-गणन्य काय कन्त्रथ । अन्य तु एनादिगयस्य कन्को जलञ्ज चतुर्वेणिनत्याह । मारग्वधादिरिप सीख़तो उप । काथमिति पानार्थ परिपेकार्थञ्च । नोज्यादिनित्यादि गन्दात् पानमपि दोष्यम् । क्याहिनेति पिप्पल्याहिनखेन मौधूनेन । निहानुर्ण-बन्नमाह सीवीरकमित्वादि ॥ ३०---३२ ॥

श्री प्रमेद-प्रेमहपिडका-चिकिन्सा-विष्टृति ।

अथ स्थौल्यचिकित्सा।

श्रमिक्ताव्यवायाध्वत्तौद्रजागरणप्रियः । इन्सवश्यमतिस्थाल्यं यवश्यामाकभोजनः॥ श्रलप्रञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च । स्रौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्येत्॥ १॥ प्रातमेधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम्। उष्णमन्नस्य मण्डञ्च पिवन् कृशततुर्भवेत् ॥ २ ॥, सचव्यजीरकव्योषिंधुसौवर्चलानलाः। मस्तुना शक्कवः पीता मेदोन्ना विह्नदीपनाः॥ ३॥

प्रमेहवत् स्थील्यस्यापि व्यायामसाध्यत्वात् तथा दुष्टमेदोजन्यत्वाच प्रमेहा-नन्तर स्थील्यचिकित्सामाह अमेत्यादि—मधुयुत वारीति अत्र सचारत्वेन कर्षणत्वात् कोप जलमेव योगिकिमिति वृद्धा । सचन्येत्यादी—अनलिश्चत्रक । शक्तव इह वद्द्यमाण्व्योषादिशक्षुप्रयोगन्यायात् मर्वचूर्णात् षोडशगुणा । अनेन एकवार मेजनमाहाररूपत्वादित्याहु ॥ १—३॥

विडड़ाद्यं चूर्णम्

विडङ्गनागररज्ञारकाललोहरजोमधु । यवामलकचूर्णन्तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥ ४॥

विडङ्गत्यादौ — चारे। यवचारः, काललोहे। वजादि अस्य चूर्णं मारण-पुटननिष्पन्न प्राद्यम्। अत्र सर्वचूर्णानामेव सममाग प्राहयन्ति, किन्तु लौहस्य महावीर्थात्वेन प्राधान्यादितरामिलतचूर्णममत्वम् । लोहस्याधिको माग मधुना चात्रावलेह इत्यप्याहु ॥ ४॥

विडड़ाद्यं लौहम्

विडक्षत्रिफलामुस्तैः कणानागरकेण च ।
विल्वचन्दनहांवेरपाठोशीरं तथा बला ॥
एषां सर्वसमं लौहं जलेन विटकां कुरु ।
घृतयोगेन कर्चव्या माषेका विटका ग्रुभा ॥
घ्रानुपानं प्रयोक्तव्यं लौहस्याष्टगुणं पयः ।
स्विमेहहरं बल्यं कान्त्यायुर्बलवर्छनम् ॥
घ्राग्निसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम् ।
सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करिस्तिमरं यथा ॥
विडक्षायिमदं लौहं सर्वरोगनिस्द्रनम् ॥ ४ ॥
विडक्षेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ४ ॥

च्योपाद्यशक्तुप्रयोग<u>ः</u>

व्योपं विडइशिश्रृणि त्रिफलां कहरोहिणीम् ।

वृहत्यौ हे हरिद्धे हे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥

हिंगुकेबुकम्लानि यमानीधान्यवित्रकम् ।

व्योपं विडइशिश्र्णि त्रिक्तां कहरोहिणीम् ।

वृहत्यौ हे हरिद्धे हे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥

हिंगुकेबुकम्लानि यमानीधान्यवित्रकम् ।

सौवर्धलमजाजीञ्च हवुपाञ्चेति चूण्येत् ॥

चूण्येतेलघृतचौद्रभागाः स्युमानतः समाः ।

श्रक्त्नां पोडशगुणो भागः सन्तर्पणे पिवेत् ॥

प्रयोगात् तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोिश्यताः ।

प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यशासि कामलाः ॥

सीहपाएड्वामयः शोथो मूत्रक्रच्छ्रमरोचकः ।

हद्रोगो राजयदमा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥

किमयो ब्रहणीदोपाः श्वैञ्यं स्थील्यमतीव च ।

नराणा दिप्यते चाग्निः स्मृतिवृद्धिश्च वर्दते ॥ ६॥

न्योषमित्यादी—तैलष्टतर्जाद्राया प्रत्येक मिलितचूर्णममलम्, राक्तूनाञ्च षोढरागुर्णो माग ममुदितचूर्णापेवया । मन्नर्पणमिति जलालोडितराक्तुस्तरूपनया । नेन सन्वर्पणसग्रस्याप्यसन्तर्पणता भ्रेया । मात्रा चास्य श्राहारद्रन्यप्रधानत्वाद भूयमा । मृदवातो वाताप्रवृत्ति । श्रेष्ठय श्रित्रत्वम् । श्रीत्यामिति पाठे रवेतावमामना, मा च कफकृता ॥ ६ ॥

बद्रीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिना। स्थौल्यनुत् स्यात् साग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ ७॥ वदरीलादि—वदरीपत्रपत पिष्ट्वा काञ्जिकद्रवेण पेया माध्या। माग्निमन्थ-लादि—दिनायो योग । रस काथः । शिलावतु प्रवेष्यम् ॥ ७॥

श्रमृताद्यगुग्गुलुः

श्रिमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं

कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुः।

क्रमचूद्धिमदं मघुप्लुतं

पिडका स्थील्यभगन्दरं जयेत्॥ 🗷 ॥ 🍍

' अमृतेलादौ-मुटि स्हमैलाः, वेल्ला विदङ्गः, कालिङ इन्द्रयवः, केचिच्छन्दो-भङ्गभिया किलपाठ कुर्वन्ति, तन्मते किलिविभीतकः किन्तु महेश्वरिषत्रक यामि इन्द्रयव पव व्याख्यात । तसादनन्तत्वाच्छन्दोमार्गाणामत्र छन्दोमझदोषा नाशङ्गनीय । कमवृद्धमिति अमृताया एको भाग , ही तुटेरिलादि । मधुना आलोड्य पेयम् ॥=॥

नवकगुगगुलु:

व्योपाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुलुं समम्। खादन् सर्वान् जयेद्ववाधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान्॥६॥ व्योपेलादी—श्रिशित्रकः॥ ६॥

लौहरसायनम्

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खिद्रं तृषम् ।
त्रिवृतालम्बुपा स्नुक् च निर्गुग्ढी चित्रकं शटी ।
एषां दशपलान् भागांस्तोथे पञ्चाढके पवेत् ।
पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥
पलं द्वादशकं देयं तीक्णलौहं सुचूर्णितम् ।
पुराणसिंपः प्रस्थं शकराष्ट्रपलोन्मितम् ॥
पचेत् ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।
प्रस्थार्द्धं माचिकं देयं शिलाजतुपलद्वयम् ।
एलात्वचोः पलार्द्धञ्च विडक्कानि पलत्रयम् ।
मरिचञ्चाञ्जनं कृष्णा द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥
पलद्वयन्तु काशीशं स्रुक्णचूर्णीकृतं वुधैः ।
चूर्णं दत्वा सुमिथतं सिग्धे भागडे निधापयेत् ॥

ततः संग्रुद्धेद्दस्तु भच्येद्यमात्रकम्।
श्रमुपानं पिवेत् द्वीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥
वातन्केष्मद्दरं श्रेष्ठं कुष्ठमेद्दोदरापट्टम्।
कामलां पाग्रुरोगञ्च श्वयशु सभगन्दरम् ॥
सूर्व्वामोद्द्विपोन्मादगराणि विविधानि च।
स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौपधम् ॥
कर्षयेद्वातिमात्रेण कुद्ति पातालसन्निभम्।
वल्य रसायन मेध्य वाजीकरण्मुत्तमम् ॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम्।
नाश्रीयात् कदलीं कन्दं काञ्चिकं करमद्कम्।
करीरं कारवेह्यञ्च पद ककाराणि वर्जयेत्॥ १०॥

गुग्गुलुरिलादि—अत्र पिण्डितस्य न गुग्गुलो शोधितस्य न काथकरणममय पन काथमध्ये प्रेन्य । अलम्नुपा मुण्डिरी । पुराण सिर्पर्रशवर्षभितन्, यदुक्तर्, "उद्यगन्थ पुराण स्याद् दशवर्षभ्यित प्रतम्। लान्नारसनिम शीत प्रपुराणमन परम्" इति । प्लालनीमिलिला पलाईम्, मरिनादीना त्रिफलान्तानां प्रत्यक पलद्यम्, अक्षन रक्षक्षनम्; शिलानतुपलद्वयः शोधित मानितन्न ग्राह्मम् । एपा न्यूणाना पाणिसहत्वमात्रोष्णुदशाया प्रोन्नप् , मधुनस्तु दिनान्तरे । मधुन प्रसाद्धं पोऽश-पलानि । खण्डराायालीहवदस्य पाक । लीहान्तरवदस्य मर्दनादिकिया नोभ्या ॥१०॥

त्रिफलाद्यं तैलम्

त्रिफलातिविपासूर्वातिवृधित्रकवासकैः।
निम्वारग्वधपड्त्रत्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः॥
गुद्ध्वीन्द्रसुराकृष्णाकुष्ठसर्पपनागरैः।
तेलमेभिः समं पकं सुरसादिरसाप्तुतम्॥
पानाभ्यक्षनगगद्धपनस्यवस्तिषु योजितम्।
स्थूलतालस्यकगद्धपनस्यवस्तिषु योजितम्।
स्थूलतालस्यकगद्धपनस्यवस्तिषु योजितम्।
श्रिक्ताणतेले स्त्रसुरा गोरवक्षियै निगुण्धी वा । सुरमादिरसाष्त्रतिमिति
इस्रुतोक्षस्रस्मादिगयस्य काथश्चतुर्युण ॥११॥

शिरीपलामज्जकहेमलोधै-

स्त्वग्दोपसंस्वेदहरः प्रघर्षः।

पत्राम्बु लौहाभयचन्दनानि

शरीरदौर्गन्ध्यहर प्रदेह-॥१२॥ 🗸

मेदोदोषजन्ययो स्वेददौर्गन्ध्ययोश्चिकित्सामाह, शिरीषेत्यादि —लामज्जक-सुनीरम्, हेम नागकेशरचूर्णम्, पत्र तेजपत्र तमालपत्रमित्यन्ये, श्रम्तु वालकम्, लोहमगुरु, चन्दन श्वेतचन्द्रनम् ॥ १२ ॥

> वासादलरसो लेपाच्छह्वचूर्येन संयुतः। विल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः॥ १३॥

वासित्यादि—शङ्खचूर्येन सयुत इति दग्धशङ्खचूर्येन मिश्रित । पन निल्नपत्ररमोऽपि ॥ १३॥

हरीतकीलोधमरिष्टपत्रं

चूतत्वचो दाडिमवल्कलञ्च । एपाऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां

जङ्घाकपायश्च नराधिपाणाम् ॥ १४ ॥

हरीतकीत्यादौ - अरिष्टपत्र निम्नपत्र, दाढिमनल्कल वृत्तस्य फलस्य वा, अङ्गरागा वर्णप्रसाद । अङ्गाकपाय इति गजनाजिनाहनेन निवर्णयोजेङ्गयोर्वर्ण-प्रमादनार्थं कषायो निलेपनम् । यद्धकः, मेदनीकरकोषे 'कष यो रसभेदे च निर्यासे च निलेपने 'इति ॥ १४॥

> गोमूत्रिषष्टं विनिहान्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् । कत्तादिदौर्गन्ध्यहरं पयोाभिः शस्तं वशीकृद्वजनीद्वयेन ॥ १४॥

गोमूत्रपिष्टमित्यादि योगान्तरम् १ वर्णोञ्ज्वल हरिताल गन्धक इत्यन्य । हरिताल गोमूत्रपिष्ट सद् कुष्ट निहन्ति । गोपयसा युक्तमिति पिष्ट तदेव दौर्गन्ध्य- हर, तथा रजनीद्वयेन सहित तदेव हरिताल प्यमा चीरेण पिष्ट्वा निलकदानन वशीकरण भवतीत्यर्थ ॥ १५॥

चिञ्चापत्रस्वरसम्रचितं कचादियोजितं जयति । पुटदग्यहरिद्रोद्वर्त्तनमचिराहेहटौर्गन्ध्यम् ॥ १६ ॥

चिद्रोत्यादि—चिद्रापत्रस्वरमेनादौ त्रवस कव्योस्तदनन्तर पुट्रम्थहरिद्रां पिप्ट्वा उदर्चन कार्यामित्यर्थ ॥ १६॥

> दलजललघुमलयाभयविलेपनं हरित देहदौर्गन्ध्यम् । विमलारनालसहितं पीतामिवालम्बुपाचूर्णम् ॥ हस्तपादस्रुतौ योज्यो गुग्गुलु पाञ्चतिक्षक । श्रथवा पञ्चतिक्षाख्यं घृतं सादेदतन्द्रितः ॥ १७ ॥ इति स्थौल्याचिकित्सा ।

दलेत्यादि---दल तेजपत्र, जल बालक, लबु श्राम, मलयज श्रेतचन्दर्ग, श्रमयमुगा, श्रलन्तुपा मुण्डिरी ॥ १७ ॥ दति स्थील्याचाकत्साविष्टति ॥

अथोदर-चिकित्सा ।

, उंदरे दोपसम्पूर्णे कुक्तौ मन्दो यतो उनल ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १ ॥
रक्षशालीन् यवान् मुद्रान् जाङ्गलांश्च मृगान् द्विजान् ।
पयोम्त्रासवारिष्टमधुशीधु तथा पिवेत् ॥ २ ॥
ब्दरोत्नेषमाधर्माद स्थील्याननारसुदरिविकित्मामाह वदर इत्यादि—इदर

वातोदरं वलवत पूर्व स्नेहैरुपाचरेत्। स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्नेहिवरेचनम्॥ इते दोपे परिस्लानं वेष्ट्रयद्वाससोदरम्। तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः॥३॥४ वातीदरिमत्यादि—ननु ' विवर्जयेत् सेहपानमजीणां चोदरी ज्वरी ' इति वचनात् सेहपान निपिद्ध, तथा ' नोदरी नातिसारी च ' इत्यादिना च स्वेदोऽपि निपिद्धः, तत् कथमत्र सेहस्वेदोपदेश चच्यते श स्वतन्त्रयोनिपेथो बोध्यः न तु शोधनाक्षभूतयोः, अन्यथा दोषहरणस्य दुष्करत्वात् । परिम्लानभिति चीणम् । तथिति वस्त्वेष्टनेन ।। ३॥

> दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात्। सम्भवत्युद्रं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत्॥ विरिक्ते च यथादोषहरैः पेया श्रुता हिता॥ ४॥

उदरे पुन पुन. शोधनायोपपत्तिमाह दोषातिमात्रेत्यादि-स्रोतोमार्ग. स्रोतोमुख, मार्गशस्दोऽत्र मुखस्यमार्गवाची । ययादोपहरैरिति यसिन्नुदरे यो दोष उद्भूतस्तत्र तहेषपत्यनांकैर्रशमूल्यादिभिः ॥ ४ ॥

वातोदरी पिवेत् तकं पिण्पलीलवणान्वितम् । शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिवेत् ॥ ४ ॥ वातोदरीलादि—सप्टम् ॥ ४ ॥

यमानीसैन्धवाजाजिवयोषयुक्तं कफोदरी। -

यमानीत्यादि नातिपेलवामित्यन्तेनैको योगः, नातिपेलव नातितन् । भन्ये तु कफोदरीत्यन्त एको योग एवेत्याहुः । तन्त, 'यमानीसैन्थवाजाजीमधुन्योषः कफोदरे' इति वाग्मटविरोधात् ॥ ६ ॥

> मधुतैलववाशुएठीशताह्याकुष्ठसैन्धवैः । युक्तं सीहोदरी जातं सन्योषन्तु दकोदरी ॥ वद्योदरी तु हवुषादीण्यकाजाजिसैन्धवैः । पिवेच्छिद्रोदरी तकं पिष्पलीचौद्रसंयुतम् ॥ ज्यूषण्वारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी ॥ ७॥

मधुतेलेत्यादी-जातिमिति च्छेदः, ग्रुजातदिशमविमत्यर्थः । सन्योषन्तु दकोदरीति-दकोदरी ग्रु सन्योष तक पिवेदित्यर्थः । दीप्यक यमानी । निचयोदरी सिन्निपातोदरी ॥ ७॥

गौरवारोचकार्त्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् । तक्रं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय करुपते ॥ = ॥ गौरवेलादी-अनस्कृतस्य केवलतक्रस्याय ग्रुण इति क्षेयम् ॥ = ॥ वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दाशमूलिकः । सोदावर्षे वातन्नाम्लश्यतैरण्डानुवासनः ॥ ६ ॥

वातोदर इत्यादि—पयोऽभ्यास इति क्रमेण, बलार्थ, बलजननानन्तर पबो निवर्त्तनीयम्। निरुद्दो दाशमूलिक इति दशमूलकाथन निरुद्द कार्य्य इत्यर्थ। किंवा 'द्विपञ्चमूलस्य रमोऽम्लयुक्त सच्छागमासस्य सपूर्वकल्क। त्रिक्षेष्ठयुक्त प्रवरो निरुद्ध सर्वानिलन्याधिहर प्रदिष्ट दित। अयञ्च तीच्यविरेचनद्रव्ययुक्त कार्य्यः, चरकप्रामाययात्। सोदावर्ते वातोदर इत्यन्वयः। वातन्नाम्लश्वतैरयहानु-वासन इति वातन्निर्देन्येस्तथा अम्लैक्ष काञ्जिकादिमि श्वतमेरयहमित्यरवहतैलमनु-वामन यस्य वस्ते म तथा इति। अनुवासनस्य क्षेष्ठरूपत्वात् पर्यहर्पदेनैरयहनैल-मुच्यते॥ १॥

सामुद्राद्यं चूर्णम्

सामुद्रसौवर्धलसैन्धवानि
चारं यमानीमजमोद्कश्च ।
सिपिप्पलीचित्रकश्चक्वरं
हिंगुविंडश्चेति समानि कुर्यात् ॥
पतानि चूर्णानि धृतप्तुतानि
भुक्षीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम् ।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं
वायुप्रकोपं श्रह्मणीश्च दुष्टाम् ।
श्रशींसे दुष्टानि च पाग्हरोगं
भगन्दरश्चेति निहन्ति सद्य ॥ १० ॥

सामुद्रेत्यादि-यवाना चारो यवचार । अस्य हिड्ग्वष्टकवदुपयोग । चूर्या-नीत्यनन्तर सिम्मश्र्येति रोप ॥ १०॥ पित्तोदरेषु विलनं पूर्वमेव विरेचयेत्। श्रमुवास्यावलं ज्ञीरवस्तिशुद्धं विरेचयेत्॥ पयसा सित्रवृत्कल्केनोच्चूकश्यतेन वा॥ सातलात्रायमाणाभ्यां श्यतेनारम्बधेन वा॥ ११॥

पिनोदरे त्वित्यादि—चीरप्रधानो वस्ति चीरवस्ति । अत्र वितन पुरुष
पूर्वमिति अनुवासनम्इत्वैन विरेचयेत् । अनुवासनन्यतिरिक्तस्तु लेह कर्नन्य
एव । अत्र एवोक्त वाग्मेटे—'वितन स्वादुसिद्धेन पैने सक्तेष्य सिंपा । श्यामात्रिभण्डीत्रिफलाविपकेन विरेचयेत् 'इति । अवल पुनरादौ अनुवास्य तत चीरवस्तिशुद्ध विरेचयेत् । विरेकोऽनाग्निवलजननानन्तरमेव कार्यः । अक हि वाग्मेट—
'दुर्वल त्वनुवास्यादौ शोधयेत् चीरवस्तिमि । जाते चाग्निवले लिग्मे भूयो भूयो
विरेचयेत् 'इति । केन विरेचयेदित्याह पयसेत्यादि । अत्र तु उरुव्कस्य फल माह्य
विरेचकत्वात् , प्वमारग्वभस्यापि फलम् । सातला चर्मकपा । पयसेति सर्वत्र
सम्बध्यते । सित्रवृत्कल्केन पयसेत्यको योग , उरुवृक्कश्वतेनिति दितीय , सातलादिरारग्वथान्तस्त्वपर , जतुकर्णसवादात् । अन्ये तु सित्रवृत्कल्केनोरुवृकश्वतेनेत्येको
योग , तथा सित्रवृत्कल्केन सातलारग्वभान्तेन तु द्वितीयो योग इत्याहुः ॥ ११ ॥

कफादुद्रिणं शुद्धं कडुत्तारान्नमोजितम्। मूत्रारिष्टायस्कृतिभियोजयेच कफापहे ॥ १२॥ 🛩

कफादित्यादि—शुद्धमिति वमनव्यतिरिक्षशोधनेन विशुद्धमित्यर्थं, वमनस्यो-दरे निषिद्धत्वाद् । कटुचारात्रमोजितमिति कटुचार्युक्षैरत्रे. पेयादिभिः कृतसर्कन-मित्यर्थं । श्रयस्कृतिनेवायमादिः, किंवा श्रयस्कृतयो रमायनोक्तलौहपयोगाध-रकोक्ता हैयाः ॥ १२ ॥

सिन्निपातोदरे सर्वा यथोक्का कारयेत् क्रियाः ॥ १३ ॥ ज्य सिन्नपातोदर इत्यादी सर्वा यथोका इति प्रत्येक वातोदरादिविहिता. सर्वा एव सिन्नपातोदरे कार्य्यो ॥ १३ ॥

प्लीहोदरे प्लीहहरं कर्मोदरहरं तथा॥ १४॥ 🦟

सीहोदर इत्यादौ---सीहहर कर्म वच्च्यमाख तथोदरहर कर्मेति सीहोदर-हरम् । सीहोदरिचिकित्सा च वाच्या ॥ १४ ॥

स्विन्नाय वद्धोदरिणे मूत्रं तीव्णौषघान्वितम्।

सतैललवर्णं दद्यानिरूहं साजुवासनम् ॥ परिस्नेसीणि चान्नानि तीन्णश्चैव विरेचनम् ॥ १४ ॥

स्वित्रायेत्यादि—निरूहस्य उत्सर्गत एव सर्तलसवणत्वे सिद्धे मतैलसवण-मिति पद तैससवणयोरत्राधिकदाने।पदरानार्थम् । वदिन्द्वद्रदकोदराणाद्य यद्यप्या स्थापन निषिद्ध तथापि तदेकमाध्यायामवस्थायां निरूहदानामिष्ठ रेयम् । परिस्नमी-णीत्यनुसोमनानि ॥ १५॥

> छिद्रोदरमृते स्वेदात् ऋष्मोद्यवदाचरेत् ॥ १६ ॥ 🔧 जातं जातं जलं स्नाव्यं शास्त्रोक्तं शस्त्रकर्म च । जलोदरे विशेषेण द्रवसेवां विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

छिद्रोदरिमत्यादि—नाग्भटस्य । 'यद्याप प्राया मनत्यभानाय छिद्रान्त्र-श्रोदर नृष्णम् ' इत्यनेन छिद्रोदरममाध्यमुक तथापि प्राय रान्द्रेन तत्रामाध्यता-न्यभिचारस्य दिशतत्वाद चिकित्सतमिद यापनार्थम् । 'तथा इन्नि सर्वोदराण्ये-तच्चूर्णं जातादकान्यपि ' इत्यनेन मर्वोदर्चिकित्सैन ने।ध्या । अन्ये तु सर्वोदर-इन्त्रत्वकथन न पारमाधिक किन्तु न्तुतिरित्याद्व । अस्ते स्वेदादित्यनेन स्वेदस्य छिद्रोदरे क्षेद्रयुक्तेऽत्यर्थकेदकरतया निषध । शास्त्रोक्तमिति—शल्यशास्त्रोकम् ॥ १६—१७॥

> देवदारुपलाग्रार्कहस्तिपिष्पिलिशिग्रुकैः । साश्वगन्धेः सगोसूत्रैः प्रविद्यादुवरं श्रनैः ॥ सूत्रार्यप्रावुद्रिणां सेके पाने च योजयेत् । स्तुद्दीपयोभावितानां पिष्पलीनां पयोऽशन ॥ सहस्रञ्च प्रयुजीत शक्तितो जठरामयी ॥ १८ ॥

देनदानित्यादी—पलाश किंगुकस्तस्य फल आहा उदरह्र-गृत्वात् । स्नुही-पय रत्यादि—माननमंत्रैकविंशतिवारान् यदाह ज्ञारपाणि । व्यवहारस्तु मान-वारमाननया । पतान् पिप्पलीगुहिकाम्बीद्यतुर पम्न वा कोष्ठानुरूप प्रत्यहमेका-न्तर बन्तर वा निरेचनार्थं चीरेण पिनेत् । महस्नन्तु प्रयुक्षीतेति उपयुक्षपिप्पली-गणनया यानता कालेन सहस्र पूर्यंत इत्यंय । पत्रचीत्सर्गनचनम्, तेन महस्ना-दर्शापि निधिनोंच्य ॥ १८॥ शिलाजत्नां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रैफलस्य च।
स्तुहीत्तीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम्॥ १६॥

शिलाजत्नामित्यादौ —समासान्तर्गतमपि प्रयोग इति पद चकाराच्छिला-जत्वादिभि सह प्रत्येक सम्बन्धनीयम् । प्रयोगोऽभ्याम । त्रैफलस्य गुग्गुलेरिति त्रिफलागुग्गुलोरित्यर्थः ॥ १६ ॥

> स्नुहीपय परिभाविततग्रह्जन्त्रूँगिविंनिर्मित पूप । उदरमुदारं हिंस्याद् योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ २० ॥ पिष्पर्लावर्द्धमानं वा कल्पदृष्टं प्रयोजयेत् । जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि ॥ २१ ॥

स्तृद्दीपय इत्यादौ—पूपः पिष्टकम्, रतुद्दीवृत्त्वद्वीरेख त्रि सप्तकृत्व पिष्पली-भावियत्वा एका दे तिस्रो वा प्रयच्छेत् विरेकार्थमिति । उदारमिति प्रवृद्धम् । कल्पदृष्टमिति चरकोक्तरसायनविधिदृष्टम्, तम्र विधि सीद्दयक्विकित्मते दर्शयि-ष्याम ॥ २०—२१॥

पटोलाद्यं चूर्णम्

पटोलमूलं रजनी विडक्नं त्रिफलात्वचम्।
किम्पल्लकं नीलिनी्ञ्च त्रिचृताञ्चेति चूर्णयेत्।।
षडाद्यान् कार्पिकानन्त्यांश्लींश्च द्वित्रचतुर्गुणान्।
कृत्वा चूर्णं ततो मुप्टिं गवां मूत्रेण वै पिवेत्॥
विरिक्को जाङ्गलरसभ्रंश्चीत मृदुमोदनम्।
मग्डं पेयाञ्च पीत्वा च सन्योपं षडहं पय ॥
श्वतं पिवेतु तन्त्रूर्णं पिवेदेवं पुन पुन ।
हन्ति सर्वोदराणयेतन्त्रूर्णं जातोदकान्यपि।
कामलां पाग्रहरोगञ्च श्वयथुञ्चापकपीति॥ २२॥

 पटोलमूलिमिलादी—त्वच इति निरिश्चित्रिफलाग्रहणार्थम् । षडाचान् कार्षि-कानिति पटोलमूलादीना त्रिफलान्ताना षण्णा प्रत्येक कर्षमागानित्यर्थं । लीश्च दित्रिचतुर्गुणानिति कम्पिल्लकादयस्त्रय क्रमात् कार्षिकमागापेच्या दित्रिचतुर्गुणा-नित्यर्थं । नीलिनी नीलवुह्ना, तत्याश्चात्र फल वृद्धवाग्भटसवादात् । मुधिरिति पलम् । विरिक्तो जाङ्गलरसैरित्यादि—विरेचनदिने जीर्थे भेपने मृद्धोदनमग्रहपेया-नामन्यतममप्रिक्लापेचया उपयोक्तन्यम् । तत ऊद्भेतं पडह यथेक्तिपयोष्टितिना मिषतन्यम् । तन पुन सप्तमेऽहिन पटोलादिचूर्णं पेयम्, प्न पुन. पुन: कार्थम् ॥ २२ ॥

नारायणचूर्णम्

यमानी हबुपा घान्यं तिफला सोपकुञ्चिका। कारवी पिष्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा॥ शताह्वा जीरकं व्योपं स्वर्णवीरी सचितका। ही चारी पौष्कर मूल कुछं लवणपञ्चकम्।। विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागतयं तथा। त्रिवृद्धिशाले द्विगुणे सातला स्थाचतुर्गुणा ॥ एव नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः। नैन प्राप्याभिवर्द्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ तके खोदिरिमि पेयो गुलिमिर्वदराम्युना । श्रानद्भवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया॥ द्धिमग्रडेन विद्सक्षे दाडिमाम्बुभिरशेसि। परिकर्ते च बृज्ञाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ भगन्दरे पाग्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे। हृद्रोगे प्रह्णीद्रापे कुछे मन्दानले ज्वरे ॥ दण्ट्राचिषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे। यथाई स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २३ ॥

यमानीत्यादी—उपकुश्चिका कृष्णजीरक , कारनी खल्पप्रमाण जीरकमीपत् कृष्ण, जीरकशब्देन च प्रसिद्ध महर्कीरकम् । अजगन्धा अजमीदा, म्वर्णचीरी कङ्कुष्ठः, दन्ला मागश्रयमाधभागापेचया प्रव त्रिष्टद्विशालयोरप्याधमागापेचया प्रत्येक द्वैगुप्यम् । सातला चर्मकपा । नारायणमञ्जानिमित्तमाह नैनिमत्यादि । प्रतेन नारायणमध्मेत्वान्नारायणसङ्गेत्युक्त भवति । गरोऽविपद्रव्यसयोगज विप कालान्तरफलदायि, कृत्रिमन्तु स्थावरजङ्गमविषमयोगादुत्कृष्टशक्तिक विप तत्कालफल- त्रायि । यथाईमिति वचनादन्यरिप दोपन्याधिविपरातैईन्ये पानमिति दरायि । यथारिखम्धकोष्ठेनेति पाठे यो यस्योचित राहस्तेन किम्धकोष्ठेन पेयामदम्॥ २३॥

दन्ती वचा गवाकी च शिक्ष्मनी तिल्वकं विवृत्।
गोभूत्रेण पियेदेतत् कल्कं जठरनाशनम्॥ २४॥
सक्तीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिवेन्नरः।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः॥ २४॥
गवाक्तीशिक्ष्मनेदन्तीनीलिनीकलकसंयुतम्।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रं पातुमाचरेत्॥ २६॥

दन्तीत्यादी—गवाची गोरचकर्कटी । राङ्खिनी श्वतवुद्धा । सचीरमित्यादी— माहिषमूत्रपलेमक द्वय वा पीत्वा विरेके मित गोचीरमेन पीत्वा स्थातन्यमित्युपदि-रान्ति । वाग्मेटेऽप्युक ''गन्य मूत्र माहिषमेव वा पिवेद् गोचीरमुक् स्थाद्धा करमी-चारवर्तन '' इति । गोचीरमुगिति गोचीरमात्रमोजी । अत एव माहिष मृत्र पीत्वा तत्कीराहार एव नर '' इति निश्चलन यद्धक तदपास्तम्, उक्तवाग्मटवचन-विरोधात् ॥ २४-२६ ॥

श्रकेपत्रं सलवलमन्तर्धूमं दहेत् ततः।

मस्तुना तत् पिवेत् ज्ञीरं गुल्मसीहोदरायहम्॥ २७॥

पीतः सीहोदरं हन्यात् पिष्पलीमरिचान्वित ।

श्रम्लेवतससंयुक्त शिग्रुकाथः ससैन्थव ॥ २८॥

गृहीत्वा यस्य सङ्घा पाटियत्वेन्द्रवाहणीमूलम्।

प्रिच्यते सुदूरे शाम्येत् सीहोदरं तस्य॥ २६॥

श्रर्भपत्र सलक्यामिति मैन्धवेन तुल्य परियातार्कपत्र गृह्णन्ति । पीन इत्याद्री—पिप्पत्यादिद्रव्यचतुष्ट्य प्रक्षेप्यम् ॥ २७–२६ ॥

> रोहीतकाभयाचोद-भावितं मूत्रमम्बु वा । पीतं सर्वीद्रप्रीहमेहार्श क्रिमिगुल्मनुत् ॥ ३०॥

रोहीतकेत्यादी—रोहीतकहरीतक्याश्चृर्णकक्षपेंख पलढयपरिमित गोमूझमम्ब वा मान्यमिति केचित्, श्रन्य तु रोहीतकहरीतक्यो चोदै. खरडखरडरूपे शिलाया किञ्चिदवच्चरायै: सप्ताह मावित मूत्रमम्ब नेत्याहु. वाग्मटप्रामारयात्, यथा, " राष्ट्रीतकलता. क्नृप्ता खण्डरा सामगानले । मूत्रे वा सुनुयात्तच मप्तरात्र-स्थित पिवेत् " इति । सुनुयादिति भावयेत् ॥ ३० ॥

> देवद्रमं शिष्ठ मयूरकञ्च गोस्त्रपिष्टामथवाश्वगन्धाम्। पीत्वाशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं

क्रिमीन् संशोधानुदरञ्च दूष्यम् ॥ ३१॥

एवोपद्रवमृतप्रमृतरोश्यसम्बन्धे सति चिाकेत्माविशेषमाह, देवद्रुममित्यादि-मयूरकमपामार्गमूलम् । मूत्रमत्र योगद्वयेऽपि, मूत्रेण पेषण पानब्रित्याहु वृत्दिटिप्पिश्वतायान्तु देवद्रुमादिरश्वगन्धान्त एको योग , श्रथरान्टोsिष पूर्वयोगापेद्मया इत्युक्तम्, व्यवहारस्तु योगद्वयेनेति ॥ ३१ ॥

दशमूलदारुनागरिञ्जन्नरुहापुनर्नवाभयाकाथ । जयित जलोदरशोथऋीपद्गलगराडवातरागांश्च ॥३२॥ दशमूलेत्यादी-काथ इत्यत्र युक्त इति पाठे काथ इति राषः ॥ ३२ ॥

हरीतकीनागरदेवदारु-

पुनर्नवाच्छिन्नहहाकपायः। सगुग्गुलुर्मूत्रयुतस्तु पेय

शोथोदराणां प्रवर प्रयोगः ॥ ३३॥

हरीतकीत्यादी-प्रितिदिनोषयोगे गुग्गुलोर्मापकचतुष्टय गोमूत्रस्यार्द्धपल कपां वा प्रच्रिप्यः, विरेचेन तु कर्त्तव्ये प्रचुरत्वमनयो , अत्यन्तवद्धकेषि तु मोम्बेरीव काथ करवा गुग्गुलुमात्र प्रिच्य वृद्धा व्यवहरन्ति ॥ ३३ ॥

परएडतैलं दशमूलिमश्रं

गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा ।

निहन्ति वातोटरशोथश्रलं

काथः समूत्रो दशमूलजञ्ज ॥ ३४ ॥

परगडतैलिमित्यादि--एरगडतैलभन्नेपादरामूलकाथ इत्येकी योग , ग्रीमूत्र-प्रवेपात् त्रिफलाकाथ इति दितीयः, अत्यन्तवद्धकोष्ठे तु गोमूत्रेरैयन त्रिफलाकाथ कार्य्य इति वदन्ति । एव गोमूत्रप्रचेपाद्गोमूत्रेख वा दशमूलकाथोऽपीत्याहु: ॥३४॥

पुनर्नवानिम्वपटोलशुएठी-

तिक्रामृतादावभयाकपाय ।

सर्वाद्गशोथोद्दकासग्रल-

श्वासान्वितं पाएडगदं निहन्ति ॥ ३४ ॥

पुनर्नवेत्यादि ---स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

पुनर्नवां दार्वभयां गुङ्कचीं

पिवेत् समूत्रां महिपात्तयुक्ताम्।

त्वग्दोपशोथोद्रपाग्हरोग-

स्थौल्यप्रसेकोद्ध्वंकफामयेषु ॥ ३६॥

पुनर्नवामित्यादि — पुनर्नवादीना चूर्ण गुग्गुलुसयुक्त गोमूत्रेण पेयम्, तथा च तन्त्रान्तरम् — गामूत्रेणाथवा दारुवर्णाभूचेतकीरजः । पिवेद् गुग्गुलुसयुक्त रोाथो- टरविनाशनम् " इति । अत्र चेतकी हरीतकी । गुग्गुलुश्च मिलितचूर्णमम इत्याहु । अन्य तु पुनर्नवादीना काथ गोमूत्र गुग्गुलुश्च प्रक्षित्य व्यवहरन्ति ॥ ३६ ॥

गोमूत्रयुक्तं महिपीपयो वा चीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम्। चीरात्रभुक् केवलमव गव्यं

मूत्रं पिवेद्वा श्वयथूदरेषु ॥ ३७॥

गोमूत्रेत्यादै।—चीर गवा वा त्रिफलाविमिश्रामिति त्रिफलाया काथः कल्को वा। चीरान्नमुगिति चीरमात्रेणात्रमुक्॥ ३७॥

पुनर्नवा दार्वमृता पाठा विल्वं श्वदंष्ट्रिका।

गृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यश्चित्रकं नृषम्॥
समभागानि चूर्णानि गवां मूत्रेण घा पिवेत्।

यहुप्रकारं श्वयशुं सर्वगात्रविसारिणम्॥

हन्ति शोथोदराण्यष्टौ व्रणांश्चेवोद्धतानपि॥ ३८॥

पुनर्नवेत्यादी--विल्वस्य मूलम् । शोथोदराख्यष्टाविति सशोधान्यष्टा-चुनराखीत्यर्थः ॥ ३८ ॥ पुराणं माणकं पिण्ट्वा द्विगुणीकृततएडलम्।
साधितं नीरतोयाभ्यामभ्यसेत् पायसन्तु तत्॥
हन्ति वातोदरं शोथं ब्रह्णीं पाएडतामपि।
सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्यय ॥ ३६॥

पुराणिमत्यादि —पुराणमायानस्य मूल पलमात्र टरदिनतितगडुलस्य पलद्वय चीरतीयाच्या समाम्या साधियत्वा पायम कार्य्यः । ऋत्युपयोगेऽपरमऋन्यब्जन नाक्षीयादित्याहु । योगोऽय शोथमात्रेऽपि प्रभवति ॥३६॥

दशमूलपद्पलकं घृतम्

दशमूलतुलार्द्धरसे सत्तारैः पश्चकोलकैः पलिकैः । सिद्धं घृतार्द्धपात्रं द्विर्मस्तुकमुद्दरगुल्मझम् ॥ ४० ॥

दरामूलपट्पलके दरामूलस्य तुलाई पञ्चारात्पलानि, तस्य काथ इत्यर्थः। धनन्याईपात्रमहांदक प्रस्थदयमित्यथः । दिमंन्तुकमिति धनमेपस्य दिगुण मित्त्वत्यर्थं । चरकोक्तदरामूलपट्पलकेऽपि दि राष्ट्र प्रस्थेन तथाईपालकैरित्यनेन च योज्य । तेन पिप्पल्यादीना दिगुणाईपर्ल पट्पलानि भवन्ति तथा प्रस्थेन च दिःराष्ट्रसम्बन्धात् प्रस्थदय मवतीति एकवाक्यता बोध्या । ननु क्रियाभ्यावृत्तानेव सुच्प्रस्थयो दृश्यते न तु अभ्यावृत्तिमात्रेणैव, दिर्ष्टमवत्सरवारसुन्दरीत्यादी क्रियाभ्यावृत्ति विनापि सुच्प्रस्थयस्य दर्शनात्॥ ४०॥

चित्रकषृतम्

चतुर्गुणे जले मूत्रे डिगुणे चित्रकात् पले। कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सत्तारं जठरी पिवेत्॥ ४१॥

चतुर्गुण इत्यादि — अत्र मचारमित्यनेन यवचारस्यापि चित्रकवर पलमेक देवम्, अत्रार्थे तन्त्रान्तर यथा 'अग्निचारपलाम्या दिर्मूत्र चतुर्जलञ्च प्रतप्रस्थम्' इति ॥ ४१॥

विन्दुघृतम्

श्रकेसीरपले द्वे च स्तुहीचीरपलानि पट्। पथ्या कम्पिन्नक श्यामा सम्पाकं गिरिकर्णिका॥ नीलिनी त्रिवृता दन्ती शिक्क्षनी चित्रकन्तथा।
पतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थ विपाचयेत्॥
त्राथास्य मिलने कोष्ठे विन्दुमात्रं प्रदापयेत्।
यावतोऽस्य पिवेद्विन्दूंस्तावद्वारान् विरिच्यते॥
कुष्ठं गुलममुदावर्त्तं श्वयंथुं सभगन्दरम्।
शमयत्युदराण्यप्रौ वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा॥
पतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्को विरिच्यते॥ ४२॥

श्रकेचीरेत्यादि—श्यामा श्याममूला त्रिवृत् । गिरिकर्थिका स्वतापराजिता, नीलिनी नीलवृद्धा, शक्षिनी सेतबुद्धा । श्रत्र पाकार्थं जल चतुर्श्य देयम्, श्रतथन काचित् वृन्दसग्रहे दृश्येत 'स्नुद्यकेयोस्तु पयसा पाकस्यानुपपित्तः । जल चतु-र्गुग्य देय पाकार्थं विन्दुसिपिषि ' इति । मात्रा तु श्रस्य कोष्ठानुरूपा, माषकमेक दय वा प्रचरति । मलिन इति मलबहुले ॥ ४२ ॥

दिधमण्डाद्यं घृतम्

द्धिमग्डाढके सिद्धात् स्तुक्कीरपरिकल्कितात्।

घृतप्रस्थात् पिवेन्मात्रां तद्वज्जठरशान्तये॥

तथासिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुग्गे पचेत्।

स्तुक्कीरपलकल्केन त्रिवृताषद्पलेन च॥ ४३॥

दिषमण्डेत्यादि—तद्दिति पूर्वोक्तप्रकारेणोाश्यताद् इतात् । चरेक हि 'चीरद्रोण सुधाचीरप्रसार्द्धमहित दिष' इत्यादि । पूर्वयोगे चीरद्रोणे सुधाचीर-प्रसार्द्ध प्रचित्य दिष करणीयं, ततस्तदिष माथेत्वा छत सम्पादनीयमिति प्रकार उक्त इति । तथा सिद्धमित्यादि—श्रत्रापि पूर्वोक्तप्रकारिनिष्पादितदिषमन्यनिसद्ध छतमिति तथा शन्दार्थ । एतयोर्धतयोरनुपान तथा विरेकान्तरीयो विषिश्च चरकोक्त हवानुसरणीय इति ॥ ४३॥

नाराचघृतम्

स्तुक्ज्ञीरदन्तीत्रिफलाविडङ्ग-सिंहीत्रिवृश्चित्रककलकयुक्तम् । घृतं विपकं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याच्चमथाईकर्षम् ॥ पीत्वोष्णमस्मोऽनुपिवेद्विरिक्ते पेयां सुखोष्णां वितरेद्विधिष्ठ । नाराचमेतज्जठरामयाणां व युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिप्टम् ॥ ४४ ॥ इत्युदर-चिकित्सा ।

स्तुक्त्रीरेत्यादौ--सिंही करटकारी, युक्तयोपयुक्तमिति कोष्ठाविभवलापेत्तव इत्यर्थ ॥ ४४॥

इत्युदरचिकित्साविवृति ।

अथ प्रीह-यक्तचिकित्सा

यमानिकाचित्रकयावशूक-पड्झिन्थदन्तीमगधोद्भवानाम् ।

सीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्ण-

मुज्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥ 🗸

सीं बबुद्धथा उदरस्य सम्मवादनन्तर सी इचिकित्सामा इयमानिकेत्याहि— पद्मन्यि पिप्पलीमूल उक्त हि रत्नकोषे—' मन्यिक पिप्पलीमूल पट्मन्थि चटका शिर दिता । १॥

पिष्पर्ली र्किश्चकचारमाचितां सम्प्रयोजयेत्। गुल्मसीहापद्दां चिह्नदीपनीश्च रसायनीम् ॥ २ ॥ पिष्पलीमित्यादि—किंशुक पलाशस्त्रत्वारोदके सप्तथा मानिता पिष्पल पिष्पलीवर्दमानक्रमेण प्रयोजयेत्, दुग्धपानमध्यत्रोपदिशन्ति वृद्धा ॥ २ ॥

विडङ्गाज्याग्निसिन्धृत्थशक्त्व् दग्ध्वा चेचान्वितान् । पिवेत् सीरेण सञ्चूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥ ३॥ विडेक्कत्यादि —विडक्कादांना चूर्णं धताक कृत्वा अन्तर्भूम दाहयेत्। तत मन्त्रूप्यं चीरेण सह पिनेत्। अन्ये तु कपाले कृत्वा एत्रमेव देहत् न पुनरन्तर्भूम-मित्यादु । व्यवहारः पूर्वेणव ॥ १ ॥

> तालपुष्पभवः सारः सगुडः प्लीहनाशनः। रोहीतकाभयाकाथः कणात्तारसमन्वितः॥ ४॥

तालपुष्पेत्यादावाप्यन्तर्भूमचार — सयुष्ठ इति समगुष्ठ । क्षारस्य च माषक-चतुष्टयेन व्यवहारः ॥ ४ ॥

> चारं वा विडक्रण्णाभ्यां पूतिकस्याम्लनिस्नुतम्। प्लीहयकृत्प्रशान्त्यर्थं पिवेत् प्रातर्यथावलम्॥ ४॥

चार वेत्यादि—पूतिकस्य लाटाकरअमूलस्य चारम् । अम्लनिस्तुतिमिति अन्ले काि कि निस्तुत सप्तथा परिस्तुत पूतिकरअचार विडलवणापिष्पलीचूर्णप्रचेपेण पिवेत् । वाग्मेट्टिप्युक्तम् ' अम्लम्तुत विडकणाचूर्णां व्याक्यातम् । द्वात्रीति । वाग्मेट्टीका-यामिप अम्ले काि काादिमि । परिस्तुतिमिति व्याख्यातम् । द्वाश्रुतेऽपि ' अम्लस्तुत पूत्रीकरअचार विडलवणपिष्पलोप्रगाड पाययेत् ' इत्युक्तम् । तेन अम्बुति जले निस्तुतिमित्यसदर्थं एव । वाशन्य पूर्वयोगापेचया ॥ ५ ॥

पातव्यो युक्तितः चारः चीरेगोदधिश्रक्तिजः। पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिष्पल्यः प्लीहराान्तये ॥ ६॥

पातव्य इत्यादी—उद्धिशुक्तिभुक्तास्फोट । युक्तित इति वयोवलाद्येद्या । पयसा वत्यादि क्षेकार्ढ वृन्दे पठ्यते, तद्शंनाच्चक्रमग्रहेऽपि केचित् पठिन्त, किन्तु वृन्दे पिप्पलीवर्द्धमान न पठ्यते, तेन तत्र तत्पाठो युज्यत एव, इह तु अग्रे पिप्पलीवर्द्धमान वक्तव्यमेविन पयसा वेत्यादि क्षेकार्द्धमत्र न पठनीयमेव । अतएव निश्चलेनापि नोपन्यस्तमिति ॥ ६॥

भल्लातकामयाजाजीगुडेन सह मोर्दकः। सप्तारात्राजिहन्त्याशु प्लीहानमतिदार्वग्रम्॥७॥, भक्षातेकत्यादि—स्पष्टम्।

शोभाञ्जनकिर्य्यूहं सैन्धवाशिकणान्वितम्॥ =॥ प्रााप्तारयुक्तं वा यवत्तारं प्रयोजयेत्॥ ६॥ ।

शोभाषानेत्यादौ—निर्यूहः काथ, अग्निश्चित्रकः । पलाशचारयुक्तः वेति पलाशचारोदकयुक्तम्, उक्तः हि सुशुते 'प्रस्तुतेन वा पलाशचारेण यवचारम् ' इति ॥ ५—६ ॥

तिलान् सलवणांश्चेव घृतं षट्पलकं तथा ॥ १० ॥ प्लीहोहिएां क्रियां सर्वा यक्तत सम्प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

तिलान् मलवणानिति कृष्णतिला एव ससैन्धवा मस्याः, भ्रन्य तु तिल-नालचारोदक सलवण पेयमित्याहु । न्यवहारस्तु पूर्वेणैव । एत पट्पलकमिति क्वरोक्षम् ॥ १०—-११ ॥

> त्तशुनं पिष्पत्तीमूत्तमभयाश्चेव भक्तयेत्। पिवेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये॥ १२॥ प्लीहजिच्छरपुद्धाया कल्कस्तक्रेण सेवितः। शरपुद्धैव सञ्चर्य जग्धा पेयाभुजाथवा॥ १३॥

तशुनिमित्यादौ--गोमूत्रगगङ्पेणानुपानम् । शरपुक्षाया इति शरपुखा मूलस्य ॥ १२---१३ ॥

> रोहीतकाभयाचोदभावितं मूत्रमम्बु वा । पीतं सर्वोदरप्लीहमहार्शःकिमिगुल्मनुत् ॥ १४ ॥

रोहितकेत्यादी—सोदंश्चूर्षम्, गोमूत्र विरेकार्थम्, अम्बु तु शमनार्थमिति व्यवस्था ॥ १५ ॥

द्धा भुक्तवतो वामवाहुमध्ये शिरां भिपक् । विध्येत् प्लीहविनाशाय यक्तन्नाशाय दित्तेणे । प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रवृत्तये ॥ १६ ॥

दिशत्यादौ —दिधमोजन सोखितोत्केशनार्थम् । वामवाहुमध्य इति कूर्परसन्धे-रधस्तात् । के इस्वदावप्यत्र काय्यौ सुकृतमवादात् । सीहान मर्दयेदिति शिराया विद्धाया, तेन सीहो दुष्टरक निःसरीत ॥ १६ ॥

माणाद्यगुडिका

माण्मार्गामृतावासास्थिरा चित्रकसैन्धवम् । नागरं तालखण्डश्च प्रत्यत्रन्तु तिकार्षिकम् ॥ विडसौवर्चलत्तारिष्णल्यश्चापि कार्षिकाः । पतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूलस्याहके पचेत् ॥ सान्द्रीभूते गुडीं कुर्याद्वा तिपलमान्तिकम् । यत्कुप्लीहोद्रहरो गुल्मार्शोग्रह्णीहर् ॥ योग परिकरो नाम्ना श्रिसन्दीपन पर ॥ १७॥

मार्थेत्यादी—मार्गेऽपामार्गः, स्थिरा शालपर्थी प्रत्यत्रमित्यभिनवम् । त्रिकापिकामिति प्रत्येक । परिकरो नाम्नेति परिकरो विरेकस्वत्कारकत्वात् परिकरो योग , उक्त हि "मेवेत् परिकरः सह्वे समारम्मविरेकयोः" इति ॥ १७॥

पिष्पली नागरं दन्ती समांशं द्विगुणाभयम्। चूर्णे पीतं विडाद्धींशं सीहन्नमुष्णवारिणा॥ १८॥

पिप्पलीत्यादी--द्विगुणामया इत्येकमागापेच्या द्वैगुण्यम् । एव विङ्लवणस्याप्येकभागापेच्याद्वीमागत्व ह्रेयम् ॥ १ = ॥

पिप्पलीवर्द्धमानानि

क्रमचुंद्रया दशाहानि दशिपणिलकं दिनम् । वर्द्धयेत् पयसा सार्द्धे तथैवापनयेत् पुनः ॥ जीर्षेऽजीर्थे च भुक्षीत षष्टिकं ज्ञीरसार्पेषा । पिण्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनः ॥ दशपैष्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षद् प्रकीर्तितः । यित्रपिष्पलिपर्थ्यन्तः प्रयोग सोऽवरः स्मृतः ॥ बृंह्यं वृष्यमायुष्यं सीहोद्दिनाशनम् । वयस स्थापनं मेध्यं पिष्पलीनां रसायनम् ॥ पञ्चिपिष्पलिकश्चापि हश्यते वर्द्धमानकः ॥

ţ,

पिष्टास्ता विलिभिः पेया श्टना मध्यवलैर्नरैः । शीतीकृता हस्ववलैर्देहदोषामयान् प्रति ॥ १६ ॥ /

दशिम. पिप्पलीवर्द्धमानमाह क्रमेत्यादि—दश पिष्पल्यः यत्र वर्द्धन्ते तिहन दशिप्पलिकम्, तेन दश पिष्पल्यः प्रत्यह वर्द्धनीया दल्यथः । उतः हि 'दशिभरं-रामिः शश्वत पिष्पलीभिस्तु वर्द्धयेत्'' इति । अत्रश्चीनिवशितिदिनेषृद्धिए।निक्रमेण पतेनैव सहस्र पूर्णं भवति । पयसा सार्द्धमित्यनेन पयमोऽपि वृद्धिरित्याषु, । केचित्तु चूर्णीकृता इत्य श्रीतिष्ठता इति पठित्वा शीतकपार्योकृता इति व्याख्यानयन्ति । पिष्पलीवर्द्धमानस्य त्रैविध्यमाह दश्यैप्यालिक इत्यादि । पट्प्रकीतित इति पड्युद्ध्या आवार्य्येरुक इत्यर्थ । त्रिपिष्पलिपर्यंन्त इति तिस्तः पिष्पल्य पर्य्यन्ते यस्य स तथा तेन पिष्पलीत्रयेण यत्र दृद्धि स प्रयोग उच्यते, तत्रैव प्रयोगसमाप्ती पिष्पलीत्रयाव-स्थानम् । पद्मिमे. पद्मिमेः पिष्पली।भवृद्धिस्तु व्यविष्यते इति प्रतिपाद्यितु चक्रः स्ववचनसुपन्यस्यति पद्मिपप्रलिक इत्यादि । विदेहेऽप्युक्तम्—''दशिभर्दशिमें शक्षत्र पिष्पली।भित्तु वर्द्धयेत् । पञ्चिमे. पञ्चिमविषि शतादवतरेत् पुन '' इति ॥ १ ह

पिप्पलीचित्रकघृतम्

पिष्पर्ली चित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत्। घृतं चतुर्गुणक्तीरं यक्तस्रीहोदरापहम् ॥ २० ॥

पिप्पलीत्यादि—अत्र पिप्पली च चित्रकन्चेति समासी न कार्यः, तथा सित पिप्पलीमूलरैयन ग्रहण स्यास्, तच न व्यवहारसिद्धम् ॥ २०॥

लोकनाथरसः

्र श्रद्धस्तं द्विधा गन्धं जल्वे कुर्याच कज्जलीम् । स्ततुल्यं जारिताभ्रं सम्मर्धं कन्यकाम्बुना ॥ गोलं कुर्यात् ततो लोहं ताम्रश्च द्विगुणीस्तम् । काकमाचीरसै पिष्ट्वा गोलं ताभ्याञ्च वेष्टयेत् ॥ वराटिकाया मसाथ रसतिस्रगुणं क्षिपेत् । ततस्य सम्पुटं स्तवा मूपायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ तन्मध्ये गोलकं स्तवा शरावेण पिधत्रिप्य । पुटेद् गजपुटे विद्वान् स्वाइशीतं समुद्धरेत् ॥
शित्रं सम्पूज्य यत्नेन द्विजांश्च परितोषयेत् ।
खादेद्रक्षिद्वयं चूर्णं मूत्रश्चापि पिवेदनु ॥
मधुना पिष्पलीचूर्णं सगुडाम्बुद्दरीतकीम् ।
श्रजाजीं वा गुडेनैव मत्त्येदस्य मानतः ॥
यहद्गुल्मोद्दप्लीदृश्वयथुज्वरनाशनम् ।
विद्वमान्द्यश्रमनं सर्वान् व्याधीन् नियच्छृति ॥ २१ ॥

लोकनाथरसे—शुद्धस्त विशुद्धपारद, रसशास्त्रोक्षमर्दनाष्ट्रसस्कारसंस्कृतिमिति यावत् । उक्त च ' विशुद्धो रसराजस्तु सत्य पीयूपसोदर रसो वैधैर्यमोऽयमपरः स्मृतः "॥ इति रसतरिक्षययाम् । विशुद्धिश्च सप्तकन्चुक-परिहाराय नैसींगेकदोषापहरणाय च कियते ॥ अष्टी सस्कारास्तु रसशास्त्रे द्रष्टव्या । श्रथवा जम्बिरसमर्दितात् हिङ्गुलात् अर्ध्वपातनेन रसा ब्राह्य:। स च विशुद्ध एव। दिथा गन्धमिति पारदस्यैकी मागः, गन्धकस्य चं दी मागी प्राक्षी । गन्धकमिप नवनीताख्य ग्राह्म यद्धि 'श्रामलासार' इति नाम्ना ख्यातम् । तचापि सम्यग्विशुद्ध रसायने प्रयुज्यते । गन्धकशोधनविधिर्यथा—साज्य माएडे पयः चिप्ता मुख वस्त्रेण वन्ध्येत् । तत्पृष्ठे गन्धक चिप्त्वा शरावेण पिधापयेत् ॥ माण्ड निचिप्य भूम्यन्तरूषे देय पुट लघु । ततः चीरे द्वत गन्थ शुद्ध योगेषु योजयेद ॥ अथवा---लौहपात्रे विनिचिप्य एतमग्रौ प्रतापयेत् । तप्ते एते तत्समान चिपेद् गन्थकज रजः । विद्रुत गन्धक दृष्ट्वा दुग्धमध्ये विनिधिपेत् । एव गन्धकशुद्धि स्यात् सर्वरोगेषु योजयत् ॥ सत् गन्थ च पापायमये खल्वे एकत्र सम्मर्ध कञ्जली कुर्यात् । सत-तुल्यमिति पारदतुल्य, पक्तमागमित्यर्थः । जारिताम्र यथानच्छोधनपुटननिष्पन्नं श्रम्रकम् । कज्जली श्रम्रकञ्च एकत्र कन्यकाम्बुना कुमारीरसेन सम्मर्ध गोल कुर्यात् । ततश्र लीहमिति, लीहं मस्म, नाम्रमिति अमृतीकृत नाममस्म । द्विगुणितमिति एथक् पृथक् स्ताद्द्रिगुश्वितम् । ताम्यामिति लौहताम्राभ्या एकत्र काकमाचीरसिपष्टाभ्याम्। रसताक्षिगुरा वराविकामस्य गृहात्वा, प्रन्थान्तरदर्शनात् जम्मरिनीरेण मर्दयेत्। ततश्च सम्प्रटमिति सम्प्रटाकार कृत्वा मूषायुग्म प्रकल्पयेत् । शरावेखेति शरावसम्प्रटेन । तन्त्रान्तरेष्वय वृहल्लोकनाथ इति नाम्ना प्रसिद्ध । पर तत्र तत्र वराटिकामस्मनो माने भेदो दृश्यते । रमेन्द्रसारसम्रहे तु-स्ताच द्विगुण गन्ध वराटीसम्भव रज । पिष्टवा जम्बरिनीरेख मूबायुग्म प्रकल्पयेदित्युक्तम् । अत्र द्विगुखमिति । अत्र गन्ध-

मिति पाठोऽमाधुर्नान्यत्रोपलन्मात् । तत्साने देय, कार्यं वा पठनीयम् । मैपज्य-रत्नावल्या "स्तान्नवगुण् देय वराटीमम्मव रजः" इति पाठ समुपलम्यते अधुना तु भपज्यरत्नावलीकारमतमनुस्त्यंव व्यवहार प्रचरित । तथा च वराटीपर्यन्ताना भपजाना एकत्र कन्याम्बुना काकमाचीरमेन च क्रमश सम्मार्दिनाना गोलक क्रियते । नच शरावसम्पुटे निकद्वथ पन्यते। पाचनञ्च लबुपुटेनैव । अतप्वास्मामि सस्कृताया भैपज्यरत्नावल्या गजपुटे इत्यत्र लबुपुटे इति पाठः स्त्रीकृत इति । "अस्य मानत" इत्यत्र ' तुल्ययोगतः ' " अनुपान्त " इति च पाठान्तरद्वयमुपलम्यते । ॥२ १॥

पिप्पलीघृतम्

पिष्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं चीरचतुर्गुणम् । पचेत् प्लीहाग्निसाटादि-यक्तद्वेगहरं परम् ॥.२२॥ पिष्पलीश्त-स्पष्टम् ॥ २२॥

चित्रकघृतम्

चित्रकस्य तुलाकाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
श्रारनालं तद्द्विगुणं द्धिमण्डं चतुर्गुणम्॥
पञ्चकोलकतालीशकारैलेवणसंयुतैः।
द्विजीरकनिशायुग्मैमीरचं तत्र दापयेत्॥
प्लीद्दगुल्मोद्राध्मान-पाण्डरोगाकचित्वरान्।
वस्तिहत्पार्थकट्यूक्युलोदावर्त्तपीनसान्॥
दृन्यात् पीतं तद्शोंभ्रं शोथभ्रं विद्वदीपनम्।
वलवर्णकरञ्जापि मस्मकञ्च नियच्छति॥ २३॥

चित्रकष्टते-तुलाकाय इति पष्टीतत्पुरुष । आरनाल तद्दिगुणमिति धता-पेचया, ण्व दिषमण्डस्यापि चातुर्गुण्यम् । दिषमण्डो दिषमस्तु, चारो यवचार , लवरा सैन्यनम्, अन्ये तु यवचार माचिचार , लवण पञ्चलवणमाहु ॥ २३॥

रै अस्य टीकाकारकृता टीका नास्त्यत सशोधकेन स्वकृता टीकात्र सन्तिवेरिता ॥

रोहीतकघृतम्

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविश्वतिः। कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत्॥ पलिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वश्चापि तुल्यया। रोहीतकत्वचा पिष्टैर्षृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ प्लीहाभिवृद्धि शमयेदेतदाशु प्रयोजितम्।

तथा गुल्मज्वर्श्वास-क्रिसिपाएइत्वकामलाः ॥ २४ ॥
रोई।तकेत्यादि—वाग्मटस्य । अष्ठा इत्यत्र कृत्वेति वाग्मटे पठ्यते । रोईीतको रोइड इति ख्यातस्तरुस्तस्य पञ्चिवशतिपले कोलप्रस्थद्वयेन मिलित्वा
मप्तप्रचाशत्पलानि काथ्यानि स्यु , तेष्वष्टगुण जलमुत्सर्गसिद्ध देयम् । पादशेषथ्य
कषायो द्विपलाधिकचतुर्दशशरावा । वंद्यप्रसारके तु योडशगुण जलमुक्तम् । अन्य
तु जलद्रोण दस्ता शपमादक कपायमित्याहु । तै सर्वश्चापि तुल्ययेति पञ्चकोलैस्तुल्यया पञ्चपलमानया इत्यर्थ । रोई।तकत्वचा पिष्टयेति योज्यम् ॥ २४ ॥

महारोहीतकघृतम्

रोहीतकात् पलगतं चोदयेद्वदराहकम्।
साधियत्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥
तिस्मन् द्यादिमान् करकान् सर्वास्तानचसम्मितान्॥
व्योपं फलित्रकं हिंगु यमानीं तुम्वरु विडम्।
प्रजाजीं कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च॥पुर्नवां विशालाश्च यवचारं सपौष्करम्।
विडक्नं चित्रकश्चेव हवुणं चिवकां वचाम्॥
पतैर्घृतं विपकन्तु स्थापयद्भाजने ग्रुमे।
पाययेत् त्रिपलां मात्रां व्याधि वलमचेदय च॥
रसकेनाथ यूपेण पयसा वापि भोजयेत्।
उपयुक्ते घृते तिस्मन् व्याधीन् हन्यादिमान् बहून् ॥
यक्तसीहोदरश्चेव पार्श्वश्चलमरोचकम्।
विवन्धश्चलं शमयेत् पाएहरोगं सकामलम्॥

छुर्घतीसारशमनं तन्द्राज्वरिवनाशनम् । महारोहीतकं नाम्ना प्लीहमन्तु विशेषतः॥ २४॥ इति प्लीह-यक्तचिकित्सा।

~

महारोहीतकप्रते—वदरचूर्णस्य झाढक चतु पष्टिपलानि, अत्र पर्केनय जल-द्रोणेन वदरचूर्णाढकसिहतस्य रोहीतकपलशतस्य काथ करणीय, तथैव निर्दिष्ट त्वात्। तन्त्रान्तरेऽपि—'रोहीतकशत चुण्ण कोलचूर्णाढकान्वितन्। नि काथ्य सिललद्रोणे चतुर्मागिश्यते रस 'इति। अन्ये तु जलस्याल्पत्वमाशद्भ्य द्रोणपदमा-कृत्या रोहीतकपलशतिमत्यनेन तथा वदराढकिमित्यनेन च प्रत्येक योज्यम्। पतैनैकेन जलद्रोणेन रोहीतकपलशतस्य काथ, अपरेण वदराढकस्येत्याहु, व्यवहारोऽप्यनेनैव। कृत्यालवण् सीवचलमत्र आयुर्वेदसारे रुचकपाठात्॥ २५॥

इति सोहयकृश्चिकित्सा-विषृति ।

अथ शोथचिकित्सा।

श्चरितं पुनर्नवैरएड-पञ्चमूलश्दतं जलम् । चातिके श्वयथी शस्तं पानाद्वारपरित्रहे । र् दशमूलं सर्वथा च चातशोथे विशेषत ॥ १,॥

जत्तेषसाधर्म्यादनन्तर रो।यिचिकित्सामाइ । शुग्ठीत्यादी--पञ्चमूल महत् वृद्धन्यवद्यारात् । पानाद्यारपरियद्व इति श्रव्यपानमस्कारे । सर्वथिति कल्ककाथादि-विधया ॥ १ ॥

सीराशन पित्तकृते अथ शोथे निवृद्गुङ्ग्चीत्रिफलाकृषायम्। पिवृद्ग्वं मूत्राविमिश्रतं वा

प्रिपण्डिंचनेद्विचय-शुण्डीसिखन्तु, पैत्तिके॥ २॥ प्रिपण्डिंचनेद्विचय-शुण्डीसिखन्तु, पैत्तिके॥ २॥

श्रमया दारु मधुकं तिक्का दन्ती सिपण्यली।
पटोलं चन्दनं दावीं त्रीयमाणेन्द्रवारुणी ॥
एषां क्वाथः ससिपिष्कः श्वयथुज्वरदाहहा।
विसपितृष्णासन्ताप-सिन्निपातविषापहा ॥ ४॥

पृक्षिपर्यात्यादि—स्पष्टम् । श्रमयत्यादी—सपि. प्रद्वाच्यम् ॥ ३ ॥ ४ ॥ श्रीतवीर्व्यहिमजलैरभ्यद्वादिश्च कारयेत् ४ ॥

शीतनीर्थेरिति शीतनीर्था काकील्यादिशारिवाधुत्पलादिगणाः तत्कृते केहादिमिरम्यङ्गादीन् कल्पयेत् । हिमजलैरिति शीतलजलैः ॥५॥

पुनर्नवाविश्वात्रिवृद्गुङ्क्ची-

सम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम् ।

शोथे कफोत्थे महिषात्तयुक्तं

म्त्रं पिबेद्दा सलिलं तथैषाम् ॥ ६॥ 🎺

कैभिकशोथिनिकित्सामाह पुनर्नवेत्यादि — पुनर्नवादीना कल्क गुग्गुलुयुक्त गोमूत्रेण विवेद । पिवेदा सलिल तथेषामिति एषा पुनर्नवादीना काथ वा गुग्गुल गोमूत्रे प्रचिप्य पिवेद । महिषाची गुग्गुल ॥ ६ ॥

> कफे तु रुष्णासिकतापुराण-पिरायाकशिश्रत्वगुमाप्रलेप । कुलत्थश्चराठीजलम्त्रसेक-

श्चरडागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥ ७॥

कफे लित्यादी सिकता बाहुका, पुरायापिण्याकः पुरायासर्पपछाले , ष्ठमा आतसा, पाममूंत्रपिष्टैलेपः । उक्तञ्च वाग्मेट 'कृष्णापुरायापिण्याकशिगुत्वक्सिक-तातसी । प्रलेपोन्मर्दने युक्त्यात् सुखोष्णा मूत्रकितता ''। कुलत्यशुण्ठिकाथेन सथा गोमूत्रेण च कुलत्यशुण्ठिकियेन सेकः कार्यः । उक्त हिं वाग्मेट ''स्नान मूत्राम्मिस सिद्धे कुष्ठनकारिचित्रकै । कुलत्यनागराभ्या वा'' इति । चण्डा चार-पुष्पी । अनुलेपन स्नानानन्तरमेव लेपनिति चक्तः ॥ ७॥

श्रजाजिपाठाघनपश्चको**ल**-

व्याद्रीरजन्यः सुखतोयपीताः। 🚭

शोथं त्रिटोपं चिरजं प्रवृद्धं निघ्नन्ति भूनिम्बमहौपघे च ॥ ८ ॥

श्रजाजीत्यादि—नाग्मटन्य । तेषा चूर्णमुप्णादकेन पेयम् । एव भूनिन्यनहीषध्योगिष । यद्योष चरकेऽलिन् योगे चिवकारथाने गजिषप्त । पद्मते, तथापि
तत्र चिवकेन प्रात्मा, गजिषप्तशिष्ट्येन चिवकारथा अप्यभिधानात् , यदुक्तः
निधर्यः विवका कोलवल्ला च हन्तिषिप्यल्यपीष्यते ' इति । जतुकर्णादाविष
चिवकेन पद्मते, तस्मात् चन्येन युक्ता । एनेन 'पिप्पल्यादिगजो नाम्ना चरके
पद्मते त्वम् । योगेऽत्र चिवकारथाने प्राह्मा मातद्गिष्पत्ती ' इति वृन्दोक्तमतमपास्मन् । नतु चरके विदोष गोषस्यामाध्यत्वेनोक्तत्वात् कथ त्रिदोष शोध
प्रानीत्युक्तम् । नैवम् । चरके अहीनमामम्यत्यादिना ग्रन्थेनैकदोषस्य तथा नवस्य
च मुक्तमाध्यत्वाभिषानेन दिदोषजात्रियोणजयोस्तथा चिरकस्य च कुन्छूमाध्यत्ववोक्त न पुनरमाध्यत्विमिति ॥ = ॥

पुनर्नवानिम्वपटोत्तशुग्डी-तिक्षामृताटार्वभयाकपाय । सर्वोद्दशोधोटरकासगृत-

श्वासान्वितं पाग्डुगदं निहन्ति ॥ ६॥

पुनर्नवेत्यादि—तिक्ना कडुकी, दारु टेवटारु, वृन्दे त्वय योग शोधोदरे पठयते ॥ ६ ॥

श्रार्द्धकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः। श्रजानीराशिनां शीव्रं सर्वशोथहरो भवेत्॥ १०॥ भावकम्पेत्यादि—स्पष्टम् ॥ १०॥ पुनर्नवादास्श्रुएठीकाथे मूत्रे च केवले। दशमूलरसे वापि गुग्गुलुः शोथनाशनः॥ ११॥ पुनर्भवेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ११॥

विल्वपत्ररसं पूतं सोपणं श्वयथौ त्रिजे। विद्सहे चैव दुर्नाम्नि विद्ध्यात् कामलाखिप ॥ १२ ॥ गुडिपेप्पिलशुएठीनां चूर्णं श्वयश्चनारानम्। श्रामाजीर्णप्रशमनं श्रूलझं वस्तिशोधनम् ॥ १३ ॥ पुरे। मूत्रेण सेन्येत पिष्पली वा पयोऽन्विता । गुडेन वामया तुल्या विश्वं वा शोधरोगिणाम् ॥ १४ ॥

सोषणमिति समिरचिम् । गुडेत्यादौ--गुड एकभागमम । पुर इति-पुर गुग्गुलु: । पिप्पली वा पयोऽन्वितिति पिप्पलीवर्द्धमानन्यायेन इतरकालकवद्दा पिप्पलीक् कल्क. पयसा सेच्य । विश्व वेति गुडेन तुल्यमित्यत्रापि योज्यम् ॥ १२-१४॥

गुडाईकं वा गुडनागरं वा
गुडाभयां वा गुडिपिष्पत्तीं वा ।
कर्षाभिवृद्धया त्रिपत्तप्रमाणं
खादेन्नरः पत्तमथापि मासम् ॥
शेथिप्रतिश्यायगत्तास्यरोगान्
सभ्वासकासारुचिपीनसादीन् ।
जीर्णेज्वराशीं प्रहणीविकारान्
हन्यात् तथान्यान् कफवातरोगान् ॥ १४ ॥

गुढाईक वेलादि—गुढाईकादयश्चत्वारो योगा एते तुल्यमागा सन्तः प्रितिदन मिलित्वा कर्षेया कर्षेया वर्द्धायितन्याः। एव द्वादराभिदिनेकिपल पूर्णते। ततिकिपल कृत्वा प्रत्यद्व पद्म मास वा यावत् खादेत्। किंवा प्रथमदिने कर्षमेक खादेत्, ततः कतिचिदिनानि कर्षस्यैवाभ्यास , तत परमपरकर्षं वर्द्धयेत्, तसापि पुनरभ्यासः। एव कर्षेया कर्षेया।भिवृद्धया यथा पद्मेया मासेन वा त्रिपल भवति तथा कार्यम् । श्रन्य तु बुवते पद्मपरोऽप्यथापिशब्दो मासमिल्यनन्तर इय , स च समुच्चयार्थः, तेन पद्म मासन्त्र ब्याप्य सार्द्धमास व्याप्यत्यर्थः। सार्द्धमासेन च त्रिपल कर्षोपयोगात् प्रभृति प्रत्यद्व माषचतुष्ट्याधिकाविधिना मवति । श्रसिन् व्याख्याने कर्षादारभ्य माषकचतुष्ट्यमेव वृद्धिनाधिका । व्यवहारोऽपीत्थमेव ॥ १५ ॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत्। सीहामयहरञ्जैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित्॥ १६॥

स्थलपद्ममय कल्कमिति — स्थलपद्म मायाकन्दः, स च पुरायो आहाः । कल्कमिति चूर्यम् ॥ १६॥ दारगुगगुलुगुगठीनां करको मूत्रेण शोथिजित् ॥ १०॥ वर्षाभूश्दक्षेवाभ्यां करको वा सर्वशोथिजित् ॥ १०॥ वर्षाभूश्दक्षेवाभ्यां करको वा सर्वशोथिजित् ॥ १०॥ वर्षाभृश्दक्षेवाभ्यां करको वा सर्वशोथिजित् ॥ १०॥ विद्यास्तभएटाकीकार्थं करवा समान्तिकम् । पित्वा शोथं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं विमम् ॥ १६॥ विद्यति—सिंहास्य वामकमूलम् । मण्टाकी कण्टकारी ॥ १६॥ भृनिम्वविश्वकरकं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाकाथः। श्रपहरति नियतमाग्रु शोथं सर्वोद्गगं नृणाम् ॥ २०॥ भृनिन्वत्यादी—पेय पुनर्नवाकाथः इत्यनुपानमिदम् । एतच पुनर्नवामूल-कर्पं निष्काय्य कार्यम् । अतोऽधिकमात्रया तु कर्षे भृरिमेपजलेनाग्निवधादिदोप स्वादिति । एव मर्वत्र कार्थनानुपान श्वेयम् ॥ २०॥

शोधनुत् के किलाज्ञस्य भस्म मूत्रेण वाग्भसा । जीरं शोधहरं दारुवर्षाभूनागरैः श्वतम् । पेयं वा चित्रकव्योप त्रिबृह्गरूप्रसाधितम् ॥ २१॥ शोधनुदित्यादि—अग्मेसत्यन्त एको योगः, मूत्रेण कर्फे, अग्मसेति पिते । श्वनित्यन्तो दितीयः । चित्रकेत्यादिरनुतीयः । अत्रापि चीरमिति योज्यम् ॥ २१

पुनर्नवामूलकापित्थदारु-

चित्रभोद्भवाचित्रकम्लासिद्धाः। रसा यवाग्वश्च पयासि यूपाः शोथे प्रदेया दशमूलगर्भाः॥ २२॥

पुनर्नवेत्यादी-किपित्थस्य फलम् । पुनर्नवादीनामर्द्धन्तः कृत्वा दशमूलस्यानु-रूप कल्क दत्त्वा रमादय साध्या इत्यर्थः ॥ २२ ॥

Ł

द्वारादिगुडिका चारद्वयं साञ्जवणानि चत्वा-र्थ्ययोरज्ञान्योपफलत्रिके च। सीपप्पलीमूलविडक्ससारं मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम्॥ कलिइ कश्चित्रकमूलपाठे

यष्ट्याह्नयं सातिविष पलांशम् ।
सिहङ्गुकर्षे तनुशुष्कचूर्ण
द्रोणं तथा मृलकशुण्ठकानाम् ॥
स्याद्मसनस्तत्सालेलेन साध्यमालोड्य यावद्धनमप्यद्ग्धम् ।
स्त्यानं ततः कोलसमाश्च मात्रां
कृत्वा सुशुष्कां विधिना प्रयुक्त्यात् ॥
सीहोदरिश्वत्रहलीमकार्शःपाण्ड्वामयारोचकशोधशोषान् ।
विस्चिकागुल्मगराश्मरीश्च
सश्वासकासान् प्रणुदेत् सकुष्ठान् ॥
सौवर्षेलं सैन्धवश्च विडमीद्भिदमेव च ॥
चतुर्लवणमत्र स्याज्ञलमष्टगुणं भवेत् ॥ २३॥

सारत्यादि—सारद्रयं यवसारमिननासारौ । लवणानि चलारीति सामुद्रविनेतानि । अयोरनो लोहसूर्णं मारितपुटिन बाह्मन् । पलारामिति प्रत्येकम् । अणुगुष्कसूर्णमिति शुष्कप्द्रमसूर्णमित्यर्थः तत्सिलिनेनिति, सारसिलेलेन सारद्वयादिसूर्णपेस्या चतुर्ग्णमेत्यर्थः तत्सिलिनेनिति, स्रार्थिलेलेन सारद्वयादिसूर्णपेस्या चतुर्ग्णमेत् अन्ये त्वष्टगुण्यमाहः । अत्र मृतकभस्मद्रोणे षड्द्रोणं वा नल दत्ता त्रिमागाविशिष्टमर्कंभागाविशिष्ट वा कार्य्यम्, ततः परिस्नाव्यम् ततः सारद्वयादिसूर्णापेसया चतुर्गुरं सारनल गृहीत्वा वक्तव्यम् । पाकास धनीमावे नाते सारद्वयादिसूर्णप्रसेप इत्याहः ॥ २३॥

पुनर्नवाद्यं घृतम्

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुपञ्चोपण्कारहरीतकीनाम् ।
कल्केन पक्कं दशमूलतोये
घृतोत्तमं शोधिनसूदनञ्च॥२४॥
पुनर्नवेत्यादौ-पञ्चोषणं पश्चकोलम् ॥ २४॥

खल्पपुनर्नवाघृतम्

पुनर्नवाकाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ॥ २४॥ पुनर्नवेत्यादि—स्पष्टम् ॥ २४॥

पश्चकोलाद्यं घृतम्

रसे विपाचयेत् सर्पि पञ्चकोलकुलत्थयोः। पुनर्नवाया कल्केन घृतं शोथविनाशनम्॥ २६॥

रस इत्यादि—रस काथ इत्यर्थः। पञ्चकोलकुलत्थयोरिति दिवचननिर्देशात. पञ्चकोलस्य मिलित्वा एको भाग , भगरश्च कुलत्थानामिति वदन्ति ॥ २६ ॥

शुर्ठीघृतम्

विश्वीषधस्य कल्केन दशमूलजले श्टतम् । घृतं निद्दन्याच्छ्लयशुं प्रद्वर्णी पाग्रहतामयम् ॥ २७ ॥ शुग्ठीघते—पाग्रहतामयमिति पाग्रहतोगम् ॥ २७ ॥

चित्रकाद्यं घृतम्

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः
सदीप्यकत्रयूपण्वेतसाम्ला ।
विल्वात् फलं दाडिमयावश्रकं
सपिष्पलीमूलमथापि चन्यम् ॥
पिष्ट्वाक्तमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वा घृतप्रस्ममथोपयुञ्ज्यात् ।
श्रशींसि गुरुमं श्वयथुञ्च क्रच्छुं
निहन्ति वहिञ्च करोति दीसम् ॥ २८ ॥

े सचित्रकेत्यादौ—दोप्यक जीरकमिति निश्चल , तन्न, 'यनानक यनचार यमाची पद्मकोलकम् , इति नाग्मटनचननिरोधात्। तस्मादीप्यकृमकमोदा। नेतसा-न्लोऽम्लेनेतस । निल्नात् फलमित्यत्र निल्नात् पलमिति न पाठ , नाग्मटे 'वाल-निल्मञ्च कर्षांशम् ' इत्युक्तत्वात् ॥ २८॥

चित्रकष्टतम्

द्यागतं साधु विमथ्य तेन।
दध्यागतं साधु विमथ्य तेन।
तज्ञं घृतं वित्रकम् लक्कं
तक्रेण सिद्धं श्वयशुद्रमग्र्यम्॥
त्रशींऽतिसारानिलगुल्ममेद्दांस्तद्धन्ति संवर्द्धयते च विद्वम्॥ २६॥

चीरमित्यादी—दध्यागतमिति दिधमावेन परिखतम् । तेनेति यथोक्षदिभ-मथनजातेन तक्रेखेत्यन्वयः । तज्ज वृत्तमिति यथोक्षदिभम् वृत्तमिति ॥ २३ ॥

माग्यकघृतम्

माणककाथकरुकाभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एकजं इन्द्रजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोद्दति ॥ ३०॥

माणकष्टते माणककाथार्थमष्टगुण जल देय न तु मृदुत्वाचतुर्गुणम्, तथा सित यवागृवत् काथ स्यादिति । अन्ये तु तन्त्रान्तरदर्शनात् माणककन्दस्य पल-शत तोयद्रोणे पक्त्वा गृह्णन्ति । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव । माणकन्द चार्द्रमेव गृह्णन्ति । इद्धा ॥ ३०॥

खलपद्मघृतम्

स्थलपदापलान्यष्टौ ज्यूषण्स्य चतुःपलम् । घृतप्रस्थं पचेदेभिः सीरं दत्वा चतुःपलम् । पञ्च कासान् हरेच्छीघं शोधञ्चेव सुदुस्तरम् ॥ ३१ ॥ स्थलपद्मष्टते स्थलपद्म माणमूलमेव । ज्यूषणस्य च मिलित्वा चतुः-पलम् ॥ ११ ॥

शैलेयाधं तेलम् शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्ती-त्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः। प्रियङ्गुथौखेयकहेममांसी- तालीशपत्रप्तवपत्रधान्येः॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिष्पलीभि
पृक्कानखैर्वापि यथोपलाभम्।
वातान्वितेऽभ्यक्रमुशन्ति तैलं
सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम्॥ ३२॥

रेलियेलादी—कीन्ती रेणुका, पलारा राटी, थीणयक अन्धि १ थीन्स कान्धि १ छान्दसन्त्वादम सकारलीप । इस नागकेशरम्, सव कैनर्तमुस्तकम्, श्रीवेष्टको नवनीताखोटी, ध्यामक गन्धितृणम् एपा कल्क , जल चतुर्गुणमर्थात् । यथोपलाममिति यथान्तामम् । तैल सिद्ध सुपिष्टिरिति—शैलेयादिभिः सुपिष्टैस्तैल सिद्ध मुशन्ति, तथा तरेव मुपिष्टै प्रदेहस्रोशान्ति कथयन्ति इच्छन्ति वा ॥ ३२॥

शुष्कमूलाद्यं तैलम् शुष्कमूलकवर्णाभू-दारुरास्नामहोषधे । पक्षमभ्यञ्जनात् तैल सग्रलं श्वयशुं जयेत् ॥ ३३ ॥ । शुष्कमूलकेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

पुनर्नवावलेहः

पुनर्नवामृतादारु-दशमृत्वरसाहके।
श्रार्द्रकस्वरसामस्ये गुडस्य तु तुलां पचेत्॥
तत् सिद्धं व्योषपत्रेता-त्वक्चव्यैः कार्पिकै पृथक्।
चूर्णीकृतै चिपेच्छिति मधुन कुडवं लिहेत्॥
लेहः पौनर्नवो नाम शोथग्रुल्लिस्ट्रनः।
श्वासकासारुचिहरो वलवर्णामिवर्द्धनः॥ ३४॥
पुनर्नवेतादौ—पुनर्नवादीना दशम्लान्ताना मिलिला चतु पष्टिपलानि,
जलस्य चतु पष्टिशरावा, शेषस्तु श्राहकः। व्योपेत्यादौ—सहाये उपलच्ये वा
हतीया। महुन कुढवमष्टी पलानि। ग्रल्शोथनिस्ट्रन हति पाठान्तरम्, श्रायुवेदसारेऽिष क्षमशोधिननाशन इत्युकः॥ ३४॥

ं दशम्लहरतिकी दशम्लकपायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत्। तुलां गुडाद् घने दद्याद्योपत्तारं चतु पलम् ॥
तिसुगन्धं सुवर्णाशं प्रस्थार्द्धं मधुनो हिमे।
दशमूलीहरीतक्य शोथान् हन्यु सुदारुलान् ॥
ज्वरारोचकगुल्मार्शो-मेहपार्ग्हूदरामयान्।
प्रत्येकमेच कर्पाशं त्रिसुगन्धमितो भवेत्॥
कंसहरीतकी चैपा चरके पठ्यते अन्यथा।
पतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तन्नापि वर्ण्यते॥ ३४॥

दशम्लेत्यादो—कस इत्यादक । अत्र कपायस्य कसमानतानिर्देशेन अनुक्रमिष काथ्यजलयोर्मानमनुमोयते, यतः काथ कसश्चतु.षाष्ट्रपले काथे जलद्रोण-दानाश्चतुर्मागावरोषे सित भवति । पथ्याशनमाञ्चतिमानात् । न्योषचारचतु पलिनित मिलित्वा, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । त्रिसुगन्धन्तु प्रत्येक सुवर्णाश कर्षाशम् , निर्देशस्य द्रव्यप्रधानत्वात् । प्रसार्द्धं मधुन इति षोडशपलानि । पतत्प्रयोगोक्तमान-सवादाश्चरकोक्तकसहरीतक्यापि प्रचेप्यद्रव्यमान कल्पनीयिमित्याह प्रत्येकमित्यादि । इत इति मसम्यन्तात् तसि अन्नेत्वर्थं । चरके पद्यतेऽन्ययिति पतेन पाठमेद , पर न तु योगमेद इत्यर्थं । एतेन मानमेदाद् योगमेद इति वृन्दोक्तमपास्तम् ॥१५॥

कंसहरीतकी

द्विपञ्चमूलस्य पचेत् कपाये
कंसेऽभयानाञ्च शतं गुडाच ।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं
व्योपित्रसौगन्ध्यमुपास्थिते च ।
प्रशार्द्धमात्रं मधुन सुशीते
किञ्चिच चूर्णादिपि यावश्कात
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम्
कासज्वरारोचकमेहगुल्मान्
साहित्रदोषोदरपागृहरोगान् ।
काश्यीमवातावस्गम्लापेत्तं

वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ श्रत्र व्याख्यान्तरं नोक्षं व्याख्या पूर्वेव यत् कृता ॥ ३६॥

चरके प्रध्येतऽन्यथेत्युक्तम् अतस्तमेष पाठमेद दशीयतु चरकोक्तकसहरितकीमाइ
दिपञ्चमूलस्येत्यादि —लेहाच शुक्तिमित्यद्भपल प्राश्येति योज्यम् । न्योपश्चिसुगन्धयो
र्थवप्यत्र मान नोक्तम् , तथापि पूर्वोक्तदशम्लहरीतनयनुसोरेखात्रापि कल्पनीयम् ।
पन यवचारस्थापि । किञ्चिन्छन्दीऽत्राप्यल्पवचनः, तेन न्यापचारयो,भिलित्वा
चतुःपलग्रहगोऽपि न्योपभागापेचया यवचारस्य किन्चिन्न्यूनता कल्पनियेत्थः ।
वृन्दस्त्वाह—"किन्चिच कर्षपर्यायः शुक्तिर्रद्धपल तथा । साश्चिभ्यान्मधुनो मान
न्योषादेभितितस्य च " इति ॥ ३६ ॥

तेपोऽरुष्करशोथं निहन्ति तिलदुग्धमधुनवनीते । तत्तरतलमृद्धियां शालदलैयापि न चिरेण । शोथे विषितिमित्ते तु विषोक्ता सम्मता किया ॥ ३७ ॥ वेष स्वादि—योगत्रयम् ॥ ३७ ॥ त्राम्याव्जानूष पिशितलयणं शुष्कशाकं नवानं गौडं पिष्टानं दिध सकृशरं निर्जलं मद्यमम्लम् । धाना वख्लूरं समशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि स्वप्रञ्चारान्ने श्वयथुगद्वान् वर्जयन्मेथुनञ्ज ॥ ३८ ॥ ६ति शोथचिकित्सा ।

ग्राम्यत्यादी—पिशितज्ञ लन्याचेति समाहार , तस्य निशेषण भ्राम्यावनानूपीमिति । तत्र छागादिमास ग्राम्यम् , लन्याञ्च यद् पाकेनामिनिष्टेच तद् भ्राम्यम् ।
भव्न कच्छपादिमासम्, लन्याञ्च सामुद्र करकचेति ख्यात तदव्जम् । भ्रानूप श्रकरादिमासम्, लन्याञ्च समुद्रतीरण साम्मरीति ख्यातम्, तदप्यानूपम् । गीद गुडनिकारम् । भाना अङ्कुरितमृष्टयनाः । बल्तूर शुष्कमासम् । समशन पथ्यापथ्यस्वैकत्र मोजनम् । भरात्राविति दिने ॥ ३८ ॥

इति शोथचिकित्सा-विवृतिः।

अथ वृद्धिव्रध्नचिंकित्सा।

गुग्गुलं रुवुतैलं वा गोमूत्रेण पिबन् नर ।

वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुवन्धिनीम् ॥१॥ ६

पूर्वोक्तसद्द्येव शोधानन्तर वृद्धिनप्रचिकित्तिसतमुच्यते । वृद्धि कुरण्ड ।

गुग्गुलुमिलादि—गोमूत्रपलद्दये परण्डतैलिपिण्डितगुग्गुलुमाषकाष्टक प्रक्तिप्य

पेयम् । तथा गोमृत्रपलद्दये परण्डतैलक्षेमक प्रक्षिप्य पिवेत् । हमा योगौ कमात्

क्षानुवन्धे वाते च योज्याविलाहु ॥ १ ॥

सत्तीरं वा पिवेत् तैलं मासमेरएडसम्भवम् । पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा । पाने वस्तौ रुवोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ॥ औ

सचीरमित्यादि — सुश्रुतस्य । गन्यदुग्ध पल २, परपडतैल कर्ष १, श्रय योग पित्तानुबन्ध इत्यादु । पुनर्नवातैलन्तु पुनर्नवाकाधकल्काभ्या साध्यीमत्यादु । पान वक्ताविति पूर्वेण सह सम्बध्यते । रुवे।स्तैलमेरपडतैलम् । दशकस्य दशमूलस्या-म्मसा क्वाथेन पेयम् ॥ २ ॥

> चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम्। चीरिपष्टे प्रदेह स्यादाहशोधरुजापहः॥३॥ पञ्चवरुकलकरकेन सघृतेन प्रलेपनम्॥४॥ सर्वे पित्तहरं कार्य्य रक्षजे रक्षमोत्तरणम्॥४॥

वैत्तिकवृद्धिमेषनमाह चन्दनामित्यादि-पद्म पद्मनेशरम् । रक्तने रक्तमोत्त-ग्रामिति अपकरक्तजनृद्धौ रक्तमोत्त्रण जलौनोमि कार्य्यं, सुश्रुतमवादात् ॥ ३-४ ॥

> श्लेष्मवृद्धिन्तृष्णवीय्यैर्भूत्रिषष्टे प्रलेपयेत्। पीतदारुकषायञ्च पिवेद्वा मूत्रसंयुतम् ॥ ६॥

क्षेत्रेसादौ — उष्णवीयौरिति श्रजगन्धादिमि. मिश्रकोकै: । पातदारु देव-दारु, गोमूत्रेणैव देवदारुकाथ: कार्य्यामत्यादुः । व्यवद्वारस्तु श्रचेपविधया । वाग्मेट तु-'गोमूत्रेण पिवेत् कल्कं क्षेत्रिमके पीतदारुजन्'' इत्युक्तम् ॥ ६ ॥

खिन्नं मेदःसमुत्थन्तु लेपयेत् सुरसादिना । शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुते ॥ ७ ॥ स्वित्रमिखादि—सुश्रुतस्य । गोमयपिषटादिना मृदु स्वित्रम्। चरके 'स्ट्रय वृषणी दृष्टी स्वेदेयेनमृदु वा न वा'' इत्युक्तत्वात् । स्ररसादिना सुरसादिगणोन शिरोविरेचनद्रव्ये पिष्पलामरिचिविडद्वापामागीदिमिः सशोधनसशमनीयोकैः मूत्रम-युतिरिति मूत्रपिष्टैलेपयेदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ७॥

संखेद्य मूचप्रभवां वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्। सीवन्या पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् बीहिमुखेन वै॥ =॥

मूत्रजबृद्धिचिकित्मामाइ, संस्वेधेसादि—सुश्रुतस्य । मूत्रप्रभवाभिति मूत्रवेग-मन्धारणजा, संस्वदन कर्त्तव्य, शस्त्रकांमेवदनानिवारणार्थ त्वगादिमृदुकरणार्थञ्च, वस्त्रपट्टेन घटिकाकृतिवस्त्रण वेष्टन कर्त्तव्य, शस्त्रकांमण सौकव्यार्थ ब्रीहिमुदेन शस्त्रविशेषेण वेध्यः । व्यथश्च मूत्रस्रावणार्थम् । एतदनन्तर यदाइ सुश्रुत —''अथात्र दिमुखीं नार्डी दत्वा विस्नावयोद्भिषक् । मूत्र नाडीमथोद्भृत्य स्थिगकावन्धमा-चरेत्।' इति ॥ = ॥

श्रह्वोपिर च कर्णान्ते त्यक्त्वा सेवनिमादरात्।
 ब्यत्यासाद्वा शिरा विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्त्ये॥ ६॥

श्रप्राप्तफलकोषान्त्रवृद्धिचिकित्सामाह, राह्यत्यादि—सुश्रुतस्य । त्यमत्वा मेवनीमिति केराान्तसेवनीं ममैत्वाद परित्यंज्य, अत्ययोक्त वाग्मेट 'पट् कृषी मप्त मेवन्यो मेवृजिह्वाशिरोगता । राखेण ता परिहरेत् हित । व्यत्यामादिति वाम-कोपमृद्धौ दिखिणे, दिख्यकोपमृद्धौ तु वामे, यदि तु पुनस्मयतो वृद्धिस्तदोमयमागे। वाशव्दो विध्यन्तरापेख्या ॥ १ ॥

ग्रङ्गुष्ठमध्ये त्वक् छित्वा दहेदद्गविपर्यये॥ १०॥

श्रद्गुष्ठित्यादि—सुश्रुतस्य । इस्तस्य वृद्धागुष्ठमध्ये त्वङ्मात्र छित्त्वा दहेत् न तु वातकफवृद्धिवत् स्नायुमिषे । त्वक्रान्दस्य नपुग्नकित्तता समाधेया छान्दसत्वात् । श्रक्षविपृत्र्ययं इति विपर्य्ययार्थं पूर्ववदिति ॥ २०॥

रास्नायण्ट्यमृतैरएंड-वलागोच्चरसाधित । काथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याश्च रुवुतैलेन मिथित ॥ ११ ॥ रास्तेत्यादि—सप्टम् ॥ ११ ॥

्र तैलमेरहडजं पीत्वा वलासिद्धपयोऽन्चितम् । ग्राध्मानग्रलोपचितामन्त्रवृद्धि जयेन्नर ॥ १२॥ वलामिद्धपयोऽन्वितमिति । इद चीरसाधनपारिमाषया वलामूलसाधिते चीरे एर एटतेल प्रक्षिप्य पेयमित्यर्थं ॥ १२ ॥

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम् । पातः पातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ १३॥

हरीतकीमित्यादौ—तैलमरपडतैलमित्याहु । अस्य योगस्य विरेचनत्वान्मूत्रे-र्णव पानमिच्छन्ति, अन्ये तु उच्छोदकेन पानमित्याहु ॥ १३॥

> गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्घवचूर्णयुक्ताम्। स्नादेत्ररः कोष्णजलाचुपानां निहन्ति वृद्धि चिरजां प्रवृद्धाम्॥ १४॥

गोमूनेत्यादि-पूर्वयोगापेचया, मृष्टामिति विशेष । कोष्याजलानुपानामिति पाठपने क्रियाविशेषयाम् ॥ १४ ॥

त्रिफलाकाथगोमूत्रं पियेत् प्रातरतिन्द्रत ।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृपणोत्थितम् ॥ १४ ॥
विफलेत्यादौ—गोमूत्र प्रषेप्यम् ॥ १४ ॥
सरलागुरुकुष्ठानि देवदारुमहौषधम् ।
मूत्रारनालसम्पिष्टं शोथमं कफवातनुत् ॥ १६-॥

सर्तेत्यादी—मरल सरलकाष्ठ, तेपोऽय योग ॥ १६ ॥
भृष्टो रुबुकतेलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ १७ ॥
भृष्ट इत्यादियोगो मन्नणविषया ॥ १७ ॥

गव्यं घृतं सैन्धवसम्प्रयुक्तं शम्बूकभाग्डे निहितं प्रयत्नात्। सप्ताहमादित्यकरैविंपकं

हन्यात् कुरत्डं चिरजं प्रवृद्धम् ॥ १८ ॥

शम्बूकमायड इति-शम्बूकरूपमायहे, शम्बूकमायडच सबस्क प्राद्य, न तु

पुराणमित्याहु । धतात् पादिकञ्च सैन्धनमिति च नदन्ति । लेपविधया योज्यमेतत् ॥ १ ॥

पेन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुवुतैलेन मर्दितम्।

इयहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिनिवारणम् ॥ १६ ॥

रुद्रजटामूलालेप्ता करटव्यद्भचर्मणा।

वद्धा वृद्धि शमं याति चिरजापि न संशय ॥ २० ॥

निष्पष्टमारनालेन रूपिकामूलवलकलम्।

लेपो वृद्धधामयं हन्ति बद्धमूलमपि दृद्धम् ॥ २१ ॥

पेन्द्रीत्यादि—पेन्द्री गोरचकर्कटी । रुद्रजटिति रुद्रजटा रुजड इति ख्याता । आदौ रुद्रजटासूलकर्केन लिप्त्वा तदनु करटवी कटा इति ख्याता नकुलाकारा प्रायशो षृचोपरि तिष्ठति, तस्या अङ्कचर्मणा क्रोडचर्मणा वदा वृद्धिरित्यर्थ । निष्पिष्टमित्यादि—रूपिका अर्कपर्णं ॥ १६—२१॥

वचासर्पपकत्केन प्रलेपो दृद्धिनाशन ॥२२॥ वचत्यादि—स्पष्टम्॥ २२॥

लजागृभ्रमलाभ्याञ्च लेपो वृद्धिहरः पर ॥ २३ ॥ लजेत्यादौ—लज्जा वराहकान्ता, गृत्रपित्तचो मल विट् ॥ २३ ॥

मूलं विस्वकापित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः श्यामाप्तिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुक्तरम् । कृष्णाग्रन्थिकचव्यपञ्चलवण्जाराजमोदान्वितं पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतं वध्नजित् २४

सम्प्रति व्रप्तचिकित्सामाह । व्रध्नलच्चण्य यद्यपि रुग्विनिश्चये नास्ति तथापि तन्त्रान्तरादनुसर्च्यम्, यथा, 'अत्यभिष्यन्तियुर्वे प्रसेवनाप्तिचय गत । करोति प्रान्यिचछोध दोषो वङ्चणसन्धिषु । ज्वरग्रलाङ्गदाहाढ्य त व्रप्तमिति निर्दिशेष् १ इति । व्रप्तस्तु लोके माडुभीति नाम्ना ख्यातः । मूलमित्यादि—वाग्म-टस्य । मूलमिति पष्ठयन्तैः सर्वेयों ज्यम् । अर्द्धकः स्थोनाक अभिश्चित्रकः, स्थामा वृद्धदारकः, पूतिकरक्को लाटाकरङः, काञ्जिककोष्णतोयमार्थतानामन्यतमेन पान प्रकृत्याद्यपेद्वया द्वेयम् ॥ २४ ॥

श्रवीत्तीरेण गोधूमकर्टकं कुन्दुहकस्य वा। प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद् ब्रध्नश्चलहरं परम्॥ २४॥

अवीचीरेखेत्यादि—वाग्मटस्य । अवीचीरेख गोधूमकुन्दुरुखी पिष्ट्वा लष् कार्य्य , एक एवाय योग । वाशब्द पूर्वयोगापेच्या । अतएव वाग्मटे वाशब्द-स्थाने चकार पट्यते । अपरे तु योगद्वयमाहु. । कुन्दुरु स्वनामख्यातम् ॥ २५ ॥

मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते सम्प्रवेशयेत्। व्रधं मुद्दर्त्तं मेधावी तत्त्रणाद्रकं भवेत्॥ २६॥

मृतमात्र इत्यपि वाग्भटस्य। मृतमात्र इति सयोमारिते। विशस्त इति पाटिते। काकस्य कोड पाटियत्वा तत्र कोष्णे त्रक्ष प्रवेशनीय ततो वन्धः कार्यः॥२६॥

श्रजाजी हबुषा कुष्ठं गोधूमं वदराणि च। काञ्जिकेन समं पिष्द्वा कुर्य्याद् ब्रध्नमलेपनम् ॥ २७॥ भजाजीत्यादि—स्पष्टम् ॥ २७॥

बृहत्सैन्धवाद्यं तैलम्

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्मां निचुलं वचाम्। हीवेरं मधुकं भागीं देवदारु सनागरम्॥ कट्फलं पौष्करं मेदां चिवकां चित्रकं शटीम्। विडङ्गातिविषे श्यामां रेखुकां नीलिनीं स्थिराम्॥ विल्वाजमोदे कृष्णाञ्च दन्तीरास्ने प्रिष्ण्य च। साध्यमेरएडजं तैलं तैलं वा कफवातनुत्॥ वधोदावर्त्तगुल्मार्शः ज्लीहमहाख्यमारुतान्। श्रानाहमश्मरीञ्चैव हन्यात् तदनुवासनात्॥२८॥

सैन्धवावतेल-निचुलो वेतसः, श्यामा त्रिवृतेति वैषप्रसारकसवादात्। नीलिनी नीलबुद्धा । चतुर्शुयाजलेन पासः । तैल वेति तिलतेल वा ॥ २८ ॥

शतपुष्पाद्यं घृतेम्

शतपुष्पामृतादारु चन्दनं रजनीद्वयम् । जीरके द्वे वचानाग त्रिफलागुग्गुलुत्वचः ॥ मांसी कुष्ठं पत्रकैलारासार्यद्वीः सचित्रका ।

किमिन्नमध्यगन्धस्य शैलेय कहरोहिणीम् ॥
सैन्घवं तगरं पिष्द्वा कुटजातिविषे समे ।

एतेश्च कार्षिकै कल्कंष्ट्रेतप्रस्थं विपाचयेत् ॥

चृपमुण्डितिकैग्ण्ड निम्वपत्रभव रसम् ।

कण्टकार्यास्तथा चीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिचिषेत् ॥

सिद्धमेतद् घृतं पीतमन्त्रचृद्धिमपोहति ।

वातवृद्धि पित्तवृद्धि मेदोचृद्धिञ्च टारुणाम् ।

मूत्रवृद्धि स्रीपटं वा यक्तल्लीहानमेव च ।

शतपुष्पाघृतं रोगान् हन्यांद्व नं संश्वयः ॥ २६ ॥

शतपुष्पाधृतं स्री १६ ॥

घृतं सौरेश्वरं योज्यं व्रभ्रवृद्धिनिचृत्तये ॥ ३० ॥

इति वृद्धिव्रभ्र-चिकित्सा

सीरेश्वरष्टत वस्यमाणम् ॥ ३०॥ शति गृद्धिमानिकित्माविष्ट्ति ।

अथ गलगण्डगण्डमालापची-ग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सा।

यवसुद्गपटोलानि कटु रूच्च्च भोजनम् ।
छदि सरक्षमुक्तिञ्च गलगएडे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥
तएडलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपित ।
इस्तिकर्णपलाशस्य गलगएडः प्रशाम्यति ॥ २ ॥
सर्पपान् शिष्र्यीजानि शण्यीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च वीजानि तकेणाम्लेन पेपयेत् ॥

'गएडानि ग्रन्थयश्चापि गलगएडाः सुद्दारुणाः।
प्रलेपात् तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात्॥३॥
जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंग्रुत ।
नस्येन हिन्ति तरुणं गलगएडं न संशय ॥ ४॥
जलकुम्भीकजं भस्म पक्कं गोमूत्रगालितम्।
पिवेत् कोद्रवमक्काशी गलगएडपशान्तथे॥ ४॥
स्ट्यावर्त्तरसोनाभ्यां गलगएडोपनाहने।
स्फोटास्रावे शमं याति गलगएडो न संशय ॥ ६॥
तिक्कालावुफले पक्कं सप्ताहमुपित जलम्।
मद्यं चा गलगएडमं पानात् पथ्यानुसेविन ॥ ७॥
'कद्फलचूर्णान्तर्गलघर्षे गलगएडमपहर्गत।
घृतमिश्रं पीतामिव श्वेतिगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ६॥

उक्तसप्तस्येव गलगण्डादयोऽभिधीयन्ते । तण्डुलोदेकेत्यादि । हस्तिकर्ण, पलाशस्य मूलेनत्यन्वय सर्वेऽपि गलगण्डाः वातकफमेदोभिरारभ्यन्ते, न तु पित्तेन व्याधिस्त्रभावाद । अतो गलगण्डाक्रलेपा कोष्णा एव देया इत्याहु । जीणकार्कारु परिण्यतिकालावुः, अन्य तु कूष्माण्डमेद इत्याहु , व्यवहारस्तु पूर्वेणैव । तरुण्मित्यन्तिरजातम् । जलकुम्मी पाहा, तस्या भस्य पानीयन्तारविधिना गोमूत्रेण विपाच्य परिस्राच्य च पिवेद् । उपनाहनमुष्ण्वहलेलपः । स्फोटास्रावैरुष्णोपनाह- कृतं । स्रेतेति—स्रेतिगिरकार्णेका स्वताप्राजिता ॥ १-८ ॥

महिपीमूत्रविमिश्रं लौहमलं संस्थितं घटे मासम्।

श्रम्तर्धूमविद्ग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगण्डे ॥ ६ ॥

जिह्वायाः पार्थ्वतोऽधस्तिच्छ्ररा द्वाद्श् कीिर्त्तताः।

तासां स्थूलिशिरे कृष्णे छिन्द्याद् द्वे च शनैः शनैः॥

विडिशनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान्।

स्रुते रक्ते व्रणे तसिन् दद्यात् सगुडमार्द्रकम्।

भाजनञ्चात्तभिष्यन्दि यूष कौलत्थ इष्यते॥१०॥

कर्णयुग्मवहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितञ्च यत्। उपर्य्युपरि तिच्छन्द्यात् गलगगढे शिरात्रयम् ॥ ११ ॥

महिषीत्यादी-पुराणलीहमल महिषीमूत्रे मास स्थापियता श्रम्तर्धूम दग्ध्वा मधुना लिझादित्यर्थः । जिह्नाया इत्यादी-कृष्णे स्थूलिशिरे विदिशेन शर्ने शंनेः सगृद्धा कुशपत्रेण शक्तिवेशेषेण छिन्चादित्यन्वय । तिसन् मणे सुतरके सित मण्ड-माईकमचाद्रस्वयेत् । श्रन्ये तु दचादिति पठिन्ति, तन्मते भन्नणांथीमिति शेष । कर्णयुग्मविह सन्धिमध्याम्यास इति-कर्णयो पृष्ठममीपे उपर्य्युपरिस्थितिमत्यन्वयः ॥ ६—११ ॥

तुम्बीतैलम्

विडक्षकारसिन्धू प्रारास्नाभिन्योपदास्तिः।
कडुतुम्यीफलरसे कडुतैलं विपाचितम्॥
चिरोत्थमपि नस्येन गलगएडं विनाशयेत्॥ १२॥
तुम्बीतैले—स्या वचा। कडुतुम्बीफलरम इति परिणतिकतुम्बीफलस्य
चतुग्रंणे सरसे इत्यर्थः। एक हि वाग्यटे-स्दायास्तिकतुम्बाश्च रसे तैलाझतुगुंणे"
इति ॥ १२॥

अमृताद्यं तैलम्

तैलं पिवेचामृतविज्ञानिम्व-

हंसाह्यावृत्तकपिष्पलीभिः।

सिद्धं वलाभ्याञ्च सदेवदारु

हिताय नित्यं गलगएडरोगी ॥ १३ ॥

तैलमिलादि—सुश्रुतस्य । अमृतवही गुदूची, वृत्तक कुटन , हमाह्या हमपादी, यदाह बाग्मटः "गुदूचीनिम्बकुटजहसपादीबलाइय । साथित पायये-चैल सक्तव्यादेवदाक्रिः" इति । अन्य तु हिस्नाह्येति पठित्वा कालाकड व्याख्या-नयन्ति । अमृतवल्ल्यादिमिः काथकल्करूपेरिति चन्द्रिका । अन्य तु एमि मर्वे करक बल चतुर्गुणमिलाहु ॥ १३॥

माज्ञिकाद्यः सकृत् पीत काथो वरुणमूलज । गण्डमाला हरत्याश्च चिरकालानुवन्धिनीम् ॥ पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पेयाः काञ्चनारत्वचः श्रुभाः। विश्वभेषजसंयुक्ता गग्डमालाहराः पराः ॥
श्रारग्वधिशकां चित्रं पिष्द्वा तग्रहलवारिणा ।
सम्यङ्नस्पप्रलेपाभ्यां गग्डमालां समुद्धरेत् ॥
गग्डमालामयात्तीनां नस्यकमीण योजयेत् ।
निर्गुड्याश्च शिकां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥१४॥
कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं

तुम्ब्यास्तु वा पिष्पत्तिसंयुतेन । तैलेन वारिष्टभवेन कुर्य्याद्

वचोपकुल्ये सह माजिकेण ॥ १४ ॥ पेन्द्रथा वा गिरिक्ण्यो वा मूलं गोसूत्रयोगत । गएडमालां हरेत् पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ १६ ॥ श्रलम्बुपादलोद्भतात् स्वरसाद् द्वे पत्ते पिवेत् । श्रपच्या गएडमोलायाः कामलायाश्च नाशनः ॥ १७ ॥ गलगएडं गएडमालां कुरएडांश्च विनाशयेत् । पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना मूलं लेपाद् ब्राह्मण्याप्टजम् ॥ १८ ॥

श्रत पर गण्डमालि विकत्सामाह—माचिका व्यादि । मक्कदित्येकवार पीतः स्तुतिवादोऽयम् । ज्येष्ठाग्त्रु तण्डुलोदकम् । काश्चनारः काञ्चनः । श्रार-ग्वथस्य शिफा मूलम् । कोषातकीत्यादि चत्वारो योगाः । विष्पलीस्युतेनेति पद कोषातकीना स्वरसेनेत्यनेनापि सम्बध्यते । कोषातकी घोषक , तस्या फलस्य स्वरमः, एव तिकतुम्ब्या श्रीप । श्रीष्टभवेन निम्बफलजेन तैलेन तृतियो योग । श्रीरष्टमवस्येति पाठान्तरे श्रीरष्टफलस्येत्पर्यः । वचोषकुल्य इति—वचोषकुल्य पिष्ट्वा मधुना नस्य विधेयमित्यर्थः । ऐन्द्री गोरच्चक्वंटी, गिरिकर्णी श्रेतापराजिता, श्रलम्बुषा मुण्डितिका श्रलम्बुषो वा ॥ १४—१०॥

् छुच्छुन्दरी तैलम्

श्रभ्यद्गान्नाशयेन्नॄणां गगडमालां सुदारुणाम्। जुच्छुन्दर्था विपकन्तु चणात् तैलवरं भ्रुवम् ॥ १६॥ श्रम्यद्गादित्यादौ—छुच्छु-दरी छुद्धया शति स्याता मूपिकाकृति., तस्याः कल्को जल चतुर्गुणम्॥ १६॥

शाखोटकविम्ब्याद्ये तैले

गएडमालापहं तैल सिद्धं शाखोटकत्वचा ।

विम्ब्यश्वमारिनर्गुएडी-साधितञ्चापि नावनम् ॥ २० ॥
गण्डमालापहिमचादि—शाखीटकत्वचा खरमकत्करूपया, सुश्रुतेऽप्युक्त
"शाखीटकत्करवरमेन सिद्ध तैल हित नस्यिनरेचनेपु" हित । विम्बीसादि योगान्तरम् । विम्बी डिम्बिरिति ख्याता, तेलाकुचा इस्रन्ये। अश्वमार करवीर । विम्ब्यादीना मूलस्य कल्को जल चतुर्गुयामिति गयदास ॥ २० ॥

निर्गुएडीतेलम्

निर्गुएडीखरसेनाथ लाङ्गलीमूलकितम्।
तेल नस्यान्निहन्त्याशु गएडमालां सुद्राहणाम्॥ २१॥
निर्गुएडीलारी—निर्गुएडीखरसम्बद्धग्रंण ॥ २१॥
वनकापीसिकामूलं तएडुलैः सह योजितम्।
यक्त्वा तु पृथिकां खादेदपचीनासनाय च ॥
शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम्।
कोष्णं प्रलेपता हन्यादपचीमतिदुस्तराम्॥
सर्पपारिप्रपत्राणि दम्ध्वा भल्लातकः सह।
छागमूत्रेण सम्पिष्टमपचीद्रं प्रलेपनम्॥ २२॥
अपनीविकित्सामाह बनेसादि—त्रयो भागास्त्रपडुलाना भेपजस्वैकः॥२०॥
अश्वत्थकाष्ठ निचुलं गवां दन्तञ्च दाहयेत्।
वराहमज्ञसंयुक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान्॥ २३॥

पार्षिण प्रति द्वादश चाङ्गुलानि मिन्वेन्द्रवस्ति परिवर्ज्य सम्यक्। विदार्ज्य मत्स्याएडनिमानि वैद्यो

भरवत्येत्यादी-वराहमकायोगालेषु. ॥ २३ ॥

पार्मिण प्रतीलादि—सुमुतस्य । पार्ष्मिण्ज्ञेल्फस्याधोदेश , पार्ष्मिमारस्य कर्ष्मे द्वादशाङ्गुलानि मिल्ला परिमाय इन्द्रवस्ति द्वयगुल परित्यच्य विदार्थ्य जालानि मेदो जालानि मत्स्यायहेन सष्टशान्याकृष्याशिमनचारयेदित्यर्थ । एनमपच्या मूलोच्छदात् प्रशम ; यदाष्ट् भोजः—'नातिपत्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समाचितम् । जद्दयोः करण्डरा प्राप्य मतस्यायङसष्टशान् नहून् । कुर्वन्तीत्यादि ॥ २४ ॥

> मणिवन्धोपरिष्टाद्वा कुर्य्याद्वेखात्वयं भिषक् श्रङ्गुल्यन्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये॥ २४॥

कचाकूपरसिन्धगतापचीपु वाहुगतमेव कर्माह, मिणवन्धेत्यादि—सुश्रुतस्य । मिणवन्धो हस्तवाहुसान्धि, अत्र मिणवन्धादङ्गुलमेक द्वयं वा परित्यच्य दाहः कार्यः॥ २४॥

> द्रण्डोत्पलाभवं सूलं बद्धं पुष्येऽपर्ची जयेत् स्रपामार्गस्य वा च्छिन्द्याजिह्वातलगते शिरे ॥२६॥

दराडोत्पलेत्यादि—दराडोत्पला स्वनामस्याता। अपामार्गस्य वा मूलिमिति योज्यम् । अपचीप्रदेशा एव भेपजवन्धनम् । अत्रैव शस्त्रकर्मान्तरमाइ जिन्झादि-त्यादि ॥ २६ ॥

न्योषाद्यं तैलम्

व्योषं विडक्नं मधुकं सैन्धवं देवदारु च । तैलमिभिः श्रतं नस्यात् कृच्छामप्यपर्ची जयेत् ॥२७॥ ब्योपमित्यादौ—जल चतुर्गुणम् ॥ २७॥

चन्दनाद्यं तैलम्

चन्दनं साभया लाचा वचा च कटुरोहिणी।

एभिस्तैलं श्रतं पीतं समूलामपर्ची जयेत्॥ २८॥

चन्दनिमत्यादी—श्रमया हरीतकी, न तु श्रमयमुशीर, ' वचाहरीतकीलाचाकद्ररोहिणिचन्दनै.। तैल प्रसाधिते पीत समूलामपर्ची जयेत् ' इति वाग्भटसवादात्॥ २८॥

गुज्जाघं तैलम्

गुञ्जाहयारिश्यामार्क-सर्पपैमूत्रसाधितम्। तैलन्तु दशधा पश्चात् कणालवणापञ्चकः मरिचेश्चूर्णितेर्युक्त सर्वावस्थागतां जयेत्।

श्रभ्यद्वाद्पर्ची नाडीं चल्मीकार्शोऽवेदवणान् ॥ २६ ॥ गुजल्यादी—हवारि करवीरः तस्य मूलम् । श्यामा वृद्धदारक । श्रकंस्य । गोमत्र चतुर्गुण दत्वा दशधा पाक । ततः कणापञ्चलवणचूर्णं मारिचचूर्ण

द्वीरम् । गोमृत्र चतुर्ग्य दत्वा दशभा पाक । ततः क्रणपञ्चलवणचूर्णं मारिचचूर्णं प्रसिप्य प्रयोज्यम् । क्रणालवणपञ्चकमरिचैन्त्यिकपदम् , ' धृततैलवसामञ्जवेशवार-प्रयो दिध । मासधावनतोयामम् ' इतिवत् ॥ २६ ॥

ग्रन्थिष्यामेषु कुर्वीत भिषक् शोधप्रतिकियाम् । पक्कानापाट्य संशोध्य रोपयेद् व्रश्वभेपजे ॥ ३०॥ ग्रन्थिचिकत्सामाह् ग्रन्थिष्यत्यादि—शोधप्रतिक्रियामिति—व्रश्शीधाचिकिः

ग्रन्थिचिकित्सामाह श्रन्थिच्त्यादि —शोधशिविक्त्यामाते — वर्णशोधीचीव स्नितम्, तच सीश्रुतदिवर्णोयोक्तमपतपैणादिविरचनान्तमेकादशविधम् ॥ ३० ॥

हिंसा सरोहिएयमृता च मार्गी

श्योनाकविल्वागुरुक्रप्णगन्धाः।

गोपित्तपिष्टाः सह तालपर्गा

ग्रन्थौ विघेयोऽनिलंजे प्रलेप ॥ ३१ ॥

हिसेत्यादि—सुमुतस्य । ६ सा कालाकडा । कृष्णगन्या शोभाजनः । गोषित्तिपिष्टा इत्यत्र गोजीश्च पिष्ट्वेति पाठान्तरे गोजी शास्त्रोटक , किन्तु गोजीपाठे। युक्त आयुर्वेदसारप्रामाययात् तथा सुमुतटीकाक्वाद्विन्यांच्यातत्वान्त । तालपर्यां तालमूली । ११ ॥

जलायुका पित्तकृते दितास्तु स्नीरोदकाभ्यां परिषेचनञ्च। काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि

पिवेत् कपायाणि सशक्तराणि ॥ ३२ ॥
जलायुका रत्यादि--विद्वानित्यन्त सुश्रुतस्य । काकोलिवर्गस्यति काकोल्यादिगणस्य ॥ ३२ ॥

द्राजारसेनेज्ञरसेन वापि चूर्णे पिषेद्रापि हरीतकीनाम् । मधूकजम्ब्ज्रुनवेतसानां त्वग्मि प्रदेहानवतारयेख ॥ ३३॥ द्राचारसेनेत्यादि-स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

हतेपु दोपेषु यथानुपूर्व्या

प्रन्थौ भिषक् ऋष्मसमुरिथते च।

स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्या-

दंगुष्ठवेणुदशदीसुतैश्च ॥ ३४॥

हतेषु दोषेष्वित्यादि—नमनादिभिः तथा रक्तमोत्त्रणेन दोषेषु कफादि-रक्तान्तेषु हतेषु सत्स्र । यथानुपूर्वेति—रनेहस्वेदादिकम कृत्वेत्यर्थे. । वृशदीस्रतः शिलापुत्रक. । अत्र छन्दोभक्षभय नाशक्क्तीयम् , अनन्तत्वाच्छन्दोमागायाम् । क्रिचित्तु सुश्रुतपुस्तके अगुष्ठलोहोपलवेगुद्रयहैरिति पट्यते, क्रिचित्तु वेगुदृशदीस्रतै-रिति ॥ ३४॥

विकड्कतारग्वधकाकण्न्ती-

काकादनीतापसवृत्तमूलै।

श्रालेपयेदेनमलावुभार्गी-

करञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ३४ ॥

विकङ्गतेत्यादिमदनान्त—एको लेप इति चन्द्रिका । विकङ्गतो वयङ्गलिरिति ख्यात. । काकणन्ती गुजा अस्या मूलम् , काकादनी काकितन्दुकः, तापसवृत्त पुत्रजीवकः, अलावु कदुतुम्बी, काला कालाकडा मिजिष्ठा वा ॥ ३५ ॥

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्तुद्यकैपयसी गुडः।

भह्नातकास्थि काशीशं लेपो भिन्दाचिछलामपि ॥३६॥ स्तुद्यक्तपयसीति स्तुद्यकंथोः चीरम् । भह्नातकास्थि भह्नातकवीजम् । काशीश धातुकाशीशम् ॥ ३६॥

ग्रन्थ्यर्वुदादिजिल्लेपो मात्वाहककीटजः ॥ ३७॥ ग्रन्थीत्यादि—मातृवाहककीट सुखाशादिभवपदकीट रति ख्यातः ॥ ३७॥ स्वर्जिकामूलकत्तारः शङ्खचूर्णसमिन्वत । प्रतिपो विहितस्तीद्यो हान्ति ग्रन्थ्यर्वुदादिकान् ॥३८॥ स्विकेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ३८॥

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपका-नुद्भत्य चाग्नि विद्धीत वैद्य ।

चीरेण वैतान् प्रतिसारयेतु

संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥ ३६ ॥

यन्यीनित्यादि — सुश्रुतस्य । चारेण वेति विकल्पो दोषापेच्चया, तेन वाते वानकफेडियः, पित्ते च चार इति । पतिमारयदिति प्रलेपयेत् । यथोपदेशमिति यथारास्त्रम् । एनच असि विद्यातित्यनेनापि सम्बध्यते, तेनासिकमंविधिना प्रति-मारणायचारविधिना चेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

प्रन्थ्यर्बुदानाञ्च यतोऽविशेषः

प्रदेशहेत्वाकृतिदोपदूष्यैः।

ततिश्चिकित्सेद्भिपगर्वुदानि

विधानविद् ग्रन्थिविकित्सितेन ॥ ४० ॥

1 10

त्रश्चेदे ब्रान्थिचिकित्मिते मोपपितकमितिदेशित बन्ध्यर्श्वदानामित्यादि—अवि-शेष स्वाविशेष इह शेयः, तेन सुश्रुतोक्तभेदोऽपि भवत्युक्तः । सुश्रुते हि पृथक् अन्थिकलचण्यमुक्त्या अर्श्वदलचण्ड मात्रप्रदेश स्त्यादिना पृथगेवोक्नम्, तस्मात् स्तोक-विशेषे मत्यपि प्रायणाविशेषादिह ब्रान्थिचिकित्मैवातिदिश्यतेऽर्श्वदे । विधानविदिति दाहादिविधिशः ॥ ८०॥

> वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धेश्च मासैरथ वेशवारैः।

सदं विदध्यात् कुशलस्तु नाड्या

श्टिंड ए रक्तं, यहुशो हरेचा ॥ ४१ ॥ बाताईंद इत्यादी—नाटेयित नाटीस्वेदविधना ॥ ४१ ॥

खेदोपनाहा मृद्वस्तु पथ्याः

पित्तार्वुदे कायविरेचनञ्च॥ ४२॥

स्वेदोपनाष्ठा मृदव इति—मृदुम्वेदो द्रवस्वेद , मृदुरुपनाष्ट्रस्तु काकोल्यादि-रदुरुव्यकृतः । कायविरेचनमित्यन कायमहण् शिरोविरेचनन्युदासार्थम् ॥ ४२ ॥

विघृष्य बोडुम्बरशाकगोजी-

पत्रभृशं चौद्रयुतैः प्रलिम्पेत्।

अन्णीकृतै सर्जरस्मियंगु-

पत्तद्गलोधार्जनयष्टिकाहैः॥ ४३॥

विश्णेत्यादी—उडुम्बर फल्गु. कर्कशपत्रत्यात् । शाको मरुजस्तरु. कर्कश-पत्र । गोजी दार्विशाक शाखोटको वा । चौद्रयुतैरिति सर्जरसादिभि सम्बध्यत । पत्तद्ग रक्तचन्द्रनम् । ऋजुनम्थानेऽज्ञन इति पाठ श्रज्जन स्नेतोऽज्ञनम् । यष्टिकाह्न यष्टिमधु ॥ ४३ ॥

लेपनं शङ्खचूर्रीन सह मूलकमसना।
कफार्बुदापहं कुर्य्याद् ग्रन्थ्यादिपु विशेषतः॥
लेपनित्यादि—सप्टम्॥ ४४॥
निष्पाविप्याककुलत्थकल्कैमांसि प्रगाहर्द्धमिर्दितैश्च।
लेपं विदध्यात् किमयो यथात्र ।
मुञ्चन्त्यपत्यान्यथं मात्तिका वा॥
श्रत्राविशिष्टं किमिभिः प्रजग्धं
लिखेत् ततोऽशिं विदधीत पश्चात्।
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः
सवेष्ट्य पत्रैरथवायसैर्वा॥ ४४॥

निष्पावेत्यादि — मुश्रुतस्य । निष्पाव श्रेतिशान्व । पिण्याकस्तिलकल्क किमयो यथात्रत्यतः परम् उत्यद्यन्त इति रेष । मुञ्जन्तीत्यत्र मूर्ण्डन्तीति पाठे अपन्त्यान्यथ मिलका वेत्यत पर मुञ्जन्तीति रोष । पतत्कर्मण फलमाह, अल्पावाशिष्ट- मित्यादि मुश्रुतस्य । किमिमिर्मक्षणादल्पावशिष्टत्वन् । लिखेदिति अल्पावशिष्ट प्तिमास राक्षेण किन्द्यात्, अल्पावाशिष्टस्य च छ्रदेनेन आतुरस्य महान् केरा इति तात्पर्य्यम् । तनोऽभि विदर्भतिति—राक्षच्छेदनानन्तरज्ञावशिष्ट र्युद्यम्लस्य सम्यगुच्छेन्द्राय अभि विदर्भति तात्रशलाक्या दहेत् । अभिकर्मणि क्षतेऽपि यद्यवंद्रस्य मूल तिष्ठेत् तदा कि कर्त्तच्यमित्याह यदल्पमूलिमत्यादि । अर्वुदस्य यदल्पमूल तत् त्रप्यादिलोहान्तानामन्यतमेन रिचतै पत्रै सवेष्ट्य स्थापयेदिति व्याख्येयम्, न तु ज्ञारायवचरणपेत्रया त्रप्वादिपत्रसवेष्टनस्य पूर्वभावित्वमित्याहु । त्रप्वादिपत्रवेष्टनेन च तत्रमूलस्यार्युदस्य महुर्पणात् स्वयमेवोपशमो भविष्यतिति भावः । त्रपु रङ्ग ॥ ४५॥

त्ताराग्निशस्त्राण्यवतारयेश्व मुहुर्मुहु प्राणमवेत्तमाणः।

यदच्छ्या चोपगतानि पार्क पाकक्रमेणोपचरेद् यथोक्षम् ॥ ४६ ॥

विध्यन्तरमाह चारामीत्यादि—यचपि सुश्रुते " सक्टरेवीपहरेच्छ्छम् '
इत्युक्त तथापि अर्नुदस्य महामृलत्वात् न तत्र चारादयः सक्टरवचारणीया इत्याह
सुद्रुमुद्रुरिति । प्राणमेवचमाण इति यथा न वलहानिः स्यात् तथा कालविप्रकर्ष कृत्वा सुदुर्मुद्र चारादीनवचारयोदित्यथेः । अपकत्यानुद्रस्य चिकित्मामिभधाय
पक्तस्य चिकित्सामाह, यव्च्छ्येति कारणाप्रतिनियमेन अनियतमिभघातादिपाककारण प्राप्येत्यर्थं, यत्तु निदाने 'न पाकमायान्ति ' इत्युक्त तत् प्रायिकमिति
हैयम् । पाकक्रमेणिति पाकोक्तपाटनशोधनादिकमेण । यथीक्तमित्युपचारिकवाविशेपणम् । सुश्रते तु यथोक्तमित्यत्र विधिष्ठ इति पाठः ॥ ४६॥

सशेषदोषाणि हि यो उर्वुदानि करोति तस्याश्च पुनर्भवन्ति । तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु हन्यु सशेपाणि यथा विपान्नी ॥ ४७॥

मरोषत्यादि-स्पष्टम् ॥४७॥

उपोदिकारसाभ्यक्नास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः । प्रणश्यन्त्यविरान्नृणां पिडकार्बुदजातय ॥ ४≍॥

चपेदिकेत्यादी-पिडकार्बुदजातय इति पिडकार्बुदप्रकारा इत्यर्थ ॥ ४८ ॥

उपोदिका काञ्जिकतकपिष्टा

तयोपनाहो लव्योन मिश्र ।

हप्टेरिवृंदानां प्रशमाय कीश्चिद्

दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम्॥ ४६॥

चपोदिकेत्यादि-स्पष्टम् ॥ ४६ ॥

त्तेपोऽर्वृद्जिद्रम्भामोचकभस्मतुपशङ्खचूर्यकृतः । शरटरुधिरार्द्रगन्धकयवजिवद्यनागरैर्वाथ ॥ ४०॥

लेप इत्यादी—रम्मामोचकः कदलीकायहक , तस्य मस्म जार इत्यर्थः । शरटः कृकलास । यनको यनचार ॥ ४०॥ स्तुद्दीगराडीरिकास्वेदो नाश्येदर्वुदानि व । सीसकेनाथ लवर्णे पिराडारकफलन वा ॥ ४१ ॥ स्तुद्दीत्यादि चलार स्वेदा । स्तुद्दीगराडीरिका स्तुद्दीकाराड । तप्तसांजुद-राडेन तथा तप्तसीसकेन तथा तप्तलवर्णेन तथा पिराडारकफलमुत्रास्विष पोट्टलिका वद्धा स्वद कार्यं इत्यर्थं ॥ ४१॥

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहर परः॥ ४२॥
पतामेव कियां कुर्य्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ ४३॥
इति गलगग्ड-गग्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदिचिकित्सा ।

हरिद्रेत्यादौ-पत्तङ्ग रक्षचन्दनम् ॥ ५२--५३ ॥ इति गलगण्डगण्डमालापचीयन्थ्यर्वुदचिकित्सा-विष्टति ।

अथ श्ठीपदचिकित्सा।

लहुनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोत्तर्णैः।
प्रायः श्रेष्ठमहरैकण्णै श्रीपदं समुपाचरेत्॥१॥
पूर्वोक्तसङ्गत्येन श्रीपदिचिकित्सितमुच्यते। लहुनत्यादि—न्पष्टम्।
धुस्तूरेरराडिनिगुराडीवर्षामूशिग्रुसर्षपैः।
प्रलेप श्लीपदं हृन्ति चिरोत्थमतिदारुणम्॥२॥
धुस्तूर्त्यादि—सप्टम्॥२॥
निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवर्टकलम्।
प्रलेपात् श्रीपदं हृन्ति वद्धमूलमपि दृढम्॥३॥
निष्पिष्टमित्यादौ—रूपिका अर्कमूलम्॥३॥
पिराडारकतरुसम्भववन्दाकशिफा
जयति सर्पिषा पीता।
"श्रीपदमुत्रं नियतं बद्धा स्त्रेण जङ्घायाम्॥४॥

पिण्टारकतक स्वनामख्यात । बद्धा स्त्रेणिति श्रश्नापि बन्दाकशिफेति । (श्रय-मध् वन्दाकशिफा मा = धृत तो > पेयम् । श्रथवा श्रीपदाश्रयज्ञवाया रक्तस्त्रेण वन्धनीया ॥ ४ ॥

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा ।
सिद्धार्थिशियुक्तरको वा सुखोष्णमूत्रपेपित ॥ ४॥
हितश्चेत्यादि—गोमूत्रपिष्टास्त्रयो लेपा बोध्या । सिद्धार्थः श्वेतसर्पप ॥४॥
सिहस्वेदोपनाहांश्च श्रुपिपदेऽनिलजे भिपक् ।
कृत्वा गुरुफोपरि शिरां विध्येतु चतुरंगुले ॥ ६॥
केहत्यादि—सुथनम्य । केहम्बद्धापह शिरान्यपाहमूती, न तु स्वतन्त्रतया

केहरयादि — सुश्रनम्य । केहरेनदाधिह शिरान्यधाक्रम्तौ, न तु स्वतन्त्रतया केही देय: मंदक्षीपदाना कफप्रधानतया निरूक्षणीयत्वात् । अयद्य गुल्फीपरि शिरान्यधी रक्षदुष्टी मत्योमेन कार्य्य पश्चाद्वागे ॥ ६ ॥

गुल्फस्याध शिरां विध्येत् ऋीपदे पित्तसम्भवे । पित्तन्नीञ्च कियां कुर्य्यात् पित्तार्श्वदविसर्पवत् ॥ ७ ॥

पैतिकशीपदिविकित्सामाह, गुल्फस्याध इत्यादि—सुश्रतस्य । पित्तन्नेश्वीत चकाराद कफन्नोल क्रिया कुर्य्योदिति श्रेयम्, श्रीपदाना कफन्नधानत्वात् ॥ ७ ॥

मिल्रियां मधुकं रास्नां सिंहस्नां सपुनर्नवाम् ।
पिण्ट्वारनालेलेंपोऽयं पित्तर्रक्षीपद्यान्तये ॥ = ॥
शिरा सुविदितां विध्येदंगुष्ठे रेक्ष्मरुक्षीपदे ।
मधुयुक्तानि चार्भादणं कप्मयाणि पिवेचर ॥ ६ ॥
पिवेत् सर्पपतेलेन रुक्षीपदानां निवृत्तये ।
प्तीकरञ्जवज्ञं रसं वापि यथावलम् ॥ १० ॥
श्रमेनैव विधानेन पुत्रञ्जीवकजं रसम् ।
काञ्जिकेन पिवेच्चूणं मूत्रैवी वृद्धदारजम् ॥ ११ ॥
रजनीं गुडसंयुक्ता गोमूत्रेण पिवेचर ।
चर्पोत्थं रुक्षीपद हन्ति दृदुकुष्टं विशेषतः ॥ १२ ॥
गन्धवंतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन य पिवति ।
रुक्षीपद्यन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तराज्ञेण ॥ १३ ॥

घान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम्। दीपनश्चामद्रोषघ्रमेतत् श्रीपदनाशनम्॥१४॥ गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेग्डरीं नर । जयेत् श्रीपदकोपोत्यं ज्वरं सद्यो न संशय॥१४॥

मिश्रिमित्यादी—हिंसा कालाकडाभेद । शिरामित्यादि—सुष्रतस्य ।
सुविदितामिति व्यक्षाम् । अङ्गष्ट इति पादाङ्गष्टमित्रश्चा । चिप्रमर्मेण उपरि इयङ्गले
शिराव्यथं कार्य्यं , चिप्रमर्भव्यथादि मरण स्यात् । तद्यक्तं सुष्रते ''पादाङ्गष्टाङ्गल्योमेध्ये चिप्र नाम मर्म, तत्र विद्धस्याचेपकेन मरणम्'' इति । कषायणिति कफहरारव्यथादिगणमुक्तकादिगणङ्गनानि । पूतीकरज्ञच्छन्दनमिति कण्टकिकरज्ञपत्रस्वरस्
पलमान कदुतैलाच प्रचिप्य पिवेद । अनेनैव विधाननिति कदुतैलप्रचेपेणेर्थ्यः ।
गन्थवः परण्डः । गोजल गोमूत्रम् । तैलसञ्जकमित्यत्र कदुतैलम् । गोधावती
गोहालियालता पतन्मूलहयका भागः, माषकलायस्य तु भागत्रयम् ॥ ५-१५॥

ऋीपद्भो रसोऽभ्यासाद् गुद्धच्यास्तैलसंयुतः ॥ १६ ॥ श्रीपदभ इत्यादै।—गुद्धच्या रस इति स्वरस काथा वा । तैलमत्र कडुतेलम् ॥१६॥

वृद्धदारकचूर्थम्

तिकदु त्रिफला चन्यं दार्वीवरुणगोजुरम्।
श्रलम्बुषां गुहूचीश्च समभागानि चूणयेत्॥
सर्वेषां चूणमाहत्य वृद्धदारस्य तत्समम्।
काञ्जिकेन च तत् पेयमत्तमात्रं प्रमाणतः॥
जीर्णे चापरिहारं स्याङ्गोजनं सार्वकामिकम्।
नाशयेत् श्ठीपदं स्थाल्यमामवातश्च दारुणम्।
कुष्ठगुलमानिलहरं वातश्ठेष्मज्वरापहम्॥ १७॥

त्रिकट्वित्यादौ-श्रलम्बुषा मुण्डिरो। वृद्धदारस्य तत्समिति-त्रिकट्वादिसर्व-चूर्णसम वृद्धदारस्य चूर्णमित्यर्थः । सार्वकामिकमिति यथेच्छमित्यर्थः ॥१७.।

पिष्पलोत्निफलादारु नागरं सपुनर्नवम् । भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ काञ्जिकेन पियेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः । जीर्णे चापरिहारं स्याद्धोजन सार्वकामिकम् ॥ श्रीपदं चातरोगांश्च हन्यात् सीहानमेव च । श्रीप्रञ्च कुरुते घोरं भसकञ्च नियच्छति ॥ १८॥ विप्तलात्यादौ—श्रीप्रञ्च कुरूत हीत विरेकेण वित्तहरकात् । श्रन्य तु यसा-

दिमि बोर कुरते घतो भसक नियन्छति प्रयन्छतीत्यादु ॥ १८ ॥

कृष्णाद्यमोदकः

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमद्भपलं पलम् । विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् । मधुना मोद्कं खादेत् श्ठीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ १६ ॥ कृष्णेलादौ—कृष्णादीना कर्णादिमान यथाकम क्षेयम् । विंशतिश्च हरीतक्य इलाकृतिमानात् । मध्वत्न मोदककरणोचित देयम् ॥ १६ ॥

सौरेश्वरष्टतम्

सुरसी देवकाष्ठञ्च तिकद्वितिफले तथा।
लवणान्यथ सर्वाणि विडक्षान्यथ चित्रकम् ॥
चिवका पिष्पलीमूलं गुग्गुलुईवुषा वचा।
यवाप्रजञ्च पाठा च शृद्येला वृद्धदारकम् ॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिषृतप्रश्चं विपाचयेत्।
दशमूलीकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥
दिधमण्डसमायुक्तं प्रश्चं पृथक् पृथक्।
पक्तं स्यादुवृतं कल्कात् पिवेत् कर्षद्वयं हवि ॥
श्रीपदं कफवातीत्थं मांसरक्ताश्चितञ्च यत्।
मेद'श्चितञ्च पित्तोत्यं हन्यादेव न संशयः॥
श्रपचीं गण्डमालाञ्च अन्तवृद्धि तथावुद्म्।
नाशयेद् अहणीदीषं श्वयशुं गुदजानि च ॥
परमश्चिकरं हच कोष्ठिकिमिविनाशनम् ।
धृतं सौरेश्वर नाम श्रीपदं हन्ति सोवितम्॥

जीवकेन कृतं हातद्रोगानीकविनाशनम् ॥ २०॥

मारेश्वरष्टते—सुरम पर्णासः वृन्दिलिखिततन्त्रान्तरसवादात् निर्गुयहा वा। [दरामूलीकपायस्य मिलित्वा प्रस्यम्, जल चतुर्गुयम्, रोष प्रस्येमकम्।] धान्य-यूपद्रव काञ्जिकं च तु धन्याककाथः, धान्याम्लेति तन्त्रान्तरपाठात् व्यवहारामावाच ननु क्योद्रवयोः कियन्मान बाह्यामित्याह प्रस्थमित्यादि। सौरेश्वर्यमिति—हन्द्राणी निर्गुयहोपर्यायः, तेन सुरेश्वरा निर्गुयही, तत्कृतत्वात् सौरेश्वर्यमिति सजा। जीव-केनिति जोवो वृहस्पीतः, स्वार्थे कः। अन्यलाप्युक्तम्—"द्राचा दुरालमा कृष्णा तुगा कर्कटकी जया। एषा श्रद्धणानि चूर्णानि योजयन्मधुसपिषा। कासश्वास्वर- हर विरोवात् तमक जेयत्। निर्मित जीवकेनेद कुमाराया सुखावहम्" इति ॥२०॥

विडङ्गाद्यतैलम्

विडद्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा।
भद्रदार्वेलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च।
तैलं पर्क पिवेद्यापि श्रीपदानां निवृत्तये॥ २१॥
इति श्रीपद-चिकित्सा॥

विडड़ाडतैले--- मद्रदारु देवदारु, पलकाख्यो होगलः पलवालुक इत्यन्ये, पेटिकेत्यपरे । विडड़ादाना कल्को द्रवन्तु जल चर्तुगुण्यम् ॥ २१ ॥ इति श्रोपदचिकित्सा विद्यतिः ।

अथ विद्रधि-चिकित्सा।

जलाकापातनं शस्तं सर्वसिक्षेत्रच विद्रघो ।

मृदुर्विरेको लघ्यम्नं स्वेदः पित्तोद्भवं विना ॥ १ ॥

प्रागुक्तसम्बन्धादेव विद्राधिरुच्यते । मृदुर्विरेक शति—अयब मृदुर्विरेको

महुधा कार्यः । गम्भीरधातुगतदोषकृतत्वात् विद्राधिरिति वदन्ति ॥ १ ॥

Ċ

वातझमूलकल्केस्तु वसातैलघृताप्लुतैः।
सुखोष्णो वहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥
वातझेलाहि—सुश्रुतस्य। वातझमूल दरामूलम । वातझसाने झुरङ्गीति पाठे
सरङ्गी शोभाजनक ॥ २ ॥

खेदोपनाहा कर्नच्याः शिष्टमूलसमन्विता । यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धीपष्टैः प्रलेपयेत् । विलीयते च्रोनैवमपकश्चैव विद्धि ॥ ३॥

स्वेदेलादौ — स्वेदो वेशवारादिभिःः । यदाह सुश्रुत — वेशवारै सक्तरार पयोमि पायसैस्तथा । स्वेदयेचापि सनतम्" इति । उपनाहोऽपि तत्नैवोकः, यथा "आनूपौदकमासन्तु काकोल्यादि सतर्पणः । कोहाम्नसिद्धो लवण प्रयोज्यश्चोप- नाहरें" इति । सिद्धिपष्टैरिति उत्स्विक्षपिष्टै ॥ ३ ॥

पुनर्नवादारुविश्व-दशमूलाभयाम्मसा । गुग्गुलुं रुवुतैलं वा पिवेन्मारुतविद्रधौ ॥ ४॥ पुननेवलादौ—भ्रम्मसा काथेन॥ ४॥

पैतिकं शर्करालाजा-मधुकैः शारिवायुतैः । प्रदिह्यात् चीरिपष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ ४॥

पैतिकमित्यादि - सुश्रुतस्य । योगद्द्येऽपि चीर पेपयार्थम् । शारिवा अनन्तमूलम् । पयस्या चीरकाकोली ॥ ४ ॥

पिवेद्वा तिफलाकाथं तिवृत्कल्कात्तसंयुतम्। पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम्॥६॥ पिवेदेति—सप्टम्॥६॥

यष्ट्याद्वशारिवादूर्वानलमृतै सचन्द्नैः। चीरिपिष्टै प्रतेपस्तु पिचविद्रधिशान्तये॥ ७॥

यष्ट्योह्नि स्पष्टम् ॥ ७ ॥

इएकासिकतालेहि गोशकृतुष्पांग्रिभ । मूत्रिषष्टेश्च सततं सेद्येत् श्लेष्मविद्विम् ॥ ८॥

इष्टकेलादि — सुश्रतस्य । श्रत्न मृत्तिपेष्टेरिति प्रमादपाठ । किन्तु मृत्रैरुष्णै-रिलेव पाठ सुश्रते पट्टाते । उष्णैश्च मृत्तिदेवस्वद इति टीकाकृता व्याख्या । श्रम्ये तु लोह लोहचूर्णम्, गोशकृत् गोमयम्, एभिरिष्टकाचूर्णादिभिर्मूत्विपिष्टेरेर्ग्यह-पत्तवदै, स्वेद इति व्याख्याय मृत्रिपिष्टेरिति पाठमेव स्वीकुंवन्ति ॥ म ॥ दशमूलीकषायेण सस्नेहेन रसेन वा। शोथं वर्णं वा कोण्णेन सशूलं परिषेचयेत्॥ १॥ दशमूलीलादी—संबेहेनेति पूर्वेण परेण च सम्बध्यते। रसेनेति मास-रमेन॥ १॥

विफलाशिस्रवरुण-दशमूलाम्मसा पिवेत्।
गुग्गुलुं मूत्रगुक्तं वा विद्वधौ कफसम्मवे॥ १०॥
विफलेलादि—स्पष्टम्॥ १०॥
पित्तविद्वधिवत् सर्वे। कियां निरवशिषतः।
विद्वध्योः कुशल कुर्याद्वक्तागन्तुनिमित्तयोः॥ ११॥
पित्तेलादि—सुष्रतस्य। विपुलवचनस्यापि सर्वशब्दस्य दृष्टत्वात् पुननिरवशेषत इत्युक्तं कुरुक्तलेपादिविध्यतिदेशार्थम्॥ ११॥

शोभाञ्जनकिर्यृहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः। श्रचिराद्विद्रधीन् हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः॥ १२॥ शोभान्त्रनवेसादि—सम्बस्॥ १२॥

शियुमूलं जले घौतं दरिषष्टं प्रगालयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रिधि नरः ॥ १३ ॥ शियृमूलमित्यादो—दरिष्टमीषत्पिष्टम् ॥ १ ॥

श्वेतवर्षासुवी मूलं मूलं वरुणकस्य च । जलेन कथितं पीतमपकं विद्वर्धि जयेत् ॥ १४ ॥ रवेतेत्यादि—स्पष्टम् ॥ १४ ॥

वरुणादिगणुकाथमपकेऽभ्यन्तरोत्थिते । ऊषकादिशतीवापं पिवेत् संशमनाय वै ॥ १४ ॥

वरुषेत्यादि — मुश्रुतस्य । वरुषाधूषकादिगर्यौ सौश्रुतौ ॥ १५॥

शमयति पाटामूलं चौद्रयुतं तग्डलाम्बुना पीतम्। श्रन्तभूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य॥ १६ ॥ श्रपके त्वेतदुद्दिएं पके तु वणवत् किया॥ १७॥

रामयतीत्यादि ---स्पष्टम् ॥ १६-१७ ॥

सुते अप्यूद्धं मध्येव मैरेयाम्लसुरास्तः । पेयो वरणकादिस्तु मधुशियुरसो अथ वा ॥ १८ ॥ सुते अपीत्यादि — सुश्रतस्य । जद्धं सनतामापि कादा चिकिः त्साभिधानादनुमन्तव्या । मधुशियुद्धम इति रक्तशो भाक्षतनृत्तस्य मूलम् । मेरेय मध-विशेषम् । श्रम्ल काजिकम् ॥ १८ ॥

वियङ्गुधातकीलोधं कद्फलं तिनिशत्वचम्।
एतैस्तैलं विपक्षव्यं विद्वधौ रोपणं परम्॥ १६॥
इति विद्वधि-चिकित्सा॥

प्रियइ वित्यादि — मुझतस्य । तिनिशोऽतिमुक्तकः । त्वचिमिति निर्देशास्वच-राब्दोऽकारान्तो नपुसकिति होऽप्यसीति गम्यते । चन्द्राटे तु तिनिश धवमिति पाठो दृश्यते । तिनिमन्थवमिति पाठान्तरे तिनिस्तिनश एव । प्रियद्ग्वादिभि कल्कः , अ द्रव जल चतुर्गुणम् । प्रस्थ तैल मञ्जमविद्रभी सुश्रते पठमते ॥ १६ ॥

इति विद्रधिचिकित्मा-विवृति ।

अथ व्रणशोथ-चिकित्सा

श्रादौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् । तृतीयमुपनादञ्च चतुर्थी पाटनिकयाम् ॥ पञ्चमं शोधनञ्जैव पष्ठं रोपणमिष्यते । एते क्रमा व्यास्योक्ता सप्तमो वैकृतापद्द ॥१॥

विद्रध्युक्तसवादात् प्रायेण तुल्योपक्रमत्वाचानन्तर व्रखशोध उच्यते । आदी विम्लापनीमत्यादि—सुश्रुतस्य । अनेन च वाक्येन चिकित्मितस्थानवद्यमाण-पण्ट्युपक्रमाणामन्तर्भावेण सप्तत्व सुखावकाषार्थं स्वरूक्षाने सुश्रुतेनोच्यते, तेन विम्लापनिष्ट न केवलमगुष्ठादिमर्दनमात्रे परिमाणित प्राध्मम्, किन्तु विम्लाप्यतः उनेनेति न्युत्पस्या विद्यपिमार्जनरूपे श्रमने शोधविलयनक्ते प्रलेपपरिपेकाम्यक्षा-दाविष वर्चते । अवसेचनमिप शोधनरूप्टन्त परिमार्जने वमनविदेक्तरक्षमोच्छादी

वर्तते । उपनाहोऽपि स्वेदे पाचनिष्येढं च वर्तते । एवमपरेऽप्युपक्रमा शेषेषु यथायोगमन्तर्भाव्याः, किंवा पष्ट्युपक्रमेषु प्राधान्यात् सप्त विम्लापनादय कथ्यन्ते । विम्लापनादयो माविज्ञखविधातप्रयोजकतया ज्ञखस्येत्युक्तम् ॥ १ ॥

मातुलुद्गाशिमन्यौ च मद्रदारु महौषधम्। श्रिहिस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा॥२॥ मातुलुङ्गेत्यादि—सुश्रुतस्य—मातुलुङ्गस्य मूलम्। श्रिहेसा कुडकरालिः कालाकडाभेट ॥२॥

कल्क काञ्जिकसम्पष्टः स्तिग्ध शाखोटकत्वचः।
सुपर्ण इव नागानां चातशोथिवनाशन ॥ ३॥
कल्क इत्यादौ—किन्ध इति इतेन ॥ ३॥
दूर्वा च नलमूलश्च मधुकं चन्दनं तथा।
शीतलाश्च गणा सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा॥ ४॥
दूर्वत्यादौ—शीतलाश्च गणा इति काकील्याषुत्यलादिन्यग्रेभाषाः सौश्रताः॥४

न्यग्रोघोह्रम्बराश्वत्थ-सत्त्वेतसवहकते । ससर्पिष्कः प्रतेष स्याच्छोथिनवापण पर । स्रागन्तो शोणितोत्थे च एष एव क्रियाक्रमः ॥ ४॥ न्यग्रोथेत्यादि—शोधिनवापण इति शोधशमन । ९१ ऐविति पैत्तिक्रमणशोध-विहित ॥ ४॥

श्रजगन्धाश्वगन्धा च काला सरलया सह।
एकेशिकाजश्रङ्की च प्रलेपः स्केष्मशोथहा॥६॥

श्रजगन्धेत्यादी—अजगन्धा छागलगन्धेति मानुमती, श्रन्ये यमानिकामाहु । काला श्रिहिंसा कालाकडाभेद । सरला मरल एव, एकेशिका त्रिष्टदिति मानुमती, श्रन्ये तु सरला त्रिवृत् एकेशिका पाठेत्याहु । श्रजश्रद्धी कर्कटश्रद्धीति मानुमती चन्द्रिका च ॥ ६ ॥

पुनर्नवादारुशियु-दशमूलमहौषधैः। कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विघीयते॥ ७॥ पुनर्नवेत्यादि—स्पष्टम्॥ ७॥

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दतञ्च पतित तथा। न च पर्स्युपितं ग्रुष्यमाण नैवावघारयेत्॥ ८॥

न रात्रावित्यादि--न रात्री लेपन दथादित्यादिना निषेधमुद्रेन विध्युपदर्शन रात्रो लेपनस्य सर्वथा निषेधार्थ, प्रलेपनिषेधेन प्रदेशदिविधान रात्रावि स्चिते, तेन य प्रदेही वातनफाविषय स रात्राविष देयोऽविरुद्धत्वात्, पाचनलेपस्तु पाचन-त्वादेव दातम्य । तथा पित्तजे वातपित्तजे च शतधौतप्रताम्यद्गस्नथा चीरशीत-जलादिसेकश्च निर्वापणतया दीयत एव । तथा व्रणकलकोऽप्यहोरात्रस्थायिकस्थ विहित पत । उनतञ्ज वैतरखे—'सर्वशस्तु निशा प्राप्य लेपनन्तु निवर्षयेत् । चीरसिं -प्रलेपन्त हित्वा प्रच्छादनन्तथा' इति । रात्री लेपदाने पुन सुश्रतेन दीप उक्त., यथा 'न चालेप रात्री प्रयुक्षीत माभूच्छैत्यिपिहितीष्मणस्तदिनिर्गमादिकारप्रयुद्धिः, इति । रात्रिस्वाभाविकरौत्यात् सवृतरोमकृपत्वाच पुनरालेपननापि त्रयोष्मा वहि-रनिर्गच्छन्नवरद्धो विवृद्ध सन्नितरा त्रखे त्रखशोथे वा दाष्ट्रपाकी क्रुट्यादिति भावः । प्रलेपप्रदेहयोस्तु भेद सुश्रतेन प्रदर्शिता यथा 'प्रलेप शीतस्तनुरविशोपी विशोपी च। विशोपीति पीडियतन्ये विशोपीत्यर्थ । 'प्रदेहस्तूष्ण शीती वा बहलो बहुर-विशोपी च। वहल इति आर्दमहिषचमैप्रमाखोत्मेथ प्रलेप:। प्रदेहस्तु प्रलेपापेक्तया नहतः। रोथि तेपश्च लेमाभिमुख देय । यदाह मुश्रनः-"तत्र प्रतिलोममानि-म्पेत् न चानुलोम, प्रतिलोमे हि सम्यगौपधमवतिष्ठते अनुप्रविशति च लीमकृपै स्वेदवाहिमि: शिरामुखैर्वार्थं प्राप्ताति " इति । प्रतिज्ञामभिति लोमाभिमुखम् । न च नैनेति - प्रतिपेधद्रयेन अवधारयहेनेत्यर्थ । अवधारणद्य दूरीकरणम् । तन्त्रान्तरेऽप्युक्त,—" लेपश्चीद्धृत्य दातन्यो न यावच्छुष्कता ब्रजेट् । गुणवान मनेच्छुको मूर्या दोष कराति सः" इति ॥ = ॥

शुष्यमाण्मुपेन्नेत प्रदेहं पीडनं प्रति।

न चापि मुखमालिम्पेत् तेन दोपः प्रसिच्यते ॥ ६ ॥ अस्वैनापनादमाह—शुष्यमाणामित्यादि—छपेछतेति यानच्छुष्कता प्रयानि तानत् न दूरीकुर्यादित्यर्थ । पीडन प्रतीति व्रवापाडनमुद्दिश्य यो लेप इत्यर्थ । व्रवापाडनेलपत्तु स एन यः शुष्कः सन् व्रवामुख पीडियत्वा पूय स्नानयि । तनेति मुखेन । दोप इति पूय ॥ ६ ॥

स्थिरान् मन्द्रकाः शोथान् स्नेहैर्वातकफापहै । श्रम्यज्य सेद्यित्वा च वेखुनाड्या तत. शनैः। विम्लापनार्थे मृद्गीयात् तलेनाङ्गप्रकेन चा॥ १०॥ कठिनशेथि पारिमाधिकाविम्लापनमाह स्थिरानित्यादि—मुश्रुतस्य। वेणु-नाह्या वेणुदर्यहेन, तलेन करतलेन ॥ १०॥

रक्षावसेचनं कुर्यादादावेव विचन्नणः। शोथे महति संरब्धे वेदनावति च व्रणे॥ निवारणाय पाकस्य वेदनोपशमाय च। श्रविरोत्पतिते शोथे कार्य्यं शोणितमोन्नणम्॥११॥

रक्षावसेचनिमत्यादि — आदावविति उत्पन्नमात्रे । सुश्रुतेऽप्युक्त — श्रचिरा-त्पिति शोथे कार्यं शोषितमोचणम् " इति । शोध इति त्रणपूर्वरूपशोथे । मरव्य इति शोधे, पतच्च त्रण इत्यनेन योज्यम् । शोधे इत्युक्तापि पुन. सरव्य इति वचनम् पतादृशसशोधे त्रणे विशेषण रक्षसाविधानार्थे, सुश्रुतेऽप्युक्त — "सशोधे कठिने चामे सरक्षे वेदनावति । सविषे च विशेषण त्रणे विस्नावण हितम् । अन्ये तु पच्यमानावस्थत्रणविषयक्ष मरव्य इत्यादिवचन श्रेयमित्याद्व ॥११॥

यो न याति शमं लेपस्वदसकापतर्पणैः । सोऽपि नाशं त्रजत्याशु शोथ शोणितमोत्त्वणात् ॥१२॥ उपक्रमान्तरोपत्त्वा रक्षमोत्त्रणस्य प्रकर्षमाह यो न यातीत्यादि ॥ १२॥

एकतश्च कियाः सर्वा रक्षमोत्तर्णमेकतः । रक्षं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रक्ष्।१३॥ रक्षीमत्यादी—व्यम्लता विदग्धताम् ॥ १३॥

स चेदेवमुकान्तः शोथा न प्रशमं वजेत् तस्योपनाहैः पकस्य पाटनं हित्मुच्यते ॥ १४ ॥

सचिदित्यादि--उपनाहैरिति सोष्णवहलवन्घलेपे. । पक्रस्य पाटनमिति दारगोष्ये. शस्त्रेर्वा ॥ १४ ॥

तैलेन सर्पिषा वापि ताभ्यां वा शक्कुपिरिडका।
सुखोष्णा शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ १४ ॥

तानेवोपनाद्यानाह तैलेनेत्यादि—तैलेन वात, कफे च सर्पिषा, पित्ते रक्ते च ताम्या वेति तैलसर्पिम्या मिलिताभ्याम् । चर्तुर्घेवेवित देशभेदेन विकल्पो श्रेय इत्याहु ॥ १५.॥ सितला सातसीवीजा दध्यम्ला शक्तुिपिरिडका ।
सिक्ष्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ १६ ॥
सित्तिलादी—किण्व स्रावीजम् ॥ १६ ॥
गवां दन्तं जले घृष्टं विन्दुमात्रं प्रलेपनात् ।
श्रत्यर्थकिटिने वापि शोथे पाचनमेदनम् ॥ १८ ॥
यालवृद्धासहन्तीण-भीक्षणां योपितामिष ।
मर्मोपिरे च जाते तु पके शोथे च दारुणे ॥ १७ ॥
वालेलादि—स्पष्टम् ॥ १७-१८ ॥
कद्वतेलान्वितेलेंपात् सर्पानिम्मोक्रमस्मि ।
चय शाम्यति गएडस्य प्रकोपः स्फुटति द्वतम् ॥१६॥
कद्वतेलत्यादि—वय श्युपनय । गएडस्य त्रणस्य । प्रकोप इति प्रकोप-

हेतुपूयरूपदोप ॥१६॥

चिरविल्वाग्निको दन्ती चित्रको इयमारकः। कपोतकद्वग्रश्चाणां पुरीपाणि च दारणम्॥ २०॥ ज्ञारद्रव्याणि वा यानि ज्ञारो वा दारणः पर ॥ २१॥

द्रव्याणा पिच्छिलानान्तु त्वङ्मूलानि निपीडनम् । यवगोधूममापाणां चूर्णानि च समासत ॥ २२ ॥ पीडनद्रव्याखाइ द्रव्याणामित्यादि—पिच्छित्रानामिति राष्ट्रशालमलीप्रभृती-नाम् । रदञ्ज पीडन मर्गादिसमोपस्यस्तममुख्तव्यविषय श्रेयम् । उक्त हि वाग्मटे- ''पूर्यगर्भानगुद्वारान् सोत्मद्वान् मर्मगानि । नि स्नेहे. पाडनद्रव्येः समन्तात् परिपोटेयत्' इति ॥ २२ ॥

तत प्रचालनं काथ पटे।लीनिम्बपत्रजः।
श्रिवशुद्धे विशुद्धे च न्यश्रोघादित्वगुद्भव ॥ २३॥
तन स्त्यादि—पटे।लीपत्र पटोलपत्रमेव श्रिवशुद्ध इति चेन्नद ॥ २३॥
पञ्चमूलद्वयं वाते न्यश्रोधादिश्च पैत्तिके॥ २४॥
श्रारम्बधादिको योज्य कफज सर्वकमसु॥ २४॥

पद्ममूलेत्यादि—न्यमोधादिगण सीश्रुत । सर्वकर्मस् प्रचालनेलपनादिपु ॥ २४-२५॥

तिलाप्टकः

तिलकलक सलवणो हे हरिद्रे त्रिवृद् घृतम्।
मधूकं निम्वपत्राणि लेप स्याद् व्रणशोधनः॥२६॥
निम्वपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाधिकम्।
दुप्रव्रणप्रशमनो लेप शोधनकेशरी॥२७॥
एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्॥२०॥
पटोलीनिलयण्ड्याह्निवृह्न्तीनिशाद्वयम्॥
निम्वपत्राणि चालेपः सपद्वव्रणशोधनः॥२६॥

तिलकस्क इत्यादि वचन स्पष्टम् । शारिवामूलमनन्तमूलम् । पटोली पटोल-पन्नम् । पट्ट अत्र सैन्धवलवर्णम् ॥ २६—२६ ॥

> त्रिफला खिद्रो दावीं न्यग्रोधादिवलाकुशा । निम्वकोलकपत्राणि कषाय शोधने हितः॥ ३०॥

त्रिफलेत्यादी—न्यग्रेषादीति न्यग्रेषोडुन्वराश्वत्थ-कदम्वस्य-वेतसा । कर-वीरार्ककुटजाः कषायाः त्रखरोपणाः" इत्यनेन शोधहरोपकमे चरकोक्त प्राह्मम्। श्रस्य योगस्य चरकोक्तत्वातः, किंवा पञ्चवत्कलमेव प्राह्मम् । निम्वकोलकपत्राणि कोमल-निम्वपत्राणीत्यर्थ इति दीपिका । श्रन्य तु कोलको बदर इत्याहु , युक्तमिद वाग्मट-प्रमाणात् । श्रन्ये तु कुलकपत्राणीति पठित्वा पटोलपत्राणीति व्याचक्तते ॥ ३०॥ श्रोपतपृतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् । करक संरोपण कार्यस्तिलानां मधुकान्वितः ॥ ३१ ॥ अपेतित्यादि—वाग्मटस्य । मधुकान्वितो यष्टिमधुयुक्त । अत्र तिलजो मधु-सयुत इति पाठ सुश्रते बहुपुस्तके च दृश्यते, वाग्मटे तु सर्वत्रैव मधुकान्वित इति, उभयमपि प्रमाण स्मृतिद्वैषवत् ॥ ३१ ॥

निम्वपत्रमधुभ्यान्तु युक्त संशोधनः स्मृत ॥ २॥
पूर्वाभ्यां सर्पिपा वापि युक्तश्चाप्युपरोपणः ॥ ३२॥
निम्वपेत्रसादि—पूर्वेक्तश्चीष्टमधुयुक्तस्तिलकल्क एव निम्वपत्रमधुभ्या मिपपा
च युक्ता रोपण , श्रिपशच्दात् शोधनोऽपि भवतीर्स्थ ॥ ३२-३३॥

निम्यपत्रतिलै कल्को मधुना त्ततरोधिन । रोपण सर्पिपा युक्तो यवकल्केऽप्ययं विधि ॥ ३४ ॥ निम्बपेत्रलादि—उक्ततिलकन्कविधि यवकल्केऽप्यतिदिशति यवकल्केऽप्यय विधिरिति ॥ ३४ ॥

निम्यपत्रघृतत्तौद्ग-दार्ग्वीमधुकसंयुता । वर्त्तिस्तिलानां करुको वा शोधयेद्रोपयेद् व्यणान् ॥ ३४॥ निम्वपत्रघतेसादि—एभिद्रव्यंवस्त्रमालिप्य वर्त्ति कार्यो । वर्तिदानाविषये। व्यण सुश्रते यथा—"श्रम्त पूयानणुमुद्धान् गम्मीरान् मामसाश्रतान् । शोधनद्वय-युक्ताभिवंतिभि समुपाचरेत् इति । तिलाना करुको वेति लेपविषया ॥ ३४॥

सप्तदलदुग्धकलकः शमयति दुप्त्रणं प्रलेपन ॥ ३६ ॥
मधुयुक्का शरंपुद्धा सर्वत्रणरोपणी कथिता ॥ ३७ ॥
सप्तदल इत्यादि—सप्तदल मन्नपर्णस्त्रस्य चीरम् ॥३६-३७ ॥
मानुपशिरःकपालं तदस्थि वा लेपनं मूत्रेण् ।
रोपणिमद चतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ३८ ॥
मानुपशिर कपालमिति पुराण माध्यमिलर्थ । मृत्रेणेति गेम्न्रेण् ॥ ३८ ॥
नणान् विशोधयेद् वर्त्या स्टमास्यान् सन्धिमर्मगान् ।
अभया त्रिवृता दन्ती-लाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ३६ ॥
नणानित्यादि—नाग्मटस्य । अभवेत्यस्य स्थाने कृतयेत्येव पाठो वाग्मटवहुप्रत्वेश दृश्यते ॥ ३६ ॥

सुपवीपत्रपत्त्र कर्णमोटकुठारिकाः। पृथगेते प्रलेपन गम्भीरवणरोपणा ॥ ४०॥

सुपनीत्यानि—सुपनी कारवेल्लः, पत्त्रः शालिखः, कर्णमोट स्वनाम-स्थात । कुठारिका कुठारिया, कुठरक इति पाठे कुठरक पर्णास ॥ ४०॥ पञ्चवल्कलचूर्णैवी शुक्तिचूर्णसमायुते । धातकीचूर्णलोधेवी तथा रोहन्ति ते व्या ॥ ४१॥

पन्चनत्कलेत्यादि—चरकस्य । शुक्तिनंदरी तस्यास्त्वक् । शुक्तिचूर्णसमान् शुतिरिति पञ्चनत्कलचूर्णैरित्यस्य विशेषणम् ॥ ४१ ॥

सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणा माहतोत्तरा ।
तेषां तिलानुमाश्चेव श्रृष्टान् पयसि निर्कृतान् ॥
तेनैव पयसा पिष्द्वा दद्यादालेपनं भिषक् ॥ ४२ ॥
मदाह इत्यादि—उमा अतमी । पयसि निर्कृतानिति दुग्धे निर्वापितान् ॥४२॥
वाताभिभूतान् सास्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् ।
यवाज्यभूर्जमदनश्चीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ४३ ॥

वातामिभूतानित्यादि--वाग्भटस्य । सास्रावान् श्रत्पस्रावान् । भूजों भूजें-'श्रन्थि ।' मदनः सिक्थक इति वृन्दिटप्पणी । श्रीवेष्टको नर्वनीतखोटी, सुराह्य देवदारु ॥ ४३ ॥

> श्रीवासगुग्गुल्वगुरु-शालनिर्यासधूपिता । कठिनत्वं व्रणा यान्ति नश्यन्त्यास्राववेदना ॥ ४४ ॥

श्रीवासेत्यादी--श्रीवासी नवनीतखोटी । न च पूर्वोक्तेन पौनरुक्त्यम्, श्रस्य वचनस्य तन्त्रान्तरीयत्वात् । षृन्दिटिप्पणिकायान्तु पौनरुक्त्यमाशङ्क्षय पूर्वोक्तश्री-वेष्टकशब्देन कुन्दुरुरिति व्याख्यातम् । शालनियामो धूनक् ॥ ४४ ॥

तिलाः पय. सिता चौद्रं तैलं मधुकचन्दनम् । लेपेन शोधरुग्दाह-रक्तं निर्वापयेद् व्रणात् ॥ ४४ ॥ तिला इत्यादी---पय पेपणार्थम् । मिता शर्करा । चौद्रतैलाभ्या सन्धाय लेपो देथ: ॥ ४५ ॥ पित्तविद्धिवीसपेशमनं लेपनादिकम् ।
श्रिप्तद्रिधे वर्षे सम्यक् प्रयुद्धीत चिकित्सक ॥ ४६ ॥
रदानं शारीरव्रविकित्नामिश्राग व्रणसामान्यादिसकेव व्रणधिकारे
आगन्तुव्रविकित्नाभिश्रानार्थे प्रकरणमारम्यने । अत्र प्रथममित्रद्रश्वव्यचिकित्सान्माह पित्तत्यादि ॥ ४६ ॥

महाराष्ट्रीजटालेपो दग्धिपद्यावचूर्यानम् । जीर्यगेहतुर्याच्चूर्या दग्धव्याहरं परम् ॥ ४७ ॥ महाराष्ट्रोजटा महाराष्ट्रीमूलन् । अयमको योगः । पिष्ट पिष्टकमेव । इन्ध-पिष्टकचूर्यनावचूर्यनमिति दितीय ॥ ४७ ॥

जीरकाद्यं घृतम्

जीरकपकं पश्चात् सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरति। घृतमभ्यद्गात् पावकद्ग्धततु खं ज्ञणार्द्धेन॥ ४८॥

जीरकेत्यादि—नीरकस्य कन्क , जल चतुर्प्रेणम् , पश्चात् मिछे च मिन्थ-मंत्रमयोः प्रेनेप ॥ ४= ॥

अन्तर्वग्यकुठारको दहनजं लेपाजिहन्ति त्रण्म् । अभ्वत्थस्य विशुद्धवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात् ॥४६॥ भनित्यादा —कुठारक कुडालिया, म च स्थालीमध्ये अन्तर्भृम दग्यन्य । उण्टनादित्यवचूर्णनात् ॥ ४६ ॥

श्रभ्यद्गाहिनिहन्ति तैलमाखिलं गराडूपदे साधितम् । पिष्ट्वा शालमलित्लकैजलगता लेपात् तथा वालुका॥४०॥ गरहपदे. किन्तुलुकै करक , जल चतुर्गुणमनुकलादिति निश्चल । जल विता चटचटाविध पाक इत्यन्ये । शालमलीत्लकैरिति सहार्थे तृतीया ॥ ५०॥

सद्य ज्ञतव्रगं वैद्य सम्मूलं परिपेचयेत्। यष्टीमधुककल्केन नातिशीतेन सर्पिपा ॥ ४१ ॥

रदानी मद्य स्त्यादिना सचोव्रणीचिकत्मामाह सथ इति सप्ताहाम्यन्तरे । पिटमधुक्युक्तेनेति-यप्टिमधुकं कल्कीष्टत्य चतुर्ग्रेणजलेन यथाविधि इत माधनीयम्। यदि पुनस्तवर्या यथाविधि धर्तामद पक्षु न शक्यते, तदा इतात् पलइय, जलात् चतु पल यष्टिमधुकस्य कर्षद्रय किञ्चित् पक्तावतार्थ व्या सचेयिदत्याहु । नाति-शोतेनेति कदुष्णेनेत्यर्थः, किञ्चिदनुष्णेनेति पाठान्तरम् ॥ ५१ ॥

> बुद्ध्वागन्तुवणं वैद्यो घृतत्त्तौद्रसमायुतम् । शीतां क्रियां प्रयुक्षीत पित्तरक्षोष्मनाशिनीम् ॥ ४२ ॥

बुद्भ्वेत्यादि — चन्द्राटस्य । बुद्भ्वेत्यत्र बद्भ्वेति पाठ साधु । वन्धे हि सधोन्नणेषु छिन्नभिन्नादिषु सन्धानजनकत्या प्रधानम्, छक्ष हि—"वन्ध प्रधान तेन शुद्धित्रणरे।पणमाश्यसन्धर्येष्व" इति । चन्द्राटादावयमेव पाठे। दृश्येत । बुद्भ्वेत्यादिपाठे छत्तचीद्रसमायुतिमत्यनन्तर कृत्वेति शेष , किं वा प्रयुक्तिति क्रिया विशेषणम् ॥ ५२ ॥

कान्तकामकमेकं सुश्रदणं गव्यसर्पिषा पीतम्। शमयति लेपान्नियतं व्रणमागन्तुजं न सन्देहः ॥ ४३ ॥ कान्तित्यादौ कान्तकामक मद्रमुस्तकम्। ष्टतमत्र शतभौतामिखुपदिशन्ति, प्व वद्यमाणेऽपि ॥ ४३ ॥

श्रपामार्गस्य संसिक्षं पत्रोत्थेन रसेन वा । सद्योव्रेषेषु रक्षन्तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ४४ ॥ श्रपामार्गसेत्यादि—सप्टम् ॥ ५४ ॥ कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं सम्प्ररोहति । सद्यःशस्त्रत्तं पुसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥ ४४ ॥

कंपूरेत्यादि — सघृत यथा स्यात्तथा कपूरपूरितम् , तेन कपूरचूर्णेन शत-भौतघृतिमिश्रेण खड्गादिस्तत प्रपूर्व बंधीयादित्यर्थ ॥ ५५॥

शरपुङ्का काकजङ्घा प्रथमं महिषीसुत— मलं लज्जा च सद्यस्क-व्रण्वं पृथगेव तु ॥ ४६॥

शरपुरेत्यादि—महिषीसुतस्य मलम् । वृततैलवसामज्जवेसवारपयोदिधिमास भावनतोयामिमितिवत् भय प्रयोग समर्थनीय । श्रिमनवजातमिहषीवत्सस्य प्रथम मलिमत्यर्थ । लज्जा लाजालु अन्ये तु वराहकाता श्र्त्याहु. ॥ ५६ ॥

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यःचतविरोहण् ॥ ४७॥ चक्रतेलं चते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥ ४८॥ शुन इति कुक्कुरस्य तन्त्रान्तरमम्बादान् मर्बाद्रकृष्णकुक्कुरीजिहेत्यन्ये । चक्रतेल तत्कालचकोद्भृतमनृष्टमपपतेलन्। भ्रन्ये तु चक्रकाष्ट्राद्भव तलमाहु ॥५७ ५०॥

यवत्तारं भन्नयित्वा पिएडं द्दाद् व्रणोपरि । श्रुगालकोलिमूलेन नप्रशल्यं चिनि सरेत्॥ ४६॥ लाङ्गलीमूललेपादा गवानीमूलतस्तथा ॥ ६०॥

श्रन्त गल्यचिकित्नामाह यवचारियत्यादिना तथेत्यन्तेन । यवनार कर्ष १, उण्याजल पल २, श्रालोड्य पीत्वा नष्टगल्यत्रणापिर श्रुगालकोलिमूल पिष्ट्वा पिपटो देय । श्रुगालकोली शेयाकुन शित स्थात ददरीमेह । एव लाहलीयामूलगी-रचकर्कटीमूलान्वामिप ॥ ५६-६०॥

त्ततोष्यको नियहार्थे तत्कालं विस्तस्य च। कपायशीतमञ्चर-स्निग्वा लेपादयो हिता ॥ ६१॥

चनेत्यादि—नात्मदस्य । कषाय इति रम ॥ ६१ ॥ श्रामाशयस्थे रुघिरे वमनं पथ्यमुच्यते । पक्काशयस्थे देयञ्च विरेचनमसंशयम् ॥ ६२ ॥

श्रामारायस्य इति सुश्रुतस्य—श्रामागयस्थमपकाशयस्यम् । अत्र पकाशयस्य
रक्ष विरेचनीन मुखेन निर्दर्भु शक्यतः इत्यभिप्रायेण विरेचनीनधान न तु पिचप्रत्यनीकतया पकाशयस्य वानस्थानत्वात्। अन्ये तु पकराय्येन पाक उच्यते न पकाशयः,
तेन पकाशयस्य इत्यन्नपच्यमानाशयस्य इत्यर्थं, त्रत्रव हि पिचस्थानत्वेन विरेचनसुपयोगिकमित्याद्व ॥ ६० ॥

काथो वंशत्वगेरएड-श्वदंष्ट्राश्माभेदा कृत । सिंदुक्सैन्यव पीत कोष्ठस्य स्नावयेदस्क्॥ ६३॥

काथ इत्यादी---वरात्वक् वशनली, अझ्मीमत् पाषायोमदी । हिङ्गमैन्धवन्तु प्रदेप्यन् । अय योग प्रमानात् रक्ष स्नावयति ॥ ६३ ॥

यवकोलकुलत्थानां नि स्नेहेन रसेन च। सुझीतान्नं यवागृं वा पिवेत्सैन्घवसंयुताम्॥ ६४॥ योतादि—स्वष्ट ॥ ६४॥ श्रत्यर्थमस्रं स्रवति प्रायशो यत्र वित्तते ततो रक्षत्तयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥ स्रोहपानं परिषेकं स्रोहलेपोपनाहनम् । स्रोहवस्तिश्च कुर्वीत वातघ्रौपधसाधितम् ॥ ६४ ॥

श्रत्यर्थामित्यादि — नाग्भटस्य । निज्ञत इति विविधचेत छित्रमित्रादौ । छिट्ट लेपोपनाहनमिति स्नेहयुको लेप स्नेहयुक्तसुपनाहन्नः, किग्तु नाग्भेट स्वेदलेपोपनाहन-भिति पाठ । तन्मंत स्वेदो धान्यस्वेद ,उक्तञ्च सुश्रते—"धान्यस्वेदाश्च कुर्वात स्निग्धा-न्यालेपनानि च" इति । नातन्नीषध भद्रदार्वादि ॥ ६५ ॥

इति साप्ताहिक प्रोक्तः सद्योवणहितो विधिः।
सप्ताहात्परत कुर्याच्छारीरवण्यत् कियाम्॥ ६६॥
मधोव्रणचिकित्सामुपमहरति इति साप्ताहिक इत्यदि—वाग्मदस्य॥ ६६॥
करआरिष्टिनिर्गुगडीरसो हन्याद् वर्णाकिर्मान् ॥ ६७॥
करअत्यदी—करआदिपत्रस्वरस्य ॥ ६७॥
कलायविद्लीपत्रकोशाम्रास्थि च पूरणात्।
सुरसादिरसैः सेको लेपनं स्वरसेन वा॥ ६८॥

कलायविदली स्वनामख्याता लता, कोशात्र कुसुम्म इति ख्यात , तस्य फलास्थि न्त्राभ्या मन्पिष्टाभ्या प्रत्येक त्रणावकाशपूर्णम् । सुरसादिगण सौश्रुतः । सरसेनेति पर्णासेन ॥ ६ ॥

निम्वसम्पाकजात्यर्कसप्तपणार्श्वमारका । क्रिमिन्ना मूत्रसंयुक्ताः संकालेपनधावनैः॥ ६६॥

निम्नेत्यादी--जात्या पत्रम्, निम्नादीनान्तु त्वक्। एते च निम्नादयो यथालाम मूत्रपिष्टा सेकादौ प्रयोज्या.॥ ६६॥

प्रच्छाद्य सांसपेश्या वा किमीनपहरेद् त्रणात्। लशुनेनाथवा दद्यालेपनं क्रिमिनाशनम्॥ ७०॥

प्रच्छाचेत्यादौ---मासखण्ड., श्रत्रामिषगन्धात् किमय उपर्य्युपरि सञ्चरन्ति । १६त माव.॥ ७०॥

त्रिफलागुगगुलु:

ये क्लेदपाकस्त्रतिगन्धवन्तो

वणा महान्त सरुजा सशोधा ।

प्रयानित ते गुग्गुलुमिश्चितेन

पतिन शान्ति त्रिफलारसेन ॥ ७१ ॥ वहि परिमार्क्जनमुक्ता अन्त परिमार्क्जनमाह य इत्यादि—कोष्ठानुरूपे।ऽत्र गुग्गुलः प्रचेप्य ॥ ७१ ॥

विटकागुग्मुलुः

त्रिफला चूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृत । निर्यन्त्रणो विवन्धक्तो ज्ञणशोधनरोपण ॥ श्रम्तागुग्गुलु शस्तो हितं तैलञ्च वज्रकम् ॥ ७२॥

त्रिफलाचूर्णसञ्चक्त इति त्रिफलाचूर्णन समेन युक्तो गुग्गुल , प्रनमनुरूप दत्ता विश्वस्य चूर्णेञ्च प्रविष्य वटिका करोन्या । एव सर्वत्र वटकविधाने । यन्त्रणा आहाराचारिनयमश्च । अमृतागुग्गुलुवांतरक्तोक्त । वज्रकतिलम्च कुछ वस्यमा- यम् ॥ ७२ ॥

विडड़ादिवंटिकागुग्गुलुः

विडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्णं गुग्गुलुना समम्। सर्पिपा विटकां कृत्वा खादेद्वा हितमोजन । दुष्टव्यापचीमेह-कुप्रनाडीव्यापह ॥ ७३॥ विकागुगुलौ गुग्गुलुना सममिति विडङ्गादिचूर्णसमेन ॥ ७३॥

श्रमृतावटिकागुग्गुलुः

श्रमृतापटोलमूल-त्रिफलात्रिकडिकिमिन्नानाम् । समभागानां चूर्णं सर्वेसमो गुग्गुलोर्भाग ॥ प्रतिवासरमेकैकां गुडिकां खादेदक्तपरिमाणाञ्च । जेतुं व्रणवातास्त्रगुल्मोद्रश्वयथुपागृहरोगांश्च ॥ ७४॥ श्रमाविकागुग्रह स्वष्ट ॥ ७४॥

जातिकाद्यं घृतम्

जातीनिम्वपटोलपत्रकद्धकादार्वीनिशासारिवामिश्रिष्टाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नकताह्वीजै. समै ।
सिद्धमनेन सूच्मवदना मर्माश्चिता स्नाविणो
गम्भीरा. सरुजो ब्रणा सगतिका शुष्यन्ति रोहन्ति च ७४
जातीत्यादि—नाम्भटस्य । जात्यादीना त्रयाणा पत्रम् । दावी दारुहरिद्राः;
निशा हरिद्राः, श्रमयमुशीरम् , नक्ताह्वीज कर्जवीजम् । गतिनीही ॥ ७४ ॥

गौराद्यं घृतम्

गौरा हरिद्रा मिल्लिष्टा मांसी मधुकमेव छ ।
प्रपौग्डरीकं हीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम् ॥
जातीनिम्वपटोलञ्च करक्षं कटुरोहिणी ।
मधूच्छिष्टं मधूकञ्च महामेदा तथैव च ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एप गौरो महावीर्य स्वेत्रण्विशोधन ॥
श्रागन्तुः सहजश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये त्रणाः ।
विषमामि नाडीञ्च शोधयेच्छी घ्रमेव च ॥ ७६॥

गीराधे एते—गीरा हरिद्रा प्रियगुर्ना । व्यवहारस्तु हरिद्रयेव हरिद्रा दारुहरिद्रा । जातीनिम्वपटोलाना पत्रम् , करअस्य फलम् , मध्क मध्कपुष्पम् । मध्कव्चत्यस्य स्थाने समधुकमिति पाठे यीष्टमधुकस्य मागद्वय द्वि पाठात् । पत्रवल्कलस्य तीयेन काथेन । एव गीर इति भीमा मीमसेन इतिवत्, गौराबोऽय महावीर्य इत्यिप पाठ ॥ ७६॥

गोरांद्य जातिकाद्यञ्च तैलमेवं प्रसाध्यते । तैलं सूद्मानेन दुष्टे त्रणे गम्मीर एव च ॥ ७७ ॥ उक्तप्रतह्वयविधिना तैलहयमपि साध्यमित्याह गौराधमित्यादि—तैलविषय-

माह तैलिमत्यादि ॥ ७७ ॥

करज्ञायं घृतम्

नक्षमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च ।
सुमनायाश्च पत्राणि परोलारिष्ट्योस्त्या ॥
दे हरिद्रे मधूचिन्नष्ट मधुकं तिक्ररे।हिणी ।
मिन्नष्टा चन्दनोशीरमुत्पलं सारिवे तिन्नत् ।
पतेपां कार्षिकैर्मानैर्धृतप्रस्थं विपाचायेत् ॥
सुप्रवण्वप्रमन तथा नाडीविशोधनम् ।
सद्यारिन्नस्यणानाञ्च करञ्जाद्यमिटं ग्रुमम् ॥ ७८ ॥
नक्षमालस्यलादी—नरुणानि पत्राणीत्यन्त्य । द्वमना जातं। दत्यन

नीलीत्पलम्, शारिवे अनन्त्रमूलस्यामलते ॥ ७= ॥

प्रपौग्डरीकार्य घृतम्
प्रपौग्डरीकमञ्जिष्टामञ्जकोशीरपद्मके ।
सहरिक्वै कृतः सर्थिः सद्गीरं व्यग्रेगपण्म् ॥ ७=॥
प्रपीग्डरीकमित्यादी—वीरमेन चतुर्गुणम् ॥ ७६॥

तिक्रकाद्यं घृतम्

तिक्कासिक्थनिशायप्री-नक्काहफलपत्त्रचै । पटोलमालतीनिम्ब-पत्रैर्व्वग्यं घृतं स्मृतम्॥ ८०॥ तिक्रेत्यादी--पत्रराष्ट्र त्रिमि सन्वष्येत बलन्च चतुर्गुपन्॥ ८०॥ सिन्दूरहिङ्गविपक्कष्ठरसोनचित्र-

वाणाङ्किलाइलिककल्कविपकतेलम् । प्रासादमन्त्रयुतपूत्कतनुक्षेक्नो दुष्ट्रवणप्रशमनो विपरीतमल्लः॥ खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंश-नाडीवणवणिचिविककुष्टपामा । पतान् निहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य॥ =१॥ तैलान्याह सिन्द्रेस्यादि—चित्रको रक्षचित्रक , वाणािक्ष् रारपुद्धामूलम्, न तु मिण्टीमूलम्; जल चतुर्गुण्यम्, तैलक्च सार्षपं तन्त्रान्तरमवादात् । उक्तक्च " मिन्द्रहिङ्गविषकुष्ठरसोनवाणपुद्धारुणानलहलाह्यमूलक्के । एतचतुर्गुण्यजले विधिवतसुमिद्ध मिद्धार्थतैलमिति सिद्धफल प्रदिष्टम् " इति । प्रामादमन्त्रा महेश्वरमन्त्र , नुन्नोऽपसारित ॐ हा ही हु है ही है शिवाय स्वाहेनि पठित्वा फूल्कारिण फेनमालोड्यम् ॥ ६१ ॥

अङ्गारकं तैलम्

कुठारकात् पलशतं काथयन्न विशेष्टमस्ति । तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कल्कै कुठारापामार्ग-प्रोप्तिकामिक्तायुतै । एतदङ्कारकं तैलं व्रणशोधनरोपणम् । नाडीषु परमभ्यद्गो निजास्वागन्तुकीषु च ॥ ८२ ॥

कुठारकादित्यादि — कुठारक: कुडालिया । नल्वणो द्रोण: । प्रोष्ठिका राफरीमत्स्य पोठियानाम्ना ख्याता, विटपीत्यन्य । मंचिका कीटविशेष प्राप्तिद्ध एव, पञ्चाखियामत्स्य इत्यन्ये ॥ ८२ ॥

प्रपौग्डरीकाद्यं तैलम्
प्रपौग्डरीकं मधुकं काकोल्यौ हे सचन्दने।
सिद्धमेतः समस्तेलं तत्परं व्रणरोपणम्॥ ८३॥
प्रपौग्डरीकमित्यादि—स्पष्टम्॥ ८३॥

दूर्वाद्यं तैलं घृतश्च दूर्वाखरसाधिद्धं वा तैलं किम्पल्लकेन च । दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रण्रोपण्म् ॥ येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत् । रक्षाितोत्तरं ज्ञात्वा सािरेवावचारयेत् ॥ ५४॥

द्रेंत्यादि —योगद्रयम्। अत्र द्रेंव कल्को बोध्यः, चकारद्वयात् किम्पल्ल-कदावीत्वचोर्मिलित्वा कल्कः, पाकश्च जलेन चारपाणिसवादात्। अन्ये तु द्वीस्वर-सेन अकल्कमेव तेल साध्यम् कम्पिल्लकेन वा दावीकल्केन वा जलेन द्रवेणापर तंनद्वयमिलाहुः । तैलभाधनविधि ष्टतेऽप्यतिदिशति येनेलादि—अयञ्च मर्वतैलविष्य-तिदेश , अन्ये तु द्वीदितैलविष्यतिदेश इत्याहु ॥ ५४ ॥

मिजिष्टाद्यं घृतम्

मिश्रिष्ठां चन्दनं मूर्वी पिष्द्वा सिपैविंपाचयेत्। सर्वेपामग्निद्यानामेतद्रोपणिमध्यते॥ ८४॥ मिश्रिष्ठामिलादौ—जन चतुर्युगम्॥ ८५॥

पाटलीतैलम्

सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्या कडुतैलकम् । दग्धवण्डजास्रावदाद्दविस्फोटनाशनम् ॥ ८६॥ _{पाटलीतैलम्—स्पष्टम् ॥ ८६ ॥}

चन्दनाद्यं यमकम्

चन्दनं वटशुङ्गञ्च मिष्ठा मधुकं तथा।
प्रपौर्डरीकं दूर्वा च पत्तक्षं घातकी तथा॥
पिमस्तेल विपक्षव्यं सिर्पं चीरसमायुतम्।
श्रिश्वदाह्मणे श्रेष्ठं स्रचणाडोपणं परम्॥ ८०॥

चन्दनाध्यमके — तैलप्रताभ्या समाभ्यां मिलित्वा प्रस्यः । पत्तक रक्षचन्द-नम् । चीरमेवात्र चतुर्गुणम् । तैलमिति तिलभवमेव सर्वत्र विशेषोक्ति विमा ॥=७॥

मन शिलाले मिखिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम्। प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्विग्वश्चिकरः परः॥ ८८॥ श्रयोरज सकाशीशं तिफलाकुसुमानि च। प्रलेप कुरुते काप्यं सद्य एव नवत्विच॥ ८६॥

मनःशिलेखादिना—मावयर्थास्त्रमुपक्रममाह । अयोरज इत्यादा-काशीश धातुकाशीशम् । त्रिफलाकुसुमानि इरातक्यादितक्कुसुमानि । कुसुमामाने फलेन व्यवहार ॥ ८८–८६॥

> कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमै । तेप सगोमयरसः सवर्णकरण पर ॥६०॥

कालीयकेखादी--कालीयक कालीयाकाष्ठम्, लता प्रियङ्गः दूर्वेखन्ये, हेम नागेकरारचूर्णम्, काला मिश्रष्ठाः, रसोत्तमं पारद प्रतीमत्यन्ये । गोमयरस पेष-णार्थम् ॥ ६० ॥

> चतुष्पदां हि त्वय्रोमखुरश्रद्धास्थिमसाना । तैलाक्ता चूर्णिता मूमिभेवेद्रोमवती पुन ॥ ६१ ॥ व्रण्यन्थि य्रन्थिवच जयेत् चारेण वा भिषक् ॥ ६२ ॥ इति व्रण्योथिचिकित्सा ।

चतुष्पदामिलादि-सुगमम् । त्रगात्रन्थिमिति-दुरूढतया सञ्जात मास-मन्धिमित्यर्थः ॥ ६१-६२॥

इति व्रणशीयसधीवणचिकित्साविष्टति ।

अथ नाडीव्रण-चिकित्सा।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित्। सर्वत्रणक्रमं कुर्य्याच्छोधनं रोपणादिकम्॥ नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक्। प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत्॥१॥

त्रणत्वसाजात्याचाढीत्रणचिकित्सामाह नाढीनामित्यादि—गतिमिति । पूयगातिम् । श्रादिशब्देनोत्सादनावसादनसवर्णकरणादयो गृद्धन्ते । साधुपाटनसुपनाहपूर्वकम् । तदुक्त वाग्मटे ''उपनाद्यानिलान्नाढीं पाटिता साधु लेपयेत् । प्रत्यक्पुण्पीफलयुतैक्तिलैः पिष्टेः ससैन्थवै " इति । श्रतपव वचनात् सैन्थवयोगादप्यय लेपो
बोध्यः । प्रत्यक्पुण्पी श्रपामागैः तस्य बीजम् । लेखयेदिति चारेण प्रतिसारयदित्यर्थ । पतच लेखनयोग्यत्रण प्रति बोध्यम् । उक्त हि ''उद्वृत्तान् स्यूलपर्य्यन्तानुत्सन्नान् कठिनान् त्रणान् । किलासानि सकुष्ठानि लिखेह्नेल्यानि वृद्धिमान् " इति ॥ १ ॥

पैत्तिकी तिलमाञ्जिष्ठानागद्नतीनिशाद्वयै. ॥ २ ॥ पैतिकीमित्यादि—नागदन्ती स्थूलमूला दन्त्येव । "पित्तजा निशिमार्कण्ठा- नागदन्तोतिर्लं ममै " इत्यापुर्नदमाग्दर्शनाक्षिशाइयौरित्यक्ष निशायुतैरिति केचित्त् पठिन्त, तम्र, विशेष्यस्याभवतात् निशिग्रस्थेन इरिदाया मनिभानाच्च, किन्तु निर्मात्येष तत्र पाठ इति योगान्तरमेतत् । तथा वाग्मटेऽपि निशाइयैरित्येव पठ्यते । इन्देऽपि तथा । सुभुते इरिद्राइयब्यतिग्केत्याप्यय योग ॥ २ ॥

्रकेंप्मिर्की तिलयष्ट्याह्ननिकुम्मारिप्रसैन्धवै ॥ ३ ॥ कृप्मिक्नामित्यादी—निकुम्भो दन्ती, ब्ररिधे निम्न , अत्र यप्ट्याह्म्थाने

मीराष्ट्रीयोगादप्यय योग । उक्त हि नाग्मटे—" र्व्हाप्मनी तिलसीराष्ट्रीनिकुम्मा-

शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिचशोधिताम् ॥ ४ ॥

राल्यजामित्याडि—नाग्मटस्य । द्विन्नशोधिनामिति आदी द्विन्नामिति पाटिता पक्षात् शत्य निर्हत्य शोधिनामित्यर्थ । सुश्रुतेऽध्यक्त—" नाटोन्तु शत्य-प्रमना विदार्थ्य निर्हत्य गत्य प्रविशोध्य मार्गन् । बन्धेद् त्रण चीष्ट्रप्तप्रगाढ उत्त्वा निनान् गोध्यवरोषयेच " इति ॥ ४ ॥

श्चारम्बर्धानशाकालाचृर्णाज्यक्तौद्रसंयुता। मूलवर्त्तिर्वशे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ४॥

मारन्वधत्यादी—मारन्वधन्य पस्न, काला कालाकडामृल न तु मिसिष्ठा म्रस्यंकस्यैन दुष्टनखहुन्तृत्वात् । नूसर्वांचिरिति गोम्सङ्गा वर्षि । गोनालुपात् , हिन्द्र, कालाकडामृल पपा प्रत्येक नूर्णं मा म, प्रत कर्ष १, मधु कर्ष १, गोमृस पन १, पतत् मर्व पक्तवा मधुनैन्धवयोवंचिवद् वर्षि कार्य्यत्याहु , पाकमन्तरेण वर्षिकरणस्यारान्यत्वात् । सूत्रविधिरिति पाठे प्रमिलिप्ता स्वविधिरित्यर्थ वृद्धान्तु पूर्वेणव व्यवहरिति ॥ ५॥

घोएटाफलत्वक् लवणं सलाज्ञं पूगात् फलञ्चालवणञ्च पत्तम् । स्तुद्यकेदुग्धान्त्रित एप कल्को वर्चीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ६॥

योखटेत्यादि—सुश्रुतस्य । घोण्टा ऋरण्यनदर, ऋस्या फल त्वक् च । लवण सैन्धवन् । लाचा प्रसिद्धव । पूगात् फलमिति ग्रुप्कपूगकनन् । श्रालवणञ्च पत्रमिति अनवराा च्योतिष्मती, अस्या पत्रमालवणम् । वाग्मटेऽप्युक्त—"घोण्टा- फलत्वनलवण सलाच पूगाद फलञ्चालवणञ्च पत्नम् । स्तुद्धर्भदुग्धान्वित एष कल्को वर्त्ताङ्कृतो इन्त्यचिरेण नाडीम्'' इति । अन्य तु लाचा च्योतिष्मतीपत्रञ्च न पठित्ति, मदनफलञ्च पठित्ति, यथा,—''धोयटाफलत्वद्धाः नात् फलानि पूगस्य च त्वग्लन्वणञ्च मुख्यम् । स्तुद्धर्भद्व सद्दैष कल्को वर्त्तीङ्कृतो इन्त्यचिरेण नाडीम्'' इति । एतत् सर्व समभाग कृत्वा किव्चित सैन्धव दत्त्वा स्तुद्दीचीरार्कवीरजलैरासाव्य पक्तवा वर्ति कार्य्यो ॥ इ ॥

वर्त्तीकृतं माचिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्रमुक्तं लवणोत्तमं वा । दुष्टवणे यद्विहितञ्ज तैलं

तत् सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति॥ ७॥

वर्त्ताकृतमित्यादि — मुश्रुतस्य । लवणोत्तममिति सैन्धव, वर्त्तिकरणञ्च मधु-नैन्धवयोरग्नी पाकात् , अन्यथा बन्धा न स्यात् । दुष्टवणे यदिहितस्र तैलमिति मुश्रुतोक्तारम्वधादितैलादि ॥ ७॥

जात्यर्कसम्पाककर अदंन्ती-

सिन्धृत्थसौवर्ञ्चलयावश्र्के ।

वर्ति कता हन्त्यविरेण नाडीं

स्तुक्तीरिषष्टा सह चित्रकेण ॥ ८॥

जातीत्यादि—जातीपहावाः, श्रकंस्य मूल, सम्पाक श्रारम्बध तस्यापि पतः, करश्रस्य बीजं, दन्ती दन्तीमूल, श्रत्र स्तुष्टीचीरेथैव सष्ट किञ्चिष्णल दस्वा पनत्वा च वित्त कार्योत्याद्वः ॥ ८॥

माहिषद्धिकोद्भवान्निमश्रं हरति चिरविक्रढाञ्च । भुक्तं कगुङ्निकामूलचूर्णमतिदारुणां नाडीम् ॥ ६ ॥ माहिषत्यादि—कोद्रवस्त्रणधान्यविशेष., तस्य भक्तम् । कङ्गनिका कायनि ; पतन्मूलचूर्णं माहिषद्धिकोद्रवभक्ताम्या मिश्रित कृत्वा गुक्त सदित्यर्थः ॥६॥

क्रशदुर्वलभीक्षणां गतिर्ममीश्रिता च या। ज्ञारस्त्रेण तां जिन्दान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ १० ॥ एषग्या गतिमन्विष्य ज्ञारस्त्रानुसारिणीम्। सूचीं निद्ध्याद् गत्यन्ते चोन्नाम्य चाश्च निर्हरेत्॥ स्त्रस्यान्तं समानीय गाढं यन्धनमाचेरत्।
तन ज्ञारवतं वीदय स्त्रमन्यत् प्रवेशयेत् ॥
ज्ञाराक्तं मितमान् वैद्यो यावन्न छिद्यते गितिः।
भगन्दरेऽप्येप विधि कार्यो वैद्येन जानता॥
अर्बुदादिषु चोत्किप्य मूले स्त्रं निघापयेत्।
स्वीभियववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः।
मूले स्त्रेण वधीयाव्छिने चोपचरेद् व्रणम्॥ ११॥

कृरेत्यादि — युश्रतस्य। कृरा चीयमास , दुर्वलो हीनवल । चारस्त्रेय द्वित्तविधिमाह, एयएयेत्यादि । चारस्त्रेय सह अनुसर्च शील यस्या एताहरीं स्वीमुन्नाम्य उत्तिष्य स्वयोग गतिप्रान्त विद्ध्वा स्वी निहरिदिति भाव. । अन्न यदि अतिदीर्घा भवति तदा द्वयगुले ज्यगुले चतुरगुले वा वद्ध्वा कृमेण केदयेत् । व पुनरेकदेव गतिप्रमायेन बध्वा केद कार्य्य स्त्रच्छेदमयात् पीडातिशयजनकल्वाच रत्याहु । घाराक्तमिति स्त्रविशेषणम् । अर्वुदादिपु वन्धविशेषमाह, अर्थु-दादिष्वत्यादि — अर्थुदादिक यदि तनुमूल भवति तदा उत्तिष्येव मूले स्त्रेय वभीयाद् । स्थूलमूलेपु तु स्त्रर्थध्यार्थ मृल समन्तत स्वीभिराचित यथा स्यान्त्रथा वभीयाद् । यववक्त्रामिरिति यववन्मध्यस्थूलवक्त्रामि , यववक्त्रत्वज्व स्वीनां दाढ्यीर्थम् । छिन्ने चोपचरेद्म्यमिति द्वित्यायीक्तविधिनेति शेष ॥१०॥११॥

सप्ताइगुग्गुलुः

गुग्गुलुस्त्रिफलान्योपै समांशैराज्ययोजित । नाडीदुष्टवणग्रलमगन्दरविनाशनः॥ १२॥

गुरगुलुरित्यादौ—श्रिफलाव्योषैरिति विशेषणे तृनीया । त्रिफलादीनान्तु मिलित्वा गुरगुलुंसमत्वम्, आज्ययोजित इति छतिपिष्टित , छतन्त्र तावेदेय यावता वटकीभवति ॥ १२॥

सर्जिकाद्यं तैलम् सर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिका । खरमञ्जरिवीजेषु तैलं गोमृत्नपाचितम् । दुष्टवणप्रशमनं कफनाडीवणापद्दम् ॥ १३ ॥ सर्जिकेत्यादी-माशिश्रित्रकः, रूपिका श्वेतार्कः, नलश्च स्वनामस्यातः, नीलिका बीलीति प्रसिद्धा नीलबुद्धत्यन्ये, खरमञ्जरी श्रपामार्गः, गोमूत्र पाकार्थः चतुर्गुख्यः, सुश्रतेऽप्युक्तः 'सुवर्चिकासैन्थवित्रकेषु निकुन्धनीलीकरूपिकासु । फलेष्वपामार्गभवेषु चैव कुर्यात समूत्रेषु हिताय तैलम् 'इति ॥ १३॥

कुम्भीकाद्यं तैलम्

कुम्भीकसर्जूरकिपत्थिवित्व-वनस्पतीनान्तु श्रलाद्धवर्गैः। इत्वा कषायं विपचेत्तु तैल-मावाप्य मुस्तासरलिप्रयङ्गु॥ सौगन्धिकामोचरसाहिषुष्प-लोधाणि दन्वा सलु घातकीश्च। पतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद् वणो वै सुंस्तमाशु चैव॥ १४॥

जुम्मोकेत्यादि-सुशुतस्य । जुम्भोक, जुम्माडुलता दाडिमसमानफला स्थूलदन्तीत्यन्येः वनस्पतयो वटादय एषा शलाद्धः कोमलफलम् , सौगन्धिका भनन्तमूलम् , मोचरमः शाल्मलीनिर्यास , श्रिष्टपुष्प नागकेशरम् ॥ १४ ॥

मल्लातकादं तैलम्

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणात्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकेश्च । स्थान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नार्डी कफानिलकृतामपर्ची वर्णाश्च ॥ १४ ॥ महातकेत्यादि—ग्रुश्वत्य । मार्केनो मृक्तराजस्तस्य स्वरसम्बद्धगुंख ॥ १५ ॥

निर्गुएडीतैलम्

समूलपतां निर्गुएडीं पीडियत्वा रसेन तु। तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टवणापहम्॥ हितं पामापवीनान्तु पानाभ्यञ्जननावनैः। विविधेषु च स्फोटेषु तथा सर्वव्रेणुषु च ॥ १६॥

' निर्गुण्डीतेले—समिति सहार्ये, तेन निर्गुण्डीस्वरमश्चतुर्गुण एव आधा । चकस्तु समराब्द तुल्यार्थमित्याह । अकल्कमिद तैलम् ॥ १६॥

हंसपादीतैलम्

हंसपाद्यरिष्टपतं जातीपत्रं ततो रसै । तत्कल्केश्च पचेत् तैलं नाडीवणविशोधनम् ॥ १७॥

इति नाडीवणिचिकित्सा ॥

इसपादीतैले—इसपादी स्वनामख्याता, श्ररिष्टपत्र निम्यपत्रम्, तत इति तेपामित्पर्थ पष्ट्यन्तात्तिसिरिति, त्रयाणा रसो मिलित्वा तैलाश्चतुर्गुण ॥१७॥

इति नाढीवणिचिकित्सा-विवृति ।

अथ भगन्दर-चिकित्सा ।

गुदस्य श्वयथुं दृष्या विशोष्य शोघयेत्तः।
रक्तावसेचनं कुर्च्याद् यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥
नादीव्रणत्वसामान्याद् सस्यासामान्याच भगन्दरमाद, गुदस्यत्यादि—विशोष्येत्युपवासादिना । शोधयेदिति विरेचयेत् न शोखितमोद्यगादिमिः ॥ १ ॥

वटपतेष्टकाशुएडीगुड्च्यः सपुर्ननवाः। सुपिष्टा पिडकारम्भे लेपः शस्तो भगन्दरे॥ पिडकानामपकानामपत्रपंगपूर्वकम्।

कर्म कुर्च्याद्धिरेकान्तं भिन्नानां वद्यते किया ॥ २ ॥ वटपर्नेत्यादी—वटस्य कोमलपत्रम्, इष्टका च पानीये चिरस्रिषता ब्राह्मेति बृद्धन्यवद्दार । अपतर्पेखपूर्वक कर्म कुर्च्याद्दिरेकान्तमिति अपतर्पेखादयो विरेकान्ता दकादरो।पक्रमा दिज्ञखीयोका कर्त्तव्या इत्यर्थः ॥ २ ॥

एपणीपाटनकार-विद्वाहादिकं क्रमम्। विधाय वण्वत् कार्य्यं यथादोषं यथाक्रमम्॥३॥ ण्पणीत्यादौ—कार्य्यमित्यत्र चिकित्सितिमिति शेषः ॥ ३ ॥ तिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिपा । उत्सादनं भवेदेतत् सैन्धवचौद्रसंयुतम् ॥ ४ ॥ विवृदित्यादि—सुश्रुतस्य । नागदनी। स्यूलमूला दन्ती, उत्सादनिमिति प्, न तु निम्नव्योत्थापनरूपमुत्सादनिम्ह व्याख्येयम्, त्रिवृदादीना तीच्छा-

शोधनम्, न तु निम्नव्रणोत्थापनरूपमुत्सादनिमह न्याख्येयम्, विवृदादीना तीच्छा-द्रव्यत्वात्, उत्मादनस्य तु मृदुमधुरद्रव्यसम्पाद्यत्वातः, उक्त हि चरके 'स्तन्यानि जोवनोयानि वृद्योयानि यानि च । उत्मादनार्थे ,निम्नाना व्रणाना तत्र कल्पयेत्'' दति । पन्ये तु सयोगमहिम्ना विवृदादीनामप्युत्मादनत्विमह बोध्यमित्याहु ॥४॥

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्वपन्नवाः।

तिवृत्तेजोवतीद्न्तीकस्को नाडीव्रणापह ॥ ४॥ रसान्जनमित्यादि—द्वश्रुतस्य । तेजोवती ज्योतिष्मती भन्ये तु चवीत्याहुः । शोधनरेषिकोऽय कस्कः ॥ ४॥

कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्तीमागध्यः सैन्धवं मधु । रजनी त्रिफला तुत्थं हितं वर्णविशोधनम् ॥ ६ ॥ कुष्ठमित्वादि—स्पष्टम् ॥ ६ ॥

स्तुह्यकेंदुग्धदार्वीभिर्वित्तं कृत्वा विचत्त्रणः । भगन्दरगति झात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः । एपा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यादसंशयम् ॥ ७ ॥ स्तुहीत्यादि—स्तुषक्षेयोः वीरेण दारुहारिदाचूर्णं पक्ता वार्षः कार्थे

सर्थः ॥ ७ ॥

तिलाभयालोधमरिष्टपतं

निशे वचा कुष्ठमगारधूम । भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च

दुष्टवर्षे शोधनरोपणोऽयम् ॥ = ॥

तिलेखादी—कुष्ठस्थाने लोधपाठे लोधदय शानरपट्टिकाख्यभेदाद् याद्यम् । निशे हरिदे दे ॥ मा

खरास्त्रपक्तभूनागचूर्णलेपो भगन्दरम् । हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वब्छुनोऽस्थि वा॥ विफलारससंयुक्तं विडालास्थिप्रलेपनम् । भगन्दरं निहन्त्याशु दुप्रवणहरं परम् ॥ ६ ॥

यरेखादी—-गर्दभरक्तपक्तगण्ड्यदच्यूंजिप इत्थर्भ । दन्तीत्यादिद्वितीययोगे आग्निश्चलक । गुनोऽस्थि वा कुक्कुरस्यास्थीत्यत्र तृतीययोगे त्रिफलारसोऽपि पेपणार्थ ग्रेप , उक्त हि "शुनोऽस्थि वा विद्यालासि त्रिफलारसभावितम्" इति,॥ ह ॥

नवकार्षिकगुग्गुलुः

तिफलापुरकृष्णानां तिपञ्चिकांशयोजिता। गुडिका शोधगुरुमाशोभगन्दरवतां हिता॥ १०॥

नवकारिके—शिपण्चैकाशयोजिता इति अश इह कर्षरूपो भागः, तेन शिकलाया प्रचेक कर्ष, गुग्गुलोः पद्म कर्षा, क्रम्णाया एकः इति नवकारि-कत्वम् ॥ १०॥

सप्तविंशतिगुग्गुलुः

तिकद्वतिफलामुक्तविद्वन्नामृतिचत्रकम् ।
शक्तेलापिण्पलीमृलं द्वुषा सुरद्दारु च ॥
तुम्बुरु पुष्करं चव्यं विशाला रजनिद्वयम् ।
विदं सौवर्चलं जारौ सैन्धवं गजिपण्पली ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद् द्विगुणगुग्गुलु ।
कोलप्रमाणां गुष्डिकां भन्नयेन्मधुना सह ॥
कासं श्वासं तथा शोथमर्शासि च भगन्दरम् ।
दृञ्कूलं पार्श्वग्र्लञ्च कुन्तिवस्तिगुदे रुजम् ॥
श्वश्मरीं मूत्रकुञ्कुञ्च श्वन्त्रवृद्धि तथा क्रिमीन् ।
चिरज्वरोपस्रप्टानां न्योपदृत्वेतसाम् ॥
श्वानाद्दञ्च तथान्मादं कुष्टानि चोद्राणि च ।
नार्डाद्वप्रवणान् सर्वान् प्रमेद्दं स्थीपदं तथा ।
सप्तार्वेशितिको ह्येष सर्वरोगिनस्तुन ॥
जम्बुकमांसं भन्नयेच प्रकारैव्यञ्जनादिभि ।
श्रजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते ना भगन्दरात् ॥ ११ ॥

भगन्दर चिकित्सा।

४८३

विकट्वितादी-चारी यवचारस्विकाचारी। प्रतेन गुग्गुल विना सप्तविशति-द्रव्याणीति निश्चलः। ये तु सौवर्चलचाराविति पठन्ति, तन्मते गुग्गुलना सर्देव सप्तविशतिरिति ॥ ११॥

पञ्चितिक्रं घृतं शस्तं पञ्चितिक्षश्च गुग्गुलु ।
न्यग्रोधादिगणो यस्तु हितः शोधनरोपण ।
तैलं घृतं चा तत्पकं मगन्द्रिवनाशनम् ॥ १२॥
न्यग्रोधादीत्यादि — बुश्रुतत्य । कल्कोऽयन् । तत्पक्कमिति न्यग्रोधादे काथकरकाभ्या पक्तन् ॥ १२॥

विष्यन्दनतैलम्

चित्रकार्को त्रिवृत्पाठे मलपृहयमारकौ ।
सुघां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवार्चेकाम् ॥
स्योतिष्मतिष्च संहृत्य तैलं घीरो विपाचयेत् ।
एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं द्द्याद्भगन्दरे ।
शोधनं रोपण्डचैव सवर्णकरणं तथा ॥ १३॥

चित्रकेत्यादि—सुश्रुतत्य । चित्रकादीना कल्को वल चतुर्गुणम् । मलपू-काष्ठोडुन्दरः, तत्य मूलं रक्तपितादौ तु फलम् । विष्यन्दयित पूर्य स्नावयित इति विष्यन्दन शोधनम् ॥ १३ ॥

करवीराद्यं तैलम्

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाशिभि । मातुलुङ्गार्कवत्साह्रै पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ १४ ॥ करवीराधे—मातुलुङ्गस्य मूलम् , वन्साह कुटजल्तस्य लक् , अन्ये तु तत्क-लगहुः ॥ १४ ॥

निशादं तैलम्

निशार्केच्चरिसिन्ध्वग्निषुराश्वहनवत्सकै ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ १४॥ निशेत्यादौ—पुरो गुग्गुछ ; भषहन. करनीरस्तस्य मूलम् ॥ १४॥ व्यायामो मैथुनं युद्ध पृष्ठयानं गुरूणि च । संचत्सरं परिहरेदुपरूढवणो नर ॥ १६॥ इति भगन्दराचिकित्सा ।

भगन्दरेऽपथ्यान्याइ---च्यायाम इत्यादि ॥ १६॥

इति भगन्दराचिकित्सा-विवृति ।

अथोपदंशचिकित्सा ।

सिग्धिसिन्नश्ररीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यध । जलौकापातनं वा स्यादृद्ध्वधि शोधनं तथा । सद्यो निर्हृतदोपस्य रुक्शोथाबुपशाम्यत । पाको रुद्य प्रयत्नेन शिक्षद्मयकरो हि स ॥१॥ म्यानप्रत्यानस्या उपदशाविकित्सितगुच्यते—ध्वजमध्ये मेद्रमध्ये । शिरा-व्यपश्च रक्षदुरी महत्याम्, भ्रत्यायान्तु जलौक्या रक्षपातनम् ॥१॥

> पटोलिनम्बात्रफलागुङ्कची-काथं पिवेद्वा खिदराशनाभ्याम् । सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहर प्रयोग ॥ २॥

पटोलेत्यादि--पटोलादिकाथे गुग्गुल तिफलाचूर्णं वा प्रचिप्य पिवेत् , एव यादिरारानकाधमपि, अशन पीतशाल । अन्य तु काथद्दवे यथासख्य गुग्गुलात्रिफ-लाचूर्णया प्रचेप इत्याहुः। अपरे तु केवलकाथन योगद्दयम्, तदेव गुग्गुलोक्षिफला-चूर्णस्य वा प्रचेपेणापि योगद्दयमिति वदन्ति । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ २ ॥

प्रपोगडीरकं मधुकं रास्ना कुष्टं पुननेवा। सरलागुरुभद्राहेर्वातिके लेपसेचने ॥ ३॥ प्रपोग्डरीकमित्वादि—द्वयुतस्य। मद्राख्य देवदारु ॥ ३॥ गैरिकाञ्जनमञ्जिष्टामधुकोशीरपद्मकैः। सचन्द्रनोत्पलै: क्षिग्धै पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत्॥४॥ गैरिकेत्यादि च तसीव-क्षिग्वैरिति शतधोतस्तै ॥४॥

निम्वार्जुनाश्वत्यकदम्बशाल-जम्बूवटोहम्बरवेतसेषु । प्रचालनालेपघृतानि कुर्च्या च्चूर्णानि पित्तास्नमवेणदंशे ॥ ४॥

निम्बेत्यादी-पृतसाधनपत्ते निम्बादिकाथकल्काभ्यामिति बदन्ति ॥ ५ ॥

त्रिफलाया कषायेण भृद्गराजरसेन वा। व्रणप्रचालनं कुर्च्यादुपदंशप्रशान्तये॥६॥ त्रिफलाया इत्यादि—स्पष्टम्॥६॥

देहेत् कटाहे त्रिफलां सा मसी मधुसंयुता। उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्या रोपयति व्रणम्॥७॥

दहेदित्यादि-स्पष्टम् ॥ ७ ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् । सत्तौद्रं वा प्रलेपेन सर्वेलिङ्गगदापहम् ॥ = ॥ वब्बूलद्लचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा । गुण्डनं व्रस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ ६ ॥

रसाक्षनीमत्यादि योगत्रयम् । श्रत्र पथ्या गुड्ची । बन्द्रोति-बन्द्र्लस्य दल पत्र, गुग्डनमवचूर्णन, त्रस्थीति मानुषकपालास्थि, चन्द्रोटऽपि नृकपालास्थीत्यु-कत्वात् ॥ म-१ ॥

लेप. पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा।
सेविज्ञित्यं यवान्नज्व पानीयं कौपमेव च ॥ १०॥
लेप इत्यादी—अश्वमार करवीरत्तस्य मूलेन ॥ १०॥
जयाजात्यश्वमारार्क-सम्पाकानां दले. पृथक्।
कृतं प्रचालेने काथं मेद्रपाके प्रयोजयेत्॥ ११॥
बेयत्यादी—दलेः पत्रे ॥ ११॥

भूनिम्वाद्यं घृतम्

भृतिम्यनिम्वत्रिफलापटोल-करञ्जजातीखदिराशनानाम्। सतोयकल्केषृतमाशु पक सर्वोपदंशापद्दं प्रदिष्टम्॥ १२॥

मृनिम्बेत्यादि-स्पष्टन् ॥ १० ॥

करञ्जनिम्वार्जुनशालजम्बू

वटादिभि कलककपायसिद्धम्।

सर्पिनिहन्यादुपदंशदोषं

सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ १३ ॥

करञ्जावष्टते—करञ्जस्य मूलन् । वटादिभिरिति वटाडुम्बराश्वत्यसम्बक्तपीतनै पद्मभि.। कपीतनो गन्धमुण्ड । वृतस्याम्य पानम्, अचणञ्चानेन कार्व्यम् ॥१३॥

श्रागारध्माद्यं तैलम्

श्रागारधूमरजनीसुराकिणवञ्च तैस्त्रिमि । भागोत्तरै पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् । शोधनं रोपणञ्चेव सर्वणकरणं परम् ॥ १४ ॥

आगारधूमित---आगारधूमे। कियब सुरावाजम् । भागोत्तरेरिति तैलप्रम्ये आगरधूम पल १ कर्ष १ मापा ५ रति ३ । इरिद्रा पल २ कर्ष २ मापा १० रति ६ । सुराबीज पल ३ कर्ष ३ मापा १५ रति ६ । एव लेइ-पादिकर्वं कन्कस्य, पाकस्तु जलेनैव ॥ १४ ॥

श्रर्शसां छिन्नदग्धानां किया कार्य्योपदंशवत् ॥ १४ ॥ इत्युपदंश-चिकित्सा ॥

चिकित्सामामान्यादसैव लिङ्गाशंमा चिकित्मामाह, श्रशंसामिति लिङ्गाशंमा-कित्वर्थ ॥ १५॥

इत्युपदशाचिकित्नाः ।

अथ ग्रुकदोष-चिकित्सा।

हितञ्च सर्पिष पानं पथ्यञ्चापि विरेचनम्। हितः शोशितमोत्तश्च यचापि लघुभोजनम्॥१॥

प्राग्तिमङ्गत्यैव श्र्क्षदोषाचिकित्सितमुच्यते । श्र्को जलश्र्क सविषजन्तु तत् कृतो दोषः श्र्क्षदोष । हितामित्यादि—सुश्रुनस्य । सर्पिष इति यथादोष सस्कृतस्य । विरेचनमपि पथ्य हितमित्यर्थः ॥ १ ॥

> सर्वर्पी लिखितां स्त्मैः कषायैरवचूर्णयेत्। तैरेवाभ्यक्षनं तैलं साधयेद् वणरोपणम् ॥ २॥ क्रियेयमधिमन्थेऽपि रक्नं स्नाब्यं तथोभयो ॥ ३॥

सर्वपीमित्यादि—वाग्मटस्य । कवायैरिति रसमेदीये कवायवर्गोक्तै पथ्यावि-मीतकशिरीपादिमि शोधनादिगणसम्बद्दोक्तन्यमोधादिमि । स्हमैरिति स्हमचू-सीकृते । सुश्रुते तु स्हमैरित्यत्र सम्यगिति पाठ । तैरेवेति पूर्वोक्तकवायै काथ-कल्कै । उमयोरिति सर्वप्यधिमन्थयो ॥ २—३॥

त्रष्ठीलायां हते रक्ते केरण्मत्रन्थिवदाचरेत् ॥ ४ ॥ कुम्भीकायां हरेद्रक्तं पकायां शोधिते वर्षे । तिन्दुकित्रफलालेष्ट्रेलेपस्तैलञ्च रोपण्म् ॥ ४ ॥ श्राह्मज्यां हतरक्वायामयमेव कियाकमः ॥ ६ ॥

श्रष्ठीलायामित्यादि—नाग्मटस्य । नातनायामप्यष्ठीलाया स्त्रद्धितरक्तस्या नर्दसस्य निर्द्दर् जलौकादिमिरुचितमेन । कुम्मीकाया हरेद्रक्तमित्यामानस्यायाम्। तैलल्ल रोपण्मिति उक्ततिन्दुकादिकल्कासिद्धम् । सुश्रुते तु—कुम्भीका पाकमापना भिन्ना सशोध्य रोपयेत् । तैलेन लोधित्रफलातिन्दुकाश्रक्तेन नां रत्युक्तम् । तिन्दुकाश्रयो फलास्थीति च तद्दीकाकृत । अलज्यामित्यादि—नाग्मटस्य । श्रयम्मेनेति कुम्मीकोक्तः ॥ ४-६॥

स्वेद्येद् प्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् । सुस्नोप्णैरुपनाद्देश्च सुक्तिग्धैरुपनाद्द्येत् ॥ ७ ॥ स्वेदयेदिति—सुभृतस्य । अथितमिति प्रथितास्य स्कदोषम् । स्निग्धमिति

तैलयोगात् । स्वेदेनेति स्वेदनद्रव्याणि चरकोक्तानि यथा 'वीरणागृतकैररएए त्रिमु-सूलकसर्थे । वासावशकरञ्जाकेपत्रैरश्मन्तकस्य च । शोभाज्जनकशेरीयमालतीम्वर साजैके । पत्रेरुवकाथ्य सिलल नाढीस्वेद प्रयोजयतः दित । सुर्वाध्यारपनिकिति कफहरद्रन्यकृतैः, व्यथितस्य कफ्रज्ञतलाय । स्रुक्तिग्धेतित तैलयोगात् ॥ ७ ॥

^{उत्तमाख्यान्तु विडकां सिङ्कुच विडिशोजुनाम्।} कलकेश्चूर्णे कषायाणां ज्ञाद्रयुक्तरुपाचरेत्॥ =॥

उत्तमास्यामित्यादि—याग्मटस्य । कपायाणामिति कपायवर्गपटिताना पथ्यादीना न्ययोधादीना वा । उपचरेदिति प्रलेपन ॥ = ॥

कम पित्तंविसपींकः पुष्करीमृहयोहित । त्वक्षाके स्परीहान्याञ्च सेचयेन्सृदित पुनः।

वलातैलेन कोण्योन मधुरैक्षोपनाह्येत्॥ ६॥

कम इत्यादि—वाग्भटस्य । पुष्कारीमूहवोरिति पुष्कारिकाममूहापृष्टकाया । भाग श्राम वार्षात् । उन्मराद्वाता उन्मराद्वाता उन्मराद्वाता । तेनैतयोरिष विचित्रसर्गन्त मम कार्य । मुहित पुनर्वलातेलेन सेचयेदिति योज्यम् । मर्धरिति काकोत्यादिति , किंवा जीवनीयगर्थे , वारमंटे जीवनीयगर्थस्थोवतत्वात् । बलातैलञ्च वारमंटे वात-न्याथावुनतम् ॥ १ ॥

रसिकया विधातन्या लिखिते रातपोनके॥ पृथक्षणार्थोदिसिद्ध वेलं देयमनन्तरम्। रक्तविद्रधिवद्यापि किया शोणितजेऽबुंदे। क्षवायतेलसर्वाचि कल्के चूर्ण रसिक्याम्॥ शोधने रोपणे चैव वीद्य वीद्याचतारयेत्॥१०॥

रसिक्रियादि - मुश्रुतस्य । रसिक्रिया तु अवस्था वीह्य सीधनीया रीपणीया वा देया । तत्र शोधनीया यथा, — शालसारादिसारेषु पटोसित्रफलाच्च च । रस-क्रिया विधातन्या शोधनी शोधनेषु च १ इति । रीप्याया यथा, विद्या न्याया च । रस-

द्वस्य त्रिफलायास्त्रभव च । रसिम्नया रोपणार्थे विदर्भात यथाविधि । हति । ध्यक्षस्यांदीत्यादि प्रयक्षस्यांदि मिश्रक्षोक्तस्याधनहन्त्रम्, तेर्यथा,-्रथक्षपर्यात्मात्मात् च हरिद्रे मालती सिता। काकोल्यादिश्च योज्य त्याद्रियना रोम्यो धते । शत्र सिता सकैरीते चक्र , भेतदुर्वेति त नसदेव । एतस धत

तैल वा पृथक्षप्रयोदिना काथकल्करूपेण साध्यमिति वदन्ति । शर्करा तु कल्करूपे-यैव देया काथानईत्वात् । अनन्तरमिति रसिक्रयादानस्थानन्तरिमत्यर्थः । रक्तविद्रिधि-वदित्यादौ —वीक्य वीक्येति द्विव्यायोक्तामवस्था निरूप्य यदि शोधन कर्त्तव्य भवति तदा शोधनानि कषायादीन्यवचारयेत्; यदा तु रोपण कर्त्तव्य भवति तदा रोपणानीत्यर्थ ॥ १०॥

> श्रर्वुदं मांसपाकञ्च विद्विधं तिलकालकम् । प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम् ॥११॥ इति श्र्कदोषचिकित्सा ।

श्रर्बुदिमित्यादि — असाध्यत्वेनोक्तेष्वप्यर्बुदादिषु कदाचिदसम्पूर्णालङ्गत्वादिना साध्यता याप्यता वा सम्भवतीति प्रत्याख्याय तत्र किया कार्य्येति श्रेयम् ॥११॥ इति शुक्तदोषिक्तिसा-विवृति ।

अथ भग्न-चिकित्सा।

श्रादौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना । पद्गेनालेपनं कार्य्यं वन्धनञ्ज कुशान्वितम् । सुश्रुतोक्षञ्ज भग्नेषु वीद्य वन्धादिमाचरेत् ॥१॥

श्रागन्तुजल्वसामान्याद् भग्नचिकित्सामाह—श्रादौ भग्नमित्यादि । कुशा-न्वितमित्यत्र कुशिति भग्नास्थिबन्धसाधनकदम्बादित्वच सज्ञा, उनत हि बाग्भेट— "कटम्बोडुम्बराश्रायसर्जार्जुनपलाशजै.। वशोद्भवैर्वा पृथुभिस्तनु।भै सुनिवेशित । सुश्रक्षे सुप्रतिष्टम्मेर्वल्कलै शक्लैरिप । कुशाह्रयै सम बन्ध पट्टस्योपिर योजयेत् " इति ॥ १ ॥

> श्रवनामितमुत्रहें दुन्नतञ्चावनामयेत् । श्राञ्छेदतिचित्तमधोगतञ्चोपरिवर्त्तयेत् ॥ श्रालेपनार्थं मिल्लामधुकञ्चाम्ल्पेषितम् । शतधौतघृतोिनमश्रं शालिपिएञ्च लेपनम् ॥२॥

अवनामितमित्यादि <u>सु</u>श्रुवस्य । अवनामित अवनत कर्कटक वक्तम छन्न-भेव उन्नामयेत्, उन्नतमश्रकणांदि श्रवपीहयेत्। श्रातिवित श्रथ सन्दर्भ वा श्रति-निर्गतम् । आन्ध्रिदिति प्रमारयेत्, त्राक्ति आयामे स्त्यस्य रूपम् । अधीगतमध चिमादि चपरि वत्त्रेव आकृषंग्रेत् । आलेपनार्थमित्यादि सुमतस्य । अम्लपित-मिति काब्जिकिषिष्टम् । शतथौतष्टतोन्मिम्भिति पूर्वेण परेण च योज्यमिति चन्तः ॥ २॥ सप्तरात्रात् सारात्रात् सौम्यण्युतुषु मोन्नणम्। कर्तन्यं स्यात् त्रिरात्राच्च तथाग्नेयेषु जानता । काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्धिमोत्तयेत्॥ ३॥ न्यत्रोधादिकपायश्च सुशीत परिषेचने। पश्चम्लीविपकन्तु चीर द्यात् संवदने। सुक्षोज्यामवतारमं वा चन्नतंतं विज्ञानता ॥ ४॥

सप्तराशिदित्यादि अञ्चलस्य । सोम्येष्ट्रतिबिति शिते । आद्वेये अध्ये, वागुमंदेऽध्युक्तम् — ध त्र्यहात् व्यहाहती वर्म सप्ताहानमानविद्धिमे । साधारते ज पश्चाहाद् अन्तदीपवरीत वा ॥ इति । जानता वैधेनेति होप । समहातिध्ये काले वेति सरदमन्तकाले । न्यमोधित्यादि - मुश्चतत्य । पन्नमूलीत्यादि - पन्नमूली वात्र स्वल्पेति वदन्ति । एतत् पक्षम् चीर वातिपेचीतरे ममे, अभाषि परिषेचने इति वीज्यम् । चक्रतेलिमिति सद्य पीडित तैल किंवा सुअतवात्व्याधिचिकास्तितोक्त तैलिब्धानगृहीत तैलम् । सीतीपचारोचितेऽपि ममे सुखीष्णस्य विधानमिनले वलीयसीति ग्रेयम्, अतएव विज्ञानतेलुक्तम् ॥ ३—४॥ मांस मासरस, सिं हीरं यूपः सतीनजः।

वृहरणञ्चान्नपानद्य देशं भन्ने विज्ञानता ॥ ४ ॥ भन्निहतमन्त्रपानमाह, मासिमत्यादि - श्रुशतस्य । चीरिमहावरो मन्ने सन्धानीयतथा हितम् । यद प्रनित्वधान्यादिवर्गे वीर् निषिद्ध तद् नस्मित्वय प्रवेति न विरोध । अन्य ह चीरसिंगिरिति पठित्वा चीराहुत्थित सिंगिरिति व्याचक्षते । मतीनो वर्त्तीस्तम् स न यद्यपि वातननकस्तथापि सन्धानीयत्वादिहोसः हति॥ ४॥

गृष्टिचीरं ससिंपन्क मधुरीपधसाधितम्। सीतलं लाल्या युक्तं प्रातर्भयाः विवेधरः ॥ ६॥ सघृतेनास्थिसंहारं लात्तां गोधूममर्जुनम्।
सिन्धयुक्तेऽस्थिमग्ने च पिवेत् त्तीरेण मानव ॥ ७ ॥
रसोनमधुलात्ताज्यसिताकलकं समश्रताम्।
छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ ८ ॥
पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम्।
अपकत्तीरपीतं स्थादास्थमग्नप्रशराहण्यम् ॥ ६ ॥

गृष्टिचीरिमत्यादि—सुश्रुतस्य । गृष्टिरेक्षवारमस्ता धेनु , तस्या भीरम् , मधुरीपथ काकोल्यादिगण् , तेन चीरपिरमाषामाधितम् । मर्पिलांचे प्रचिप्ये । सप्टनेनेत्यादि सप्टतेन चीरेणास्थिसहारादिक व्यस्त समस्तव्च पिकेदित्याहु ॥६-६॥

चीरं सलाचामधुकं ससर्पि
स्याज्जीवनीयश्च सुखावहश्च।
भग्न पिवेत् त्वक्पयसार्ज्जनस्य
गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ॥ १०॥

चीरमिलादौ —जीवनीयमिनि आरोग्यहेतुत्वात् प्राणधारणम् । त्वक्पयमा-र्जुनस्येति । अर्जुनस्य त्वचा साधित पयस्त्वक्पयः, अर्जुनत्वक्पयसा सप्टेतन गोधूम-चूर्णं पिवेदिति योज्यम् । अन्य त त्वक्शब्दो नपुमकतिङ्गोऽप्यस्तीति अर्जुनस्य त्वच पिवेदित्याहुः ॥ १०॥

लाचागुग्गुलुः

लाचास्थिसंहत्ककुमाश्वगन्धाश्वृणीकृता नागबला पुरश्च ।
सम्भग्नयुक्कास्थिरुजं निहन्यादक्कानि कुर्यात् कुलिशोपमानि ।
तत्रान्यते।ऽपि दृष्टत्वात् तुल्यश्चृर्णेन गुग्गुलु ॥ ११ ॥

लाचेत्यादौ-श्रस्थिसहत् श्रस्थिसहारः। ककुमोऽर्जुन । नागवला गोरच-तण्डुला । पुरो गुग्गुछ , स च मिलितलाचादिचूर्णसम । वच्यमाणामादिगुग्गुलो हप्टत्वादिति चक्र ॥११॥

श्राभागुगगुलुः

श्राभाफलिन केंग्रेंपे सर्वेरोम समीक्ते । तुल्या गुगानुरायोज्यो मग्नसन्धिमसादकः ॥ १२ ॥ सम्रास्य तु भग्नस्य मणं सिर्पेर्मधूत्तरे । प्रतिसार्य्य कपायश्च रोपं भग्नवदाचरेत् ॥ १३ ॥ भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् । वातव्याधिविनिर्दिएान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥ एतदेवाह मानेलादि—मामा माहेति स्याता । सम्याभग्नविकत्मामाह, सम्यासेलादि—मुभुतस्य । प्रतिसार्य्य कपायिरिति न्यग्रीपादिकपायदृष्यकृत्वर्त्तः प्रतिसार्य्य प्रतिप्य, कारिकस्य कपायिरिति मधुरीपपकाथैः प्रतिमार्य्य प्रसिच्येति व्याच्छे धातनामेनकार्यस्या । रोपमित्याहारादिकम् ॥ १२-१४ ॥

गन्धतैलम्

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेद्स्थिरे जले।
दिवा दिवैव संशोष्य चीरेण परिभावयेत् ॥
दतीयं सप्तरात्रञ्च भावयेन्मधुकाम्चुना।
ततः चीरं पुन पीतान् सुशुष्काश्चूर्णयेद्भिषक् ॥
काकोल्यादि श्वद्ष्ट्राह्म मिल्रप्तां शारिवां तथा।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥
शतपुष्पाञ्च सञ्चूर्णयं तिलच्चूर्णन योजयेत्।
पीडनार्थञ्च कर्त्तव्यं सर्वगन्धः श्वतं पयः।
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेत् पुन ।
पत्तामश्चमतीं पत्नं जीरकं तगरं तथा ॥
लोधं प्रपीएडरीकं च तथा कालानुशारिवाम्।
शैलेयकं चीरश्कामनन्तां समधूलिकाम् ॥
पिष्ट्वा श्वताटकञ्चेव प्रागुक्तान्योपधानि च।
पिभस्तिद्विपचेत्तंलं शास्त्रविन्मदुनाशिना॥

पतत्तेलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।

श्रासंपके पत्तघाते चाङ्गशोषे तथादिते ॥

मन्यास्तम्मे शिरोरोगे कर्णश्रले हनुग्रहे ।

वाधिय्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु त्तयं गताः ॥

पथ्यं पाने तथाम्यक्ते नस्ये बस्तिषु योजयेत् ।

ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥

मुखञ्च पद्मप्रतिमं स्थात् सुगन्धसमीरणम् ।

गन्धतेलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।

राजाहमेतत् कर्तव्यं राज्ञामेव विचन्नणैः ।

तिलच्यूणात् चतुर्थांशं मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ १४ ॥

लवणं कटुकं न्ञारमम्लं मैथुनमातपम् ।

व्यायामञ्च न सेवेत भग्नो स्नान्नमेव च ॥ १६ ॥

इति भग्न-चिकित्सा

रात्तावित्वादि—सुश्रुतस्य। श्रांस्यरे जल इति ह्याताजले चतुःशरावतैलोचितकृष्णातिलान् गृहीत्वा वस्त्रेण पोट्टलीं बद्ध्वा ह्याताजले प्रक्षिप्य रात्ती स्थाप्यम्। तता
दिवसे श्रात्तेप शोषरेत्, एव सप्तदिनानि यावत्, तदनु तिलतुल्यपरिमाणगन्यद्वीर
रात्ती तिलान् निर्म्वप्य दिवा प्रसार्थातपे शोषयेत्, एव सप्तदिनानि यावतः, तदनु
"भान्यद्रन्यसम काथ्यम्" इत्यादिवचनवलात् तिलतुल्यपरिमाण यष्टिमधु गृहीत्वा
श्रष्टगुण जल दत्त्वा पक्त्वा श्रष्टमभागवशिष्टजले तिलान् रात्रौ प्रविप्य दिवातपे
शोषयेत्, एव सप्तदिनानि यावत्, एव गन्यद्वीरेऽपि सप्ताहम् (पुनरिष तिलतुल्यपरिमाणे गन्यद्वीरे रात्रौ तिलान् निष्तुर्पाकृत्य चूर्णयेत् । ततश्च तेषा तिजचूर्णानां
चत्वारो भागाः, भागश्चेक काकोल्यादिशतपुष्पान्तमिलितचूर्णस्य, वद्यित च
'तिलचूर्णाचतुर्थम्' इत्यादि । एतस्यैव चूर्णस्य पाडनार्थमुत्स्वेदने कर्चन्ये श्राद्रैनारकरणार्थं सर्वगन्यस्त द्वार तावन्मान श्राह्य यावता द्वारेण चूर्णमार्द्र भवति ।
सर्वगन्थिरित्यलादिगणेन, द्वारपरिमाषयेव दुग्ध साध्यम् । एलादिगणश्च सौश्रतः।
एत्रमुक्तप्रकारेण गृहीततैलस्य चत्वारः शरावाः, एतत्पाकार्थञ्च गन्यदुग्धस्य षोडश-

रारावा आह्या इत्थर्थ । श्रशुमती शालपणीं, कालानुशारिवा तगरम्, चीरशुका चीरिविदारी, श्रनन्ता श्रनन्तम्ल, मध्लिका मर्कटहस्ततृण श्रन्ये तु गोधूमभेद इत्याहु । प्राग्रकानीति काकोल्यादिशतपुष्पान्तानि । पिभिरिति कल्कैरित्यर्थः । श्रद्धिमस्त्र सयप्ट्याह्वमित्येव पाठ सुश्रुतदोकासु व्याख्यातः । श्रिस्तत्तु पाठे यद्धीमधुनी भागद्वयम्, काकोल्यादिगणमध्येऽपि यद्यीमधुपाठात् ॥ १५ ॥ १६ ॥ इति भश्रचिकित्सा विश्रते ।

अथ कुष्ठ-चिकित्सा

वात्तोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोन्तो रक्षस्य विरेचनञ्चाग्रम् ॥ प्रच्छनमरुपे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम् ॥ बहुदोप संशोध्य कुष्ठी वहुशोऽनुरत्तता प्राणान् ॥१॥

रह्मदुष्टलग्गतत्वसाधर्म्यात् कुष्ठचिकित्सितमुच्यते । वातोत्तरेप्वित्यादि—सिर्प-रित्युपलक्षण तेन तैलाम्यक्कोऽपि बोध्य , उक्त हि वाग्मटे 'तत्र वातोत्तरे तेल धत वा साधित हितम् ' इति । अग्रमिति सिर्परादिपु योज्यम् , तेन वातोत्तरादिपु सिर्प-रादि प्रथम कार्व्यम् , तदनु वद्यमाणा चिकित्सा कार्य्येत्यर्थं । अग्र्यमिति पाठे प्रथानमित्यर्थं । बहुरा इति वलरकार्थं स्तोक स्तोक दोपनिर्वर्रणे पुन पुन शोध्य , एकदा हि म्रिदोपहरखेन वलक्षयो महात्ययश्च स्यादिति । अत्यत्व पत्तदनन्तरमुक्त चरकेण 'दोप प्रतिभात्रकृते वायुर्वन्यादवलमाशु' इति ॥ १ ॥

पश्चकपायः

वचायासापटोलानां निम्वस्य फिलनीत्वचः।
फपायो मघुना पीतो वान्तिकृन्मद्नान्वितः ॥ २ ॥
नेवत्यादी—वचादीना त्रयाणा मृलम् । फिलनी प्रियगु । नमनार्थन्न काथविभी परिमापा यथा,—'काव्यद्रव्यस्य कुढव अपित्वा जलादके । चतुर्मागाविशछन्तु नमनेप्ववचारयेत्' रति ॥ २ ॥

विरेचनन्तु कर्त्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफल्लिके ॥ ३॥

विरेचनमिति—शिफलाक्वाथे त्रिवृह्न्तीमूले प्रचिप्य श्रथवा दन्तीमूलात्रिवृता-लताचूर्णं प्रति मा २ त्रिफलाकाथेन पेयम् ॥ ३ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां प्रयुज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिभवति तेषाम् ॥ ४ ॥ ये लेपा इत्यादि—निर्गतोऽस्रगतो दोषो येषा ते तथा निर्गतास्रदोषा ॥४॥

मन शिलाले मरिचानि तैल-

मार्कं पय कुष्ठहर प्रलेप ॥ ४॥ करखवीजैडगजः सकुष्ठो

गोमूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः ॥ ६॥

मन शिलेत्यादौ — आल हरितालम् । तैलञ्च सार्षप कुष्ठहरत्वात् । आर्क पयोऽर्कचीरम् ॥ ४ ॥ ६ ॥

> पणीनि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तकेण पणीन्यथ काकमाच्या । तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठा-न्युद्धर्त्तयेदश्वहनच्छ्वदैश्च ॥ ७ ॥

पर्णानीत्यादौ-चतुरगुल श्योनालु, श्रश्वहनच्छद करवीरपत्रम्, एतदन्त एक एव योग । योगत्रित्वे चरकोक्तद्वात्रिंशत्प्रदेहसख्याद्यद्धि स्यादिति ॥ ७ ॥

ब्रारग्वधः सैडगजः करञ्जो

वासागुङ्कचीमदनं हरिद्रे।

श्याह सुराह खदिरो धवश्र

निम्बो विडक्नं करवीरकत्वक्॥

प्रन्थिश्च भौजों लग्जन शिरीषः

सलोमशो गुग्गुलुक्ष्णगन्धे।

फािंग्ज्भको वत्सकसप्तप्यौ

पीलूनि कुष्ठं सुमन प्रवाला ।

वचा हरेशुस्त्रिवृता निकुम्भो

भल्लातकं गैरिकमञ्जनञ्च।

मन-शिलाले गृहधूम एलाकाशीशले।धार्जुनमुस्तसर्जाः ॥
इत्यर्द्धस्पैविंहिता पडेते
गोपित्तपीता पुनरेव पिष्टाः ।
सिद्धाः परं सर्पपतैलयुक्ताश्चूर्णभदेहा भिपजा प्रयोज्याः ॥
कुष्टानि कृच्छ्वाणि नवं किलासं
सुरेन्द्रलुसं किटिमं सददु ।
भगन्दराशींस्यपर्ची सपामां

हन्यु प्रयुक्ता श्रविरान्नराणाम्॥ =॥

आरम्बथ इत्यादिना पट्भिः क्षेतकार्द्धे. पट्योगा । भारम्बथस्य पत्रम्, श्याद्व नवनीतखाटि, करवीरस्य लक्, प्रन्थिश्व भौजं इति मूर्जपत्रप्रन्यि, लोमशो धातुका-शीश तमालपत्र वा, कृष्णगन्या शोमाजनक , फाणिज्मक पर्णासभेद , पीछ धा-चरापिक फलस्, ग्रमन प्रवाला नातीपञ्चवाः, निकुम्मा दन्ती, अन्त्रन रसाक्षनम्, प्रदेल्पेरिति अर्दकाके , गोपिचपीता इति गोपिचभावनया पीता पीतवर्णा, भावना च सप्ताहम् ॥ ५॥

मन शिला त्वक् क्रुटजात् सक्कष्ठात् सलोमश सैडगजः करञ्ज । प्रन्थिश्च भौजेः करवीरमूल स्रूणीनि साध्यानि तुपोदकेन ॥ पलाशनिद्दाहरसेन वापि कर्पोद्घृतान्याढकसम्मितेन । दवींप्रलेपं प्रवदन्ति लेप-

मेतत् परं कुष्ठविनाशनाय ॥ १ ॥

मन शिलत्यादी—त्वक् कुटचादिति कुटनस्य त्वक् । लोमशो धातुकाशीशम्।
तुपोदक सतुपर्यवे सन्धानविशेषाद् कृत काश्विकम् । पलाशानिदीहरसेनेति पलाशवृचस्य प्रधानमूल द्वित्वा तदध कुम्म स्थापियता उपरि वृचदाहाद् यो गलति
स्वरसः स पलाशानिदाहरमः, अन्ये तु पलाशकारोदकमाहु ॥ १ ॥

कुष्ठाद्यम् कुष्ठं हरिदे सुरसं पटोलं निम्वाश्वगन्धे सुरदारुशियु । ससर्पपं तुम्बुरुधान्यवन्यम् चएडाञ्च दूर्वाञ्च समानि कुर्यात् ॥ तैस्तकपिष्टैः प्रथमं शरीरं तैलाक्षमुद्धत्तियेतुं यतेत ।

तथास्य कराङ्कः पिडकाः सकोठाः कुष्ठानि शोफाश्च शर्म प्रयान्ति ॥ १०॥

कुष्ठमित्यादी — सुरम पर्णासः, तुम्तुरु स्वनामख्यातम्, वन्यं कैवर्तमुस्तकम्, चरडा चोरपुष्पो, प्रथम तैलाक्षमिति योज्यम् । तेलब इह मार्पप्रम् ॥ १०॥ धाज्यत्तप्रथ्याकिमिश्रञ्जवहिमह्मातकावल्गुजलौहर्भृद्धैः। भागाभितृद्धैस्तिल्तैलमिश्रे सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेपः॥११॥

धात्रीत्यादी—अव विभीतकम्, क्रिमिशत्रुविंडङ्गः, विहिश्चित्रकः, लाह इति वजाधयश्चूर्णं न त्वग्रुरु । मृङ्ग इति मृङ्गराजस्य चूर्णं न तु गुडत्वक्, उक्त हि विन्त्यवासिना—''त्रिफलाथ विटङ्गानि चित्रकोऽरुष्करस्तथा। इन्दुरेखा अयश्चूर्णं मृङ्गराजरजाऽपि च । क्रमाभिवृद्धया समुकं सलेन सुपरिष्कुतम्। नवायमभिव नाम रमायन-मनुत्तमम् ''-इति । तथा लेप इति प्रमावपाठः किन्तु लेह इति, उक्त हि तन्त्रान्तरे-'' धात्रीः विभीतक पथ्या विडङ्गाग्निमरुक्तरम् । वागुजीलोहमुङ्गञ्च सचूर्णं क्रम-विद्धतम् । तिलतेलान्वित् लिद्धात् अष्टेमेतद्रमायनम् '' इति । तेनाय योगः शशाङ्ग-लेखेल्याधनन्तर वोध्यः, लेखकदोषात्तु लेपप्रकरेख पठित इति ॥ ११ ॥

विडद्गसैन्धवशिवाशशिरेखासपंपकरञ्जरत्तनीभि ।
गोजलपिप्रो लेप कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ १२ ॥
विडद्गैडगजाकुष्ठविशासिन्धृत्यसपंपैः ।
धान्यम्लपिष्टेलेपोऽयं दद्गुकुष्ठरुजापहः ॥ १३ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्देकुठेरकाः काञ्जिकतक्रिप्धाः। ृ तिभिः प्रतिपद्भित्वद्धमूलं ददुर्ख्व कगुडूख रुजाख हन्यात् ॥१४॥ विडक्केत्यादी—शिरिखा सोमरानीनीनम्, गोजल गोमूनम्, दिवसनाथः
स्र्यं. । द्वेत्यादी—चक्कमंद यहगजः; कुठेरक पर्यास । काजिकतक्रिपेष्टा इति
काजिकतक्रयोरन्यतरेख पिष्टा इति वदन्ति । त्रिभिः प्रतेपैरित्यनेन शीष्टप्रशमकारितां दर्शयति, न तु नियमोऽयम् ॥ १२-१४ ॥

तुल्या रस शालतरोस्तुषेणसचक्रमदौं अयभयाविमिश्रः। पानीययमक्केन तदम्बु पिष्टोलेपः इतो दद्रगजेन्द्रुसिंहः॥१४॥

तुल्य इत्यादि—शालतरो रसी घूनक, तुपेखित धान्यत्वचा, धूनकादीनां धानीयमनतान्ताना समी भाग । तदम्बुपिष्ट इति पानीयमकाजलेन पिष्ट ॥१४॥

प्रपुन्नाडस्य वीजानि घात्रीसर्जरसस्तुहा । सौवीरपिष्टं दद्र्णामेतदुद्वर्त्तनं परम्॥ १६॥ चक्रमर्दकवीजानि जीरकञ्च समांशिकम्। स्तोकं सुदर्शनाम् लं दृद्रकुष्ठविनाशनम् ॥ १७ ॥ लेपनाद्भचणाञ्चेव तृण्कं द्द्रनाशनम् ॥ १८ ॥ यूथीपुन्नागमुलञ्च लेपात् काञ्जिकपेपितम्। कासमदंकमूलञ्च सीवीरेण च पेषितम्। दद्रिकिटिमकुष्ठानि जयेदेतत् प्रलेपनात्॥ १६॥ शिषारिरसेन सुपिष्टं मूलकवीजं प्रलेपत सिध्म। न्तारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २०॥ गन्धपापाण्चूर्णैन.यवचारेण पेषितम्। सिध्म नारां वजत्याशु कडुतैलयुतेन या॥ २१॥ कासमईकवीजानि मूलकानां तथैव च। गन्धपाषाण्मिश्राण् सिष्मानां परमौषघम् ॥ २२ ॥ घात्रीरस सर्जरसः सपाक्य सौवीरपिष्टश्च तथा युतश्च। भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-स्तथैवमुद्धर्त्तनकं करोति॥ २३॥

प्रपुत्ताहस्थेति—प्रपुत्ताहः पहगजः। स्नुहाया चीरमन्ये तु मूलमाहुः। सौवीरं कार्षिकम् । स्तोक सुदर्शनामूलमिति मिलितचक्रमदंजीरकापेचया पादिक-मिलाहुः। त्यक चिनाधास इति नाम्ना ख्यातम्। यूथीपुत्रागमूलम् स्वनामख्यान्तम्। कासमर्दकः कालकासुन्दा पतन्मूल कार्षिकेन पिष्ट्वा रात्री स्थाप्य प्रातश्चान्काकरिते लेपो विषेय इत्युपदिशन्ति। शिखरिरसेन श्रपामार्गस्वरसेन चारेण वा कदल्या इति कदलीचारोदकेन पिष्टमित्यर्थं, पेषण प्रति विकल्पेनास्य प्रण्यात्। गन्धपाषाणो गन्धकम्, मूलकानान्तथैव चेति मूलकाना वीजानीत्यर्थं.। धात्रीरसः आमलकीस्वरसः, पानयो यवचार विद्लवणमित्यन्ये। तथा युत इति सौवीरेखेव दिनन्नय मावितः, 'प्तीकृत दिवसन्नयम्' इति योगान्तरदर्शनात्। धात्रीरसस्याने धात्रीफलमिति चन्द्राट पठिति॥ १६—२३॥

कुष्ठं मूलकवीजं त्रियङ्गव सर्षपास्तथा रजनी।

एतत् केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ २४॥
नीलकुरुएटकपत्रं स्वरसेनालिप्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पेन्मूलकवीजे पिष्टैस्तकेण सिध्मनाशाय ॥ २४॥
चक्राह्मयं स्नुहीचीरमावितं मूत्रसंयुतम्।
रिवतसं हि किञ्चित्तु लेपनात् किटिमापहम् ॥ २६॥
आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत्।
दद्रुकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ २७॥

कुष्ठमित्यादौ—केरार नागकेरारम् । नीलकुरुग्यको नीलिभिग्यदी । चक्राह्रय-मेडगजाबीनम् । 'रिनितप्त सिक्षिणक्र' स्त्यिप पाठान्तरम् ॥२४—२७॥

> वीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाजारजन्यौ प्रपुनाडवीजम् । श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात्॥ दद्वाणि सिष्मं किटिमानि पामां

कपालकुष्ठं विषमञ्च हन्यात् ॥ २८॥ मोजानीत्यादी—लाचारजन्याविति इन्द्रः न तु हरिद्राह्वमित्याहुः। श्रीवेष्टको नवनीतखोटिः॥ २८॥ विडक्केत्यादी—शिरेखा सोमरानीबीअम् , गोनल गोमूत्रम् , दिवसनाथ स्यं । दूर्वेत्यादी—चक्रमंद एडगन,, कुठेरक पर्यास । काजिकतक्रिपेष्टा इति काजिकतक्रयोरन्यतेरण पिष्टा इति वदन्ति । त्रिभिः प्रतेपैरित्यनेन सीव्रप्रशम-कारिता दर्शयति, न तु नियमोऽयम् ॥ ११-१४ ॥

तुल्यो रस शालतरोस्तुषेणसचकमदौँ अप्यभयाविमिश्र । पानीययमक्केन तदम्बु पिप्टोलेपः कृतो दद्रगजेन्द्रुसिंहः ॥१४॥

तुल्य इत्यादि--शालतरो रसो धूनक , तुपेयोति धान्यत्त्रचा, धूनकादीना धानीयमनतान्ताना समा माग । तदम्युपिष्ट इति पानीयमक्तजलेन पिष्ट ॥१४॥

> प्रपुत्राडस्य वीजानि घात्रीसर्जरसस्तुद्दाः । सौवीरिपष्टं दद्गुणामेतदुद्वर्तनं परम्॥ १६॥ चक्रमर्दकवीजानि जीरकञ्च समांशिकम्। स्तोकं सुदर्शनाम्लं दद्रकुष्ठविनाशनम् ॥ १७ ॥ लेपनाद्धत्त्रखाञ्चैव त्रखंकं द्द्रनाशनम् ॥ १८ ॥ यूथीपुन्नागमृलञ्च लेपात् काञ्जिकपेषितम्। कासमदंकमूलञ्च सीवीरेण च पेषितम्। द्दुकिटिमकुष्ठानि जयेदेतत् प्रलेपनात्॥ १६॥ शिखरिरसेन सुपिएं मूलकवीजं प्रलेपत सिध्म। चारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति॥ २०॥ गन्धपापाण्चूर्येन.यवचारेण पेषितम्। सिध्म नाशं त्रजत्याश्च कद्वतैलयुतेन वा ॥ २१ ॥ कासमईकवीजानि मूलकानां तथैव च। गन्घपापासिश्रासि सिध्मानां परमौषघम् ॥ २२ ॥ घात्रीरसः सर्जरसः सपाक्य सौवीरिपष्टश्च तथा युतस्च। भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-स्तथैवमुद्धर्त्तनकं करोति॥ २३॥

£

प्रपुत्राहस्येति—प्रपुत्राह एडगजः । स्नुद्दाया चीरमन्ये तु मूलमाद्दु । सौवीरं कािककम् । स्तोक सुदर्शनामूलमिति मिलितचक्रमदं नीरकापेचया पादिक-मिलादुः । त्यक चिनाधास इति नाम्ना ख्यातम् । यूथीपुत्रागमूलम् स्वनामख्यानम् । कासमर्दक कालकासुन्दा पतन्मूल कािककिन पिष्ट्वा रात्री स्थाप्य प्रातश्चा-काकरुदिते लेपो विधेय इत्युपदिशन्ति । शिखरिरसेन अपामार्गस्वरसेन चारेण वा कदल्या इति कदलीचारोदकेन पिष्टमित्यर्थ , पेषण् प्रति विकल्पेनास्य प्रणयात् । गन्थपापाणो गन्धकम् , मूलकानान्तथैव चेति मूलकाना वीजानीत्यर्थ. । धात्रीरस आमलकीस्वरसः, पाक्यो यवचार विद्वलवणमित्यन्ये । तथा युत इति सौवीरेणैव दिनत्रय मावित , 'पूतीकृत दिवसत्रयम् ' इति योगान्तरदर्शनात् । धात्रीरसस्थाने धात्रीफलमिति चन्द्राट पठति ॥ १६—२३॥

कुष्ठं मूलकवीजं प्रियक्षव. सर्षपास्तथा रजनी।
पतत् केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ २४॥
नीलकुरुगटकपत्रं स्वरसेनालिष्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पेन्मूलकवीजे पिष्टैस्तकेण सिध्मनाशाय ॥ २४॥
वकाद्वयं स्नुहीचीरमावितं मूत्रसंयुतम्।
रिवतसं हि किश्चिनु लेपनात् किटिमापहम् ॥ २६॥
श्रारम्बधस्य पत्राणि श्रारनालेन पेषयेत्।
दद्रुकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ २७॥

कुष्ठमित्यादी—केशर नागकेशरम् । नीलकुरुगटको नीलिक्रियटी । चक्राह्मय-मेडगजाबीजम् । 'रिवितप्त सिक्रियन्त्र' इत्यपि पाठान्तरम् ॥२४—२७॥

> वीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाजारजन्यौ प्रपुनाडवीजम् । श्रीवेष्टकव्योपविडद्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात्॥ दद्वाणि सिध्मं किटिमानि पामां

कपालकुष्ठं विषमञ्च हन्यात् ॥ २८॥ भीजानीत्यादी--लाचारजन्याविति इन्द्रः न तु हरिद्राह्यभित्याहुः । श्रीवेष्टको नवनीतस्रोटिः ॥ २८॥ एडगर्जकुष्ठसौवीर-सैन्घवसर्षपैः किमिन्नेश्च । क्रिमिसिष्मदद्वमग्रहसकुष्ठानां नाशनो लपः ॥ २६ ॥

एडगजत्यादी—मीबीरक मीबीराजनम् । अत्र विशिष्टद्रन्यस्यानुकत्वात् । गोमूत्रमेव कुष्टहर्रतया पेपणार्थं शाह्ममिति वटन्ति । अपरे तु सीवीरराज्यस्य काजिकार्थता परिकल्प्य तनेत पेपणमित्याहु ॥ २६ ॥ -

स्तुक्काएडे सर्पपात् कल्कः क्ककुलानल्पाचितः । 🛴 🥫

म्जुक्कायह इत्यादि—नाग्मटस्य। कृत्त्लानलः क्ररीपाधि । स्नुक्कायह-,
मध्य गर्न इन्ना पिष्टश्रेतसर्परेख तद प्रपूच्य स्नुई।कायहान्तरेखाच्छाच कुगादिमिर्वद्ध्वा मृत्तिकया प्रलिप्य गोमयाभिना देहत्। तत आकृष्य तेन कल्केन लेप ॥
॥ ३०॥

स्तुक्काराहे शुथिरे दग्ध्या गृह्यूमं ससैन्धवम् । , श्रन्त्र्भूम तैलयुक्तं लेपाद्धान्त विचर्धिकाम् ॥ ३१ ॥ एडगजातिलस्विपकुष्ठ-मागधिकालवर्णत्रयमस्तु । पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धीन्त विचर्धिकदृहु सकुष्ठम् ॥ उन्मत्तकस्य वीजेन मार्णकत्तारवारिका। । कडुतैलं विपक्तव्यं शीव्र हन्याहिपादिकाम् ॥ ३२ ॥

स्तुक्तायहे शुपिर इत्याद्री—सीजुपर्व कीरियत्वा तदिवर गृहधूममैन्धवचूर्यान्या पूरियत्वा, स्थालीमध्ये तिन्नीचय उपिर शराव दस्या , शित्तकया शरावमित्धः पिधायान्तप्प दहेत , तदनु कडुतैलेन मिमध्य लेप । एडगजेत्यादी—लवणत्रय सीवर्चलीमन्धवीवङ्लवणम् , उन्मत्तक्रम्य धुर्त्ताकस्य वीर्ज कत्क , मार्यक्रद्वारपिर-सुतजल चतुर्येष पाकार्थम् , विपादिका पादस्कोटनम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

नारिकेलोद्के न्यस्तस्तग्रहल पूर्तिकां गत । लेपादिपाद्कां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम् ॥ सर्जरसिन्धुसम्भय-गुडमधुमद्दिपात्तगैरिकं संघृतम् । सिक्थकमेत्रत् पकं पादस्फुटनापहं सिद्धम् ॥ ३३॥ ''भारिकेलोदक हत्यादि नार्क्लिक् सर्वर्त्तरियं प्रीहिम् । सर्वरसेत्यादी-सिन्धु कुष्ठ-चिकित्री।

सम्भव सैन्धवम् । महिपाच् इति गुग्गुख । प्रानु सर्व सममागमेकीकृत्य मनार्क् पक्तव्य यथा मिक्थकाकृति भूत्वा लेपयाग्य मेक्सि ॥ हि ॥

श्रवल्गु जं कासमर्दे चक्रमर्दे निशायुतेम् । माणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाश्चिकपेषितम् ॥ कच्छूं कगृहं जयत्युश्रां सिद्ध एष प्रयोगराद् ॥ ३४ ॥ कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन सम्पिष्टम् । दिवसत्रयेण नियतं च्यपति कच्छूं विलेपनतः ॥ ३४॥

प्रवत्गुजिमित्यादी-अवत्गुज सोमराजीवीजम्, माणिमन्थ सन्धवम्, मस्तुकाञ्जिकपेषितिमिति मस्तुकाञ्जिकयोरन्यतरेख । कोमलेत्यादी-सिंहास्यो वासकः तस्य पत्रम्, सुरमीजल गोमूत्रम् ॥ २४॥ २४॥

हरिद्राकल्क संयुक्तं गे।मूत्रस्य पलद्वयम् ।
'पिबेन्नर्' कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ३६ ॥'
शोधपाराङ्वामयहरी गुल्ममेहकफापहा।
कच्छूपामाहरी चैव पथ्या गोमूत्रसाधिता॥ ३७॥

हरिद्रेत्यादौ --शास्त्रयुक्त्या हरिद्राकलककर्षस्य प्रवेषः, कर्षश्चूर्णस्य कलक-स्येति वचनात्, व्यवहारस्तु हरिद्राकलकस्याष्टी माषका , गोमूत्रस्य प्रवेमकमिति । गोमूत्रसाधितेति गोमूत्रोत्स्वित्रा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पियति सकंद्वतैलं गन्धपाषाणचूर्णे रिविकिरणस्ति पामलो ये पलाईम् । विदिनतद्वसिक्षः जीरभोजी च शीवं भवति कतकदीप्त्या कामयुक्को मनुष्यः ॥ ३८॥

पुलाई वित्तिस्यादी—पुलाईमिति उत्तमवलानल प्रति प्रात्यहिकी मात्रा किंवा पुलाई वित्तिस्यादी—पुलाईमिति उत्तमवलानल प्रति प्रात्यहिकी मात्रा किंवा पुलाई दिनत्रय विभव्य बोज्य, निर्विद्योधकदशमापका प्रत्यह भवन्ति । स्यवहारस्य शोधितगन्धकचूर्यस्य मापकचतुष्ट्य कड्नेलस्य तु कर्ष, एक इति । तदनुसिक इति तेन सतैलगन्धकचूर्यनाम्यकग्ना के चीरमीजाति चौर्यिहेले मगडेन न्यवहार । दिनत्रय-सप्ताह वा प्रयोगिका वातातप्रवर्जने विति । कनेक

दीप्त्येति उपलक्ष्ये तृतीया । कनकगौर इति च पाठः । कामग्रुक्त इति उपचित-शुक्तथातुः, कामतुल्य इत्यपि पाठः ॥ १८ ॥

निशासुधारग्वधकाकमाचीपत्रैः सदावीं प्रपुनाइवीजैः । तक्रेण पिष्टैः कटुतैलिमिश्रेः पामादिपृद्धक्तेनमेतिदिष्टम् ॥ ३६ ॥ निशालादौ—निशादिचतुष्टयस्य पत्राणि, अन्ये तु निशा हरिदेन स्रभा-दीनोमन पत्राणीत्याहु ॥ ३६ ॥

सिन्द्रमरिचचूर्णं महिपीनवनीतसंगुतं वहुशः । लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा ॥ ४० ॥ मांसीचन्द्रनसम्पाक करझारिष्टसपेपम् । यष्टीकुटजदाव्येव्दं हन्ति कग्रड्मयं गणः ॥४१॥

सिन्द्रेत्यादी—करवारकाथकल्काभ्यां सिद्ध कडतैलिमित्यर्थः। मामीत्यादी सम्पा-कत्य पत्र, करजस्य फल, अरिष्टो निम्न , तस्य पत्र, यष्टोति यष्टोमधु । कपद्भमित्यत्र कुष्ठमिति कचित् पाठ । किन्तु चरकेऽध्यस्मिन् गणे दशेमानि कयद्भानीत्यु-कम् ॥ ४० ॥ ४१ ॥

भन्नातकं द्वीपिसुधार्कमूलं
गुआफलं त्र्यूपणशृह्वचूर्णम्।
तुत्यं सकुष्ठं लवणानि पञ्च
चारद्वयं लाङ्गलिकाञ्च पक्त्वा।
स्तुद्यर्कदुग्धे धनमायसस्थं
शलाकया तं विद्धीत लेपम्।
कुष्ठे किलासे तिलकालके तु
अश्रेपदुर्नामसु चर्मकीले॥ ४२॥

महातकेत्यादि — वाग्मटस्य । द्वीपि चित्रकः, अत्र महातकाषकांन्तानां मूलामिति केचित्, अन्य तु महातकार्य वीज तस्यव सर्वत्रोपयोगादित्यादुः । चित्र-कादित्रयस्य मूलम्, एपा मल्लातकादिलाङ्गलिकांतानां चूर्णं स्तुखकंचीराभ्या मिलिन्ता चूर्णंमेपच्य चतुर्गुणाभ्या लोहपात्रे लेपयोग्यता यावत् पाक शत्यादुः ॥४२॥

विषवरुणहरिदाचित्रकागारधूम-मनलमरिचदूर्वाः चीरमर्कस्तुहीभ्याम् ।

दहति पतितमात्रात् कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विसुक्रम् ॥४३॥

विषेत्यादौ-विष स्थावरविषम्, अनल महातकम् । अत्रापि पूर्वचूर्णादि-मानम् अर्करनुष्टीचीराभ्या पाकविधिक्षेति वदन्ति ॥४३॥

> शशाङ्क्षेत्रवा सविडङ्गसारा सपिष्पलीका सहुताशमूला। सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लीढा॥ ४४॥

शशाद्गलेखेत्यादि—वाग्मटस्य। शशाद्गेलखा स्रोमराजी, हुताशक्षित्रक, श्रयोमल शापितमण्डूरचूर्णम् । अस्मान्मिलितचूर्णान्माषकत्रय चतुष्टय वा गृहीत्वा तिलतैलेन लेखम् ॥ ४४॥

तीवेण कुष्ठेन परीतदेहों
य सोमराजी नियमेन खादेत्।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजी वपुषातिशेते॥ ४४॥

तीत्रेणेत्यादी—नियमेनेत्यनेन प्रात्याहिकत्व पथ्याशिखन्च गमयति । सोमराजी कृष्णतिलयोस्तु प्रत्येक माधकत्रय मापकचतुष्टम वा व्यवहरन्ति । सोमराजीमिति चन्द्रश्रेणीम् ॥४८॥

धर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वागुर्जी पिवेत्। चीरभोजी त्रिसप्ताहात् कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एकस्तिलस्य भागौ द्वौ सोमराज्यास्तथैव च। भच्यमाण्मिदं प्रातगृद्धद्दुविनाशनम् ॥ ४७ ॥ श्रवल्गुजाद्वीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा। भोजनं सर्पिषा कार्य्यं सर्वकुष्ठप्रणाशनम् ॥४८॥

धर्मेत्यादि-धर्ममेनी आतपसेनी नागुनी सोमरानीनीनम् , अस्य च माषक-चतुष्टयमुष्योदकेनालोड्य पिनेत्। एक इत्यादानिप उष्योदकमनुपेयम् ॥४६-४८॥

त्रिफलापटोलरजनी-मञ्जिष्ठारोहिणीवचानिम्वैः। एष कषायो अयस्ता निहन्ति कफ़ांपेत्तजं कुष्ठम् ॥ ४६ ॥

त्रिफोलत्यादि--स्पष्टम् ॥ ४६ ॥

छिन्नाया स्वरमो वापि सेव्यमाना यथावलम्। जीर्णे घृतेन भुजीत स्वल्पं यूपोदकेन वा। श्रातिपृतिशरीराेेेऽपि दिव्यरूपी भवेन्नर ॥ ४०॥ पटे।लखदिरारिष्ट-त्रिफलाकृष्णवेत्रजम्। तिक्राशनः पिवेत् काथं कुष्ठी कुष्ठ व्यपोहति ॥ ४१ ॥

श्रिक्षाया इत्यादौ-अञ्चिक्षा गुद्धची । पटोलेत्याटौ-अञ्चिकं कालियाल-तेति च्यातम्। तिकारान इति तिकभृविष्ठाहारः ॥ ५० ॥ ५१ ॥

, सप्तसमो योगः

तिलाज्यंत्रिफलाचौद्र-च्योपभन्नातशर्कराः । वृष्य सप्तसमा मेध्यः कुष्ठहा कामचारिए ॥ ४२॥ विडक्षेत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समानिकम् । हान्त कुष्ठं किमीन् मेहान् नाडीव्याभगन्दरान् ॥४३॥ तिलेत्यादी सप्तसम इति संग्रनलात् मिलितत्रिफलेन तिलाधकमागसमा पन व्यापमीप ॥ ४२ ॥ ५३ ॥

इन्द्राशनं समादायं प्रशस्ते उहनि चोद्धतम्। तच्चूर्ण मधुसर्पिम्यां लिहेत् चीरघृताशनः । इत्वा चं सर्वेकुष्ठानि जीवेद्धपेशतद्वयम्॥ ४४॥ यः खाँदद्भर्यारिष्टमरिष्टामलकानि वा'। स जयेत् सर्वेकुष्ठानि मासादृद्धे न संशय ॥ ४४ ॥ दह्यमानाच्च्युत कुम्मे मूलगे खंदिराद् रस ।" ं साज्यघात्रीरसंसीद्रो हिन्यात् कुष्ठं रसायनम् ॥ ४६ ॥ १ श्न्त्रारानमित्यादी—चूर्णमिति मापकद्वय त्रयः वा देवम् । यः सिदिदित्यादी श्रिरिष्टो निम्ब । दश्यमानादित्यादौ खिदररसधात्रीरसौ तुल्यौ । ष्टतचौद्रे तुप्रचेप्ये इत्याहु. ॥ ५४-५६ ॥

वायस्येडगजाकुष्ठ-कृष्णाभिगुंडिका कृता । वस्तमूत्रेण सम्पिष्टा लेपांत्श्वित्रीवनाशिनी ॥ ४७ ॥ पूतिकार्कस्तुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां मूत्रे पिष्टाः पञ्चवाः सौमनाश्च । लेपात् श्वित्रं झन्ति द्दुव्रणांश्च कुष्ठान्यर्शोस्युग्रनाडीव्रणांश्च ॥ ४८ ॥ .

गजिवज्ञव्याव्रचममसीतैलिवेलेपनात्।

शिवजं नाशं वजेत् किंवा पूर्तिकीटिवेलेपनात्॥४६॥
कुडवाऽवल्गुजवीजाद्धरितालश्चतुर्थभागसिमिशः।
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः पर शिवजे॥ ६०॥
घात्रीखिद्रयोः काथं पीत्वावल्गुजसंयुतम्।
शिक्षुन्दुघवलं श्वित्रं तूर्णं हन्ति न संशयः॥ ६१॥

वायसोत्यादी—वायसी काकमाची । पूर्तीकेत्यादि—सुश्रुतस्य । पूर्तिको लाटाकरकः, नरेन्द्रद्वम श्रारम्य , एवा पल्लवा इत्यन्वयः । तथा सीमनाश्च पल्लवा जातीपल्लवा इत्यर्थ । गजेत्यादी—चित्रव्याघ । केवलगजचममसीलेपश्च श्चित्रहर-लेनोको यथा—श्वेतजयन्त्यड्धिमूल चीर श्वित्रविनाशनम् । गजचममसीलेपो लेपा वा पूर्तिकीटज " इति । पूर्तिकीटः पादुकाकीट (पादकुरा) इति लोके ख्यातः ॥ ५७-६१॥

त्तारं सुदग्धे गजालिएडजे च
गजस्य मूत्रेण वहुस्रुते च।
द्रीणप्रमाणं दशमागयुक्तं
दत्वा पचेद्वीजमवल्गुजस्य ॥
एतद् यदा चिक्कणतामुपैति
तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रयुञ्ज्यात्।

श्वित्रं विलिम्पेद्थ तेन घृष्टं तदा वजत्याशु सवर्णभावम् ॥ ६२ ॥

चार इत्यादि—सुश्रुतस्य । गजालेग्रह गजपुरीय, जलगगडजेति पाठे जलगगडजेति पाठे जलगगडजेति पाठे जलगगडजेति पाठे जलगगडजेति पाठे जलगगडजेति पाठे जलगगडजेति । गजस्य मुत्रेख इत्यनन्तरं पक्ष इति रोप । वहुनुत इति एकविराति-वार मण्नवार वा परिश्लेत । दशमागगुक्तमिनि द्राखम्य दशमारोन गुक्तमवलगुजिमिन्दर्थ । एतस्य क्रियापरिपाटी लिख्येत । प्रथमतो गजलिग्रहचारम्य द्रोखमेक २५६ पल प्राह्मम् । वतस्तत्पाकार्थं गजमृत्र चारपरिमापया षट्गुख दीयमान द्रवद्देगुग्येन द्वादश द्रोखो भवति, अदिगुखगणनया तु पट्टोखानि स्यु, तेन मूत्र राराव १६० प्रायाखिमागावराथेऽस्मिन् "इति वचेनन एतियमागावरापाद द्देगुग्येन द्रोखोमक प्राह्म तच्च शराव ६४ । ततस्त्तत्यमागावराध्रह्मारोदकद्रोखापेच्या दशमारेशनावल्युजवीज पिच्च तस प्रविष्य पचेत् । तेनावल्युजवीजस्य किञ्चिल्यमूनत्रयोच दशमायकाधिकैकपन्नारात्यलानि मवन्ति, पल ५१, तोला १, मापा ५, अन्य तु पट्पन्नारादिषक्तिपलरातद्वयस्पचारदोखापेच्या दशमारेशनावल्युजवीज गृहन्ति, तेन तन्मते अवल्युजवीजस्य पल २५, तर्थ २, माया ६, रति ४ एतन्मान मवित, किन्तु व्यवहार पूर्वयेव । ततोऽवताव्यं शिलाया पिच्च चिक्रणतामुवगते सित गृहिका. कार्यो । ष्रप्रमित फल्गुपत्रकरीपादिना ॥ ६०॥

श्वेतजयन्तीमूलं पिएं पीतञ्च गन्यपयसैव । श्वित्रं निद्दन्ति नियतं रविवारं वैद्यनाथाद्या ॥ ६३ ॥ श्वजयन्तीत्यादी—गोपयसैव पिष्ट पीतन्नेत्यं ॥ ६३ ॥

पञ्चनिम्बः

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च।
सञ्चूर्णय पिञ्जमदेस्य त्वद्धालानि दलानि च।
द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत्॥
त्रिफलाञ्यूपण्याहीश्वदंष्ट्रारुष्कराशिकाः।
विवङ्गसारवाराहीलौहचूर्णामृता समा॥
हरिद्राद्वयवागुजीव्याधिघाता सशर्करा।
कुछेन्द्रयवपाठाश्च हत्वा चूर्ण सुसंयुतम्॥

खिद्राशनिम्वानां घनकाथेन भावयेत्। सप्तधा पञ्चिनम्वन्तु मार्कवस्वरसेन तु। स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान् योजयेच शुभे दिने॥ मधुना तिक्कद्विपा खिद्दराशनवारिणा। लह्ममुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्धश्वा पलं पिवेत्। जीर्णे च भोजनं कार्य्य स्निग्धं लघु हितञ्च यत्॥

विचर्चिकौड्ड स्वरपुर्डरीककपालदृह्किटिमालसादि।
शतारुविस्फोटविस्पेपामां कफप्रकापं त्रिविधं किलासम्॥
भगन्दरश्रीपद्वातरक्तं जातान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान्।
सर्वान् प्रमेहान् प्रद्रांश्च सर्वान् दंष्ट्राविपं मूलविपं निहन्ति।
स्थूलोद्र सिंहकृशोदरश्च सुश्रिष्टसन्धिमधुनापयोगात्॥
समोपयोगाद्रिय य दशन्ति सर्पाद्यो यान्ति विनाशमाछ।
जीवेचिरं व्याधिजराविमुक्तः श्रुभेरतश्चन्द्रसमानकान्तिः॥६४॥

पुष्पकाल इत्यादौ—पञ्चितम्बाना प्रत्येक भागद्वय त्रिफलादोनान्तु प्रत्येकमेको भाग । त्रिफलाञ्च्यूषण्यरिष प्रत्येक भाग । श्राधिश्रत्रकः । वाराही वाराहीकन्द । व्याधिघातः स्वर्णाद्धः । खदिराशनिनम्बाना धनकाथेनीत खदिरादीना प्रत्येकमप्ट-भागाविष्टिन काथेन भावना । श्रग्रन पीतशालः । तिक्षहिवषिति बन्द्यमाणितिक-पट्पलकादिना । खदिराशनवारिणेति खदिराशनकाथेन । कोलवृद्धथेति कोल कर्णार्द्धम् । समोपयोगादिति वर्षोपयोगात् ॥६४॥

एकविंशतिको गुग्गुलुः

चित्रकत्रिफलाव्योपमजाजीं कारवीं वचाम्। सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्येलायावश्क्रजम्॥ विडङ्गान्यजमोदांश्च मुस्तान्यमरदारु च। यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलम्॥ सङ्जुद्य सर्पिषा सार्द्धं गुडिकां कारयेद्भिषक्। प्रातमीजनकाले वा भन्नयेत्तु यथावलम्॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि क्रिमीन् दुष्टवणानिषः। ग्रह्म्यश्रोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥
गृश्चसीमथ भग्नद्रच गुल्मञ्चापि नियच्छति ।
व्याधीन् कोष्ठगतांश्चान्यान् जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥६४॥
पञ्च मल्लातकांशिङ्क्ष्वा साध्येद्विधिवज्जले ।
कपायं तं पिवेच्छीतं घृतेनाक्षौष्ठतालुकः ॥
पद्मचृद्ध्या पिवेद् यावत् सप्ति हासयेचतः ।
जीर्णेऽद्यादोदनं शीत घृतचीरोपसंहितम् ॥
पतद्मसायनं मेध्यं वलीपलितनाशनम् ।
कुष्टाशे किमिदोपमं दुएशुकविशोधनम् ॥६६॥

चित्रकेत्यादि—स्पष्टम् । पञ्चेत्यादी—विधिवदिति काथविधिना विप्पलीवर्द्ध-मानवदत्र षृद्धिहामी ॥६५—६६॥

तैलं भह्नातकानाञ्च पिवेन्मासं यथावलम् । सर्वोपतापनिर्मुक्तो जीवेद्द्रपेशतं दृढः ॥६७॥ प्रलेपोद्धर्कनस्नानपानमोजनकर्माण । शीलितं स्वादिरं वारि सर्वत्वग्दोपनाशनम् ॥६८॥ तैलिमत्यादी—मह्नातकतेल म्यन्त्रेण प्राह्मम् ॥६७—६८॥

तिक्रपट्पलकं घृतम्

निम्वपटोलकदावीं दुरालमां तिक्करोहिणीं श्रिफलाम्। '
कुर्यादर्द्धपलांशान् पर्पटकं त्रायमाणाञ्च ॥
सिललाढकसिद्धानां रसेऽप्रमागस्थिते क्षिपेत् पूते ।
चन्दनिकरातिक्ककमागधिकात्वायमाणाञ्च ॥
मुस्तकवत्सकवीजं कल्कीकृतमर्वकार्पिकान् भागान् ।
नव सर्पिपश्च षद्पलमेतत् सिद्धं घृतं पेयम् ॥
कुष्ठज्वरगुलमाशोंश्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथून् हन्ति ॥
पामाविसपेपिडकाकण्डूमद्गण्डनुत् सिद्धम् ॥ ६६ ॥
निम्तेत्वादी—स्वपि "सिष्याप्यनव हित्य" हित वचनात् पुराणसिष्य प्व

म वेत्रीपयोगिकत्व, तथाप्यत्र योगमिहस्रा नवसिषः एवं प्रयोजनवस्वमिति वचनादेवोन्नीयते । सिष् इति पद षट्पलमानग्रह्णार्थम् । दितीयन्तु प्रतिमिति पद पेयत्वोपदर्शनार्थम् । तथा प्रथम सिद्धमिति पक्, दितीयन्तु प्रमिद्धिख्यापकम् । स्रमेन च षट्पलाभिधानेन कुछ च्येष्ठा षट्पली केष्टमात्रा एकाद्देषयोज्या दिशितत्याहु, ॥ ६ १॥

पश्चतिक्षघृतम्

निम्बं पटोलं व्याझीक्च गुडूचीं वासकं तथा।
कुर्याद्शपलान् भागानेकैकस्य सुकुद्वितान्॥
जलद्रोणे विपक्षव्यं यावत् पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम्॥
पञ्चतिक्कामिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्।
श्रशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिशच्च पैत्तिकान्॥
विश्वति श्रीष्मिकांश्चेच पानादेवापकषिति॥ ७०॥
पञ्चतिके—चलारिशच पैतिकानिति चलारिशद्देगास्तानपकषिति कास्तानित्याकाङ्चायास्रक पैतिकानिति। एव भेदयित्वा योजना कार्य्या, अन्यथा चलारिशतमिति द्वितीया स्यात्॥ ७०॥

तिक्रकघृतम्

त्रिफलाद्धिनिशावासायासपर्पटक् लकान्।
त्रायन्तिकदुकानिम्यान् प्रत्येकं द्विपलोन्मितान्॥
काथित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु।
घृतप्रस्थं पचेत् द्यत्तैः पिष्पलीघनचन्दनैः॥
त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत् पीतं तिक्ककं घृतम्।
द्यन्ति कुष्ठज्वराशींसि श्वयशुं ब्रह्णीगदम्।
पाग्हरोगं विसर्पश्च क्लीवानामि शस्यते॥ ७१॥
त्रिफलत्यादी—कुलक पटोलपत्रम्, शक्ष कुटनस्तस्य फलम्॥ ७१॥

महातिक्वकं घृतम् सप्तच्छदं व्रतिविषां सम्पाकं तिक्वरोहिणीं पाठाम्। मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलिपचुमईपर्पटकम् ॥
धन्ययवासं चन्द्रनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यो च ।
पङ्ग्न्यां सिवशालां शतावरीशारिवे चोभे ॥
वत्सकवीजं वासां मूर्वाममृतां किरातितक्तञ्च ।
कल्कस्य चतुर्भागो जलमप्रगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।
द्विगुणो घृतात् प्रदेयस्तत् सिर्प पाययेत्सिद्धम् ॥
कुष्ठानि रक्षापत्तं प्रवलान्यशासि रक्षवाहीनि ।
वीसर्पमम्लिपत्तं चातास्क् पाग्रहरोगञ्च ॥
विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां ज्वरं कग्डूम् ।
द्वद्रोगगुल्मिपडकामस्ग्दरं गग्डमालाञ्च ॥
दन्यादेतत् सद्य पीतं काले यथावलं सिर्प ।
योगशतैरप्यजितान् महाविकारान् महातिक्तम् ॥७२॥

महातिकके—उपकुल्यत्येकवचनपाठो न युक्त । श्रायुर्वेदसारवाग्मटादौ पिप्पली-द्वयपाठाद । कल्कस्य चतुर्माग इति प्रताश्चतुर्यो भागः। एतम्ब मामान्यपरिमापासिद्ध-मपि स्पष्टार्थमुन्यते पढ्यन्या वचा, श्रीक्यठस्तु पिप्पलीमूलमित्याह, तन्न, वाग्मट वचापठाद । श्रमृतकलानामित्यामसक्कक्षलानाम् । श्रन्नाप्येक स्पि पद कल्कादिविभा गार्थम्, दितीय पेयत्नोपदर्शनार्थम्, तृताय महातिककसक्षार्थम् ॥ ७२ ॥

महाखादिरकं घृतम्

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिशपासनयोस्तुले।
तुलाई। सर्व पर्वते करञ्जारिष्टवेतसाः॥
पर्पट कुटजश्चैव वृषः क्रिमिहरस्तथा।
हरिडे कृतमालश्च गुद्धची त्रिफला त्रिवृत्॥
सप्तपर्णस्तु संजुएणो दशद्दोणे च वारिणः।
श्रप्टभागावश्चेपन्तु कपायमवतारयेत्॥
धात्रीरसश्च तुल्यांशं सर्पिपश्चाढकं पचेत्।

महातिक्षककल्कैश्च यथोक्कैः पलसम्मितैः॥ निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यद्गनिषेवणात्। महाखदिरमित्येतत् परं कुष्ठविनाशनम्॥

महाखदिरश्ते—शिशपा इति ख्यातस्तरः, अशन स्वनामख्यात, न तु पीतशाल इत्याहु, पतयोस्तुलाह्य मिलित्वा । तुलार्द्धाः सर्व प्वैत इति करश्वादिम्पत्पर्णान्ताः प्रत्येक तुलार्द्धाः दशद्रोणे च वारिण इत्यनन्तर पचेदिति शेष । तुल्याशमित्यादकमानमित्यर्थः । चक्रस्तु "धात्रीरसञ्च तुल्याश सिर्पश्चादक पचेत्" इति अन्य न पठित । तथा "यथिकौ पलसम्मितैः" इत्यत्र यथोकौस्तेस्तु साधयेदिति पठित व्याचष्टे च । साधयेदित्यत्र सिर्परिति शेषः । अत्र यद्यपि द्यतमान नोक्ष तथापि क्षाथशेपस्यादकाथिकद्रोणस्य नियतत्वाद् तत्काथचतुर्थाश प्रस्थाधिकादकमान द्यतस्यार्थापत्तितन्त्रयुक्त्या सिद्ध मवतीति । कल्कस्य केहपादिकत्व सामान्यपरिभाषा-मिद्धमेविति । केचिन्महाखदिरद्यतमिदमनार्पमित्यादुः ॥७३॥

पश्चतिक्न-घृतगुग्गुलुः

निम्वासृतावृपपटोलिनिदिग्धिकानां
भागान् पृथग्दशपलान् विपचेद् घटेऽपाम् ।
श्रष्टांशशेषितजलेन सुनिःस्तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत् पिचुमागकल्कैः ॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्याद्वित्तारनागरिनशामिषिचव्यकुष्ठैः ।
तेजोवतीमिरचवत्सकदीप्यकाशिरोहिएयरुष्करवचाकण्मूलयुक्कैः ॥
माञ्जष्टयातिविषया वरया यमान्या
संश्रद्धगुग्गुजुपलेरिप पञ्चसंख्यैः।
तत् सेवितं विपमति प्रवलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीहक् ॥
नाडीव्रणार्वुद्मगन्दरगएडमालां
जत्रुद्ध्वेसवेगद्गुल्मगुदोत्थमेहान् ।

यच्मारुचिश्वसनपीनसकासशोप-द्वत्पारहरोगगलविद्गधिवातरक्रम् ॥७४॥

निम्बासेतत्यादि—वाग्मटस्य । घट इति द्रोणे । पिचु कर्षरूपे भागो थेपा कल्काना ते । मिपिः शतपुष्पा, न तु मधुरिका वृद्धव्यवहारात् । तेजोवती ज्योति-ध्यति । दीप्यक जीरकम् । वत्सक कुटनफलम् । अग्निश्चित्रकः । कण्मूल पिष्पली-मूलम् । वर्षा त्रिफलया ॥७४॥

वज्रकं घृतम्

वासागुद्धचीत्रिफलापटोलं : करञ्जनिम्वाशनकृष्णवेत्रम्। तत्काथकरुकेन घृतं विपकं तद्वज्ञवत् कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः किम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यं। पौराणिकीं कान्तिसवाप्य जीवेदव्याहतो वर्षशतब्च कुष्ठी ॥७४॥

बासत्यादी-कृष्णवेत्र कालियालता । वज्रकमिति वज्रवद्व्यर्थशिक-कलात् ॥७५॥

ञ्चारग्वधाद्यं तैलम्

श्रारग्वधं घवं कुष्ठं हरितालं मनःशिलाम् । रजनीहयसंयुक्तं पचेत्तेलं विधानवित् । एतेनाभ्यक्षयेत् भित्रती ज्ञित्रं भ्वित्रं विनश्यति ॥७६॥

आरम्बधिमत्यादी—तैलिमिति सार्पपाधन्यतम कुष्ठीहतत्वात्, उक्त हि चरके ''तैलानि सर्पपाया करअकोषातकीङ्गुदादीनाम् । कुछेषु हितान्याहुस्तैलं यश्वापि खदिरस्य'' इति। अन्ये तु सामान्यश्रुती प्रधानकल्पत्वेन तिलंतलमेन याद्यम्। यत्र तु सार्पपादिनिशेषोकिस्तत्रेव सार्पपादिमहत्यमित्याहु । एवमन्यत्रापि एवजातीये शेयम् ॥७६॥

त्याकं तैलम्

मिंखिष्ठारुड् निशाचक्रमर्दारग्वधपहावै । एएकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्टहरं कहु ॥ ७७ ॥ मिंधेरलादो—रुक् कुड्म, तृषक गन्यतृषम् ॥ ७७ ॥

महातृ एकं तैलम्

हरिद्रातिफलादारु-हयमारकिचत्रकम्।
सप्तच्छद्श्च निम्वत्वक्-करक्षौ वालकं नखी॥
कुष्ठमेडगजावीजं लाङ्गली गणिकारिका।
जातीपत्रञ्च दार्वी च हरितालं मनःशिला॥
किल्ज्जितिलपत्रञ्च श्रकंचीरञ्च गुग्गुलुः।
गुडत्वङ्मरिचञ्चैव कुंकुमं श्रन्थिपर्णकम्॥
सर्जपणीसलिद्दं विडद्गं पिष्पली वचा।
घनरेग्वमृतायिष्ठकेशरं ध्यामकं विषम्॥
विश्वकद्फलमञ्जिष्ठा वोलस्तुम्वीफलं तथा।
स्नुहीसम्पाकयो पत्रं वागुजीवीजमांसिके॥
पला ज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो गोमयाद्रसाः।
चन्दने कुष्ठिनिर्गुण्डीविशालामित्रकाद्वयम्॥
वासाश्वकर्णी ब्रह्मी च श्र्याह्वम्पककुड्मलम्।
पतैः कल्कैः पचेचैलं तृणकस्वरसद्रवम्।
सर्वत्वग्दोपहरणं महातृणकसंज्ञितम्॥ ७०॥

हरिद्रेत्यादौ-लाङ्गलो विषलाङ्गलोति ख्याता, कीलङ्ग इन्द्रयव , चोरा चोरपुष्पी, ग्रीन्थपर्यं गेठेला, ध्यामक गन्धत्यम्, बोलो गन्धरसः, तुम्बीफल पक्षतिकालाबु ; मिल्लकाद्वय मिल्लका हाफरमिल्लका च, अयाहो नवनीतिखोटि, चम्पककुड्मल चम्पक-किलका। तृयाकस्वरसो द्रव पाकमाधन जल यस्य तत्त्रथा। श्रत्रान्तरे सोमराजी-तैल केचित् पठन्ति तत्तु न टीकासम्मतिमिति ॥ ७ ॥

वज्रकतैलम्

सप्तपर्शकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् । मूर्लं स्तुहीशिरीपाभ्यां चित्रकास्फोतयोरिप ॥ करञ्जवीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम्। सिद्धार्थकं विडङ्गञ्च प्रपुन्नाडञ्च संहरेत्॥ सूत्रिपष्टे पचेत्रैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् । श्रभ्यद्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्ट्रत्रणापद्दम् ॥ ७६ ॥

सन्तपर्येत्यादि—सुशुतस्य । मूत्रपिष्टः पचेत्तलिमिति पाकोऽपि गोमूत्रेयीव । भास्कोता भेतार्कमूलमिति केचित् । अत्र तिलंतलमेव देयमः "तेल तेल साधित ते समूत्रं " इति वाग्मटसवादात् । तैलमत्र मार्पपमिति केचित् ॥ ७६ ॥

मरिचाद्यं तैलम्

मिरचालशिलाव्यार्कपयोऽध्वारिजदात्रिवृत्। शक्तद्रसिवशालारुड्निशायुग्दारुचन्द्नैः॥ कहुतैलात् पचेत् प्रस्थं द्यत्तिर्विपपलान्वितैः। सगोम्नृत्रं तद्भयद्वाददुध्वित्रविनाशनम्॥ सर्वेष्वपि च कुष्ठेपु तैलमेतत् प्रशस्यते॥ ८०॥

स्तल्पमिरिचाधतेले—श्राल हरितालम्, शिला मन शिला, अर्कपयोऽर्क-चीरम्, अश्वारि करवीर , जटा जटामासी, चन्द्राटादिपिठतमिरिचाधे मासीदर्शनान् व्यवहाराच, शक्कद्रसो गोमग्यस्स , अग्रमिष कल्क , विशाला गोरक्तर्कटी, रक् कुष्ठम्, निशासुक् हरिद्राद्रयम् । प्रस्थमिति प्रस्थपरिमित तेन सामानाधिकरस्य न विरुध्यते । गोमूत्रमत्र चतुर्श्रुष वोध्यम् ॥ ८०॥

बृहन्मरिचाद्यं तैलम्

मिर्च त्रिवृता दन्ती ज्ञीरमार्क शक्त । देवदार हरिद्रे हे मांसी कुछं सचन्दनम् ॥ विशाला करवीरञ्च हरितालं मन शिला। चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ शिरीपं कुटजो निम्दः सप्तपर्णः स्तुहामृताः। सम्पाको नक्तमालोऽद्यः खिद्रं पिष्पली वचा ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य हिएलं भवेत्। श्राढकं कडुतैलस्य गोमृत्रन्तु चतुर्गुणम् ॥ मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृहग्निना पचेत्। पक्त्वा तैलवरं होतन्त्रस्वयेत् कौष्ठिकान् त्रणान् ॥ पामाविचर्षिकाद्दुकएडू विस्फोटकानि च। वलयः पलितं छायानीलिन्यः तथैव च॥ श्रभ्यक्षेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्थ्येञ्च जायते। प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यन्तु दीयते॥ परामपि जरां पाप्य न स्तना यान्ति नम्रताम्। वलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा वायुपीडितः। प्रभरभ्यक्षनैगीढं भवेन्मारुतविक्रमः॥ =१॥

बृहन्मरिचाची—राक्तद्रस पूर्ववत्, कुटजस्य च फलमाहु'। स्नुहायास्तु चीरम्। प्रथमे वयसीति वयःसन्धौ ॥ ८१॥

विषतैलम्

नक्तमालं हरिद्धे द्वे श्रर्क तगरमेव च।
करवीरं वचा कुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥
मालती सप्तपर्णञ्च मिक्षष्ठा सिन्धुवारिका।
एपामर्द्वपलान् भागान् विषस्यापि पलं भवेत् ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
श्वित्रविस्फोटिकिटिमकीटल्ताविचिक्विकाः॥
कर्णद्वकच्छ्विकाराश्च ये वणा विषदृषिताः।
विषतैलिमदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम्॥ ८२॥

विषतेले—नक्तमाल करअवीजम्, अर्कस्य चीरम्, तगर तगरपादुका, मालती जानी तस्या पत्रम्, सिन्धुवारिका निर्गुष्टी ॥ =२ ॥

करवीराद्यं तैलम्

श्वेतकरवीररसो गोमूत्रं चित्रकं विडक्नञ्च। कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं सम्मतो भिषजाम्॥ ८३॥

श्वतकरवीरेत्यादी—करवीररसगोमूत्रयोमिलित्वा चातुर्गुग्यम् । शेषस्य तु कल्कत्वम् ॥ दश् ॥

श्वेतकरवीराद्यं तैलम्

श्वेतकरवीरमूल विपांशसाधित गर्वां मूत्रे । चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटक्रिमिकिटिमजित्तैलम् ॥ ८४॥

श्वतकरवीरमूलमित्यादी—वितकरवीरस्य मूल यत्र, स्वेत करवीरस्य मूल यत्रेति वा विगृद्ध तैलविशेषयाता छेया । विषाशसाधितमिति विषस्याशश्वनुर्थे। भाग स च करवीरमूलापेष्ठया इति केचित् । श्रन्ये तु गतविषति विषस्य पलमुक्त तद-वेच्चया कर्षमाद्वः, तत्र तन्त्रान्तरीयवावयत्वात् । श्रन्ये पुनरशो भाग , तेन विषकर-वीरमूलयो सममागयोरेव कल्कत्व, व्यवहारोऽप्योननेव ॥ ८४ ॥

सिन्द्राद्यं तैलम्

सिन्दूराईपलात् पिष्ट्वा जीरकस्य पलं तथा। कद्वतेल पचेन्मानीं सद्य पामाहरं परम्॥ ८४॥

स्वल्पसिन्द्राचे-मानीमित्वष्टी पलानि । वृन्दे तु 'बिहतेल पचेदाभ्या सव पामाहर परम्'' इति पठयते । तन्मतेऽपि वृद्धवैद्यन्यवहारादेव पलाष्टक माह्मम् ॥=५॥

महासिन्दूराद्यं तैलम्

सिन्द्रं चन्दनं मांसीविडक्षं रजनीवयम् ।
प्रियक्षुपष्मकं कुष्टं मिल्लाष्ट्रं खिद्रं वचाम् ॥
जात्यकिविद्यतानिम्वकरः विषमेव च ।
कृष्ण्वेत्रकलोध्रञ्च प्रप्रनाडञ्च संहरेत् ॥
श्रुम्पक्षेत्र सर्वाण् योजयेत्तलमात्रया ।
श्रभ्यक्षेत्र प्रयुक्जीत सर्वकुष्ठिवनाशनम् ॥
पामाविचर्चिचकाकगद्भविस्पादिविनाशनम् ।
रक्षपिचोत्थितान् हन्ति रोगानेवंविधान् वहून् ॥ ६६ ॥
महासिन्द्राथे—जात्याः पत्र, श्रकंत्य चीर, क्रिश्वस्य फलम् । तैलमात्रया
प्रस्थरुपाः॥ ६६ ॥

श्रादित्यपाकं तैलम् मिष्ठात्रिफलालाचानियाशिलालगन्धके ।

चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम्॥ ५७॥

श्रादित्यपाकतेले—जल तैलसम दत्त्वा जलशोषपर्यंन्तमातपे स्थाप्य जल विना पाकानुपपत्ते: । श्रतप्त इन्द्रलुप्तोकादित्यपाकेऽपि गुङ्क्चीरसमेव तैलसम व्यवहरन्ति वृद्धाः । श्रन्ये तु द्रवानुकावद्रवमेवादित्यपाकमाहुः ॥ ८७॥

द्वीद्यं तैलम्

स्वरसेन च दूर्वायाः पचेत्तेलं चतुर्गुणम् । कच्छूविचर्चिचकापामा श्रभ्यङ्गादेव नाश्येत्॥ ८८॥

दूर्वातेले-चर्तुगुण यथा स्यात्तथा दूर्वास्वरसेन पचेत् । दूर्वास्वरसेन चतुर्गु-योन तैल पचेदित्यर्थ । वृन्देऽपि ''स्वरसेऽपि च दूर्वायाः पचेत्तैल चतुर्गुयो'' इति पाठ ॥ ८८॥

अर्कमनःशिलातैले

श्रकेपत्रसे पर्क कद्वंतैलं निशायुतम् । मनःशिलायुतं वापि पामाक्यड्वादिनाशनम् ॥ ८६ ॥ अर्वतैले—कल्कभेदात् योगद्दय, स्वरसम्बतुर्गयः, कल्कश्राद्यश यव स्वरस-साध्यतात् ॥ ८६ ॥

गराडीरिकाद्यं तैलम्

गगडीरिकाचित्रकमार्कवार्ककुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रे.। तैलं पचेन्मगडलकुष्ठदद्रुदुष्टत्रणारु किटिमापहारि ॥६०॥

गण्डीरिकेत्यादौ—गण्डीरिका स्त्रही, तस्याः श्वीरः, एवमर्कस्यापि, द्रुम स्वर्णालुस्तस्य त्वक्ः, लवण सैन्धव, यदुक्तमायुर्वेदसारे "पक कर्ण्यंकीसन्धृत्यकुष्ठ- स्तुग्विद्वमार्कवै । समूत्रैस्तैलमाहन्ति दद्ग्णि किटिमानि च" इति । अत्र कर्णा स्वर्णालु । तथा च द्रव्यावला "आरेवतस्तथा कर्णी कर्णिकारोऽथ रैवत. इति । अत्य तु गण्डीरिका मिश्रष्ठा, द्रुमः कुटजस्तस्य त्विगत्यादु ॥ ६०॥

पृथ्वीसारतैलम्

चित्रकस्याथ निर्शुएड्या हयमारस्य मूलतः। नाडीचचीजाद्विषतः काञ्जिपिष्टं पलं पलम्॥ करञ्जतैलाष्टपलं काञ्जिकस्य पर्ल पुनः । मिश्रितं सूर्य्यसम्पकं तैलं कुप्टवणास्त्रजित् ॥ ६१ ॥ वित्रकेति—श्रत्यन्तेत्कृष्टगुणलात् पृथ्वीसार इति मद्या ॥ ६१ ॥

सोमराजीतैलम्

सोमराजी हरिद्धे द्वं सर्पपारग्वधं गदम् ।
करञ्जेडगजावीजं पत्रमारग्वधस्य च ॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा गोमूत्रप्रस्थसंयुतम् ।
विपचेत् सार्पप तैलं नाडीदुष्टत्रणापहम् ।
श्रानेनाशु प्रणश्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैन तु ॥
नीलिका पिप्तवो व्यद्गा गम्भीरं वातशोणितम् ।
कर्ण्डन्यच्छप्रशमनं कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ६२ ॥

सोमराजीत्यादी --गद कुष्ठम् ॥ ६२ ॥

पत्तात् पत्ताच्छुर्दनान्येभ्युपया- ' न्मासान्मासात् स्नंसनञ्ज्ञाप्यघस्तात् । ज्यहात् ज्यहानस्ततश्चावपीडान् मासेष्वसङ्मोत्त्येत् पट्सु पट्सु ॥ ६३॥

पत्तादि-सुश्रुतस्य । स्नमन विरेचनम् । नस्ततः इति नासपुटयोरब-पाडानस्यविशेषान् दचात् । श्रवपीडशच्देन वहुमात्रसिंगःप्रयोगोऽप्युच्यते तिन्नरा-सार्थं नस्ततः इत्युक्तम् ॥ ६३ ॥

योपिन्मांससुरात्याग शालिमुद्गयवादय । पुराणास्तिक्षशाकञ्च जाङ्गलं कुछिनां हितम् ॥ ६४ ॥ व इति कुछचि।केत्सा ॥

योपिदित्यादी-मासमानूपज निपिद्ध जाङ्गलस्य विधानात् ॥ ६४ ॥ इति कुछनिकित्साविद्यति ।

अथोदर्द-कोठ-शीतिपत्त-चिकित्सा।

श्रभ्यद्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्ततः। उददे वमनं कार्य्य पटोलारिष्टवारिणा॥१॥

प्रायस्तुल्यचिकित्सितत्वात् उददीदिचिकित्सितमुच्यते। श्रम्यङ इत्यादी—मेक इत्यत्र स्वेद इत्यपि पाठ । श्रत प्रवोक्तमन्यत्र "श्रम्यङः कहतैलेन स्वेदन कोष्ण्व वारिणा" इति पटोलारिष्टवारिणेत्यत्रानुक्तमिप मदनफलकल्क प्रचेप्यम् । त्रिफला-पुरक्षण्याभिरिति त्रिफलायाः कपाय गुग्गुलुपिप्पल्यौ प्रचेप्ये, प्रचेपश्च व्यवहाराद् गुग्गुलोर्दशमापका पिष्कल्यास्तु षरमापका इति ॥१॥

> त्रिफलापुरकृष्णाभिविरेकश्चात्र शस्यते । त्रिफलां चौद्रसहितां पिवेद्वा नवकार्षिकम् । विसर्पोक्कममृतार्दि भिषगत्रापि योजयेत् ॥२॥

त्रिफला चौद्रसिहतामिति-त्रिफलाया काथ, चौद्रन्तु प्रचेष्यम् । नवकािषक वातरकोक्तम्।विसपोक्तममृतादिमिति अमृतवृषपटोल मुस्तकमित्यादिनोक्तम् । तत्यैव शीतिपत्तहन्तृत्वेनोक्तस्वात्, न पुनरमृतवृषपटोल निम्वकल्कैरुपेतमित्यादिकम् । सिता मधुकसयुक्तामित्यत्र सिता कदुक्तया युक्तामिति केचित् पठन्ति ॥२॥

सितां मधुकसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ॥३॥ सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत् पथ्यान्नमुङ् नर । तस्य नश्यति सप्ताहादुददः सर्वदेहज ॥४॥ सिद्धार्थरजनीकल्कै प्रपुन्नाडतिलैः सह । कटुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्वर्त्तनं परम् ॥४॥ दूर्वानिशायुतो लेपः कच्छूपामाविनाशनः । किमिददुहरश्चेव शीतिपत्तापहः स्मृतः ॥६॥ श्रियमन्थमवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा । शीतिपत्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाश्येत् ॥७॥

सगुडिमित्यादी—दीप्यक यमानिकाम् ॥३—७॥ कुछोक्तञ्च क्रमं कुटयदिम्लिपित्तव्रमेव च । उद्दोंक्षां कियाञ्चापि कोठरोंगे समासतः। सर्षिः पीत्वा मद्दातिक्षं कार्य्य शोणितमोत्त्रणम् ॥=॥ कुष्ठे।क्रमित्यादि—उदर्वचिकित्सा कोठरोंगेऽप्यतिदिशति। उदर्देत्यादि— महातिक सर्षि कुष्ठे।कम् ॥=॥

निम्वस्य पत्राणिसदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथवोपयुञ्ज्यात्। विस्फोटकोठत्ततशीतिपत्तं कण्ड्वस्रपित्तं रकसा च हन्यात्॥६

निम्नस्थेत्यादि-योगदयम्, अन्य तु एकमेन योग नदन्ति । रकसा चुद्रकुष्ठभेद इति श्रीक्षण्ठ ॥६॥

चारसिन्धृत्थतेलेश्च गात्राभ्यद्गं प्रयोजयेत्। गाम्मारिकाफलं पकं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः। चीरेण शीतिपत्तमं खादितं पथ्यसेविना ॥१०॥ चोरत्यादी—चारो यवचार, तेलञ्च कडतेल वदन्ति। गाम्मारिकत्यादि— गुपकगुष्कगाम्मारीफल गन्य दुग्ध दत्ता अस्तिव खावम् ॥१०॥ तैलेडिक्तनयोगेन योज्य प्रसादिको स्वाः।

तैलेडिर्त्तनयोगेन योज्य प्लादिको गणः।

शुष्कमूलकयूपेण कौलत्थेन रसेन वा॥
भोजनं सर्वदा कार्य्यं लावितित्तिरिजेन वा।
शीतलान्यन्नपानि दुद्धा दोपगितं भिषक्।
दुष्णानि वा यथाकालं शीतिपत्ते प्रयोजयेत्॥११॥

इत्युदर्द-कोठ-शीतिपत्त-चिकित्सा।

तैलेत्यादि—सुश्रुतोक्त यलादिको गृणस्तैलयोगेन उद्दर्शनयोगेन च योज्य इत्यर्थ ॥११॥

इत्युदद्धिचिकित्सा-विवृति.।

अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

प्रागम्लिपत्तरोगार्चं कुलकारिष्टवारिभिः। सराठचौद्रासिन्धृत्थैर्वमनं कारयेद् भिषक्॥१॥ वान्ति कृत्वाम्लिपत्ते तु विरेकं मृदु कारयेत्। सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुक्षिग्धस्यानुवासनम्। श्रास्थापनं चिरोद्धते देयं देषाग्न्यपेच्या॥२॥

उक्तमङ्गत्थेव अम्लिपित्तिचिकित्सितमुच्यते । वान्ति कृत्वेति—वमनन्न अरिष्टा-दिभि अत्र तन्त्रान्तर यथा—"प्रागम्लिपत्तरागार्चं कुलकारिष्टवारिमि । सराठचौद्र-सिन्धूत्थैर्वमन कारयेद्भिषक्" इति । राठ मदनफलम् ॥१—२॥

क्रियाग्रुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेत्तया । दोपसंसर्गजे कार्य्यो भेषजाद्वारकल्पना ॥ ऊद्ध्वेगं वमनैर्घीमानधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ ३॥

क्रियेत्यादि —दोषससर्गजे अनुबन्धव्यपेत्तया अनुबन्धभूतदोघाविरोधेन शमनी मशमनरूपा मेषजाहारकल्पना क्रिया कार्य्येत्यर्थं । उक्तवमनविरेकयोर्वि-पथमाह जद्ध्वंगमित्यादि — जद्ध्वंगे बहुकफे वमन, अधोगे तु अम्लपित्ते नविवन्धे विरेचनम् ॥ ३ ॥

तिक्रभूयिष्ठमाहारं पानं वापि प्रकल्पयेत्। यवगोधूमविक्ठतींस्तीक्णसंस्कारवार्जितान्। यथास्वं लाजशक्तून् वा सितामधुयुतान् पिवेत्॥ ४॥

यवगोधूमेति—र्यवगोधूमी हि मरत्वमृष्ठरत्वादिना श्रम्लिपत्तिहिती, तथो पेयादिरूपान् विकारान् । तीच्यासस्कारवर्जितान् इति कट्वम्ललवणादिसस्कारसयोग-रिहतान् । यथास्वमिति पिवेदित्यनेन योज्यम्, तेन दोपससर्गाद्यपेत्रया तत्तदोप-प्रत्यनीकेन द्रवेण पिवेदित्यर्थ ॥ ४॥

निस्तुषयववृषधात्रीकाथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः। श्रपनयति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुह्तयूषेण॥४॥

निस्तुवेत्यादौ-'त्रिसुगन्धिमधुयुतं इति त्रिसुगन्धि त्वगैलापत्रम्, तच्च सीगन्ध्यमात्रकारकम्, मधु तु प्रचेपन्यायेन योज्यम् ॥ ५ ॥

कफित्तवमीकग्रह्र-ज्वरिवस्फोटदाहहा।
पाचना दीपन काथः श्रेगवेरपटालया ॥६॥
पटोलं नागरं धान्यं काथियत्वा जलं पिवेत्।
कग्रह्रपामार्त्तिग्रलमं कफिपत्ताग्निमान्यजित्॥७॥
पटोलविश्वामृतरोहिणीस्त्रतं जलं पिवेत् पित्तकफोच्छुये तु।
ग्रतस्त्रमारोचकविद्यमान्यदाहज्वरच्छिदिनिवारणं तत्॥ ॥॥
यवस्रण्णपटोलानां काथं चौद्रयुतं पिवेत्।
नाश्येदम्लपित्तञ्च श्रक्तिञ्च वीम तथा॥६॥
केलेलादौ—श्वेतर शुग्री॥६—६॥

दशाङ्गः

वासामृतापर्पटकिनम्बभृनिम्बमाकैवै । त्रिफलाकुलकैः क्वायः सत्तौद्धः भागित्तद्वा ॥ १० ॥ दराहि—मार्केने महराज ॥ १० ॥ फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्वाकाथः सितायुतः । पीत क्वीतकमध्याक्को ज्वरच्छुर्यम्लपिन्जित् ॥ ११ ॥

फलिकिमित्यादी--तिकेत्यतः परमेषामिति शेष , तेन फलिकिनादीनि यान्येतानि पर्पा काथ इत्पर्धः फलित । क्षीतक बष्टीमधु, सिताकीतकमधूनीह प्रवेष्याणि ॥ ११॥

पथ्याभृद्गरजश्चूर्ण युक्तं जीर्णगुडेन तु । जयेदम्लिपत्तजन्यां छिर्दिमश्रविदाहजाम् ॥ १२ ॥ पथ्यत्यादौ-सहरजश्चूर्णं मृद्गराजस्य चूर्णम् ॥ १२ ॥

वासागुगगुलुः

वासानिम्वपटोलत्रिफलाशनयासयोजितो जयति । श्रीधककफमम्लपित्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमशः॥ १३॥ वासेत्यादी-श्रान पीतशाल, यासी दुरालमा, वासादीना चूर्य गुग्गु-छुमम गुग्गुलो प्रधानत्वाद । क्रमश इत्यभ्यासेन ॥ १३॥

छिन्नाखदिरयण्ट्याह्नदार्वम्मो वा मधुद्रवम् । सद्राचामभयां खादेत् सचौद्रां सगुडाञ्च ताम् ॥ १४॥

छिन्नेत्यादौ--मधुद्रवीमीत बहुनीहि , तेनाम्म इत्यस्य विशेषण, मध्वत्र प्रतिपेण । साद्राचामित्यादि-योगत्रयमेतत्॥ १४॥

कडुका सिता च लेह्या पटोलविश्वञ्च मधुयुक्तम् ॥ १४ ॥ रक्तस्रुतौ च युक्त्या खर्णं कृष्मार्गडकं श्रेष्ठम् ॥ १६ ॥ पटोलधन्याकमहौषधाब्दै कृतः कषायो विनिहन्ति शीष्ठम् । मन्दानलं पित्तवलासदाहच्छर्दिज्वरामानिलग्र्लरोगान् ॥१७॥

कडका सिता चिति—कडका कडरोहियो सितया लेखेत्यर्थः। पटोलविश्वच मधुयुक्तमिति पटोलविश्वयोः काथ मधु अचिष्य पिवेदित्याहु । कृष्मायङ-खण्डक रक्तपिचोक्तम् ॥ १५–१६॥

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं फलिनकं सुकिथितं सुशीतम्। चौद्भान्वितं पीतमनेकरूपं सुद्रारुणं हन्ति तद्मलिपत्तम्॥१८॥ तन्त्रान्तरे पटोलधन्याकेत्यादियोगस्तथा छिन्नोद्भवानिम्बेत्यादियोगश्च किचल प्रस्तेक दृश्येत. तौ च निश्चलेन बुन्देन च धृतौ ॥१७॥१८॥

पटोलित्रफलानिम्बश्टतं मधुयुतं पिवेत्।
पित्तश्चेष्मज्वरच्छिदिंदाहश्चलोपशान्तये ॥ १६ ॥
सिंहास्यामृतमग्टाकीकाथं पीत्वा समान्तिकम् ।
श्रम्लिपत्तं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं विमम् ॥ २० ॥
पटोलित्रफलेत्यादौ—श्रिष्टो निम्व. । सिंहास्थेत्यादौ सिंहास्थो वासक ,
मण्टाकी कण्टकारी ॥ १६—२० ॥

वासाघृतं तिक्षघृतं पिष्पलीघृतमेव च । श्रम्लंपित्ते प्रयोक्षव्यं गुडकूष्माएडकं तथा। पिक्षश्र्लापद्दा योगास्तथा खएडामलक्यपि॥ २१॥ वासाधर्त रक्तापेचोक्तम् । तिक्तधत कुछोक्तमहातिक्तक नत्रेव अम्लिपित्तहरत्व-श्रुते । पिप्पलिधतन्तु परियामग्रत्नोक्तम्, पतच यद्यपि "पिकिश्तापहा योगाः" इत्येननैव लम्यते तथापि विशेषार्यमुक्तः, यथा खयडामलकी । पिप्पलीमधुमयुक्तिति अवलेहिविधया ॥ २१ ॥

पिष्पली मधुसंयुक्ता चाम्लिपचिनाशिनी । जम्बीरस्वरसः पीतः सायं इन्त्यम्लिपचकम् ॥ गुडिपिष्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिमीदकीकृतः । पित्तन्धेष्मापद्द श्रोक्तो मन्दमिश्च दीपयेत् ॥ २२ ॥ जन्बीरत्यादी—पक्तनमीरफलस्वरसं , अयन्त्र योगे वातील्वेणेऽन्लिपित्त इत्याद्व ॥ २२ ॥

हिङ्गु च कतकप्रलानि चिञ्चात्वचो घृतञ्च पुरद्ग्धम् । शमयति तदम्लिपत्तमम्लभुजो यदि यथात्तरं द्विगुणम् ॥२३॥

हिक्नित्यादी—कतकफल जलप्रसादनफल प्रायो मगेष भवति । यथोत्तर दिगुर्व्यामिति हिद्ग्वपेचया कनकफल दिगुर्व्य, कतकफलापेचया तिन्तिडीतकलग्-दिगुर्व्या, तिन्तिडीतकलगेपचया च प्रति दिगुर्व्यामिति । यतद सर्व स्थालीमध्ये निचित्य शरावेव्य पिथायान्तर्भूम दग्ध्वा माषकचतुष्ट्यमुपयोज्य तप्तजलज्ञानुरेय, तन्त्रान्तर-सवादात् ॥ २३ ॥

> कान्तपात्रे वराकल्को व्युपितो अभ्यासयोगत । सितासौद्रसमायुक्त कफापित्तहरः स्मृतः॥ २४॥

कान्तपात्र इति—कान्ताख्यलीहिनरापपात्र प्रक्षिप्य स्थापितत्रिफलाकल्क इत्यर्थ । शर्करामधुनी प्रक्षेप्य ॥ २४ ॥

> पर्कोऽश पञ्चनिम्वानां द्विगुणो वृद्धदारकः। शक्तुर्दशगुणा देय शर्करामधुरीकृत ॥ शीतेन वारिणा पीत शूलं पित्तकफोरिथतम्। निह्दन्ति-चूर्ण सन्तौद्रम्लिपत्तं सुद्दारुणम्॥ २४॥ एकोऽश दलादी—पन्निननानामिति निम्नस्य लक्षत्रपुर्मफलंमूलानां

पन्चाना मिलितानामेको माग । शक्तुर्दशगुण इति निम्बमागापेस्वया, मात्रास्य पलमर्द्धपल वा श्राहारद्रव्यशक्तुवाहुल्यात् ॥ २५ ॥

अभ्रशुद्धिः

श्राश्चभक्तोदकै पिएमभ्रकं तत्र संस्थितम्।
कन्दमाणास्थिसंहारखण्डकण्रसरैय ॥
तण्डलीयकशालिञ्चकालमारिषजेन च।
वृश्चीरवृहतिभृक्षलक्षणाकेशराजकै।॥
पेषणं भावनं कुर्यात् पुरञ्चानेकशो भिषक्।
याविश्रश्चन्द्रकं तत् स्याच्छुद्धिरेवं विहायसः॥ २६॥

सम्प्रति चुषावती वाच्या । तत्र प्रथमाशुमक्तेत्यादिना श्रञ्जकशुद्धिमाइ । श्राशुर्थान्यमेद । श्रत्राञ्जक कृष्णाञ्चक याद्य श्रेष्ठत्वाद् । तत्रिकपत्रीकृत्य उद्खलादिषु सन्चूर्य्य श्राशुमक्तकार्श्वके श्रहोरात्र स्थापयित्वा तेनैव कार्त्रिकेन पेषणीयम् । तत कन्दादीना व्यस्तसमस्तानां स्वरसेन पुन. पेपण भावन पुटमञ्च वृहुधा कुर्वीत यावित्रश्चान्द्रिकत्वमञ्जस्य स्यादित्यर्थः । तत्र कन्दो वन्य श्रोत , ख्रण्डकर्ण खायड-कानः (खारकोन) इति ख्यात । तयडुलीयकालमारिषयोः स्वल्पपत्रवृहत्पत्र-भेदेन मेद । वृश्चीरः पुनर्नवा, सृत्रो सृत्रराज॰, लच्चणा स्वनामख्याता । विहायस इत्यञ्जकस्य ॥ २६ ॥

लौहशुद्धिः

स्वर्णमाचिकशालिश्चध्मातं निर्वापितं जले।
त्रेफलेऽथ विचूएर्यैवं लोहं कान्तादिकं पुनः॥
वृहत्पत्रकरीकर्णत्रिफलावृद्धदारकैः।
माणकन्दास्थिसंहारश्टक्षवरमवै रसैः॥
दशमूलीमुण्डितिकातालमूलिसमुद्भवः।
पुटितं साधु यत्नेन शुद्धिमेवमयो व्रजेत्॥ २७॥

लौहशुद्धिमाह स्वर्णमाचिकेत्यादि—पिष्टाभ्या स्वर्णमाचिकशालिक्चाभ्या कान्तादिलीह लिप्त्वा ततो भस्त्रया वही ध्मात ततोऽमृतसारवत्त्यमाखविधिकथित- त्रिफलाकाथे निर्वापितमित्यर्थे । त्रेफले जल इति त्रिफलाकाथ इत्यर्थे । तदेव निरुत्यमारितलीहन्यूर्णं प्रज्ञालयन् मानुपाकादिशोधित वृहत्पत्रकरिकर्णपलाशादि-स्वरसे प्रीटत कुर्यादित्याह वृहत्पत्रेत्यादि—हृहत्पत्रे। वढवढ इति ख्यात , अत्र बृहत्पत्रकरिकर्णाचेकादशपुटनद्रव्येषु मध्ये येपा स्वरसप्राप्तिस्तेपा स्वरसो प्राद्य , येपान्तु स्वरसो न लम्यते तेपा पुटनीयलीहसमानामष्टगुण जल दत्त्वा अष्टमभागाध-शेपकायेन पुटन कर्त्तंन्यामिति ॥ २७॥

मग्हूरशुद्धिः

विशरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णीमयूरकम् । तर्ह्रलीयञ्च वर्णाम् द्वाघश्चोद्ध्वेमेव च ॥ पाक्यं सुजीर्णमर्ह्रं गोमूत्रेण दिनत्रयम् । श्रन्तर्वाष्पमद्ग्यञ्च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् । विचूर्णितं शुद्धिरियं लौहिकट्टस्य दर्शिता ॥२ ॥॥

विशरिमत्यादिना—लीह्मलशुद्धिमाह । वशिर श्रेतसूर्यावर्तः । मधुपर्या गुह्ची । मयूरकोऽपामार्ग । तयदुलीय चुद्रमारिय । वर्याभू पुनर्नवा । सुक्रीर्था मयहर पुरायमयहूरम् । वशिरादीना मूलत्वक्फलप्रह्मवान् स्थालीमध्ये पातियत्वा तदुपरि जीयमयहूर दत्त्वा तरेव पह्मवादिमिराच्छाब गोमूश्र दत्त्वा दिवसत्रय व्याप्य श्रदस्य यथा स्यात्त्रथा पाको विधेय । तदनु शरावेख पिधायान्तर्वाण यथा स्यात्त्रथा दिवसत्रय स्थाप्यम् । तदनु प्रचाल्यातपे शोपियत्वा चूर्ययेदिति मयहरशुद्धि ॥२८॥

रसशुद्धिः

जयन्त्या वर्द्धमानस्य श्राईकस्वरसेन च । वायस्याश्चानुपूर्व्येवं मर्दनं रसशोधनम् ॥ २६ ॥ श्रथ रसशुद्धिमाह जयन्त्या इत्यादि—वर्द्धमान एरण्ड । वायसी काकमाची ॥ २६ ॥

गन्धकशुद्धिः

गन्धकं नवनीताय्यं चुद्रितं लौहभाजने। त्रिघा चएडातपे शुष्कं भृक्षराजरसाप्जुतम्॥ ततों वहौ द्रवीभूतं त्वरितं वस्त्रगालितम्। यलाद् भृहरसे चिप्तं पुन शुष्कं विशुध्यति॥ ३०॥

गन्धकशुद्धिमाह, गन्धकिमत्यादि—चुद्रितिमिति तयदुलकणपरिमाण कृत्वा लोह-भाजने स्थापित्वा मृद्रराजस्वरसेनासाच्य चयडातेप शोषयत, एवमपरवारद्वयमि । तदनु प्रचाल्यातेप सशोष्य लोहपात्रमध्य स्थापित्वा ज्वलद्वदराङ्गारोपि दक्ता दिख-क्या सद्याल्य यदा तैलवद् द्रवीमवित तदा मृद्रराजस्वरसपरिपूरितपात्रे धताक्षसूद्म-वस्त्रेण पिहितमुखे गन्धक त्वर्या ढालियत्वा पात्रान्तरेण पिदध्यात् । तदनु प्रचाल्य आतेप शोपियत्वा चूर्णयेदिति गन्धकशुद्धि ॥ ३०॥

ज्ञुधावती गुडिका

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम्। लौहिक हं पलाई क्व सर्वमेकत्र संस्थितम्॥ मराङ्कपर्णीवशिर-तालमूलीरसैः पुन । वरीभृद्गकेशराज-कालमारिषजैरथ॥ त्रिफलाभद्रमुस्ताभि स्थालीपाकाद्विचूर्णितम्। रसगन्धकयोः कर्षौ प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः॥ तन्मनाक् च शिलाखन्ने यत्नतः कज्जलीकृतम्। वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका॥ व्योपं मुस्तं विडङ्गञ्च प्रन्थिकं खरमञ्जरी। त्रिवृता चित्रको दन्ती सुर्य्यावर्त सितस्तथा॥ भृद्गमाणुककन्दौ च खरडकर्णक एव च। द्गडोत्पला केशराज-कालावकडकोऽपि च ॥ एपामईपलं श्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम्। प्रत्येकं तिफलायाश्च पलाई पलमेव च ॥ एतत् सर्वं समालोड्य लौहपाते तु भावयेत्। श्रातपे दग्रहसंघृष्टमाईकस्य रसैस्त्रिधा॥ तद्रसेन शिलापिष्टां गुडिकां कारयेद्भिषक्। वदरास्थिनिमां ग्रुष्कां सुनिगुष्तां निधापयेत्॥

तत् प्रातर्भोजनादौ च सेवितं गुडिकातयम् ।
ग्रम्लोद्कानुपानञ्च हितं मधुरवर्जितम् ॥
दुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं विशेषतः ।
मोर्ज्यं यथेप्रमिष्टञ्च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं ग्रलञ्च परिणामजम् ।
पाएहरोगञ्च सर्वञ्च शोथोदरगुदामयान् ॥
यदमाणं पञ्च कासांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
श्रीहानं श्वासमानाहमामवातं सुदारुणम् ।
गुडी जुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥ ३१ ॥

शय शोधिताञ्चकलै। इले। इसलचूर्यां ना मिलित्वा स्थालीयाकमाइ, गगनादित्यादिगगनादित्यञ्जकात् । मण्डूकपण्यां दितालमूल्यन्तस्य रसेनाञ्चकली इतन्मलिमिलितचूर्यंसमेनेक स्थालायाक । वरीति शतावरी । तत शतावय्यादिकालमारियान्तरसेन च
दितीय स्थालायाक । तदनु त्रिफलामद्रमुस्नामिरप्यनन्तरोक्षकाथविष्ठितकाथेन तथेव

एतीय स्थालीयाक इति । निश्चलस्तु मण्डूकपण्यांदितालमूल्यन्तरसेन पुटदानमाइ ।

तत्तु न सम्यक्, पुटदानाञ्चेत , प्र्वपुटदानस्य तु रसशोधनादियन्थेन व्यवधानाचित ।
स्थालीयाकादिच्यितिति-स्थालीयाकानन्तर पुनलों इशिलायां च्यांकत्तव्यमित्यथे ।
पत्तदनन्तर यदिथेय तदाइ, रमगन्थकयोः कर्यावित्यादि—रसगन्थकयो कर्या प्रत्येकमिति च्छेदः । तिमिलितरसगन्धककर्यचतुष्ट्यमेकत इत्येकोक्टत्य कब्जलिक्त श्राह्मिति

योज्यम् । वचा चव्यमित्यादिना प्रचिप्यच्यूंच्छव्याण्याद्य । खरमञ्जरी अपामार्ग ।
स्थांवर्षो जामान्यस्यांवर्षः , स च अत । माण्यककन्दो माण्यक्त्य । प्याच्य वचादोना चूर्णे प्रत्येकमद्वपलम् त्रिफलाया मिलित्वा नार्द्यवसेकम् । तेन त्रिफलाया

प्रत्यक्तमद्वपलमिति फलित । बदरास्थिमिता इति अत्रोपदेशात् कलायपरिमाणा

दत्याद्य । अत्र चीरादिवर्जन वारिमकाम्लकािन्यकादिविधानस्य प्रयोगसात्म्यत्वात् ।
अचिन्त्या हि योगशिकरिति ॥ ३१ ॥

जीरकाद्यं घृतम्

पिण्ड्वाजाजीं सधन्याकं घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवर्मि जयेत्॥ ३२॥ पिष्ट्रत्यादी-जल चतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

١

पटोलशुएठी घृते

पटोलशुण्ठ्योः कल्काभ्यां केवलं कुलकेन वा। घृतप्रस्यं विपक्षव्यं कफिपत्तहरं परम्॥ ३३॥ पटोलेत्यादि— स्पष्टम्॥ ३३॥

पिप्पलिष्टितम्

पिष्पलीकाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुष्लुतम् । पियेच प्रातरुत्थाय अम्लिपत्तिनृत्तये ॥ ३४ ॥ विष्पलीष्टते—मधुष्लुतमिति सिद्धे धते धतपादिकमधुयुक्तम् ॥ ३४ ॥

द्राचाद्यं घृतम्

द्राचामृताशत्रुपटोलपत्रे.

सोशीरघात्रीघनचन्द्नैश्च।

त्रायन्तिकापद्मकिरातघान्यैः

करकैः पचेत् सर्पिरुपेतमेभिः॥

युजीत मात्रां सह भोजनेन

सर्वत्र पानेऽपि भिषग्विद्ध्यात्।

वलासपितं ग्रहणीं प्रवृद्धां

कासाग्निसाद्ज्वरमम्लपित्तम्।

सर्वे निहन्याद् घृतमेतदाशु

सम्यक् प्रयुक्तं ह्यमृतोपमञ्च ॥ ३४ ॥

द्राचेत्यादौ-राकः कुटज., तस्य फलमिति वदन्ति। पद्म पद्मकाष्टम् ॥३४॥

शतावरीघृतम्

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पय समम्। पचेन्मृद्विया सम्यक् ज्ञीरं दक्वा चतुर्गुणम्॥

नाशयेद्द्रस्तिपत्तञ्च वातिपत्तोत्तरान् गदान् । रक्तिपत्तं तृपां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ ३६ ॥ इत्यम्तिपत्त-चिकित्सा ।

शतावरीष्ट्रते पय समिति पय शब्देनेह पय साधर्म्यात् शतावर्म्या रसो आह्य , न तु चीर, तस्य पृथगुपात्तवात् समिति ष्टतेन सह तुल्यम् ॥ ३६ ॥ इत्यम्लिपत-चिकित्सा-विष्टृति ।

अथ विसर्प-विस्फोट-चिकित्सा।

विरेकवमनालेप-संचनास्गिवमोत्त्र्णै । उपाचरेद् यथादोपं विसर्पानविदाहिभिः॥१॥

श्रम्लिपत्तविद्वमिर्पेऽपि पित्तसम्बन्धम्यावश्यम्भावात् प्रायस्तुल्यचिकित्स्यत्वाचाः म्लिपित्तानम्तर विसर्पेचिकित्सितसुच्यते । श्रविदादिभिरित्यत्राञ्जपानिरिति शेष ॥१॥

> . पंटोलिपचुमर्दाभ्यां पिष्पल्या मदनेन च । विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥२॥

पटोलेत्यादि--पटोलिपचुमदाभ्यामित्येको बोग । पिप्पत्या मदोनन चेति दितीय । इन्द्रयवस्तु योगद्वयेऽपि सम्बध्यते इति केचित् । श्रन्ये तु पटोलिनम्बयो। काथ पिप्पत्यादित्रय प्रक्षेप्यमित्येक योगमाहु । व्यवहार. पुनरनेनेव ॥ २ ॥

> त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह प्रयोक्तन्यं विरेकार्थे विसर्पन्वरशान्तये ॥ रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ३॥

त्रिफोलत्यादि—त्रिफलाकाथ सर्पिस्त्रवृते प्रश्चिप्य पेय । रमिमत्यादाविप विरेकार्थमिति सम्बध्यते ॥ ३ ॥

> रणवर्जं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूलचतुप्रयम् । प्रदेहसेकसर्पिभिविंसपे वातसम्भवे ॥ ४॥

त्यवर्जिमिति त्यापञ्चमूल वर्जियत्वा पञ्चमूलचतुष्टयम्।तत्र स्वल्पमहत्पन्चमृल-दय प्रसिद्दमेव। क्रयटिकपञ्चमूल बङ्गीपञ्चमूलन्च यथा,—''मेपश्चद्री हरिद्रा च विदारी शारिवाऽमृता । वल्ल्याख्य कर्ण्यव्याख्यन्तु श्रदष्टाऽभीरुशैर्य्यकीः । श्राहस्ता-करमदेश्य सर्वदोषहराश्य ते ।" श्रत्र श्रमीरु. शतमूली, शैर्य्यकी भिर्ण्यी, श्राहस्ता कालाकडः, नरमर्दः स्वल्पमधुरफल चीरीति लोके इति सुश्रुत्तटीका । तृणपञ्च-मूलस्य वर्जनमिष्ट पित्तहरत्वेन वातेऽयौगिकत्वात् ॥ ४॥

कुष्ठं शताह्वासुरदारुमुस्ता वाराद्विक्कस्तुम्बुरुकुण्णगन्धाः। वातेऽर्कवंशार्त्तगलाश्च योज्या सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु॥४॥

कुष्ठामित्यादि—सुश्रुतस्य । वाराही वाराहीकन्द , प्तर्दमावे चर्मकारालुक । कुस्तुम्वरु धनीयकम् , कृष्णगन्धा शोभाक्षनमूल, अन्ये तु वीज, अनोंऽर्कमूल, वशो वंशनाली, आर्त्तगल आगडामूल अर्जुनवल्कल वा ॥ ५॥

प्रपौराडरोकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्द्नैः। सयप्रीन्दीवरैः पित्ते चीरपिष्टैः प्रलेपनम्॥६॥ प्रपौराडरोकेलादी—इन्दीवर नीलोत्यलम्॥६॥

करोक्श्रद्वाटकपद्मगुन्द्राः सरोवलाः सोत्पलकर्दभाश्च । वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुंशीताः॥७

करोवित्यादि-सुश्रुतस्य । पद्म पद्मकाष्ठ, गुन्द्रा गुलुन्च , चत्पल नीलोत्पल, कर्दम पद्मिनीस्थानगतकर्यम , वस्त्रान्तरा वस्त्रेणान्तरिता , एव सित्त पित्तविसपेंऽति-मृदौ त्वगाद्यप्रवातो न स्थात्, लेप स्फोटनञ्च सुकर भवतीति । लेपा इति बहुव चननिर्देशादेकैकशोऽप्येते लेपा योज्या इति वदन्ति ॥ ७ ॥

प्रदेहा परिषेकाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः। पद्मकोशीरमधुकचन्दनैर्वा प्रशस्यते॥ ८॥

प्रदेश इत्यादि—पन्चनल्कलैरिति कपीतननटाश्वत्थसची बुम्बरवल्कलै । प्रशस्यत इत्यत्र वचनपरिणामेन प्रदेश शित योज्यम् ॥ ८ ॥

> पित्ते तु पश्चिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खशैवलम् । गुन्द्रामूलन्तु शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ॥ ६॥

पित्ते त्वित्यादौ—श्लोकपादैश्वत्वारो योगा , शङ्कच्च शैवलञ्चेति समाद्दारः । गुन्द्रा गुल्लञ्चः, शुक्तिर्मुक्तोत्पत्तिमायङ, शीतवीर्य्यत्वाद् मौकिकपपीति केचिद् । धृतान्वितमिति योगचतुष्टपेऽपि योज्यम् ॥ १ ॥

न्यत्रोघपादाः गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च । विसन्निश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताल्पुतः ॥ १० ॥ हरेण्वो मसूराश्च मुद्राश्चेव सशालयः । पृथक् पृथक् प्रदेहाः स्यु सर्वेवा सर्पिपा सह ॥ ११ ॥ न्यत्रोधेत्यादि—वाग्मटरय । न्यत्रोधस्य पादा प्ररोहा श्रन्ये तु मूलानी-त्याहु । तरुणा इत्यिभनवा । तरुणा इत्यत्र गुन्देति न पाठ वाग्मटे चरके च तरुणा इति पाठात् । कदलीगर्मो गर्भस्था कदलीमक्षरी, विसन्निश्चणालग्रन्थि , हरेण्यो वर्त्तुलकलाया ॥१०—११॥

> द्रात्तारग्वधकाश्मर्थ्यत्रिफलामएडपीलुभिः। त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधनं हितम्॥१२॥

द्राचेत्यादी—आरग्वथस्य फलम्, अमराड परगडस्तस्य नीज विरेचकस्वात्, पीछ श्रीत्तरापथिक फलम् । काथेन कल्केन वा योगद्वयभिदम् । तत्र पील्वन्त एक , इरीतक्यन्तश्च द्वितीय इति ॥१२॥

> गायत्रीसप्तपर्णाव्दवासारग्वधदारुभिः। कुटन्नटैभेवेन्नेपो विसर्पे स्प्रेप्मसम्भवे ॥१३॥

गायत्रीत्यादी—अत्र आरग्वधस्य पत्र, कुटन्नट कैवर्तमुस्तकम् । अय योगो वासास्थाने धवस्य कुटन्नटस्थाने कुरुग्टकस्य प्रचेपादिषि वोध्य । यदाद्द चरक — " खदिर सप्तपर्थेश्च मुस्तमारग्वध धवम् । कुरुग्टक देवदारु दधादालेपन भिपक् " इति ॥१३॥

श्रजाश्वगन्धासरणाथ काला सैकेशिका वाप्यथवाजश्रङ्की । गोमूत्रपिष्टो विद्दिम प्रदेहो हन्याद्विसर्पे कफजं सुशीव्रम् ॥ मदनं मधुकं निम्वं वत्सकस्य फलानि च।

वमनञ्ज विघातव्यं विसर्पे कफसम्भवे ॥१४॥

श्रजेत्यादि — झुशुतस्य । श्रजगन्था फोकान्धी, श्रश्वगन्धा, ख्यातैव । सरणा त्रिष्ट्रत, काला कालाकड , एकेशिका पाठा, श्रजश्वकी मेपश्वकी कर्कटश्वकी वा । श्रजगन्धादिरजश्वक्यन्त एको योग । उक्त हि बाग्मटे—कालाजश्वकी सरणा वस्तगन्धा हयाह्या । एकेशिका च लेप. स्यात् श्रययाविकगात्रजे" । विहिम इति हिमविपरीत, कोष्ण इत्यर्थ ॥१४॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमद्गाकरवीरकम् ।
नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पद्या ॥
श्रारग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः ।
शिरीपपुष्पं कामाची दिता लेपावचूर्णनैः ॥
मुस्तारिष्टपटोलानां काथः सर्वविसर्पनुत् ॥
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंप्लुतः ॥१=॥

त्रिफलेत्यादि — वाग्भटस्य । समङ्गा वराह्ङ्ञान्ता, करवीरकामित्यत्र करवीरजन्मिति पाठे मूलम् । श्रनन्ता श्रनन्तमूलम् । श्रय लेपस्तथा वच्यमायोऽप्यारग्वधादिः वल्पपृतयोगेन स्निग्धः कार्य्य । एतदनन्तर प्रदेहाः सर्वत्रैव एते देया । स्वल्प-पृताप्तुत इति चरकेयोकात्वात् । स्व्यातको वहुवार । कामाची काकमाची । सर्व-विसर्पनुदिति प्रत्येकदोपजसर्वविमर्पनुत् सन्निपातविसर्पस्यासाध्यत्वात् ॥१५॥

नवकषायगुग्गुलुः

श्रमृतवृषपटोलं निम्वकल्कैरुपेतं त्रिफलकदिरसारं व्याधिघातञ्च तुल्यम् । कथितमिद्मशेषं गुग्गुलोर्मागयुक्तं जयित विपविसर्पान् कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥१६॥

अमृतेत्यादौ—त्रिफल त्रिफला, व्याधिषात स्वर्णान्नफलम् । गुग्गुलोर्माग युक्तमिति प्रत्यहोपयोगे प्रचेपपरिभाषयैव देयम् । विरेके कर्त्तव्ये प्रचेपमानापेच्नया द्वैगुरुयेनेत्याहु ॥१६॥

श्रमृतादिः

श्रमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खिद्रमिसतवेत्रं निम्वपत्रं हरिद्रे । विविधविपविसपीन् कुष्टविस्फोटकराडू-रपनयति मस्रीं शीतिपत्तं ज्वरश्च ॥१७॥

त्रमृतेत्वादौ-असितवेत्र कालियालताम्लम्, अत्रापि विरेके कर्तव्ये गुग्गुलु प्रसिपन्ति वृद्धाः ॥१७॥ पटोलामृतभूनिम्ववासकारिप्टपर्पटैः । खदिराव्दयुतै काथो विस्फोटार्चिज्वरापहः ॥१८॥

पटोलेत्यादिना विस्फोटाचिकित्सामाइ ॥१८॥

पटेालत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः।
समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा॥
कषायं पाययदेतत् पित्रश्लेष्मज्वरापहम्।
कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम्॥१६॥

भूनिम्बवासाकद्वकापटे।लफलिकाचन्दननिम्यसिद्धः । विसर्पदाहज्वरवक्त्रशोपविस्फोटतृष्णावमिनुत् कपाय ॥२०॥

सकफे पित्तयुक्ते तु त्रिफलां योजयेत् पुरैः ॥२१॥ दुरालभां पर्पटकं पटोलं कटुकां तथा । सोष्णं गुग्गुलुसंयुक्तं पिवेद्या खिदराप्टकम् ॥२२॥

पटोलित्रफलेत्यादी—समूर्वा रोहिखी पाठा रजनी सदुरालमेलात पर पिम-रिति रेष , तेन प्रिम कृत कषाय पाययेदित्यर्थसङ्गित कार्य्या । त्रिफला योजयेत् पुरैरिति त्रिफलाक्कांथ गुग्गुल प्रकेष्य इत्यर्थ । दुरालमामित्यादाविष दुरालमा-दीना क्काथो गुग्गुलुप्रकेपसहित । सोष्णिमिति सहशब्द ईपद्ये । खदिराष्टक मस्या वन्यमाग्राम् , इदमिष गुग्गुलुयुक्तमेव पिवेत् ॥१६—०२॥

कुराडलीपिचुमर्दाम्बु सादिरेन्द्रयवाम्बु वा । विस्फोटान् नाशयत्याशु वायुर्जलघरानिव ॥२३॥ कुराडलीत्यादि—योगद्रयम् । कुराडली गुडूची, अन्तु काथ ॥२३॥ चन्दनं नागपुष्पश्च तर्रहलीयकशारिवे । शिरीपवलकलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥२४॥ चन्दनीमलादी—शारिवा अनन्तम्ल, जात्यास्तु पत्रम् ॥२४॥ शुक्तरुवते च मांसी रजनी पद्मा च तुल्यानि । पिष्टानि शीततोयेन लेप स्यात् सर्वविस्फोटे ॥२४॥

शुकतिवित्यादि—नाग्भटस्य । शुकतरु शिरीप , नत तगरपादिका । पद्मा ब्राह्मणयष्टिका । नाग्मटे ही "शकतरुनते च मासी" इत्यत्र "शुकतरुनतमाचीका" इति पाठ, माचीकच्च देवदाविति तट्टीका, तेन सम्रहे मासीति पाठी लेखक-दोपात्॥२५॥

शिरीपमूलमिखछाचव्यामलकयष्टिकाः। सजातीपल्लवलौद्रा विस्फोटे कवडग्रहाः॥२६॥ शिरीपोडम्बरौ जम्बुः सेकालेपनयोर्हिताः। श्लेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्च्योतने हिताः॥२०॥

शिरीपेत्यादी —शिरीपमूलेत्यत्र शिरीपपूर्गेति पाठे पूर्गस्य फलम् । अत्र वहु-वचननिर्देशात् प्रत्येकमप्येते कवडे योज्या इति वदन्ति । जातीपत्रचौद्रयोगश्च सर्वत्र विश्रेय । आश्च्योतन मर्वत्र चच्चिप द्रवौपधिदानम् ॥२६—२७॥

दशाङ्गः

| श्रिरीपयष्टीनतचन्द्रनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवाले | लेपा दशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो विसर्पकराङ्क्वरशोथहारी | | २८|| श्रिरीपेलादौ—यधी यधीमधु, वाल हीनेरम् ॥ २८ ॥

चतुःसमम्

शिरीपोशीरनागाह्याईस्नाभिलेपनाद् द्रुतम्। विसपेविपविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः॥ २६॥ शिरीपेलादौ—नागाह्न नागकेशरचूर्णम्, हिंसा कालाकवः॥ २६॥

वृषाद्यं घृतम्

वृषखादेरपटोलपत्रनिम्वत्वगमृतामलकीकषायकल्कैः। घृतमभिनवमेतदाशुपकं जयति विसर्पगदान् सकुष्ठगुल्मान् ॥३०

वृषाधष्टते—निम्बलगमृतामलकीकषायकल्कैरिलस्य स्थाने छन्द पूर्णार्थं निम्बलगमृताधात्रीकषायकल्कयुक्तमिति केचित् पठन्ति । अन्ये तु त्वगमृतकामल-कीति पठन्ति, क्वचित्तु तामलकीति पाठ, तन्न, व्यवहारामावात् ॥ ३० ॥

पञ्चतिक्षकष्टतम्

पटोलसप्तच्छद्निम्वावासाफलिक्रक्विज्ञेषहाविपक्रम् । तत् पञ्चतिक्रं घृतमाशु हान्त त्रिदोषाविस्फोटाविसप्कर्रहुः ॥३१ पश्चितिक्षपृति त्रिफलाया कल्क , शेषाणाञ्च कषाय शित न्यवहरान्ति वृद्ध-वैधाः ॥ ३१ ॥

महापद्मकघृतम्

पद्मकं मधुकं लोधं नागपुणस्य केशरम् ।

हे हरिद्रे विडक्कानि स्दमेला तगरं तथा ॥

कुष्ठं लाक्षा पत्रकञ्च सिक्थकं तुत्थमेव च ।

यहुवारः शिरीपश्च किष्त्थफलमेव च ॥

तोयेनालोड्य तत् सर्व घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

यांश्च रोगान् निहन्त्याशु ताक्षिवोध महामुने !॥

सर्पकीटाखुद्रेषु लूतामूत्रकृतेषु च ।

विविधेषु स्फोटकेषु तथा दुष्टविसर्पिषु ॥

नाडीषु गएडमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ।

श्चगस्त्यविहितं धन्यं पद्मकन्तु महाघृतम् ॥ ३२॥

पक्षक्रो—नागपुष्मस्य केशरमिति नागकेशरचूर्णमित्यर्थ ॥ ३२॥

स्नायुकचिकित्सा ।

रोगस्तु स्नायुकाख्या यः क्रिया तत्र विसर्पवत् । गव्यं सर्पिस्त्र्यद्वं पीत्वा निर्गुएडीस्वरसं त्र्यद्वम् ॥ पिवन् स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः । शोभाञ्जनमृत्वद्ते काञ्जिकिपिष्टेः सत्त्वयौर्तेपः । हन्ति स्नायुकरोगं यद्वा मोचत्वचो लेपः ॥ ३३॥ इति विसर्प-विस्फोटचिकित्सा ।

क्षायुकरोगिचिकित्सामाह, रोगास्त्रित्सादि। स्तायुकरोगो नारुया नाम्ना पश्चि-मदेशे स्यात अयुक्च रोगो रुग्विनिश्चये नोक्ष । षृत्देन पुनरुक्तः, यथा,— 'शासासु कुपितो नायु शोध फूला विसर्पनत् । किस्तैव त स्रते तत्र सोष्मा मास विशोध्य च। कुर्व्याचन्त्रानिम स्त्र तत् पियहैस्तकशकुनै । सिप्त शनै स्वतोदेति दिदासत् कोपमाददेत्। तत्पाताच्छोधशान्ति स्यात् पुन स्थानान्तरे मवेत्। रोग. स सायुको नाम्ना तन्तुकश्च प्रकीर्तित ," इति । शाखास्त्रित जङ्घादिषु, तदिति स्त्रम् , तक्षशक्तु पिण्डेलिप्त सत् चतादेति नि सरित । कदाचिदिमधातादिना स्त्रच्छेदात् । तत्पातादिति तस्य स्त्रस्य स्वयमेव पतनात् । पिविन्नत्यत्र पीत इति पाठे कत्तिरे क्त. । मोचत्वचो लेप इति मोच कदलीफल कोण्टक वा तस्य त्वक् ॥ ३३॥

इति विसर्पाविस्फोटाधिकारविवृति ।

् अथ मसूरिकाचिकित्सा ।

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्ट्रवासके ।
कषायेश्च वचावत्सयष्ट्रयाह्नफलकितिः॥१॥
, सत्तौद्रं पाययेद् ब्रह्म्या रसं वा हैलमोचिकम्।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनञ्चावले नरे॥२॥
सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम्।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमस्रीशान्तये पिवेत्॥३॥
उभाभ्यां हतदोषस्य विश्वध्यन्ति मस्रारेकाः।
निर्विकाराश्चालपप्याः पच्यन्ते चालपवेदनाः॥४॥

विस्फोटेमदत्वात् प्रायस्तुल्यचिकित्स्तित्वाच मस्रीचिकित्सामाई, सर्वासा-मिखादि । वासकौरित्यत्र कृतैरिति शेष । तेन कषायैरित्येनन सामानाधिकरण्य न विरुध्यते । वत्स इन्द्रयव । फल मदनफलम् । सचौद्रमित्यादि—रसमिति स्वरसम्, पतच वामक विरेचकञ्च। सुषवी कारवेल्लकः, पतद्रसोऽप्युमयमागदोषहर । उमाभ्यामिति वमनविरेचनाभ्याम् ॥ १ । ४ ॥

करटाकुम्माइमूलं कथनविधिकृतं हितुमापैकयुक्तं पीतं वीजं जयाया सघृतमुपितवाः पीतमित्रः शिकट्याः। मध्या मूलं शिफा वा मदनकुसुमजा सोषणा वाथ पृतिः योगा वास्यम्बुनैते प्रथममघगदे दृश्यमाने प्रयोज्याः॥॥॥ मुध्योगमाह। करटाकुम्माइमूलिमत्यादि करटाकुम्माइलता स्वनामख्याता।

हिंगुमापैकयुर्ते पीतिमिति पूर्वेणिव सम्बच्यते । वीज ज्याया सघृतसुपितवा. पीतमिति द्वितीयो योगः । जया जयन्ती, अस्याश्च वीजसुपेश्यादेकाधिकपट्गण्डक
सम्रत पर्युपितजलेन पीतिमित्याहुः । ये तु उपितवाः पीतिमिति पद जयाबी जमित्यनेन
सह न योजयन्ति, तन्मते पीतिमिति नपुसकलिङ्गनिदेशो नोपपचेत इति,
मामान्यविशेषमावेन योजनापि कष्टकल्पनैवेति । अहि शिकट्या इति तृतीयो योग ।
अत्राप्युपितवा पीतिमिति लिङ्गविपरिणामेन सम्बन्धते । अहिर्दित मूलम् । शिकटी
स्वनामख्यतिव । मध्या अपि तथैव च । [मधी ग्रुवाकस्तस्य मूलम् ।] सोपणा
ममित्या। एतच पूर्तिरित्यनेनैव सम्बन्धते । पूर्ति खट्टशिकाण्डम् । अन्य तु मदनकुसुमजा शिका सोषणा, पृतिनांटाकरच्जोऽपि सोषण इति वदन्ति । अत्रापि मारिवमेकाधिकषट्गण्डकमित्युपदिशन्ति । अवगद पापरेगो सस्री पर्याय एव ॥ ४ ॥

उद्धृत्य मुष्टिनाच्छाद्य भेषजं यत् प्रयुज्यते । तन्मुष्टियोगमित्याहुर्मुष्टियोगपरायणाः ॥ उष्ट्रकण्टकमूलं वाष्यनन्तामूलमेव वा । विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बुणीतं हान्त मस्रिकाम् । तद्वच्छुगालकण्टकमूलञ्च च्युपिताम्मसा ॥ ६॥

मुष्टियोगस्वरूपमाह उद्धेतेखादि--उष्टकगटक स्वनामख्यातम् । (डखुर होते केचित्) अनन्तामूलमनन्तम् नम्, च्येष्ठाम्बु तप्डुलोदकम् । श्वगालक्ष्टकमपि स्वनामख्यातम् ॥ ६ ॥

> मस्रीं मूर्चिछतो इन्ति गन्धकार्छस्तु पारदः। निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव तु॥ ७॥

मू चिल्रत इति कज्जलाकृतः। शोधितगन्धक कर्ष १, शोधितरस मा ८, कज्जली कर्त्तन्या, अतो मापकचतुष्टय पट्क वा पर्ये कृत्वा खाद्यमिति व्यवहार । 'रुद्राच मिरेचेंचुंकम्' इत्यादियोग सम्रहे नास्ति ॥ निरात्यादौ—छद पत्र छदः शब्दस्य नपुसक्षिंगता छान्दसत्वात, किंवा निशाचिष्ठाच्छदाविति पाठ, दिवचन दर्शनात पत्रदय माद्यमित्यन्ये ॥ ७॥

यावत्संख्या मस्र्यंहे ताविद्धः शेलुजैर्दलैः। छिन्नेरातुरनामा तुं गुणीं ख्रेति न वर्दते॥ व्युपितं वारि संज्ञौदं पीतं दाहगुणीहरम्। शेलुत्वक्कृतशीताम्मःसेकं वा कायशोषणे॥ =॥

यावदिखादौ—शेर्छ्वंद्रवार, मस्रिका गण्यित्वा तावत्मख्यया आतुरनाम्ना पत्राणि छिन्धादित्यर्थे। गुणी मस्रिकेर्ल्थ ॥ शेर्छुत्विगलादि—शीताम्म शीत-कषाय , कायशोषण् इति उच्छूनगात्रप्रदेशशोषण्विमित्तिमलाहु । कायशोधन-मिति पाठ शरीरमलक्षेदिनरासार्थमिल्यर्थं , किंवा कायशब्देनोपचारान्मस्रिके वाच्यते ॥ = ॥

उत्राज्यवंशनीलिं-यववृषकार्पासकीकसब्रह्मी । सुरसमयूरकलाचाधूपो रोमान्तिकादिहरः ॥ ६ ॥ तर्पण् वातजायां प्राग् लाजचूर्णः सशर्करैः ॥ भोजनं तिक्रयूषेश्च प्रतुदानां रसेन वा ॥ १० ॥

' ः । उमेलादी— उम्रा वचा, भाज्य घत वृषस्य वासकस्य मूल, कार्पासकीकम कार्पासास्थि, सुरसं पर्णास , मयूरकोऽपामार्गः । तर्पणिमिति द्रवेणालोडिता शक्तव । तिक्तयूपरिति तिक्तद्रव्यञ्चतयूपे । प्रतुदा पारावतादय ॥६ । १०॥

हिपञ्चमूलं रास्ना च दाञ्जुशीरं दुरालभा।
सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुत्थिताम्॥
गुडूचीं मधुकं रास्नां पञ्चमूलं कनिष्ठकम्।
चन्दनं काश्मर्थ्यफलं वलाम्लं विकद्कतम्॥
पाककाले मस्र्यान्दु वातजायां प्रयोजयेत्॥ ११॥
दिपञ्चमूलमिलादियोग काथन, प्रगुडूचीलादिकमिष॥ ११॥
द्राचाकाश्मर्य्यखर्जूरपटोलारिष्ट्वासके।
लाजामलकदुं स्पर्शे सितायक्षेश्च पैक्ति॥ १२॥
शिरीषोडुम्बराश्वत्थ-शेलुन्यग्रोधवल्कलेः।
प्रतिप सघृतः शीवं व्याविस्फोटदाहहा॥ १३॥
दुरालमां पर्यटकं भूनिम्वं कुरुरोहिणीम्।
श्रीष्मक्यां पित्तजायां वा पान निःकाथ्य दापयेत्॥१४॥

द्रांचेत्यादी—सितायुक्तामित्यनन्तर कपार्यामिति शेष ॥१२---१४॥

निम्बादिः

निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कहुरोहिणीम् । वासां दुरालमां घात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम् ॥ एप निम्वादिकः ख्यातः पीत शर्करया युत । हिन्त त्रिदेषमसूरीं ज्वरवीसप्सम्भवाम् ॥ उत्थिता प्रविशेद् या तु पुनस्तां वाह्यतो नयेत् ॥ १४ ॥ पटोलकुणडलीमुस्तवृपधन्वयवासकैः । भूनिम्वनिम्वकदुकापपटेश्च श्टतं जलम् ॥ मसूरीं शमयेदामां पकाञ्चैव विशोपयेत् । नातः परतरं किञ्चिद्धस्फोटज्वरशान्तये ॥ १६ ॥

निम्बादि काथविषया देय । पटोलेखादी--कुण्डली गुडूची ॥१५ । १६॥

पटोलमूलारुणतग्हलीयकं पिवेद्धरिद्धामलकल्कसंयुतम् । मस्रिविस्फोटविदाहशान्तये तदेव रोमान्तिवमिज्वरापहम् ॥ पटोलमूलारुणतग्हलीयकं तथैव धात्रीखादिरेण संयुतम् । पिवेज्जलं सुकथितं सुशीतं मस्रिकारोगविनाशनं परम् ॥१७॥

पटेालम्लेलादि—काथे हरिद्रामलकचूर्णं प्रज्ञिप्य अनुलोमनार्थं पिनेत्। अरुण लोहित तण्डुलीयकम्। धात्रीखदिरेण सयुतमिति धात्रीखदिराविष पटेालमूला-रुणतण्डुलीयकाम्या सह कथनाया ॥ १७॥

खिदराष्ट्रकः

खिद्रिक्तिकारिष्ट्रपटेालामृतवासकै ।
काथाऽष्टकाख्यो जयित रामान्तिकमसूरिकाः ।
कुष्टवीसपैविस्फोट-कगृङ्ग्वादीनिप पानत ॥ १८॥
बिदरेलादी—मध्काख्य इति खिदराष्ट्रकसङ्ग । मन्न शोधने कर्त्तस्थ उग्गुडमिप प्रिचपन्ति ॥ १८॥ श्रमृतादिकपायस्तु जयेत् पित्तकफात्मिकाम् । सौवीरेण तु सम्पिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् । प्रलेपात् पातयात्यशु दाहञ्चाशु नियच्छति ॥ १६ ॥ पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसम्भवा । तत्र सेकं प्रशंसन्ति वहुशस्तगृहलाम्बुना ॥ २० ॥

श्रमृतादिकषायो विभयोंक्तो दशद्रव्यस्तस्यैव मस्रीहरत्वश्रुते , न तु ज्वराधि कारोक्तोऽमृतादिरिति । सौवीरेखेति काञ्चिकन ॥ १६ ॥ २० ॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति माठतः। तस्मात् संबृंहणं कार्य्यं न तु पथ्यं विशोषण्म्॥ २१॥ पाककाले वायुप्रशमनार्थं बृहणाहारमाह पाकेलादि—विशोषणेन पाकोन्मु-खस्य दोषस्यान्त प्रवेशाद्रजाधिक्य स्वादिति माव ॥ २१॥

गुडूची मधुकं द्राह्मा मोरटं दाडिमैः सह।
पाककाले तु दातव्यं भेपजं गुडसंयुतम्।
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायु प्रकुष्यति॥ २२॥
लिहेद्वा वादरं चूर्ण पाचनार्थ गुडेन तु।
श्रनेनाशु विपच्यन्ते वातिपत्तकफात्मिकाः॥ २३॥
श्रह्मीलादी—मोरटिमिन्नमूलम्। एषा काथ । गुडस्त प्रकेष्य ॥ २२।२३॥
श्रत्लाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना।
धन्वमांसरसाः शस्ता ईपत्सैन्धवसंयुताः॥ २४॥
धन्वमासरसा इति जाइलपिन्नमासरसाः॥ २४॥

दाडिमाम्लरसैर्युक्ता यूषाः स्युरक्वौ हिताः। पिवेदममस्तप्तशीतं भावितं खदिरासनै ॥ २४॥

पिवेदम्मस्तप्तश्रीतमिलाई शत शांतक्ष, एव वद्यमाणयोगेऽपि । मावित खदिरा-सौनीरिति खदिरासनै । साधितं कार्यामेलार्थे । असन पीतशाल , अशन एव इत्यन्ये ॥ २५॥

शौचे वारि प्रयुक्षीत गायत्रीवहुवारजम् । जातीपत्रं समिखेष्ठं दार्वीपूगफलं शमीम्॥ धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ।
मुखरोगे कराठरोगे गराङ्कपार्थं प्रशस्यते ॥
मुखरोगे कराठरोगे गराङ्कपार्थं प्रशस्यते ॥
मुखरोगेः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥ २६ ॥
शौच इत्यादौ—गायत्री खदिर । गवेधुमधुकाम्बुनिति—गवेधुको गुलुखः ।
भनयो कलक कपंटे वद्ध्वा प्रपोद्याधिसेक कार्यः ॥ २६ ॥

मधुकं त्रिफला सूर्वा दार्वीत्वद्दनीलमुत्पलस् । उशीरलोधमिश्रष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिता । नश्यन्त्येनन दग्जाता मस्य्यो न भवन्ति च,॥ २७ ॥ मधुकमिलादौ—हिता इति बद्दवचननिर्देशाद् व्यस्तै नमस्तैमंधुकादिभि प्रलेप । श्रर्दश्रीक्ष तैराश्च्योतनमिलाह् । श्राश्च्योतन परिपेक ॥ २७ ॥

पञ्चवल्कलचूर्णैन क्लेदिनीमवचूर्णयेत्।

मस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्रोमयरेखना॥

किमिपातभयाचेऽपि धूपयेत् सरलादिना।
वेदनादाहशान्त्यर्थे स्नतानाञ्च विशुद्धये॥ २०॥

पश्चनल्कलेखादी—क्रेदिनी क्रेदयुक्ता मस्रीम् । भरमनेति शुष्कगोमयभरमना । गोमयरेणुनेति गोमयचूर्णेन वस्त्रच्छानितेन । सरलादिभिरिति सरलायुक्गुग्गुलुप्रभृ- तिमि ॥ २८ ॥

सगुग्गुलुं वराकाथं युञ्ज्याद्वा खदिराएकम् । ,
कृष्णाभयारजो लिह्यान्मधुना कग्ठशुद्धये ॥ २६ ॥
सगुग्गुल्रभिलादि, सगुग्गुल्लभिल्युभयत्रापि सम्बन्धते ॥ २६ ॥
श्रथाएक्कावलेहो वा कवडश्चाईकादिमि ।
पञ्चातिक्कं प्रयुक्षीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ ३० ॥
कुर्याद् व्रग्रविधानञ्च तैलादिन् वर्जयेष्चिरम् ।
विषम् सिद्धमन्त्रश्च प्रमुज्यान्तु, पुन पुन ।
तथा शोणितसंस्र्ष्टा काश्चिच्छोगितमोन्तगै ॥ ३१ ॥
श्रशक्षावलेहाईकादिकवडी ज्वराधिकारोको । पञ्चतिककष्टत् कृष्टोकम्

निशाइयोशीरशिरीषमुस्तकै सलोधमद्रश्रियनागकेशरैः।
सस्वेदविस्फोटविसर्पकुष्ठदौर्गन्ध्यरोमान्तिहर प्रदेह ॥
विम्न्यतिमुक्तकाशोक-स्रत्तवेतसपह्नवैः।
निशि पर्य्युषित काथा मसूरीमयनाशन ॥ ३२ ॥
मसूरीस्फोटयोरन्ते कूर्परे मिश्वन्धके।
मुखांसफलके शोथो जायते य सुदारुणः ॥ ३३ ॥
वर्णशोथहरैर्योगैर्वातम्भ्रेश्च जलौकसा।
हत्तव्यस्तैलभृष्टस्य वृश्चिकस्य विलेपनैः॥ ३४ ॥
इति मसूरी-चिकित्सा॥

निशाह्रयेत्यादौ---भद्रश्रिय श्वेतचन्दनम् । बिम्बीत्यादि---विम्बी डुमरीति श्रीक्ष्यठः । श्रतिमुक्तको माधवीलता । योगे।ऽयमनागतमस्रीनिवारणार्थं चैत्रे मासि पेय ॥ ३२---३४,॥

चैत्रासितभूतिद्ने रक्षपताकाविन्ता स्तुही भवने। धवलितकलसन्यस्ता पापरुजो दूरते धत्ते॥ ३४॥ चैत्रासितभूतदिन इति चैत्रकृष्णचतुर्दश्याम्॥ ३४॥

इति मस्रोचिकित्साविष्टति ।

अथ क्षुद्ररोगचिकित्सा।

तत्राजगाल्लिकामामां जलौकोभिरुपाचरेत्।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाचार-कल्कैश्चालेपयेन्मुहुः॥१॥
नवीना कर्यटकार्यास्तु कर्यटकैर्वेघमात्रतः।
किमाश्चर्ये विपच्याशु प्रशाम्यत्यजगिल्लका॥२॥

विसर्पादीनामसुद्रहेतुलस्याचिकित्मितानामिभधानेन सुद्रहेतुलस्याचिकि-त्सिताना रोगाया पारिशेष्याद सुद्ररोगचिकित्सितमुक्तम् । ननु यदिः सुद्रत्वमेषा हेतुलस्याचिकित्सिताल्पत्वेन तिहं श्रिप्तरोहिखीवल्मीकादीना त्रिदेश्वजत्वन हेत्वादि-बाहुल्याद तद कथ सुद्रत्वन् १ नैव, वाहुल्येन तच्छव्दाद स्त्रियो गच्छन्तीतिवद ।

he

किंवा अवान्तरभेदिवरहत्व चुद्रत्व, येनात्र वक्तव्यानामवगिष्ठिकादीना न दोषद्व्या-दिक्तनभूरिसरूयाभेदेन मण्जादिविश्वदेशः, किन्द्य प्रत्येक स्तोकसख्ययाभिधान तेषाम् । अजगिष्ठिका आचलीति लोके । आमामित्यपका, वाग्भटेऽपि अपकामित्युक्तम् । शुक्ती-त्यादि—शुक्तिमुंक्तोत्पाचिमायढ, सौराष्टिका सौराष्ट्रमृद् , सुश्रुते द्व सौराष्ट्रीस्थामे श्रिमका प्रस्नते, श्रिमका सर्विचार । चारो यवचार हति ॥ १ ॥ २ ॥

कितां चारयोगैश्च द्रावयेदजगान्निकाम् ।
श्रेष्मविद्रधिकलेकेन जयेदजुशर्यी भिपक् ॥
विज्ञतामिन्द्रवृद्धाञ्च गर्दभीं जालगर्दभम् ।
इरिवेलिं गन्धमालां जयेत् पित्तविसप्वत् ॥
मधुरौपधिसद्धेन सर्पिपा शमयेद् वणान् ।
रक्तावसेकैर्वेद्धिम स्वेदनैरपर्तपेण ॥
जयेद्विद्दारिकां लेपै शिशुदेवद्रुमोद्भवै ।
पनसिकां कञ्ज्ञपिकामनेन विधिना भिषक् ॥
अन्त्रालजीं कञ्ज्ञपिकां तथा पापणगर्दभम् ।
साधयेत् कितानन्यान् शोथान् दोपसमुद्भवान् ॥
सुरदाकशिलाकुष्ठे स्वेदियत्वा प्रलेपयेत् ।
कफमारुतशोथझो लेप पापाणगर्दभे ॥ ३॥

चारयोगैरिति घयटापारुल्यादियोगै । मधुरीपथ काकोल्यादिगय । ज्ञयानिति विवृतादीनेव गन्धमालान्तान् पाकेन मधुरीपथिसिद्धेन सिर्पेषा रामयेदित्यर्थ । सुश्रुतेऽ-प्युक्त—विवृतामिन्द्रवृद्धा गर्दाभिका जालगर्दभामिरिवेद्धिकां गन्धमाला विस्फोटकञ्च पिचविसपंविधानेनोपानरेत्। पकाक्ष मधुरीपधिसद्धेन सिर्पेषां दित । रक्तावसेकै-रिलादिना विदारिकाचिकित्सा । अनेन विधानेनेति विदारिकोक्षेन । अन्यान् रो।यानिति पापाखगर्दमादीन् । दोषसम्मवानिति योग्यतया कफवातजान् माध्येत् । पापाखगर्दमो "गाखठाद्वया" इति ल्यात ॥ ३ ॥

> श्रक्षेणेत्कृत्य वर्त्माकं ज्ञाराश्चिभ्यां प्रसाधयेत् । मन-शिलालभङ्गातस्व्मेलागुरुचन्द्ने ॥ जातीपञ्जवकंरकेश्च निम्वतैलं विपाचयेत्।

वल्मीकं नाश्येत् तिद्ध वहुच्छिद्धं वहुस्रवम् ॥ पाददारीषु च शिरां व्यध्येत्तलशोधनीम् । स्निहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहु ॥ मध्चिछ्यवसामज्ज-घृतज्ञारैविंमिश्रितः । सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चर्णं मधुघृताप्लुतम् ॥ निर्मथ्यं कहुतैलाक्नं हितं पाद्यमार्जनम् ॥॥॥

मन शिलेत्यादी—श्राल हरितालम् । निम्नतैलिमिति निम्नवीजमनतैलम् । वहस्तविमिति वहस्तावम् । सुश्रुते श्रालस्थाने थिप्पलीयोगादप्यय योग पठित. । तलशोधनीमिति पादतलगामिनीम् । केहस्वेदोपपन्नावित्यनन्तर कृत्वेति शेष । श्रन्ये तु शिरान्यधान्नीभृतलेहस्वेदौ कृत्वा शिरा न्यधयदिति वोध्यम् । पवमन्तरेण शिरान्यधस्यापवृत्तौ केहस्वेदोपपन्नावित्यादिना तु पश्चात् कर्मोपदेश दोषचयार्थ रका-कृष्टिजनितवातच्चयार्थं वेनि । श्रालेपयन्मधृच्छिष्टाविभिरित्यन्वय । श्रन्न चीरविमि-श्रितेरित्यपपाठ , सुन्नते यवचौरिरिति पाठात् । सर्जेत्यादी—सर्जो धूनक । कटु-तैलाक्तमिति कटुतेलस्न यथा स्यात् तथा पादशमार्जनार्थं किंवा चूर्णविशेषणम्॥४॥

उपोदिकाचारतेलम्

उपोदिकासर्पपनिम्बमोचककाँरुकैर्वारुकभस्मतोये। तैलं विपकं लवणांशयुक्तं तत्पाददारीं विनिद्दन्ति लेपात् ॥४॥

उपोदिकेत्यादि—उपोदिकानाल श्राह्मम् । मोचक कदलीकण्टः । कर्कारु कृष्माण्डमेद , पर्वारु कर्कटी, अनयोर्नाडी । एषा ज्ञारोदके चतुर्गुणे सैन्धवकल्केन तैलं पक्षव्यम् । लेपादित्यितिधनत्वात् ॥५॥

> श्रलसेऽम्लैश्चिरं सिक्कौ चरणौ परिलेपयेत्। पटोलारिष्टकाशीश-त्रिफलाभिर्मुहुर्मुहु-॥६॥ करञ्जवीजं रजनी काशीशं मधुकं मधु। रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हित ॥७॥

श्रलसः 'पाकोश्राना ' इति ख्यातः । श्रम्लिरिति काञ्चितेः । श्ररिष्टो निम्व ॥६—-७॥ लाचाभयारसालेपः कार्च्य दा रक्षमोत्तरणम्। जातीपत्रश्च सम्मर्ध दद्यादलसके भिपक्॥=॥

लाचेत्यादी-रसो गन्धरस ॥=॥

वृहतीरसिस्देन तंतेनाभ्यन्य वुद्धिमान् । शिलारोचनकाशीशचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत्॥६॥

यहतीत्यादि—यहती करटकारी तस्या स्वरमः तेलका मार्पप्, सुधतमयादात्। प्रतिसारयेदिति वर्षयेत् ॥६॥

दहेत् कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥१०॥
दहेदित्यादि—कदर शक्षेखोद्धृत्य तप्ततिलेन दहनेन वा दहदित्यर्थ । दहनेनेत्यत्र मदनेनेति पोठ मदन सिक्थक तेनापि तप्तेन ॥१०॥

चिष्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुद्धृत्याभ्यज्य तं व्रण्म्। द्वा सर्जरस चूर्ण वद्ध्वा व्यवदाचरेत्॥ स्वरसेन हरिद्राया पात्रे कृष्णायसेऽभयाम्। घृष्द्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेचिष्पं पुन पुन ॥११॥

चिष्पमिति—चिष्पमिष्ट कुनलमिमेप्रत न त्वग्रलीवेष्टनम्, उत्तरूपचिकित्मा-यास्त्रमानेष्ट्रत्वादिति केचित् । उप्णाम्युना स्वेदनमिष्ट मार्दवजननार्थ, मृदुत्वे सत्यव कुनलेक्ष्यिन कर्तुं शक्यमिति । बद्ध्वेति व्रणोक्तवन्थनविधिना, व्रणवदाचरेदिति व्रणष्टितराचारादिभिरित्यर्थ । कृष्णायसे कान्तर्लाष्ट्रपात्रे ॥११॥

चिष्पे सटङ्गणास्फोतामूललेपो नखप्रद । निम्वोदकेन वमनं पश्चिनीकण्टके हितम् ॥१२॥ निम्वोदकतं सर्पि सत्तौद्धं पानमिष्यते । पद्मनालकृतः सार पश्चिनीं हन्ति लेपतः ॥१३॥

चिष्य श्त्यादी—श्रास्फोता हाफरमाली । थोगोऽय व्यस्तसमस्ततया व्यवहियते वृद्धे । निम्बोदकेन निम्बकाथेन मदनफलादियुक्तेनेत्याहु ॥१२—१३॥

निम्बारम्बयकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्त्तनं हितम् । नीलीपटोलमूलाभ्या साज्याभ्यां लेपन हितम् ॥ जालगर्दभरोगे तु सद्यो हिन्त च वेदनाम् ॥१४॥ निम्बत्यादि—निम्बारग्वधकषायञ्चोत्माद्रन इति यत् सुश्रुतेनोक्तम् श्रृत्रापि कषायशब्दस्य कल्क प्वार्थ । नीली नीलबुद्धा ॥१४॥

> श्रहिपूतनके धाज्याः पूर्व स्तन्यं विशोधयेत्। त्रिफलाखदिरकाथैर्त्रणानां धावनं सदा ॥१४॥

स्तन्य विशोधयेदिति । पित्तरूष्महरे स्तन्यशोधनद्रव्यैरित्यर्थ । उक्त हि—"तत्र धात्र्याः पय शोध्य पित्तरुष्महरीष्धं " इति ॥१४॥

> करञ्जिकतातिक्कै सर्पि सिद्धं शिशोर्हितम्। रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥१६॥

करजेलादौ--तिकश्चरकोकिस्तिककगणः। अन्ये तु पटोलपत्रमाहु ॥१६॥

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याश्च प्रवेशयेत्।
प्रविष्ट स्वेदयेचापि वद्धं गोष्फण्या दृढम् ॥१७॥
कोमलं पश्चिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्।
प्तिनिश्चित्य निर्दिष्ट न तस्य गुद्दिगमः॥१८॥

गुदभ्रश इत्यादी—केहैरिति वहुवचनात् चतुर्भिरेव केहैरित्यर्थं, किंवा गव्य-वसया अच्येदिति वस्यमाण्योगदर्शनादश्रापि केह्शब्देन गव्यवसैव प्राद्या।गोष्फणा वन्धविशेषं, स हि सुअते अण्लेपवन्धविधी व्यक्त । उक्त हि 'वचींगमनार्थं सन्दिद्धेद्वण चर्मणास्य कींपीनवन्थं कार्य्यः' इति ॥१७—१८॥

> वृत्ताम्लानलचाङ्गरीवित्वपाठायवात्रजम् । तकेण शीलयेत् पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥१६॥ गुदञ्च गन्यवसया प्रत्तयेदविशङ्कित्,। दुष्प्रवेशो विशत्याशु गुदभ्रंशो न संशयः॥२०॥

वृत्ताम्ल महाईकम् । अनलश्चित्रक । एषा कल्क तक्रेया पिनेत्॥१६—२०॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक् प्रकेपनम् । स्विश्वमूषिकमांसेन चाथवा स्वेदयेद् गुदम् ॥२१॥

स्विन्नमूपिकमासेनेत्यत्र काञ्जिकेन रिवत्र प्रतेन सृष्टमित्याहु ॥२१॥

चाड़ेरीघृतम्

चाहेरीकोलद्ध्यम्लनागरचारसंयुतम्। घृतमुत्क्वथितं पेयं गुद्धंशरुजापद्दम्॥ शुएठीचारावत्र कल्को शिप्टन्तु द्रवमिष्यते॥२०॥

चाङ्गरोष्टते चाङ्गरवां स्वरम , कोलस्य शुष्कवदरस्य काथ , श्रम्ल दिध दध्य-म्लम्। एभिस्त्रिभिद्वीमिलित्वा चातुर्युष्यम्। किंवा चाङ्गरीस्वरमः लेष्टमम , स्वरम चौरविद्विधिरिति वचनात्, दिभिकोलरमी तु मिलित्वा त्रिगुणी । पूर्वेण व्यवहार । नागरचारी कल्की ॥ २२ ॥

मूपिकाद्यं तैलम्

क्तिरे महत् पञ्चमूलं मूपिकामन्त्रवर्जिताम्। पक्त्वा तस्मिन् पवेचैल वातघ्रोपयसाधितम्॥ गुद्भशिमदं तैलं पानाभ्यद्वात् प्रसाधयेत्॥२३॥

चीर इलादी-सृषिकागुडकमे आह्मम्, पश्चम्लस्य मिलित्वा प्रस्थ एक चीर-स्यापि एक ,तीयस्य प्रस्थद्रयम्। एव नि काथ्य रेष चीरप्रस्थ स्थाप्य , भनेन तैल-कुडन साध्य इति कश्चित्। अन्ये तु "द्रम्यादएगुण चीर माधियत्वा चतुर्गुणन्।" चीरमित्यादिपरिमापया चीर साधियत्वा चतुर्गुणन्।" चीरमित्यादिपरिमापया चीर साधियत्वा चतुर्गुणेन तैनकुटन साध्य इत्याहु । चक्तस्त्राह अन्त्रविकतामिति अह्ययोग्यतोपदर्शनाथम् ,तेन मृषिकमासस्य पलान्यद्ये, पश्चमृलन्यापि चीरस्य प्रस्थ , तोयस्य प्रस्थत्रयम् , रेष्य चीरप्रस्थ , तेन कुडन साध्य , प्रमन्यत्रापि, पक्केन चीरेण कहमाथने एपन व्यवस्थिति। व्यवहार प्राय प्रथमन्याख्ययैन। वातद्रीपथ मद्रदानीदिगण स च कत्क ॥ २३॥

स्वेदोपनाद्दौ परिकर्निकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात्। प्रवेशयेच्चम शनै प्रविष्टेमीसै सुखोष्णुरुपनाहयेच्च॥ स्नेद्दस्तथैवैनां चिकित्सेद्वपाटिकाम्। निरुद्धप्रकशे नाडीं द्विमुखीं कनकादिजाम्॥ चिष्त्वाभ्यक्त्वा चुलक्यादिस्नेद्देन परिपेचयेत्। तैलेन या वचादारुकरुकै सिद्धेन च व्यद्वात्॥ पुन स्थूलतरा नाडी देया स्नोतोविश्चद्वये । शस्त्रेण सेवर्नी त्यक्त्वा भिन्वा त्रणवदाचरेत् । स्निग्धञ्च भोजनं वद्धगुदेऽप्येप कियाक्रम ॥२४॥

स्वेदेलादौ — परिकित्तिकाया सिर्षेषा अभ्यज्य अनन्तर वातिप्तर्माणिदिमि स्वेद कृत्वा शाल्वणादिना च उपनाहन कृत्वा परिकित्ति चर्म यथोक्रस्वेदादिना मृद्भूत प्रवेशयेत् सम्यगानयेदिल्थं । प्रविष्टे च सुखोष्ण्मिस्रिपनाहयेत्। सुश्रुतेऽप्येवमेवोक्षम्। तथ्वेनामित्यनेनावपाटिकायामप्युपनाह चर्मानयनञ्चातिदिशति निरुद्धेल्यादौ — कनका-दीलादिना शस्त्रपूत्रभृतीना महण्यम् । चुलकी शुर्द्धकति स्थाता जलजन्तु. । आदि-शब्दात् वराहादय । व्यहादिल्यत्र वीप्मा बोध्या, तेन व्यहात् व्यहात् प्रागुक्त-नाड्ययेद्यया पुन पुन स्थूलतरा नाडो देया । स्रोतोविशुद्धय इत्यत्र स्नोतोविशुद्धय इति पाठ । यदाह सुश्रुत प्रवमस्य स्नोतोद्दार वर्द्धयेदिति । त्रणविदिति सचीत्रणवत् । क्रिम्बन्न भोजनमाचरेदित्यनेन सम्बन्यते । सुश्रुतेऽपि "निरुद्धपकरो क्रिम्बन्नहारम् सुपनेवेत" इत्युक्तम् । एष क्रम इति निरुद्धप्रकरोक्तविधि ॥२४॥

चर्मकीलं जतुमणि मशकांस्तिलकालकान् । व्यक्षित्य शक्षण दहेत् चाराशिभ्यामशेषतः ॥२४॥ जतुमिणर्जस्य । चाराशिभ्यामिति अनवगाढचारेण, अवगाढे त्वशिना ॥२४॥ रुखुनालस्य चूर्णेन घर्षो मशकनाशनः। निर्मोक्सम्मधर्पाद्या मश्र शान्ति बजेत् सदा ॥२६॥

रुदुरिरगडस्तस्य नालेन गृहीत यच्चूर्णिमिति शङ्गचूर्णम्,तेन घर्षो वर्षणमिलर्थ । निर्मोक हीत कृष्णमर्पनिर्मोक ॥२६॥

युवानिषडकान्यच्छनीतिकाव्यद्गशर्कराः । शिराव्यधेः प्रतेषेश्च जयेद्भ्यञ्जनेस्तथा ॥ लोध्रधान्यवचातेषस्ताक्र्यपिडकापदः । तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखतेषनात् ॥२०॥ सिद्धार्थकवचातोध्रसेन्ध्रचेश्च प्रतेषनम् । वमनश्च निद्दन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥२८॥ पिडका यूनामाननापिडका युवानापिटका वर्णागम इत्यादिनिरुक्तविधिना वर्ण लोप । धान्य धनीयकम् ॥२७—२८॥

व्यक्केषु चार्जुनत्वग्वा मश्चिष्ठा वा समाधिका । लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥२६॥

व्यक्तेष्टित्यादि-वाग्मटस्य । समाधिकेति श्रर्जुनत्वक् चापि सम्बध्यते । श्रर्जुन-त्वक् वृत्तमम्बन्धादेव स्वय शुष्का याद्या । श्रेता श्रेतापराजिता, श्रश्रखुर श्रश्वस्य घोटकस्य खुर तयोर्मसी भरम, श्रन्ये तु धवलघोटकसुरमसीलाहु ॥२६॥

रक्तचन्दनमिश्रा कुष्ठलोभ्रीप्रयद्भवः। वटाड्कुरमस्राश्च व्यद्गमा मुखकान्तिदा ॥ व्यक्तिनां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च। केवलान् पयसा पिष्ट्वा तीन्णान् शाल्मिलकण्टकान्। श्रालिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत् पद्मोपमं मुखम् ॥३०॥

रक्तचन्दनेत्यादी---वहुवचनात् व्यस्नममस्तमिति वदन्ति । वटाड्कुरा आभि नवपत्रमुकुला । तीद्रणानित्यभिन्नान् ॥३०॥

मस्रै सर्पिषा पिष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्विते । सप्तरात्राद्धवेद्दक्तं पुरुडरीकद्लोपमम् ॥३१॥

मस्रोरित्यादी—मिपेपित विशेषणे तृतीया । पिष्टैरित्यर्थात् पयमेव पिष्टैरित्यर्थ । पिष्टैरित्यत्र मृष्टेरित्यपि केचित् पठिनत । वाग्मेटेडप्युक्त "कीरिपष्टा प्रतक्षीद्रयुक्ता वा मुप्टनिस्तुपा मस्रा" शित ॥३१॥

मातुलुङ्गजटा सिपः शिला गोशकतो रसः ।
मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥
मवनीतगुडक्तौद्र-कोलमज्जप्रलेपनम् ।
स्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागीक्तीरप्रपेपिता ॥
जातीफलकलकलेपो नीलीव्यद्गादिनाशनः ।
सायश्च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसादनः ॥३२॥

मातुत्रक्षस्य जटा मूलम्, शिला मन शिला, कीलमज्जा वदरमज्जा । वरुणत्व ् विति दितीयो योग ॥ १२॥ कालीयकोत्पलामयद्धिसरबद्रास्थिमध्यफलिनीभिः। लिप्तं भवति च वद्नं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥३३॥ कालीयकेत्यादौ—उत्पल नीलोत्पलम्, श्रामय कुष्ठम्, वदरास्थिमध्य मज्जा, फलिनी प्रियग्रः ॥३३॥

तुपरहितमस्ण्यवचूर्णसयष्टीमधुकलोध्रलेपेन । भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ॥ रक्षोध्रश्वरीद्वयं मिक्षष्टागैरिकाज्यवस्तपयः। सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विधुविम्ववद्गाति ॥ ३४॥

रचोझ श्वतसर्षप , श्राज्य ष्टतम् । स्तपयव सिद्धेनिति समासपदम् , रचो-झादिमिद्धेन लेपेनेत्यर्थः ॥ ३४॥

परिण्तद्धिशरपुङ्क्षे कुवलयद्लकुष्ठचन्द्नोशीरैः।
मुखकमलकान्तिकारी भुकुटीतिलकालकान् जयति॥३४
परिण्रतेलादि—परिण्तद्धिप्रमृतिभिर्तेष । भ्रकुटी ललाटे वलीरूपा॥ ३५॥

हरिद्राद्यं तैलम्

हरिद्राद्वययष्ट्याद्ध-कालीयककुचन्दनैः।
प्रपौराडरीकमिश्रष्ठा-पञ्चपद्मककुङ्कुमैः॥
किपत्यितन्दुकस्च-चटपत्रैः पयोऽन्वितैः।
लेपयत् कल्कितैरोभिस्तैलं वाभ्यक्षनं चरेत्॥
पिस्नवं नीलिकाव्यद्गांस्तिलकान् मुखदूषिकान्।
नित्यसेवी जयेत् चिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम्॥ ३६॥

हरिद्रादी--कुचन्दन चन्दनभेद , पद्म पद्मपुष्पम् । पत्रशब्द॰ कंपित्थादिभि प्रत्येक सम्बध्यते । लेपपचे पयसैव पेषणम् । तैलपाकपचे हरिद्रादीना कल्क॰, चीरन्तु चतुर्गुणम् । पिप्तविमिति जडलम् ॥ ३६ ॥

कनक-तैलम्

मधुकस्य कपायेण तैलस्य कुडवं पचेत्। कल्कैः प्रियङ्गुमञ्जिष्ठा-चन्दनोत्पलकेशरैः॥ कनकं नाम तत्तेलं मुखकान्तिकरं परम्। श्रभीक्रनीलिकाव्यद्वशोधनं परमार्चेतम्॥ ३७॥ मधुकस्येलाटी—केशर नागेकेशरम्। श्रमीक बद्धलम्॥ ३७॥

मिखिष्ठाद्यं तैलम्

माञ्जा मधुकं लाचा मातुलुक्तं सयप्रिकम्।
कर्षप्रमाणेरेतेस्तु तेलस्य कुडवं तथा ॥
श्राजं पयस्तद्द्विगुणं शनैमृद्वश्निना पचेत्।
नीलिकापिडकाव्यक्तानभ्यक्तादेव नारायेत्॥
मुखं प्रसन्नोपचिनं चलीपलितचर्जितम्।
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् कनकसन्निभम् ॥ ३८॥

मिं छेलादी — मातुल्जहस्य मूलम् । मधुक मयिष्टकिमिति पददयोपादानातः जलस्थलभेदेन यिष्टमधुद्यमिदः आव्यमिनि श्रेयम् ॥ ३८ ॥

कुङ्कमाद्यं तैलम्

कुडुमं चन्दनं लाह्या मिश्वष्टा मध्यपिका ।
कालीयकमुशीरश्च पद्मकं नीलमुत्पलम्॥
न्यश्रेषिपादाः सलस्य ग्रुह्या पद्मस्य केशरम् ।
द्विपश्चम्लसिहते कपायैः पिलके पृथक् ॥
जलादकं विपक्षम्यं पादशेपमथोद्धरेत् ।
मिश्रिष्टा मधुके लाह्या पत्तकं मधुयपिका ॥
कर्षप्रमाणैरेतेस्तु तेलस्य कुडवं पचेत् ।
श्रजाह्यारं तद्दिगुणं शनैमृद्धिमा पचत् ।
सम्यक् पकं परं ह्यतन्मुखवर्णप्रसादनम् ।
नीलिकापिडकाव्यह्यानभ्यक्वादेव नाशयेत् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् काश्चनसिन्तं पुरा ॥ ३६ ॥
कुडुमाद्यमिदं तेलमितं भ्रयां निर्मितं पुरा ॥ ३६ ॥

कुड्कुमित्सिदी—न्यग्रोधस्य वटस्य पादाः शुङ्गा , सत्तः पाकुडी । कपायै-रिति कपायमाधने कुङ्कुमरक्तचन्दनादिमि , पञ्चवल्कलैरिखन्य । पत्तङ्ग रक्ष-चन्दनम् । दिपञ्चमूलसिहतैरिखत्र पद्मिक्षल्कसिहतैरिति केचित् पठिन्त, वाग्मेटेऽपि दरामूल विना योगोऽय दृश्येते, पवं चन्द्रोटेऽपि, तेनापि योगान्तरत्वम् ॥ ३६ ॥

कुङ्कुमाद्यं तैलम्

कुडुमं चन्दनं लाजा मिक्षष्टा मधुयप्रिका।
कर्पप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत्।
श्रजाक्तीरं तद्द्रिगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥
सम्यक् पकं परं ह्यतन्मुस्ककान्तिप्रसादनम्।
नीलिकापिडकाव्यक्कानभ्यद्वादेव नाशयेत्॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् काश्चनसन्निमम्॥४०॥
दितीयकुड्कुनाष तैलमाह कुड्कुममित्यादि —स्पष्टम्॥४०॥

कुङ्कुमाद्यं तैलम्

कुडुमं किंशुकं लाजा मिल्रिष्ठा रक्षचन्दनम् ।
कालीयकं पद्मकञ्च मातुलुइं सकेशरम् ॥
कुसुम्मं मधुयप्रीकं फिलिनी मदयन्तिका ।
निशे द्वे रोचनापद्ममुत्पलञ्च मन शिला ॥
काकोल्यादिसमायुक्षेरेतैरत्तसमैभिषक् ।
लाज्ञारसपयोभ्याञ्च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥
कुडुमाद्यमिदं तैलञ्चाभ्यक्षात् काञ्चनोपमम् ।
करोति वदनं सम्यक् पुष्टं लावग्यकान्तिदम् ॥
सौमाग्यलदमीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥४१॥

तृतीयकुड्कुमाधतैले किंग्रुकः पलाशस्तस्य पुष्पं आद्यम् । मातुछक् सकेशर-मिति मातुछङ्गस्य मूल केशरकेत्याहुः । मदयन्ती मिहिकामेदः । काकोल्यादिः सौ-श्रुतगर्ष , श्रष्टवर्ग इत्यन्ये । लाचारसपयसी मिलित्वा तैलाचतु र्गुये ॥ ४१ ॥

वर्णकं घृतम्

मधुकं चन्दनं कहु सपैपं पद्मकं तथा।
कालेयकं हरिद्रा च लोधमेभिश्च किततेः॥
विपचेदि घृतं वैद्यस्तत्पकं वस्त्रगालितम्।
पादांशं कुद्धुमं सिक्थं चिप्त्वा मन्द्रानले पचेत्॥
तत् सिद्धं शिशिरे नीरे प्रचिप्याकपियत्ततः।
तदेतह्ण्कं नाम घृतं वर्णप्रसादनम्॥
श्रनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीपलितनाशनम्।
निष्कलद्वेन्दुविस्वामं स्यादिलासवतीमुखम्॥४२॥

मधुकीमत्वादी—क्यः कायोनीमहक ह्याधान्यम् । वक्तगालितमिनि किञ्चिन जलमम्बन्धे मत्येव वस्त्रेप गालनीयम् , तनी मिलित्वा ष्टतात् पादाग कुकुम न्नियम् कञ्च बल्क प्रक्षिप्य मृद्दिशना पुनरप्यवधानेन जलज्ञयपर्य्यन्त पक्षम्य यथा मिन्धक-हाहो न स्यात् , मिद्धे च तद्ष्रतपात गीतलजने निविष्य गीनीभून मार्कपयेत् , तथा मित मिन्धकस्य दाहो न स्यादिनि माव ॥ ४२ ॥

श्रकंपिकायां रुधिरेऽवसिक्ने शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा। निम्वाम्बुसिक्ने शिरसि प्रलेपो देयोऽध्ववचीरससैन्धवाभ्याम्।४३।

प्ररूपिकायामित्यादी—निन्दान्तु प्रदेशना निन्दकाथ. ॥४॥॥

पुराणमिप पिण्याकं पुरीपं कुक्कुटस्य वा । मूत्रपिष्टं मलेपोऽयं शीवं हन्याद्कंपिकाम् ॥ स्रकंपिवं भृष्टकुष्टचूर्णं तैलेन संयुतम् ॥४४॥

पुरायितियादि-योगद्रयम् , अतस्व वाराष्ट्र । पिरवाकस्तिलखली, एक-योगताप्यायुर्वेदमवादात् । नृष्टकुष्ठचृष्णीमिति कपाले मृष्ट्रा दग्व्या चूर्णं कर्तव्य-मित्वर्थः ॥ ४४ ॥

हरिद्राद्यं तैलम्

हरिद्राद्वयभूनिम्य-त्रिफलारिष्टचन्द्नैः।

पतत् तैलमरंपीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥४४॥ हरिद्रेत्यादि—स्पष्टम् ॥४४॥

दारणे तु शिरां विध्येत् स्निग्धां स्वन्नां ललाटजाम् । अवपीडान् शिरोवस्तीनभ्यद्गांश्चावचारयेत् ॥ कोद्रवाणां तृण्ज्ञारपानीयं परिधावने । काय्यों दारणके मूर्त्रिं प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ पियालवीजमधुक-कुष्ठमिश्रैः ससैन्धवैः । काञ्जिकस्थाः त्रिसप्ताहं मापा दारणकापहाः ॥४६॥

दारण इति उक्धिकायाम् । श्रवणीठो नस्यभेदः । शिरोवस्तिश्च द्विहरिद्रा-तंलेन देय इत्याहुः। पियालवीजमधुककुष्ठानि । मिश्राणि चेति विग्रह कृत्वा समाधेयम् , मिश्रेरित्यत स्थाने मापैरित्यपि पाठान्तरम् ॥ ४६ ॥

सह नीलोत्पलकेशरयष्टीमधुकतिलें सहश्रमामलकम् । चिरजातमपि च शीर्षे दारण्रोगं शमं नयति ॥ ४७॥ सहस्रादी—नीलोत्पलस्य केशर किञ्चलकः । सहशमिति तुल्यम् ॥ ४७॥

त्रिफलाद्यं तैलम्

त्रिफलाया रजो मांसी मार्कवोत्पलशारिवै । ससैन्धवै पचेत्रैलमभ्यक्नादुक्थिकां जयेत् ॥ ४८॥

त्रिफलाया इत्यादौ-मार्कवो मृद्गराज , उत्पलशारिवा भ्रमन्तमूलम् झान्द-सत्वाद् इस्त्र , श्रन्ये तु उत्पल नीलात्पल शारिवा च इत्याहु ॥ ४८ ॥

चित्रकाद्यं तैलम्

चित्रकं दान्तिमूलञ्च कोषातकीसमन्वितम्। करुकं पिष्ट्वा पचेत्तलं केशदुदुविनाशनम्॥ ४६॥

चित्रकमित्यादौ-कोपातकी घोषक ॥ ४६॥

गुझाद्यं तैलम्

गुञ्जाफलैः श्टतं तैलं भृद्गराजरसेन तु ।

कराह्दारणहत् कुष्ठ-कपालव्याधिनाशनम् ॥ ४० ॥ मृद्गराजरमेनेति चतुर्गुणेनलर्थः ॥ ५० ॥

भृद्गराजतैलम्

सृङ्गरजिप्तलोत्पलशारि लेहिपुरीपसमन्वितकारि।
तेलामदं पच दारणहारि कुञ्चितकश्यंनस्थिरकारि॥५१॥
भृङ्गरज इत्यादी—भृङ्गरजो मृङ्गराजस्तस्य रमश्चतुर्गुणः पाकार्थत्वादः। भृङ्गर रज शब्दोऽप्यस्ति, यथा 'ये मापमेक स्वरस पिवन्ति दिने दिने भृङ्गरज ममुत्यम्'' इति । त्रिफलादीना कल्क । उत्पल नीलोत्पलम्, शारि शारिवा अनन्तमूलम्, ममन्वितकार सहकार ममन्वितशब्दस्य सहार्थत्वाद, अस्य च फलमध्य ग्राय केश्य-त्वाद कृष्णीकरणत्वाच । भृङ्गराजादिसमन्वितकारान्तः द्रन्यमस्मित्रस्तीति इन्, तेल विशेषणमेतत्। अन्य तु भृङ्गराजादि मर्व द्रग्य कल्क, जलेन पाक्, उत्पलशारिवा अनन्तमूलम्, भृङ्गरज समन्वय कर्जुं शीलमस्येति तलविशेषणमिति । न्यवहारस्तु पूर्वव्याख्ययेव । कुञ्चितकेशघनास्थरकारीति केशस्य कुञ्जितत्वयनत्वकारीत्यर्थं । कुञ्चितशब्दः पूर्वनिपातश्चान्दसत्वादः॥ ५१ ॥

प्रपौएडरीकाद्यं तैलम्

प्रपौराडरीकमधुक-पिष्पलीचन्द्नोत्पलैः । कार्षिकैस्तैलकुडवं तैर्द्धिरामलकीरसः । साध्यः सप्रातिमर्पः स्यात् सर्वशीर्पगदापदः॥ ४९॥

प्रपौयडरीकत्यादी-तिलापेचया दिग्रेणनामलकरमेनैव पाक । प्रतिमर्पी नस्यमेद । सप्रतिमर्प इति प्रतिमर्पविधिना उपग्रुक इत्यर्थ ॥ ५२॥

मालत्याद्यं तैलम्

मालतीकरवीराग्नि-नक्तमालविपाचितम् । तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापद्दं परम् । इदं हि त्वरितं हन्ति दारणं नियतं नृणाम् ॥ ४३॥

मालतीत्यादि-मालती जाती, श्रीभिश्चत्रक । अत्र गोमूनेख पाक इति श्रीकरठ ॥ ५३॥ धात्र्याम्रमज्जलेपात् स्यात् स्थिरता स्निग्धकेशता । इन्द्रलुते शिरां विद्ध्वा शिलाकाशीशतुत्थकैः ॥ लेपयेत् परितः कल्कैस्तैलब्चाभ्यक्षने हितम् । कुटन्नटं शिखीजातीकरक्षकरवीरजैः ॥ ४४ ॥

वात्रीत्यादौ — मज्जशब्देनाम्नेणैव सम्बन्ध , आम्रमज्जा तु वालाम्रास्थि । इन्द्र हुप्त इत्यादौ — शिरामिति इन्द्र हुप्तसिष्ठिहिता शिराम् तैलन्नाभ्यक्षेने हितमिति । कुटन्नटादिकरवीरान्ते कल्के सिद्ध तैलमित्यर्थ । कुटन्नटमिति कुटन्नट कैवर्त्तमुस्तकम् । शिखी चित्रक । अन्ये तु कुटन्नटमिति च्छेद , विच्छेदपाठात् कुटन्नट विनापि चित्रकादिद्र व्यचतुष्टयेन तैलसाधन स्वयान्त, व्याख्यानयन्ति च — शिखीति दीर्घपाठश्छान्दमत्वात् समर्थनीय , अन्ये तु कुटन्नटादिभिरपि लेप एव, तैलन्तु पूर्वोक्तमालतीकरवीरादिसिद्धमेव वोध्यामित्याद्ध ॥ ५४॥

त्रवगाढपदञ्चेव प्रच्छियित्वा पुनः पुनः। गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत् केशभूमि समन्ततः ॥ ४४॥

श्रवगाढित्यादि--श्रवगाढपदमिति गम्मीरपद यथा स्याद तथा स्वीनख-रश्रन्यादिमि प्रच्छियत्वा रक्षगुजाफलैः पुनः पुनर्लिम्पत्॥ ५५॥

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यञ्जैव रसाञ्जनम्। लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि॥ ४६॥

1,

हस्तिदन्तित्यादी-मुख्यमित्यक्षत्रिमम् ,-तेन दार्वीकाश्रोद्भवरसान्जननिषेषः । श्रत जलेन पेषस वोध्य द्रन्यान्तरस्यानुकेः । श्रतपत वच्यमाखेन झागिद्धरिरसा-न्जनेत्यादिना श्रस्य न पौनरुक्ष्यम् ॥ ५६ ॥

भन्नातकवृहर्ताफलगुञ्जामूलफलेभ्य एकेन। मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ ४७॥

मल्लातकेत्यादी---मल्लातकषृष्टतीफलयो रसः । उक्त हि वाग्मेट 'सच्चीद्रचुद्र-वार्त्ताकुरवरसेन रसेन वा । धुस्तुरस्य च पत्राणा भल्लातकरसेनं वा इति ॥ ५७॥

वृहतीफलरसिपष्टं गुञ्जाफलमूलञ्चन्द्रलुप्तस्य । कनकिन्धृष्टस्य सतो दातव्यं प्रच्छितस्य सदा ॥ घृष्टस्य कर्कशैः पत्रीरिन्द्रलुप्तस्य गुण्डनम् । चृिंधैतैर्मरिचैः कार्य्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥ ४८ ॥ छागचीररसाञ्जनपुटदग्धगजेन्द्रदन्तमसीलिप्ताः । जायन्ते सप्तरातात् खल्ल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥ ४६ ॥

वृह्दतीत्यादौ-पक्तवृह्दतीफलरसस्तेन पिष्ट ग्रुआया मूलं फल वा । कनक-निषृष्टस्येनि कनक ग्रुवर्णे धुस्तूरस्य मूल वा । प्रच्छितस्येति नरारज्ञन्यादिना विलि-खितस्य ग्रुण्डनामित्यवचूर्णनम् ॥ ५६—५६ ॥

मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोचीरभृद्गलेपेन । श्राचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायतानुजवः ॥ ६० ॥ मधुकेत्यादी—सन्दीवर नीलोत्पलम्, मृद्गी मृद्गराज । श्रमुजवः क्रांटला ॥ ६० ॥

स्नुह्याद्यं तैलम्

स्तुद्दीपय' पयोऽर्कस्य मार्कवो लाइलीविषम् । मूत्रमाजं सगे।मूतं रिक्तका सेन्द्रवारुणी ॥ सिद्धार्थं तीरुणैतलञ्ज गर्भं द्वा विणाचित्तम् । विद्वा सृदुना पकं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ कूर्मपृष्ठसमानापि रूज्ञा या रोमतस्करी । दिग्धा सानेन जायेत भृज्ञशारीव लोमशी ॥ ६१ ॥

स्तुहीत्यादी—मार्कवी सङ्गराज, लाङ्गलीविष विषलाङ्गलियामृलाख्य विष किंवा लाङ्गली च विषञ्चेति द्रच्यद्रयम् । रिक्तका ग्रांजिका, तस्या मृल, फल-मित्यन्ये । इन्द्रवाक्षणी गोरचककंटी, सिद्धार्थ श्रेतसर्पय', तीच्यातल सार्पपतिल ज्योतिष्मतीम्ल, फलिन्त्यन्ये । सिद्धार्थतीच्यातेलामिति समस्तपाठपचे तीच्यामिति तेलाविशेषयम् । अमित्रतस्य सर्पपस्य तैल श्रेयम् । अजामूत्रगोमूत्रे मिलित्वा चतु-ग्रंथे, शेष कल्क । दिग्धा इति अचिता । महत्तस्य मल्लूकस्य शारी पोधिका इव ॥ ६१ ॥

त्रादित्यपाकगुडूचीतैलम् वटावरेाहकेशिन्येशचूर्णेनादित्यपाचितम् ।

गुडूचीस्वरसे तैलञ्चाभ्यद्वात् केशरोपणम् ॥ ६२॥

वटावरोहेत्यादौ—केशिनी भूतकेशी मासी वा प्तयोश्चूर्णं तलात् पादिक कल्कत्यात् , गङ्चीरमस्तु तैलसमः आदित्यपाकत्वात् ॥ ६२ ॥

चन्दनाद्यं तैलम्

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम्। कान्ता वटावरोहश्च गुडूची विसमेव च ॥ लौहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च। मार्कवस्वरसेनैव तेलं मृद्धग्निना पचेत् ॥ शिरस्युत्पतिता केशा जायन्ते घनकुञ्चिताः। हढमूलाश्च स्निग्चाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः॥ नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तेलमुत्तमम्॥ ६३॥

चन्द्रनामित्यादौ---कान्ता प्रियग्र,, विस मृणाल, केशी भूतकेशी, मार्कव-रमश्चतुर्ग्रणः ॥ ६३ ॥

तैलं सयप्रिमधुकैः चीरे धात्रीफलै श्रतम्।
नस्ये दत्तं जनयति केशान् श्मश्रृणि चाप्यथ॥ ६४॥

तैलमित्यादौ---चिरमेव चतुर्गुख द्रवान्तरामावात् ॥ ६४ ॥

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहभृद्गरजः समम्। श्रविसूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरण्मुत्तमम्॥ ६४॥

त्रिफलेत्यादौ —नीलिनी लतावेखीति प्रसिद्धा, तस्या पत्रः लीहमृद्ध-रजसीश्चूर्यमित्यर्थ । अविमूत्रेख सयुक्तमिति मावितम् । शिरोलेपीऽय प्रहरी हौ त्रीन् वा धार्य्य , एवमन्यत्रापि शिरोलेपनधारखम् ॥ ६४ ॥

> त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लौहचूर्णं विनित्तिपेत्। ईपत्पक्ते नारिकेले मृद्गराजरसान्विते ॥ मासमेकन्तु नित्तिप्य सम्यग्गर्भात् समुद्धरेत्। ततः शिरो मुगडियत्वा लेपं दद्याद्भिषम्बरः॥ संवेष्ट्य कदलीपत्रैमीचयेत् सप्तमे दिने।

चालयेत् त्रिफलाकाथैः चीरमांसरसाशिनः।
कपालरञ्जनञ्जेतत् रुष्णीकरणमुत्तमम्॥ ६६॥
त्रिफलत्यादी—गर्गादिति नारिकेने।उराह। गर्गादिति च पाठ म पत्रार्थ

॥ ६६ ॥ उत्पत्तं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत् । केशानां कृष्णकरणं स्नेहनञ्ज विधीयते ॥ ६७ ॥

उत्पलमित्यादी--उत्पल नीलोत्पल, माम भूमी निधापयेदिति लीहपात्रे कृत्वा भूम्यध स्थापयेदित्यर्थ ॥ ६७ ॥

सृह्मपुष्प जवापुष्पं मेपीदुग्धप्रपेपितम् । तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यध्नः कतम् ॥ सप्ताहादुद्धतं पश्चाद् सृहराजरसेन तु । श्चालोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टियत्वा वसेन्निशाम् ॥ प्रातस्तु ज्ञालनं कार्य्यमेवं स्यान्मूईरञ्जनम् । पवं सिन्दूरवालाम्रशह्मभृहरसैः किया ॥ ६० ॥

श्रभ्यज्येति सुद्गराजरसाले। हितेन सुद्गराजपुष्पादिना श्रव्ययित्वत्यर्थ । वेष्टियित्वाः इति कदलीपत्रेयोति रोप । शिरः प्रवालनम्ब त्रिफलाकायेन वदन्ति । बालाझ वाला-श्रवीज, राद्ध राक्षनामि । प्वमित्यनेन मिन्दूरादिश्रयेऽपि पूर्ववन्मेपदुग्धपेपयादिक-मतिदिशन्ति । सृगरमिरिति सृगराजरमोऽपि श्रालोङनार्थम् , एव तथा यद्यपि एविमत्य-विदेशनेव लभ्यते तथापि स्पष्टार्थमुक्तम् ॥ ६ = ॥

नरदुग्धशङ्खचूर्णं काञ्जिकसिक्षं हि सीसकं घृष्ट्वा । लेपात्कचानर्कदलावनद्धान् श्रुश्चान् करोति नीलतरान् ॥६॥।

नरेत्यादि-श्रत्र किञ्चित् पारद गृहीत्ना आवर्त्यमाने सीसके प्रचिपेत्, ततस्तेन मह एकीभूत सीसक घृष्ट्वा शिरासे लेगो देय श्त्युपदिशान्ति वृद्धा अर्क-दलावनद्धमित्यर्कपत्रेण पिषाय वन्धनमित्यर्थ ॥ ६९ ॥

लोहमलामलकल्के सजवाकुसुमैर्नर सदा स्नायी। पिलतानीह न पश्यति गङ्गास्नायीच नरकािंग्॥ ७०॥ लोहमलेत्यादी—मामलक धात्रीफल, जवाकुद्युम भ्रोट्र्पुप्पस्॥ ७०॥ निम्बस्य वीजानि हि भावितानि भृहस्य तोयेन तथाशनस्य। तैलन्तु तेषां विनिह्नन्ति नस्याद् दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम् ॥

निम्बस्यत्यादि—श्रशन पीतशाल । मावना च प्रत्येक सप्ताहम् ॥ ७१ ॥ निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्ते निषिक्तं विधिना यथावत् । मासेन गोन्तीरभुजो नरस्य जरात्रभूतं पालितं निहन्ति ॥ ७२ ॥

निम्बतैल निम्बवीजस्य तेल प्रकृतिस्थमेनेति भृद्गराजरसादिभावनाराहितम् । विधिनेति नस्योक्निविधिना । जराग्रमृतिमिति जरागमनस्त्रकम् ॥ ७२ ॥

> चीरात् समार्कवरसाद् द्विप्रस्थे मधुकात् पले। तैलस्य कुडवं पकं तन्नस्यं पलितापहम्॥ ७३॥

चीरादित्यादि — चीरभृङ्गराजरसयोगितित्वा प्रस्थद्वयम्, निर्देशस्य मानप्रधान-त्वाद् । मधुकाद् पले इति सप्तम्येकवचनम्, न तु प्रथमाया द्विवचन, जतृकर्ण-मवादाद् ॥ ७३ ॥

महानीलतैलम्

श्रादित्यवल्त्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च ।
सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशिणस्य च ॥
मार्कवं काकमाची च मधुकं देवदारु च ।
पृथग्दशपलांशानि पिष्पल्यिस्रफलाञ्जनम् ॥
प्रपोणडरीकं मञ्जिष्ठा लोधं कृष्णागुरूत्पलम् ।
श्राम्रास्थिकर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥
नीली भन्नातकास्थीनि काशीशं मस्यान्तका ।
सोमराज्यशनः शस्त्रं कृष्णो पिणडीतचित्रकी ॥
पुष्पाण्यर्जुनकाशमय्योंश्चाम्रजम्वृफलानि च ।
पृथक् पञ्चपलेभीगे सुपिष्टराढकं पचेत् ॥
वैभीतकस्य तैलस्य घातीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेदसः ॥
लीहपाले तत पूर्वं संश्रद्धमुपयोजयेत् ।

पान नस्तिक्यायाञ्च शिरोऽभ्यद्गे तथैव च ॥ एतच्चुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगतुत् । महानीलमिति ख्यातं पलितप्रमत्त्रतमम् ॥ ७४ ।

महानीलैतले—आदित्यवही स्य्यांवर्त , आदित्यपर्णिति पोठ म एवार्थ । कृष्णशैरीयको नीलिकियटी, सुरम पर्णाम , अअन रमाअन, कृष्णकर्दमा नीलिनी-मूलिस्तकर्दम , सुमुतेऽपि ' पद्गन निलिनीभेवन '' इत्युक्तम् । नीली नीलिनि स्याता लता, अशन पीतशाल , शस्त्र काललीहचूर्णे, पिण्टीनी मदन , कृष्णा-विति कृष्णपुर्णे । पुष्पाययंजुनकाशमर्याणीति अजुनकाशमरीभवानि पुष्पाणि, अजुनकाशमरीभवानि पुष्पाणि, अजुनकाशमयोरित्यपि पाठ । लीहपान्नऽभिना पवेदादित्यपक्त वा कुर्याटिनि योज्यम् । आदित्यपक्तस्तु आदित्यरित्रसम्बन्धादेव द्वशोपविधि । अस भागीरिनि बहुवचनादेव प्रथम्भागे लब्धे पृथगिति पद न्यायिमद्धस्यापि विफलाया पृथग्भागम्य बीतनार्थ, कल्कभृयस्त्वज्ञ वचनोदेव गवन्न विकल्पनीयम् ॥ ७४ ॥

भृद्गराजघृतम्

भृद्गराजरसे पकं शिखिपित्तेन कित्कतम् ।

घृतं नस्येनं पिलतं हृन्यात् सप्ताह्योगतः ॥ ७४ ॥

मृद्गराजेत्यादी—शिखो मयुर । घतन्तु कुडवमानमय नस्ययोगत्वात् ॥७४॥

काञ्जीपिष्टशेलुफलमिष्कि सिष्ड्यद्भलौहेगे ।

यदर्कतापात् पतित तैलं तन्नस्यम्रज्ञणात् ॥

केशा नीलालिसङ्काशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च ।

नयनश्रवणश्रीवाद्नतरोगांश्च हृन्त्यदः ॥ ७६ ॥

काश्रीत्यादी---रोखर्वेद्धवार । सान्छिद्रलीहग इति वहुन्छिद्रलीहपात्रस्थे । नीलालिसङ्कारा। इति नीलपद पिद्वलभ्रमरिनरासार्थम् ॥ ७६ ॥

काशीशरोचनातुल्यं हरितालं रसाञ्जनेः। श्रम्लिपष्टैः प्रलेपेाऽयं चृपकच्छ्वहिपूतयोः॥ ७७॥

काशीशभित्यादौ — पंतिरिति शेष । काशीशराचनातुल्यहरितालरमाअनै-रित्यिष पाठ ॥ ७७ । ७८ ॥

पटोलाद्यं घृतम्

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।
पीतं घृतं निहन्त्याशु कृच्छामप्यहिपूतनाम् ॥ ७८ ॥
रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम् ।
हिन्त विसर्प लेपाइराहदशनाह्नयं घोरम् ॥ ७६ ॥
नागकेशरचूर्णं वा शतघौतेन सर्विषा ।
पिष्ट्वा लेपो विधातच्यो दाहे हर्षे च पादयोः ॥ ८० ॥

इति जुद्ररोगचिकित्सा । वराहदशनाह्नयमिति वराहदन्तमिति श्रसिद्धम् ॥ ७६ । ८० ॥ इति जुद्ररोगचिकित्साविष्टति ।

अथ मुखरोगचिकित्सा ।

श्रोष्ठरोगचिकित्सा

श्रोष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्विणने।पनाहनम् । मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः श्टतम् ॥ १॥

चुद्रसेगास्तु चतुश्रत्वारिशत् , भुखरागास्तु पञ्चपष्टि ,श्रतो रोगगणत्वसामा-न्यात् चुद्ररोगचिकित्मितप्रमङ्गान्भुखरोगचिकित्मितमुच्यते । श्रोष्ठेत्यादि—सुश्रुतस्य । मस्तिष्के चैवेति—मस्तिष्क शिरोवस्ति केहोकिपिचुधारण वा । वातहरेरिति भद्र-दार्वादिमि ॥ १॥

स्वेदोऽभ्यद्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते । श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु च । यष्टीमधुकचूर्णञ्च विद्ध्यात् प्रतिसारणम् ॥ २॥

रसायनामिद्देष्यतः इति रसायन च्यवनप्राशादि । श्रांवेष्टकमित्यादि — सुश्रु-तस्य । श्रांवेष्टक नवनीतर्प्रोटि । प्रतिमारण वर्षणम् । वाग्मटे शु श्रांवेष्टकस्थाने मधृच्छिष्ट पट्यते ॥ २॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्षस्य पानं रसभे।जनश्च ।

शीतान् प्रलेपान् परिपेचनश्च पित्तोपस्ष्टेष्वधरेषु कुर्णात्॥ पित्तरक्काभिघातोत्थान् जलौकाभिरुपाचरेत्। पित्तविद्वधिवच्चापि क्रियां कुर्यादेशपत ॥ शिरोविरेचनं धूम स्वेदः कवडधारणम्। इते रक्षे प्रयोक्ष्वयमोष्ठकोपे कफात्मके॥ जिकद्वः सर्जिकाचारः चारश्च यावश्क्रजः। चौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम्॥ ३॥

वेधमित्यादि —शिरा च श्रीष्ठसमीपगता वोध्या । तिकस्यत्मल सर्पिप इति शेष । शिर इत्यादि — सुश्रुतस्य । धूमोऽत्र वैरेचनिक कफयोग्यत्वात् , प्वं कवलधारणिमिति कफहरद्रव्यकृत , वाग्मटेऽप्युक्त ''धूमस्वेदनगग्रहूवा प्रयोज्याक्ष कफिन्छद " इति ॥ ३ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः। प्रियद्गुतिफलाले।भ्रं सत्तौद्रं प्रतिसारणम्॥ हितञ्च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम्॥ ४॥ मेदोज क्लादि—इश्रुतस्य। शोधित इति मेदोहरणेन विशुद्धे। ज्वलन इति प्रश्निकर्ता॥ ४॥

सर्जरसकनकगैरिकघन्याकतैलघृतसिन्धुसंयुक्तम् । सिद्धं सिक्थकमधेरे स्फुटितोच्चटिते वर्णं हरति ॥ ४॥

सर्जेत्यादी-कनकगैरिकम् उत्कृष्टगैरिकमित्यर्थ । पतच सर्जरसादिचूर्णं सिक्थ-कान्त खोलके किञ्चिदमानुष्णिकृत्य प्रलेपयोग्य पक्त्वा अवतार्य्यं अधेर धार-यीयम् ॥ ४ ॥

दन्तरोगचिकित्सा

शीतादे हतरक्षे तु तोये नागरसर्षपान् । निःकाथ्य तिफलाञ्चापि कुर्य्याद्रगट्टपधारणम् । प्रियक्षवश्च मुस्ता च तिफला च प्रलेपनम् ॥ ६॥

दन्तरोगचिकित्सामाइ शोताद इत्याँदि—सुश्रुतस्य । नागरादित्रिफलान्त एको योग ॥ ६॥

कुष्ठं धात्री लोध्रमब्दं समद्गा पाठा तिक्का तेजनी पीतिका च। चूर्णे शस्तं घर्षणं तद् द्विजानां रक्कस्रावं हन्ति कराडूं रुजाञ्च॥७॥

कुष्ठमित्यादि—तेजनी चनी। पीतिका हरिद्रा॥ ७॥
चलदन्तस्थिरकरं कुर्याद्वकुलचर्वणम्।
आर्त्तगलदलकाथगण्डूषो दन्तचालजुत्॥
दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा।
दन्तपुष्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोत्तणम्॥
सपञ्चलवणन्तारः सन्तौद्रः प्रतिसारणम्।
दन्तानां तोदहर्षे च वात्र कार्यः कवडा हिताः॥ ८॥

चलेत्यादी--वकुलस्य फल दन्तस्थिरकरत्वात् । आर्त्तगलः द्दागडा इति ख्यातं, उम्रावचा, दन्तपुष्पुटक इत्यादि-सुश्रुतस्य । तरुण इत्युत्पन्नमाने रक्त-मोचण्यन्य प्रच्छनेन । चारो यवचार । वात्रमा कवडा इति उम्णतेलवृतसक्षेद्दरम्लकाथादय ॥ = ॥

दन्तचाले तु गराङ्कपो वकुलत्वक्कृतो हितः। माचिकं पिष्पलीसर्पिमिश्रितं घारयेन्मुखे। दन्तग्रलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम्॥ ६॥

माज्ञिकिमित्यादी—पिष्पलीष्टतापेचया मधुतु बहुमात्र देयमिति वदन्तिः, मधुन कर्षमेकम्, गन्यष्टत माषकाष्टकम्, पिष्पलीचूर्णं माषकचतुष्टयम्, आलोड्य मुद्धे धार्थ्यम् ॥ ६ ॥

विस्नाविते दन्तवेष्टे व्रणन्तु प्रतिसारयेत् । लोधपत्तक्तमधुकलाचाचूर्णैर्मधूत्तरैः। गरङ्क्षै चीरिखो योज्याः संचौद्रघृतशर्कराः॥ १०॥

विस्नावित इत्यादि — जलौकाप्रच्छनादिना रक्ते हते। वर्णामिति जलौकाप्रच्छ-नादिज चतम्। पत्तङ्ग रक्तचन्दनम्। चीरिया इति वटोडुम्बरादयः, एषा काथ चौद्रप्रतशर्करा प्रचेपयीयाः॥ १०॥

> शैशिरे हतरक्ते तु लोधमुस्तारसाञ्जनैः । सन्नौद्रैः शस्यते लेपो गरहूषे चीरियो हिताः ॥ ११ ॥

शिशिर इति दन्तरोगनिशेषे, एव परिदरेऽपि ॥ ११ ॥ क्रियां परिदरे कुर्य्याच्छीतादोक्षां विचत्तणः । संशोध्योगयतः कायं शिरखोपकुश ततः ॥ १२ ॥

क्रियामित्यादि—सुश्रतस्य । कायमुभयत सशोध्येति काय शरीरम्, उभ-यत इति वमनविरेचनाभ्या शिर्ध्य विशोध्येत्वन्वय । शिर शोधनम्ब शिरोविरेचनेनैव । सशोध्य उभयत काय शिरेश्येति यन्थ परिदरे उपकुशे च योजयन्ति, युक्तव्चैतत् , यत परिदरो रक्तकफज अतर्य कफप्रस्यनीक वमन पित्तप्रत्यनीकन्न विरेचन दित-मेव, शिरोविरेचने युक्ते एव हि । कायामित्यन्न कार्य्यमिति पाठे शितादोक्ता क्रियां परिदरे कुर्यात् । उपकुशे तु वच्यमाखरक्षमावादि कार्य्यमिति होयम् ॥ १ ॥

काकोह्रम्यरिकागोजीपत्रैर्विस्नावयेद्धिषक् । चौद्रयुक्तैश्च लवणैः सन्योपैः प्रतिशोधयेत् ॥ १३ ॥ गोजी राखोटक । लवणिरिति पन्नमि ॥ १३ ॥

पिष्पल्य सर्पपा श्वेता नागरं नैचुलं फलम्।
सुस्रोदकेन संगृह्य कवड तस्य योजयेत्॥
शस्त्रेण दन्तवैदभें दन्तमूलानि शोधयेत्।
ततः चारं प्रयुक्षीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः॥ १४॥

पिप्पल्य इत्यादी—निजुलफल हिज्जलफलम्। यते च व्यस्ता समस्ताश्च कवले योज्या। शोधयेदिति दन्तमूलानि शोधयेद्। श्रीमधातजेऽपि दन्तवेदभे शस्त्रेख दन्तमूलमासच्छेदनम् श्रीमधातदुष्टरक्तकृतपाकेन शीर्थमासस्यापगमनार्थम् । चारप्रयोगोऽपीहाशोधितशेषपूर्तिमांसदूरीकरणार्थं तदनन्तरश्च शीतिक्रया चारकुपित-पित्तरक्तिनिर्वापणार्थं ताश्च नस्यगग्रदूषादय । उक्त हि वाग्मेट ''चार दचात्ततो नस्य गग्रदूषादि च शीतलम्" इति ॥ १४॥

उद्धृत्याधिकदन्तन्तु ततोऽग्निमवचारयेत्।
किमिदन्तकयचात्र विधिः,कार्य्यो विजानता ॥ १४ ॥
उद्धेलत्यादि—ग्रुश्रुतस्य। श्रश्चिदाद्योऽत्र रक्षादिस्रुतिनिपेधार्थम्। क्रिमिदन्तो
दिविध श्रचलक्षकक्षः। तत्र यश्चल स उद्धार्य्यस्तदिधिरेवात्रातिदिश्यते । उद्धार्य्यत्वेन समानत्वात् न त्वचलस्य, तस्यानुद्धार्थ्यत्वात् स एव क्रिमिदन्ते उद्धरणदाद्दी

युकौ । श्रिधिदन्त पुनरचलेऽपि तिद्धिधानार्थिमिह किमिदन्तकिवेध्यतिदेशलब्धयो-रप्युद्धरणदाहयोरभिधानम् ॥ १५ ॥

खित्वाधिमांसं संज्ञौदैरैतैश्चू पेंठपाचरेत्।
पाठावचातेजवतीसर्जिकायावश्ककः॥
ज्ञौद्रद्वितीयाः पिष्पल्यः कवल्रश्चात्र कीर्तितः।
पटोलानिम्बित्रफलाकषायाश्चात्र धावने ॥
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च य ।
नाडीव्रणहरं कमं दन्तनाडीषु कारयेत्॥
यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत्।
छित्त्वाधिमांसं शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत्॥
शोधियत्वा दहेचापि ज्ञारेण ज्वलनेन वा।
गतिहिनस्ति हन्वस्थिदशने समुपेजिते।
तस्मात् समूलं दशनमुद्धरेद् भग्नमस्थि च ॥ १६॥

कित्तत्यादि—सुमृतस्य। तेजवती चवी। कवडमहोऽयम्। चौद्राद्वितीया पिप्पल्य इति चौद्रालोडिनपिप्पलीकवल । वैरेचिनिकंधूमसाहचर्य्यात् शिरोविरेकेऽपि तीच्छोऽत्र बोध्य । यस्य दन्तस्य समीपे नाडी स्यात् त दन्त चलमचल वा शक्केण दन्तावरकमास क्षित्ता उद्धरेत्। यदि नोपरिजो भवेदित्युद्धरण्यापवाद । अधोगतदन्तानुद्धरणे दोषानाह गतिरित्यादि—गतिनींडी इन्वस्थिकपोलसमीपस्थि दारयति । दशने समुपेचिते सत्यनुद्धृते सतीत्यर्थः । किंवा गतिदिनित्त इन्वस्थिदशने समुपेचिते शति पाठान्तरे दन्ते गतिरुपेचितेर्त्यर्थ । भग्नमस्थि चेति असम्यगुद्धृतदन्तस्य मग्नशिषमिरिथ चेत्यर्थ । किंवा गतिविशोधितहन्वस्थि मग्नास्थि चेत्यर्थ । १६ ॥

उड़ृते तूत्तरे दन्ते शोणितं सम्प्रसिच्यते ।
रक्षामियोगात् पूर्वोक्षा घोरा रोगा भवन्ति च ॥
चलममण्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ।
कषायं जातीमदनकडुकास्वादुकएटकैः ॥
लोधखदिरमञ्जिष्ठायष्ट्याहैश्चापि यत् कृतम् ।
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याइन्तगतां गतिम् ॥

कषायं परत कृत्वा पिष्ट्वा लोधादिकरिकतम्। कएटकी मदनो योज्यः स्वादुकएटो विकद्वतः॥१०॥

जपरिजदन्तानुद्धरणे हेतुमाह जद्भत इत्यादि—जत्तर इत्युपरिजाते मम्प्र-सिच्यते श्रतिस्रवतीत्यर्थ । पूर्वोका इति शोणितवर्थनीयोका श्राह्मपकादय । कपायमित्यादि-सुश्रतस्य । जात्या पत्रम्, मदन मदनकण्टकम्, कटुका कटु-रोहिणी, स्वादुक्रण्टक विकञ्कत । ण्ते छत कपाय मुखधारणरूप काथ दन्त-गता गति इन्यात् तथा लोधादिभिश्व यष्ट्याहान्ते. कलकरूपेर्यत् कृत तेल तदिप दन्तगति इन्यादित्यर्थ । अन्ये तु कपायमित्यत पर फुत्विति राप , तेन जात्यादिभि कपाय कृत्वा लोधादिकल्फेन च कृत यत् तैलमिति व्याचचते । युन्देनाप्यनुमतोऽ-यमर्थ व्यवहारोऽप्यनेनैव । धावन जातीमदनस्वाद्वग्रस्टकसदिरिमस्पिधक श्लीकार्क पठित्वा तदनन्तरमेव कपाय जातीमदन इत्यादिक पठित व्याचेष्ट च । कपायमिति पद धावनमित्यनेन मम्बध्यते तेन जात्यादिद्रव्यचतुष्टयक्षपायेगा धावन परेख तु जातीमदनकादिद्रव्याष्टकेन कल्केन तेल साधनायमिति । अतप्य तन्मता-तुयायिवाग्भटेऽपि धावन जातीमदनरादिरस्वादुक्तराटकैरित्युक्तत्वातः । अन्य तु कपायशब्द समासे विमासिर्हित पठन्ति तेपा मति कपायमामपूराफलम्, विल्ला-व्याध्यायाक्तशिक्तन्यादिशोधनकपायद्रव्य वा, अस्मिन् पन्न कपायद्रव्यादिभि यष्ट्याहान्तैस्तैलपाक कपायद्रव्यान्तर्गताया अपि जात्या पृथगिभभान भागद्वय-अहणार्थमित्यपि चदन्ति ॥ १७॥

> सुखोष्णाः स्नेहकवडाः सर्पिपस्त्रेवृतस्य वा । निर्य्यूहाश्चानिल्ञानां दन्तहर्पप्रमर्दना । स्नेहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नेहिकमेव च ॥ १८ ॥

दन्तमूलगतिचिकित्सितमभिधाय दन्तगतन्याधिचिकित्सामाह सुखोण्या इत्यादि— सुश्रुतस्य। स्नेहा सपिंस्तैलवसामन्जानस्तेषा व्यस्तानां समस्तानाञ्च,कवला गयवृषा सर्षिषस्त्रेवृतस्य वेति त्रैवृतसर्षिरपतानकचिकित्भाया सुश्रुतेनोक्षम् । श्रानिलङ्गाना-मिनि मद्रदार्वादिदशमूलादीना निर्य्युहः काथ ॥ १८ ॥

> श्रिंसन् दन्तम्लानि शर्करामुद्धरेद्भिपक्। लाक्षाचूर्येर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत्॥ दन्तहर्षिक्रयाञ्चापि कुर्यान्निरवशेपतः।

कपालिकाः कृञ्छुसाध्या तत्राप्येपा क्रिया हिता ॥१६॥ श्रहिसिन्नत्यादि — सुश्रुतस्य । दन्तमूल्हिमया हि श्रभिवातजा दन्तनाडी दन्तवातश्च स्यात् । कृञ्छुमाध्येत्यनेन कपालिकाया शीव्रप्रानिकर्त्तन्यता स्चयित । एषा क्रियेति दन्तहर्षोका कपालिकाया श्रपि वातजत्वात्, शर्करोकेत्यन्ये ॥ १६ ॥

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं किमिद्नतकम् । तथावपीडेर्वातमे स्नेहगण्डूषघारणैः॥ भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपै स्निग्धैश्च भोजनै ।

हिंगु सोष्णन्तु मतिमान् किमिदन्तेषु दापयेत् ॥२०॥

जयेद् विस्नावर्णैरिति विस्नावर्ण किमिद्गितरक्षस्य । अवपीडो नस्यभेद । वान्द्रोरिति वातद्मद्रव्यकृतैरपीति चक्र । अन्ये तु अवपीडो यद्यपि वातहरस्तथापि स्थानानुरोधात् क्रियने, विस्नावर्णादिकुापितरक्षशान्त्यर्थं वातहर कर्म कर्त्तव्यमिति दर्शियतु वातद्मेरितिस्तेहरगण्डूपादिविशेषण् कृत वाग्भटेऽप्येवमेवोक्षम् । हिंग्वि-त्यादी—सोष्णमिति ईपदुष्णम् ॥ २०॥

सञ्चर्यं दशनविधृतं दशनिक्रिमिपातनं प्राहु । चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेतु श्रुपिरस्य वा॥ २१॥

वृष्ठतीत्यादि — भूमिकदम्बोऽलम्बुष , पञ्चागुल परण्ड । स्तुक् स्तुही, दुग्धी चीराइ । चलमित्यादि — सुश्रतस्य । वाशब्दोऽवधारणे । स्थानमिति उद्धृतत्वन्तस्य समवस्थानम् । शुधिरस्येति क्रिमिकृताच्छिद्रस्य यावन्मात्र स्थान तावदेव दहेत् । स्थानशब्दोऽत्रापि योजनीय । भूरिदेशदुष्टौ समग्रस्यैव दन्तस्थानस्य दाह , पकस्थानदुष्टौ च शुधिरस्थानमात्रदाह इति ॥ २१ ॥

विदार्यादितेलम्

ततो विदारीयष्ट्याह्न-श्रङ्गाटककशेरुभि । तैलं दशगुर्णं चीरं सिद्धं नस्ये तु योजयेत्॥ २६॥ तत क्षादि—सप्टम्॥ २२॥

}

हनुमोक्ते समुद्दिष्टा कार्य्या चार्हितवत् किया।
फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्ताक्षं दन्तधावनम्।
तथातिकठिनान् भक्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत्॥ २३॥
सप्तच्छदार्कदुग्धाभ्यां पूर्णं क्रिमिदन्तजुत्।

जीवनीयेन दुग्धेन किमिरन्ध्रप्रपूर्णम् ॥२४॥
पूर्णं सूर्यक्तीरेण दन्तिकिमिविनाशनम् ॥२४॥
द्रोणपुष्पद्रव फेनमधुतैलसमायुतः।
किमिदन्तिविनाशाय कार्य्य कर्णस्य पूरणम् ॥ २६ ॥
पटोलकटुकाव्योप-पाठासैन्धवमार्गिकै ।
चूर्णैर्मधुयुतो लेप कवडो मधुतैलकै ॥ २७ ॥
जिद्धारोगेषु कर्चव्यं विधानमिदमौपधम् ।
मुस्तामधुकनिर्गुणडी-खिद्ररोशीरदाकिभः।
समिश्चिष्ठाविडद्गैश्च सिद्धं तैलं हरेत् किमीन् ॥ ४० ॥
नमुद्दिश रित पद शिद्देते।कतममस्तिविध्धर्यमाष्ठ । दन्तशवन दन्तकाष्ठम्

11 23-25 11

जिह्वारोग-चिकित्सा

श्रोष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् । कएटकेष्विनलोत्थेपु तत् कार्य्य भिषजा खलु ॥ २६ ॥ निहारोगिनिकिरमामाह श्रोष्ठत्यादि—प्रश्नुतस्य । कण्टको नारीति स्थातो

रोग ॥ २६ ॥

पित्तजेषु निघृषेषु नि स्रुते दुष्रशोणिते । प्रतिसारणगण्डूपा नस्यश्च मधुरं द्वितम् ॥ कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसूज स्तये । पिष्पल्यादिमधुयुतः कार्य्यन्तु प्रतिसारणम् ॥ ३०॥

निष्टेप्टिषिति शाखोटकादिपत्रै । मधुरमिति मधुरेण काकोल्यादिगर्शनैव कृत नस्यादित्रयमित्याद्र । लिस्तितिष्विति मण्डलाग्रादिना । असूज स्रये अवस्था-नाविराम इत्यर्थ । विप्पल्यादिरिति विप्पल्यादिगर्ण ॥ ३०॥

> युद्धीयात् कवलान् वापि गौरसर्पपसैन्धवै । पटोलिनम्ववार्त्ताकु ज्ञारयूपैश्च भोजयेत् ॥ ३१ ॥

श्रेतसंपर्तैन्यनाम्यान्च कवल उष्णोदकेन कार्यः । पटोलादिमिमोंजयेत्, तथा चारयूपेश्च मोनयेदिति । चारप्रधानकुलत्थादियूप चारयूप । तदुक्त-'शुष्कमूलकुल-

त्थादियुषा चारोत्तरा हिता । कुलक विल्वपत्रच वार्त्तांकुश्वाराने हितम् र हित ॥ १ १॥ जिह्वाजाङ्यं चिरजं माणकमस्मलवणतेलघर्षणं हन्ति । ईपत् स्तुक्त्वीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ३२ ॥

जिह्नाजाड्य जीन्तिसशकामिति लोके । ईपत्रस्तुक् वृतिय युक्त म्रचित यज्ज-म्बीरादिकेशरचर्वेणम् । चर्वणमित्यत्र वर्षणमित्यपि पाठ ॥ ३०॥

कर्कटाङ्बिर्चारपक्क-घृताभ्यक्केन नश्यति ।

दन्तशब्दः कर्कटाङ्घिलेपाझा दन्तयोजितात् ॥ ३३॥ कर्कटेत्यादौ—चीरसाधनपरिभाषया कर्कटपादेन साधित यत् चीर तत्पक-धताभ्यक्षेनेत्यर्थः । अभ्यक्षण्च दशनप्रदेशे अच्छामित्याहः । अन्ये तु कर्कटपादकल्क-चीराभ्या साधित यद्धत तेनाभ्यक्ष इत्याहु । दन्तशब्दो दन्तकडकडध्वनि ॥३३॥

> उपजिह्नान्तु संलिख्य ह्नारेण प्रतिसारयेत्। शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत्॥ व्योषद्गाराभयाविह्नचूर्णमेतत् प्रघर्षणम्। उपजिह्नाप्रशान्त्यथेमेतैस्तैलं विपाचयेत्॥३८॥

उपिनहामित्यादि—सुश्रुतस्य । मिल्येति शाखेटकादिपत्रेण । चारे-येति यवचारेण । उक्त हि नाग्मटे—उपिनहा परिस्नान्य थनचारेण धर्मयेत् । श्रन्य तु प्रतिमारणीयचारेयेत्याहु । पिमस्तैलिमिति न्योषादिभि कल्करूपैरित्यर्थ । जल चतुर्गुणम् ॥ ३४ ॥

छिन्नां घर्पेद्रतग्रुएडीं व्योषोग्राचौद्रसिन्धुजै । कुन्नोषणव वासिन्धु-कणापाठाप्तवैरिप । सत्तौद्रैर्भिषजा कार्य्यं गलग्रुएड्या विघषणम् ॥३४॥

क्षिन्नामित्यादौ — उम्रा बचा । कुष्ठीषणेत्यादौ — ऊषण मरिच, सव. कैवर्त मुस्तक । मिन्धुकणेत्यत्र सिन्ध्वरुखेति केचित् पठिन्त । अरुणा अतिविषा । वाग्-भटेऽप्युक्त — 'मारिचातिविषा पाठा वचाकुष्ठकुटन्नटम् । विन्नाया सपदुचौदैर्षर्षणम्' इति, एव सुश्रतेऽप्यायुर्वेदसारेऽपि ॥ ३५ ॥

उपनासान्यघो हन्ति गलशुगडीमशेषत । गलशुगडीहरं तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम् ॥३६॥ उपनामान्यभ इति—नासासमीपपती शिरान्यभ इत्यर्भ । नासाया शिरान् श्रवुविशति , तन्मध्ये नासिकाया श्रतिमन्निहिताश्रतस्र परिहार्यो । उक्त हि सुश्रुते—'' द्विदादशनामाया तामामीपनामिकाश्रतस्र परिहार्यो.'' इति ॥३६॥

बुग्रुत— दहादशनामाया तामामापनामकाश्चतक पारहाच्या. का गर्या वचामितिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् । नि काथ्य पिचुमदेश्च कवलश्च प्रयोजयेत् । चारिसिद्धेषु मुद्रेषु यूषाश्चाप्यशने हिताः ॥३७॥ वचामित्याहि—सुग्रुतस्य । पिचुमदां निम्न । चारिसिद्धेष्टिति शुष्कापा-मार्गोदिचारोदकसिद्धेषु ॥ ३७ ॥

कएठरोगचिकित्सा

तुरिडकेर्यभूपे कुर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे।
एप एव विधि कार्यो विशेष शस्त्रकर्मीण ॥२८॥

तुरिहकेर्यध्रुप रत्यादि—सुमृतस्य । कृर्म इति कच्छपरोगे । एप प्वेनि गलजुरक्योक्तविधिविशेष । शस्त्रकर्मयीति तुरुढीकेरीतालुपुप्पुटी मेघी, अपरे छेचा इति शेष ॥ ३८॥

तालुपाके तु कर्चव्यं विधानं पित्तनाशनम् ।

स्नेहस्वेदौ तालुशोपे विधिश्चानिलनाशन ॥३६॥

पित्तनाशन पित्तनणनाशनित्यर्थ ॥ ३६ ॥

साध्यानां रोहिणीनान्तु हितं शोणितमोत्त्रण्यः ।

हुईनं धूमपानञ्च गण्हूपो नस्तकर्म च ॥

वातिकीन्तु हृते रक्ते लवणे प्रतिसारयेत् ।

सुखोण्णान् स्नेहकवडान् धारयेच्चाण्यभीत्ण्यः ॥

पत्तद्वशकरात्त्रीद्वै पैतिकीं प्रतिसारयेत् ।

द्वालापक्षपककाथो हितञ्च कवलप्रहे ॥४०॥

माध्यानामित्यादि — सुम्रुतस्य । साध्यानामित्यादिना सन्निपात्तजाया असा-ध्याया व्यवच्छेद । लवगेरिति पश्चाम । पत्तङ्ग रक्षचन्द्रनम् ॥ ४० ॥

> श्रागारधूमकटुकै कफजां प्रतिसारयेत्। श्वेताविडङ्गद्रन्तीपु सिद्ध तैलं ससैन्घवम्। नस्तकर्मीणे दातव्यं कवलञ्च कफोच्छ्रये॥४१॥

श्रागारधूमेत्यादौ-श्रेता कटभी श्रपराजिता वा । श्रेतादिसैन्धवान्त कल्क , कवलन्नेति श्रेनादिसैन्धवान्तासिद्ध तैलेभव कवडमपीत्यर्थ ॥ ४१ ॥

> पित्तवत् साघयेद्वैद्यो रोहिर्शी रक्तसम्भवाम् । विस्नाव्य कराठशालुकं साधयेत्तारिडकेरिषत् । एककालं यवान्नञ्च भुक्षीत स्निग्धमल्पशः ॥४२॥

पित्तवदिति पित्तरोहिशोविद्यर्थ । विस्नान्येत्यत्र रक्षमिति शेष । एतच पूर्वेश मम्बध्यते । माध्यत् तुशिङकेरिवदिति तुशिङकेर्यामिष गलशुशिङकाविध्यति-देशात् साध्यत् गलशुशिङवदिति वाच्ये तुशिङकेरीविध्यतिदेशा नि शेषच्छेदनार्थं, गलशुर्यङीवदत्त श्रिमागच्छेदो न कार्य्यं इति वोध्यति ॥ ४२ ॥

> उपजिह्निकवचापि साध्येद्धिजिह्निकाम्। उन्नाम्य जिह्नामाकृष्य विद्यानाधिजिह्निकाम्। जुद्येन्मरुडलाग्रेस तीक्सोक्सैक्वसादिभि ॥४३॥

ह्रदयदित्यादि —नाग्मटस्य । तीच्णीव्यौर्लवयादिभिरित्यत उपाचरेदिति शेष । श्रादिशब्दाच् कवडादिपरिग्रह ॥ ४३ ॥

> एकवृन्दन्तु विस्नाव्य विधि शोधनमाचरेत् । गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च शस्त्रेण साधयेत् ॥४४॥

एकवृन्दिमित्यादि — सुश्रुतस्य। विस्नाव्यति जलौकादिमी रक्ष विस्नाव्यमित्यर्थः। शोधनमिति गलगतदेषशोधन प्रतिसार्यशिरोविरेककवलादिक, तथ्या कायशोधनञ्च वमनादिक, तस्यापि कायशोधनेन शिरोगतदेषस्यापि शोधकत्वात्। तञ्च शस्त्रेय माधयेदिति कठिनमल्पवेदनमपक गिलायु छेदयेद्। पक्षन्तु भेदयेत्। पूर्याने सार्यार्थं ततो द्वित्रयीयोक्षविधिना शोधनादिरत्रापि लभ्यते॥४४॥

श्रममें खुपकञ्च भेदयेद्गलविद्गिधम्। कग्ठरोगेष्वसङ्मोत्तस्तीत्त्णनस्यादिकमं च। काथपानन्तु दार्वीत्वङ्निम्बतार्त्तकर्तिगजम्। हरीतकीकषायो वा पयो मान्तिकसंयुत ॥४४॥

श्रममस्थिमित्यादि—सुश्रुते । गलविद्रिधरय त्रिदोषविद्रिधतुल्यत्वेनोक्षोऽपि चिकित्सितोपदेशात् साध्य इति शेय । श्रन्ये तु गलविद्रधेश्लिदोषविद्रिधतुल्यत्वे नोक्तत्वेऽपि चिकित्साविधान कृष्क्रमाध्यत्वे श्रेयम्। श्रयञ्च सर्वं गल व्याप्य समुत्थितो य इत्यसिधानन मर्मव्यापकोऽपि गलगतमर्माण मूलास्पदविरहादममं इत्युच्यते । किंना श्रममंस्थिमिति कियाविरोषणम् । श्रगम्मीरत्वेन मर्मोभ्यन्तर।स्परीय यथा स्यात् तथा भदयेदित्यथं । सामान्यकण्ठरोगचिकित्सामाह कण्ठरोगिवित्यादि—वाग्मटस्य । वाग्मटं किंश्य पाने तु दावित्वह्निम्बतार्षकित्वः ' इति पाठ । दार्वास्त्वक् , तार्ष्वं रसाञ्चनम् ॥ ४५ ॥

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकिंगका । गोसूत्रकथिता पेया कएठरागविनाशना ॥४६॥ कडकेत्यादि—स्पष्टम् ॥४६॥

कालकचूर्णम्

गृहधूमो यवकार पाठा व्योषरसाक्षनम् । तेजोह्ना त्रिफला लौहचित्रकञ्चेति चूर्णितम् ॥ सत्तौद्रं घारयेदेतद् गलरोगिवनाशनम् । कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तजिह्नास्यरोगनुत् ॥ ४७ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरै । सर्जिकाक्षारतुल्यांशैश्चूर्णोऽयं गएडरोगनुत्॥ ४८ ॥

कालकचूर्यं तेजोहा चवी, लौह काललौहचूर्यम् अगुरु वा । व्यवहारस्तु पूर्वेयेव । लौहस्याने लोशमिति केचित् पठन्ति । अस्य योगस्य लौहचूर्यरसाञ्चन-चूर्ययोगात् कृष्यत्वेन कालक इति सङ्घा, एव वद्यमार्यापीतकचूर्येऽपि मन शिला-दियोगात् पीतलेन पातकसङ्घा विधेया ॥ ४७—४८॥

पीतकचूर्णम्

मन शिला यवक्तारो हरितालं ससैन्धवम् । दार्वीत्वक् चेति तच्चूर्णं माक्तिकेण समायुतम् ॥ मूर्चिव्वतं घृतमगढेन कगठरोगेषु धारयेत् । मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्त्तितम् ॥ ४६॥

पीतक चूर्ये दानीत्विगिति षष्टीसमास । सृच्छितिमत्यालोडितम् । एतच्चूर्यं तथा कालकचूर्यं सर्वरिमन्नेव मुखरेगे धार्च्यम् । अतएवोक्त चरके — 'योगराजलयः प्रोक्ता वात्तिपत्तकपापहा , इति । प्रत्येकमेव कालकादयास्त्रदोषहरा इति चक्र-व्याख्या ॥ ४६ ॥

यवाग्रजं तेजवर्ती सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् । चौद्रेण कुर्याद् गुडिकां मुखेन तां घारयत् सर्वगलामयेषु ॥४०

यवाग्रजमिति—तेजवती ज्योतिष्मती, चवी इत्यन्ये । दारुनिशा दारु हरिद्रा ॥ ५० ॥

दशमूलं पिवेदुष्णं यूषं मूलकुलत्थयो । चिरेचुरसगोमूत्रद्धिमस्त्वम्लकाक्षिके ॥ विद्ध्यात् कवलान् वीच्य दोपं तैलघृतैरिप ॥ ४१ ॥ दशमूलिमत्यादौ—मूल मूलकशुण्ठकम् । चीरेत्यादि—मुश्रुतस्य । चीरा- विभिः प्रत्येक यथादोप कवडा कार्यां, एव तैलष्टतेरिप ॥ ५१ ॥

चारगुडिका

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः।
पलाशमुष्ककत्तारयवत्ताराश्च चूर्णिता ॥
गुडे पुराणे कथिते द्विगुणे गुडिका कृताः।
कर्कन्धुमात्रा सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मिन ॥
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्य्या स्युरमृतोपमाः॥ ४२॥

पञ्चकोलकेत्यादी—पत्र तेजपत्र, त्वक् गुडत्वक् । सुष्कको घरटापारुली । स्रत्र समुदितचूर्यात् द्विगुर्यो गुड । कथित इति बिह्नसयोगात् द्रवीभूते, कर्कन्धु-मात्रा स्रष्टमायकमाना ॥ ५२ ॥

म्त्रस्वन्नां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठवालकै । श्रभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ४३॥

मूत्रत्यादौ--शिवा हरीतकी, मधुरी मधुरिकैय । अभ्यस्यन्निति मच्चय विधया । विरमता वैरस्यम् ॥ ५३ ॥

> वातात् सर्वसरं चूर्णैर्लावणै प्रतिसारयेत्। तैलं वातहरै सिद्धं हितं कवद्धनस्ययोः॥ ४४॥ वातादित्यादि—सुश्रतस्य। सर्वसरो सुखपाकः। लावणैरचूर्णैरिति सैन्धवः

चूर्णे श्रन्य तु लवणा ज्योतिष्मती तद्भव लावणमित्याहु । निश्चलस्तु पञ्चलवण-चूर्णेरित्याह । वातहरे सिद्धमिति मद्रदावीदिमिस्तु कल्जकाथरूपे ॥ ५४॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य दिहिनः। सर्विपित्तहर कार्य्यो विधिमधुरशीतल ॥ ४४ ॥

शुद्धकायस्येति विरेकेण वयनेनापि, कफस्थानगतत्वेन पित्तस्यापि वमनाई-त्वात । मधुरशीतल इति विशेषणार्थमुक ॥ ५५ ॥

प्रतिसारग्रग्रहूपान् धूम संशोधनानि च । कफात्मके सर्वसरे कम कुर्यात् कफापहम्॥ ४६॥ प्रतिमारण इत्यादिना कफजमर्वमराचिकित्मामाह कम कुर्यात् कफापह-

मिति—अनुक्रकफापहमिति अनुक्रकफहरविधिसग्रहार्थमुक्तम् ॥ ५६ ॥

मुखपाके शिराभेद शिर कायविरेचनम्। कार्य्यन्तु चहुघा नित्यं जातीपत्रस्य चर्चणम्॥ ४७॥

मुखपाके शिरामेद इति—शिरामेदस्तु तालुनि अधोजिहिकाया वा कार्य्य । शिरोविरेचन कायविरेचनन्न वहुधा कार्य्यमिति योज्यम् । नित्यमिति तु परेण सम्बध्यते ॥ ५७ ॥

जातीपत्रामृताद्राचायासदावीफलित्रिकै । काथः चौद्रयुत शीतो गएडूपो मुखपाकनुत् ॥ ४८ ॥ जातीपत्रेति—जाती मालती, तस्या पत्रम्, अमृता गुढूची, यासे। दुरालमा, दावी दारहरिद्रा । यासस्थाने पाठेति केचित् पठन्ति ॥ ५८ ॥

> कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवाणां चूर्णतस्त्र्यहात् । मुखपाकत्रणक्केददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ४६॥

कृष्णजीरकेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ५६ ॥

रसाक्षनं लोधमधामयञ्च मन शिला नागरगेरिकञ्च। पाठा हरिद्रा गजिपपाली च स्याद्धारणं त्तौद्रयुतं मुखस्य ॥६०

रसाञ्चनभित्यादी—नैरिक त्वर्णंगरिकम् ॥ ६० ॥ पटोलिनम्बजम्ब्बाम्रमालतीनवपस्नवा । पञ्चपस्रवजः श्रेष्ट कपायो मुखधावने ॥ ६१ ॥ पटोलेत्यादि--पटोलादीना पञ्चवा ॥ ६१ ॥

पञ्चवत्ककषायो वा त्रिफलाकाथ एव वा।
मुखपाकेषु सत्तौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥
स्वरसः कथितो दार्व्या घनीभूतो रसिक्रया।
सत्तौद्रा मुखरोगास्नुदोषनाडीव्रणापहा ॥ ६२ ॥

पञ्चवल्केत्यादौ—सर्जाद्र इत्युभयत्रापि सम्बध्यते । स्वरस इत्यादि—अय थोग आस्ये धार्य्यः । वाग्भेट तु गैरि कमप्यत्र योगे पष्ट्यते, यथा—" स्वरस कथितो दार्व्या वनीभूत संगैरिक । आस्यस्थ समधुर्वक्त्रपाकनाडीव्रणापद्द " शित ॥ ६२ ॥

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्षकरोहिणीभिः। यष्ट्याहराजद्रुमचन्दनेश्च काथं पिवेत् पाकहरं मुखस्य ॥६३॥

सप्तच्छ्रदेति—सप्तच्छद शारदी, तिकरोहिणी कडकी, राजद्वम आरग्वध ॥६३॥ पटोलशुराठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्काद्विनिशानतानाम्। पीत कपायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चास्यगदानशेषान् ६४ पटोलेत्यादी—जायन्ती त्रायमाणा ॥ २७॥

> कथितास्त्रिफलापाठामृद्धीकाजातिपल्लवाः। निषेव्या भक्तग्रीया वा त्रिफला मुखपाकहा॥ ६४॥

कथिता रत्यादी—निषेग्या इति पानगण्डूषाभ्यामुपयोज्या इत्यर्थ. । भक्तणीयेति परेण सम्बध्यते; तेन लेहादिविषया त्रिफला भक्तणीया वेत्यर्थ. ॥६५॥

तिला नीलोत्पलं सिपः शर्करा चीरमेव च। सत्तौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहपाकनुत्। तैलेन काञ्जिकनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा॥ ६६॥

तिला इत्यादि—एतैर्गण्डूप इत्यर्थ । सन्नौदा इति प्रत्येकममो सन्नौदा योगा इति निश्चल । दग्धवनत्रस्येति शम्बूकराङ्कचूर्णादिनेत्यर्थ ॥ ६६ ॥

> घनकुष्ठैलाधान्यक-यष्टीमध्वेलवालुकाकवड । वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालगुनगन्धञ्च ॥ ६७॥

धनकुष्ठलेत्याहि-योगमत्र केचित् पठिन्त, तदयुक्तम्, वृष्याधिकारे श्रस्य योगन्य बच्यमाखत्वात्। निश्चलेन तु श्रमादुभयत्राय योग पठिनो व्याख्यातश्च॥६०॥

महासहचरतेलम्

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्मन संश्रपयेद् यथावत् । पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरईपलप्रयुक्ते ॥ कल्कैरनन्ताखिदरेरिमेटजम्ब्बाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् । नत्तैलमाश्वेव घृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विद्घाति सद्य ॥६=॥

तुलामित्यादि—नीलमहाचरी नीलिभियटी । चतुर्मागरम इति चतुर्थमौग-रमे । अनन्ता अनन्तमूलम् ; दरिमेटो विट्खदिर , तदमावे खदिरमेव दिगुण गृहन्ति ॥ ६८ ॥

इरिमेदाद्यं तैलम्

इरिमेद्त्वक्पलशतमिनवमापोथ्य खर्डश कृत्वा।
तोयाढकंश्चतुर्मिनि काथ्य चतुर्थशेषेण्॥
काथेन तेन मितमांस्तैलस्यार्डाढकं शनैविंपचेत्।
कल्कैरलसमार्शमिलिष्ठालोध्रमधुकानाम्॥
इरिमेद्खिष्टरकदफललालान्यशोधमुस्तस्वमेलाकर्प्रागुरुपद्मकलवद्गककोलजातीफलानाम्॥
पनंगगैरिकवराद्गजकुसुमधातकीनाञ्च।
सिद्धं मिपिग्वद्ध्याद्द्रं मुखोत्थेषु रोगेषु॥
परिशीर्णदन्तविद्रधि-शेशिरशीताद्दन्तहर्पेषु।
किमिद्न्तदालनचिलतप्रहप्रमांसावशीर्थेषु।
मुखदौर्गन्ध्ये कार्थ्य प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलिमद्म् ॥३२॥
श्रित्त्विलार्दा—पंद्रीत प्रकाष्ट्य, जाती नातीकोष, फल जातीफलन्,

इरिनेदलगिलादी—पद्मान पद्मकाष्टन्, जाती जातीकीप , फल जातीफलस् , पत्तइ स्नचन्दनम्, बराइ गुडलक् , गजकुसुम नागकेशरम् । परिशीर्यदन्ती इन्तरीगमेद । विद्विर्थनलिवद्विष । दालनो दालनवद्यथायोगात् । श्रृष्ट्यमासोऽधि-मास । अवशीर्योऽवशीर्यमाम ॥ ६६ ॥

लाचाद्यं तैलम्

तैलं लाद्धारसं द्वीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत्।
चतुर्गुणेरिमकाथे द्रव्येश्च पलसम्मिते ॥
लोधकदफलमिश्चष्टा-पद्मकेशरपद्मके.।
चन्दनोत्पलयष्ट्याद्वेस्तेलं गर्ग्डूपधारणम् ॥
दालनं दन्तचालञ्च द्रनुमोद्यं कपालिकाम्।
शीतादं पूतिवक्त्रञ्च श्रक्षाचे विरसास्यताम्॥
द्रन्यादास्यगदानेतान् कुर्योद्दन्तानिप स्थिरान्॥ ७०॥
तैलिमत्यादी—लाक्षाया रस काथ, इरिमकाथ, इति इरिमेदकाथ, षढ्गुणोऽय पाक । द्रनुमोद्यो दन्तरोगिवशेष । उन्त दि सुश्रते—'वातेन तैस्तैमांवैस्तु
दनसन्थी विषद्विते। द्रनुमोद्य इति हेशो व्याधिक्षित्तलक्षणे रहित । अयस्र दन्त-

गुणोऽय पाक । हनुमोचो दन्तरोगिवशिष । उक्त हि सुश्रते—'वातेन तैस्तैमविस्तु हनुसम्भौ विषष्टिते । हनुमोच इति हेयो व्याधिवैद्धितलक्षण 'इति । अयस्र दन्त-देशसामीप्यात् दन्तपीडाजनकत्वाच दन्तरोगमभ्ये सुश्रुतेन पठितः । चन्द्रोट हर्नु-मोच्च इत्यपपाठः । ७०॥

वकुलाद्यं तैलम्

वकुलस्य फलं लोधं वज्रवल्ली कुर्गटकम् । चतुरहुलबब्बेल-वाजिकर्गेरिमाशनम् ॥ एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पकं मुखे धृतम् । स्थैर्थ्य करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥ ७१ ॥

वकुलाधे-वजनही अस्थिमहार , कुरण्टको नीलामिण्टी, चतुरगुल आर-ग्वध ,वन्दोल तुलसी वासु हित स्थात ,वाजिकर्ण शालभेद , अशन पतिशाल , चलतामिति षष्टीवहुवचनम् ॥ ७१ ॥

सहकारगुडिका

प्लालतालवानिकाफलशीतकाष-कोलद्विकानि खदिरस्य कृते कषाये। तुल्यांशकानि दशभागमिते निधाय प्रोद्भिन्नकैतकपुटे पुटवद्विपाच्य॥ धनकुष्ठेलेत्यादि-योगमत्र केचित् पठन्ति, तदयुक्तम् , वृष्याधिकारे अस्य योगम्य वद्यमाणुत्वात्। निश्चलेन तु अमादुभयत्राय योग पठितो व्याख्यातश्च ॥६७॥

महासहचरतैलम्

तुलां भृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसं संश्रपयेद् यथावत् । पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रयुक्ते ॥ कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेदजम्ब्बाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् । तत्तैलमाभ्वेव भृतं मुखेन स्थैर्म्यं द्विजानां विद्धाति सद्य ॥६८॥

तुलामित्यादि—नीलमहाचरो नीलिमायटी । चतुर्मागरम इति चतुर्थमोग-रमे । अनन्ता अनन्तमूलम् ; इरिमेटो विट्खदिर , तदमावे खदिरमेव द्विग्रय गृह्वन्ति ॥ ६८ ॥

इरिमेदाद्यं तैलम्

इरिमेद्द्वक्पलशतमिनवमापोथ्य खएडश कृत्वा।
तोयाढकैश्चतुर्मिनिं काथ्य चतुर्थशेषेण्॥
काथेन तेन मितमांस्तैलस्यार्डाढकं शनैविंपचेत्।
करकैरच्नसमांशैर्मिश्चष्ठालोध्रमधुकानाम्॥
इरिमेदखदिरकद्फललाचान्यशोधमुस्तस्दमेलाकर्पूरागुरुपद्मकलवद्गककोलजातीफलानाम्॥
पत्तंगगैरिकवराद्गजकुसुमधातकीनाव्व।
सिद्धं मिपाग्वद्ध्याद्दं मुखोत्थेषु रोगेषु॥
परिशीर्णदन्तविद्रधि-शशिरशीताद्दन्तहर्पेषु।
किमिदन्तदालनचलितप्रहृप्रमांसावशीर्णेषु।
मुखदौर्गन्थ्ये कार्य्य प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलिमदम्॥३२॥
इरिमेदलिगलादौ—पंग्नित पद्मकाष्टम्, जाती जातीकोष, फल जातीफलम्,
पच्च रक्तचन्दनम्, वराङ्ग गुडलक्, गजकुस्न नागकेशरम्। परिशीर्णदन्तो।
दन्तरोगमेद । विद्विभंतविद्विध । दालनो दालनवद्यथायोगात्। प्रहृप्टमासोऽधिमास । अवशीर्थोऽनशीर्थमाम्॥ ६६॥

लाचाद्यं तैलम्

तेलं लाज्ञारसं ज्ञीरं पृथक् प्रश्नं समं पचत्।
चतुर्गुणोरिमकाथे द्रव्येश्च पलसम्मिते ॥
लोधकर्फलमिखिष्ठा-पन्नकेशरपन्नकेः।
चन्दनोत्पलयण्ट्याह्नेस्तेलं गराङ्क्षघारणम् ॥
दालनं दन्तचालञ्च हनुमोन्नं कपालिकाम्।
शीतादं पूतिवक्त्रञ्च श्रकाचिं विरसास्यताम्॥
हन्यादास्यगदानेतान् कुर्योद्दन्तानिप स्थिरान्॥ ७०॥
तैलिमित्यादौ—लाज्ञाया रस काथ, इरिमकाथ, इति इरिमेदकाथ, षद्गुणोऽय पाक । हनुमोन्नो दन्तरोगिवरोष । उक्त हि सुश्रते—'वातेन तैस्तैमिन्सित्
हनुसन्थौ विषद्विते। हनुमोन्न इति क्षेयो व्याधिभीद्वतलच्या ' इति । अयञ्च दन्तदेशसामीप्यात् दन्तपीढाजनकत्वाच्च दन्तरोगमभ्ये सुश्रतेन पठित । चन्द्राटे हनुमोन्न इत्यपपाठः ॥ ७०॥

वकुलाद्यं तैलम्

वकुलस्य फलं लोधं वज्रवल्ली कुरल्टकम् । चतुरङ्गुलवव्वोल-वाजिकर्णेरिमाशनम् ॥ एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पकं मुखे धृतम् । स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥ ७१ ॥

वकुलाचे-वज्रविश्ली अस्थिसहार, कुरण्टको नीलाफिण्टी, चतुरगुल आर-ववध, वब्बोल: तुलमी वाबुर इति ख्यात, बार्निकर्ण शालमेद., अशन पतिशाल, चलतामिति षष्ठीवहुवचनम् ॥ ७१ ॥

सहकारगुडिका

प्लालतालवानिकाफलशीतकोष-कोलद्विकानि खदिरस्य कृते कपाये। तुल्यांशकानि दशभागमिते निघाय प्रोद्भिन्नकैतकपुटे पुटवद्विपाच्य॥ प्रागंशतुल्यशिशनाथ तदेकसंस्थं पिष्ट्वा नवेन सहकाररसेन हस्तौ । लिप्त्वा यथाभिलपितां गुडिकां विदध्यात् स्त्रीपुंसयोर्वदनसौरभबन्धुमूताम्॥ ७१॥

प्लेत्यादि — लताकस्तूरी, लवनिका तवक , फल जातीफलम , शीत कर्पूरम् , कोषा जातीकोष , कोल कक्केलम् , दिकमगुरु । एलादीना तुल्यारा , एपा मिलिताना एकमागोपचया दशमागपिरिमिते खिदरकाथ इत्वर्थ । प्रोद्धिन्न केतकपुट इति विकासितकेतकपत्रकृतपुटके खादिरकाथाले। वित्रमेलादिचूर्य निधाय पुट-विधिना मनाक् विपाच्य तत शीतीकृत्य प्रथमगृष्टीतकपूरमानवदपर् तद्गृहीत्वा तेन पक्षचूर्योपिरहेन सह एकोकृत्य पिष्टुकत्र स्थाप्यम् । ततोऽभिनवच्युतवृन्तानियांमिन हस्ती लिप्ता यथेष्ट गुहिका कार्या इति ॥ ७२ ॥

स्वल्पखदिरवाटिका

खदिरस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् । शेष अध्यागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ जातीकपूरपूगाणि कक्कोलकफलानि च । इत्येपा गुडिका कार्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी । दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्याताल्वामयेषु च ॥ ७३॥

खिदरसेत्यादौ — जाती जातिकोष , पूरा पूराफलम् , फलाजि जातीफलाति एपा चूर्णांना प्रत्येक पलम् , वस्यमायखिदरविकाया पलाशिकानीतिदर्शनात । अन्ये तु वस्यमायखिदरविकाया तुलात्रयनिष्पाधकाथे यावच्चूर्यमुक्त तावतो रिलि-तचूर्णां तृतीयमार्गनेपा मिलितानां आह्मम् , प्रतत्काथस्य तुलैकनिष्पाधत्यादित्यादुः ॥ ७३॥

बृहत्खादिरवाटिका
गायित्रसारतुलयेरिमवल्कलानां
सार्छ तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भि ।
नि काथ्य पादमवाशिष्टसुवस्त्रपूतं
भूयः पवेदय शनैर्मृहुपावकेन ॥

तास्मन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्रुद्णं चिपेच कवडग्रहभागिकानाम्। एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बु-श्यामातमालविकषाघनलोहयष्टी॥ लज्जाफलत्रयरसाञ्जनघातकीभ-श्रीपुष्पगैरिककटङ्कटकट्फलानाम् । पद्माह्नलोध्रवटरोहयवासंकानाम् मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम्॥ फकोलजातिफलकोषलवङ्गकान<u>ि</u> चूर्णीकृतानि विद्धीत पलांशिकानि। शीतेऽवतार्थ्य घनसारचतु पलञ्च निप्त्वा कलायसदशीर्वेटिका प्रकुर्यात्॥ शुष्का मुखे विनिद्दता विनिवारयन्ति रोगान् गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान्। कुर्य्युर्भुखे सुरभितामरुचिश्च हन्युः स्थैर्च्य परं दशनगं वदनापद्धत्वम् ॥ ७४ ॥ इति मुखराग-चिकित्सा॥

गायत्रीत्यादौ — गायत्रिसार खदिरसार , तस्य तुलया सार्क इरिमेदवल्क' लाना विट्खादिरत्वचा तुलायुगलिमत्यर्थ, घटो द्रोणः । कवडप्रहमागिकानामिति प्रत्येक कर्षमानानाम् । अप्रणालमुशीरम् , चन्दन रक्षचन्दनम् , अम्बु वालकम् , श्यामा प्रियगु , तमाल तमालपत्रम् , विकषा मिलाष्टा, घन मुस्तकम् , लौहम- गुरु, यष्टी यष्टिमधु, लज्जा वराहकान्ता, इमो नागकेशरम् , श्रीपुष्प पुग्दरीकम् , कटद्वटो दारुहरिदा, पद्माह्म पद्मकाष्टम् , सुराभि शहकी । वेष्टक कुन्दुरिति ख्यातम् , राक्षित्यन्ये, मूर्वेत्यपरे । वल्कमिति पाठे वल्कल गुडत्वक् । जातीफलकोष इति जाती- फल जातीकोषञ्च, घनसार कर्पूरम् । अपदत्व जाड्यराहित्यम् ॥ ७४॥

इति मुखरोग-चिकित्सा विवृति.।

अथ कर्णराग-चिकित्सा

कपित्थमातुलुङ्गाम्ल-श्टङ्गवेररसै श्रुप्तैः। सुखोष्णै पूरयेत् कर्ण कर्णग्रुलोपशान्तये॥१॥

मुखरागेषु जिह्नाश्रयरागा उक्ता , जिह्ना चेन्द्रियाधिष्ठानमत इन्द्रियाधिष्ठान-गतरोगचिकित्साप्रसङ्गात् कर्णरोगचिकित्मितमुच्यते । किपत्थेत्यादि — मुश्रुतस्य । किपत्थस्य फलम् , एवं मानुज्जनस्यापि, श्रम्लेति विशेषणात् सुपक्षफल ब्राह्मम् । बाशब्दस्य किपत्थादिभिरन्वय एते च त्रयो योगा ॥ १॥

> श्टइवेरश्च मधु च सैन्धवं तैलमेव च। कदुण्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम्॥२॥

श्वक्षेरिमत्यादि —श्वक्षेवरस्वरसमापकचतुष्टयम्, मधुनो मापकद्रयम्, सैन्ध-वरिक्तकामेकाम्, तैल तिलज मापकद्दव गृद्दीत्वा सर्वमालोक्य कदुष्य कृत्वा कर्षे पूरवेत्॥ २॥

लश्चनार्द्रकशिष्र्णां सुरङ्गया मूलकस्य च । कदल्या स्वरसः श्रष्ट कदुष्ण कर्णपूरणे॥ समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाष्यवचूर्णयेत्॥३॥

लशुनेत्यादि—सुश्रुतस्य । सुरङ्गो रक्षशोमाञ्जनम् , कदली कदलीवागुडा, तस्याः स्वरस । यते च लशुनस्वरसादयो व्यस्ता समस्ता वा बोध्या । पूर्वोक्त-स्याप्यार्द्वकरसस्यापि पुनरुपादान समस्तपचे सप्रयोजनमेव । युक्तयेति प्रथम तैलेन कर्णे अचित्वा ततोऽवचूर्णनमिति युक्त्यथं इति केचित् । अन्य तु शक्तेन कर्णे पूर्वित्वा ततो मसुद्रफेनेनावचूर्णनमिति युक्त्यथंमाहु , युक्तज्जेतत् , यदाह वाग्मट — युक्तेन पूर्वित्वा सिन्धुफेनेन वावचूर्णयेत् ।" अत्यत्व ससुद्रफेनेयुक्तेनिति पाठान्तर सुश्रते केचित् पठन्ति, तन्मते मसुद्रफेनयुक्तेनिति पद पूर्वेक्तशुक्तविशेषणम्, सुश्रते हि पतरमात् पूर्वे 'कर्णों कोष्योन शुक्तेन पूर्वेत् कर्णश्रिन " इत्युक्तम् । अस्मिन् पत्ते युक्त्येति अस्य मात्रया इत्यर्थः ॥ ३॥

त्रार्द्रकस्यावर्त्तशोभाञ्जनमूलकस्वरसा । मधुतैलसैन्धवयुता पृथगुक्ता कर्णशूलहरा ॥ ४॥ भाईकेत्यादी—शोभाञ्जन शोभाजनमूलम् , मूलकन्तु मूलककन्दम् । एते कदुष्णीकृत्योपयोज्या । श्रतएव पृथगुक्ता इत्यत्र पृथगुष्णा इति पाठान्तर केचित् पठन्ति ॥ ४ ॥

शोभाञ्जनकानिर्धासितलैतेलेन संयुत ।
व्यक्नोष्ण पूरणः कर्णे कर्णश्चलोपशान्तये ॥
श्रष्टानामिष मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन च ।
कोष्णेन पूरयेत् कर्णों कर्णश्चलोपशान्तये ॥ ४ ॥
शोभाञ्जनेत्यादि—शोभाञ्जनिर्यासः शोभाञ्जनस्वन्म ॥ ४ ॥
श्रश्यत्थपत्रखल्वं वा विधाय वहुपत्रकम् ।
तेलाक्रमद्गारपूर्ण विद्ध्यात् श्रवणोपिर ॥
यत् तैलं च्यवते तस्मात् खल्वादद्गारतापितात् ।
तत् प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ६ ॥
श्रश्यत्यादि—सुश्रतस्य । श्रश्यत्यपत्रैर्वहुभिस्तेलाक्षेरचुिल्लका कृत्वा सरन्धाः
कृत्वा तदुपीर ज्वलदद्गार विन्यस्य कर्णयोष्टर्गरे धारयेत् , तत पतिततैलेन कर्ण-पूरणम् । पित्तानुवन्धे तु सिर्देय तैलेस्याने विदेहसवादात् ॥ ६ ॥

श्रर्कपत्रपुटे दग्धस्तुहीपत्रभवो रस । कदुष्ण पूरणादेव कर्णश्रुलीनवारण ॥ ७॥

श्रकंपत्रेत्यादि—स्तुद्दीपत्रमकंपत्रेख वेष्टियत्वा तदनु स्तुद्दीपत्र दग्ध्वा चोद यित्वा तद्देमन कर्णयो पूर्विमत्युपदेशः ॥ ७॥

दीपिकातैलम्

महत पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टांगुलानि च।
क्षौमेणावेण्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेचतः॥
यत् तैलं च्यवते तेभ्य सुखोण्णं सम्प्रयोजयेत्।
क्षेयं तदीपिकातैलं सद्यो गृह्वाति वेदनाम्॥
पवं कुर्योद्भद्रकाष्टे कुष्टे काष्टे च सारले।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्णश्रुलनिवारणम्॥ =॥

महत इत्यादि - सुश्रुतस्य । पत्रमूलस्येति विल्वादीनामन्यतमस्य । श्रष्टा-

गुलानीति अग्रभागे अष्टागुलानि व्याप्य चैमिख वेष्टन कार्य्यमित्यर्थ । तेन तत्-काष्ठमष्टागुलाधिक कार्य्यम् । वृद्धास्तु अष्टादशागुलामिति पञ्चमूलकाष्ठ गृहीत्वा तस्याग्रमागेऽष्टागुल व्याप्य तैलाक वस्त्र बद्ध्वा प्रज्ज्वाल्य ततो गलिततेलेन कर्य-पूर्य कुर्वान्त । स्तल्पवाग्भटे तु अष्टागुलादिपरिमाख नोक्तम्, यथा—" महत पञ्चमूलन्य काष्ठात् चौमेख विष्टितात् । तैलिसिकात् प्रदीपाश्रात् स्नेष्ट मधोहजाहर ' इति ॥ = ॥

श्चर्कस्य पत्र परिखामपीतमाज्येन लिसं शिखिनावतप्तम् । श्चापीड्य तोयं श्रवेण निषिक्षं निहन्ति श्रूल बहुवेदनश्च ॥६॥ श्वकंस्थेत्यादी—परिणामपीतिमिति । कालप्रकर्षेण पाकवशात् पीतवर्णं शिखिना बह्विना श्रवतप्त स्विन्नामित्यर्थं । तोयिमिति रस बहुवेदनिमिति नानाविध-तादमेदादिवेदनासिहतम् ॥ ६ ॥

तीवग्रलान्विते कर्णे सग्रव्दे क्लेदवाहिनि। यस्तमूत्रं चिपेत् कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम्॥ यंशावलेखसंयुक्ते मूत्रे वाजाविके भिषक्। तैलं पचेत् तेन कर्णे पूरयेत् कर्णग्रलिन ॥ १०॥

वरोत्यादि—सुअतस्य । वराावलेखो वशावलेखनी, तस्या कल्कम्, मूत्रे चाजाविक इति आजे वा आविके वा मूत्रे पचेदित्यर्थ । यदाह—'' वशा-वलेप्पान्त्येन मूत्रे वाजे तथाविके । पचेत् तैल रुज शान्ये कर्णयो पूर्ण भिप्क्'' इति विदेहवचनात् इतमप्यनेन विधिना पक्तव्यम् ॥ १०॥

हिंगुतुम्बुरुशुराठीभि साध्यं तैलन्तु सार्पपम्। कर्णशले प्रधानन्तु पूरणं हितमुच्यते ॥ ११ ॥ हिड्नित्यादौ—साध्यमिति जल चतुर्ययेन ॥ ११॥

चारतैलम्

वालमूलकश्चरठीनां ज्ञारो हिंगु सनागरम्। शतपुष्पा वचा क्कुष्ठं दारु शिश्च रसाञ्जनम्॥ सौवर्चलं यवज्ञार सर्जिकोद्भिदसैन्धवम्। भूर्जप्रन्थिविडं मुस्तं मधुश्चक्तं चतुर्गुणम्॥ मातुलुङ्गरसश्चेव कदल्या रस एव च।
तैलमेभिर्विपक्षन्यं कर्णश्चलहरं परम् ॥
वाधिय्यं कर्णनादश्च पृयास्रावश्च दारुणः।
पूरणादस्य तैलस्य किमयः कर्णसंश्रिताः ॥
लिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात्।
सारतेलिमदं श्रेष्ठं मुखदन्नामयापहम् ॥
मधुप्रधानं श्रुक्षन्तु मधुश्चक्रं तथापरम्।
सम्बर्भाग्रेडं विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत्।
मासेन तज्ञातरसं मधुश्क्रमुटाहतम् ॥ १२॥

वालमूलकेत्यादी—मधुमुक चतुर्गुणिमिति मध्यलिकत गुक्त मधुमुक्तन् । पतेन प्रत्य तप्डलतीयन इत्युक्तस्य मधुरहितमुक्तस्य निषेष । यहरान्तु यन्मस्त्वादि मुची भाएड इत्यादिनोक्तस्य, तथा वन्बीरस्य फलिमत्यादिना भनन्तरमेव वन्धमाणस्य वा हयन् । पनदेव मधुप्रधानं मुक्तिमत्यादिना वन्धिन । भ्रत्ये तु मध्विति च्छेदः, तेन मधुन कन्चलम्, मुक्तस्य चतुर्गुरालेश्वत्यर्थः। अपरे तु मधु चतुर्गुणं मुक्तञ्च चतुर्गुरानित व्याचवते । पनन्मनद्रयमि नोपपधते, मनानतन्त्रे चनुकर्ये तु मधुनोऽप्य-पाठत्वात् । मातुलुङ्ग-करलीवागुरान्वरसौ तु तैलसमौ चत्कर्णसवादात्, भतः पद्गुरा पाकः। भ्रत्ये तु वाग्मद्रमंत्रादात् मातुलुङ्गद्वत्वत्याः भत्येकं चतुर्गुणलमाद्वः, भनो हि मधुमुक्त चतुर्गुण मातुलुङ्गस्य तदत्करलीरन्तरस्य प्रत्येकं चतुर्गुणलमाद्वः, प्रतिदेधवत् । व्यवहारस्तु पूर्वेणव । जन्वीरस्यति वन्बीरफलरसस्य द्वात्रिशत्यलानि, पिप्पलीमूलस्य चत्वारि, मधुनोऽष्टी पत्नानि इति वृद्धवैद्योपदेशात् मानकन ॥१२॥

कर्णच्वेडे कर्णनादे कटुतैलेन पूरणम्। नाद्वाधिर्ययोः कुर्याद्वातश्चलोक्तमौपधम्॥ १३॥ कर्यचेड इलाडी—कटुतैल सार्षपंतलन् ॥ १३॥

अपामार्गचारतेलम्

b

मार्गचारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम्। श्रपहरति कर्णनादं वाधिर्यञ्चापि पूरणतः ॥ १४॥ मार्गेलादि—नार्गोऽपामार्गः। श्रपामार्गचारपलानि षोडम, द्रवदेशुण्यात् जलस्य चतुर्विरातिगरावा , एकविंशतिवारान् परिस्नान्य । अत चारजलात् पोडश गरावा आद्या । तत्कृतकल्केनेति अपामार्गकृतचारकल्केन । स च तंलरोपभयाच्य-लेनालेख्य तंले देय , यदा तु पिण्डीभृतात् कल्क तंल सम्यक् पृथग्भृत दृश्येत्रे, तदेव तंल पात्रान्तरे कृत्वा आद्यम् , न तु कल्को गालनीय , चारमिश्रितभयात् । अन्ये तु समामान्तर्भृतमिप मार्गपर्दं तच्छन्देन समाकृष्य अपामार्गमृतमेव कल्कमाहु ॥ १४॥

सर्जिकाचारतैलम्

सिंजना मूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णां महौपधम् । शतपुष्पा च तस्तिलं पकं शक्तचतुर्गुणम् । प्रणाटशूलवाधिर्यं स्नावञ्चाशु व्यपोहति ॥ १४॥ सिंजनाचारतेलन—सप्टन् ॥ १५॥

दशमूलीतेलम्

द्शमूलीकपायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् । पतत् करुकं प्रदायैव वाधिय्वे पर्मोपधम् ॥ १६ ॥ दशमूलीतंतम्—सप्टम् ॥ १६ ॥

विल्वतेलम्

फलं विट्वस्य मूत्रेण पिप्द्वा तैलं विपाचयेत्। साजाचीरं तद्धि हरेद्वाधिर्यं कर्णपूरणे ॥ १७ ॥

फलमिलादी—मूत्रेखेलम्य पिष्ट्वेल्यनेन तथा पाच्येदिल्यनेन सम्बन्ध । पाच्येदिल्येनेनव ना, तद्का तन्त्रान्तरे 'वित्वगर्भ पचेत् तैल गोम्त्रानपयोऽन्वि-तम् । वाधिर्य्य पूरेयत् तेन कर्णी सकफवातजी' इति । श्रत्रानाद्वीर तैलमम गोम्त्र त्रिप्रण चतुर्गुण वेलाहु. ॥ १७॥

एप एव विधि कार्य्य प्रणादे नस्यपूर्वक ।गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुमयोरिप ॥ १८ ॥
एप प्वेति विधिवीधियाँहर । उमगोरिप वाधियांकणनादयो ॥१८॥
चूर्ण पञ्चकपायाणां कपित्थरससंयुतम् ।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ १६॥

कर्णस्राविचिकिस्मामाह चूर्णमिलाटि—सुश्रुतस्य। पत्रकषायाणा पद्मवल्क-लाना चूर्णम्। उक्ष हि वाग्मटे—'पञ्चवल्कलचूर्णञ्च कपित्थस्वरमान्वितम्। मधुना योजित ह्न्यात् कर्णस्राव प्रपूरयेत्' इति। अन्ये तु पञ्चकषायशब्देन सौश्रुतमेव कर्णस्रावोक्ष तिन्दुकादिपञ्चकमुच्यते, यथा—'तिन्दुकान्यमया लोध समङ्गामलक तथा। पूरणञ्चात्र पथ्य स्यात् कपित्थरसयोजितम्' इति। न च तयोरिप वचनयो सौश्रुतत्वेन पौनरुक्त्यमिति बाच्य, मधुयोगात् योगद्दैविध्या-दित्साद्व ॥ १६॥

मालतिद्लरसमधुना पूरितमथवा गवां मूत्रे । दूरेण परित्यल्यते च श्रवणयुगलं पूर्तिरोगेण । हरितालं सगोमूत्रं पूर्णं पूर्तिकर्णजित् ॥ २०॥ मालतिदलेति इन्दोऽनुरोधात इस्तवम् ॥ २०॥

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः। मधुना संयुत साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते॥ २१॥

सर्जेलादि-सुश्रुतस्य । सर्ज शाल ,कार्पासी वनकार्पासी, ग्रामकार्पासी वा । श्रत्र कार्पांसीफलरममेपेच्य ऋदैं मधु, मध्वेपचया च सर्जेत्वक्चूर्णमद्देमिति वृद्धोपदेश साष्ट्रिरित कर्पोसीफलरसाविशेषण तेन कीटाधनम्धकार्पासीफलरमो ग्राह्म इति ॥२१॥

जम्ब्वाद्यं तैलम्

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं किपत्थकार्पासफलब्ब सार्द्रम् । जुत्वा रसं तन्मधुना विमिश्रं स्नावापद्दं सम्प्रवद्नित तज्ज्ञाः ॥ एते. श्टतं निम्वकरञ्जतेलं ससार्पपं स्नावद्दरं प्रीदेष्टम् ॥ २२॥

जम्ब्वाम्नेलादौ—साईमिति समन्तादाईमिलर्थ । चुन्तेति सचुघेलर्थ । एतैरिति जम्ब्वाम्रपत्रादिमि. कल्करूपैरिलर्थ , जलझान्नार्थाचतुर्शेणम् । अन्ये तु जम्बूपन्नादिरसैरिलर्थ इलाहु. । एतन्मते त्वकल्क एवाय पाक इति, पाकोचरकालम्न मथुपत्तेप इलाहु. । निम्बदीजकरअवीजमव तैल सार्थपतैलन्न सिम्भ्य पक्तव्यम् । पृथगेव तैलत्रय पक्तव्यमिलन्ये ॥२२॥

पुटपाकविधिखिन्नहस्तिविड्जातगोगडक । रसः सतैलसिन्धृत्थ कर्णस्रावहरः परः ॥ २३॥ पुटपाकेलादौ—हस्तिविड्जातगोयडको हास्तिलिख्डोद्भृतच्छत्रक । रस इत्यत्र वन्तिति नेपः । तेन इम्मिन्यरोज्नन्द्रक्रक्यम् इन्दर्भ । यन्ते तु कीरदत्त इति पटन्ति । अन्ते तु कीरद्रकरम् इति समस्तेनव पठन्ति 'बेगवाग्यदोद्धि । मामाध-वनते।वामम् रितिन्त् ॥ २३ ॥

शम्बकाद्यं तलम्

श्रम्बृकस्य तु मांसेन कर्हुनलं विपात्रयेत्। नस्य पूरणमात्रेग कर्णनाडी प्रशाम्यीत ॥ २४ ॥ मनुक्रमेकाडि—मकृत्मानम क्लः, व्य वतुप्रार्मित ॥ २४ ॥

धुस्त्राद्यं तलम्

निशागन्यपंत पकं कडुनैनं पलाएकम् । धुस्त्रपत्रजरमे कर्णनाडीजिद्वसमम् ॥ २४ ॥

तिराताहि—निगा द्वीत्रा । निगान्ध्यामिनिया पनमेक तथा धुग्दा-पत्रसाम्बद्ध तैनस्य. । दक्ष दि भन्ध्यशिनाम्बन्धमित सुख्यशिकेन सहनवपना दक्षद्ध । धुन्दापत्ररानुत्यभितन्तु निर्द्ध नाष्टी च्ये देगस्यामित कर्णनाम् । इति । क्षृत्तैनस्याने केचित् सहनन पटनि ॥ २५ ॥

श्चय कर्ण्यनीनाहे सेहसेटी प्रयोजयेत्। तना विरिक्षिश्चर्स कियां प्राप्तां समाचरेत्। कर्ण्याकस्य भैयज्य कुर्य्यात् जनविस्तर्पवत्। नाडीसेटीऽय वमनं धृमो मूर्द्धविरचनम्॥ विधिश्च कफद्दा सर्व कर्णक्र्यू व्यपोहित । क्षेत्रयिन्वा तु नेलेन सेटेन प्रविलाप्य च। शोध्येत् कर्ण्यम्तु भिषक् सम्यक् श्रलाक्या॥ २६॥

स्थेलाहि—सुस्तस्य । त्रिना प्रामानिति दोषानुरूपान्। नाटोसेह हन्यादी स्ट्रेस्टेट र्गत पाठे क्षकृत्वसामान कर्णनास्या क्रेट्रा समनास्त्रपा दोच्य ॥२६॥

> निर्गुएडीस्वरसस्तेलं सिन्ध्वृमरजी गुड । पुरपात् पुनिकर्णस्य ग्रमना मञ्जसंयुनः॥ २७॥

निर्देशिलादि—निर्देशिल मिन्तिम्बा प्रतेष नापस्त्रतृष्ट्यं. गृह-भूनवृद्युदयोन्तु अनेकं नापकद्वम्, नमुनन्तु नापस्त्रयः, नेन्यवस्य राष्ट्रियव्यकः निति न्यवद्दान्ति ॥ २७ ॥ जातीपत्ररसे तेलं विपकं पूर्तिकर्णजित्।
वरुणांकिकपित्थाम्रजम्त्रूपत्तवसाधितम् ॥
पूर्तिकर्णापदं तेलं जातीपत्ररसेन वा ॥
सूर्य्यावर्त्तकस्वरसं सिन्धुवाररसं तथा।
लाङ्गलीमूलज्ञरसं त्र्यूपऐनावचूिएतम्।
पूरयेत् किमिकर्णन्तु जन्त्नां नाशने परम्॥
किमिकर्णकनाशार्थं किमिग्नं योजयेद्विधिम्।
वार्त्ताकुधूमश्च द्वितः सार्पपस्नेद्व पत्न च ॥ २८॥

वरुयेखाडि—वरुपाडिपल्लवाना कल्क. । स्र्यांवर्त्तकादियु त्रियु योगेषु व्योपचूर्यं प्रक्रेप्यन् । वार्त्तांकुम्म इति परिपातवार्त्तांकुफलचूर्यम् अङ्गारसन्पुटे दस्ता निलक्षया धूमो डेय । वार्त्तांकुर्वाजेन धृमः कार्य्यं इति मध्यवाग्मटः ॥ २८ ॥

हिलिस्र्यावर्त्तव्योपस्त्ररसेनातिपूरिते।
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु क्रिमिजातयः॥ २६॥
नीलबुह्नारसस्तैलिसिन्धुकाञ्जिकसंयुत ।
कदुण्ण पूरणात् कर्णे निःशेपिक्रिमिपातन ।
धूपनः कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते॥ ३०॥
इलीलादि—इली लाक्सीयाम्ल, इलीस्ट्यांवर्चयोग्योषयुक्तरसेन कर्णपूर-

रामित्यर्थः ॥ २६-३०॥

राजवृत्तादितायेन सुरसादिजलेन वा । कर्णप्रत्तालनं कुर्याच्चूर्णेरते प्रपूरणम् ॥ ३१॥ रानवृत्ति—राजवृत्तादिगणः श्रारम्बधादिगणः । सुरसादि: सुरसादिगणः । चूर्णेरतिरिति श्रारम्बधादिस्रानादिजै ॥ ३१॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्थ्याः चीरेण चौद्रसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि सास्रावे पृतिकणके ॥३२॥ ध्रुमित्यादि—सप्टर् ॥३२॥

कुष्टाद्यं तैलम्

कुष्टहिङ्गुवचादारुशताहाविश्वसैन्घवैः। पूतिकर्णापदं तैलं वस्तम्त्रेण साधितम् ॥३३॥ कुछित्यादि-कुष्ठादीना कल्कम् ॥३३॥

विद्वधौ चापि कुर्वीत विद्वध्युक्तं हि भेपजम् । शतावरीवाजिगन्धापयस्थैरएडवीजके । तैल विपकं सत्तीरं पालीनां पुष्टिकत् परम् ॥३४॥

विद्रच्युक्तमित्यन्तिविद्रच्युक्तमिति श्रीकण्ठ । शतावरीत्यादि—सुश्रतस्य । पयस्या चीरकाकोली, विदारीगन्धेत्यन्य । परण्डस्य वीजृक, न तु वीजक पीतशाल , तस्य रूचत्वादिति । वीजकैरित्यत्र जीरकैरित्येव पाठ इति निक्षल ॥३४॥

> गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिपे चीर उद्गतम्। नवनीतं तदभ्यद्वात् कर्णपालिविवर्द्धनम् ॥३४॥

गुजेत्यादि—गुजाचूर्णं चीरापेचया अष्टमाशमित्याहु । जात इत्यत्र दशीति रापः । अष्टमाशगुजाचूर्णयुते महिपोचीरे जातस्य दशी नवनीतमित्यर्थः ॥३५॥

विपगर्भ तिक्षतुम्बी-तैलमप्रगुण खरात्। सूत्रे पकं तद्भ्यद्वात् क्णपालिविवर्द्धनम् ॥३६॥

विषयर्भमित्यादि — विषस्य कल्कम् । तिकतुम्बैक्शिजमव तैल तिकतुम्बैरिलम्। खरस्य गर्दमस्य मूत्रे खरमूत्रे ॥३६॥

जीवनीयाद्यं तैलम्

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधितम्। श्रानुपमांसकायेन पालीपोपणवर्द्धनम्॥३०॥

कल्केनित्यादि — नाग्मटस्य । जीननीयेनिति जीननीयदशकेन अप्टन्गें य नेत्यन्य । दुग्धमत्र क्षेत्रसमम्, आनूपमासकाथस्तु त्रिग्रुख । पोपख परिखाहेन नर्द्धनम्, अन्य तु देखें य ॥३७॥

माहिपनवनीतयुक्तं सप्ताहं घान्यराशिपरिवासितम् । नवमूपत्तिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥३८॥

माहिपेलादी—सप्ताह धान्यराशी परिवस्तु शीलमस्येति तत् तथा। नवमूपली-कन्दचूर्णमिति तत्त्वणानीतशुष्कतालमूलीकन्दचूर्णपल २, माहिपनवनीतपल १, समर्च सप्ताह धान्यराशी स्थाप्यमित्यर्थ. ॥३=॥

कर्णस्य दुर्व्यघे भूते संरम्भो वेदना भवेत्। तत्र दुर्व्यघरोद्वार्थं लेपो मध्वाज्यसंयुतै। मधूकयवमञ्जिष्ठारुवुमूले समन्तत ॥३६॥

दुर्निद्धकर्याचिकित्सामाह कर्यस्थेत्यादि — रुबुमूलमेर्यहमूलम् । उक्त हि तन्त्रा-न्तरे—''यनर्यहजटासिंपमधूकमधुसयुतम् । विकपाधवचूर्यं वा केवल रोपण हितम्'' इति । श्रतप्व रुबुमूलस्थाने रुबुतैलमित्यपपाठ ॥३६॥

> श्रनेकघा तु छिन्नस्य सिन्धः कर्णस्य वै भिषक्। यो यथा विनिविष्ट स्यात् तं तथा विनियोजयेत्॥ धान्याम्लोष्णोदकाभ्यान्तु सेको वातेन दूषिते। रक्षिपत्तेन पयसा श्रेष्मणा तृष्णवारिणा॥ ततः सीव्य स्थिरं कुर्यात् सिन्धं बन्धेन वा पुनः। मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य पिचुना सिन्धंवेष्टनम्। कपालचूर्णेन ततश्चूर्णयेत् पथ्ययाथवा॥४०॥ इति कर्णरोग चिकित्सा।

छिन्नकंणपालिसन्धानार्थं विधिमाह अनेकधेलादि—कर्णपालिच्छेदो हि हेतुदयेन भवति, उक हि सुश्रुते—एव विवर्धित कर्णाश्रेष्ठचते तद्दिधा नृणाम् ।
दोषतश्चामिघाताद्वाः दित । दोषत इति वातादिकोपात् । छिन्नस्य कर्णस्येति छिन्नकर्णयो कर्णलितकयो । अथ स्यूलहस्वदीर्धन्यज्ञातिर्य्यगादिमेदेन अनेकविधत्वात्
मन्धिरिष अनेकधा भवति, तत्र सन्धिर्यथा येन प्रकारेण विनिविष्ट सुसम्बद्ध स्यात्
त सिन्ध तथा तेन प्रकारेण योजयेत्, सन्धानार्थं योजयेदिव्यर्थः।तत्र सुश्रुते पञ्चदश छिन्नकर्णवन्धप्रकारा आकृतिमेदेनोका , ते च तत्रैव कुन्यधसन्धिविज्ञानीयाध्याये
चानुमन्धया । तत्र दोषानुरूप प्रज्ञालनमाह धान्याम्लेत्यादि—पयसेति दुग्धेन, शीतोदक्षेनिति वा । उक्त हि सुश्रुते—"पित्तदुष्टे शीतोदकपयोभ्याम्"इति । तत इत्यादि—
तत इति सिन्धदयसयोगानन्तरम् । सीन्येत्यत्र चीमस्त्रेणिति शेषः । सिन्धि कर्णपालिद्वयसिन्ध सीन्य स्थिर कुर्यात् , तथा वन्धेन स्थिर कुर्यात् । सन्धिस्थरीकरणानन्तर मधुष्टताभ्या सन्धिमभ्यज्य पिचुना त्लकापिखडेन सन्धिवेष्टन कुर्यात् ।
सन्धिवेष्टनानन्तरञ्च स्त्रेणातिगाढ नातिशिथिलञ्च वन्धन वोध्यम् , वाग्भटसवादात् । कपालो मृरपात्रकपाल ॥ ४०॥

इति कर्णरोगांचिकित्सा-विवृति ॥

अथ नासारोग-चिकित्सा।

पञ्चमृलीश्टतं चीरं स्याचित्रकहरीतकी । सर्पिगुंडः पडङ्गश्च यूपः पीनसशान्तये ॥ १ ॥

उक्तसङ्गत्येव कर्णरोगचिकित्सानन्तर नामारोगचिकित्सतमुच्यते । पद्ममूनी-त्यादि—पद्ममूली स्वलेपति निश्चल । महतीत्यन्ये । चित्रकहरीतकी द्र्यंत्रवाधिकारे वाच्या । सिर्पेगुढ-पढद्मयूपी यक्तोकौ । इदन्तु क्रियासत्र पीनमे वीध्यम् ॥ १ ॥

व्योपादिचूर्णम्

क्योपचित्रकतालीशितिन्तिडी चाम्लवेतसम् । सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ क्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् । पीनसभ्यासकासम्रं रुचिस्वरकरं परम् ॥ २॥

व्योपादिचूर्ये व्योपिक्षकदु, तिन्तिटी महाईकम्, भ्रजानी जीरकम्, एलात्वक्पत्रपादिकमिति एलात्वक्पत्रादि प्रत्येकमेकमागापेत्वया पादिकम्, गुउन्तु सर्वचूर्यंसमिति निश्चल । किन्तु ''तालीशचित्रकव्योपतिन्तिटीकाम्लवेतमम् । सचन्याजाजीदिपलमेलात्वक्पत्रपादिकम् । जीर्यग्रटतुलाद्धन पाकेन बटकीकृतम् । पीनमश्वासकासम् रुचिस्वरकर परम् '' इति वाग्मटे साद्धोनविंशतिपलचूर्योस्तुलाद्ध-स्योक्तत्वाद् गुद्धस्य सर्वममत्व नोपप्चत इति ॥ २ ॥

पाठादितैलम्

पाठाद्धिरजनीसूर्वापिष्पलीजातिपक्षवै । दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्यगपीनसे ॥ ३॥ पोठलादि-पाठादीना कल्को जल चतुर्गुखर्मित ॥ ३॥

व्याघीतेलम् व्याघीदन्तीवचाशिग्रसुरसव्योपसैन्धवे । पाचितं नावनं तैलं पृतिनासागदं जयेत्॥ ४॥ व्याघीत्यादौ—सुरम सिन्दुनारः, पर्णास स्त्यन्ये॥ ४॥

त्रिकद्वंिवडक्सेन्धववृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीिभः। तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात् पूतिनस्यस्य॥४॥

त्रिकट्वित्यादि — श्रत्रापि मुरम मिन्दुवार , पर्णास इत्यन्ये । श्रत्र शियु-वीज दन्तीवीज च श्राद्यम् , तथा वृहतीफलस्यापि वीजम् । उक्त हि वाग्मेट "शियुमिंहीनिकुम्भाना वीजै सन्योपमैन्थवै । मरेणुसुरसस्तैल मूत्रमिद्धन्तु नावनम्" इति ॥ ५ ॥

कित्रिहिंगुमिरच-लाज्ञासुरसकट्फलैः। कुष्ठोत्राशिग्रजन्तुप्तैरवर्पाडः प्रशस्यते॥ तैरेव मूत्रसंयुक्तेः कहुनैलं विपाचयेत्। श्रपीनसे पूर्तिनस्ये शमनं कीर्तितं परम्॥६॥

कालिक्षेत्यादौ—अन्नापि सुरम पर्णामः, उद्या वचा, क्रिमिन्नो विखक्त । अन्नापि वद्यमाणमूत्रमयुक्तैरित्यस्य सम्बन्ध कृत्वा अवपीडमपि मूत्रेण पिष्ट्वा कुर्यात् । तैलपाके तु गे।मूत्रेमव चतुर्गुर्णामिति ॥ ६॥

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्य्य सर्वं वाह्यमाभ्यन्तरञ्च। हरेद्रक्तं चीरिवृत्तत्वचश्च योज्या सेके सघृताश्च प्रदेहाः। पूयास्त्ररक्तपित्तद्वा कपाया नावनानि च ॥ ७॥

नासापाके पित्तहर विधानमित्यत्र पित्तहत् मन्धारणमिति पाठो रत्नप्रभा-सम्मव । हरेद्रक्तमित्यत्र हत्वा रक्तमित्यपि तथा । वाद्यमाम्यन्तरश्चेति—वाद्य तेपादि, श्राभ्यन्तर केहपानादि । चीरिवृत्ता वटोडुम्बराटय॰ पद्य ॥ ७ ॥

शुरठीकुष्ठकणाविल्व द्वात्ताकलककपायवत् । साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं त्तवशुरुक्प्रणुत्॥ म॥

शुएठीत्यादि—वाग्मटस्य । विल्व विल्वस्य मूलम् । चवधुपुटनुवित्येव पाठा वाग्मटे तु दृश्यते, टीकायाञ्चैवमेवोक्तम्, श्रास्यार्थमनुदृष्वेव चवशुरुक्प्रग्रुदिति पाठ-मद्याः कुर्वन्ति । चवशु चव , पुटोऽपि नासारोगविशेष । उक्त हि वाग्मटे— "पित्तरेष्ट्यावरुद्धोऽन्तर्नासाया शोपयेन्मरुत् । कफ सशुष्कपुटता प्राप्तोति पुटक हि तस् " इति ॥ प्र ॥

दीते रोगे पैत्तिके संविधानं सर्वे कुर्य्यान्मधुरं शीतलञ्च । नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्या धूमा मूर्ज्ञि वस्तिश्च नित्यम्॥६ द्रित इत्यादि—सुश्रुनस्य । डीसे रोगे पैतिकमन्धानमिनि पाठ सुश्रुते इश्यते ॥ ६ ॥

वातिके तु प्रतिश्याये पिवेत् सर्पिर्यथाकमम् ।
पञ्चभिर्त्तवणै सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥
नस्यादिषु विधि कृत्स्तमवेत्तेतार्दितोरितम् ।
पित्तरक्रोत्थयो पयं सर्पिर्मधुरके श्रुतम् ॥
परिपेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादिप च शीतलान् ॥ १० ॥

वातिक इत्यादि—सुश्रतस्य । पन्चिभलंवयारिति कल्करूपं मिद्ध मिप् पिवेच्, यथाक्रमीमिति लेक्ष्यांगिकाध्यायोकाविध्यनतिक्रमेखा । प्रथमेन गणेनेति विदा-रागन्थादिगणेन वा काथकल्करूपेण मिद्ध मिपं पिवेदित्यर्थ । तथा नस्यादिकमंसु कर्त्तन्येषु अदितोक्कविधिम् अवेचेत जानीयात् । वाग्मेटऽस्युक्त—"भिवेद् वातप्रति-रयाय सर्पिक्तंतप्रसाधितम् । पदुपखकानिद्ध वा विदार्थ्यादिगणेन वा । स्वेदनस्यादिक कुर्याद् चिकित्साञ्चादितिरिनाम् " इति । अन्ये त्वाष्टु प्रथमेन गणेन मिद्ध सर्पि-र्नस्यापनामाशिरोवस्त्यादिषु योज्यमिति, यत्रु वाग्मटविरोधादुपेष्वणीयमिति । पिचे इत्यादि—सुझतस्य । पिचरक्तोत्थयो प्रतिश्याययोदिति रोष । मधुर्कं श्रतमिति काकोल्यादिभिविषकम् । शोतलानिति न्यमोधाषुत्यलादिगखाः शीतलास्तैः कृनान् ॥ १०॥

कफजे सर्पिया स्निग्धं तिलमापविषक्तया। यवाग्वा वामयित्वा वा कफन्नं क्रममाचरेत्॥ ११॥

कफज इत्यादी--तिलमायी कलकरूपी, अस मदनफलमपि बोध्य, वमन-योगात् । कफझ कमिति कफइरद्रन्यकृतपेयादिक्रमम् ॥ ११ ॥

दार्व्याङ्गदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सुरसेन च। वर्चयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि॥ १२॥

दावित्यानि सुश्रतस्य । दावि दारुहरिद्रा, इद्गदी पुत्रनीविक । निकुन्मी दन्ती तस्या वीज मूल वा । किलिएही कटमीवीजम् , अपामार्ग इत्यन्ये । सुरमेने-त्यत्र सरलेनेति सुश्रते पट्यते, तन्मत सरल सरलकाष्ट्रमेव । सुरस पर्णास , निर्गुयदी वा यथाविधीति वैरेचिनिकध्मविधीनक्रमेण ॥ १३॥

श्रथवा सघृतान् शक्रून् कृत्वा मिल्लकसम्पुटे । नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥ अथवेत्यादौ-यवशक्तून् सप्टतान् शरावास्थिताङ्गारे दत्त्वा तदुपरि कृतिच्छ-द्रेण शरावान्तरेण पिधाय तास्मिन्नेव छिद्रे नलिका दत्त्वा धूम पिवेदित्यर्थ ॥१३॥ य पिवति शयनकाले शयनारूढ सुशीतलं भूरि। सिललं पीनसयुक्तः स मुच्यते तेन रोगेण ॥ १४ ॥ यः पिवतीत्यादि —योगोऽय वातापत्तीत्तरे प्रातिश्याये वोध्य ॥ १४ ॥ पुरपकं जयापतं सिन्धुतैलसमन्वितम्। मतिश्यायेषु सर्वेषु शोलितं परमौषधम्॥ १४॥ पुटेत्यादी-जया जयन्ती ॥ १५ ॥ सोपणं गुडसंयुक्तं स्निग्धद्ध्यम्लभोजनम् । नवप्रतिश्यायहरं विशेषात् कफपाचनम् ॥ १६ ॥ मोपस्मित्यादि -- कवण मरिचन् । योगोऽय वातिके इत्याहु ॥ १६॥ प्रतिश्याये नवे शस्तो यूपश्चिञ्चादलाङ्गवः। तत पक्कं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीपीवरेचनै ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्चम्सभोजनै । वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वसुपाचरेत् ॥ १७ ॥ प्रतिश्याय इस्यादि—चिन्ना तिन्तिडी तस्या छद पत्रम् । यूष काथ: । श्रत हिद्गमरिचचूर्णं मात्रानुरूप प्रचिपन्ति वृद्धाः । शिरस इत्यादौ-यथास्वामिति पक्ष शिराडम्यङ्गस्वेदनस्य वृतपानादिशेषपके स्वेदश्च ॥ १७ ॥ भत्तयति भुक्तमात्रे सत्तवलमुत्स्विन्नमापमत्युष्लम्। स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातञ्च प्रतिश्यायम्॥ पिप्पल्य शिग्रुवीजानि विडङ्गमरिचानि च। श्रवपीड प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारण् ॥ १८॥ मचयतीत्यादि-योगीऽय वातोत्तरे वोध्यः ॥ १८ ॥ ससूत्रपिष्टास्तदिष्टाः क्रिया क्रिमिपु योजयेत्। नावनार्थं क्रिमिझानि भेषजानि च वुद्धिमान्।

शेषाणान्तु विकाराणां यथास्वं स्याचिकित्सितम् ॥१६॥

सम्भेत्यादि—सुश्रुतस्य । सम्भ यथा स्याद् तथा पिष्टा. वर्मधारयो वा ।
तिह्रिष्टा इति सुश्रुतेऽनन्तरोकाः सर्वा किया मूत्रपिष्टा प्रतिश्याये क्रिमिसम्बन्धे
सित योजयेदित्यर्थ । श्रन्ये तु क्रिमिषु या किया चक्कास्तास्ताश्च सर्वा मृत्रपिष्टा
योजयेदित्याहु । क्रिमिष्ठानि भेषजानीति सुरमादिगखप्रभृतीनि । शेषाणान्तु
विकाराखामिति नासार्थुरनासार्शः प्रभृतीनाम् । यथास्विमिति यत् यत् स्व यथास्यमिति वीप्सायामन्ययोगाव ॥ १६॥

करवीराद्यं तैलम्

रक्षकरवीरपुष्प जात्यशनमहिषकायाश्च । पतै समन्तु तैलं नासार्शोनाशनं श्रेष्ठम् ॥ २० ॥

रक्षकरविरित्यादौ—जाती मालती तस्या श्रापि पुष्पम् , श्रशनमिल्लका हाफर-मिल्लका । जात्यशनेति सिहताऽनिर्देशोऽनिद्धविधेरिनत्यत्वात् । पते समिति एते कल्करूपे । पाकार्थन्तु जल चतुर्गुणिमिति श्रेयम् ॥ २०॥

शिखरितैलम्

गृहधूमकणादार-ज्ञारनक्षाहसैन्धवै. । सिद्धं शिखरिवीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ २१॥ गृहधूमेत्यादौ—वारो यनचारः नक्ताह करअवीज, शिखरिवीजमपामार्ग-वीजतग्रहुतम् । अत्रापि जल चतुर्गुण देयम् ॥ २१॥

चित्रकतैलम्

चित्रकचिवकादीप्यक-निदिग्धिकाकरञ्जलवास्यके । गोमूत्रयुतं सिद्धं तैलं नासाशेसां विहितम् ॥ २२ ॥ चित्रकेत्यादी—दीप्यक यमानी, लवस सैन्धवम्, अर्कमर्कद्वीरम् ॥ २२ ॥

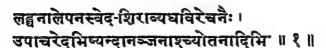
चित्रकहरीतकी

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम् । शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ शतं पचेद्धनीमृते पलं द्वादशकं क्षिपेत् । व्योषत्रिजातयोः ज्ञारात् पलार्द्धमपरेऽहानि ॥ प्रस्थार्द्धे मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतिन्द्रतः ! वृद्धयेऽग्ने च्चयं कासं पीनसं दुस्तरं किमीन् । गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान् हान्ति रसायनम् ॥ २३॥ इति नासारोग-चिकित्सा ॥

चित्रकहरीतक्या चित्रकस्य पञ्चाशत् पलानि, जलशरावाः पञ्चाशत्, स्थाप्या-स्तु सार्द्धद्वादश शरावा । एव चित्रकस्य काथस्य पलशत भवति । श्रामलकीस्वरस-स्यापि पलशत स्वरसाभावे त्वयभेव स्वरसाविधिः । एव गुडूच्या मिलितदशमूल-स्य च काथविधि । व्योपत्रिजातयोभिलित्वा पलद्वादश । पलार्द्धमिति चारादित्यने-नैव सम्बन्ध्यते । श्रपरेऽह्नीति परेण सम्बन्धते ॥ २३ ॥

इति नासरोगचिकित्साविवृति.।

अथ नेत्ररोग-चिकित्सा।



उक्तसवादादेव नेत्ररोगाचिकित्सामाह—अत्राभिष्यन्दस्य निविलनेत्ररोगमूलत्वेन प्राधान्यात् प्रथमतोऽभिष्यन्दप्रतिकारमाह लङ्घनेत्यादि—लङ्घनमत्र लष्यत्रमुपवासो वा । उक्त । हि " प्रागवाच्यामये मुक्त त्रिरात्रमगुरुस्थितम् । उपवासस्त्रम्ह वा स्यात् " इति । किन्तु उपावासो वातजादन्यत्र विषेयः वाग्भटसवादात् ।
स्त्रेदोऽपि पित्तज विना नयनोपान्ते मृदुर्वोध्य । यदुक्त " हृदय वृषणौ दृष्टिं
स्त्रेदयेत् मृदु वा नवा " इति । शिराज्यधो रक्षदुष्टौ सत्या शिराज्यधनम् । विरेचन
शिरस कायस्य च । शिरोविरेचनन्तु नवे, कायविरेचनन्त्र जीर्थे श्रेयम् । आदिगब्देन तर्पणपुटपाककाथादिपरिम्रहः ॥ १ ॥

श्रीवासातिविषालोष्ट्रेश्चृर्णितैरलपसैन्धवै । श्राव्यक्ते अत्तिगदे कार्य्य प्रोतस्थेर्गुराडनं वहिः ॥ २ ॥ श्रीवासेत्यादि—श्रीवासो देवदारु । श्रत्यसैन्धवैरिति एकमागापेष्ठया चतु- र्भागत्व सैन्धवस्थित्याहु । श्रन्यक्ष इति पूर्वरूपे । प्रोतम्थिरिति कर्पटवन्धे ग्रायडन श्रवचूर्णनम् । एतच मुकुलिते चन्नु पत्रे न तु विस्तारिते ॥ २ ॥

श्राक्तिकुत्तिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणुज्वराः । पञ्चेते पञ्चरावेण प्रशमं यान्ति लह्वनात् ॥ ३ ॥

श्रचिकुचिमवा इत्यादि—कुच्चिमवा श्रतीसारविलिम्विकादय । पद्यरिवेखेत्यु पलच्च तेन त्र्यहमपि बोध्यम् । यदाइ विदेष्टः "उपवासस्त्रयह वा स्यात्" इति । श्रयञ्च मतमेदो दोपप्रकोपतारतम्याश्च विरोधमान्वहति ॥ ३ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्षान्नं सेको दिनचतुप्रयम्। लङ्घनञ्चाित्तरोगाणामामानां पाचनािन पद्। श्रञ्जनं पूर्णं काथपानमामे न शस्यते॥ ४॥

स्वेदं इत्यादी—सेकी वरसकादिकाथादिना। चज्ज सेचनमाश्च्योतनशम्दवाच्य न तु पूरण तस्यामे निपेधात् । श्राश्च्योतन पुनरामे क्रियत एव यदुक्त सर्वेपामाज्ञि-रोगाणामादावाश्च्योतन हितम् " इति । दिनचतुष्टयमिति दिन्चतुष्टय स्वरूपत एव ज्वराष्टाहवदिति । श्रामे नेखरोगे श्रजनादिक न कार्य्यमित्याह श्रजनिमत्यादि— पूरणमाश्च्योतनम् ॥ ४॥

धात्रीफलानिर्य्यासो नवदक्कोपं निहान्त पूरणतः । सत्तौद्रसैन्धवो वा शियुद्भवपत्ररससेकः ॥ ४ ॥

भातीत्यादी--पूरणराष्ट्रेनारच्योतन वाच्यम् । सच्चीद्रसैन्धवी शोभाक्षनपत्र-स्वरसमापकचतुष्टयम् । मधु मापेकम् सैन्धव रक्तिद्वयम् ॥ ५ ॥

दावींरसाञ्जनञ्चापि स्तन्यदुग्धं प्रपूरणम् । निद्दन्ति शीघं दाहाश्चवेदनाः स्यन्दसम्भवा ॥ ६॥

दावींत्यादि—दावींरसाजन दारुहरिद्राकाथकृत रसाधनम् । स्यन्दसम्भवा इत्यमिष्यन्दसम्भवा ॥ ६ ॥

करवीरतरुणिकशलयच्छेदोद्भवयहुलसिललसम्पूर्णम्। नयनयुगं भवति दृढं सदृसैव तत्त्रणात् कुपितम्॥७॥

करविरित्यादी--तरुणमभिनव यत् किशलयम्, तस्य छेदात् यो रमो निर्ग- च्छिति, तेन पूरणिमस्यर्थ ॥ ७॥

शिखरिमूलं ताम्रभाजने स्तोकसैन्धवोन्मिश्रम्।
मस्तुनिघृष्टं भरणाद्धरित नवं लोचनोत्कोपम्॥ =॥

शिखरीत्यादौ-शिखरि अपामार्ग । स्तोक सैन्धव रक्षिद्वय त्रय वा सैन्धव-मित्यर्थ ॥ = ॥

सैन्धवदारुहिरद्वागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टै । दत्तो विहःप्रलेपो भवत्यशेपािचरोगहरः ॥ तथा शावरकं लोध्रं घृतभृष्टं विडालक । कार्यो हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टं विडालक ॥ शालाक्येऽच्लोर्वहिलेपो विडालक उदाहृतः ॥ ६॥

सैन्धवेत्यादि — एते स्तोकसैन्धवसहितै सममागिष्टे श्रृह्म्यावस्त्रोपिर निमीनित्तच छुपि लेपो देय । शावरक लोधिमिति श्वतलोधम् । विडालकराब्दार्थमाह शालाक्य इत्यादि — शालाक्य शालाक्य ग्रालाक्य इत्यादि — शालाक्य शालाक्य शालाक्य हत्यादि ॥ १॥

गिरिमृचन्द्ननागरखटिकांशयोजितो वहिलैंप.। कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः॥ १०॥

गिरिमृादेत्यादी—श्रशो माग.। एते सममागिपेष्टश्चक्तु समीपे लेप कार्य्य इत्याहु ॥ १०॥

भूम्यालकी घृष्टा ससैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे। याता घनत्वमच्णेजियति वहिर्लेपत पीडाम्॥११॥ भूम्यामलकीत्यादी—गृहवारि काञ्चिकम्॥११॥

श्राश्च्योतनं मारुतजे काथो विल्वादिभिर्हितः। कोप्ण सैरएडवृहतीतकीरीमधुशिश्रुभिः॥ १२॥

श्राण्च्योतनिमस्यादि—श्राण्च्योतनमिस्ति । विल्वादि महत् पश्चमूलम् । तर्कारी जयन्ती। मधुशियु रक्तरोभाञ्चनम् विल्वादिमिरित्यस्य सैरएडेत्यादिविशेषणम्, तेन एक एवाय योगः, यदाह जतुकर्णं —महत्पश्चमूलरुवुकारिध्रुतकारिसिहीकाथ " इति । किन्तु तन्त्रान्तरे केवलविल्वादिकाथेनाप्यय योगो दृश्यते, धथा—"पूर्ण तीव्र-श्र्वम तथा विल्वादिजाम्मसा" इति । किन्तु योगद्धयपचे सैरएडेति, वृहतीविशेष-णम्, न तु विल्वादिविशेषणम्, एकयोगत्वाप्रसङ्गात् ॥१२॥

, >

एरएडंपह्नवे मूले त्वचि चाजं पयः शृतम् । कएटकार्च्याञ्च मूलेपु सुखोण्णं सचने हितम् ॥१३॥

परगडेत्यादि - मुश्रुतस्य । परगडपञ्चवादिकण्टकार्यन्त एक एवायं योग विदेहसवादाद । यथा - "कण्टकारीशिफैरण्डमूलत्वनपत्रसाधितम् । चीरमाज हित सेके चत्तु स्यन्दाधिमन्थयो " हित । त्राज पयोऽत्र हीरपिरमापंथव माध्यम् । अन्ये त्वाहु -एतद्योगानन्तर मुश्रुते "सैन्थवोदीन्ययण्ट्याह् पिप्पलीभि श्रुत पय । हितमद्दोदक सेके इति पट्यते, एतद्दचनन्तु ज्ञाश्च्योतनचीरमाधनार्थं परि-मापास्थानीयम् , तेनात्रापि अद्धोदक चीर साध्यमिति । किन्त्वत्र रोपानुक्त्या चीरपिरमापयैव साधनमिति युक्तमुत्पश्याम । व्यवहारीऽपि चीरपिरमापयै-वेति ॥१३॥

सम्पक्षेऽित्तगदे कार्य्यव्याञ्जनादिकमिण्यते । प्रशस्तवर्तमता चान्जोः संरम्भाश्चप्रशान्तता । मन्द्वेदनता कर्डूः पक्षान्तिगदत्तन्त्रज्ञम् ॥ श्रव्जनादिविधिश्चात्रे निखिलेनाभिधास्यते । वृद्दत्येरर्र्यस्तृतत्वक् शियोर्मूलं ससैन्धवम् । श्रजान्नीरेण पिष्टं स्याद्वान्विवीतान्तिरोगनुत् ॥१४॥

श्रञ्जनादिविधानस्य समयमाद्य सम्पक्ष इत्यादि—पक्नाचिरे।गलचयामाद्र प्रशस्तित्यादि—प्रशस्तवतर्मता दोषायामिभभूतवर्त्मता, मरम्भः शोथ. । एतच लच्चया प्रायस्त्र्यहादुपरि श्रेयम्, यदाह चरक — 'मम्पक्के चाजन त्र्यहात्'' इति श्रजनादिविधिरित्यादि—श्रम् इति श्राश्च्योतनाचिधकारे ॥१४॥

हरिद्रे मधुकं द्राक्तां देवदारु च पेपयेत्। श्राजेन पयसा श्रेष्ठमाभिष्यन्दे तद्ञ्जनम् ॥१४॥ हरिद्रे स्लादि—सुश्रतस्य। श्रत्र द्रावास्थाने पथ्येति केचित् पठन्ति ॥१५॥

गैरिकं सैन्ध्रतं कृष्णातगरञ्च यथोत्तरम् । पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिण्यते ॥१६॥ गैरिकमिलादि—सुश्रुतस्य । तत्र तगरस्याने नागरमिति निश्नल पठति । यथोत्तर दिरशत इति यथोत्तरमागतो दिगुणमिलर्थ । तेन गैरिकमापा १, सैन्धन- माषा २, पिप्पलीमाषा ४, तगरमाषा ८ । श्रद्भिवेति वाशव्दाच्छागीचीरमपि वोध्यम् ॥१६॥

> प्रपौराडरीकयष्ट्याह्न-निशामलकपद्मकैः। शीतैर्मधुसमायुक्तैः सेक पित्तान्तिरोगनुत्॥१७॥

प्रपोग्प्डरीकमित्यादी—शितिरिति प्रपोग्प्डरीकादाना कषायै शीतलैरित्यर्थ समायुक्तैरित्यत्र सितायुक्तैरिति केचित् पठन्ति । सितायुक्तैरिति पाठ मधुवत् सिता प्रचेप्यत्यर्थ ॥१७॥

द्राचामधुकमञ्जिष्ठा-जीवनीयैः श्टतं पयः । प्रोतराश्च्योतनं पथ्यं शोथग्रुलाचिरोगिणाम् ॥१८॥

द्रोचेत्यादौ-जीवनीयशब्देन जीवनीयाष्टवर्गं गृह्धन्ति ॥१८॥

निम्वस्य पत्रैःपरिलिप्य लोधं स्वेदाश्चिना चूर्णमथापि कल्कम् । श्चाश्च्योतनं मानुषदुग्धमिश्रं पित्तास्रवातापहमग्च्यमुक्कम् ॥१६॥

निम्बस्येत्यादि—निम्बपत्र पिष्ट्वा तिष्यडमध्ये लोधकल्क चूर्ये वा प्रचिप्य पत्रेण वेष्टियत्वा श्रद्वारैरुट्स्विच नाराचारेण संमिश्य वस्त्रेण गालियत्वा चच्छ सेका विधेय इति ॥१६॥

कफजे लड्डानं स्वेदो नस्यं तिक्रान्नभोजनम् । तीत्त्यौः प्रधमनं कुर्यात् तीत्त्येश्चैवोपनाहनम् ॥२०॥ कफजनेत्ररागिविकित्सामाह—कफज श्लादि ॥२०॥ फागिज्भकास्फोतकपीतिबिल्वपत्त्र्रपीलूस्रुरसार्जभङ्गैः ।

फाणिज्मकास्फोतकपीतवित्वपत्त्पीलूसुरसार्जभङ्गैः । स्वेदं विद्ध्याद्थवा प्रलेपं वर्धिष्ठश्रुणठीसुरदारुकुष्ठैः ॥२१॥

फिर्याज्यस्त पर्णासमेद , निर्गुयहोत्यन्ये । आस्फोता हाफरमिहासा, छान्द-सत्ताद्भ्स्तत्वम् । पत्त्र शालिश्रशासः । पांछ औत्तरापथिकतरः , अतएव निर्देशात् पीछशब्दो दीर्घोकारान्तोऽपि क्षेय । सुरसार्जावपि पर्णासमेदौ । एषा मन्ने पह्नवे-व्यस्तसमस्तैरङ्गारता।पतैश्चचुषोर्मृदुस्वेद कार्यः । विहेष्ठ वालकम् । अत्रैव तन्त्रान्त-रदर्शनात् अर्जस्थान अर्क इति केचित् पठन्ति । तन्त्रान्तरे यथा—"कपित्यसुरसा-स्फोतपीछपत्तूररूपिका । फिर्णिङकविल्वच्छदनै स्वेद स्यन्द।धिमन्थयो " । रूपिकां अर्क ॥२१॥ शुग्ठोनिम्वद्तैः पिग्डः सुखोप्णैः स्वरूपसैन्धवैः । धार्य्यश्चत्रुषि सङ्क्षेपाच्छोथकगृहृव्यथापदः॥ २२ ॥

शुयठीत्यादी—निम्बपत्रापेचया शुयठी स्वल्पा देवा, सैन्धवमिप चतु पञ्च राक्तिकामिति वदन्ति । एपा पियङ कदुष्य एव चच्चुपोरुपरि सङ्मवस्य दस्ता देय इत्युपदेश । सच्चेपादित्यादी प्रक्रियात्॥ २२ ॥

> चल्कलं पारिजातस्य तैलं काञ्जिकसैन्धवम् । कफोद्भूताचिश्रलघं तरुघं कुलिशं यथा ॥ २३ ॥

वल्कलिपत्यादि —पारिजात पारिमद्र । पारिमद्रवल्कलस्वरमस्य मापकत्रय सैन्धवस्य राक्षिद्रय त्रय वा, काञ्जिकन्तु निकुद्धमात्रम् । निकुद्धस्तु न्नामुस्रागुलि-चतुष्टयपरिमितः । एतत् सर्वं तात्रपात्रे कृत्वा कपदंकैकेन तावद्धपर्याय यावद् धन भवति । चत्तुष्यञ्जन देयमिति वृद्धा व्यवहरन्ति ॥ २३ ॥

> ससैन्धवं लोभ्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रवद्धम् । श्राश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्य्यात्

> > कराङ्कच दाहब्च रुजाब्च हन्यात्॥ २४ ॥

ससैन्धविमत्यादि—सैन्धवस्य रिवतद्दय, लोधस्य मापकचतुष्टय काश्विकन पिष्ट्वा गव्यश्तेन भृष्ट्वा निर्मलस्हमवस्रेण वद्ष्या श्रगुलीद्दयेन सम्पीट्य चत्तुपि तदसो देय ॥ २४ ॥

> सिग्धैरुप्णैश्च वातोत्थः वित्तजो सृदुशीतलेः। तीन्णुक्तचोप्ण्विशदे प्रशास्यन्ति कफात्मकाः। तीन्णुप्णसृदुशीतानां व्यत्यासात् साम्निपातिकः॥२४॥

सचेपेण वातजादीना चिकित्सामाह सिग्धेरित्यादि—विरादैरित्यापि-चिक्रते । तीच्योष्णमृदुशितलाना व्यत्यामोऽत्र परस्परिवपथंयेयोपयोगः, तेन तीच्यामुप्युज्य तिद्वपरितस्य भृदुन उपयोग , एव मृदुद्रव्यमुप्युज्य तीच्यस्योपयोग , प्रमुष्णशीतयोरिप व्यत्यासो होय । किंवा परस्परिवरुद्धाना भावाना सिमिश्रयोन उपयोगो व्यत्यासोपयोग । तीच्योष्णमृदुशीतलानामित्युपलच्या तेन सिग्धरूचा-दीनामिष मृह्ण वोध्यम् ॥ २५ ॥ तिरीटित्रिफलायष्टीशर्कराभद्रमुस्तकैः । पिष्टे शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः॥ २६॥

तिरीटेत्यादि—तिरीट पट्टिकालोध्रम् । एषा प्रत्येक माषकमेक गृहीत्वा श्रुच्य पिष्ट्वा शीतलजलेन पलैकेन समिश्र्य परिषेकः कार्यं ॥ २६ ॥

कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंयुतम् । न्यस्तमण्स्वान्तरीचासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥२७॥

करोविंत्यादि—सुश्रुतस्य । करोरुयाष्ट्रमधुनो प्रत्येक माधकचतुष्ट्य गृहीत्वा सूत्त्मवर्क्षेण वद्घ्वा श्राकाशोदके पलेके निचिप्य तेन जलेन सेक , श्राकाशोद-काभावे हसोदकेन ॥ २७ ॥

> दार्वीपटोलमधुकं सिनम्बं पद्मकोत्पलम् । प्रपौरत्वरीकञ्चेतानि पचेन्ताये चतुर्गुणे ॥ विपाच्य पादशेषन्तु तत् पुनः कुडवं पचेत् । शीतीभूते तत्र मधु दद्यात् पादांशिकं ततः । रसिक्रयेषा दाहाश्चरागरक्रकजापहा ॥ २८॥

दावींत्यादी—पटोलिनन्वयो पत्र, पद्मक पद्मकाष्ठम्, उत्पल निलित्पलम्। एषा मिलित्ना कुडवश्चतुष्पलो याद्य । पाकार्थञ्च जलस्य द्वाश्रिशत् पलानि । ' ततस्तु कुडव यावत् तोयमष्टगुण मवेत् '' इति वचनात तत कुडवे।ऽष्टपलः स्थाप्य । तद्वस्तपूत कृत्वा पुन पक्तन्यमावनीमावात्, तत शीते मधुपलद्वय प्रचेप्य, ततोऽजन कार्य्यमिति ॥ २ = ॥

तिक्सस्य सर्पिषः पानं वहुशश्च विरेचनम् । श्रक्षोरपि समन्ताच पातनन्तु जलौकसः । पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ २६॥ तिक्तस्येति—तिक्त सर्पिर्वस्थमाणपटोलादिष्टतम् । विरेचनन्न वस्यमाणपड-

द्गादिना ॥ २६ ॥

'n

शिग्रुपञ्जवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे । घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ३० ॥ शिग्रुपञ्जवेत्यादौ—निर्यासः स्वरस , ध्तेन सह तात्रपत्रे घष्ट इत्यन्वय । धृपित इति करीपाक्षिना । श्रन्ये तु करीपाक्षी ष्टत दत्त्वा तेन धूमेन धूपित इति व्याचन्नते । घर्ष करकरिकारूयवेदनाविशेष ॥ ३० ॥

पिष्टैर्निम्बस्य पत्तैरितिवमलतरैर्जातिसिन्धृत्थिमश्रा श्रन्तर्गर्भे द्धाना पद्धतरगुडिका पिष्टलोधेन भृष्टा । त्लैः सौवीरसाँईरितशयमृदुभिवेष्टिता सा समन्तात् चचु कोपप्रशानित चिरमुपिर दशोर्श्वाम्यमाणा करोति। ३१॥

पिटेरित्यादि-जातिसित्धृत्य सारसैन्थव, जातिर्जातीकलिकेत्यन्ये । अन्तर्गर्भं दर्थानेति पिटनिम्बपत्रपियडाम्यन्तरे लोधकलकापियड निविष्य कृता गुडिकेत्यर्थ । युटा इति खंपरे मनाग्येष्टत्यर्थ । तदनु मौवीरेख काञ्जिकन माँद्रीरिति ईपदाँईस्तुल-कैवेंडिता चन्नुपेलपिर आम्यमाखेत्यर्थ ॥ ३१॥

विन्वाञ्जनम्

विल्वपत्तरसः पूत सैन्धवाज्येन चान्वितः। शुल्वे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना॥ पयसाले।डितस्वाद्योः पूरणाच्छोधश्चलतुत्। श्रमिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रक्ते च शस्यते॥ ३२॥

बिल्वपेत्रत्यादी—शुल्व इति ताश्रपात्रे, पयसेति नारीस्तन्येन । वस्त्रपृताविल्व-पत्ररसस्य मापकचतुष्टय सैन्धवस्य रिक्रिड्य, धृतस्य बिन्दुचतुष्टयम् । धतत् सर्वे ताश्रपात्रे कृत्वा कपर्दकेन तावद्वर्पणीय यावद्दन भवति । तदनु न्युव्वाकृतताश्रपात्रे शुष्कगीमयाग्निना धृपयित्वा नारीचीरेण तरलीकृत्य चन्नु पूरणम् ॥ ३२ ॥

सलवणकदुतैलं काञ्जिकं कांस्यपाते घनितमुपलघृष्टं घूपितं गोमयाशौ। सपवनकफकोपं छागदुग्धाविसकं

जयित नयनशृज्ञं स्नावशोथं सरागम् ॥ ३३॥

सलविष्यादी—सैन्धवस्य रिक्तिद्वं, कदुतैलस्य विन्दुचतुष्टयं, काञ्जिकस्य भाषकचतुष्टयम् । उपल प्रस्तरखण्डस्तेन ष्टष्टं, किंवा उपलशब्देन चच्चुप्यत्वात् रसा-श्वनादिशिलेव याद्या ष्ट्वास्तु वराटिकयैव व्यवद्दरित ॥ ३३ ॥

तरुव्यविद्धामलकरसः सर्वादिरोगनुत् ॥ ३४॥

तरुस्थेत्यादि—तरुस्थस्यैवामलकीफलस्य स्च्यादिभिविद्धस्य यो रसे। निर्गच्छतीत्यर्थ ॥ ३४॥

पुराणे सर्वथा सर्पिः सर्वनेतामयापहम् ॥ ३४॥

पुराण सिंपिर्दशवर्षास्थित, तदमाने सनत्सरातीतमिष पुराण बाह्यामित्याहुः । उक्त हि—"श्रल्पाभिष्यिन्द मधुर यच सनत्सरोषितम्। श्रनुत्केदञ्च दोपाणा पुराण तत् प्रकीर्तितम्" इति । सर्वथेति पाननस्याजनैरित्यर्थ ॥ ३५ ॥

श्रयमेव विधि सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते । श्रशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ ३६ ॥

श्रयमेव विधिरित्यादि--वाग्मटस्य । श्रयमभिष्यन्दोकः । श्रादिराच्दात् श्रम्यतोवातादय ॥ ३६॥।

जलौकःपातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम्। शिराव्यधं वा कुर्वीत सेकालेपांश्च शुक्रवत्॥ ३७॥ नेत्रपाकविकित्सामाह जलौक स्त्यादि—स्पष्टम् ॥ ३७॥

पडड़ गुग्गुलु:

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः।
काथो गुग्गुलुना पेयः शोथपिल्लाचिश्रलगुत्॥
विल्वञ्च सव्रणं ग्रुकं रागादींश्चापि नाशयेत्।
पतेश्चापि घृतं पकं रोगांस्तांश्च व्यपोहति॥ ३८॥
विभीतकेत्यादी—पिल्ल पन्नोनिका, किंवा "प्रचालिते तथा नष्टे आनद्देन
पुन पुन । अपरिक्षित्रवर्त्मान त पिल्लमिति निर्दिशेत्" हत्युक्तलच्योः। अत्र
ध्तपाकपचे तु विभीतकादीना काथो ग्रगुलु गृहीत्वा ध्तेन पिष्ट्वा वटिका कुर्व्यादिन
स्युपदिशान्ति धृद्धाः॥ ३८॥

वासकादि

श्राटरूपाभयानिस्वधात्रीमुस्ताच्यूलकै । रक्षसावं कफं हन्ति चचुण्यं वासकादिकम् ॥ ३६ ॥ श्राटरूपेत्यादि—श्राटरूपक वामकम् । एते कृतकाथेन चचु सेचन, तथा गुरगुलु प्रविष्य विरेचनमण्युपदिशान्ति वृद्धा ॥ ३६ ॥ पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः पड् धाड्यो हादशेय तु । प्रस्थार्दे सालिले फाथभप्रभागावशेपितम् ॥ पीत्वाभिष्यन्दमास्रावं रागञ्च तिमिरं जयत् । संरम्भरागश्लाश्चनाशनं टक्प्रसादनम् ॥ ४०॥ पथा स्तादो—प्रशादं स्ति त्रिशेषवार् सावदेव । पलिति साव-

मित्वाद्वः ॥ ४० ॥

नेत्रे त्वभिद्यने फुर्याच्त्रीतमाश्च्योतनादिकम् ॥
टिएप्रसादजननं विधिमाशु फुर्यात्
स्निग्धेर्हिमेश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगः ।
स्वेदाग्निश्चमभयशोकरजाभिनापैरभ्याद्दतामपि नथैव भिषक् चिकित्सेन् ॥४१॥

श्रागन्तुनेवरीगिशिक्ष्मामाइ नेव इस्यादि—श्रादिसम्दादव नेपादानां ग्रह-यम् । दृष्टीत्यादि—मुभतन्य । दृष्टिपमाद्रजनन नयनायरकदोषनाशास् । पेट्रप्टि- अप्रसादन कार्व्यमित्याह् सिन्धिरित्यादि । रोदादिकृषा राग एव उपपात्ता रोगो रेगाननकत्वादुच्यते । श्रम्याहतामित्यनन्तर दृष्टिमिति रेग्य । त्रीयस्यगन्तिग्य- दिमादिविधिना ॥४१॥

श्रागन्तुरोपं प्रसमीद्य कार्य्य वस्त्रोप्मणा स्वेदितमादितस्तु । श्रार्व्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यायद्यापि पित्तत्ततापद्धं स्यात्॥ स्योपरागानलविद्युदादिविलोकनेनोपद्दतेत्तणस्य। सन्तर्पणं स्निम्धहिमादि कार्य्यं सायं निपव्यास्तिफलाप्रयोगा॥४२

श्रागन्तित्यादि—श्रागन्तुदे। प्र्वाधाभिषानम् । वस्त्रोध्या च उरत्रपुटा श्राहा । यथापि पित्तवत्तजापद्द स्यादिति पित्ताभिष्यन्दे रकाभिष्यन्दे च यद्गुक तद्दिष दितम् । त्रिफलाप्रयोगा इति त्रिफलाकाथेन चसु भेकादय ॥४२॥

> निशाव्दत्रिफलादावींसितामधुकसंयुतम्। श्रभिघातात्तिशृलग्नं नारीत्तीरेण पूरणम् । इत्कटाट्कुरजस्तद्वत् स्वरसो नेत्रपूरणम् ॥४३॥

निरेत्यादि—प्या चूर्णं नारीचीरे प्रक्षिप्य पूर्णम् । तद्ददिवि अभियानादि-यूज्ञ इत्यर्थे ॥४३॥ श्राजं घृतं ज्ञीरपात्रं मधुकञ्चोत्पलानि च । जीवकर्षभकौ चापि पिष्ट्वा सर्पिविपाचयेत् । सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेनत् प्रशस्यते ॥४४॥

सैन्धवं दारु ग्रुग्ठी च मातुलुइरसो घृतम् । स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं ग्रुष्कपाके तद्यनम् ॥४४॥

शुष्काचिपाकरोगचिकित्सामाह सैन्थविमत्यादि— सुश्रुतस्य । स्तन्योदकाभ्यामिति उपलच्चणे सहाथे वा तृतीया । सैन्थवदारुशुण्ठीना मिलित्वा पादिक कल्क
कार्य्यं , पादिकत्वन्च मिलिनमातुलुद्गरमादिद्रवचतुष्ट्यमपेच्य । सैन्थव माषकद्दयम्,
देवदारुशुण्ठ्योस्तु प्रत्येक माषकचतुष्ट्यम् , मातुलुद्गरसादीना चतुर्णा प्रत्येक द्वादरामाषका । सर्वमेकीकृत्य मृद्दिम्नना पक्तव्य यावत् धनीमवति । ततोऽज्ञन कार्य्यम् ।
स्तिक्रेययम् । अन्ये तु स्तन्योदकानामिति पठित्वा स्त्रीचीरजलयोगितितयो ससुदयाद्मानम् । सैन्थवदारुशुण्ठीमातुलुद्गरसष्ट्रताना सममाग । सैन्थवदारुशुण्ठीना
कल्कम् । मातुलुक्गरसादिद्रवचतुष्ट्येनासाव्याजन कार्य्यम् । रमिक्रवेयमिति । अन्ये
तु स्तन्योदकार्द्वमिति व्याचचते ॥४४॥

वाताभिष्यन्दवचान्यद्वाते मारुतपर्यये । पूर्वभक्तं हितं सर्पि ज्ञीरञ्जाप्यथ भोजने ॥४६॥

वातादिचिकित्सामाह, वातित्यादि-पूर्वमक्तमिति मक्तात् पूर्वमिति । श्रन्यतो वाते वातपर्यये च चीरपानम्, श्रनयो. पित्तरकावद्धत्वात् ॥४६॥

वृत्तादन्यां किपत्थे च पश्चमूले महत्यि । सत्तीरं कर्कटरसे सिद्धश्चापि पिवेद् घृतम् ॥४७॥

वृत्तदन्यामित्यादि — वृत्तादनी वन्दा । वृत्तादन्यादिभि कल्क , चीरं स्नेह-ममम्, कर्कटरसस्तु त्रिगुण , एव घत साध्यमिति श्रीकण्ठ । गयदामस्तु वृत्ता-दन्यादिना पत्रमूलान्ताना मिलित्या द्विगुणः काथ , चीरकर्कटरसयोस्तु प्रत्येक स्निहममः काथ., एव चीरकर्कटरसाविष, इति पत्रगुण पाक इत्याहु. ॥४७॥ श्रभिष्यन्द्मधीमन्थं रक्नोत्थमथनार्जुनम् ।
शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्राज्ञिमनान् गदान् ॥ विस्थस्याज्येन कौम्भेन शिरावेधे शमं नयेत् ।
श्रम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याक्षेपान् सुशीतलान् ॥
तैन्दुकं त्रैफलं सर्पिजींर्णं वा केवलं हितम् ।
शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधि ॥
सर्पि ज्ञौद्राञ्जनञ्च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत् सैन्धवकार्शांशं स्तन्यपिष्टञ्च पूजितम् ॥
शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम् ।
मधुना तार्द्यशैलं वा काशीशं वा समाज्ञिकम् ॥ ४८॥

श्रमिष्यन्दिमित्यादौ —श्रन्याश्चिति शुक्रादीन् । कीम्म सिर्पदंशवंपित्यतम् । श्रम्काध्युपितमित्यादौ —तेन्द्रक सिर्पवंतिन्याधौ सुश्रुतेनोक्तम् । श्रेफल श्रिफलाक्काय-कल्काभ्या सिद्धम् । केवलामित्यसस्कृतम् । सिर्पिरित्यादि —सुश्रुतस्य । श्रश्नन सौवी-राजनम् । द्यतमधुभ्यां सौवीराजन पिष्ट्वा वित्तं कार्यो । भेषजभित्यक्जनरूपम् । तद्ददिति शिरोत्पातमेषजमित्यर्थं । काराशि पुष्पकारशिशम् , धातुकाशिशमित्यन्ये, व्यवहारस्तु पूर्वेण । फाणित द्वगुड । तार्च्यंशैल रसाजनम् ॥ ४८॥

वण्युक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिवेत् । कतकस्य फलं शृह्वं तिन्दुकं रूप्यमेव च । कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन चत्रयुकार्त्तिरागजित् ॥ ४६॥

कतकस्थात्यात् —कतक तायप्रसादनफल प्राया मगध मनति। शङ्क नाभि राह्मम्, तिन्दुक तिन्दुकफलास्थि, रूप्य रूप्यचूर्णम्। एषा सममाग गृष्ठीत्वा कास्य पात्रे स्तन्येन वर्षणीयम्। चतशुक्र मणशुक्रम् ॥ ४६ ॥

चन्दनं गैरिकं लाचा मालतीकलिका समा।
वर्णशुक्रहरा वर्लि शोणितस्य प्रसादनी ॥
शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात्।
अच्मज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ॥ ४० ॥
चन्दनीमत्यादौ—गैरिक स्वर्णेगैरिकम् , तंचात्यन्तरक्त मृदु च यद्गैरिकमिति। पेपणन्तु जलेन, बुद्धा गगनजलेन व्यवहरनि, तदमावे तद्गुणेन वा, पद-

मन्यत्रापि द्रवातुक्तस्थाने वोध्यम् । तथा छायाशोषण्, मधुना घृष्टा चाञ्चनमित्यपि विशेषाभावस्थाने व्यवहारो बृद्धानाम् । श्रचेत्यादौ---स्तन्येनेत्यत्र मध्वपि वोध्यं सुश्रतसवादात् ॥ ५० ॥

एकं वा पुराडरीकञ्च छागीचीरावसेचितम्। रागाश्चेवदनां हन्यात् चतपाकात्ययाजकाः॥ ४१॥

पक्तमित्यादि—पक श्रेष्ठमिति वा तच्च उत्तरापथज पुग्डरीककाष्ठ पिष्टा वस्त्रेण पोष्टलीं वद्ष्या छागीचीरे स्थाप्यम्, यदा पीतवर्णं दुग्ध भवति, तदा चचुिष दुग्ध देयम् । प्रवलरक्तदुष्टौ योगोऽयम् ॥ ४१ ॥

तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्तं हन्त्यित्तपूरणात् । समुद्रफेनद्त्ताण्डत्विक्सन्धृत्थेः समान्तिकैः । शिग्रुवीजयुतैर्वेत्ति शुक्रव्री शिग्रुवारिणा॥ ४२॥

तुत्यकमित्यादि—अत्र मध्विप वोध्य सुश्रुतसवादात् । समुद्रित्यादौ—दचा-यडत्वक् , कुक्कुटायडकपालम् । समाचिकैरिति स्वर्णमाचिकसिहतैरिति केचित् । अन्य तु मधु वदन्ति । समाचिकैरित्यत्र सशङ्ककैरिति पाठे शङ्कक शङ्कनामि. । शिग्रुवारियेति शोमाञ्जनरसेन पिष्ट्रा वित्ति कार्य्या ॥ ५२ ॥

'घात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोधं खिद्रं तिलाश्च। काथो सुशीतो नयने निषिक्क सर्वप्रकारं विनिद्दन्ति शुक्रम्॥ सुरागुष्टागपत्रेण परिभावितवारिणा। श्यामाकाथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम्॥ ४३॥

धातीत्यादी—निम्बस्य किपित्थस्य च पत्तम्। काथ इत्यत्त एषामिति शेषः । सर्वप्रकारिमिति सत्रणमत्रणन्च । चुण्णेत्यादि—चुण्ण शिलाया जर्जरीकृत पुन्नागस्य नागकेशरस्य यद् पत्रम् , तेन मावित यद्वारि, तन । श्यामा श्यामालता, तस्या काथरूपमन्तु । कुसुमापद्दमिति शक्केन्द्रकुन्टवर्णं शुक्रमेव कुसुम तन्नाशनम् ॥ ५३ ॥

द्ज्ञाग्डत्विक्शिलाशङ्ख काचचन्द्रनगैरिकैः।' तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पामीदिविलेखनः ॥ ४४॥

दच्चेत्यादि—दच्च कुनकुट, गोष्ठकुनकुट इत्यन्ये, शिला मन शिला, शङ्घ शह नामि, एवं सर्वेत्र । काचः स्त्रनामख्यात ॥ ५४ ॥

शिरीपवीजमरिच पिष्पलीसैन्धवैरपि। शुक्रे प्रधर्पणं कार्य्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ४४ ॥

शिरोषेत्यादि-शिरीपादिचुर्णेर्मध्वाकशलाकास्थितैर्धपंश कार्य्यम् । मैन्धेव-नेति केवलसैन्धवचूर्णेन, अन्य तु मस्यामैन्धवरायडेनेत्याहु ॥ ५५॥

वहुश पलाशकुसुमस्वरसैः परिमाविता जयत्यचिरात्। नक्राह्मवीजवर्त्तिः कुसुमचयं दत्तु चिरजमि ॥ ४६॥ वहुश इत्यादि---वहुश सप्ताहम् । नकाहवीनित करअवीजस्य चूर्णं कृत्वा पलाशकुसमस्वरमेन वर्ति कार्य्या ॥ ५६ ॥

> सैन्घवत्रिफलाकृष्णा-कटुकाशृह्वनाभय । सताघ्ररजसो वार्त्ते पिष्टशुक्रविनाशिनी ॥ ४७॥

सैन्थवेत्यादौ--कडका कडरे।हिसी, ताम्ररजस्तु मारिततामचूर्यम् । पिष्ट-शुक्रविनाशिनीति-पिष्टाख्यनेत्ररोग , ''विन्दुभि पिष्टधवलेश्त्रिवन्ने, पिष्टक वदेत् '' इत्युक्तलच्ये ॥ ५७ ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतकशोशितम् ।

क्रमवृद्धिमदं चूर्ण शुक्रामीदिविलेखनम् ॥ ४८ ॥ चन्दनमित्यादौ—पलाशतक्शो।चेत किंशुकवृच्चेष्टकम् । रक्तचन्दनस्य मापक , सैन्धवस्य दी, पथ्यायास्त्रय इति वृद्धिकम । एतच्चूर्णाञ्जन भध्वाकशाला-कया चलुपि देयम्, एव सर्वत्र चूर्णान्जने ॥ ५८ ॥

दन्तवर्तिः

दन्तैईस्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः। सश्टङ्गमौक्षिकाम्मोधि-फेनैर्मरिचपादिकैः॥ त्ततग्रुक्रमपि व्याधि दन्तवर्त्तिर्निवर्त्तयेत्॥ ४६॥ दन्तैरित्यादि--वाग्भटस्य । मरिचपादिकैरिति समुदितचूर्यापेचया मरि-चस्य चतुर्थो माग । पेषण्वन्चात्र जलेन वाग्मटसवादात्॥ ५६॥

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला। मनःशिलार्द्ध मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥ पतच्चूणाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेपु च।

पिचिटे मधुना योज्यमर्वुदे मस्तुना तथा ॥६०॥

राह्वेत्यादि—शङ्ख राङ्कनाभि । नाभिशङ्ख मा ४, मन शिला मा २, मरिच मा १, मैन्थन र ५ । चूर्यां न्जनिमिति मध्वाक्ष रालाकया मगृद्य शुक्रदेश घर्षयेत् । ततः त्रिफलाकायेन प्रचालन कार्य्यमिति । शुक्रयोरिति सम्यामय-शुक्रयो ॥ ६० ॥

ताप्यं मधुकसारो वा वीजञ्चात्तस्य सैन्धवम् ।
मधुनाञ्जनयोगा स्युश्चत्वारः ग्रुक्रशान्तये ॥ ६१ ॥
वयक्तीरेण संयुक्तं न्छन्णं कर्पूरजं रजः ।
चित्रमञ्जनतो हन्ति ग्रुक्तञ्चापि घनोन्नतम् ॥ ६२ ॥
ताप्यमित्यादि—गप्य स्वर्णमाविकम्, श्रवस्य वीज विभीतकास्थिमज्जा ॥

॥ ६१ ॥ ६२ ॥ त्रिफलामजामङ्गल्यामधुकं रक्षचन्दनम् । पूर्णं मधुसंमिश्रं चतग्रुकाजकाश्रुजित् ॥ ६३ ॥

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च ।
करीरस्य च वंशानां कृत्वा ज्ञारं परिस्नुतम् ॥
करमास्थिकृतं चूर्णं ज्ञारेण परिमावितम् ।
सप्तकृत्वोऽष्रकृत्वा वा ऋदणं चूर्णन्तु कारयेत् ॥
पतच्छुक्रेष्वसाध्येषु कृष्णीकरण्मुत्तमम् ।
यानि शुक्राणि साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ ६४ ॥

तालरयेत्यादि—नालस्य जटा., नारिकेजस्य फलास्थि, अरुष्करो मल्लात् , तस्य फल, वशकरीरस्य तु पाखरी। एतत् सर्व तिलनालाभिना दग्ध्वा मस्म माद्य,तन्च माव्य-द्रव्यसम गृहीत्वा अष्टगुणोदके पोडगगुणोटके वा नि काथ्य अर्कावशेष पादशेष वैकर्विश तिवारान् झावयेत्। अन्ये तु काथमकृत्वा चतुर्गुणेन योडशगुणेन वा जलमात्रेण स्नावणमाहु वाग्मटसवादात्। अपर तु मान्यद्रव्यसम सस्म चतुर्गुणेन षोडश-गुणेन वा अम्बुना नि काथ्य अर्कावशेषण विस्नावण वदन्ति। व्यवहारस्तु पूर्वेणैन।

परिस्नाव्य च गृहितिन स्वच्छेन चारोदकेन सप्ताष्टी वासरान् करभारिथचूर्णं भाज्यम् । करम उच्ट् । पतच प्रतिमावनेमव चूर्णिकर्त्राच्य, तच्च्यूर्णं मध्वाक्तशालाक्या सगृद्ध शुक्रदेश घपंयेत् । तत्रश्च त्रिफलाकाथेनाचित्रचालनमिति क्रियापरिपाटी । चारेंग्रित चारोदकेन । पतच्छुकेष्वसाध्येष्विति अनेन शुक्रस्थामाध्यस्य वैवर्ण्यनाशन पर क्रियते, न पुन शुक्रनाशनमिति दर्शयति । यानि शुक्रानि साध्यानीत्यादि पाठो शुक्त , न तु शुक्रान्यमाध्यानीति । " नारिकेलास्थिमञ्जाततालवशकरीरजम् । भस्माद्भि सावयेत् तामिर्भावयेत् करमास्थिजम् । चूर्णं शुक्रेष्वसाध्येषु तद् वैवर्ण्यन्धमण्डान्य । साध्येषु साधनीयमिदमेव । निश्चलेन पुनरसाध्यानीति पठित्वा एतच्य न कदाचिदिष साध्यशुक्षणोचरत्या प्रयोक्तव्यमिति यद्व्याख्यात तदपास्तम्, उक्तवाग्मटवचनिवरोधादेव ॥६४॥

पटोलाद्यं घृतम्

पटोलं कदुकां दावीं निम्वं वासां फलात्रकम् । दुरालमां पर्पटकं त्रायन्तीञ्च पलोन्मिताम् ॥ प्रस्थमामलकानाञ्च काथयेत्रव्येणुऽम्मसि । पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कल्कैर्मृनिम्बकुटजमुस्तयण्ट्याह्मचन्दने । सपिष्पलीकैस्तत् सिद्धं चजुष्यं ग्रुक्रयोर्द्धितम् ॥ घ्राणकर्णाचिवर्तमत्वङ्मुखरोगव्यापदम् । कामलाज्वरवीर्स्पगग्डमालाद्दं परम् ॥६४॥

पटोलिमत्यादि-पटोल पटोलस्य फलम् । कुटज इन्द्रयव , तन्त्रान्तरे ''यष्टि-कित्रमूनिम्बिपप्पलीघनचन्दने । कल्केमुष्ट्यंशिकेराज्य प्रस्थमात्रप्रसाधितम्''इत्युक्त-त्वात् । अतप्य वचनात् भूनिम्बादीना पलमानता च बोध्या ॥६५॥

कृष्णाद्यं तैलम्

रुष्णाविडङ्गमधुयष्टिकासिन्धुजन्म-विश्वौषघैः पयासि सिद्धमिदं छगल्याः। तैलं नृणां तिमिरशुक्तशिरोऽत्तिशूल-पाकात्ययान् जयाति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥६६॥ कृष्णित्यादि—कृष्णा पिप्पली । श्रविशब्दस्य ग्र्लपाकात्ययाभ्या सम्बन्ध ॥६६ श्रजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्नाव्य चोदकम् । व्रणं गोमयचूर्णेन पूर्येत् सर्पिपा सह ॥६७॥

अनकामित्यादि — सुश्रतस्य । गोमयचूर्णेनेति पाठो लेखकदोषातः, सुश्रते वाग्मटे च तत्तदाकारपुस्तकेषु वहुषु गोमासचूर्णेनेत्येव हि पाठो दृश्यते, टीकाकारैक्ष व्याख्यात इति ॥६७॥

सैन्धवं वाजिपादञ्च गोरोचनसमन्वितम् । शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणञ्चाजकापद्दम् ॥६८॥

सैन्धविमत्यादौ-वाजिपादोऽश्वखुरः, श्रश्रगन्धामूलमिति केचित्; व्यवहारस्तु पूर्वेणैव । शेर्छ्वहुवार॰ ॥६८॥

शशकघृतम्

शशकस्य शिर करके शेपाङ्गकथिते जले। घृतस्य कुडवं पकं पूरणञ्चाजकापहम् ॥६६॥

शराकस्येत्यादि—शराकम्स्तकमात्र कल्कः, रोपाङ्गस्यान्त्रादिहीनस्य काथ । एतत् काथार्थव्य जलस्य पोढश शरावाः, स्थाप्याद्यत्वारः शरावा इति । एतस्य कुढवोऽष्टौ पलानि ॥६६॥

> द्वितीयं शशकाद्यं घृतम् शशकस्य कपाये च सर्पिप कुडवं पचेत्। यष्टीप्रपौराडरीकस्य कल्केन पयसा समम्॥

> छुगल्याः पूरणाञ्छुऋत्ततपाकात्ययाजकाः । हन्ति भ्र्यह्वभूलञ्च दाहरोगानशेषतः ॥७०॥

शशकस्य कषाये चेत्यादि—आकृतिमानात् राशकगुडकमेकम् । अत्रापि
पूर्ववदेव काथकरण, पयसा सम् तुल्यम्, अत. पन्चगुणः पाकः, अन्ये तु चतुर्गुणमाहु । एतन्मते काथार्थजलस्य दादश शरावा , स्थाप्यास्तु त्रय इति । इति
कृष्णजेषु ॥७०॥

त्रिफलाघृतं मध्यवा. पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः। चक्तुष्यः संतेपाद्वर्गः कथितो भिपग्भिरयम्॥७१॥ परिसान्य च गृहीतेन स्वन्छेन चारोदकेन सप्ताष्टी नासरान् करमास्थिचूर्णं भाव्यम् । करम उच्छ । पतच प्रतिमाननेमन चूर्णीकर्तन्य, सच्चूर्णं मध्वाक्तशालका सगृद्धा शुक्तदेश धर्पयेत् । तत्रश्च त्रिक्तलाक्षयेनाचिप्रचालनमिति कियापरिपाटी । चारेणित चारोदकेन । पतच्छुक्तेष्वमाध्येष्विति अनेन शुक्तस्यामाध्यस्य वैनयर्थनाशन पर कियते, न पुन शुक्तनाशनमिति दश्यति । यानि शुक्तानि साध्यानीत्यादि पाठी शुक्त , न तु शुक्तान्यसाध्यानीति । " नारिकेलास्थिमञ्चाततालनशकरीरजम् । भरमाद्धि ज्ञानयेत् पाभिर्मानयेत् करमास्थिजम् । चूर्णं शुक्तेष्वसाध्येपु तद् वैनयर्थन्वमन्त्रम् । साध्येषु साधनीयमिदमेव । निश्चलेन पुनरसाध्यानीति पठित्वा पतच न कदाचिदिष साध्यशुक्तगीचरत्या प्रयोक्तव्यमिति यद्व्याख्यात तदपास्तम्, इक्तन्वाग्मटवचनितरोधादेव ॥६४॥

पटोलाद्यं घृतम्
पटोलं कटुकां दावीं निम्बं वासां फलात्रिकम् ।
दुरालमां पपटकं जायन्तीश्च पलोन्मिताम् ॥

प्रस्थमामलकानाञ्च काथयेत्रत्वग्रेऽम्भि । पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्द्नै ।

सिपप्पत्तीकैस्तत् सिद्धं चचुप्यं शुक्रयोर्हितम्॥ घाणकर्णाचिवत्मत्वङ्मुखरोगव्रणापद्दम्।

कामलाज्वरवीसपँगएडमालाहरं परम् ॥६४॥
पटोलभित्यादि—पटोल पटोलस्य फलम् । कुटज इन्द्रयव , तन्त्रान्तरे ''यष्टिकालिङ्गमूनिन्विपणलीघनचन्दनै । कल्केमुर्थ्यशिकराज्य प्रस्थमात्रप्रसाधितम्''इत्युक्तत्वाद । अतथव वचनार् मूनिन्वादीना पलमानता च बोध्या ॥६४॥

कृष्णाद्यं तैलम्

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्म-विश्वौषधैः पयासि सिद्धमिदं छुगल्याः। तैलं नृणां तिमिरश्चक्तशिरोऽत्तिश्चल-पाकात्ययान् जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥६६॥ कृष्णेत्यादि—कृष्णा पिप्पली । अत्तिशब्दस्य ग्र्लपाकात्ययाभ्या सम्बन्ध ॥६६ श्रजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्नाव्य चोदकम् । त्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत् सर्पिपा सह ॥६७॥

अनकामित्यादि - सुश्रुतस्य । गोमयचूर्णेनेति पाठो लेखकदोषादः, सुश्रुते वाग्भेट च तत्तदाकारपुस्तकेषु बहुपु गोमासचूर्णेनेत्येव हि पाठो दृश्यते, टीकाकारैश्र व्याख्यात इति ॥६७॥

सैन्धवं वाजिपादञ्च गोरोचनसमन्वितम्। शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणञ्चाजकापद्दम्॥६८॥

सैन्धविमत्यादी—वाजिपादोऽश्वखुर , श्रश्रगन्धामूलामिति केचित्, व्यवहारस्तु पूर्वेणैव । शेळुर्वहुवार. ॥६८॥

शशकघृतम्

शशकस्य शिर कल्के शेषाङ्गकथिते जले। घृतस्य कुडवं पकं पूरणञ्चाजकापहम् ॥६६॥

द्वितीयं शशकाद्यं घृतम्

शशकस्य कषाये च सर्पिप कुडवं पचेत्। यधीप्रपौराडरीकस्य कल्केन पयसा समम्॥ छगल्या पूरणाच्छुकचतपाकात्ययाजका। इन्ति भ्रशङ्खश्रलञ्ज दाहरोगानशेपतः॥७०॥

शशकस्य कषाये चेत्यादि आकृतिमानात् शशकगुडकमेकम् । अत्रापि पूर्ववदेव काथकरण, पयसा सम तुल्यम्, अत पञ्चगुण पाक., अन्ये तु चतुर्गुण-माहु । पतन्मते काथार्थजलस्य दादश शरावा , स्थाप्यास्तु त्रय इति । इति कृष्णजेषु ॥७०॥

त्रिफलाघृतं मध्यवाः पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः। चक्तुष्य संत्रेपाद्वर्गः कथितो भिपग्भिरयम्॥७१॥ त्रिफलेत्यादौ—त्रिफलेति छेद , सापि काथचूर्णादिविषयोपयोज्या । धतन्त्र यदि सामान्यत एव चत्तुष्य तथापि पुराणमतिशयेन वोध्यम् , सुश्रुते—''धत पुराण त्रिफला शतावरी पटोलसुद्गामलकान् यवानिष । निषेन्यमाणस्य जनस्य यक्षतो मय सुघोरात् तिमिराम्न विद्यते" इति ॥७१॥

लिह्यात् सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढान्तिमिरेऽथ पित्तजे। समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विद्धीत युक्तित ॥

करकः क्राथोऽथवा चूर्ण त्रिफलाया निपेवितम्।
मधुना हविषा वापि समस्तातिमिरान्तकृत्॥
यस्त्रेफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समञ्जाति हविमेधुभ्याम्।
स मुज्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्थथा चीण्धना मसुष्य॥
सघृतं वा वराक्षाथं शीलयेत् तिमिरामयी।

सवृत वा वर्षकाथ शालयत् ।तामरामया । जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥ त्रिफलाया कपायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥ जलगरहूपै प्रातर्वहुशोऽम्मोभि प्रपूर्य्य मुखरन्ध्रम् । निर्दयमुत्तक्वत्ति त्तपयति तिमिराणि ना सद्य ॥ ७२ ॥

लिह्यादित्यादि—सुश्रुतस्य । युक्तित इति मात्रया । अत्र यस्त्रैफल चूर्यमि-त्यादेरनन्तर सष्टत वा वराकाथ शीलयेत् तिमिरामयीति पाठो न युक्त , कल्क कायोऽथवा चूर्यमित्यादिनैवाक्तार्थत्वात् । जाता इत्यादी—धावनादिति प्रज्ञाल-नात् । निर्देशमुक्तिति अवगाढ सिन्चन् , ना इति पुरुष ॥ ७२ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चचुपोर्यत् प्रदीयते । श्रविरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोद्दति ॥ ७३ ॥ अन्तेत्यादौ—पाणितलमित्यनन्तरमाचान्तनारिपरिष्वतमिति रोप. ॥७३॥

सुखावती वार्तिः

कतकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता । फेने। रसाञ्जनं सौद्रं विडङ्गानि मन शिला॥ कुक्कुटाएडकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोद्दति। तिमिरं पटलं काचमर्भ शुक्तं तथैव च ।

कराङ्क्रेदार्बुदं हन्ति मलञ्चाशु सुखावती ॥ ७४ ॥

कतकस्येत्यादि—कनकस्य फल जलप्रमादफल, गङ्ख शहनामि., निता
गर्करा, फेन नमुद्रफेन:। चौद्रमत्राञ्जनार्थं, पेपण्डच जलेन । स्यञ्च वर्ति.

पिताशिते तिमिरे मद्रा ॥ ७४ ॥

चन्द्रोदया वर्तिः

हरीतकी वचा कुष्ठं पिष्पली मरिचानि च।
विभीतकस्य मज्जा च शङ्क्षनाभिर्मनःशिला ॥
सर्वमेतत् समं कृत्वा छागीन्तिरेण पेपयेत्।
नाशयेत् तिमिरं कर्ग्डं पटलान्यर्वुदानि च ॥
श्रिधिकानि च मांसानि येन रात्रो न हश्यते।
श्रिपि द्विचार्पिकं पुष्पं मासेनैकेन साध्येत्॥
वर्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां हष्टिप्रसादनी ॥ ७४ ॥
वन्द्रोदयवर्षित्तु कर्फातिमिरे प्रशस्ता। जलेन चान्जनमिति श्रीकपठः, तत्

सिद्धताञ्च अध्यापि व्यवहरन्ति वृद्धाः ॥ ७१ ॥

11

हरीतकी हरिद्रा च पिष्पस्यो लवणानि च ।
कराङ्गतिमिरजिद्धिर्त्तने काचित् प्रतिहन्यते ॥ ७६ ॥
हरीतकीत्यादी—लवणशब्दः सैन्धववचनः चक्तुष्यत्वादः, तच प्रथममागापेचया चतुर्थाशमित्याह । इयमपि कफे हिता । न कचित् प्रतिहन्यत इति पित्तनेष्वपि न वार्य्यत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

कुमारिका वार्त्तः

श्रशीतिस्तिलपुष्पाणि पिष्टः पिष्पलितण्डलाः । जातीकुसुमपञ्चाशन्मारेचानि च पोडश । एपा कुमारिका वर्त्तिर्गतं चलुर्निवर्त्तयेत् ॥ ७७ ॥ एपा कुमारिका वर्तिरित्यत्रं कुन्निमका वर्तिरिति वृन्दे पट्यते ॥ ७७ ॥

त्रिफलाद्यवार्त्तः

त्रिफलाकुकुटाएडत्वक् काशीशमयसो रजः।

नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनश्च सारितां पते ॥ श्राजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत् ताम्रभाजने । सप्तरात्रं स्थितं भूयः पिष्ट्वा चीरेण वर्त्तयेत् ॥ एपा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचन्नुष ॥ ७८॥

त्रिफलेत्यादी-काशीश धातुकाशीशम्, अयसी भारितपुटितस्य रज । भावयदिति स्थापयेत् लेपयेदिति वा । चीरेपेति आनेनैवेत्याहु वर्त्तयेदिति वर्ति कुर्यात् । अभिन्नचन्तुप इति अनप्टतारकस्य ॥ ७८ ॥

चन्दनाद्यवित्तः

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोगितैः । जलिपरेरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा ॥७६॥ चन्दनेत्यादी—पूग ग्रवाकफलम्, पलाशतरुशोगित किंशुकवेष्टकम्, पलाश-

पुष्पस्त्ररम् इत्यन्थे ॥७६॥

निशाद्यमञ्जनम्

निशाद्ययाभयामांसीकुष्ठकृष्णा विचृ्णिता ।
सर्वनेत्रामयान् इन्यादेतत् सौगतमञ्जनम् ॥८०॥
निशत्यादौ—द्युगतो इदस्ताभितत्वात् नौगतम् ॥८०॥
व्योषोत्पलाभयाकुष्ठतार्द्धैर्वर्त्तं कृता हरेत् ।
श्रर्बुदं पटलं काचं ति भिरामांश्रुनि स्रृतिम् ॥८१॥
व्योषेत्यादौ—तार्चं रसान्जनम् ॥८१॥

त्र्यूषगाद्यवार्त्तः

त्र्यूपणं त्रिफला वक्त्रं सैन्धवालमन शिला। केदोपदेहकराङ्क्ष्मी वर्त्ति शस्ता कफापद्या ॥=२॥ त्र्यूपणेखादौ—वन्त्र तगरपादुका, शाल हरितालम् ॥=२॥

नयनसुखा वर्त्तिः

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा। वर्तिरियं नयनसुखा तिमिरामेपटलकाचाश्रहरी । प्रशा ण्कगुणेत्यादौ-अत्र अमंतिमिर्पटलाश्रुकाचहरीति पठनीयम्, श्रन्यथा छन्दो-मङ्गः स्यात् ॥=३॥

चन्द्रप्रभा वितः

श्रक्षनं श्वेतमरिचं पिष्पली मधुयप्रिका ।
विभीतकस्य मध्यन्तु श्रङ्खनाभिमन शिला ॥
पतानि समभागानि श्रजाद्धीरेल पेपयेत् ।
छायाश्रुष्कां छतां वर्ति नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥
श्रवुंदं पटलं काचं तिमिरं रक्षराजिकाम् ।
श्रिचमांसं मलञ्जेव यश्च रात्रो न पश्यित ॥
वर्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमि शोधयेत् ॥ ५४॥

श्रजनित्यादि—श्रञ्जन रसाज्जनम्, श्रेतमरिच शोभाजनवीजम्, एव

श्रीनागाजुना वर्त्तः

त्रिफलाव्योपसिन्धृत्थयष्टीतृत्थरसाञ्जनम्।
प्रपौएडरीकं जन्तुम्नं लोभ्नं ताम्नं चतुर्दश् ॥
प्रव्याएयेतानि सञ्चूएर्य विस्तं कार्य्या नभोऽम्बुना।}
नागार्जुनेन लिखिता स्तम्मे पाटलिपुत्रके ॥
नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां तथैव च ।
सद्य प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते भ्रवम् ॥
किंशुकस्वरसेनाथ विल्वपुष्पकरक्षताः।
प्रज्ञनाल्लोभ्रतोयेन चासम्नतिमिरं जयेत् ॥
विरमाच्छादिते नेत्रे वस्तम्त्रेण संयुता।
उन्मीलयत्यक्रच्छ्रेण प्रसादश्चाधिगच्छति ॥
८४॥

त्रिफलेत्यादी--जन्तुझ विडङ्गम्, ताझन्च मारित याद्यम् । चतुर्दशेति सख्या-कथनेन अस्या वर्त्तेश्चतुर्दशाङ्गीति नामान्तरमपि सूचितम् वाग्मटवचनात् । स्तम्मे शिलास्तम्मे । किंशुकस्वरसेनेति किंशुकपुष्पस्वरसेन ॥=५॥

15

पिप्पल्याद्यवार्तिः

पिष्पर्ली सतगरोत्पलपत्रा वर्त्तयेत् समधुकां सहरिद्राम्। एतया सततमञ्जयितव्यं यः सुपर्णसममिच्छति चत्तुः॥=६॥

पिप्पलीमित्यादी—उत्पलपत्रम् उत्पलपुष्पस्य पत्रम् । वर्त्तवेदिति वर्त्ति कार-येत् ॥=६॥

कोकिला वर्त्तिका

व्योपायश्चूर्णंसिन्धृत्थत्रिफलाञ्जनसंयुता । गुडिका जलपिष्टेयं कोकिला तिमिरापद्दा ॥≍७॥

व्योपेत्यादी---- अञ्जन सीवीराञ्जनम् । कीकिलवत् कृष्णवर्णत्वात् कीकिलेति वत्तं मझा ॥=७॥

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि द्वे रजनी सह सैन्ध्यकब्च । विल्वतरोर्वकणस्य च मूल वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥ इन्ति तमस्तिमिर पटलब्च पिश्चिटशुक्रमथार्जुनकब्ब । ब्राज्जनक जनरञ्जनकब्च हक् च न नश्यति वर्षशनब्च ॥==

त्रीयात्यादी—द्वे रजनीति कोलिङ्गनिर्वेशात् न्नीलिङ्गे एस्त्रेकारान्तीऽपि रजनीशब्दोऽस्तीति जेयम्। वारिचर शङ्गनाभि , वारिधर इति पाठे वारिधरो मुस्तकम्। इन्ति तमस्तिमिरामिति अन्धकारत्वमाधर्म्यात् तम सष्टश तिभिर इन्तीति । अञ्जनक-मिति मज्ञाया स्वार्थे क । जनरञ्जक जनानुरागकारीत्यर्थे । दोषकारुवच्चन्द्व ॥ ॥ ॥

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिष्पली रक्षचन्दनम् ।

श्रद्भानं सैन्धवद्भवेव सद्यास्तिमिरनाशनम् ॥ ८६ ॥

नीलोत्पलमित्यादौ-अन्त्रन रसान्त्रनम् , यन वस्त्यमाणेऽपि ॥ ८६ ॥

पत्रगैरिककर्पूरयप्टीनीलोत्पलाञ्जनम् ।

नागकेशरसंयुक्षमशेषितिमिरापहम् ॥ ६० ॥

पत्रेत्यादि-पत्र तेनपत्रम् , गैरिक स्वर्णगैरिकम् ॥ ६० ॥

शङ्खस्य चतुरो भागास्तदर्द्धेन मन शिला ।

मन शिलाई मरिचं मरिचाईन पिष्पली ॥

वारिणा तिमिरं हन्ति श्रुर्वुदं हन्ति मस्तना ।

पिचिटं मधुना हन्ति स्त्रीचीरेण तदुत्तमम् ॥ ६१ ॥ राङ्कस्थल्यादौ-चतुरा मागा शित छान्दसत्त्रात्। एतैर्जलिपेष्टै वित्तं कार्य्या । स्त्रीचरिण तदुत्तमिति उत्क्रप्टशक्तिकमित्यर्थं ॥ ६१ ॥

हरिद्रा निम्वपत्राणि पिष्पल्यो मरिचानि च । भद्रमुस्तं विडहानि सप्तमं विश्वभेषजम् ॥ गोमूत्रेण गुडी कार्यां छागमूत्रेण चाञ्चनम् । ज्वरांश्च निखिलान् हन्ति भूतावेशं तथैव च ॥ वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा । नक्कान्ध्यं भृक्कराजेन नारीसीरेण पुष्पकम् ॥ शिशिरेण परिस्नावमध्यं पिचिटं तथा ॥ ६२ ॥

हरिदेत्यादौ---भद्रमुस्त कान्तकामक । भृद्गराजेनेति भृद्गराजस्वरमेन । शिशिरेग्रेत्यवश्यायजलेन । श्रधुप मुखरोगविशेष , ज्वराश्च निखिलान् हन्ति इति । ''प्रभावादेव हन्ति ज्वराश्च'' इति निश्चलस्तु श्रायुवेदे पठति ॥ ६२ ॥

संगृद्योपरतानलक्षकरसेनामृज्य गङ्कपदान् लाज्ञारिक्जतत्त्लवर्त्तिनिहितान् यप्टीमधूनिमश्चितान्॥ प्रज्वाल्योत्तमसिर्पणानलशिखासन्तापजं कज्जलं दूरासक्षनिशान्ध्यसर्वतिमिरप्रध्वंसकृष्ट्योदितम्॥ भूमौ निघृष्टयांगुल्या श्रक्जनं शमनं तथे।। तिमिरकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम्॥ ६३॥

सगृह्मेत्यादी—उपरतानिति मृतान्, आमृज्यालक्तकरसेन भावियत्वा इत्यर्थ । लाक्षारान्जित नूलमलक्तकम्, उत्तमसार्पेषा गव्यष्टतेन । मृतगय्ह्पदान् अलक्तकरस दत्त्वा आतेष शोषयेत् , तदनु चूर्णीकर्षव्य, तदनु तत् गय्ह्पदचूर्णं यष्टिमधुचूर्येन मह अलक्तपत्रमध्ये कृत्वा सृत्रेण सनेष्ट्य वर्षि कार्य्या । तया वर्त्या गव्यष्टतिमिश्रित्या दीप प्रज्वाल्य तद्दीपशिखोपरि निर्मलकाचादिपात्र धृत्वा कज्जलपातन कर्त्तव्य, तेन कज्जलेन कदुण्येनाञ्चन कर्त्तव्यमिति क्रियामार्ग । आन्ध्यशब्दो दूरादिमि मम्बध्यते । प्रत्यक तयोरिति दूरासन्नान्ध्ययोर्निशान्ध्यदिवान्ध्ययोरिति वा धूमिका धूमिकावलोकनम् ॥ ६३॥

तिफलाभृद्गमहौषधमध्वाज्य च्छागपयसि गोमूत्रे ।
नागं सप्तिनिपक्षं करोति गरुडोपमं चलु ॥ ६४ ॥
तिफलासिललयोगे भृद्गराजद्रवे च
हिविष च विषकत्के चीर आजे मध्ये ।
प्रतिदिनमथ तप्तं सप्त वा सीसमेकम् ।
प्राणिहितमथ पश्चात् कारयेत् तच्छलाकाम् ॥
सवितुरुद्यकालं साजना व्यक्षना वा
करकरिकसमेतानमंपैश्चिट्यरोगान् ।
असितसितसमुत्थान् सन्धिवतमांमिजातान्
हरति नयनरोगान् सेच्यमाना शलाका ॥ ६४ ॥

त्रिफलेत्यादै।—इिविधि च विषकत्क इति विष मारकद्रव्य कत्करूप तत्र तादृशि इविधि । अतएव चन्द्रोट "इविधि च विषमिन्ने" इत्युक्तम् । वाग्मेटऽपि "सविषाच्यमनापय" इत्युक्तम् । मधूम इति प्रचुर मधुनि, अन्ये तु मधुशब्देन यष्टिमधु वदन्ति । जक्त हि वाग्मेट—"वराजक मृह्नजल सविषाच्यमजापयः । यष्टी-रसम्च यद सीम सप्तकृत्व पृथक् पृथक् दिते । साञ्जना तिमिराञ्जनेन सहिता, व्यञ्जना तद्रहिता । करकरिका वालुकाभिभृतनेत्रवेदनावद् वेदना ॥ १५॥

> विश्वापत्ररसं निधाय विमले चौह्रम्वरे भाजने मूलं तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौक्षं विशोण्यातपे। तञ्चूर्णे विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जने शस्यते काचार्मार्जुनपिचिटे सतिमिरे स्नावश्च निवीपयेत् ६६

चिष्चेत्यादी--श्रौडुम्बरे भाजने तात्रादिपात्रे । गीन्त्र मूल काक्त्यान्तिका-मूलम् । विमलान्त्रन सीवीरान्जनम् ॥ ६६ ॥

> चित्राषष्ठीयोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्यं तेनाचि । सममञ्जनेन तिमिरं गच्छिति वर्णादसाध्यमपि ॥ ६७ ॥ चित्रत्यादि—चित्रापधायोग रति चित्रानचन्नयुक्तपष्ठयाम् ॥ ६७ ॥ दद्यादुशीरनिर्युहे चूर्णितं करासैन्धवम् ।

तत् सुते सघृतं भूयः पचेत् चाँद्रं चिपेद् घने ॥
शीते तस्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥ ६८ ॥
दशादित्यादि—नाग्मदस्य । कयेति पिप्पली, झान्दसत्वाद इस्तत्वम् । स्नुत
इति वस्त्रपरिस्नते, धताचोशीरिनिर्यूहिविशेषयम् । उशीरमूलस्य काथः, कयासैन्धवधतानि मिलित्व। पादिकानि अष्टमाशानि वा दस्ता, पाकाद धन कार्य्य । शीते
चास्मिन् पादिक मधु प्रचेप्यम् । वैद्यप्रसारके त्वस्या विवर्ण यथा—'उशीरस्य
पलद्य, जलस्य चत्वार शरावा , स्थाप्यस्तु शराव एक , पूते तस्मिन् प्रचेपार्थ
कणासैन्धवयो प्रत्येकमप्टमापक, धतस्य च कर्ष , पुन. पाकेन धनीभूते शीते च
मधुनः कर्ष. ॥ ६८ ॥

धात्रीरसाञ्जनसौद्ध-सर्पिभिस्तु रसिक्षया। पित्तानिलासिरोगद्गी तैमिर्य्यपटलापहा॥ ६६॥

धात्रीत्यादि — धात्रीकाथे रसान्जनचूर्णे धतन्च प्रचिप्य पुन, पाकात् रस-किया साध्या। रमिक्रेयिति धनीभूतकाथस्य सङ्घा। शीते च मधु भेचेप्यम्। मानमेषा सर्वेषा पूर्ववदिति ॥ ६६ ॥

> श्टङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् । नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १०० ॥

शृङ्गवरिमत्यादि—यिष्टमधुसाधितेन तैलेन मिश्रित शृङ्गवेरसङ्गराजचूर्यं नस्य किंवा सङ्गराजस्वरसे तैलिमिश्रिते शृङ्गवेरयिष्टमधुचूर्यं प्रिचय नस्य कार्यम् ॥ १००॥

> 'लिइनाशे कफोद्भूते यथावद्घिघपूर्वकम् । विद्ध्वा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत्॥ ततो दृष्टेपु रूपेषु शलाकामाहरेच्छ्रनेः । नयनं सर्पिपाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वृष्टयेत्॥ ततो गृहे निरावाघे श्र्यीतोत्तान पव च । उद्गारकासत्त्वयुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥ तत्कालं नाचरेदृद्ध्वं यन्त्रणा स्नहपीतवत्। ज्यहात् ज्यहाद्धारयेत्तु कषायैरनिलापहैः॥ वायोभयात् ज्यहादृद्ध्वं स्वेदयेदत्ति पूर्त्वच।

दशरात्रन्तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥
पश्चात् कर्म च सेवत लघ्वन्नश्चापि मात्रया ।
रागश्चोषोऽर्बुदं शोथो वुद्वुदं केकराज्ञिता ॥
श्चिमन्थादयश्चान्ये रोगा स्युर्दुष्ट्वेधजाः ।
श्चिहिताचारतो वापि यथास्वं ताजुपाचरेत् ।
रुजायामज्ञिरोगे वा भूयो योगान् निवोध मे ॥१०१॥

लिक्स्ताश इत्यादि-लिग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिक्स दृष्टिस्तस्य नाशो लिक्स-नारा । कफोद्भूते इत्यनेन वातज पित्तजश्च विद्धा न सिध्यतीति दरायित । यथवादिधिपूर्वकामिति-विधिश्च विदेष्ट-सुश्रताट्युक्त तत्रानुमन्धयः, स च विस्तार-भयाश्र लिखित । दैवकृते छिद्रे अपाहमागवातिन शुस्तमागस्य मध्ये यदैवकृत छिद्र-मस्ति, तस्मिन् । तदुक्त ग्रुश्रुते--'मितमान् शुक्तमागी ही कृष्णान्मुको छपाइत । उन्मील्य नयने सम्यक् छिद्र दैवकृते तत । शलाक्या ताम्रमय्या व्यथयेत् 'इत्यादि । कृष्णात् कृष्णमण्डलात् प्रमृति हो शुक्तमागी त्यक्त्वा मध्ये दैवकृत श्चिद्र यदस्ति, तिसम् विध्येदिति । व्यथम् तथा कर्त्तव्यो यथा एकैव पर त्विमद्यते । सम्यग्व्यथ-लिङ्गश्च सुश्रतेनोक्षः, यथा-- 'वारिगमे सम्यवशब्दश्च व्यथने भवेत् । श्रसम्यग्विदे तु सो। चितागम " इति । पट्टबक्केण वेष्टयेदिति-सद्य चतरोपचलो धर्काचन्दन त्रिफलाचूर्यं दत्त्वा बस्नेख बेष्टनम्, श्रन्ये तु धुस्तुर्पिएड दत्त्वा बस्नेख बेष्टयन्ति । निराबाध इति धूमातपादिरहितस्थाने । शयीतोत्तान पवेति एतच चक्कर्दयोर्ध्यभे शेयम्, एकतरस्य व्यधे तु विद्वचन्नुयोऽन्येन पार्श्वेन शयन श्रेयम् । वारभेट-प्येवमेनोक्षम् । उद्गारेत्यादी-उत्कम्पन कम्पनमेव । तत्कालमिति सप्ताहम् । उक्ष हि नाग्मेटे-- इवधुकासमुद्रार सप्ताह नाचरेत्" इति । उद्ध्वीमिति उत्तानरायनात पर उद्रारादीनि सप्ताइ परिहरेदित्यर्थ । यन्त्रणा स्नहपीतवदिति स्नहपीतस्येव आहाराचारादिनियम: पूर्ववत् इति वस्नेगाच्छाद । कियन्त कालमय विधि कार्य्य इत्याह दशाहमेवमित्यादि-सयम्येति एवमुत्तानशयनादिना श्रात्मान ानियम्य अनन्तर दृष्टिप्रसादनादि हित पक्षाञ्चन्त्रज्ञापि कर्म सेवेतेत्यर्थ । इष्टिप्रसादन-मजनादि लघ्नन्नञ्चापीति चकाराइशाहाभ्यन्तरेऽपि लघ्वन्नविधि समुचिनोति । राग रत्यादि--- सुमुतस्य । चीम उपतापः, चीमणवत् पीडा वा,मर्बुदम् मर्बुदाकारशीथ , तुद्बुद बुद्बुदाकारशोथ । केकराचिता वक्रदृष्टिता, टेरनेत्रमिति यावत् । शूकरा-

चितेति पाठान्तरे ग्र्करस्येवाघोदृष्टितेत्यर्थ । रोग इत्यादि सुग्रतस्य । यथास्वमिति वातादिप्रत्यनीकादिभिः । रुजायामिनि चोपादिरूपपीडायाम् ॥१०१॥

> किलकता सघृता दूर्वयवगैरिकशारिवा । सुखालेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥१०२॥

किलकेन। इत्यादि—नाग्मटस्य । सुखालेपा इति एतै सममागैश्चन्तु समीपे प्रलेप इति । रागोऽचिलीहित्यम् ॥१०२॥

पयस्याशारिवापत्र-मञ्जिष्ठामधुकैरिप । श्रजाचीरान्वितेर्लेपः सुखोष्ण पथ्य उच्यते ॥१०३॥

पयस्थेत्यादि —वाग्भटस्य । पयस्या चीरकाकोली, पत्र तेजपत्रम् । वाग्भटे मुखोष्या पथ्य उच्यते इत्यत्र मुखोष्या शर्मकृत् पर इति पाठ ॥१०३॥

> वातन्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे । काकोल्यादिप्रतीवापं प्रयुञ्ज्यात् सर्वकर्मसु ॥ शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्वित्तस्य मोत्तयेत् । तत शिरां दहेचापि मतिमान् कीर्त्तितां यथा । हेप्रतः प्रसादार्थमञ्जने श्र्यु मे शुभे ॥१०४॥

वातन्नेत्यार्टं — सुश्रुतस्य । वातन्नो भद्रदार्वादि , तेन चीरसाधनपरिभाषया मिद्ध पयसि चतुर्श्यो । सर्वकर्मस्विति नस्यापानादिषु । शाम्यतीत्यादि — सुश्रुतस्य । शिरामिति ललाटस्था शिरा मोचयेत दहेचापीत्यन्वय । दृष्टेरित्याटि — सुश्रुतस्य । अत इति शिरान्यथदाद्दानन्तरम् । न्यथदाद्दाभ्या दोषशेषेण वा कलुपिताया दृष्टे प्रमादनाय श्रुक्षनम् । श्रुक्षने इति श्रुक्षनद्वयम् ॥१०४॥

मेषश्रद्गस्य पत्राणि शिरीपधवयोरिष । मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदूर्य्यमेव च । श्रजाद्गीरेण सम्पिष्य ताम्ने सप्ताहमावपेत् । प्रणिधाय तु तद्वर्त्ति योजयेदञ्जने भिषक् ॥१०४॥

मेषश्वको मेषश्वकी, पुत्रश्चावकवृत्त इत्यन्ये । आवपेदिति आलिप्य स्थाप-येत् ॥१०४॥ स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला । मरिचानि च तद्वर्तिं कारयेत् पूर्ववद्भिपक् ॥१०६॥ स्रोतोबिमलादि—ग्रुम्रतस्य । स्रोतोज रसाजनम् । पूर्वविति छागीचीरेण

पिष्ट्वा ताम्रपात्रे सप्ताह स्थापयेदित्यर्थ ॥१०६॥

रसाञ्जनं घृतं चौद्रं तालीशं स्वर्णगैरिकम् । गोशकृद्रसंस्युक्तं पिचोपहतदृष्ट्ये ॥१०७॥

रसाजनामित्यादौ-गोशकृदसेन वार्ति कार्यो ॥१०७॥

निलनोत्पलिकजल्कं गोशकृद्रसंसयुतम् । गुडिकाञ्जनमेतत् स्याद्दिनराज्यन्ययोर्द्दितम् ॥१०८॥

निलेनत्यादि — निलन पद्मम्, उत्पल नीलोत्पलम्, इयो॰ निजल्क । गोरा-कृद्रमिति गोराकृदसेन गुडिका कार्य्या इत्याहु ॥१०८॥

> निदीजशह्न विकट्टन्यथाअनं मनःशिला द्वे च निशे गवां यकृत्। सचन्दनेयं गुडिकाथ चाअने प्रशस्यते रातिदिनेष्वपश्यताम्॥ १०६॥

नदीजेत्यादि-सुश्रुतस्य । नदीज सैन्धवम् , शङ्क राखनामि , शखस्थाने शिम्बीति पाठे शिम्बी हरितमुद्ग , अञ्चन रसाञ्जनम् । गवा यञ्चत् बुकाय ,शञ्च-दिन्यपि पाठान्तरम् ॥ १०६॥

कणाञ्जागयक्तन्मध्ये पक्का तद्रसंपेषिता । श्राचिराद्यन्ति नक्कान्ध्यं तद्वत् सत्तौद्रमूषणम् ॥ ११०॥

कर्णत्यादि—छागयकृत् विदार्थ्यं तन्मध्ये पिष्पलीं स्थापयित्वा उत्सेवदेशेत् । पका उित्सन्ना । तद्रमेपेपितेति उत्सेवदाम्बुना पिष्ट्वा विश्वः कार्य्येत्यर्थं । तद्वत् मक्षेत्रमूपणमिति—ऊपण मरिचम् । पूर्वेषत् छागयक्वात्पराड विदार्थ्यं तन्मध्ये मरिच स्थापयित्वा उत्सेवदेयेत्, तत आकृष्य उत्सेवदाविराष्टजलेन तन्मरिच सम्पिष्य वर्षि कार्य्येत्यर्थं ॥ ११०॥

पचेत्तु गौधं हि यक्ठत् प्रकल्पितं प्रपूरितं मागधिकाभिरश्चिना।

निपेवितं तद् यक्तद्ञ्जनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंश्यं खलु ॥१११॥

पनिदित्यदि—पनेदुत्सेवदयेत् । गौध गोधाभव यक्तत्, पिप्पलीपूरणार्थं प्रकित्तिमिति पठितम् । आग्निनत्यत्र अम्बुनेति पाठान्तरे अम्बुना स्वेदन वोध्यम् । अत्र गोधायक्तद्रद्वपानितिमत्यपि पाठ. । निधेवित यक्तदिति, तथाभूत यक्तत् खादित-मित्यर्थं । पिप्पली त्वन्जनविधिना देयेति कश्चित् । अन्ये तु उत्स्वित्रकणामहित यक्तत् भव्यविधिना अञ्जनविधया च विहित नक्षान्ध्य हन्तीत्याहु. । अगरे तु उत्स्वित्रकणामहित यक्तत् अञ्जनविधया निपेवितं सन्नकान्ध्य हन्तीति न्याचवते । खलुरान्द्र एवार्थे, असरायमेवेत्यर्थः ॥ १११॥

दभ्रा निघृष्टं मरिचं राज्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम् ।
ताम्त्रृलयुक्तं खद्योतभत्त्त्णश्च तद्र्यंकृत् ॥ ११२ ॥
दन्नेत्यादि योग स्पष्ट ॥ ११२ ॥
शफरीमत्स्यत्तारो नक्तान्ध्यमञ्जनतो निहन्ति ।
तद्वद्रामठटङ्कणकर्णमलञ्चेकशोऽञ्जनान्मधुना ॥ ११३ ॥
शफरीत्यादि—शफरीमत्स्यमन्तर्धृम दन्ध्वा मधुना सन्ध्यायामञ्जनं कार्य्यम्

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याएडं हन्ति भित्तम् । नक्कान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात् पथ्यसंविनाम् ॥ ११४॥ केशराजेत्यादि—रे।हितमत्त्यादीनामण्ड केशराजं दत्त्वा उपदेशात् काञ्जि-केन पक्ता मस्यम् । इत: पर्रष्टतान्युच्यन्ते ॥ ११४॥

11 555 11

त्रिफलाघृतम्

त्रिफलाकाथकल्काभ्यां सपयस्कं श्टतं घृतम् । तिमिराणयचिराद्धन्यात् पीतमेतन्निशामुखे ॥ ११४॥ त्रिफलेत्यादौ—चतुर्शुणेन त्रिफलाकाथेन व्यवहरन्ति । सपयस्कमिति चीर स्नेहसमम् ॥ ११४॥

महात्रिफलादं घृतम्

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृहरसस्य च। चृपस्य च रसप्रस्थं शतावर्य्याध्य तत्समम्॥ श्रजाचीरं गुडूच्याश्र श्रामलक्या रस तथा।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सँवैरेभिर्धृतं पचेत् ॥
कलकः कणा सिता द्राचा त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं चीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका॥
तत् साधुसिद्धं विश्वाय शुमे भाएडे निधापयेत्।
ऊद्ष्वेपानमध पानं मध्ये पानश्च शस्यते॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकपीति।
नक्षान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलाबुदे॥
श्रीभण्यन्देऽधिमन्ये च पदमकोपे सुदारुणे।
नैत्ररोगेषु सर्वेषु वातिपत्तकफेषु च॥
श्रहिष्ट मन्दद्दिश्च कफवातप्रदूपिताम्।
स्रवतो वातिपत्ताभ्यां सकग्रद्वासम्बद्गुरहक्॥
गृभ्रद्दिकरं सद्यो वलवणीमिवद्देनम्।
सर्वेनेत्रामयं हन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम्॥ ११६॥

महात्रिफलाश्ते—मृपस्येति वामकस्य पत्ररस प्रसः । मधुपणी गुहूची । कद्भ्वंपानाटिविधिमीजनापेच्चया श्रेय । वातिपिचकफेष्मिति बातिपिचकफोद्धतेषु नेत्ररोरितेषु तथा कफवातप्रदूपणात् जातामदृष्टि मन्टदृष्टिश्चापकपंतीत्यर्थः । तथा वातिपिचार्भ्या स्रवत्यच्चप पथ्यमिति शेषः । तथा सक्यङ्वासन्नदूरहृक् यः तस्यापि गृष्टतुल्यदृष्टिकारकमिति नोपस्कर व्याख्येयम् । पुन सर्वनेत्रामय हरत्येव कथन सर्वनेत्रामयहरणस्यावस्यकत्वोपपादनार्थमिति श्रेयम् ॥ ११६॥

त्रैफलं घृतम्

त्रिफला ज्यूपणं द्रात्ता मधुकं कहरोहिणी।
प्रपौर हरीकं स्दमेला विडक्षं नागकेशरम्॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्पिके पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम्॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्रक्जापहृम्।
तिमिरं दोपमास्रावं कामलां काचमर्बुदम्॥

विसर्पं प्रदरं करहूं रक्तं श्वयशुमेव च ।
खालित्यं पिलतञ्चेव केशानां पतनं तथा ॥
विषमज्वरमर्माणि शुकञ्चाशु व्यपोहिति ॥
श्रन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजा ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
न चैवास्मात् परं किञ्चिहिषिम काश्यपादिभिः ॥
हिष्ठिप्रसाद्नं हष्टं यथा स्यात् त्रैफलं घृतम् ॥ ११७॥

त्रिफलेत्यादि-अत्रेगुण त्रिफलारसमिति एतप्रस्थविशेषणम् । विषमज्वर-मर्माणीति विषमज्वर तथा भ्रमांणीति विश्लेष ॥ ११७ ॥ फलात्रिकाभीरुकपायसिन्दं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम् ।

फलात्रकामारुकषायासद्ध कल्कन यष्टामधुकस्य युक्तम् । सर्पिः समं सौद्रचतुर्थभागं हन्यात् त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम्॥११८

फलित्रेकेत्यादौ — श्रमीरु शतमूली । तत्र फलित्रिकस्य काथ , शतमूल्यास्तु स्वरस इत्यर्थ । समिनित साध्वित्यर्थ । उक्त हि मेदनीकरकोषे — " सर्वसाधु समानेषु सम स्यादिभधेयवत्" इति । श्रन्ये तु समिनित महार्थे, यथोक्तकषायादिना सह सिद्धमित्यर्थ इत्याहु ॥ ११८॥

भृद्गराजाद्यं तैलम्

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च । तैलस्य कुडवं पकं सद्यो दृष्टि प्रसाद्येत् । नस्याद्वलीपलितझं मासेनैतन्न संग्रयः ॥ ११६ ॥

मृद्गराजेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ११६ ॥

गवां शक्तत्काथविपकमुत्तमं हितश्च तैलं तिमिरेषु नस्तत । 'घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथाश्वतैलं पवनासृगुत्थयो ॥१२०॥

गवामित्यादि — सुश्रुतस्य । गवा शकृत् कार्थविषकमिति गोशकृत कार्थोऽ-ष्टगुणाम्बुना कार्य , मृदोश्चतुर्गुण देयमिति परिमाषा व्यवहारवाषिता । ष्टत हि केवलमिति केवलमित्यसस्कृतम् । नस्तत र्ह्त इहापि सम्बध्यते । भ्रम्थतेलञ्ज सुश्रुते वातव्याषाबुक्तम् । कस्मिश्चित् सुश्रुतपुस्तके " ध्रत हित केवलमेव पेत्तिके " इत्य-स्यानन्तर " श्रनाविक यन्मधुरैविंपाचित तैल स्थिरादौ मधुरे च यद्गेणे " इति पाठो दृश्यते, स च पाठस्तथाविधाकारपुरतकेषु न दृश्यते, टीकाकृद्धिश न प्रामाणिकैर्लिखित इति कृत्वा अनार्ष इति कृषम् ॥ १२०॥

नृपवल्लभं तैलं घृतश्च

जीवकर्षभको मेदे द्राचांश्चमती निदिग्धिका बृहती।
मधुकं वला विडहं मिन्जिष्टा शर्करा रासा ॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौग्डरीकं पुनर्नवा लवणम् ।
पिप्पल्यः सर्वेपां भागरत्तांशिकैः पिष्टै. ॥
तैलं यदि वा सर्पिद्त्वा सीरं चतुर्गुणं पकम् ।
श्राज्ञयनिर्मितमिदं तैलं नृपवक्षमं सिद्धम् ॥
तिमिरं पटलं काचं नक्षान्ध्यमर्वुदं तथान्ध्यश्च ।
श्वेतश्च लिह्ननाशं नाशयित च नीलिकां व्यक्षम् ॥
मुखनासादौर्गन्ध्यं पिलतञ्चाकालजं हनुस्तम्भम् ।
कासं श्वासं शोप हिक्कां स्तम्भं तथात्ययं नेत्रे ।
मुखजहम्यमर्द्धभेदं रोगं वाहुश्रहं शिरास्तम्भम् ।
रोगानथोद्ध्वंजत्रो सर्वानविरेणैतद्विनाशयित ॥
पक्षव्यं कुडवं तैलं नस्यार्थ नृपवक्षमे ।
श्रत्वांशै शाणिकैः कल्कैरन्ये श्रुहांदितेलवत् ॥ १२१ ॥

जीवकेत्यादी—अशुमती शालपणें। अचाराँकीरित अच कंपरतस्यांशश्चतुर्थों भाग मायकचतुष्टय, तेन शाणिकीरित्यर्थ । तेन सर्वे मिलित्वा द्वादशामायकाथिक पल भवति, अनेन तेलकुडव साध्य, नस्यार्थ तेलकुडव प्रच्यत इति सम्प्रदाय । कुढवशाष्टी पलानि । न च कल्करतु केहपादिक इत्यनेन विरोध, कल्कपलेनापि तेलकुडव-पाकदर्शनाद, तथा पूर्वोक्तश्चक्र राजतेले, तथा वह्यमाणेऽभिजितनाश्चि तंले च । किंवा अचारिकैरिति कापिकै, असिन् पद्धे कल्कर्य वहुत्वाद तेलप्रस्य साध्य. । ज्यवहारस्तु पूर्वेणव । यदि वा सांपिरिति पैत्तिके तिमिरे सपि पक्षच्यम् । दृष्टिजे-ध्विति दृष्टिमयहलरोगेषु ॥ १२१॥

श्रभिजितं तैलम् तैलस्य पचेत् कुडवं मधुकस्य पलेन कल्किपिप्टेन । श्रामलकरसप्रस्थं चीरप्रस्थेन संयुक्तम् ॥
कृत्वाभिजितं नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्मुनिप्रोक्तम् ।
विमलां कुरुते द्विं नष्टामप्यानयेत्तथा ॥ १२२ ॥
श्रमिजित तेल स्पष्टम् ॥ १२२ ॥

श्रमं तु छेदनीयं स्यात् कृष्ण्प्राप्तं भवेद् यदा । विद्याविद्धमुश्लम्य त्रिभागञ्चात्र वर्जयेत् ॥ १२३ ॥ श्रमं तिल्लादि—श्रमं श्रामा इति ख्यातोऽचिरोगविरोष. । श्रमं छेदनीयः मिति मण्डलाग्रेखिति रोष । समुक्रम्येति स्च्यश्रेखित रोष. । स्च्यश्रेख समुक्रम्य उत्तीत्य श्रनन्तर बिंदरेन विद्ध्वा मण्डलाश्रेख छेदयेदित्यर्थः । त्रिभागमिति चृतीयभाग कनीनिका बर्जयेदित्यर्थ । उक्त हि रच्चन् कनीनिका हिन्दाश्चतुर्मागा-

पिष्पलीत्रिफलालाद्वालौहचूर्ण ससैन्धवम् ।
भृद्गराजरते पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥
श्रमं सतिमिरं काचं कएडूं श्रुकं तद्र्जुनम् ।
श्रजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ १२४ ॥
पिष्पलीत्यादि—मृक्षराजरसेनैव पेषणमञ्जनन्नेत्याहु. । गुडिकाञ्जन विन्तिरिल्यं । श्रजका श्रीहरोगमेद ॥ १२४ ॥

वशेपितम् रिति॥ १२३॥

पुष्पाख्यताद्यंजसितोद्दधिफेनशङ्खसिन्धृत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः।
पिष्टैश्च माज्ञिकरसेन रसिकयेयं
हन्स्यर्मकचितिमिरार्जुनवर्त्मरोगान्॥ १२४॥

पुष्पाख्येत्यादि — पुष्पाख्य पुष्पकाशीश, तार्स्थन रसाञ्चन, सिता शर्करा, शास शासनाम , गैरिकशिला गैरिकमेनेति श्रीकण्ठ । माचिकरसेनेति मधुरूपद-नेण । रसिक्रियेयमिति एतत् सर्व चूर्ण प्रनुरत्तरमधुना समालोक्य नशनिलकाया स्थाप्यमेतत् रसिक्रयानिधान नदिन्त । अतप्र पिष्ट चौद्रेण चालोक्य इत्यादि नचनमि पठन्ति ॥ १२५॥

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनै । स्वादुर्शातैः प्रशमेयच्छुक्किकामअनैस्तत ॥ १२६॥ कौन्मसेत्वादि—कौन्म मिर्फिशवंगिसत धनम् ॥ १२६॥
प्रवालमुक्तावैदुर्य्यशहस्काटिकचन्दनम् ।
सुवर्णरजतं चौद्रमञ्जनं श्रिक्तकापहम् ॥ १२७॥
शह्व चौद्रेण संयुक्त कतक सन्यवेन वा।
सितयार्णवर्फनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ १२८॥
प्रवालेत्यादि—चौद्रेण पेषणमञ्जव ॥ १२७॥ १२८॥
पैत्तं विधिमशेषण् कुर्य्यादर्जुनशान्तये।
वैदेहीसितमरिचं सैन्धवं नागरं समम् ॥
मातुज्जुहरसैः पिष्टमञ्जनं पिष्टकापहम् ॥ १२६॥

रंत्त विधिनिति पित्तामिष्यन्दोक्कविधिन् । उक्त हि 'पित्रामिष्यन्द्रगमनो विधिरर्जुनगान्निकृद् दित । वेदेहीत्यादि—वेदेही पिष्पनी, मिनमरिच गोमाजन-वीक्नम् । इति ग्रुक्तवेषु ॥ १२६॥

भित्त्वापनाहं कफजं पिष्पलीमधुसैन्धवै.। विलिखेन्मएडलाग्रेण प्रच्छुयेडा समन्तन ॥ १३०॥

भित्तत्यादि—सुश्रुतसः । भित्तिति मीहिमुखेनेति राप । यदान्युपनाह केवन कफ्त एवं, तथापि कफ्तनिति खरूपपर शेयम् । पिप्पनीमधुमैन्थवैरित्यनन्तर प्रति-नारणिति शेष । श्रव लेखनानन्तर प्रतिमारण शेयम् । वक्त हि वा मटे—''वपनाह मिपक् सिन्न मिन्न मोहिमुखेन तु। ने बेपद् मण्डनाग्रेण तनश्च प्रतिमारयेद्'' वि। श्रन्थ तु मेदनप्रतिमारणाम्यामप्रशमे तेखन प्रच्छनञ्च देयमित्याहु ॥ १३०॥

पथ्यात्त्रघातीफलमध्यवीजैस्त्रिङ्गेकमागैर्विद्घीत वर्त्तिम्॥ तयाज्ञयेदश्चमतिप्रगाढमच्लोहरेत् कप्रमिष् प्रकोषम् ॥१३१॥

पय्येत्यादी—फन्मस्यवाज्यद्र पय्यादिमि प्रत्येक मन्त्रस्यते। विदेषेकमाँगरिनि पय्यावीनादिषु यथाक्रम योज्यम्, अत्र पानीयेन पेपख्म् । मधुना त्वञ्जनीमिन ज्यवहरान्ति ॥ १३१ ॥

स्रावेषु तिफलाकाथं यश्वादोपं प्रयोजंयत् । क्रोट्रेगुज्येन पिष्पल्या मिश्रं विध्येच्छित् तथा ॥ १३२ ॥ क्रावेजितादां—प्रयोजयदिति पिनेत्। यथादोषिनिति क्रीट्रेग् पिचरक्ते, श्रान्येन क्राते पिते रक्ते च, पिष्पल्या तु क्रके । धीमरप्रगमे शिराज्यध क्षि ॥ १३२ ॥

विफलामूलकाशीश-सैन्धवै सरसाञ्जनैः। रसिक्रया किमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात् प्रतिसारणम् ॥१३३॥

लिफलेत्यादि—सुश्रतस्य। लिफलाकाथगोमृत्रे मिलित्वा पलचतुष्टये, काशीश-सैन्धवरमाञ्जन पलमान प्रिचय पुन पाकेन घनतामापाध रसिक्रया विधेया। किन्तु काशीशरसाञ्जन।पेच्चया सैन्धवमल्पमान व्यवहरन्ति वृद्धा । मूलस्थाने तुल्येति निश्चल. पठित । तन्मते लिफलाकाथस्थेन पलचतुष्टयम् । किन्तु सुश्रुते वहुपुस्तकेषु च मूत्रपाठ एव दृश्यते। भिन्ने स्थात् प्रतिसारणिमिति रसाञ्जनचूर्णमधुभ्यामेन प्रतिसारण क्षेयम् । इति मान्धेजपु ॥ १३३॥

स्विन्नां भित्वा विनिष्पीख्य भिन्नामञ्जननामिकाम्।
शिलेलानतसिन्धृत्थे सचौद्रैः प्रतिसारयेत्॥
रसाञ्जनमञ्जभ्याञ्च भिन्नां वा शस्त्रकर्मवित्।
प्रतिसार्थ्याञ्जनेर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवेः॥
सेद्येद् घृष्ट्याङ्गल्या हरेद्रकं जलौकसा।
रोचनाचारतुत्थानि पिष्पल्यः चौद्रमेव च।
प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण् इष्यते॥ १३४॥
प्रतिसार्थांन्जनैरिति अन्जनै कज्जले। रोचनत्यादि—ग्रुअतस्य। चारो यवचारः। रोचनादिषु प्रलेक चौद्रयोगः। प्रतिसारणमिह त्रणमुख दानम्, न तु
वर्षणम्॥ १३४॥

निमेपे नासया पेयं सिंपस्तिन च पूरणम् । स्वेदियत्वा विसन्निंथ छिद्राणयस्य निराश्रयम् । पक्तं भिन्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावच्चृर्णयेत् ॥ १३४ ॥

निमेष इत्यादी—सार्पिस्तिफलासिद्धमिति केचित् । अन्य त्वपक्षमित्याडुः । पूर्यामिति तेन सर्पिषा चन्नु पूर्यामित्यर्थः । स्वेदियत्वेत्यादौ—विममिति विस-वर्त्माख्याचिरोगम् । निराश्रयमिति आश्रय स्फोटक निरवशिष्ट यथा स्थात् तथा मिस्वेत्यर्थः । अल्पेऽल्पाश्रये सति व्याधेरस्य पुन सम्मवात् । उक्त डि-"विसम्रान्थं तथा भिन्धात् यथा स्थान्नाश्रयः क्रचित् । पुनः प्रवर्द्धते यस्मादल्पेऽप्यस्याश्रवे स्थिते" इति ॥ १३४॥

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोत्तणम् । पुनः पुनर्विरेकञ्च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ पिल्ली स्निग्धो वमेत् पूर्व शिरावेधं स्रुतेऽस्रुजि । शिलारसाञ्जनव्योपगोपित्तैश्चजुरञ्जयेत् ॥ १३६॥

वरमेंत्यादिना पिह्नरागचिकित्सामाइ, वरमीवलेखमिति—कर्कशशाखोटकादिप-श्रेय वर्तमवर्षयम् । पिह्मलचयाञ्च पूर्वमेवोक्षम् । वाग्मेटेन तु कुक्यकादीनामष्टाद-शाना पिह्माख्या कृता । यथा—"पतेऽष्टादश पिल्लाख्या दीर्घकालानुवन्धिन ' इति । पिल्लीक्ष्यादौ—सेवदोऽपि वोध्यो वमनाङ्गत्वाद । शिरा लालाटी । शिलेत्यादौ— गोपित्तस्याप्राप्ती गोरोचनया सर्वत्र व्यवहारः ॥ १३६ ॥

हरितालवचादारुसुरसारसपेपितम् । श्रमयारसपिष्टं वा तगरं पिन्ननाशनम् ॥ १३७ ॥

भावितं वस्तम्बेण सक्षेदं देवदारु न्व । काकमाचीफलैकेन घृतयुक्केन दुद्धिमान् ॥ धूपयेत् पिक्षरोगार्चे पतन्ति किमयोऽचिरात् ॥ १३८॥

मावितिमित्यादी—केहो प्रत चचुज्यत्वात् । पतदि प्रतिसार्यम् । काकमा-चीत्यादौ—फलमेकमेव प्रतिलात घूपार्थम् । घूपन चचुर्वाससाच्छाच कार्थ्यम् । अन्य तु एकेन केवलेन मावनादिरिहतेन घूपनामित्याहुः ॥ १३८ ॥

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुण्पं मनःशिला।
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥
पतव् समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिश्चवर्त्मनि।
श्चञ्जनं क्लेदकराह्मं पदमणाञ्च प्ररोहणम् ॥ १३६ ॥
रसाधनमित्यादौ—सर्जरसो यचप्प । श्रव्ष पेषण मधुनेन ॥ १३६ ॥
मस्तकास्थि चुलुक्यास्तु तुषोदलवणान्वितम् ।
ताम्रपात्रेऽञ्जनं घृष्टं पिक्ले प्रक्लिन्वतर्मिनि ॥ १४० ॥

मस्तकास्थीत्यादौ—-चुल्लकी शिशुमार , तस्य मस्तकास्थि, तुषोदक काञ्जिकम् ॥ १४० ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धृत्थं मरिचान्वितम्। श्रारनालेन संघृष्टमञ्जनं पिज्जनाशनम् ॥१४१॥

ताञ्चत्यादौ — गुहा पृक्षिपणीं, तस्या मूल ताञ्चपात्रे सप्ताह वर्षयेदिति श्चेयम् । श्वन्ये तु गुहास्थाने स्तुहेति पठित्वा स्तुहीमूलमाहु । तन्न प्रचालनेन चीररहित फुत्वा श्रष्टानिवर्षे। प्रयोज्यमिति वदान्ति । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ १४१ ॥

हरिद्रे त्रिफला लोधं मधुकं रक्षचन्दनम् ।
भृक्षराजरसे पिष्ट्वा घर्षयेत्रीहभाजने ॥
तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्ति रजोऽथवा ।
पिच्चिटी धूमदशी च तिमिरोपहतेत्त्रणः ॥
प्रतिनिश्यञ्जयेश्वित्यं सर्वनेत्रामयापहम् ॥ १४२ ॥

हरिदेत्यादी—तथेत्यनेन तात्रपात्रे सप्ताह धर्पयेदिति योज्यम् । अन्य तु तथा तात्रे चेति विकल्पार्थमेतद्वचनम् , न समुचयार्थं , तेन लौहभाजने तात्र-भाजने वा धर्पयेदित्याहु । रजोऽथवेति एतेन चृर्णाञ्जनमप्युपदिशन्ति ॥ १४२ ॥

चूर्णाञ्जनम्

मञ्जिष्ठामधुकोत्पलोद्धिकफत्वक्सेव्यगोरोचनाः
मांसीचन्दनशङ्खपत्रगिरिमृत्तालीशपुष्पाञ्जनैः ।
सर्वेरेव समांशमञ्जनमिदं शस्तं सदा चजुपोः
कराड्कलदमलाश्चशोणितरुजापिल्लामश्चकापहम् ॥ १४३ ॥
मिन्जष्ठित्यादौ—उद्धिकफः समुद्रफेनः; सेन्यमुशीरम् , पत्र तमालपत्रम् ,
तेजपत्रमित्यन्ये, पुष्प पुष्पकाशीशम्, श्रन्जन रसान्जनम् । तालीशपत्राञ्जनेरित्यिष्
पाठ । वितिरिय चूर्यान्जन वा ॥ १४३ ॥

तुत्थकस्य पतं श्वेतमिरचानि च विश्वतिः। विश्वता काञ्जिकपत्तैः पिष्ट्वा ताम्रे निघापयेत्॥ पिह्वानिपह्मान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानिप। तत्सेकेनोपदेहाश्रुकराङ्कशोथांश्च नाश्येत्॥ १४४॥

1

तुत्थकस्यत्यादि —वाग्मटस्य । श्वेतमरिचानि शोमाञ्जनवीजानि विशिति-९ रित्याकृतिमानात् । उपदेष्ट पिक्वीडिका ॥ १४४ ॥

> याप्यः पदमोपरोधश्च रोमोद्धरणलत्तणः। वर्त्मन्युपवितं लेख्यं स्नाव्यमुिक्किष्टशोणितम्॥ प्रवृद्धान्तर्मुखं रोम सिह्णोरुद्धरेच्छने। सन्दंशेनोद्धरेद् दृष्ट्यां पन्मरोमाणि वुद्धिमान्॥ रचन्नित्तं दृदेत् पदमा तप्तद्देमशलाक्या। पद्मरोगे पुनर्नेवं कदाचिद्रोमसम्भवः॥१४४॥

याप्य इत्यादी—रोमोद्धरणलच्च गिरित्यनन्तर कर्ममिरिति रोप । पदमोपरोधो रोमोद्धरणलच्च कर्मभिर्याप्य यापनीय । लद्य गिरित्य के खनैरित्यपि
पाठान्तरम् । नत्मन्युपीचतिमिति पदमलोमिति रोप । केनप्रकारिणोद्धरेदित्याद्ध मन्दरोनत्यादि—दृष्ट्या पद्दमरेगाणीत्यत्र दृष्ट्वा पद्दमरोमाणीत्यिष पाठान्तरम् । रचनित्यादी—पद्दमिति पद्दमस्थानम् । उक्त द्दि "पद्दमरोगे द्वते ले। स्त्रि दाद्द तत्स्थानके भिषक् । तत्त्वा देमस्ट्या तु युञ्ज्योद्वाप्यमयाद्यक्य्रभे दित ॥ १४५॥

उत्सिक्षिनी वहुलकर्द्मवर्त्मनी च श्यावञ्च यच्च पिठतिन्त्वह बद्धवर्त्म । क्षिन्नञ्च पोथिकियुतिन्त्वह वर्त्म यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्करयावलेख्याः॥ श्लेष्मोपनाहलग्णी च विसञ्च भेद्यो श्रिन्थश्च य क्रिमिक्ततोऽञ्जननामिका च॥१४६॥

इदानीं नेशरोगेषु मध्ये ये च लेख्या ये च भेचास्तानाइ उत्सिद्धिनीत्यादि— सुश्रुतस्य । बहुलकर्दमवर्त्मनी चेति वहुलवर्त्म कर्दमबर्त्म चेत्यर्थ । श्यावञ्चेति श्याव वर्त्म, तथा क्षित्रका क्षित्रवर्त्म । विसमिति विसमिथ ॥ १४६ ॥

ं घृतसैन्धवचूर्णेन कफानाहं पुनः पुनः। विलिखेन्मडलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः॥ १४७॥

धतित्यादि---धतिमश्रतैन्थवन्त्र्योन विलिखेत् प्रतिसारयेत् । मगदलाग्रेग तु प्रच्छेयदित्यर्थ ॥ १४७॥

पटेालामलककाथैराश्च्योतनविधिर्द्धित ।
फार्योज्मकरसोनस्य रसैः पोथिकिनाशनः॥ १४८॥
पोथकीचिकित्सामाह पटोलेत्यादि —कियाज्मक पर्यांत । रसैरित्यनन्तर पिष्ट
इति शेष । कियाज्मकपत्र रसे।नस्य रसै. पिष्टमाश्च्योतनिमत्यर्थ ॥ १४८॥

त्रानाद्दिपिडकां स्विन्नां तिर्योग्भित्वाग्निना दहेत्। त्रशंस्तथा वर्तमं नाम्ना शुष्काशों ऽर्बुद्मेव च। मएडलाग्नेण तीच्णेन मूले छिन्द्याद्भिषक् शनैः॥ १४६॥ मानादिष्टकामित्यादौ—दहेदिति च्लेदः। मर्शः प्रमुतीनान्तु क्रिन्धादित्यने-

नान्वय ॥ १४६ ॥

सिन्धूत्थिपिष्पलीकुष्ठपर्णिनीत्रिफलारसैः।
सुरामएडेन वर्त्तिः स्यात् रहेष्माभिष्यन्दनाशिनी।
पोथकीवत्मेपरोधिकिभिग्रन्थिकुकुणके॥ १४०॥
इति नेत्ररोगिविकित्सा।

मिन्धूत्थादीना प्रत्येक सम चूर्ण गृहीत्वा त्रिफलारसेन मावियत्व। सुरामएडेन वर्ति कार्व्येत्यर्थ ॥ १५०॥

इति नेत्ररोग-चिकित्साविष्टति ।

अथ शिरोरोगचिकित्सा।

वातिके शिरसो रोगे स्नहस्वेदान् सनावनान्। पानान्नमुपनाहांश्च कुर्य्याद्वातामयापहान्॥१॥

शिर सिश्रतकर्णनासानयनगतरागाणा चिकित्सितसुक्त्वा सम्प्रति तदाश्रयस्य शिरसो रोगाणा चिकित्सामाह वातिक इत्यादि—स्वेदोऽत्र वातहरद्रव्यकृतस्वरसा-दिभि । उपनाहः स्वेदविशेष । श्रन्ये तृपनाह शिरोवस्तिमेदमाहु येन मस्तिष्क उच्यते । तन्त्रान्तरे हि मस्तिष्क उपनाह शिरोवस्तिविशेषत्वेनोक्तः । यथा— ''मस्तिष्केऽष्टागुल पट्ट वस्तौ तु द्वादशागुलम्'' इति ॥ १ ॥

कुष्ठमेरएडमूलञ्च लेपात् काञ्जिकपेषितम् । शिरोऽर्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २॥ मुनुकृतः भहिनद् श्री निश्चन , किन्तु पश्चिम खनामस्यानं प्य ॥२॥
पञ्चमूलीश्टनं द्वीरं नस्यं द्याचिछरोगदे ॥
श्वाशिरो व्यायतं चर्म छत्वाष्टाङ्गुलमुच्द्रिनम् ।
तेनावेष्ट्य शिरोऽघस्तान्मापकर्तंन लेपयेत् ॥
निश्चलस्योपविष्टस्य तेलेक्ष्णे प्रप्रयेत् ।
धारयेदारुज शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥
शिरोवस्तिर्जयत्येपा शिरोरोगं मरुद्भ्यम् ।
हनुमन्याद्तिकर्णार्त्तमिदंतं मस्नकम्पनम् ॥
तेलेनापूर्यं मूर्द्धांनं पञ्चमात्राशतानि च ॥
तिष्ठेत् रेष्ठप्मणि पित्तेऽष्टा दश वाते शिरोगदी ।
एप एव विधि कार्य्यस्तथा कर्णाद्विष्ट्रणे ॥ ३॥
पत्रमुनो बार्वशिके खल्या अनुकृत न महत्ये । श्रीराग्निक्याद्वाधिक

पजमूनी बातैरीक्षेके स्वल्पा, नानको न महतो। भारिरशिक्यायनिमिनि-यावता चर्मणा शिरोबेष्टन भवित सावनान चन श्राह्मभित्यथं । तैनिरिनि यथाविधि-नाधित पूर्यदित्यगुनीक्द्रयेण । प्रनिति नन्त्रान्तरदर्शनाष्ट् । आक्रम जान्ते धारयेदिति वाने याम, पैतिके यानार्थम् । को बद्दमाणप्रव्यमात्राशानीत्यादि वचन भिग्नकत्त्रकत्वान्मनभेशाविग्द्र बोन्यम्। मात्रात्र निमेपोन्मेषादि । तका हि-'निमे-पोन्मेपण पुना स्काटन वापि चागुने । सहरम्य सपोविधि मात्रास्थारण भेवष्ट् । इति । व्यवदारस्तु द्विदिविधित । कक्षम तु शिरोबिन्निस्यादिनिरिक्षिते कक्षे वानस्य चानुवन्धे मित्र हेयः । केश्नको तस्थानीनिष्पाद् । विधिरिष मात्रा-रूपः ॥ ३॥

> पैसे घृनं पय सेका शीता लेपा' सनावना'। जीवनीयानि सर्पीपि पानाभ्रञ्चापि पित्तनुत्॥ पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्वं नम्यग्विरेचयत्। मुद्दीकात्रिफलेच्णां रसैः चीरैर्धृतैरपि॥ ४॥

पैच इत्यादी—गीता इति सेकन्पयोधिरापणम् । जीवनीयानि सपीपीनि नीवनीयदगरुकाथकन्कमाधितानि । मृदीनेन्यादि—मृदीकेन्न्सी विवृच्चपूर्णप्रदेपाद् विरेककारको श्रेयो, त्रिफलाकायस्तु स्वत म्वेत्यादुः । स्रोरप्टेन चापि त्रिवृदादिसिदे विरेके ॥ ४॥ शतधौतधृताभ्यङ्गः शीतवातादिसेवनम् । शीतस्पर्शाश्च संसेव्याः सदा दाहार्तिशान्तये ॥ ४ ॥

शतधीतप्रताम्यङ्ग इति—शतधीतेन प्रतेन शिरसोऽन्यङ्गो श्रेय । उक्त हि— " सर्पिपः शतधीतस्य शिरसि धारण हितम् " इति । शीतस्पर्शा इत्यादि— शीतस्पर्शाः कुमुदोत्पलपद्मादय ॥ ५ ॥

चन्द्नोशीरयण्ट्याह्मवलाव्याघनकोत्पलै । चीरिपिष्टैः प्रदेह स्यात् श्रुतैर्वा पार्रेषेचनम् ॥ ६ ॥ वन्दनेत्यादौ—व्याघनको नक्षीभेदः । श्रौरिति चन्दनादिकाँथे , अन्ये द्व चन्दनादिश्वते चीरैरित्याहः ॥ ६ ॥

मृणालविसशालूकचन्दनोत्पलेकशरैः।
स्निग्धशितै-शिरो दिह्यात् तद्वदामलकोत्पलैः॥ ७॥
मृणालेत्यादौ—विंस वालमृणालम्, उत्पलकेशर किन्नलकः। क्षिग्धशीतैक्षिग्धल द्वायोगाद। तद्वदित्यनेन द्वतयोगाद क्षिग्धलमितिदिशन्ति॥ ७॥

यष्ट्याद्वचन्द्नानन्ताचीरसिद्धं घृतं हितम्। नावनं शर्कराद्राचामधुकैवीपि पित्तजे॥ =॥

यष्ट्योहृत्यादौ---अनन्ता अनन्तम् लम्, एषा कल्केन चतुर्गु यचीरेख धत पक्तव्यम् । एवं सर्कराद्राक्षायष्टिमधुकल्केन चतुर्गु खचीरेख धतान्तर पक्तव्य-मित्यर्थः ॥ = ॥

> त्वक्पत्रशर्करारास्त्रा नावनं तग्रहलाम्बुना । चीरसिर्पिहिंतं नस्यं रसा वा जाङ्गलाः श्रुभाः ॥ रक्तजे पित्तवत् सर्वं भोजनालेपसेचनम् । शीतोष्णयोश्च व्यत्यासो विशेषो रक्तमोच्नग्रम् ॥ ६ ॥ त्वक्पत्रेत्यादि—लक्पत्र तेजपत्रम् । चीरसिपिरित्यादि—सुधुतस्य

त्वक्पत्रत्यादि—त्वस्पत्र तेजपत्रम् । चीरसिपिरित्यादि—सुश्रतस्य । चीरोत्थ सिप चीरसिपि । शुमा इति सचस्काः । जाइला शुमा इत्यत्र जाइला-एडजा इति पाठान्तर तन्त्रान्तरे, तथाविधाकारसुश्रतादिपुस्तकेष्वदर्शनार उपेचणीय-मिति । शीतोष्णयोश्य ब्वत्यास इति—शीता किया छत्वा उष्णा, उष्णान्त्र कृत्वा शीतेत्यर्थ । रक्तजेऽप्येतदुष्णिकयाविधान यद्यपि हेतुप्रत्यनीक न भवति, वथापि च्याधिप्रत्यनीकत्वमस्य बोध्यम् ॥ ६ ॥ कफजे लहुनं स्वेदो स्क्षोण्णै पाचनात्मकैः। तीक्णावपीद्धा घूमाश्च तीक्णोण्णकवडा हिता ॥ ' स्वच्छुम्च पाययेत् सर्पि पुराणं स्वेदयेत्तत । मधूकसारेण शिर स्विद्यञ्चास्य विरेचयेत्॥१०॥

कफज इत्यादी—पाचनात्मकीरिति आमकफपाचनस्वभावेर्नेपजैर्दरामूला-दिभि. पाययेत्, सींप पुराखमिति-पुराखस्य सींपणः कालप्रकषेक्षतस्कारात् कफ-इरत्व बोध्यम् । किंवा करुचे पुराखे वातानुबन्धे विधेयम् । मध्कसारेख मध्क-काष्ठसारचूर्येन एच्छोदकेनालोडितेन अवपीड. कार्यं ॥ १०॥

कृष्णान्दश्चरठीमधुकशताह्नोत्पलपाकते । जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शुलनिवारण ॥११॥ कृषेत्यादी—पाकल कुष्टम् ॥ ११॥

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् । लेप काञ्जिकसम्पष्टस्तैलयुक्क शिरोऽत्तिंतुत्॥ सिवपानमवे कार्या दोषत्रयहरी किया। सिपानं विशेषेण पुराणन्त्वादिशान्ति हि॥ १२॥

देनदावित्यादी---नलद गासी। सर्पि पान पुरातनमिति पीयते इति पान, कर्माख अनट्, तदेव पुराखिमिति विशेषण गृद्यते॥ १२॥

त्रिकदुकपुष्कररजनीजीवकतुरङ्गगन्धानाम् । काथः शिरोऽर्त्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥ १३ ॥ त्रिकडकेत्यादौ—जीवक पीतशाल । शिरोऽत्तिजालमिति नानादोपज शिरोरोगम् । द्रव्याया तीस्यवीर्य्यालात् पित्तज विद्वाय योज्योऽय योग श्लोके ॥१३॥

नागरकल्कमिश्रं चीरं नस्येन योजितं पुंसाम् । नानादोषोद्भृतां शिरोक्जां द्दन्ति तीवतराम् ॥ १

नागरेत्यादी-गव्यदुग्ध पतैक, शुग्ठीचूर्ण माधकत्रय प्रसिप्य, नासया वेयमिति १द्धा ॥ १४॥

नतोत्पत्तं चन्दनकुष्ठयुक्तं शिरोरुजायां सघृतं प्रदेदः। प्रपौरहरीकं सुरदारु कुष्ठं यष्ट्याह्रमेला कमलोत्पत्ते च॥

शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहो लौहैरकापद्मकचोरकैश्च ॥ १४ ॥

नतेत्यादि—नत तगरपादिका, तदभावे शियलीक्षोपर । प्रपौराडरीकेत्यादी— लोहमगुरु, एरका होगल., चोरक चोरपुष्पी । प्रपौराडरीकादिश्चोरकान्त एको योग । निश्चलस्तु उत्पलान्त एका योग, लोहेत्याद्यपर इत्याह, तन्न, द्वान्निशत् प्रदेहापेच्या प्रदेहाधिकप्रमङ्गात् ॥ १५॥

शताह्वाद्यं तैलम्

शताह्वरएडमूलोग्रावक्त्रव्याग्नीफलैंः श्वतम् । तैलं नस्यं मरुच्छ्रलेष्मतिमिरोद्ध्वगदापहृम् ॥ १६ ॥ शताह्वत्यादी—उम्रा बचा, वक्त्र तगरपादिका, व्याम्री कण्टकारी, तस्या फलम् । फलमिति मदनफलमित्यन्ये ॥ १६ ॥

जीवकाद्यं तैलम्

जीवकषभकद्रात्तासितायष्टीवलोत्पलैः। तैलं नस्यं पय पकं वातिपत्तिशिरोगदे॥ १७॥ जीवकाधतैले—पय पक्षमिति चतुर्गुखरुषे सिद्धम् ॥ १७॥

बृहजीवकाद्यं तैलम्

जीवकर्षभकौ द्राचा मधूकं मधुकं वला।
नीलोत्पलं चन्दनञ्च विदारी शकरा तथा॥
तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे।
जाइलस्य तु मांसस्य तुलाईस्य रसेन तु॥
सिद्धमेतद्भवेन्नस्यं तैलमद्धांवभेदकम्।
वाधिर्यं कण्यालञ्च तिमिरं गलशुण्डिकाम्॥
वातिकं पैचिकञ्चैव शीर्परोगं नियच्छति।
दन्तचालं शिरःशुलमर्दितञ्चापकर्षति॥ १८॥

बृहज्जीवकाद्यतेले—मधूक मधूकस्य पुष्प फल वा । जाङ्गलमास हरियादि-त्मासम्, तस्य तुलार्द्धस्य रसेनेति तुलाद्रव्ये जलद्रोया इति वचनात् तुलार्द्धे मासे ऽर्द्धद्रोयाजल दत्त्वा पादशेषो रस. प्रस्यद्वयमानो भवति । सृदोक्षतुर्गुस देयमिति परिमाषया काथविधिरित्यन्ये । व्यवहारस्तु पूर्वव्याख्यया ॥ १८॥

पङ्विन्दुतैलम्

परग्डमूलं तगरं शताहा जीवन्ति राम्ना सह सैन्धवञ्च । भृद्गं विड्कं मधुयप्रिका च विश्वोषध कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ श्राजं पयस्तैलविमिश्रितञ्च चतुर्गुणे भृद्गरसे विषक्षम् । षड्विन्दवो नासिकया विधेया शीघं निहन्यु शिरसो विकारान् च्युतांश्च केशान् पलितांश्च दन्तान् दुर्वद्वमूलांश्च दृढीकरित । सुपर्णदृष्टिप्रतिमञ्च चजुर्वाह्योर्वलञ्चाभ्यधिकं द्दाति ॥१६॥

यड्विन्दुतैले-तगर पिषडतगरमूलम्, सङ्ग गुडलक् । अजाखीरन्दु तेलसम-मिति, किन्तु सामान्यतस्तिलतैलगोचीरेणावि योगोऽपम्, तन्त्रान्तरसवादाद ॥१६॥

त्त्रयजे त्त्रयमासाय कर्त्तव्यो वृंहशो विधि । पाने नस्ये च सर्पि स्याद्वातद्वैर्मधुरैः श्वतम् ॥ २०॥

चयने चयमासाधिति—यस्य रकादे, चयेख शिरोरोगो जातस्तस्य चय वृद्ध्या तत्प्रत्यनीको बृह्णो विधि कार्य्य इत्यर्थः । वात्रप्रमधुरै. श्रुतमिति वात्रप्रो मद्रदाविद , मधुर काकोल्यादि । तत्र वात्रप्रस्य काथ , मधुरगणस्य तु कल्क । यदाह विदेह —"सिद्ध वात्रहरकाथे कल्के मधुरके धृतम् । पाने नस्ये विधातव्य शिरोरोगे चयोद्धवे" श्री ॥ २०॥

क्रिमिजे व्योपनक्राह्म-शियुवीजैश्व नावनम्।

श्रजामूलयुतं नस्यं किमिजे किमिजित् परम् ॥ २१॥

किमिज इत्पादी—नक्ताह्वशिश्चवीजैरिति, नक्ताह् करव्ज , विजयदमुभय-शापि मम्बन्धते । अजामूत्रयुताभित्यादि—किमिजे शिरोरोगे यन्नस्यमुक तदजा-मूत्रयुक्त किमिजित स्यादित्यथे । उक्त हि—''मूत्रापेष्टा समुद्दिष्टा किया किमिपु योजयेत्'' शति । किंवा किमिजिदिष्टक्तम्, अजामूत्रयुक्त नस्य पर उत्कृष्ट स्यादित्यर्थ ॥ २१॥

श्रपामार्गतैलम्

श्रपामार्गफलव्योप-निशास्त्रवकरामठे । स्रिविडदं श्टतं मूत्रे तैलं नस्यं क्रिमिं जयेत्॥ २२ ॥ श्रपामार्गफलमिति वधीसमास । खनको हाब्रिया लोकनाथ इति लोके । रामठ हिंगु । मूत्र चतुर्शुंखम् ॥ २२ ॥

नावनं सगुडं विश्वं पिष्पली वा ससैन्धवा। भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वेषूद्ध्वंगदेषु च॥ २३॥

नावनिमत्यादी--गुडमाषकाण्यष्टी, शुण्ठीचूणं माषकदयम् , उच्णोदकपलै-केन गोलियित्वा वस्त्रपूत कृत्वा नस्य कार्य्यम् । अय योगो वातानुबन्धे । तथा पिप्पलीचूणं माषकदयम् , उच्णोदक कर्षेकम् , पूर्ववन्नस्य कफानुबन्धे ॥ २३॥

स्र्यावर्ते विघातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम्। पाययेत् सगुडं सर्पिर्धृतपूरांश्च भन्नयेत् ॥ २४॥

स्वयांवर्त्त इत्यादि—सुश्रुनस्य । नस्यकर्मादीति हेतुभूतदोवविपरीत नस्य परिपेक शिरोविरेकादिकम् । पाययोदित्यादि —नातप्रवले छतपलैके गुडमावकाष्टक प्रचिप्य पाययेदिति । छतपूरो भच्यविशेष । यथा—"मर्दिता समिता चीरनारि-केलछतादिभि । अवगाद्य छते पक्ता छतपूरोऽयमुच्यते" इति ॥ २४ ॥

स्र्यावर्ते शिरावेघो नावनं ज्ञीरसर्पिषा। हित ज्ञीरघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चेव विरेचनम्॥ २४॥

स्र्यांवर्तं इत्यादि —स्यांवर्ते यथोक्ताक्रियाभि पुनरप्रशंमे शिराज्यथ कार्यं इत्याहु । द्वीरसर्पियति द्वीरात्यमपिया । द्वीरप्रताभ्यास इति द्वीरप्रतयोरभ्यास । ताभ्यामिति द्वीरप्रताभ्या विरेचकद्रव्यसिहताभ्या विरेचनम् , किंवा विरेचनमिह शिरोविरेचनम् ॥ २४॥

त्तीरिपष्टिस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ २६॥ जीवनीयैश्च चीरिपष्टेरित्यन्वयः॥ २६॥

सशर्करं कुङ्कुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनाख्गुत्थे । भूशङ्क्षकर्णात्तिशिरोऽर्द्वश्रले दिनासिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥२०॥

संशर्करिमत्यादि — सर्शकर कुकुम धते मृष्ट्रा धतेनैव पिष्ट्रा समालोड्य नस्य विधेयम । अस्य पत्री — धत तो ४, शर्करा मा ४, कुकुम मा ४, आलोड्याशौ किश्चित् तप्तीकृत्य नस्य देयम् । दिनाभिषृद्धिप्रमवो रोगः स्य्यीवर्त्तं इत्यर्थः ॥२७॥

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरिकल्कसिद्धं नवनीतम्। नस्येन जयति नियतं सूर्य्यावर्त्तं सुदुर्वारम्॥ २८॥ कृतमालेत्यादि कृतमाल मोनालु , तस्य पल्लवस्वरम प्रस्थ एक , भ्रपा-मार्गवीजस्य पलद्वय, नवनीतस्याष्टी पलानीत्याहु ॥ २८ ॥

दशमूलीकपायन्तु सर्पिःसैन्धवसंयुतम् । नस्यमद्भीवभेदम्नं स्टर्थावर्त्तशिरोऽर्त्तिनुत् ॥ शिरीषमूलकफलैरवपीडञ्च योजयेत् । श्रवपीडो हितो वा स्याद् वचापिष्पलिभि श्रतः ॥ २६॥

दशमूलीत्यादि—रशमूलीकाथ पल १, प्रचेपप्टन मा ७, मैन्धव मा १ नामया पेयम् । शिरीपेत्यादि—शिरीपवल्कलमूलकवीजयो प्रत्येक मा ४, पिष्ट्रा वस्त्रेण निष्पीड्य नस्य विधेयम्, एव वचापिप्पलीम्यामिति । एतच्चावपीडदयमितिनिच्यत्वात् यद्यपि स्टर्यावर्चे वातपित्तोत्तरे न युज्यते तथापि न्याधिप्रत्यनीकत्वात् स्थानिककफ- ज्यार्थं वा श्रेयमिदम् । अन्य तु स्टर्यावर्चेविपर्यये योगद्दयमित्याद्व । स्ट्यावर्चेविपर्यये योगद्दयमित्याद्व । स्ट्यावर्चेविपर्यातस्य प्रत्यूवे सायज्ञ महान्, मध्ये तु मन्द इति ॥ २६ ॥

जाङ्गलानि च मासानि कारयेदुपनाहनम् ।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्ण्यावर्त्तः सुद्दारुणः ॥
एप एव विधिः कृत्स्नः कार्य्यश्चार्द्धावभेदके ।
शारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकञ्चामलपेषितम् ।
सिंपस्तैलयुतो लेप सूर्य्यावर्चार्द्धभेदयोः ॥ ३० ॥
जाङ्गलानीति—अत्र वृद्धवैद्योपदेशात् वातहरद्वव्येमीसमुत्तिवद्य सैन्धव तैलञ्च
दत्वा उष्णलेप कार्यं । अम्लपेषितमिति काञ्चिकपेपितम् ॥ ३० ॥

पियेत् सशर्करं द्वीर नीरं वा नारिकेलजम् । सुशीतं वाषि पानीयं सर्पिवी नस्ततस्तयोः ॥ ३१ ॥ पिनेदिलादि—योगचतुष्य सशर्करमित्यनुवर्षयितु युज्यत इति निश्चल

पिनेदित्यादि-योगचतुष्टय संशर्करमित्यनुवर्त्तयितु युज्यत इति निश्चल । तयोरिति स्ट्यांवर्त्तार्द्धमेदकयो ॥ ३१ ॥

श्रनन्तवाते कर्त्तव्यः स्र्यावर्त्तिहितो विधिः। शिरावेधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये॥ श्राहारश्च विधातव्यो वातिपत्तिविनाशन । मधुमस्तक-संयाव-हवि पूरैश्च यः क्रमः॥

स्र्यावर्त्ते हितं यत् तच्छङ्खके खेदवर्जितम्। चीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्त पानञ्च शङ्क्षके॥ शतावरीं कृष्णतिलान् मधुकं नीलमुत्पलम्। दूर्वी पुनर्नवाञ्चापि लेप साध्ववचारयेत्॥ शीततीयावसेकांश्च चीरसेकांश्च शीतलान्। करकेश्च चीरिवृत्ताणां शङ्ककस्य प्रलेपनम्॥ क्रौञ्चकादम्बहंसानां शराच्यी कच्छपस्य च। रसै॰ संबृंहितस्याथ तस्य शङ्खकसन्धिजाः। अदुर्ध्व तिस्र शिरा प्राक्षो भिन्द्यादेव न ताडयेत्॥ ३२॥ अनन्तवातित्यादि - सुअतस्य । मधुमस्तकेति मधुमस्तकादयो अस्यविशेषा सद शास्त्रेडनुसन्धेया । मधुमस्त पानिकाकारो मधुगर्मः सितावेष्टितो मच्यविशेष इति वकुल , मधुन कर्ष्वमिति चक्र । सयावी यथा-"पचेद् छतोत्तरे मागडे निपेद् भाग्रेडन वै तत । सयावाऽसौ सिताचूर्ये राग्रेडलामरिचाईके " इति । इविःपूरा मच्यिभेशेष प्रतपूरिति लोके। यथा 'मिरिडत सिमतािषयड चीरेखैव विलोडित । श्रवगाद्य घते पक्को घतपूराऽयमुत्तम " इति। क्रम इत्याह क्रम इति। चीरात्थ सिप चीरमपि , नस्त पान नासिकया पान, किंवा नस्य पानञ्च। उक्तव्च मुश्रुते—"चीर-सर्पि प्रशसन्ति नस्य पान च शङ्कते" इति । चीरिवृच्चेति चीरिवृचा वटादय । सबृहितस्येति प्राप्तमासोपचयस्य । सन्धिजा शिरा भिन्वादित्यत्र स्च्येति शेष । न

शिरःकम्पेऽमृतारास्नाबलास्नहसुगन्धिभ । स्नेहस्वदादि वातम्नं शिरोवस्तिश्च शस्यते ॥ ३३ ॥

ताडये दिति कुठारिकयेति शेष , सिन्धमङ्गमयादिति च शेषः ॥३२॥

शिर,कम्प इत्यादौ--केहो धृतादि । सुगन्धिरगुर्वादि । सुगन्धिरित्यनन्तर लेप इति शेष ।शिरोवस्तिविधि पूर्वमुक्त एव ॥ ३३ ॥

यष्ट्याद्यं घृतम्

यप्रीमधुवलारास्त्रादशमूलाम्बुसाधितम्। मधुरैश्च घृतं सिद्धमूद्ध्वजञ्जगदापहम्॥ ३४॥ वर्ष्टमध्वत्यादि—धतः प्रसंत्र, काथार्थं वष्ट्यादिदशमूलान्ताना मिलिला चतु पश्चित्त ,जलद्रोर्णेक ,राप रारावपोडरा ,कल्कार्थ काकोली-यष्टिमधु-फाकण शर्दा-मेदा जीवक ऋषभक-पुरहरीककाष्ठ-द्राचा-ऋदि युद्धि वरारोचना-मुगानी-मापाणी-चीरका-कोली-पद्मकाष्ठ-गुङ्ची प्रक २ पक्तच्यम् ॥ १४ ॥

मयूराद्यं घृतम्

दशमूलवलारास्नामधुकैस्तिफले सह।
मयूर पचिपत्तान्तराकृत्पादास्यवर्जितम्॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्य तिस्मन् चीरसमं पचेत्।
मधुरै कार्षिकैः करकै शिरोरोगार्दितापहम्॥
कर्णनासाद्तिजिहास्यगलरोगिवनाशनम्।
मयूराद्यमिदं ख्यातमृद्ध्वजन्त्रगदापहम्।
श्राखुभि कुक्कुटैईसैः श्रौश्चापि हि बुद्धिमान्।
करकेनानेन विपचेत् सर्पिसद्ध्वगदापहम्॥
दशमुलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते।
श्चन्यं त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदु ॥ ३४॥

दरामूलत्यादि — दरामूलत्य प्रत्येक पलम्यम्, एव बलादीना सयाणामपि, तेन मिलिला जनचलारिशत्पलानि भवन्ति । तथा मयूरमासमिष पचपादादिरिहितम् जनचलारिशत्पल प्राह्मम् । एव मिलिला यावत् काध्य भवति, तत्र ''काध्याचतु-ग्रंण वारि'' इत्यादि परिभाषया जलादिव्यवस्था, एतदेवाह दरामूल्यादिना तुल्यो मयूर इत्यादि । अन्ये तु दरामूलादिभि प्रत्येक त्रिपलमाने मह तरुणमयूर्गुडक्नेमेक पचादिवर्जित जलद्रोण एव पचत्, जलद्रोणेऽत्र पादशेषः, म च पचनीयप्रताप्यया चतुर्गुणे भवतीत्याहु । पतदेवाहुः '' अन्ये त्वाहितिमानेन मयूर्म्यस्य विद्रिति ।'' व्यवहारत्त्वनेन । मधुरिति जीवनीयदराके, जीवनीयानि च मधुर्त्त्वमानुत्वपाकत्वमकर्णन्मधुर्शुन्देनोच्यन्ते । एतन्मयूर्ष्टत तथा अस्यानव्च मधुर्त्त्याने मृषिकादीन् दत्त्वापि कार्य्यमित्याहु । आखुना तथा मयूर्पिस्या अल्प्युणेनापि तत्रेकेन स्नहसाधन कर्य्वसित्याहु ॥ ३५॥

प्रपौग्डरीकाद्यं तैल्रम् प्रपौग्डरीकमधुकपिष्पलीचन्दनोत्पलैः। सिदं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन वा। सर्वानृद्ध्वगदान् इन्ति पिलतानि च शीलितम् ॥३६॥

प्रपोग्डरीकामित्यादि — नाग्मटस्य । चन्दनोत्पलैरित्यत्र कल्कैरिति शेष. । धात्रीरसम्रात्र तैलापेचया चतुर्गुण ॥ ३६ ॥

मायूरं घृतम्

शतं मयूरमांसस्य दशमूलवलातुलाम् ।
द्रोणेऽम्मसः पचेत् चुत्वा तस्मिन् पादस्थिते ततः ॥
निषच्य पयसो द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम् ।
प्रपौगडरीकवर्गोक्षेजीवनीयैश्च भेषजैः ॥
मधावुद्धिस्मृतिकरमूद्ध्वेजजुगदापहम् ।
मायूरमेतिक्षिदिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥
मन्याक्रणिशिरोनेत्रहजापस्मारनाशनम् ।
विषवातामयश्वासविषमज्वरकासजुत् ॥ ३७ ॥
इति शिरोरोगचिकित्सा ।

शतिमत्यादौ —दशमूलवलामूलयो।मिलित्वा तुला । द्रोण इति पदमावृत्य उभयत्रापि योज्य, तेन मयूरमासशतपले एको जलद्रोण , दशमूलवलातुलायाञ्चापर इति द्रोणद्रयमम्भस । पयसो दुग्धस्य द्रोण निषिच्य दत्त्वा पचिदिति । एतेन षड्गुण. पाक । प्रपौरहरीकवर्गोकैरिति प्रपौरहराकमधुकिपप्पलीचन्दनोत्पलैरित्यर्थः । जीवनीयैरिति जीवनीयदशकै । ततोऽत्र यष्टिमधुकस्य मागद्रय ब्राह्मम् ॥ ३७॥ इति शिरोरोगचिकित्साविवृति. ।

अथासृग्दरचिकित्सा ।

द्धा सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम्। पिवेत् चौद्रयुतं नारी वातासम्दरपीडिता ॥ १ ॥ कीपुसा साधारणव्याधीना तथा पुप्रतिनियतानामप्युपर्दशादीनां चिकि-त्सोक्षा, सम्प्रति कीनियताना प्रदरादीना चिकित्सितमभिधातुमुपक्षमते । दक्षत्यादि— दप्त कर्षत्रय, सौवर्चलस्य मापकमेकम्, श्रजाज्यादीना प्रत्येक मापकद्वय, मधु-नस्तु मापकचतुष्टयमित्याहु ॥ १ ॥

> पिवेदैंगेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् । वासकस्वरसं पैत्ते गुट्टच्या रसमेव वा ॥ २ ॥

स्रतिवहुस्रुतरोाणिताना चिकित्सामाह पिवेदिस्यादि—एय्पस्येदम् प्रेणय, स्वार्थे कः। एयास्य रक्ष दशमूलयोगेन मर्देयित्वा पेय, तेन स्त्यानता न स्यादि-त्याहु। शर्कंगमधुयोजितिमिति पद वासकस्वरस-गुङ्क्चोस्वरमयोरिप योज्य हारीत-सवादात्॥ २॥

रोहीत्कान्मूलकरकं पाएडरेऽस्टेन्दरे पिवेत । जलेनामलकाद्वीजकरकं वा ससितामधु । धातक्याश्चात्तमात्रं वा श्रामलक्या मधुद्रवम् ॥ काकजानुकमूलं वा मूल कार्यासमेव वा । पाएडप्रदरशान्त्यर्थ पिवेत्तएइलवारिणा ॥ ३॥

रोहीतकादित्यत्रापि ससिता मध्निति योज्यम् । धातक्या इत्यादि-धातक्या कल्कमचमात्र मधुद्रव, तथामलक्या वा कल्कमचमात्र मधुद्रव पिवेत् । मधुद्रवो यत्र कल्के तत् मधुद्रवम् । काकजानुक काकजङ्घा ॥ १ ॥

श्रशोकवल्कलकायश्रतं दुग्धं सुशीतलम् । यथावलं पियेत् भातस्तीवासुग्दरनाशनम्॥ ४॥

श्रशोकेत्यादी--पडक्कपरिभाषयार्द्धश्रुतमशोकवल्कलकाथ गृहीत्वा तेन चतुर्गु-येन चीर साध्यमित्यर्थ । बृद्धास्तु काथमकृत्वेव चीरसाधनपरिमापया व्यवहरन्ति ॥४

दावींरसाञ्जनत्रृषाब्दिकरातिबत्त्व-भक्षातकैरवकृतो मधुना कषायः। पीतो जयत्यतिबलं प्रद्रं सभूलं पीतासितारुणविलोहितनीलश्चक्कम्॥४॥ दावींलादी—श्पो वासक, विल्व शुष्कविल्वशलाड, कैरव कुमुदम्।

'मल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनिमध्यते' श्रनेन व्यवहरन्ति ॥ ५ ॥

रसाञ्जनं तराहुलीयस्य मूलं चौद्रान्वितं तराहुलतोयपीतम्। श्रस्गद्रं सर्वभवं निहृन्ति श्वासञ्च भागीं सह नागरेरा॥

कुशमूल समुद्धत्य पेषयेत्तगृहलाम्बुना । एतत् पीत्वा ज्यहान्नारी प्रदरात् परिमुच्यते ॥ चौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोह्रम्बरजं पिवेत् । श्रस्प्दरिवनाशाय सशर्करपयोऽन्नमुक् ॥ प्रदर हिन्त चलाया मूलं दुग्धेन मधुयुतं पीतम् ॥ ६ ॥

रसान्जनिमत्यादौ — तण्डुलीयस्य मूल लोहिततण्डुलीयस्य मूल गृह्यते।
भेपजद्वयमिद प्रत्येक, मिलितज्ञ बोध्य, सिद्धमारहीरातसवादाद। सर्वभवमिति
वाताचेकदोषभव सर्वे, न तु सान्निपातिक तस्यासाध्यत्वाद। उक्त हि—'सचौदमिष्हिरितालवर्णे मञ्जप्रकाश कुण्प त्रिदोषाद। तज्ञाप्यसाध्य प्रवदन्ति तन्ज्ञा न
तत्र कुर्वीत मिषक् चिकित्साम् दिति। श्वासञ्च मार्गी सह नागरेणेति तु स्रोकानुरोधाह्मिखितम्॥ ६॥

कुशवाट्यालकमूलं तएइलसलिलेन हरति रक्ताख्यम्। शमयति मदिरापानं तदुभयमपि रक्तसंज्ञश्चक्राख्यौ॥७॥

रक्ताख्यभिति रक्तप्रदरम् । मदिरापानिमिति मदिरया पीयते कर्माणि लयुट , तेन मदिरापीतिमित्यर्थं । तदुभयमिति कुशवाट्यालकयोर्मृलम् ॥ ७ ॥

गुडेन वदरीचूर्णं मोचमामं तथा पय । पीता लाक्ता च सघृता पृथक् प्रदरनाशना ॥ = ॥

गुडेनेत्यादि — योगचतुष्टयम्। बदरीचूर्यामिति वातकफे । मोचमाममे।चम्, अपककदलीफलचूर्यस्य कर्षे एक , एतच कफापित्ते ॥ ८॥

रक्षपित्तविधानेन प्रदरांश्चप्युपाचरेत्। श्रस्ग्दरे विशेषेण कुटजाष्टकमाचरेत्॥ ६॥

रक्तिपत्तिविधानेनेति अधोगतरक्तिपित्तविधानेन ॥ ६ ॥

पुष्यातुगं चूर्णम् पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदरसाञ्जनम् । श्रम्बष्ठकीमोचरस-समङ्गापद्मकेशरान् ॥ वाहीकातिविपामुस्तं विल्वं लोधं संगैरिकम् ।
त्रिफलां मरिचं शुएठी-मृडीका रक्षचन्दनम् ॥
कट्वद्गवत्सकानन्ता-धातकीमधुकार्जुनम् ।
पुष्येणोद्ध्य तुल्यानि सूद्मचूर्णानि कारयेत् ॥
तानि चौद्रेण संयुज्य पाययेत् तएहलाम्युना ।
श्रस्व्रातिसारेपु रक्षं यश्चोपवेश्यते ॥
दोषागन्तुकृता ये च वालानां तांश्च नाश्येत् ।
योनिदोपं रजोदोपं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥
स्त्रीणां श्यावाक्णं यश्च तत् प्रसह्य निवर्चयेत् ।
चूर्णे पुष्यानुगं नाम हितमात्रयपूजितम् ।
श्रम्यष्टा दिल्ले ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्षणाम् ॥ १०॥
पुष्यानुगव्यं-जम्बाव्योमध्य जम्बाव्योरिश्च । नाम्बेटऽपि जम्बाव्योर-

पुष्यानुगच्या-जम्बान्नयोगेभ्य जम्बान्नयोरिश्य । वाग्मटेडपि जम्बान्नयोर-स्पीत्युक्तम् । भम्बष्टकी दिच्यापये ख्याता, तदमावे पाठामेव द्विगुणा गृहन्ति, लच्चया-मिलन्य । पद्मेकरार पद्मिकजल्कम्, बाह्नीक कुद्भुमम्, विल्व विल्वरालाहः । पुष्येयेनि पुष्यानचत्रेया ॥ १०॥

मुद्गार्च घृतम्

मुद्मापस्य निर्च्यूहे रास्नाचित्रकनागरै । सिद्धं सिपप्पलीयिल्ये सिप्: श्रोप्रमस्टर्दरे ॥ ११ ॥ मुद्गेत्यादी—मुद्गमापाम्या निर्म्द् काथ । रास्नादिपश्चकस्य कल्कः निर्लं निर्वसुण्ठकम् ॥ ११ ॥

शीतकल्यायकं घृतम्
कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमा रक्षशालयः ।
सुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयप्रिका ॥
वलातिवलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।
विदारी शतमूली च शालपर्णी सजीवका ॥
फलं त्रपुपवीजानि प्रत्यश्रं कदलीफलम् ।
पपामद्वेपलाच् भागान् गन्यं चीरं चतुर्गुणुम् ॥

पानीयं हिगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रदरे रक्षगुलेम च रक्षापित्ते हलीमके ॥
यहरूपश्च यत् पित्तं कामलाचातशोणिते।
श्चरोचके ज्वरे जीर्णे पागृहरोगे मदे अमे॥
तहणी चाल्पपुष्पा च या च गर्भे न विन्द्ति।
श्चहन्यहिन च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम्।
शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ १२॥

कुमुदिमित्यादि — कुमुद महारपुष्पम्, पद्मक पद्मकाष्ठम्, रक्तशालेस्तु मूलम्, पयस्या द्वीरकाकोली, काश्मरी गाम्भारी, तस्या फलम्, श्रतिवला गेरचत्यङ्खा, जीवक जीवनी्यगणमध्ये पठित विशिग्द्रन्यम्, फल त्रिफला, अपुष मायान्वुफलम्, वीजिमित्यन्ये । प्रत्यप्रामित्याभेनवम्, श्रपक्षीमत्यर्थे ॥ १२ ॥

बृहच्छतावरीघृतम्

शतावरीरसप्रशं होदियत्वावपीडयेत्।

घृतप्रश्वसमायुक्तं त्तीरं द्विगुणितं भिपक् ॥

श्रव कर्वकानिमान् द्धात् स्थूलोडम्बरसम्मितान्।

जीवनीयानि यान्यष्टा यष्टीचन्दनपद्मकै ॥

श्वदंष्ट्रा चात्मगुता च वला नागबला तथा।
शालपणीं पृश्विपणीं विदारी शारिवाद्यम् ॥

शर्करा च समा देया काश्मर्थ्याश्च फलानि च।

सम्यक् सिद्धन्तु विक्षाय तद् घृतश्चावतारश्चत् ॥

रक्षपित्तविकारेषु वातपित्तकृतेषु च।

वातरक्तं त्तयं श्वासं हिक्कां कासश्च दुस्तरम् ॥

श्वद्भाद्दं सर्वभवं मूवकुच्छं सुदारण्म् ॥

एतान् रोगान् शमयति भास्करित्तिमरं यथा ॥ १३॥

इत्यस्यद्र-विकित्सा ॥

वृहच्छतावरीष्ट्रे-स्रातावरी चोदायित्वा रमप्रस्थमवपीडयेत्, श्रवपीड्य गृह्णीया-दिलर्थः । स्थूले। दुम्बरमम्मितान् इति प्रत्येक कर्षसिम्मनानित्यर्थः । जीवनीयानि यान्यष्टाविति श्रष्टवर्ग । जीवकर्षमकौ मेदामहामेदाकाकोलीचीरकाकीलीऋदिष्टदय इति । असुन्दर सर्वभविमिति पूर्ववत न्याख्ययम् ॥ १३ ॥

इलसुग्दराचित्किमा विष्रति

अथ योनिव्यापिचिकित्सा।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं श्रस्यते कर्म वातजित्। वस्त्रभ्यद्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥१॥

प्रदरोऽपि योनिच्यापद्विराप इति योनिच्यापत्त्वसामान्यादनन्तर योनिच्यापश्चिकि-त्मितमुच्यते, योनिन्यापत्स्वित्यादि —कर्म वातिजिदिति वस्तिरुत्तरविस्तरच ॥ १ ॥

> वचोपकुञ्चिकाजाजी कृष्णावृपकसैन्धवम्। श्रजमोदां यवज्ञारं चित्रक शर्करान्वितम् ॥ पिएवा प्रसन्नयालाब्य खादेत् नद् घृतभर्जितम्। योनिपार्श्वार्तिहृद्रोग-गुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ २ ॥

वचेत्यादि-वाग्भटस्य । उपकुञ्चिका कृष्णजीरकम्, वृषको वासकमूलम्, प्रमन्ना मदिराया उपरिस्थ फेनमाग । एभ्या बचादिभ्य ममभागपिष्टेभ्य. तो २, प्रसन्ना पल २. आलोड्य इतकर्पेण सन्तल्य पेयम् ॥ २॥

गुहूचीत्रिफलादन्तीकाथैश्च परिषेचनम्। नतवार्चाकिनीकुष्ठसैन्धवामरदास्त्री तैलात् प्रसाधिताद्धार्य्य पिचुर्योनी रुजापहः॥ पित्तलानान्तु योनीनां सेकाभ्यद्गपिञ्जिकया । शीता पित्तहराः कार्या स्नेहनार्थे घृतानि च ॥ ३॥

नेतत्यादि--वाग्मटस्य। वार्त्ताकिनी भूकण्टकारी, गोष्ठवार्त्ताकुरित्यन्ये। अमर-दारु देवदार । एभिर्वचादिभि कल्कै तल साध्यम्, जलन्च चतुर्शयमिति । पिचुरिति मेपजमाधितकेहाम्लुतत्व पिचु ॥ ३॥

योन्यां वलासदुप्रायां सर्व रूनोष्णमौषधम् । पिष्पल्या मरिचेमीपै शताह्माकुष्ठसैन्धवै । वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या घार्य्या योनिविशोधनी ॥४॥ योन्यामित्यादो—तुल्येति परिणाहेन दैध्येण च । वर्तिरित वस्नेण वस्न विना वा ॥ ४॥

> हिस्राकल्कन्तु वातात्ती कोष्णामभ्यज्य घारयेत्। पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफोत्तरा॥४॥

हिंसेत्यादि—हिंसा कालाकडामूलम् । पन्चवल्कलस्य वटाडुम्बराश्वत्थसक्त-वेतमस्य । श्यामादीनामिति कफ रोगभिषग्जितीये श्यामात्रिवृच्चतुरगुलेत्यादिना उक्तानाम् ॥ ५ ॥

मृपिकमांससंयुक्तं तैलमातपभावितम् ।

श्रभ्यद्गाद्धन्ति योन्यशं स्वेदस्तन्मांससैन्धवे ॥ ६ ॥

मृषिकेत्यदि—मृषिकाणा मास तैलात् पादिकम्, नात्र द्रवयोग कार्य्य ।

श्रातपभावितिमिति सप्ताहम्, तान्मास मृषिकमाम सैन्धवचूर्णावचूर्णितमेरण्डादिपत्रे

कत्वा योनि स्वेदयेत् ॥ ६ ॥

गोपित्ते मत्स्यपिते वा त्तौमं त्रि सप्तभावितम् ।
मधुना किएवचूर्णं वा द्याद्यरणापहम् ।
स्रोतसां शोधनं कराड्रक्केदशोथहरञ्ज तत् ॥ ७ ॥
गोपित्त इत्यादौ—वीम यक्तमस्यवस्त्रम् । कियव सुरावीनम्, मधुना कियवनूर्णमिति तृतीयो योग । श्रवरणा नाम योनिव्यापत् ॥ ७ ॥

वामिन्यां प्रितयोन्याञ्च कर्त्तव्य स्वेदनो विधि ।

क्रम कार्य्यस्तत स्नेहिपिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥ ८॥

वामिन्यामित्यादौ—प्रियोनिशन्देन उपख्रता परिष्तुता चोच्यते ॥ ८॥

शञ्चकीिजङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चवल्कलैः।

कषायै साधित स्नोहः पिचु स्याद्विष्तुतापह ॥ ६॥

शह्नकीत्यादि — शह्नकीविद्विन्यौ स्वनामख्याते । त्वक्शब्द शह्नक्यादिभि प्रत्येक सम्बध्यते । अन कपायश्चतुर्गुण । अकल्क ण्वाय खेह । पिचुरिति प्तत्तेला- प्लुत पिचु ॥ ६ ॥

, ·

कार्णिन्यां वर्त्तिका कुष्ठिपिष्पल्यकाँग्रसैन्धवै । यस्तम् त्रकृता धार्थ्या सर्वञ्च श्लेष्मनुद्धितम् ॥ त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्त्तानिलार्तिषु । तदेव च महायोन्यां स्नस्तायाञ्च विधीयते ॥ १०॥

किंग्नियामित्यादौ — कुष्ठादिभिर्वित कार्या इति योज्यम् । श्रक्षां यमकंपल्लव. । श्रेष्ठत स्नेहनमिति सिंपिस्तैलवमारूपसेष्ठहः । उदावर्षां स्या योनिन्यापस्। मानिलाति वातिकी योनिन्यापदित्यर्थ । तदेवेति त्रैष्टत सेहनम् । विधीयत इति श्रमुवामनोत्तर-विश्येत्यर्थ चरकसवादास् ॥ १०॥

श्राखोर्मासं सपिद वहुघा खएडखएडी छतं यत् तैले पाच्यं द्रवित नियतं यावदेतन्न सम्यक् । तत्तैलाक्षं वसनमनिशं योनिभागे द्रधाना हन्ति त्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ ११ ॥

त्राखे।रित्यादे।--सपदीति नद्यस्कमासग्रहः शांधेम् । प्तन्मास यावदिनि खरत्वमासाद्य न द्रवति द्रवता न गच्छति तावदेव गालनै।यमित्यर्थ । भगफल कन्दरोगम् ॥ १९॥

शतपुष्पातैललेपाद्वद्रीद्लजात्तथा । पेटिकामूललेपाच योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १२॥

रातपुष्पेत्यादि — योगत्रयम् । तैलपिष्टरातपुष्पया लेप श्रवर्थ । पेटिका कापीद्वपरीति ख्याता । भिन्नति विदीर्था ॥ १२ ॥

सुपर्वामूललेपेन प्रविष्टान्तर्वहिर्भवेत् । योनिर्मूपावसाभ्यद्गान्निःस्ता प्रविशेद्पि॥ १३॥

सुपवीत्यादि — सुपवीम्ललेपेन कारवेझम्ललेपेनेत्यर्थ । प्रविद्वेति अन्त प्रविष्टा अन्तर्मुखा योनिर्विद्दिभेवतीत्यर्थ । योनिरित्यादी – मूपो मूपिकस्तस्य वमा मामस्नेह । नि स्तेति विद्दिन स्ता । इयमेव प्रश्नसिनीत्युच्यते ॥ १३ ॥

> लोधतुम्बीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च। वेतसमूलिन काथ-ज्ञालनेन तथैव च। मूपिकावागुलिवसाम्रज्ञणं योनिदार्ढ्यदम्॥ १४॥

लोधेत्यादौ — तुम्बी श्रलावुः, तस्या फलम् । तथैव चेति दार्ट्यकृदित्यर्थ. । मृषिकेत्यादौ — वागुली वादुर इति ख्यातो दिवान्ध पत्ती ॥ १४ ॥

> वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च। श्रश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम्॥१४॥

बचेत्यादि — वचादि हरिद्रान्त एको योग. । यचादिहरिद्रान्तैलेंपोऽवचूर्णन वा ॥ १५ ॥

मद्फलमधुककपूरपूरितं भवति कामिनीजनस्य । चिरगलितयावनस्य वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥ १६ ॥ मदेत्यादि—मद कस्तूरी, फल जातीफलम्, किंवा मदफल मदनफलमेव । एतैर्मधुना पिष्टैयोनिप्रपूर्यम् ॥ १६॥

> पञ्चपञ्चवयष्ट्याद्ध-मालतीकुसुमैर्घृतम् । रविपक्षमन्यथा वा योनिगन्धविनाशनम् ॥ १७ ॥

पन्चपह्नवेत्यादि—पन्चानाम् आत्रजम्बूकिपत्थनीजपूरकिविल्वाना पह्नवाः। एषा कल्क । रविपक्कमिति द्रव विनैव, अन्यथा वेत्यिश्वपक्वम्, अस्मिन् पच्चे जल चतुर्गुराम् ॥ १७॥

> इत्वाकुवीजदन्तीचपलागुडमदनिक्वयण्ट्याह्नैः। सस्तुक्त्तीरैर्वर्तियोनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ १८॥

इदानीमार्चवनारो सित आर्चवोत्पादनविधिमाह इस्वाकुवीजेत्यादि—इस्वाकुित्तित्यादि—इस्वाकुित्तित्यादि—इस्वाकुित्तित्यादि—इस्वाकुित्तित्वालावु , चपला पिप्पली । एषा प्रमा म, स्तुद्दीचीर मा म, अग्नो पत्तवा विचि कार्यो । कुसुम रक्तम् , तब्बननी कुसुमसञ्जननी ॥ १ म ॥

सकाञ्जिकं जवापुष्पं सृष्टं ज्योतिष्मतीद्लस् ।
दूर्वायाः पिष्टकं प्राश्य वनिता त्वार्तवं लभेत् ॥ १६ ॥
सकाञ्जिकेत्यादि—योगत्रयम् । ज्योतिष्मतीदलमपि भृष्ट बोध्यम् । दूर्वाया
पिष्टकमिति दूर्वात्युड्लाम्या कृत पिष्टकम् । योगत्रयमेतत् ॥ ८६ ॥

धाज्यञ्जनाभयाचूर्यं तोयपीतं रजो हरेत्। शेलुच्छदमिश्रपिष्टं भक्तणञ्च तदर्थकृत् ॥ २०॥ श्दानीमार्चवहरयोगानाह धात्रीत्यादि—धाज्यादीना मिलितचूर्णाना नोल-कैक बोध्यम् । शेलुच्छदेति शेलुपत्रतण्डलाम्या कृत पिष्टकमित्यर्थ ॥ २०॥ पुष्योद्धतं लक्षणायाश्चकाङ्कायास्तु कन्यया । पिष्टं मूलं दुग्धघृतपीतमृतौ तु पुत्रदम् ॥ २१ ॥

श्दानीमात्तवे पुत्रप्रदयोगानाह पुर्धित्यादि—चक्राङ्काया इति लक्षणाया विशेष्ट्रान्यम्, तत्पत्रस्य चक्राङ्कितत्वात् । दुरुषष्ट्रतपीतिमिति दुरुषेन धृतेन वा श्रानुस्नान्नन्तर दिनत्रय पिवेत् । अथवा नासापुटेन विन्दुचतुष्टय पिवेदित्यर्थ । अन्ये तु, लक्षणाया मूल मा २, दुरुष तो २ धृत तो २, श्रानुस्नानन्तर दिनत्रय पिवेदित्याहु ॥ २१ ॥

काथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयं।

ऋतुस्नातावला पीत्या धत्ते गर्भ न संशयः ॥ २२ ॥
क्वायेनेत्यादि—इयगन्धा श्रश्रगन्धा, तस्या मूलम्, पटद्गपरिमापया जलाधिक दत्त्वा श्रद्धेश्वत चीराचतुर्गुंख दत्त्वा पक्त्वा एत प्रक्षिप्य पिवेत् । श्रथमा
श्रश्यगन्धा मूल मा ८, जल पल ४, रोप पल २, एत मा ८, एद्धास्तु चीरमाथनपरिमापया व्यवहरान्ति ॥ २२ ॥

पिष्पत्यः श्रङ्गवेरञ्च मरिचं केशरं तथा।

घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यापि लभते सुतम्॥२३॥

पिष्पतीत्यादौ—श्वतेनर शुण्ठी॥२३॥

स्वर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णे ताम्रस्य चाज्यसंभिश्रे । पीते शुद्धे सेत्रे भेषजयोगाद्भवेद्गर्भः ॥ २४ ॥

सुवर्णस्थित्यादी—आज्यमिश इति सर्वत्र योज्यम् । मारितसुवर्णचूर्णस्य मापैक, गन्यश्वतस्य कर्षद्रयम् आलोड्य पेयम् । एव रजततात्रयोरिप । तद्भेषजयोगाद् शुद्धे चित्र इति योज्यम् । केचित्तु सुवर्णादित्रय एकत्रावर्ष्यं तता योनिमध्ये लेपये- दिति । तत्पानञ्चोपदिशन्ति । उक्त हि,—"हेम रूप्य वर तात्रमेकत्रावर्र्यं मिपेषा । शृष्यान्तेलपयेद् योनि शोधनार्थं पिवेदिप" इति ॥ २४॥

कृत्वा ग्रुद्धौ स्नानं विलड्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः । स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा भक्त्या सम्पूज्य लोकनाथेशम् ॥ श्वेतवलाद्दिप्रक्यिष्टं कर्षं कर्ष पलन्तु शर्करायाः । पिष्टैकवर्णजीवद्दत्साया गोस्तु दुग्धेन ॥ समधिकघृतेन पीतं नात्र दिने देयमन्नमन्यच्च । चुधिते सदुग्धमन्नं दद्यादापुरुषसान्निधेस्तस्या ॥ समिद्वसे शुभयोगे दित्तिणपार्श्वावलिम्वनी धीरा। त्यक्तस्त्रयन्तरसङ्गप्रहृप्टमनसोऽतिवृद्धधातोश्च। पुरुषस्य सङ्गमाताल्लभते पुतं ततो नियतम्॥ २४॥

कृत्वेत्यादौ—विलड्घ्येति यस्मिन् दिने शुद्धिस्नान तस्मिन् दिने उपेाष्येत्यर्थ । श्रेतवलाया श्रड्धि मूलम् । समाधिकष्टतेनेति दुग्धापेचया ष्टतमागो श्रिधिको देय इत्यर्थ. । यस्मिन् दिने भेषजमिद्मुपयुज्यते तस्मिन्नेव दिनेऽपरमन्न नोपयोज्यम् । दिनान्तरे तु चुधाया सत्या चीरसिहतमन्न दचात् । समादिषम इति युग्मदिने ॥ २५ ॥

गे। छजातवरस्य प्रागुत्तरशाखजे शुभे शुक्के ।

मापौ द्वौ च तथा गौरसर्षपौ द्धियोजितौ ॥
पुष्यापीतौ द्रुतापन्नगर्भायाः पुत्रकारकौ ।

कानकान् राजतान् वापि लौद्दान् पुरुषकानग्रान् ॥

ध्माताग्निवर्णान् पयसो द्धो वाप्युद्दकस्य वा ।

ज्ञिप्त्वाञ्जलौ पिवेत् पुष्ये गर्भे पुत्रत्वकारकान् ॥ २६॥

गोष्ठेत्यादि—गोष्ठ पर्वतः, उपवन वेति केचित्। माषाविति माषकलायौ हो चरके थान्यमाषाभ्यामित्युक्तम् । तथा गौरमर्थपौ द्वाविति । दिथियोजिताविति दिधि दिधिप्रीचिप्तावित्यर्थ । द्वतापन्नगर्भाया इति यावत् कृति पुस्त्व वा गर्भस्य न व्यक्ती-भूतमिति तावदेव इद कर्म कुर्य्यात् । अङ्गाभिन्याकिस्तु तृतीये मासे भवतीति माम-इय यावत् पुसवनकर्म कुर्यादिति मावः । इद कर्म लिङ्गपराष्ट्रिकारक भवतीति ज्ञापनार्थ द्वतापन्नगर्भाया इत्युक्तम् । पुरुषकानग्द्वानित अणुपरिमाणान् पुरुषाकृतीन् । अञ्जलावित्यस्य पयम इत्यादिभिः सम्बन्धः । एनच दुग्धादि निःशेष पेय चरकः मवादात् ॥ २६ ॥

प्रथमं फलघृतम्

मिंखेष्ठा मधुकं कुष्ठं विफला शर्करा बला। मेदा पयस्या,काकोली मूलञ्चैवाश्वगन्धजम् ॥ श्रजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगुकं कटुरोहिली। उत्पत्तं कुमुदं द्वाचा काकोल्यौ चन्दनद्वयम्॥ पतेपां कार्पिकैर्भागेर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावरीरसद्धारं घृताद्देयं चतुर्गुण्म्॥
सिपिरेतच्चर पात्वा नित्यं स्त्रापु वृपायते।
पुत्रान् जनयते नारी मेघाट्यान् प्रियदर्शनान्॥
या चैवास्थिरगर्भा स्याद् या वा जनयते मृतम्।
श्रल्पायुपं वा जनयेद् या च कन्या प्रस्यते॥
योनिदोपे रजोदापे परिस्नावे च शस्यते।
प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहानिवारण्म्॥
नाम्ना फलघृतं होतद्भ्विभ्यां परिकार्तितम्।
श्रनुक्तं लच्मणामूलं द्विपन्त्यत्र चिकित्सका॥
जीवद्दत्सैकवर्णाया घृतमत्र प्रशस्यते।
श्रारण्यगोमयेनापि वहिल्वाला प्रदीयते॥ २७॥

मिश्रेष्ठत्यादा — पयस्या चीरिवदारी । द्राचाकाकोल्याविति दृन्द , काकोल्यत्र चीरिकाकोली, काकोलीत्युपाचत्वाच् । शतावरीरिसचीरेयो प्रत्येक चातुर्गुययम् । अत्र इद्वापदेश चत्रहृश्चिर्धात अनुक्रीमत्यादि ॥ २७॥

द्वितीयं फलघृतम्

सहचरे द्वे विफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम्।
शुक्रनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्॥
करकीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् चीरं चतुर्गुणम्।
तिसद्धं प्रियेन्नारी योनिश्क्लिनिपीडिता॥
पिरिडता चिलता या च नि स्ता विकृता च या।
पित्तयोनिश्च विस्नस्ता पर्रावेश्च या स्मृता॥
प्रपचन्ते तु ता स्थानं गर्भ गृह्णन्ति चासकृत्।
पतत् फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम्॥ २०॥

महचरे इतादि—सहचरे हे इति सितपीतभेदेन कियटोइयम्। शुकनासा चर्मकारपुटक पिरिटतेत्यस योनिरिति शेष ॥ २८॥

नीलोत्पलाद्यं घृतम्

नीलोत्पलोशीरमधूकयिद्रात्ताविदारीकुशपञ्चमूलै । स्याज्ञीवनीयेश्च घृतं विपकं शतावरीकारसदुग्धामिश्रितम् ॥ तच्छकरापादयुतं प्रशस्तमस्ग्दरे मास्तरक्षपित्ते । त्तीलो वले रेतासि सम्प्रनष्टे कुच्छ्रे च पित्तप्रभवे च गुल्मे ॥२६॥ नीलोत्पलमित्यादौ—मधुकस्य पुष्प फलं ना । कुशपश्चमूल तृषपश्चमूल । जीवनीयैरिति जीवनीयदशके । शनावरीरसस्य तय प्रस्था , दुग्धस्य चैकः । अन्ये तु शतावरीरसस्य चत्वार प्रस्था स्त्याहु । धृतप्रस्थापेचया शर्कराया पादोऽद्यौ पलानि ॥ २६ ॥

ब्हच्छतावरी घृतम्

शतावरीमूलतुलाश्चतस्र सम्प्रपीडयत्।
रसेन चीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम्॥
जीवनीयै शतावच्यो सृद्धीकाभिः परूपकैः।
पिष्टै. पियालैश्चाचांशौर्द्धयिष्टमधुकैर्भिषक्॥
सिद्धशीते च मधुनः पिष्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
दत्त्वा दशपलञ्चात्व सितायास्ताद्धिमिश्चितम्॥
बाह्यणान् प्राश्येत् पूर्वे लिह्यात् पाणितलं ततः।
योन्यस्क्शुऋदोपम् वृष्यं पुंसवनश्च तत्॥
चतत्त्वयं रक्षपित्तं कासं श्वासं हलीमकम्।
कामलां वातरक्षश्च विसर्पे ह्यांच्छरोग्रहम्।
उन्मादादीनपस्मारान् वातिपत्तात्मकान् जयेत्॥ १०॥
शतावरीमूलत्यादि—चरकस्य। जीवनीयैरिति जीवनीययणपिति , प्रपरेष्टिये
पर्वक्षेत्रो मागो देय इति द्वितीययष्टिमधुकैन। किंवा स्थलजलभेदान्मधुकह्ययुक्तै।
वाग्मटे तु द्वियीष्टमधुकैरिलक्ष द्विवलामधुकैरित प्रस्रते॥ ३०॥

दग्ध्वा शङ्कं चिपेद्रम्भास्वरसे तत्तु पेषितम्। तुल्यालं लेपतो हन्ति रोम गुह्यादिसम्भवम्। रक्राञ्जनापुच्छचूर्णे युक्त तैलन्तु सार्पपम् । कुसुम्भतैलाभ्यंगो वा रोम्णामुत्पाटिते अन्तकृत् ॥ ३१ ॥

योनी लामबाहुल्येन वैरस्याद्रतिर्न स्यादिखती लोमशातनमाह दग्धेखादि—
रम्मास्तरसे कदलीवागुडास्तरमे। तुल्यालमिति समहिरतालम्। रक्षाञ्जनिति रक्षाञ्जना
लोहितवण्डिननामिका श्रारजिला इति लोके। तत् पुच्छ राद्रे शोपयित्वा चूर्णं
कुर्यात्। तच्च सार्षपतैलेऽनुरूपे प्रिच्य सप्ताह स्थाप्यमित्यर्थ । कुष्तुम्भेत्यादी—
उत्पाटिते इत्यनन्तर लोसीति शेष । लोसि उत्पाटिते मित कुष्तुम्भवीजतैलाभ्यद्गी
लोस्नामन्तकुद्भवतीत्यर्थ ॥ ३१ ॥

आरग्वधाद्यं तैलम्

श्रारम्बधमूलफलं कर्पद्वितयं शङ्खसूर्णस्य । हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थं तु कटुतैलम् ॥ पक्षं तैलं तदथ शङ्खहरितालचूर्णितं लेपात् । निर्मृलयति च रोमाण्यन्येपां सम्भवो नैव ॥ ३२॥

आरग्वधेत्यादी-कर्पद्वितयमिति हरितालस्य चेत्रनेनापि सम्बध्यते । कटु-तैलास्यात्राष्टी पलानि । अध इत्यानन्तर्ये, तैलपाकानन्तर राह्यचूर्णे हरितालचूर्णे मिलित्वा तैलात् पादिक प्रचिप्य लेपो देय इत्यर्थ । किंवा राह्यचूर्णेहरितालचूर्णे-योरनियतमानेन तैल मिष्पिय लेपो देय इति ॥ १२॥

कर्पूरमञ्जातकशङ्खचूर्णं चारो यवानाञ्च मनःशिला च । तैलं विपकं हरितालिमिश्रं रोमाणि निर्मूलयित च्लोन ॥३३॥ कर्पूरत्यादि—कर्पूरादीना कल्क.। चारो यवचार । तैलिमिति कडुतैलम् । हरितालिमिशितिमिति पूर्ववद व्याख्येयम् ॥ ३३॥

चारतैलम्

शुक्तिशम्बूकशङ्कानां दिर्घवृन्तात् समुष्ककात्। दग्ध्वा ज्ञारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत्॥ ज्ञाराष्ट्रभागं विपचेत् तेलञ्च सार्पपं वुघ । इदमन्त पुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम्॥ विन्दुरेकः पतेद् यत्र तत्र रोमापुनर्भवः।
मदनादिव्रणे देयमिष्वभ्यामेव निर्मितम्॥
श्रशिसां कुष्ठरोगाणां पामादद्वविचर्चिनाम्।
चारतैलिमदं श्रेष्ठं सर्वक्केदहरं परम्॥ ३४॥
इति योनिन्यापिचिकित्सा।

चारतेले — शुनित शुनितेव मुन्नास्फोटो ना, दीर्घनृत्त श्योनाम , मुष्कको व्यटापारुली। पतानि सममागानि दग्ध्या चतुर्विशतिपलचारो माद्य , अस्य सावणार्थं गर्दभमूत्र पह्युग्यम् अष्टादशशरावपरिमित गृहीत्या एकविंशतिवारान् परिसान्य चारिदकस्य पोडश शराना माद्या , कडतैलन्तु शरावचतुष्टयम् । तैलापेचयाऽष्टमाग चारस्य कलकत्वेन प्रदेय इत्यर्थं , तेन चारस्य पलचतुष्टय कलक इत्यर्थं । अन्ये तु चारोदक तैलापेचयाऽष्टगुग्यमित्याहु । मदनादित्रग्य इत्युपदशादौ ॥ ३४ ॥ इति योनिन्यापचिकित्साविद्यति ।

अथ स्त्रीरोगचिकित्सा ।

मधुकं शाकवीजञ्च पयस्या सुरदारु च ।
श्रश्मन्तक कृष्णातिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥
वृत्तादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा ।
श्रमन्तशारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥
वृह्दतीद्वयकाश्मर्थ्यत्तीरिश्रक्तास्त्वचो विषम् ।
पृथक्पणी वला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयप्टिका ॥
श्रद्भाटकं विसं द्वात्ता कशेरु मधुकं सिता ।
मासेषु सप्त योगाः स्युरईश्लोकास्तु सप्तसु ।
यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भकावे पयोयुता ॥ १॥

अवशिष्टकीरोगचिकित्साभिधानार्थं स्त्रीरोगचिकित्सामाइ मधुकमित्यादि— सुश्रुनस्य। शाको मरुनस्तरुस्तस्य बीज , पयस्या चीरकाकोली , अश्मन्तको- ŗ

इम्ललोटक मालुया वा, तामवही मिन्निष्ठा, षृच्चादनी वन्दाक । तथैवोत्पल-शारिवेत्यत्र तथा तिलशारिवे इति पाठ सुश्रेत वाग्मटे च, तट्टीकाकृतोऽतिलता दूर्वा प्रियगुर्वेति व्याख्यानयन्ति । उत्पलशारिवां स्ननन्तमूलम् । स्ननन्त स्ननन्तमूल , शारिवा श्यामालता , पद्मा ब्रह्मयष्टि , काश्मर्य्यं गाम्मारीफल , चीरिणा वटादीनां शुद्धारत्वचक्षेति । विस मृणालम् । एते च सप्त योगा कल्कविषये उपयोज्या । स्रपेर तु चीरसाधनपरिमाययेत्याहु ॥ १ ॥

कपित्थविल्ववृहतीपटोलेजुनिदिग्धिकाः। मूलानि जीरसिद्धानि दापयेद्भिपगप्टमे॥२॥

कापित्थेत्यादि — मुश्रुतस्य । कापित्थादीना सर्वेषा मूलम् । निश्चलस्तु किष-त्थस्य फल पटोलस्य फल पत्र वा, अन्येपाञ्च मूलिमत्याह ; किन्तु मुश्रुतवाग्भट-टीकाक्कद्विन व्याख्यातोऽयमर्थ. ॥ २ ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवा पिवेत्।
पयस्तु दशमे शुरुट्याः श्वतशीतं प्रशस्यते ॥
सत्तीरा वा हिता शुरुठी मधुकं देवदाक च।
पवमाप्यायते गर्भस्तीवा कक् चोपशाम्यति ॥
कुशकाशोकवृकाणां मूलेगों जुरकस्य च।
श्वतं दुग्धं सितायुक्षं गर्भिरया श्रलनुत् परम् ॥ ३॥

नवम इत्यादौ-चीरसिद्धानीति पद लिङ्गिविपरिमाणनात्रापि सम्बध्यते, ढल्वणेन व्याख्यातीऽयमधं । अन्य मधुकानन्तेति योगश्च काथेन किंवा मधुकादीना करूक
चीरेण पिनेदित्यधं इत्याद्वः । पयस्तिनत्यादि—सुश्रुतस्य । डल्वणस्तु "चीर
कुण्ठीपयस्याम्या सिद्ध स्याद्दशमे हितम्" इति पठिते, व्याचष्ट च—दशमे मामि
ग्रुण्ठ्या चीर विदार्था वा चीरपाककल्पनया सिद्ध चीर दशमे हितमिति । वाग्मटेऽप्युक्त—"योजयेदशमे मासि चीर सिद्ध पयस्यया । अथवा यष्टिमधुकनागरामरदार्शभे " इति । एनद्दचनसवादोदन सचीरा वा हिता ग्रुण्ठीत्यादावि शुण्ठीमधुकदेवदार्शभे सिद्ध चीर दशमे मासि प्रशस्यत इत्यथों श्चेय । कुशेत्यादि स्पष्टम् ॥३॥
कशेरुश्युक्ताटकजीवनीयपद्मोत्यलैर्गुङ्गितावरीभिः ।
सिद्धं पयः शकेरया विसिश्चं संस्थापयेद् गर्ममुद्गिण्युक्तम् ॥ ४॥

कशेर्वित्यादौ ---जीवनीयो जीवनीयदशकम् । शर्करया विमिश्रमिति शर्करा प्रचेप्या ॥ ४ ॥

कशेरुश्दद्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गयप्रीमधुकं सशकरम्। सग्रलगर्भस्रतिपीडिताद्गना पयो विमिश्रं पयसान्नमुक् पिवेत्॥

करेशिंदरादी—पद्मक पद्मकेशरिमत्याद् । उत्पल नीलोत्पलम् । समुद्ग-यष्टिमधुकमिति—मुद्गो मुद्गपर्थो । समुद्गयष्टिमधुकमित्यत्र ससुद्गपर्थो मधुकमित्यिप पाठान्तरम् ॥ ५॥

गर्भे ग्रुष्के तु वातेन वालानाश्चापि ग्रुष्यताम्। सितामधुककाश्मर्थ्योर्हितमुत्थापने पय । गर्भशोपे त्वामगर्भा प्रसद्दाश्च सदा हिता ॥६॥

गर्भे शुष्के तु नातेनेत्यादि-पूर्व नातन्याथावेन पठितमिति नेह पठनीयम् । आमगर्भा इति हसकूर्मादीनामण्डानि, प्रमहा. कुनकुटादय ॥ ६ ॥

पाठालाइ लिसिहास्यमयूरकजटै पृथक् ।
नाभिवस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रस्यते ॥
परूपकस्थिरामूललेपस्तद्वत् पृथक् पृथक् ।
वासामूले ध्रुवं तद्वत् कटिबद्धे स्ते द्रुतम् ॥
पाठायास्तु शिफा यौनौ या नारी सम्प्रधारयेत् ।
उर प्रसवकाले तु सा सुखेन प्रस्यते ॥
तुपाम्बुपरिपिष्टेन मूलेन परिलेपयेत् ।
लाइल्याश्चरणौ स्ते चित्रमेतेन गर्भिणी ॥
श्राटक्षपकमूलेन नाभिवस्तिभगालेपः ।
गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्णम् ॥ ७॥

पाठेत्यादी--श्रीकराठी लाइलीस्थाने सुरसा पठित, न्याचष्टे च-सुरसा निर्गुरुढी । सिंहास्यो नासक , मयूरकोऽपामार्ग । एषा नटा मूल हस्तत्न झान्द-सत्तात् । गृहान्दु काजिक गृहधूम श्रलन्धुक ॥ ७ ॥

मातुलुइस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् । घृतेन सद्द पातन्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ = ॥ मातुङ्गस्यत्यादी—मधुक याष्ट्रमधु, एतदुभयमपि मधुसयुक्त ग्रुनेन मह पान-च्यमित्यर्थ ॥ = ॥

पुटदग्धसंपेकञ्जुकमसृणमसीकुसुमसारसिंहताक्षिताक्षी । ऋटिति विशस्या जायते गर्भवर्ती मूढगर्भापि ॥ युहाम्बुना हिंगुसिन्धुपानं गर्भापकर्पणम् ॥ ६॥

पुटत्यादि—पुटपाकिविषया दग्धा या मपिनमेंकमसी, तथा मधुसीहनया शिक्षतलोचना सता विगमां मवेदित्यर्थ । गृहाम्बनेत्यादी—सिन्धु मेन्धवम् ॥६॥ इहामृतश्च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि !। उद्येःश्ववाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ इद्ममृतमपां समुद्धृतं वे भव लघुगर्भिममं विमुश्चतु स्त्री। तद्नलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरेदिंशन्तु शान्तिम्॥ मुक्का पाशा विपाशाश्च मुक्का स्व्योण रश्मयः। मुक्का पाशा विपाशाश्च मुक्का स्व्योण रश्मयः। मुक्का सर्पभयाहर्भ पह्योहि मा रिच स्वाहा॥" जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमान्तितम्। पात्वा प्रस्यते नारा हप्द्वा वोभयित्रशक्म्॥ तथोभयपञ्चदशद्र्शनं सुखस्तिकृत्। नारी ऋतुवस्रभि सह पलदिगणाद्शाभिरेव च। श्रकंभुवनाव्धिसहितैरुभयविश्वकामिदमाश्चर्यम्॥ वसुगुणाव्ध्येकवाणनवपट्सप्तयुगै. कमात्। सर्व पश्चदशहिस्तु विश्वक नवकोष्ठके॥१०॥

देहत्यादि-स्वाहान्तोऽय मन्त्रश्च सुश्रुतस्य । अयमव गर्भच्यवनमन्त्र । जल ज्यवनमन्त्रेय सप्तवाराभिमन्त्रित पालेति वृद्धंवध्यवद्दार सम्रहक्रद्धिल्खिते, न तु सुश्रुतेन, सुश्रुतेन तु ज्यवनमन्त्रेय गर्भियां सावयेदित्युक्तम् । उमयपञ्चदशक्तमुमयाति राकश्चाह विस्तित्यादि—वसवे।ऽद्यौ, गुणाक्षयः, अन्ध्यश्चत्वार , वाणा पद्म, युग द्वयम् । पतद्दैगुण्यादुमयत्रिशक् भवति । एते नव कोष्ठान् कृत्वा तदभ्यन्तरे लेख्या । वृन्दे तु उमयत्रिशकमप्युक्तम् । णतद्दय शरावमध्ये लिशित्वा सम्पूज्य दशंपितव्यम् ॥१०॥

कडुतुम्व्यहिनिर्मोक-इंतवधनस्पेपैः।
कडुतैलान्वितो धूमो योनेः पातयतेऽमराम्॥
कचवेष्टितयाङ्गुल्या धृष्टे कएठे सुखं पतत्यमरा॥
"एरएडस्य वने काको गङ्गातीरमुपागत।
इत पिवति पानीयं विशल्या गर्भिणी मवेत्॥"
श्रानेन सप्तधामन्त्र्य जलं देयं विशल्यकम्॥
मूलेन लाङ्गालिक्या संलिप्त पाणिपादे च।
श्रमरापातनं मद्ये पिष्पल्यादिरज पिवेत्॥
शालिमूलाल्मात्रं वा मूत्रेणाम्लेन वान्वितम्।
उपकुञ्चिकां पिष्पलीञ्च मिद्रां लामत पिवेत्।
सौवर्चलेन संयुक्तां योनिश्र्लानेवारणीम्॥११॥

कडुत्रशित्यादि—कडुत्रश्री तिकालायुफलं, कृतविधन घोषकभेद तस्य फल, मर्षप. श्रितसर्षप । एतैर्धूम कृत्या योनिमुखं दचात् । उकः हि सुश्रते—''योनिमुखं धूपयेत्'' इति । श्रमरापातनिमत्यादौ—पिप्पल्यादिरज इति सुश्रुतस्य पिप्पल्यादि-गयाचूर्यम् । श्रम्लेन काञ्जिकेन, मधेनेत्यन्ये । उपकुञ्चिका कृष्णजीरकम् । पिप्पली-मित्यनन्तर प्रक्षिप्येति शेष. ॥११॥

स्ताया हृष्टिञ्ठरोवस्तिशृलं मकस्तंशितम् ॥ यवत्तारं पिवेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा । पिष्पल्यादिगणकार्थं पिवेद्वा लवणान्वितम् ॥१२॥ पारावतशक्तर्पातं शालितगृडलवारिणा । गर्भपातान्तरोत्थे तु रक्षस्नावनिवारणम् ॥१३॥

स्ताया इत्यादि — सुश्रुतेऽप्युक्त — "प्रस्तायास्तु वस्त्युदरशिरोयोनिशूल रक्त मरुध्य वायुः करोति, स मक्कलसञ्जित ॥१२॥ १३॥

> जलपिष्टवरुणपत्रैः सवृतैरुद्धर्चनालेपौ । किकिशरोगं हरतो गोमयघर्षाद्यो विहितौ ॥१४॥

जलिपष्टेत्यादौ-किक्कशरोगो गर्भोत्पीडनेन वत्त्यादिदेशे मनाक् चर्मिवदा-रखम् । अथो अनन्तर गोमयधर्पणानन्तरं विहितावित्यर्थः ॥१४॥ हीवरारलुरक्रचन्दनवलाधन्याकवत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविपाकाथं पिवेद्गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगढे रक्तखुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदित स्त्यामये शस्यते ॥१४
होवेरलादौ—वलादनी गुहुची ॥१४॥

श्रमृतानागरसहचरभद्रेत्कटपञ्चमूलं जलदजलशीतम्। मधुसंयुक्तं निवारयति सज्वरं स्तिकातद्वम् ॥१६॥

श्रमृतेत्यादी—भडेत्कटो भादखेढ दित रादाया ग्यातस्तर । अन्य तु मड भद्रमुस्तरुम्, दलह इकर दिन ख्यातस्तस्य मूलिमत्यादु । पञ्चमून म्वल्पश्चमूल, जलद मुस्तरुम्, जल काथ ॥१६॥

> सहचरपुष्करवेतसमूलं विकद्भतदारकः लत्थसमम्। जलमत्र सन्धवहिद्गुयुतं सद्यो ज्वरस्तिकरोगहरम्। दशमूलीकृत-काथ सद्यः स्तिरुजापह ॥१७॥

महचरेत्यादी—विकद्भत वंखर शित लोके, तस्य मूलम् । कुलत्थः ममे। यत्र तद् तथा कुलत्थसमम्। जल काथ । दरामूलीत्यादि—आमग्लादिपाटाया पुन-धान्यगुण्ड्या युक्तस्य धान्यपञ्चकपुक्तस्य काथमुपदिरान्ति वृद्धा ॥१७॥

वज्रकाञ्जिकम्

पिष्पली पिष्पलीमूलं चव्यं शुर्ही यमानिका । जीरके हे हरिड़े दे विडसौवर्ज्यं तथा ॥ एनरेवोपघे पिष्टैरारनालं विषाचितम् । श्रामवातहरं वृष्यं कफझं विद्विरीपनम् ॥ काञ्जिकं वज्जकं नाम स्त्रीणामिश्विवर्ज्जनम् । मक्लश्रूलशमनं परं चीराभिवर्द्धनम् । चीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ १८ ॥

वज्रकाश्चिके--पिप्पत्यादिद्रव्यम्य मिलित्वा कपंत्रय, काव्जिकस्य राराव एक , पानीयमध्यल्पन्, एवमेव प्रायशो व्यवहरन्ति वृद्धा , सक्त्ककाव्जिकपानमुपदि-शन्ति च । चक्रस्त्वाह सीरपाकविधानेन काव्निकस्यापि माधनमिति ॥ १८ ॥

पश्चजीरकगुडः

जीरकं ह्वुषा धान्यं शताह्या वदराणि च।
यमानी कृष्टिको हिंगुपित्रका कासमर्दकम्॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ वाष्पिका।
चित्रकत्र्व पलांशानि तथान्यच चतु पलम्॥
कशेरुकं नागरञ्च कुष्ठं दीप्यकमेव च।
गुडस्य च शतं दद्याद् घृतश्रस्थं तथेव च॥
चीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वश्चिमा पचेत्।
पञ्चजीरक इत्येष स्तिकानां प्रशस्यते॥
गर्भार्थिनीनां नारीणां वृंहणीये समारुते।
विंशतिव्यापदो योने कासं श्वासं ज्वरं च्यम्॥
हलीमकं पाएडरोगं दौर्गन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रताम्।
घन्ति पीनोञ्चतकुचाः पद्मपत्रायतेच्चणाः।
उपयोगात् स्त्रियो नित्यमलदमीमलवर्जिताः॥ १६॥

पञ्चजीरकगुढे — जीरक स्हममुखकृष्णजीरक गुर्जरप्रसिद्ध, कृष्टिको राजिका, हिंगुपित्रका वशपित्रका, अजमोदा वनयमानी, अन्तःपरिमार्जनत्वाद यमान्या एव भागद्वयम् । वाष्पिका जुद्रराजिका। तथा चान्यचतु पलिमिति वस्त्यमाणकरेरक्कादि-चतुष्टय प्रत्येक चतु पलिमित्यर्थं । दीप्यक स्थूलजीरकम् । आदौ गुड्यत सीरेण पक्ता सिद्धे सित जीरकादिचूर्णप्रस्तप । पञ्चपलजीरकयोगाद पञ्चजीरक इति सञ्चा। समारुत इत्यत्र गर्भ इति रोप, कृषितमारुतयोगाद सीयमाण इत्यर्थं ॥ १६॥

वनकार्पासिके चूणां मूलं सौवीरकेण वा। विदारिकन्दं सुरया पिबेडा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ दुग्धेन शालितएइलचूर्णपानं विवर्द्धयेत्। स्तन्यं सप्ताहत जीरसेविन्यास्तु न संशय ॥ २०॥

सम्प्रति स्तन्यवर्द्धनयोगानाह वनकार्पामिकेत्यादि—सौवीरकेण काव्जिकेन । विदारीकन्द भूमिक्ष्माण्डम् ॥ २०॥

हारिद्रादिं वचादिं वा पिवेत् स्तन्यस्य वृद्धये ।
तत्र वातातमके स्तन्ये दशमूलीजलं पिवेत् ॥
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्यचन्दनम् ।
धात्री कुमारश्च पिवेत् काथित्वा सशारिवम् ॥
कफे वा त्रिफलां मुस्तं भृतिम्वं कटुरोहिणीम् ।
धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूपरसाशिनी ।
भार्गीद्राह्यचापाठाः पिवेत् सातिविषाः श्टता ॥ २१ ॥
हरिद्रादिमित्यादि—हरिद्रादि-वचादिगणौ मौध्रतौ—यथा—'हरिद्रादारुहरिद्राक्तमसीकुटजवीजानि मधुकन्न' इति । मन्तमी पृष्ठिपर्णी । 'वचामुन्तातिविषाः
मद्रदारुनागरगतमूलो अनन्तमूलन्व' इति । मद्रदारु देवदारु । अमीरु रातावरी,
शारिवा अनन्तमूलन् । नगारिवित्यत्र सर्श्वरिमिते पाठान्तग्न् । अमृतादिशारिवान्तस्य काथः ॥ २१ ॥
कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चिवेतमास्ये विधारितं जयति ।

सप्ताहात् स्तनकीलं स्तन्यञ्चेकान्ततः कुरुते ॥
शोथं स्तनोत्थितमवेच्य मिपिग्वद्घ्याद्ं
यद्विद्रघावभिद्दितन्त्विह भेपजं तत् ।
श्रामे विद्रहाति तथैव गते च पाकं
तस्याः स्तनौ सत्तमेव च निर्दुहीत ॥
विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् ।
विशाकाककफलाभ्यां लेपश्चाप्रि स्तनोत्थिताम् ।
विशाकनकफलाभ्यां लेपश्चाप्रि स्तनोत्थिताम् ।
तन्धाकनकफलाभ्यां लेपश्चाप्रि स्तनोत्थिताम् ।
स्तनविद्रिधिचिकित्सामाह कुक्कोत्थादि—कुक्करमेन्चको गोरचतण्ड्छा ।
म्तनकील स्तनविद्रिथ । निरेत्यादौ—कनकफल धुस्तुरफलम् ॥ २२ ॥
मृषिकवसया श्रुकरगज्ञमहिषमांसच्यूणंसयुतया ।
श्रभ्यद्गमदैनाभ्यां कठिनपीनस्तनौ भवतः ॥ २३ ॥
सन्तरोपचिकित्सामाह—मृषिकतसाया श्रकरादिमासच्युणं प्रिचय स्तनयोरम्यक्षमदन भाषपुष्पोत्मवे ॥ २३ ॥
महिपीभवनवनीतं व्याधिवलोग्रा तथैव नागवला ।
पिष्द्वा मर्दनयोगात् पीनं कठिनं स्तनं कुरुते ॥ २४ ॥

महिषीलादौ—म्याधि कुष्टम्, स्त्रा वचा ॥ २४॥ श्रीपर्गीतिलम्

श्रीपणीरसकलकाभ्यां सिद्धं तैलं तिलोद्भवम् । तृलकेनेव तत्तेलं स्तनस्योपरि धारयेत् । पतिताञ्जत्थितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ ॥ २४ ॥ श्रीपणी गाम्मारो, तस्यास्तवो रम स्तरस्त । स्तनस्योपरि कुवाये ॥ २४ ॥

काशीशाद्यं तैलम्

काशीशतुरगगन्धाशावरीगजपिष्पलीविपकेन । तैलन यान्ति चुर्द्धि स्तनकर्णवराद्गलिगानि ॥ २६॥ काशिशेलादि—काशीश धातुकाशीश, शावरी लोधम्। यम कल्क । जल चतुर्ययम् । कर्षे कर्णपाली; वराङ्ग स्त्रीग्रह्मम् ॥ २६॥

प्रथमत्तीं तराहुलाम्भो नस्यं कुर्ग्यात् स्थिरौ स्तनौ ॥ २७॥
प्रथमत्तीं त्रायपुर्णात्तवे ॥ २७॥
गोमहिषीचृतसहितं तेलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः।
सित्रकदुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनोत्थापनं परम् ॥
सुतन् करोति मध्यं पीतं मथितेन माधवीमृलम्।
स्यािकञ्जिथिलापि च गाढा सुरगोपाज्याभ्यंगतो योनि ॥२०॥
गोमहिषीलादौ—गोमहिषीधत्योमिलिला एको भागः, अपरश्च तैलस्य।
श्यामा प्रियंग्र ; कृताञ्जलि. सर्यंभका अञ्जलिकारिकेति ख्याता, लाजाञ्जया इस्यन्ये
लञ्जावतीति कुत्रचित्। कटुका कटुरोहिणी। एपा करूकः। जल चतुर्गुणम्। सुतनृकरोतीत्यादौ—मध्य स्त्रिया मध्यदेशः, मथितेन घोलेन, माधवीमृल माधवीलतामृलम्। सुरगोप इति इन्द्रगोपाल्य कीट सिन्दुरियापोका इति लाके, आज्य
ध्रतम्, अनयोरम्यङ्गात्॥ २०॥

शववहनस्थितवन्घनरज्ज्वा सन्ताडनाद्धि द्यितेन।
नश्यत्यवलाद्वेषः पत्यौ सहज्ञः कृतोऽथवा योगैः॥
द्त्त्वैव दुग्धमक्कं विप्रायोत्पाट्य सितवलामूलम्।
पुष्ये कन्यापिष्टं दत्तमनिच्छाहरं भक्ष्य॥ २६॥
इति स्त्रीरोगचिकित्सा।

शववहने सार्दि — शवो मृत , तद्वहनाय स्थिता या बन्धनरज्जुस्तया। द्रियतेन भत्त्रो । विप्राय दुन्धमक्त दत्त्वेति पूर्वेश योज्यम् । भत्त्ये मकादौ ॥ २६ ॥ इति स्त्रोरीगिचिकित्सा विष्ठति ।

अथ बालरोगचिकित्सा ।

कुष्टवचाभयाब्रह्मीकनकं चौद्रसर्पिपा। वर्णायु कान्तिजननं लेहं वालस्य दापयेत्॥१॥

दुष्टस्तन्यपानादिना वालाना रोगसम्मवादनन्तर वालरोगाधिकार । तल वाल-रोगाधिकारे वक्तच्ये प्रथमत वालस्य सुस्थवृत्तमाह कुर्षामलादि—कनक मारितनारि-तल्वर्णेचूर्णम्। तल सुवर्णमारणविधियंथा—करण्टकवेध्यसुवर्णपत्र जम्बीरस्वरसेन स्थाप-यित्वा सुवर्णकफलस्थितगुढपायकेहमागेन लिप्ता गारचकर्मटामूलपिर्ण्डमथ ऊद्धं स्र दत्ता शरावसम्पुटे निविप्य प्रलिप्य च गोमथाम्रो वारद्वय स्थ वा प्रपुटेत्, तत्तश्चूर्णियत्वा द्वधनवस्रेण झानयेदिति । लेहोऽय जातदिने तदुपरि च प्रचरित । तन्त्रान्तरे च "स्वर्णादिलेहान्तरस्य सम्बत्सर यावदुपयोग " इति ॥ १ ॥

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिवेत्। तर्कधो गुडिकां तप्तां निर्वाप्य कटुतैलेक। तत्तेलं पानतो हन्ति वालानामुख्यमुद्धतम्॥२॥ तद्गुणमिति सस्काराष्ट्रपृष्ठतम्। तर्कथ शित तकुं टाकुया शित ख्याता, तम्या श्रभोग्रिका वाद्यनीति ख्याता। उत्व बालकस्य कपठगतस्रेषमा॥२॥

व्योषशिवोग्रारजनीकल्कं वा पीनमथ पयसा । उल्वं नि शेषं कुरुते पदुतां वालस्य चात्यन्तम् ॥ ३ ॥ मृत्पिएडेनाग्नितसेन चीरसिक्केन सोप्मणा । स्वेदयेदुत्थितां नार्मि शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ४ ॥ व्योपत्यादी-शिवा इरीतकी, उम्रा वचा । स्तन्येन पयसेति नारीचीरेणे-स्वर्षं , वाशब्दोऽत्र पूर्वयोगापेषया ॥ ३ । ४ ॥

नाभिपाके निशालोध्रिययंगुमधुकै श्रुतम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम्॥ ४॥ नाभीत्यार्टा-मधुक यष्टिमधुकम् ॥ ५ ॥

सोमग्रहणे विधिवत् केकिशिसामूलमुद्भृतं यद्धम्।

जघने अथ कन्धरायां चपयत्यहितु एडकां नियतम् ॥६॥

मोमग्रहण इत्यादौ-विधिवत् उद्भृत इत्यन्वय । विधिश्च मुक्तकचिशित्वन पुमा उद्धरणम् । केकि। शित्वा मयूरशित्वा । उद्धृत्य वद्धेति पाठे आमूलमुद्धृत्यिति योज्यम् । अत्र भित्तुप्रार्थितकपर्वककुद्दरे पारद पूरियत्वा मिक्थकेन सरुध्य कुमारी धत्ते इत्युपादिशन्ति वृद्धाः ॥ ६ ॥

सप्तद्लपुप्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम्।

पीतं तद्वत् तराडुलभक्षकृतो द्ग्धापिष्टकप्राश् ॥ ७ ॥
सप्तदलेत्यादि—सप्तदल- मप्तच्छद , तस्य पुष्पम् । पीतमित्यत्र जलेनेनि
शेष । तद्दिति श्रहितुण्डिका चपयतीति शेष । तण्डुलेत्यादि योगान्तरम् । मक्तसहिततण्डुलान् पिष्ट्वा पेत्रणावेष्ट्य कुशेन वद्ध्वा श्रद्गीर्दग्ध्वा मचणीयमित्यर्थ ॥७॥

जम्बूकनासा वायसिजहा नाभिवेराहसम्भूता। कांस्यं रसोऽथ गरलं प्रावृड्भेकस्य वामजङ्घास्य॥ इत्येकशोऽथ मिलितं विधृतं ग्रीवादिकृटिदेशे। श्रहितुरिडकाप्रशमनमभ्यद्गो नातिपथ्यविधिः॥ ॥॥

जम्बूकेत्यादि—जम्बूक श्रगालस्तस्य नामा, वायमः काकस्तस्य जिह्नाः रमः पारद , गरलं वियम् । प्रावृङ्भेक वर्षाकालजमण्डूक , स च पीतच्छ्रवि. मोना-वेड इति ख्यात , तस्य वामपदास्थि । एतत् सर्वे प्रत्येक मिलित्वा वा शीवाया कट्या वा धारणीयम् । नातिषथ्यविधिरिति व्याधिप्रभावादेवायम् ॥ = ॥

श्रनामके घुर्घुरिकावुकामरिचरोचनाः।

नवनीतञ्च सम्मिश्य खादेत् तद्रोगनाशनम् ॥ ६ ॥ श्रनामक र्शत निर्नामरेश अति ख्यात , केचिच पुश्चिकारेश रित ख्यात । व्रुव्धीरेका कीटविशेषतस्य बुक्का बुक्कमाग स्त्यर्थ ॥ ६ ॥

तैलाक्कशिरस्तालुनि सप्तद्लार्कस्तुहीभवं चीरम् । दत्त्वा रजनीचूर्णे दत्ते नश्येदनामाख्यः ॥ १० ॥ तेलाकेत्यादी—तेलाभ्यकशिरस्तालुनि सप्तदलार्कस्तुहीचीरं दस्ता तहुपीर हरिद्राचूर्णं दद्यादित्यर्थः ॥ १० ॥ लेहयेच्य ग्रुना चालं नवनितेन लेपितम् । स्फुटकीपत्रज्ञरसेनोद्वर्त्तनञ्च तद्वितम् ॥११॥

लेह्रयेदित्यादी--नवनीताक्षगात्र शिशु ऋत्वा शुना कुनकुरेख लेह्रयेद् , तत' पुरकीस्वरसेनोह्रचंयेत् ॥ ११ ॥

तैलस्य भागमेकं मूलस्य हो च शिम्वीद्लरसस्य । गव्यं पयश्चतुर्गुणमेवं दत्त्वा पचेत्तेलम् । तेनाभ्यक्र सततं रोगमनामकाख्यमुपहराति ॥ १२ ॥ तेलस्येलादां—शिम्बीदल शिम्बीपत्रम् ॥ १२ ॥

श्रार्क त्लकमाविकरोमाण्यादाय केशराजस्य । स्वरसेनाक्षे वस्त्रे इत्वा वर्त्तिञ्च तैलाक्षाम् ॥ तजातकजाजियतलोचनयुगलोऽण्यलङ्कृतो वाल' कप्टमनामकरोगं चपयति भृतादिकञ्चापि॥ १३॥

श्राकंमित्यादि-श्रकंस्य तुलकम्, श्राविकरोमाणि मेपरोमाणि चेति भागद्वय केराराजस्वरमरिकतवस्त्रेरावेष्ट्य तैलाक ज्वालयेत् । तिच्छखोपरि पात्र धृत्वा पतित-कज्जलेन चतुपी रज्जन कार्यम् ॥ १३ ॥

> चालनिकातलसंस्थितपोतं संसाव्य गव्यसूत्रेण । श्रोकोदशालिकायां रजकत्तारोदकस्नानम् ॥ दासक्रयणश्रावणविद्यका रसेन्द्रपूरिता धृता कण्ठे । निलनीदले च शयनं सुकष्टमनामकाख्यरोगान्नम् ॥ १४ ॥ भैपज्यं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु । देयं तदेव वालानां मात्रा तस्य कनीयसी ॥ १४ ॥

चालानिकेत्यादि— ओकोदशालिकाया चालानिकातले सस्थितवालक चाल-निकारन्थ्रपतितगोमूत्रेण कापियला रजकलारजलेन कापयेत्। दासेत्यादी—आवणः पापण्डविशेष मिन्नुवेशधारी योगीति लोके, तस्य विटका वराटिका कपरिकेलि यावत्, दासेन दासद्वरा ऋयण यस्या सा तथा, तत कर्मधारय । रमेन्द्रेण पारदेन प्रिता सा क्यें छतेत्यर्थ । निलनीदल पद्मपत्रम् ॥ १४ । १४ ॥ प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरिक्तका ।

श्रवलेह्या तु कर्चव्या मधुन्तीरिसताघृते ॥

एकेकां वर्द्वयेत्तावद् यावत् संवत्सरो भवेत् ।

ततृद्ध्वं माषवृद्धि स्याद् यावदाषोडशाव्दिकः॥१६॥

मात्रा चात्र कनीयसीति यदुक्तम् अतस्तामेव मात्रा प्रतिपादियतु परिमाषामाह प्रथम इत्यादि—माध्वित मध्वादिविकल्पो दोषप्रकृत्यादिमेदात् । एकैकामिति
मामि मासि एकैका रिक्तका कृत्वा वर्द्धयेदित्यर्थं , तदूद्ध्वमिति वर्षादूद्ध्वं वर्षे वर्षे
मापेण मापेण वृद्धिमापवृद्धिः । एतत्परिमाषाराषो यथा—'प्रतिमास प्रयोक्तव्या
वृद्धिरेषा भिषग्वरे । मानमेतत् प्रयोक्तव्य सर्वमानविधावपि । षोडशाच्दाद्भवेदूद्ध्वं
यावदासप्ततेरिति । एष एव विभागोऽय तदूद्ध्वं वालवत् किया" इति ॥ १६॥

हरिद्रादिः

हरिद्राद्वययष्ट्याह्नसिंहीशऋयवैः कृतः।

शिशोर्ज्वरातिसारघः कषायः स्तन्यदे।पजित् ॥ १७ ॥

हरिद्रत्यादी—सिंहीं पृक्षिपणीं । यत्र हरिद्रादिगण एवाय क्रोकेन निवद , तत्र च कलसीति पठिता, निश्चलस्तु सिंही वासक इत्याह । यस्तु चीरपो वाल कपाय पातुमसमर्थस्तस्य धात्रीम् पाययेष् । सुश्रुतेन कषायोक्तद्रव्यकल्केन लिप्तयोः स्तनयोः पानमपि दिशितम् ॥ १७ ॥

वालचातुर्भद्रिका

घनकृष्णारुणाश्यङ्गीचूर्णं चौद्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरातिसारझं कासश्वासवमीहरम् ॥ १८ ॥

घनेत्यादि-पन मुस्तकम् ; अरुया अतिविषा ॥ १८ ॥

धातक्यादिः

धातकीविल्वधन्याकलोभ्रेन्द्रयवबालकैः। लेहः चौद्रेण वालानां ज्वरातीसारवान्तिनुत्॥ १६ ॥ धातक्यादि—स्पष्टम् ॥ १६॥

रजनीद्दिसरलश्रेयसी बृहतीद्वयम् । पृश्लिपर्णी शताहा च लीढं माचिकसर्पिषा ॥ ग्रह्यीदीपनं हन्ति भारतार्ति सकामलाम् । ज्वरातीसारपार्ह्यं वालानां सर्वरोगनुत् ॥ २० ॥ रजनीत्यादि—नाग्भटस्य । श्रेयमी गजिप्पली । वालाना सर्वरोगनुदित्यत्र वालाना सर्वशोधनुदित्यपि पाठो वाग्भटे चन्द्रोटेऽपि दृश्येते ॥ २० ॥

मिषीकृष्णाञ्जनं लाजाश्वक्षीमरिचमात्तिकै । लेह शिशोर्विधातव्यश्कुर्दिकासज्वरापहः ॥ २१ ॥ मिर्मात्मादि—मिषी मधुरिका , कृष्णा पिष्पली , अञ्जन रसाञ्जन , श्रही कर्कटस्क्षी ॥ २१ ॥

शृङ्गचादिः

श्रङ्गी समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विद्घ्यान्मधुना शिश्रनाम् । कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाज्ञिकञ्चातिविषां तथैकाम् २२

शृङ्गयादि-स्पष्टम् ॥ २२ ॥

पीतं पीतं वमेद् यस्तु स्तन्यं तनमधुसर्पिषा । द्विवार्चाकीफलरसं पञ्चकोलञ्च् लेहयेत्॥

श्राम्नास्थिलाजसिन्धृत्थेलेहः चौद्रेण छुर्दिनुत् ॥ २३ ॥ पीतमित्यदि—नाग्मटस्य । दिनाचौकी बहतीद्वयम् । फलरसमिति नाचौकी-

पतानत्याय — पाप्तव्य । प्रवाधाय प्रवाधाय प्राचीति विकल्पे, अते। योग फलरसम्। योगोऽयमक इति श्रीकर्यं । निश्चलस्तु चशब्दो विकल्पे, अते। योग इय , यदुक्तमायुर्नेदसारे— "पीखा यो वर्मात स्तन्य मृश यो मधुसपिपा। कोलीफलरस यहा पन्चकील प्रलेह्येव्" इति । अयम्य व्यवस्थिते। विकल्प , तन पित्तीचेर कफ बृहतीह्रयफलरस , वातरेष्ठमणि च पन्चकीलमित्याह ॥ २३॥

पिष्पत्तीमरिचानान्तु चूर्णं समधुशक्रिस् । रसेन मातुलुङ्गस्य हिकाच्छुर्दिनिचारणम् ॥ २४॥ पिष्पतीत्यादी—रसेन मातुलुङ्गस्यत्यत्र लिह्यादिति राष ॥ २४॥

पेटीपाठामूलाज्जम्ब्वाः सहकारवल्कतः कल्कः। इत्येकश्रश्च पिएडो विघृतो हृन्नाभिमध्यताल्वादौ॥ खर्चतीसारजवेगं प्रवलं घत्ते तदेव नियूमेन॥ २४॥

पेटीस्पादि-पेटारीति ख्याता, कापीडपरीति लोके। चकारान्मिलित्वा प्रत्येकञ्च योग ॥२५॥ विल्वञ्च पुष्पाणि च घातकीनां जलं सलोधं गजिपप्पली च। काथावलेहौ मधुना विमिश्रौ वालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥२६॥

विल्वेत्यादौ-जनल वालकम् । क्षाथावलहाविति काथो वा अवलेहो वेत्यर्थे । अवलेहपचे सर्वं सञ्चूर्ण्य अनुरूपमधुना लेह्यम् ॥२६॥

समङ्गाधातकीलोध्र-शारिवाभि श्रतं जलम् । दुईरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाज्ञिकम् ॥ नागरातिविषामुस्तं वालकेन्द्रयवैः श्रतम् । कुमारं पाययेत् प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ समङ्गा धातकी पद्मं वयःस्था कच्छुरा तथा । पिष्टैरेतैर्यवाग् स्यादतीसारविनाशिनी ॥२०॥

समङ्गेखादि—समङ्गा वराहकान्ता, पद्म पद्मकेशरः, वयस्था गुहूची, कच्छुरा भ्रिश्मशीमूलम् । कल्कसाध्या इयम् ॥२७॥

विल्वचूर्तकपायेण लाजाश्चेव सशर्कराः । श्रालोड्य पाययेद्वालं छुर्चतीसारनाशिनी ॥२८॥

विल्वेलाढौ —कपायोऽर्द्धश्वत । श्रतएव निर्देशात् लाजाराष्ट्र स्त्रीलिङ्गोऽप्य-स्तीति । योगोऽय खदर्धतिसारनाशनो बोध्य इति शेष ॥२८॥

कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः।
चौद्रलीढ कुमारस्य च्छदितृष्णातिसारनृत्॥
मोचरसः समद्गा च धातकी पद्मकेशरम्।
पिष्टैरेतैर्यवागुः स्याद्रक्षातीसारनाशिनी ॥२६॥

कल्क इत्यादी—कोलास्थि मध्य वदरास्थिमज्जा, मोच साल्मलीनेष्टक ॥२६॥

लेहस्तैलसिताचौद्रितिलयष्ट्याह्नकिकतः । वालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्षस्रावप्रवाहिकाम् ॥३०॥

लाजा सयप्रिमधुकं शर्कराचौद्रमेव च । तर्रहलोदकसंयुक्तं चित्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥३१॥ लाजा इत्यादौ — संयुक्तिमित्यनन्तर पीतिमिति शेष । लाजादिन्तूर्णं यथायोग्य गृष्टीत्वा तर्यहुलोदकेन पेयम् ॥३१॥

> श्रङ्कोटमूलमथवा तण्हलसिललेन वटजमूलं वा । पीतं हन्त्यतीसारं श्रहणीरोगं सुदुर्वारम् ॥३२॥

श्रद्धोठेत्यादि—शद्धोठ शद्धोढ इति ख्यातस्तरः । योगद्दये तण्डुलोदक सम्बन्धते । वटनमूल वटनातमूल मूलाकार इस्त्रमाण 'व' इति ख्यातम्, अतप्योक्ष वटनमूलमिति, न तु वटमूलम् ॥३२॥

> सितजीरकसर्जचूर्णं विल्वद्लोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम्। इन्त्यामरक्षम्रःलं गुडसहितः श्वेतसर्जो वा॥ मरिचमहौपधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः। गुडतक्रयुक्तमेतद् श्रह्णीरोगं निहन्त्याशु ॥३३॥

सितेत्यादौ---विल्वदलोत्याम् । विल्वपत्रस्वरम । गुडेन मधुरीङ्गत-तक्र गुडतकम् ॥ ३३ ॥

विल्वशकाम्बुमोचाव्दसिद्धमाजं पयः शिशो । समांशं रक्षां प्रहर्णी पीतं हन्यात् त्रिरात्रत । तद्धदजाचीरसमो जम्बूत्वगुद्धचो रस ॥३४॥ गुद्दपाके तु वलानां पित्तर्भी कारयेत् कियाम् । रसाक्षनं विशेषेण पानालेपनयोहितम् ॥३४॥ कणोपणसिताचौद्रसूद्मैलासैन्धवैः कृत । मूत्रप्रहे प्रयोक्षव्यः शिश्र्नां लेह उत्तमः॥३६॥

बिल्वेत्यादी--शक्तमिन्द्रयवम्, श्रम्बु वालकम्, मोच शाल्मलीवेष्टकः । सिद्ध-मिति चीरपरिमाषया पाकः ॥३४-३६॥

घृतेन सिन्धुविल्वैलाहिङ्गुभागीरजो लिहन्। श्रानाहं वातिकं ग्रूलं जयत्तीयेन वा शिशुः॥ ३७॥ ध्वेनेलादौ—सिन्धु सैन्ध्वम्। एषा चूर्णं ध्वेन लेखम्। तोयेन वेलनन्तरं पिविश्विति शेष । तेन तेथिन कोष्ण्यजलेन वा पिवेदिलर्थं॥ ३७॥ हरीतकीवचाकुष्ठं करकं मान्निकसंयुतम् ।
पित्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥ ३८॥
हरीतकीत्यादि—नाग्मयस । तालुपातेन तालुप्रदेशस्य निम्नता । तालुकण्यकादित्यपि पाठ ॥ ३८॥

मुखपाके तु वालानां साम्रसारमयोरजः।
गैरिकं चौद्रसंयुक्तं भेपजं सरसाञ्जनम्॥
श्रश्वत्थत्वग्दलचौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्।
दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्वचौद्रैस्तथापरम्॥३६॥

मुखपाक इत्यादी—आञ्चमार आञ्चसदृशपत्र स्वनामख्यातो राढायामिति कोचित् । अन्ये आञ्चसार, आञ्चफलस्थिमज्जेत्याहु । आञ्चसारादि-रसाजनान्तम् एक एव प्रतेष । अश्वत्थस्य त्वक् पत्रञ्च । अपरिमत्यत्र प्रतेपनिमत्यन्वयः ॥ ३६ ॥

सह जम्बीररसेन स्तुग्दलरसघर्षणं सद्यः । कृतमुपहान्ति हि पाकं मुखजं वालस्य चाश्वेव ॥ ४० ॥ सहत्यादौ—जम्बीर पर्णाशमेद । स्तुग्दल स्तुद्दीपत्रम्, तस्य स्वरस पुट-पाकविधिनैव प्रदीतु शक्यते ॥ ४० ॥

लावति चिरिवल्लूररजः पुष्परसान्वितम् । द्वतं करोति वालानां दन्तकेशरवन्मुखम् ॥ ४१ ॥

लोबत्यादि—वाग्मटस्य । लावितिचिर्थोर्वल्लूर शुष्कमामम्, पुष्परसो मधु । यतन्मासचूर्णं मधुना लेद्यमिति केचित् । अन्ये तु मधुनैतच्चूर्णेव दन्तपालि प्रति-सार्येदित्याहु । किन्तवय योगो वाग्मटे प्रतिमारणप्रकरेण पठित । दन्तकेशरमिति दन्ता एव केशर सुकुमारत्वात् ॥ ४१ ॥

दन्तोद्भेदोत्थरोगेषु न वालमतियन्त्रयेत्।

स्वयमण्युपशास्यन्ति जातद्न्तस्य ते गदाः ॥ ४२ ॥ दन्तोद्वेदेत्यादि—नाग्मटस । दन्तोद्वेदो दन्नभेद । 'दन्तोद्वेदश्च रोगाणा मर्वेषामपि कारणम् । विशेषाज्ज्वरिव्हेभेदकासच्छिदिशिरोरुजाम्'' इत्यादि । न बालमीतयन्त्रयेदिति श्राहाराचारिनयमेनेत्यर्थ ॥ ४२ ॥

पञ्चमूलीकपायेण सघृतेन-पय श्रुतम्। सश्टङ्गवेरं सगुडं शीतं हिकार्दितः पिवेत्॥ सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह । लीढ्वा सुखमवामोति चिप्रं हिकार्दितः शिशुः॥ ४३॥

पद्ममूलीत्यादि—-पन्चमूली महती बातकफप्रधानहिष्काहरत्वात्। अत काथात् पादिक धतम् अष्टमांश वा, दुग्धाचतुर्गुणः काथ । एतत् सर्वमेकीकृत्य पवत्वा काथ शोषियत्वा सप्तत दुग्धः स्थाप्यम्, तत्र शुर्ण्ठीचूर्णं गुठकानुरूपं प्रिष्प्य यथाई पिवे-दित्याहु । अन्य तु धतस्यापि पानकाले प्रदेष्यत्विमिति वदन्ति । सुवर्णेगीरकस्य अत्यन्तलोहितगिरिकस्य ॥ ४३ ॥

चित्रकं श्रद्भवेरञ्च तथा दन्ती गवादयि। चूर्णे कृत्वा तु सर्वेपां सुखोष्णुनाम्बुना पिवेत्। श्वासं कासमथो दिक्कां कुमाराणां प्रणाश्येत्॥ ४४॥ दिक्किमित्यादी—गवाची गेरचककंटा। सिववन्थे वाते कफेड्य योगः ॥४४॥ द्राचायासामयाकृप्णाचूर्णे सचौद्धसिपपा। लीढं श्वासं निद्दन्त्याशु कासञ्च तमकं मथा॥ ४४॥ पुष्करातिविषाश्यक्षीमागधीधन्वयासकम्। चूर्णितं मधुना लीढं शिश्र्मं पञ्चकासनुत्॥ ४६॥ द्राचेत्यादि—ककिवे। यासे। दुरालमा। तमक शासिमत्यर्थ ॥४५॥ द्राचेत्यादि—ककिवे। यासे। दुरालमा। तमक शासिमत्यर्थ ॥४५।४६॥

दाडिमस्य च वीजानि जीरकं नागकेशरम्।
चूर्णितं शर्कराचौद्रलीढं तृष्णानिवारणम्॥ ४७॥
दाडिमस्यत्यादौ—वृष्णितीमत्यत्र कृष्णा चेति पाठान्तरम्॥ ४७॥
मयूरपच्तमस्मव्युषितजलं तेन मावितं पेयम्।
वृष्णामं वटकाष्ठजमस्मजलं वष्त्रशोषिजद्भृतं वष्त्रे॥
पिष्टेश्कुगोन पयसा दावींमुस्तकगौरिकै।
विद्रालेपनं शस्तं शिशोनित्रामयापहम्॥ ४८॥

मायूरेत्यादि—मयूरपच्चमससावितजलेन न्युपितेन माधितवटकाष्टमसा स्नाबि-तजलेन पेयमित्यर्थे. । मयूरपच्चमसा पल १, जल पल ६, एतद्वहुधा वर्छे परिस्नान्य गृहीतजले न्युधिते पष्टारोन वटकाप्ठमस्म प्रचिप्य बहुधा परिस्नान्य यथाई पिनेद्य ॥ ४८ ॥ मनःशिला शङ्खनाभि पिष्पल्योऽथ रसाञ्जनम् । वर्त्ति चौद्रेण संयुक्ता वाले सर्वाक्तिरोगनुत् ॥ ४६॥ मन शिलेत्यादौ—चौद्रेण सयुक्ता सष्टेत्यर्थः ॥ ४६॥ मात्तस्तन्यकदुस्त्रेहकाञ्जिकभीविता जयेत् । स्वेदादीपशिखोत्ततो नेत्रामयमलक्षकः ॥ ४०॥

मातृस्तन्येत्यादौ-मदुक्तेष्ट कदुतैलम् । एतैर्मातृस्तन्यादिभिः प्रत्येकराः सप्ताह भावितोऽलक्षकरसः अनन्तरं दीपशिखातप्तः सन् स्वेदविधिना नेत्रामय जये-दित्यर्थः ॥ ५०॥

शुर्राभृङ्गानिशाकल्कः पुटपकः ससैन्घव । कुकूर्यकेऽिचरोगेषु भद्रमाश्च्योतनं हितम्॥ ४१॥

शुप्ठीत्यादी—मृक्षी मृक्ष्राज । शुप्ट्यादीना पिष्टाना प्रत्येक माषद्वयम् , मैन्थव रिक्तपन्चकम् । पतत् सर्व पुटपाकविधिना पक्त्वा तत आकृष्य वस्त्रे पोटलीं बद्ध्वा चच्छिष आश्च्योतन कार्य्यम् । कुकूलक शित पाठे कुकूलकस्तुषाभिः, पतिसम् पुटपक हत्यान्वयः । उक्त हि वाग्मटे—"शृक्षवेर निशा भृक्त किकत वटपल्लवे । वद्ध्वा गोशकृता लिप्त कुकूले स्वेदयेत् ततः । रसेन लिम्पेत् ताल्वास्य नेत्रे च परिषेचयेत्" शित ॥ ५१ ॥

किमिझालशिलादार्वी-लाक्ताकाञ्चनगैरिकै.।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिग्रनां पोथकीषु च।।
सुदर्शनामूलचूर्णादञ्जनं स्यात् कुकूणके ॥
गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः।
लेपस्तकेण दृन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः॥ ४२॥

क्रिमिझेत्यादौ — आल हरितालम ; शिला मन शिला; काञ्चनगैरिक स्वर्ण-गौरिकम् । चूर्णाञ्जनमिति मधुम्रचित्तशलाकया चूर्णाञ्जन कार्य्यम् । सुदर्शनेति सुदर्शना त्रिशुरीति ख्याता जीवपेत्रीत च ख्याता ॥ ५२ ॥

अश्वगन्धाष्ट्रतम्

पाद्कल्केऽश्वगन्घायाः चीरे दशगुंर्णे पचेत् । घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्वलवर्द्धनम् ॥ ४३ ॥ पादकलक इत्यादी—पेय कुमाराणामिति कुमारे पेयमित्यर्थः । वा कर्त्तेरि कृत्येरिति पष्टी ॥ ५३ ॥

वालचाङ्गरीघृतम्

चाङ्गरीस्वरसे सर्पिश्छागर्चारेसमे पचेत्। कपित्थव्योपसिन्धृत्थसमङ्गोत्पलवालकै।। सविल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारनुत्। ग्रह्णीं दुस्तरां हन्ति वालानान्तु विशेषतः॥ ४४॥

चोद्गरीत्यादी-—श्रजाचीरचोद्गरीस्वरसी धताद् द्विग्रणी, पाकसाथनत्वेन चतुर्गुणद्रवस्योत्सर्गसिद्धत्वात् ॥ ४४ ॥

कुमारकल्याग्यकं घृतम्

शह्वपुष्पी वचा ब्रह्मी कुष्ठं तिफलया सह ।
द्राच्चा सशकेरा श्रुगठी जीवन्ती जीवकं वला ॥
शटी दुरालमा विल्वं दाडिमं सुरसः स्थिरा ।
मुस्तं पुष्करमूलश्च सूच्मेला गजपिष्पली ॥
प्पां कपसमेभीगेर्घृतप्रसं विपाचयेत् ।
कपाये कगटकार्थाश्च चीरे तिस्मिश्चतुर्गुगे ॥
पतित् कुमारकल्याणं घृतरतं सुखपदम् ।
वलवर्णकरं घन्यमशिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥
छायासर्वश्रहालदमी-क्रिमिदन्तगदापहम् ।
सर्ववालामयहरं दन्तोद्धेदं विशेषत् ॥ ४४॥

शह्वपुष्पीत्यादी—जीवक जीवनीयवर्गमध्ये पठितद्रव्यम् । सुरसः पर्णाश । कण्टकारीस्वरस चीरव्च प्रत्येक धताचतुर्गुणम् । भूतादिकृत मुखादिवैवएर्थ छाया ॥ ४५ ॥

अप्टमङ्गलघृतम्

वचा कुष्टं तथा ब्रह्मी सिद्धार्थकमथापि च । शारिवा सैन्धवञ्चापि पिष्पली घृतमएमम् ॥

वालरोग-चिकित्सा।

मेध्यं घृतिमदं सिद्धं पातव्यञ्च दिने दिने ।

दृढस्मृति चित्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भेवत् ॥

न पिशाचा न रत्तांसि न भूता न च मातरः ।

प्रभवन्ति कुमाराणां पिवतामप्रमङ्गलम् ॥ ४६॥

वेचत्यादि—वचादीना कल्कः, जलं चतुर्गुणमिति ॥ ४६॥

लाचादितैलम्

लाक्तारससमं सिद्धं तैलं मस्तुचतुर्गुणम् । रास्त्राचन्दनकृष्णाव्द-वाजिगन्धानिशायुगैः॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्नमूर्वातिक्ताहरेणुभि । वालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्वलवर्णकृत् ॥ ४७॥

लाझातेले — कुष्ठाव्यचन्दनौरित्येव पाठो वाग्मटपुस्तकेषु दृश्यते, न तु कृष्णा-व्यचन्दनैरिति । तिक्ता कडरो।हिणी, न तु लताकस्तुरी, "समूर्वारोहिणीरास्नाशता-हामधुकै: समै:" इति सिद्धसारदर्शनात् ॥ ५७॥

सहामुगिडतिकोदीच्यकाथस्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदनिशाकुष्ठ-चन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ ४८॥

सहेत्यादि—सहा माषपणीं। कायोऽत्रार्दश्त ॥ ५=॥ सर्पत्वक् लशुनं मूर्वासर्षपारिष्टपञ्जवाः। वैडालाविडजालोम मेपश्टकी वचा मधु। धूपः शिशोर्ज्वरझोऽयमशेषग्रहनाशनः॥ ४६॥

सर्पेत्यादि—सर्पत्वक् निर्मोक , श्रारिष्टो निम्न , सर्वप . श्वतसर्वप , मेषम्बङ्गया । पत्तन् । मेषम्बङ्गमिति पाठे मेषस्य गडरस्य श्वहुम् ॥ ५६ ॥

वित्रान्तोष्टकर्माणि कार्य्याणि ग्रहशान्तये । मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्ततादौ सार्वकामिकः॥

ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्वकाय सद्यस्तव स्तुतः स्वाहा । ॐ कं पं टं शं वैनतेयाय नमः । ॐ हीं हूं स्न. ॥६०॥ वर्तात्यादो—ततादानित्यत्र मन्त्रादानिति पाठान्तरे कुमारस्य हस्तकस्यादि-

स्झवन्यन इत्यर्थ । ॐ इत्यादिस्वाहान्त एको मन्स । ॐ इत्यादिशीनाचरात्मको हितीय । एव ॐ इत्यादि च इत्यन्तस्तुन्य । किंवा मिलित्वा एक एव विल-दानमन्त्र ॥ ६०॥

वालदेहप्रमाणेन पुष्पमालान्तु सर्वतः। प्रगृह्य मुच्छिकामक्रवलिर्देयस्तु शान्तिकः। "ॐकारी सुवर्णपत्ती वालकं रत्त रत्त स्वाहा"॥ ६१॥

बालेटेहत्यादी—पुष्पमाला शुक्ता । मर्वत इति मर्वामु दिन्तु । मन्न रारा-वस्योपरिम्यमक्न चतुष्पार्थम्थमक्न वा । मुन्द्रिका म्वल्पशरावाः । श्रव मत्म्य-मासव्यन्ननवृपदीपदान्मप्युपिटगन्नि वृद्धाः । श्रय गरुडवित सन्ध्याया दिनव्य दीयत इति वृद्धेः । बालकरक्षामन्त्रमाह व्यकारियादिस्वाहान्त ॥ ६१ ॥

ॐ नारायणाय नम । प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा गृहाति नन्दा नाम मातृका । तया गृहीतमावेण प्रथमं भवति ज्वर । श्रशुमं शब्दं मुञ्चति, श्रात्कारञ्च करोति, स्तन्यं न गृहाति । वर्षि तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुमम् ।

नद्यभयतदम्धिकां गृहीत्वा पुचिलकां कृत्वा गृङ्गौद्नं, गृङ्गपुणं, गृङ्गसप्तव्वजा, सप्त प्रदीपा, सप्त स्वस्तिका, सप्त वटका, सप्त ग्रण्कुलिकाः, जम्बुलिका, सप्त मुस्तकाः, गन्धं, पुणं, ताम्बूलं, मत्स्यं, मांसं, सुराग्रभक्तञ्च पूर्वस्यां दिशि चतु-ण्यं मच्याद्वं बिलद्शतव्य । ततः श्रश्वत्थपतं जलकुम्भे निद्धित्य ग्रान्त्युद्केन स्नापयेत्, रसोनसिद्धार्थकमेपश्रद्धानिम्वपन-शिवनिर्माल्यैर्वालकं घृपयेत् । ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि हन हन मुश्च मुश्च हीं फद् स्वाहा"। एवं दिनन्नयं विल दत्त्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्पद्येत श्रमम्

इदानीं प्रमिद्धफल रावणकृतकुमारनन्त्रमाह ॐ नारायणाय नम इत्यादि— प्रथमे मानि वर्षे वेत्यादि 'कथम् र यता वस्यमाणादितीयदिवमादिना प्रथममासस्य वाधितत्वादः एव प्रथमवर्षस्यापि द्वितीयतृतीयमासादिडादशमासान्ते परिमृतत्वादिति। स्रत्राच्यते दादशादिनात् परतोऽस्त्येव प्रथममामस्यावकाशः, एव वर्षस्यापि। तथाहि—यदि कुमारो मोघ जातस्तदा माघादिगणनया पौषमामि दादशमासा भवाने। प्रथम-दितीयदिवसविधिरेव, तत ऊद्ध्वं दादशमामि वर्षमृद्धिदेन यावत् प्रथममम्वत्सरिविध-विधेय इति युक्तमुत्पश्याम । मामेन गणनया, न तु चन्द्रादिन्यगत्या दिनविभाग कृत्वा मामादिगणना कार्यां, इह दादशमामवर्षयोविषयत्वाभावप्रमङ्गात् । किंवा स्मादित्यगत्यादिगणनयापि जन्मदिन एव प्रथमवर्षविधेश्चारितार्थत्विभिति । नन्दादिनाम-कीर्चनिश्च तदुदेशेन वित्यानार्थम्, यथा—अमुकस्य न्याधि हन हन मुख्च मुख्च स्वाहा नन्दाये नम इति वित्यानम् । अग्रुमशन्द्रममङ्गलवाक्य मुख्नति विरोति । स्रात्कारश्वदिः । स्वस्तिका वेदिका । जम्बुलिका उत्स्वन्नमाया । अश्वत्यपत्र जल-कुम्भे प्रविष्य गायत्री पठित्वा दिनेन शान्त्युदक कर्त्वन्यम्, किंवा वित्यानमन्त्रे-णैव भिषजा कार्य्यमित्याहुर्वृद्धा । मेवस्य गडरस्य श्वज्ञ । यत्र धूपो नोकस्तत्राय-मेव धूपो विवेय । यत्र शान्त्युदक नोक तत्र ददमेव शान्त्युदकमुपदिशन्ति । ॐ नम इत्यादि—मन्त्रो ध्रव , येऽविशेषान्ते प्रतिमातृक वाच्या कुमारस्य नामो-चार्यपूर्वक पठनीया , यथा—अमुकस्य न्याधि हन हन मुख्न मुख्न इति ॥६ १॥

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्वाति सुनन्दा नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । चक्तुः जन्मी-लयति, गात्रमुद्वेजयति, न शेते, क्रन्दति, स्तन्यं न गृह्वाति, श्रात्कारश्च भवति।

वर्लि तस्य प्रवद्यामि येन सम्पद्यते श्रमम्।

तग्रहलं हस्तपृष्ठैकं गृहीत्वा दिघ गुडघृतञ्च मिश्रितं, शरावकं, गन्धताम्वूलं, पीतपुष्पं, पीतसप्तध्वजा, चत्वार प्रदीपाः, दश स्वस्तिका, मत्स्यमांससुराग्रभक्षतिलचूणीनि पश्चिमायां दिशि चतुष्पथे विलद्गीतन्यः दिनानि त्रीणि सन्ध्या-याम्।ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्, शिवनिमील्यसिद्धार्थमाजीर-रोमोशीरवालकघृते धूपं दद्यात्। "ॐ नमो रावणाय श्रमु-कस्य न्याधि हन हन मुञ्ज मुञ्ज हीं फट् स्वाहा"। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्। ततः सम्पद्यते श्रभम्॥६३॥

दितीय श्स्यादौ - उन्मालयाते उपरि भृरामुत्तिपति । हस्तपृष्ठैकमिति एकवार-

परिमितिहस्तपृष्ठे तग्डुलान् गृहीत्वेत्यर्थे । अग्रमक्षमिति श्रोदनपूर्णस्थालीमध्यात् यत् प्रथममाकृष्यते भक्त तदग्रमकम्। शान्त्युदकेनेति शान्त्युदकमिद कुरान कार्य्यम् ; एव सर्वत्र विरोपोक्ति विना ॥६३॥

त्तीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्वाति पूतना नाम मात्रका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रमुद्देजयति, स्तन्यं न गृह्वाति, मुप्टि वधाति, कन्दति, ऊद्ध्वं निरीच्ते ।

वित तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्यभयतदस्तिका गृहीत्वा पुत्तिकां कृत्वा रक्षचन्दनं, गन्धताम्वृलं, रक्षसम्बजा, सप्त प्रदीपा, सप्त स्वस्तिकाः पित्तमाससुराप्रमक्षञ्च दित्तिणस्यां दिशि श्रपराहे चतुष्पथे वितर्दातव्यः। शिवनिर्मात्यगुग्गुलुभपपिनिम्वपत्रमेपश्चद्वैर्दिन-त्रयं धूपयेत्। "ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्ज मुञ्ज हासय हासय स्वाहा।" एवं दिनत्रयं कार्य्यम्। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥६४॥

तृतीय इत्यादी--अग्रमकिमिति श्रीदनपूर्णस्थालीमध्यात् यत् प्रथममाञ्चलते तत् श्रामकम् ॥६४॥

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सुखमुण्डिका नाम माहका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर। प्रीवां नाम-यति, चचुरुन्मीलयति, स्तन्यं न गृह्णाति, रोदिति, स्वृणिति, सुष्टि वध्नाति।

बिल तस्य प्रवस्थामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्यभयतरमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तिकां कृत्वा उत्पलपुण्पं, गन्ध, ताम्बूलं, दश ध्वजाः, दीपाश्चत्वारः,त्रयोदश स्वस्तिकाः, मत्स्यमांसस्रराश्रमक्षञ्च उत्तरस्यां दिशि श्रपराहे बलिरें-यश्चतुष्पथे। "ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि हन हन मुश्च सुञ्च स्वाहा।" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुमम्॥६४॥ चतुर्थ इलादौ-दशध्वजा इति शुक्ता , विशेषामावात ॥६५॥

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मात्रका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्धे-जयति, स्तन्यं न गृह्णाति। मुधि बञ्चाति।

वर्लि तस्य प्रवस्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

कुम्भकारचकस्य मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तिकां विधाय गन्धताम्यूलं. श्रुक्षपुण्पं, श्रुक्षौदनं, पञ्च ध्वजा, पञ्च प्रदीपा, पञ्च वटकाः, पेशान्यां दिशि विलर्दातव्य, शान्त्युदकेन स्नाप्येत्, शिवानिर्माल्यसपीनिर्मोकगुग्गुलुनिम्वपत्रवालकघृतैर्ध्रपं द्यात्। 'ॐनमो रावणाय त्रमुकस्य व्याधि भूणिय चूणिय हन हन स्वाहा।' चतुर्थदिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते श्रुभम्॥ ६६॥

पन्चम इत्यादो-कुम्मकारचक्रमृत्तिका कुम्मकारचक्रसलग्रमृत्तिका ॥ ६६ ॥

पष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रभेदश्च दर्शयति, मुप्टि व्याति, दिवारात्राबुत्थानं भवति, ऊद्ध्वे निरीत्तते।

वर्लि तस्य प्रवस्यामि येन सम्पद्यते श्रुमम्।

पिष्टकेन पुत्तिकां कृत्वा शुक्कौदन, पीतपुष्पं, रक्षपुष्पं, गन्धताम्वूलं, दश दिपाः, दश पीतध्वजा, दश खित्तका, दश वटकाः, चीरजम्बूलिका, मत्स्यमांससुराः श्राग्नेय्यां दिशि निष्कान्ते मध्योहे बलिदीतव्य, शान्त्युदकेन स्नापयेत्, शिवनिमीत्यरसोनगुग्गुलुसपिनिमीकिनम्बपत्रघृतैर्धूपं दद्यात्। 'ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि चूर्णय चूर्णय हन हन खाहा।' चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुमम्॥ ६७॥

षष्ठ इत्यादौ—क्षीरजम्बूलिका कीरसिंहतिसिन्नमामा ॥ ६७॥ सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्वाति शुक्करेवती नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रमुद्धेज-यति, मुर्षि ब्रधाति, रोदिति ।

विल तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

रक्षपुष्पं, ग्रुक्कपुष्पं, गन्धताम्वूलं, रक्षोदनं, कृशरा, त्रयो-दश स्वस्तिका, त्रयोदश शष्कुलिकाः, जम्बुलिकाः, मत्स्यमांस-सुरा, त्रयोदश भ्वजाः, पञ्च प्रदीपा पश्चिमाया दिशि प्राम-निष्काशेऽपरोद्धे वृत्तमाश्चित्य वितर्दातव्य, शान्त्युद्केन स्नाप-येत्, गुग्गुलुमेषश्चद्वसर्षपोशीरवालकघृतैर्धूपं दद्यात् । 'ॐ नमो रावणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च साहा।' चतुर्थे दिवसे बाह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते शुभम् ॥ ६०॥

मप्तम इत्यादौ-(नतीदन शाल्यादिमनतम्, अलनतनादिरिनतमन् वा, कृशग तिलतगडुलिनिमितयवाग् । श्रामिनकाशे श्रामप्रान्ते ॥ ६८ ॥

श्रप्टमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णांत श्रर्थिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति उवर । गृध्रगन्ध ,पूर्तिगन्धश्च जायते, श्राहारं न गृह्णाति, गात्राणि उद्वेजयति ।

वर्ति तस्य प्रवस्यामि यत सम्पद्यते शुभम्।

रक्षपीतध्वजाः, चन्दनं, पीतपुष्पं, शष्कुल्यं, पर्पटिकाः, मत्स्यमांससुराः, जम्बूलिका प्रत्यूपे वर्ति दद्यात् । 'ॐ नमो रावणाय त्रेलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिशमोत्त्रणाय व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च दह दह त्रों हीं फद् स्नाहा।' चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते श्रमम्॥ ६६॥

नवमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्वाति स्तिका नाम मात्रका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । नित्यं छुर्देयति, गात्र-भेदं दर्शयति, मुर्िं वधाति, निद्रातितरा स्यात्।

वर्ति तस्य प्रवत्त्यामि येन सम्पद्यते शुमम् । नशुभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तत्तिकां निर्माय शुक्कव-स्त्रेण वेष्ट्येत् । शुक्कपुष्पं, शुक्कीद्नं, गन्धताम्बूलं, शुक्कत्रयोदश- ध्यजा, त्रयोदश प्रदीपाः, त्रयोदश खस्तिकाः, त्रयोदश पुत्त-लिका, मत्स्यमांससुरा उत्तरदिग्विभागे त्रामनिष्काश वर्ति टापयेत्, शान्त्युटकेन स्नापयेत्, गुग्गुलुनिम्वपत्रगोधूमगो-श्रुद्धश्रेवतस्पपघृतधूपं दद्यात्। ॐ नमो रावणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च खाहा। वतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोज-यत्। तत सम्पद्यते शुभम्॥ ७०॥

दशमें दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता नाम मातृका। तया गृहीतमात्रण प्रथमं भवति ज्वर. । गात्रमुद्देजयति, श्रात्कार करोति, रोदिति, वध्नाति सूत्रं, पुरीपञ्च भवति।

विलं तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पारावारमृत्तिकां गृहीत्वा, पुत्तिकां फ्रत्वा, गन्धताम्वूलं, रक्षपुष्पं, रक्षचन्दनं, पञ्चवण्पञ्चध्वजाः, पंच प्रदीपा, पंच खिस्तका, पंच पुत्तिका, मत्स्यमांससुराः वायव्यां दिशि वित दद्यात्, काकविष्ठागोमांसगोश्टङ्गरसोनमार्जाररोमनिम्य-पत्रघृतैर्धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय चूर्णितहस्ताय हन हन मुञ्च मुञ्च खाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते ग्रुभम् ॥ ७१ ॥

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्वाति पिलिपिच्छिका नाम मातृका, तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। श्राहारं न गृह्वाति, उद्ध्वंदिष्टिभेवति, गात्रभंग आत्कारश्च भवति।

वर्ति तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पिष्टकेन पुत्तिकां कृत्वा रक्षचन्दनं रक्षपुष्पञ्च, तस्या मुखं दुग्धेन सिञ्चेत्। पीतपुष्पं,गन्धताम्वूलं, सप्त पीतध्वजाः सप्त प्रदीपाः, श्रष्टौ वटकाः, श्रष्टौ शष्कुलिका , श्रष्टौ पूपिका , मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि वित्रित्वयः, शान्त्युद्केन स्नापयेत्, शिवनिर्माल्यगुग्गुलुगोश्टद्गसर्पनिर्मोकघृतैर्घूपयेत्। 'श्रॉ नमो रावणाय मुञ्च मुञ्च खाहा' चतुर्थे दिवसे विप्रान् भोजयेत्। तत सुख्यो भवति वालकः। तेन सम्पद्यते श्रमम्॥ ७२॥

श्रष्टमनवमदरामैकादरा इति स्फुटाः ॥६६—७०॥

हादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृहाति कालिका नाम मातृका, तथा गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। विहस्य वाद-यति, करेण तर्जयति, गृहाति, कामति, निश्वसिति, मुहुर्मुहु-श्रुद्यिति, श्राहारं न करोति।

वर्लि तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

चीरेण पुत्तिकां कृत्वा शुक्ककुसुमं, गन्धताम्वृतं, शुक्क-सप्तध्वजा, सप्त शण्कुलिकाः, सप्त प्रदीपाः करम्मकेण सर्व-कर्मवर्ति दद्यात्, शान्त्युद्दकेन स्नापयेत् । श्वेतसर्पपगुग्गुलु-शिवनिर्माल्यघृतैर्धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा।' चतुर्थे दिवसे विप्रान् भोजयेत्॥ ७३॥

इति रावण्कतं कुमारतन्त्रं समाप्तम् ॥
'इति वालरोग-चिकित्सा।

दादशे—वादयतीति सम्मापते । रोदितीति पाठान्तरम् । इंरियेनि पाकात् पियडीभूतेन इरियेत्यर्थ । करम्मकेख दिधिमिश्रितभक्तेन ॥ ७३ ॥ इति वालरोगचिकित्साविष्टति ।

अथ विष-चिकित्सा

श्रारिष्टावन्धनं मन्त्रप्रयोगश्च विषापह । दंशनं दंशकस्याद्धेः फलस्य मृदुनोऽपि वा ॥ १ ॥ श्दानीमातुरिहतिविकित्मापारिशेष्यात् विषविकित्मामाह श्रारिष्टेलादि-श्रारि ष्टावन्धन धमनीवन्ध , म च दशदेशादृद्धं चतुरङ्गुले । यदाह बाग्सट.—'दश- स्योपिर वश्नीयादिरिष्टा चतुरगुले । चौमादिर्मिवल्कलैर्ना सिद्धमन्त्रेश्च मन्त्रयेत् ' इति । दशकरयोदिरिति दशकरतुं सपर्स्य दशन दन्तपिक्तद्वयेनातिपीडनम् । एव मृदुफल-स्यापि । एतच्च मुकुमारद्रव्योपलचण्, तेन रम्मामृणालकाण्डाणि वोध्यम् । तत्र मर्वत्र विपसक्रमण्य भवतीति भाव । यदुक्त वृन्दे—'धर्त्तुं दंशविधी न भोगिनमसौ प्राप्नोति दष्टो यदा रम्भाखण्डमृणालकोमलफल दन्तैर्दशस्याशु यत् । गच्छेत् तत्क्षणमेव तस्य गरल तद्दृष्टवस्त्वन्तर दश नीरसता नथेच बहुधा सम्बध्य इस्तेन वै' इति ॥ १ ॥

मूलं तग्रह्णवारिणा पिवति य प्रत्यक्षिरासम्भवं निष्पष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः। द्र्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलपं स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ॥२॥ मूलमित्यादौ—प्रत्यिक्षरा कयटकीशिरीष । शुचिराषाहस्तस्य मद्रयोगदिवसे शुमयोगनचत्रादिशुक्कदिने पुष्यानचत्रादिशुक्ते दिने इत्यन्वयः॥ २॥

मस्रं निम्वपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ । श्रव्देमकं न भीतिः स्याद्विषात् तस्य न संशयः ॥ धवलपुननेवजटया तग्डलजलपीतया च पुष्यत्ते । श्रपहरति विषधरविषोपद्रवमासंवत्सरं पुंसाम् ॥ ३॥ मस्रमिलादि—मस्रगुडक्रेमक, निम्बस हे पत्रे, वृतीया सहार्थे । मेषगते रवौ वैशाखे । धवलेसादि—स्पष्टम् ॥ ३॥

गृहधूमो हरिद्रे हे समूलं तगहलीयकम्। श्रिप वासुिकना दष्ट पिबेइघिघृताप्लुतम्। कुलिकामूलनस्येन कालदृष्टोऽपि जीवति ॥ ४॥

गृष्टभूम इत्यादी—त्वयङ्गलीयकामिति केवलतयङ्गलीयकमूलामिति वोध्यम्। तदुक्त विन्दुसारे—"तयङ्गलीयकमूलन्तु पीत तयङ्गलवारिया। तचकेयापि सदष्ट निर्विष कुरुते नरम्" इति । कुलिकेत्यादि—कुलिक कालाकडभेद खल्पफल कुडकराािथ इति ख्यात.। उपदेशाद् तयङ्गलोदकेन नस्य कार्य्यः केचित् पान वदन्ति॥ ४॥

श्लेष्मण कर्णगूथस्य वामानामिकया कृतः। लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रसेचनं तथा॥ ४॥ श्रेष्मण इत्यादि —योगलयम् । मुखस्थितश्रेष्मण इत्येक , कर्णगृथस्येति दितीय वामनामिकया कृत इति कानिष्ठागुलीसमीपे या अगुली, सा अनामिक्रत्युच्येत । वाम-इस्तस्य अनामिकांगुल्या कृत इत्यर्थ । नृमूलमेचन दशदेशे स्वीयमूत्रसेक । उक्त हि—''सपैदष्टप्रदेशे तु स्वयमेव विचल्लण । मूत्रयेत् तस्ल्लादेव निर्विपत्वमवाप्नु यात्'' इति । अय तृतीय योगः ॥ ५ ॥

शिरीषपुष्परखरसे भावितं श्वेतसर्पपम् । सप्ताहं सर्पद्यानां नस्यपानाञ्जनं हितम् ॥ ६॥

शिरीधत्यादि—वाग्भटस्य । श्रेतसर्पपिमित्यत्र मरिचानतिमिति पाँठ मरिच श्रेतमरिच शोभाञ्चनवीजम् । अयमेव पाठश्चन्द्राटादी दृश्यत । श्रेत श्रेतमपंपिमिति पाठान्तरमुक्तम् ॥ ६ ॥

द्धिपलं नतकुष्टाभ्यां घृतचाँद्रं चतु पलम् । श्रिप तचकद्यानां पानमेतत् सुखावहम् ॥ ७ ॥ दिपलमित्यादि—नाग्मरस्य । पर्पतीय मात्रा सर्पद्धविषये विशेषविद्वितलात्

न दोषाबहिति ॥ ७ ॥

वन्ध्याकर्कोरजं मूलं छागमूत्रेण मावितम्। नस्यं काञ्जिकसंयुक्तं विषोपदत्तवेतस ॥ ८॥ वन्धेत्यादि—वन्ध्य फलरिद्दत ॥ ८॥

विद्यद्विशत्या मधुकं हरिद्रे मिश्वप्रवर्गो लवण्ड्य सर्वम् । कडुन्निकञ्चैय विचूर्णितानि श्टेग निद्द्यान्मधुसंयुतानि ॥ एषाऽगदो हन्त्युपयुज्यमान पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगै । श्रवार्यवीर्यो विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः॥६॥

त्रिवृदित्यादि — मुश्रुतस्य । विशल्या दन्ता, काष्ठपाटला वा, विशालिति पाठे गोरचककेटी । मिन्जिष्ठावर्गी मिन्जिष्ठासिहितोऽयमेव त्रिवृद्दिदिवर्ग इत्यर्थ । अन्य तु मिन्जिष्ठावर्ग पृथेगेव पठन्ति । तम टीकाकारैर्न व्याख्यातम् । उत्वर्णस्तु "त्रिवृद्दिराल्प मधुक हरिदे रक्तो नरेन्द्रो लवणश्च वर्ग " इति व्याख्ये च विशल्या दन्ती, काष्ठपाटला वा, रक्त मिज्ञिष्ठा, नरेन्द्र स्वर्णाद्धः, लवणवर्गो लवणपञ्चकमिति । श्रेक इति गोश्ये निद्ध्यादिति पद्यमेक स्थापयत् । यत्र गोश्ये पत्तैक स्थापन सीश्रुतवन्त्रमाणयोगे तथा दर्शनात् । यथा "श्रेक गवा श्वहमयेण चैव प्रच्छादित पचमेष्ठितक्ष" ॥ १ ॥

पीते विषे स्याद्वमनञ्च त्वक्खे प्रदेहसेकादिसुशीतलञ्च ॥ कपित्थमांसं ससिताचौद्रं कराठगते विषे। लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात्॥ १०॥

पीत इत्यादै।—वमनमिति गोमयस्वरमेन मधुयुक्तेन वान्ति कार्य्या। उक्त हि—"समधुविषपीतस्य वमन गोमयाद्रस " इति । त्वक्से तु विषे शीतल प्रदेइ-मेकादि कार्य्यम् । कापित्थेत्यादि—कापित्थस्य मास त्वगरथ्यादिरहित मध्यम् । तिह्मादित्यादौ—ताभ्यामिति सिताचौद्राभ्याम्, नतादिति तगरपादिकात ॥ १०॥

विषे पक्षाश्यगते पिष्पलीरजनीइयम्।

मिखिष्ठाञ्च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नर पिवेत्॥ ११॥

विष इलादौ—पिष्पलीइय रजनीइयद्ध । सममिति सममाग जलेन पेषया
पानेश्वलाइ ॥ ११॥

रजनिष्मैन्धवक्तौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम् । पानं मूलविषार्त्तस्य दिग्घविद्धस्य चेष्यते ॥ सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा । लेह प्रशमयत्युमं सर्व संयोगजं विषम् ॥ १२ ॥

रजनीत्यादौ--- उत्तम घत गन्यघतम् । दिग्धो विषाकशर , तेन विबस्य । कनकस्य वेति मारितस्य ताम्रस्य तथा मारितस्य सुवर्थस्यत्यर्थं ॥ १२ ॥

श्रद्धोठमूलिनःकाथं फाणितं सघृतं लिहेत्। तैलाक्षः स्वित्रसर्वांगो गरदोषविषापदः॥ १३॥ अक्षोठेलादि—अङ्कोठमूलकाथमेव पुन पाकात् फाणिताकार कुर्यात्॥१३॥ कटभ्यज्ञेनशैरीयेशलुचीरिद्रमत्वच । कषायकलकचूर्णां स्यु कीटलुताव्रणापद्दाः॥ १४॥

इदानीं कीटादिविषचिषित्सामाह कटमीत्यादि—शैरीयो कियटो, शेलुर्वहुवार , चीरिद्रुमा वटेाडुम्बरादय ॥ १४॥

श्रागारधूममञ्जिष्ठारजनीलवर्णोत्तमैः । लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनम् ॥ यः कासमर्दनेत्रं वद्ने निक्विष्य कर्णे फ्रुत्कारम्।

मनुजो द्घाति शीव्रं जयति विषं वृश्चिकानां स ॥ १४॥

भागाग्ध्नेलादौ—कर्णिका कीटवन्त्रशुद्धः । य स्लादी—नेत्र मूननः,
निनिष्य सम्रव्य ॥ १४॥

दंशे आमण्विधिना वृश्चिकविपहृत् कुठेरपाटगुद्धिका । पुरधूपपूर्वमर्कच्छ्रटामेव पिप्ट्वा कृतो लेप ॥ १६ ॥ जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुत । सुखोप्णा वृश्चिकात्तीना सुलेपो वेदनापदः ॥ १७ ॥

दशः इलादि—दशे वृक्षिकदशे । कुठरपादगुढिका पर्याशम्लकृतगुटिका । गुभूपपूर्वमित पुरगुलुना पूर्व भूपियता अर्कपश्चनो लेप. ॥ १६ । १७ ॥

कुंकुमकुनरीकर्करपलहरिताले कुसुम्भसिमिलितैः। कृतगुडिकाश्रामण्तो विद्धगाधाशस्टादिविपातित्॥१८॥ श्रद्धोठपत्रधूमो मीनित्रपं भटिति विघट्टयेच्छुद्धी। गोधावस्टीविपीमवालेपेन कुढकराणिजटा॥१६॥

गोधादिविपविकिन्सामाह कुकुमेखादि । कुनदी मन शिला; कर्कटकम्य पलन नामन कुनुन्म कुनुन्भपुप्यन् । गरदादीत्यादिरान्दादकननामिकाञ्येष्ठाप्रमृतीना महत्त्वम् ॥ १६ ॥

कनको हुम्यरफलिमिय नग्रह्जलापिष्टं पीतमपहरित । कनकटलद्वयवृतगुडदुग्यपलेकं श्रुनां गरलम् ॥ २० ॥ कुनकुरिविधिकित्नामाह कनकेत्याटि—कनको शुन्तुरं, उडुन्वरं यशोडुन्व-म् . नयो फनम् । कनकटलेखादि योगान्तरम् । कनकदलद्रवो शुस्तूप्यत्ररम । एथा पन मिलिखा ॥ २० ॥

लेप इत्र भेकगरलं शिरीपवीजै स्तुहीपय सिक्तै। हरित गरलं व्यहमशिताङ्कोठजटा कुष्टसिमिलिता॥ मरिचमहोपघवालकनागाईमीचिकाविपे लेप। लालाविपमपनयतो मुले मिलिते पटोलनीलिकयो.॥ सोमवहको ऽश्वकर्णश्च गोजिह्ना हंसपाद्यपि।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविपापह ॥
वचाहिं हुविडङ्गानि सैन्धवं गजिपण्यली।
पाठा प्रतिविपा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकी टिविषं जयेत्।
कीटदप्टिकयाः सर्वाः समानाः स्युजेलोकसाम् ॥ २१॥

भेकिविपिचिकित्सामाएं लेप इत्यादि—श्रशिता भिष्तता। क्षाथिविधया कल्कविधया वा योज्यमेनत्। लालाविपिमिति लालैव विष लालाविषम् । सोमवल्कं कद्फलम्, प्रथक्षर्यः शालभेदः, गर्दमारहो वा। पीत्वेति काथिवधया कल्कविधया वा योज्यम्। प्रतिदेशेन जलौकिक्षिकित्सामाएं कीटदछेत्यादिः॥ २१॥

मृतसङ्जीवनोऽगदः

पृकासवस्थौणेयकां तीशैलेयरोचनातगरम् ।
ध्यामकं कुद्धुमं मांसी सुरसाशैलालकुष्ठमम् ॥
वृहतीशिरीपपुष्पश्रीवेष्टकपद्मचारटीविशालाः ।
सुरदारुपद्मकेशरशावरकमन शिलाकौन्त्यः ॥
जात्यकंपुष्पसर्षपरजनीद्वयदिगुपिष्पलीलानाः ।
जलमुद्रपर्णीमधूकमदनकफलिसन्धुवाराश्च ॥
श्मपाकलाध्ममयूरकगन्धफलीलाङ्गलीविडङ्गाश्च ।
पुष्येणोद्धृत्य समं पिष्टा गुडिका विधेषा स्युः ॥
जन्तुविषद्मो जयकृद् विषमृतसञ्जीवनो ज्वरनिहन्ता ।
वृयविलेपनधारणधूमग्रहणैश्रहस्थश्च ।
भूतविजयन्त्वलदमीकामण्यमन्त्राग्न्यशन्यरीन् हन्यात् ।
दु खप्नस्रीदोषानकालमरणाम्बुचोरभयम् ॥
धनधान्यकार्यसिद्धिश्रीपुष्ट्यायुर्विवर्द्धनो धन्य ।
मृतसञ्जीवन एप प्रागमृताद् ब्रह्मणाभिहित ॥ २२ ॥
इति विषचिकितसा ।

पृक्षेत्यादी—स्योग्यं ग्रन्थिपर्णम्, काची सौराष्ट्रमित्तका, ध्याम गन्धतृग्णम्, युरमाग्र निर्गुग्धं । श्राल हरितालम्, कुष्ठश्नमेढगजः, श्रीवेष्टको नवनीत-द्रोटीः, पद्मचारटी कुम्भारुलताः, पद्मस्य केशर किञ्चलकः, शावरको लोधः, कौन्ती रेणुका । जात्यर्कपुष्पमिति जात्यक्षयो पुष्पम्, जल वालकम्, निर्गुग्छ्याकार शुक्षपुष्प सिन्धुवार , शम्पाक श्रारग्वधस्तस्य फल ग्राह्मम्। लोधः लोहितलोधम्, मयूरोऽपामागं, गन्धफली प्रियगु, नाकुली राखाः। पुष्ये पुष्यानचत्र शुक्तकाले । जन्तव क्रिमय, कार्भण परद्रोहोपायः, मन्त्रोऽभिचारमन्त्र । श्रशनिवंत्रम्, स्वीदोषः सीभाग्यार्थकृतगरादिदोषः ॥ २२ ॥

इति विष-चिकित्साविवृति ।

अथ रसायनाधिकारः

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ॥ १ ॥

भेपज तावद् द्विविधम् -- आतुरहित सुस्यहितन्त । सुरथहितमपि हिविध रमायन-वाजीकरणमेदात् । अत्रातुरहित तावदुक्तेमव सम्प्रति द्वस्थहित वाच्यम् तन्नापि वाजीकरणापेचया रसायनस्य वर्षसहस्रायुष्ट्वात् महाफलत्वाच प्रथमतो रमायनमाइ यदिखादि-जराविध्वति जरारूपव्याध्युत्पत्तिप्रतिवन्धकम् । पतेन विशिष्टरसजनकत्वे सति जरानिवर्त्तकत्व रसायनत्विमिति लच्च स्चितम् । अत्र रसशब्देन रमकार्य्यत्वात् सप्तानामेव भातूना प्रहण्म, अत्राचिवशेषण्मित्रवेशात् कपालरञ्जनादिषु नातिन्याप्ति । वृद्धो न रसायनाथिकारी, वच्यति-पूर्वे वयमी-त्यादि । श्रन्यत्राप्युक्त 'जरापक्ररारीरस्य व्यर्थमेव रमायनम्' इति । तत् कथ जराप्र-शमकत्व रसायनमिति १ नैव जराशब्देनात्र अकालपलित कालिकच भाविपलित-मुच्यंते, श्रतो नोक्तो दीप । यत्तु च्यवनप्राशादी सुवृद्धोऽभूत पुनर्शुवेति, तत्र न मृद्धस्यापि रमायनप्रयोगात् जराप्रशमनमुक्तम्, तत्तप प्रमावेखानुगृष्टीतस्य फलम्, न रसायनमात्रस्येति । सुदान्तस्त्वाह्--'रमायनम्च सुस्यातुरविषयम् । बरा च व्याधिश्च तद्विध्वसितु शील यस्य तद्रसायनम् । जरा हि मृदुत्वेन, न प्वापरिवरोध अकालजराहरत्वाद्रसायनस्य । भेषजपदेन ध्यानमन्त्रादिक व्यव-व्छिनत्ति । क्वरेति व्वरातिसारादिभेषज वाजीकरण व्यविच्छनत्ति । व्याधीति कपालरअनकृष्णीकरणादिकञ्च व्यविष्यनतीति ॥ १॥

पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत्॥ २॥

पूर्व इत्यादि — पूर्व इति यौवनप्रवेश एव । मध्य इति यौवनशेषे । वाल-षृद्धौ तु रसायनाविषयौ भेषजवीर्य्यासहत्वात् जरापकशरीरत्वाच । शुद्धकाय इति वमनविरेचनाभ्या शुद्धशरीर ॥ २ ॥

> नाविशुद्धशरीरस्य युक्षो रासायनो विधिः। न भाति वासासि म्लिप्टे रह्नयोग इवार्षितः॥३॥

अविशुद्धे तथा फल नास्तीति मत्नाह अविशुद्धशरारस्येत्यादि—सुश्रुतस्य । युक्त इति प्रयुक्तः । म्लिष्ट इति मालेने ॥ ३ ॥

गुडेन मधुना शुष्ठ्या कृष्ण्या लवणेन वा।
दे दे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी॥
सिन्धृत्थशर्कराशुग्ठीकणामधुगुडै क्रमात्।
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा॥ ४॥

प्रथमतः हरीतकीरसायनमाह सिन्धूत्येत्यादि—वर्णं इरीतकी मा ६, सैन्थव मा २ गिलनीया। शरदि हरीतकी मा ६, शर्करा मा ४ खाधम्, शित-अल पेयम्। हेमन्ते हरीतकी मा ३, शुष्ठी मा २, तप्तजल पेयम्। शिशिरे हरीतकी मा ३, पिप्पली मा २, तप्तजल पेयमिति ॥ ४ ॥

त्रैफलेनायसीं पत्रीं कल्केनालेपयेत्रवाम् । तमहोरात्रिकं लेपं पिवेत् सौद्रोदकाप्लुतम् ॥ प्रभूतस्नेहमशनं जीर्गे तस्मिन् प्रयोजयेत् । श्राजरोऽचक् समाभ्यासाजीवेचापि समाः शतम् ॥४॥

त्रैफलेनेत्यादी—आयसीं पत्रीमिति कान्तादिलीइपत्रीम् , नवामित्यनेन निर्मलत्वमि सच्यते । कल्केनेति कर्षमितेन । अम्लिपत्ते त्विद कियत इत्याहुर्वृद्धाः । केचित् उदकस्थाने ष्टतमिति पठन्ति ॥ १ ॥

> पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिष्पत्तीः चौद्रसर्पिषा। रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत्॥६॥

पद्माष्टावित्यादि—सप्तेति छेद.। सख्यान्यतिक्रमेख नानुक्तिपिप्पलीनामुप-योग स्चयतीति चक्र.। यद्यपि त्रीथि द्रन्याथि नात्युपयुक्षीत पिप्पली झार लनणिमिति, तथापि इह द्रव्यान्तरसयुकाना पिप्पलोनामस्यासो न विरुद्ध । किंवा उक्तपिष्पल्यभ्यासव्यतिरेकेण उत्सर्गापवादन्यार्यानेपेघो श्रेय । रसायनग्रणाश्चरकी-क्षष्ट्रणत्वादय ॥ ६ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्ने सुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।
पिप्पल्य किंशुकत्तारभाविता घृतभिजिताः ॥
प्रयोज्या मधुसिमश्रा रसायनगुणैपिणा ।
जेतुं कासं च्यं शोपं श्वास हिक्का गलामयम् ॥
श्रशींसि श्रह्णीदोपं पागृहतां विपमज्वरम् ॥
वैस्वर्य्यं पीनसं शोथं गुल्मं वातवलामकम् ॥ ७ ॥
तिस्र श्लादौ—किंशुकः पलाश । चारमिति चारोदकम् । भावित इति
सप्ताहम् ॥ ७ ॥

जरणान्ते अयामेकां प्राग्मकाद् हे विभीतके।
भुक्तवा तु मधुसिंपभ्यां चत्वार्घ्यामलकानि च ॥
प्रयोजयेत् समामेकां त्रिफलाया रसायनम्।
जीवेडपेंशतं पूर्णमजरो अयाधिरेव च ॥ = ॥

जरणान्त इति प्रात । प्राग्मकादिति मोजनादौ । मधुसपिंम्योमित्यम-यादिमिलिभिरेव सम्बध्यने ॥ = ॥

मग्ह्रकपगर्याः खरस प्रयोज्य जीरेण यप्रीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुङ्कच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्क प्रयोज्य खलु शह्वपुष्प्या ॥ श्रायुः प्रदान्यामयनाश्चनानि वलाग्निवर्णस्यवर्द्धनानि । मध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण तु शह्वपुष्पी ॥६॥

मगह्नपर्या इत्यादिना राह्यप्प्या दत्यन्तेन चतुरी योगानाह—समूलपुष्या इति गुह्चा राह्यप्प्या वा विशेषणम् ॥ १ ॥
पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमाजं घृतेन तेलेन सुखाम्बुना वा ।
छशस्य पुष्टि वपुपो विधत्ते वालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥
धात्रीतिलान् मृङ्गरजोविमिश्रान् ये मन्त्येयुर्मेनुजाः क्रमेश् ।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याध्यो वर्षशतं भवेयुः ॥

वृद्धदारकमूलानि ऋच्णचूर्णानि कारयेत्। शतावर्था रसेनैव सप्तरात्राणि मावयेत्॥ श्रद्धमात्रन्तु तच्चूर्णं सर्पिपा सह भोजयेत्। मासमात्रोपयोगेन मतिमान् जायते नरः। मधावी स्मृतिमांश्चेव वलीपलितवर्जितः॥ १०॥

पतित्यादि — नाग्भटस्य । श्रम्थगन्धायाश्चूर्णं पयसा पिते, छतेन वातिषते, तेलेन वाते, उष्णोदकेन वातकफ इत्याद्ध । धाश्रीत्यादी — तिलाक्ष कृष्णाः प्रशम्नाः । सद्गरज इति निर्देशात् सान्तो सद्गरज शब्दो स्वत्रराजवचन उश्लीयते । क्रमेणिति रसायनक्षमेण ॥ १०॥

हस्तिकर्णरजः खादेत् प्रातक्त्थाय सर्पिपा।
यथेप्राहाराचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः॥
मेधावी वलवान् कामी खीशतानि वजत्यसौ।
मधुनात्युप्रवेगः स्याद् वलिष्ठ खींसहस्रगः।
मन्त्रश्चायं प्रयोक्षव्यो भिषजा चाभिमन्त्रेणे॥

"ॐ नमो महाविनायकाय श्रमृतं रच रच मम फलसिाईं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा।"

धात्री चूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं सौद्रसपिः समांशं कृष्णामानीसिताएपस्तयुतिमदं स्थापितं भस्मराशौ । वर्णान्ते तत् समञ्जन् भवति विपत्तितो रूपवर्णभभावै-र्निव्याधिर्वुद्धिमेधास्मृतिवलवचनस्थैर्थस्त्वैरुपेतः ॥११॥

हस्तिकर्येति—हस्तिकर्यो हस्तिकर्यपनाशम् । ॐ नम इत्यादिमन्त्रो हस्तिकर्येत्यादियोगस्यैवामिमन्त्रयाय । भात्रीत्यादी—कस चतुःपष्टिपलानि । स्वरमपरिगतिमिति आमलकफलमहस्तरसेन मावितम् । मावना च एकिरातिवारम् । चौद्रमि समाशमिति भात्रीच्र्योपचया प्रत्येक समभागमित्यर्थ । तेन मधुष्टतयो प्रत्येक चतु पष्टिपलानि । मानीत्यद्यौ पलानि । सिताया शर्कराथा अष्टौ प्रसृतानि पोडशपलानीत्यर्थ. । स्थापित मस्मराशाविति प्राष्ट्रडारम्भ इति शेष. । वर्षान्ते प्राष्ट्रदालानेत शरदीत्यर्थ. ॥११॥

गुट्टच्यपामार्गविडद्गशिद्धनीवचाभयाकुष्टशतावरी समा। वृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनै क्लोकसहस्रधारिणम् १२

गुडूचीत्यादाँ—शक्विनी शक्तपुष्पी । क्राचित् वचास्थाने वृषेति पट्यते, किन्तु-वाग्मेट वचेव पठिता ॥१२॥

व्यक्षीष्ट्रतम्

समूलपत्रामादाय ब्रह्मी प्रचालय वारिणा। उद्खले चोदियत्वा रसं वस्त्रेण गालयत्॥ रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। श्रौपधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत्॥ इरिद्रा मालती कुछं त्रिवृता सहरीतकी। पतेपां पालकान् भागान् शेपाणि कार्पिकाणि तु॥ पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा । सर्वमेतत् समालोड्य शनैर्मृद्वश्चिना पचेत् ॥ एतत् प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिश्च जायते । सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ श्रर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत्। मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु घारयेत्॥ इन्त्यप्रादश कुष्टानि श्रशांसि विविधानि च। पञ्च गुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं जयेत्॥ वन्ध्यानाञ्चेव नारीणां नराणामहपरेतसाम्। घृतं सारस्वतं नाम वलवर्णाग्नेवर्द्धनम् ॥१३॥

मक्षीष्टत स्पष्टम् ॥१३॥

कासश्वासातिसारज्वरिपडककटीकुष्ठकोठप्रकारान् मूत्राघातोदरार्शं श्वयथुगलिशर क्षेण्यलाद्विरोगान् । ये चान्ये वातिपचत्ततजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तो-स्तांस्तानभ्यासयोगाद्पनयति पयः पीतमन्ते निशायाः॥

व्यङ्गवलीपलितम्नं पीनसवैस्वर्घ्यकासशोथमम् । रजनीत्त्रयेऽम्बु नस्यं रसायनं दृष्टिजननञ्च ॥१४॥

कांसत्यादौ-पिडक पिडका। पय इति दुग्ध पानीय वा, मुश्रुते प्रात चीर-पानस्य जलपानस्यापि दशितत्वात् । यथा-''शीतोदक पय चौद्र सींपीरित्येकशो दिश । त्रिश समस्तमथवा प्रावकृत स्थापयेद्वय ।'' प्रागिति प्रात । स्रत्र चतु-गुँगजलश्रुतगन्यदुग्धस्य धारोष्णस्य वात्र द्वित्रिकर्षपत्नादि पोडशपत्न यावदित्यर्थ॥१४

साध्यसाधनपरिमाग्रम्

नागार्जुनो सुनीन्द्रः शशास यह्नोहशास्त्रमतिगहनम् । तस्यार्थस्य स्मृतये वयमेतद्विशदाक्तरैर्व्नम् ॥ मेने सुनिः स्वतन्त्रे यः पाकं न पलपञ्चकादर्वाक् । सुबहुप्रयोगदोषादृद्ध्वञ्च पलत्रयोदशकात् । तत्रायसि पचनीये पञ्चपलादौ त्रयोदशपलकान्ते ॥ लोहात् त्रिगुणा त्रिफला श्राह्मा पड्मिः पलैरधिका । मारणपुरनस्थालीपाकास्त्रिफलेकभागसम्पाद्याः ॥ त्रिफलाया मागद्वितयं श्रहणीयं लौहपाकार्थम् ॥ १४॥

यद्यपि सर्वरसायनश्रेष्ठत्वात् प्रथमभवामृतसारलौद्दाभिधानमुचित तथापि स्वीकटाह्न्यायेन रमायनान्तराययभिधाय वहुप्रपञ्चतया सम्प्रत्यमृतसारलौद्दमाह नागार्जुन इत्यादि—तत्र मारणादिविधेरप्रशस्तत्वेन प्रथम तदिभिधान वक्तुमुचित तथापि दुरूद्दभमेयत्वेन साध्यसाधनपरिमाण्विधिवैक्षच्य । तत्र कियन्मानलौद्द पक्तव्य इत्याद्द मेने मुनिरित्यादि—पणपञ्चकादवीगित्यत्र सस्कारस्यालपकालन्या-पकत्या बहुगुण्तव न स्यादित्येव हेतुक्त्रेय । ननु पञ्चपलादर्वाङ् न पक्तव्य , उक्तञ्चापि पलाष्टकादिति योगरत्नाकरेऽभिद्दित्तमित्यत श्चाह स्वतन्त्र इति—स्वतन्त्रे स्वीयशास्त्रे पव नान्यत्र, तेनाशकौ न्यूनमानमिप शास्त्रान्तरोक्त न विरोधमावद्दत्ति माव । लोहसस्कारसाधनार्थं काथपरिमापामाह तत्रायसीस्यादि—पचनीये-प्रयसीति पञ्चपलादित्रयोदशपलान्तलौहे यावत्परिमाण लौद्द पक्तु शक्य तावत्परिमितलोद्दायेच्या मिलिता त्रिगुणा पट्पलैरिक्षका प्राह्मा, तेन पञ्चपले लौहे साध्ये लौहोपेच्या त्रिगुर्येन त्रिफलाया पञ्चदशपलानि ध्रुत्रपट्पलेन सह मिलित्वा

एकविश्वतिष्तानि भवन्ति । एव सायलादिष्यपि बोध्यम् । ननु लीहम्य तायन्मान्यग्रथालीपाकपुटपाकनिष्पत्तिपाका सन्ति, ननश्च कुम कियव त्रिकलापिमाणम् द्रत्यतो विभन्य त्रिफलापिमाण दर्शयति मारणपुटोस्यादि—लीहमेप्दय प्राक्षियु-णित्रफलाद्रथ्य भ्रुवपट्पलमहितमेष त्रिभाग हत्वा आगद्भय प्रधाननिष्यिपाकार्थम-वस्थाप्यम् अपरेकआगेन लीहमारणस्थालीपाकपुटनानि यत्रम्यानीस्यर्थ, ॥ १४ ॥

सर्ववाय पुटनाधर्थेकाशे शगवसंख्यातम्। प्रतिपलमेव त्रिगुणं पाथः काथार्थमादेयम् ॥ १६॥

तदिए ती हमारखपुटनरथाकोपाकाधगृहाँनिकमागित । जाहाधार्य कियकल देव मित्याह मर्वत्रेत्यादि—आहिराण्डा-मारखण्डालोपाको आर्था । सर्वे ति पण्ण्यान्धित्रवीद्यापत्रकाति । पुटनाहर्थकाग इति पुटनगाग्यान्धान्धिकाको विश्वत्रवाद्यान्धान्धिकाने । पुटनाहर्थकाग इति पुटनगाग्यान्धान्धिकाको विश्वत्रवाद्याचित्रवाद्यान्धिक निक्त नाम्धिक मार्थको भवति, तत्र जलकविद्यानिद्याद्या । स्व पण्ण्याचित्रवाद्यान्धिक निक्त नाम्धिक न

> सप्तप्तादी भागे पञ्चद्रशान्ते अभमां शरावेद्य । ज्याद्येकादशकान्तेरिधकं तहारि कर्त्तव्यम् ॥ नत्राष्ट्रमो भाग श्रेपः काथस्य यत्तत स्थाप्य । तेन हि मारणपुटनस्थानीपाका भविष्यन्ति ॥ १७॥

विन्तु त्रिपुरातया ऋषिकमि जल देय, तद्रथंमाह सप्तप्नाप्तविस्यादि—
अस्यार्थ — पाचनीयपन्चपलादिलीहमारम्य त्रयोदमपलान्ननीहापेलया प्रग्रुपयेन
भूवपट्पलाधिकनया फलनयम्यैकविरानिपलरूप चतुर्विमित्रनरूप गान वा तम्य
नृतीयमांग पुटनादिकमेत्रय थंम्यापिन मप्तपलाष्टपलादिकमगणनया लीहत्रयोदरापलान्नन त्रिफलाया पञ्चरशपलानि मवन्ति, तेषा काथ प्रनिशरावमख्यया यद्द त्रिगुण वारि देय तद् निफलानप्तपलादारम्य पञ्चद्रगपल्यय्यंन्त क्रमेण जलशगवत्रयमारम्य पकारशपर्यंन्न जलशराविराधिक विधयमित्यन्वय । तेन मप्तपले
त्रिफलाद्रव्य जलशरावत्रयमधिकम्, अष्टपले च शरावचतुष्टयन्, एव क्रमेण प्रयोदगपलान्न श्रेयम् । पनद्रचन म्पष्टीकरणार्थं पत्रिका लिख्यते—लीहपल ४, मार्गादिकमेत्रयार्थस्यापितित्रफलेकमाग पल ७, पाथ श २१, श्रिषक रा ३, मिलित्वा

रा २४। एव पट्पललीहमारणादिकर्मत्रयार्थस्थापितित्रिफैलकमाग पल म, पाथ रा २४, अधिक रा ४, मिलित्वा रा २८। सप्तप्तलीष्टमारणादिकर्मश्रयार्थस्थापि-तत्रिफलेकभाग पल ६, पाथ शा२७, अधिक शा५, मिलित्वा शा३२। अष्ट पललों हे त्रिफलेकमाग पल १०, पाथ श ३०, अधिक रा ६, मिलित्वा श ३६। नवपलली हे त्रिफलेकभाग पल ११, श ३३, श्राधिक श ७, मिलित्वा श ४०। दशपललीहे त्रिफलैकमाग पल ८२, पाथ श ३६, अधिक रा म, मिलित्वा रा ४४ । एकादरापललाहे त्रिफलेकमार्ग १३, पाथ रा ३६, अधिक रा ६, मिलित्वा रा ४८। दादरापललाहे त्रिफलेकमाग पल १४, पाथ रा ४२, अधिक रा १०, मिलित्वा श ५२। त्रयोदशपललीहे त्रिफलैकभाग पल १४, पाथ श ४५, अधिक रा ११, मिलित्वा श ५६। इदानीमेतज्जल काध्यमान कियदवशिष्टमित्य। ह तन्नेत्यादि-तत्रेति त्रिफलैकमागस्य काथार्थजले । तेन पम्चपललीहे त्रिफलेकमाग-काथार्थ जलशराव २३, राप श ३। एव पट्पललीहे त्रिफलाकाथार्थ जल श २८, रोप सार्द्धरारावत्रयमित्यादि श्रेयम् । यत्नतः इति--- तृखधान्यादिनिवारखार्थं न्यूना-थिकतापरिहारार्थं व्या जरुक हि योगरत्नाकरे —काथन मन्द्रपाकेन विक्वमान्य भनेद् भुवम् । काथस्याधिकपाकस्य मन्दमाचचते फलम्" इति । हि हेती, मारणपुटनादि महत् कर्मत्रय तेन काथेन कर्त्तन्यमस्ति, तेन तत्र यसत कर्त्तन्य इत्यर्थः । नतु प्रतास्मन् दिने मारखादिकमेत्रय कर्तुमशक्यम् , यदि पुनरेकस्मिन् दिने मारखम् , अपरैदिने पुटनादिक क्रियते, तदा काथस्य पर्व्यापितत्वनाम्लत्व स्यात्। नत्य, प्रत्यह तरकाथस्य उण्णीकरणात् नाम्लता । यथि तापादल्पचयित तदपि स्हमत्वात सक्तान्ता।धिकरवाच तन्न दोपमावद्दति । एवेमव वृद्धाः अपि व्यवद्दरन्ति । लौद्दशास्त्रेऽप्युक्त पथ्याभिकेडकाश्मिमाधिकलेपो निष्टन्त्यया. सुतराम्। पर्य्युपित. परिशोषाद् प्राध्य पटाद् गलित " इति । मध्यदत्तदेवस्तु त्रिफलायास्तृतीयभागमपि त्रिधा समभागन विभज्य मार्गापुटनस्थालीपाकरूपकर्मत्रयार्थकाथ प्रत्यहमेव कार्य्य इत्याह ॥ १७ ॥

> पाकार्थे तु त्रिफलाभागद्वितये शरावसंख्यातम् । प्रतिपलमम्बु समं स्याद्धिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम् ॥ तत्र चतुर्थो भाग शेषो निपुणै प्रयत्नतो प्राह्यः । प्रयस पाकार्थत्वात् स च सर्वसात् प्रधानतम ॥ पाकार्थमश्मसारे पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते । दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकादिकैरधिकम् ॥ १८॥

इदानीं प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थस्थापितित्रिफलामागद्वयस्य काथविधिमाह पाकार्थे त्वित्यादि-पाकार्थ इति प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थे, त्रिफलामागद्वितय इति पूर्वे।करीत्या लैहिपञ्चपलादौ त्रयोदरापलान्ते क्रमेख त्रिफलाया मागद्वय चतुर्दरापलपोटरापलाष्टा-दरापलादयाश्चिरात्पलान्ता भवन्ति । तत्र त्रिफलाया प्रतिपल एकराराव जल दातव्यम् , किन्तु सर्वत्रैव रारावद्रयमधिक ध्रवत्वेन देयम् , तेन तिफलायाश्चतुर्दशपले षोडरा वारिरारावा काथार्थ देया , पोडरापले अप्टादगजलशरावा इत्यादिक्रमेण बोद्धन्या । म च काथ. कियदवशिष्ट स्थाप्य इत्याह तत्तेत्यादि-प्रयत्नतो प्राह्म इत्यन्न हेतुमाह अयम इत्यादि-चतुर्थावशिष्टकाथस्य निधित्तकमप्रधाननिष्पत्तिपा-कार्थत्वादित्यर्थ । स चेति निष्पिचपाक । मर्नस्मादिति मारणपुटनादे. । प्रधान-निष्यत्तिपाकार्थं हि लौहे यथा त्रिफलाकाथी दायते तथा दुग्वमि, तम्ब दुग्ध पञ्चपलादित्रयोदरापलान्तलीहेषु कियन्मान देशमित्याह पाकार्थमित्यादि-अन एक श्रादियें पादाना शरावचतुर्थां शाना ने पादद्वयत्रयादय एकादिका पादा, तैरिधिक दुग्धरारावद्वय पुटनान्तेऽरमसारे लौहचूर्ये पञ्चपलादित्रवीदरापलान्ते यथाक्रम पर्कन्यमित्यर्थ । तेन पञ्चपललीहे पर्कन्ये नित सपाददुरधराराबद्वयम् । पट्पेल तु पादहयाधिक दुर्भशरानद्दयम्। सप्तपेल पादस्तयाधिक दुर्भशरानद्दयमित्या-दिकोमण स्रयोदशप नपर्य्यन्तमुन्नयमिति ।, १८॥

पञ्चपलादिकमात्रा तद्भावे तद्वुसारते। प्राह्यम् । चतुरादिकमेकान्तं शक्तावधिकं त्रयोदशकात् ॥ १६ ॥

श्रथ लोहस्य पञ्चपलादिमात्राकरणे यदि शिक्तनीतित तदा पञ्चपलादर्वागिपि पक्षपलादिचतु पलपर्यन्त लोहपाकः कर्तन्य, तथा यथाशिकमम्भव श्रयोदशपन्तादुपर्य्यपि चतुर्वशपलादिलीहस्य पाक इत्यर्थमाह पञ्चपलादित्यादि—चतुरादिकः मैकान्तमिति चतुरिक्षयेकम् । नन्तेव सत्येकपलादिचतु पलान्ते लीहे तथा श्रयोदशप्पलाद्विकंच चतुर्दशपलादी लीहे जारणादिकर्मश्रयार्थम्, तथा प्रधानानिष्पत्तिपाकार्थव्च चतुर्दशपलादी लीहे जारणादिकर्मश्रयार्थम्, तथा प्रधानानिष्पत्तिपाकार्थव्च कीहश काव्यत्रिफलाया मान ग्रहण्यम्, एतत्काथार्थं जलदान वा कीहशस् , स्थाप्यः शेषो वा कीदृशः , प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थं दुग्धदान वा कीदृशः । तदर्थमाह तदनुसारतो श्राह्मा इति—पञ्चपलादिलोहमारणाद्यक्तकाथादिद्यानानुमारत इत्यर्थः । इदानी तदनुसारत इत्यस्य विवरणाय पत्री लिख्यते.—तत्रैकपले लीहे मारणादिक्तम्त्रयार्थं श्रुवण्यपलसहितिश्रफलायास्तृतीयमागे पलत्रय भवति, प्रतिपलञ्च जलशरावत्रश्रयुग्यात् नव

जलशरावा भवन्ति । तथा सप्तपलादौ माग इत्येनन त्र्यादिशरावे-रिधकलमुक्तम् अतस्तदनुमारात् पञ्चपनादनागिपि क्रमेख पाददय हासयेत्। तेनैकपललौहस्य मारणादिकर्मत्रयार्थं गृहीतत्रिफलायास्तृतीयभागे त्रपरोऽपि जल-शराव एको ध्रुवत्वेन देयो भवति, अत पूर्वोक्तनवजलशराविमिलित्वा दश शरावा इति । तथा दिपललौहे कमत्रयार्थं भुवपट्पलसाहितात्रिफलायास्त्तीयो भाग पल-चतुष्टयो भवति । प्रतिपलन्च शरावत्रेगुण्याच् द्वादरा जलशरावा , तथा सप्तपलादौ भाग इति वचनानुसारेखापरोऽपि पादद्वयाधिकजलशरान एको ध्रुवत्वेन देवो भवति, अतो मिलित्वा सार्क्षत्रयोदश जलशरावा भवान्ता। एव त्रिपललौहे कर्मत्रयार्थ ध्रव षट्पलसहितित्रिफलायारतृतीयमागे पञ्च पलानि भवन्ति, प्रतिपलञ्च जलशरावत्रै-गुर्यात् पन्चदश जलरारावा , सप्तपलादौ भाग इति वचनानुसारादपरमि जलशराबद्दयमाधिक ध्रुवत्वेन देयम् , तेन मिलित्वा सप्तदश शरावा । चतु.पल-लौहेऽि कर्मत्रयार्थं ध्रुवषट्पलसिहतित्रिफलायास्त्तीयमागे पलषट्कम्, प्रतिपलञ्च जलशरावत्रैगुण्यादष्टादरा जलशरावा , सप्तपलादौ माग इत्यनुसारादपरमि पाद-द्याधिकजलशराबद्दय ध्रुवत्वेन देय मवति, तेन मिलित्वा जलस्य सार्द्धविंशतिशरावा भवन्ति । पञ्चपलादिलोहे यत् वाथादिमान तत् पूर्वमेव विवृतम् । त्रयोदरापला-दुपरि चतुर्दशपलादौ त्र्याधेकादशकान्तैरित्यनुसारात् पूर्वापेचया शरावेखैव जलस्य वृद्धि कर्त्तव्या, काथस्याष्टमारा राष , एव सर्वत्रेव । प्रधाननिम्पत्तिपाकार्थमपि एकपललौहे च त्रिफलाया भागद्रये पट् पलानिः, प्रतिपलमम्बुसम स्यादिखुकेश्च विफलाया काथार्थम् , जलस्य षट् रारावा , ते च हास्या रारावास्यामधिकाः कर्त्तन्या इति मिलित्वा अष्टौ जलरारावा , चतुर्थमागावशेषादत्व स्थाप्य रारावहयम् । पन्चपलली इस्य प्रधानपाके तु सपाददुग्धशरावदयोक्तेश्व दक्तपले तु लैक्टि क्रमात् पादछोसन सपाददुग्धराराव एको मनति । प्रधानपाकार्थं घतमपि द्विगुण् त्रिगुणं चर्तुगुण लौहापेचया, यथाप्रकृतिदोषभेदेन, तेन वातप्रकृतौ प्रत लौहाचतुर्गुणम् , पित्तप्रकृतौ तिगुयम्, रेष्ठमप्रकृतौ द्विगुयमिति । एव द्विपले लोहे । द्विपललौहस्य प्रधानपाके तिफलाया मागद्दयेऽष्टा पलानि, प्रतिपलमम्बुसमम् स्यादित्युक्तेश्च जल-स्याष्ट्री शरावा ते च द्वाभ्या शरावाभ्यामिषका कत्तेव्या इति मिलित्वा दश जल-शरावा ; चतुर्भभागावशेषात् स्थाप्य सार्द्धशरावद्वयम् , पन्चपललौहस्य प्रधानपाके तु सपाददुग्धराराबद्दयोक्षेश्च द्विपले तु कमात् पादछासेन दुग्धन्य सार्द्धरारावैक भवति, धतन्त्र प्रकृत्यासपेचया पूर्वनदेव शेयम् । त्रिपललौहस्य प्रधानपाके तु तिफ-लाया दश पलानि: प्रातिपलमम्बुसम स्यादित्युकेश्व जलस्य दश शरावा.. ते च

हाभ्या शरावाभ्यामधिका कर्त्तं हित मिलित्वा द्वादश जलशरावा, चतुर्यमागा-मरेगात स्थाप्य शरावलयम्, दुग्धच्च पादोनशरावदयम्, धृतच्च प्रकृत्याधपेचया पूर्ववदेव श्रेयम् । चतु पललौहस्य प्रधानपाके तु क्विफलाया द्वादश पलानि, प्रति-पलमम्बुसम स्यादित्युक्तेश्च जलस्य द्वादश शरावा, ते च द्वाभ्या शरावाभ्यामधिका कर्त्तंच्या इति मिलित्वा चतुर्दश शरावा, चतुर्थमागावशेषात् स्थाप्यन्तु सार्द्वशरा-वत्रयम्, दुग्धच्च शरावद्वयम्, धृतच्च पूर्ववदिति । त्रयोदशपलादुपरि चतुर्दश पललौहस्य प्रधानपाके स्थापितात्रिफलाया मागद्दथे पूर्ववदेव जल देयम्, स्थाप्यच्च चतुर्थमागम्, पूर्वपूर्वापेचया दुग्धस्य एकैकशरावपादवृद्धि स्पष्टतरेव, धृतमिष प्रश्रूत्याधपेचया दिगुर्यात्रिगुर्यादिकमेविति । तदनुमारत इति ग्रन्थो विवृत्त ॥१६॥

त्रिफलात्रिकद्धकचित्रककान्तकामकविडङ्गचूर्णानि । जातीफलजातीकोषैलाकक्कोललवङ्गानाम् । सितरुष्णजीरयारिप चूर्णान्ययसा समानि स्यु ॥ २०॥

पक्तवावतारितमात्रे लीहे प्रक्षेपार्थं चूर्णमाह त्रिफलेत्यादि—कान्तकामक काञ्जिकामुस्तकम् । सिनकृष्णेति दय जीरकविरोषण्यम् । अयसा समानीति यावल्लाह-चूर्णम् , तावेदव मिलित्वा त्रिफलादिचूर्णमित्यर्थं ॥ २०॥

त्रिफलात्रिकदुविडद्गा नियता अन्य यथाप्रकृति ॥
कालायसदोषद्वते जातीफलादेर्लवद्गान्तस्य ।
चेपप्राप्त्यनुरूपः सर्वस्योनस्य वैकाद्यै ॥
कान्तक्रामकमेकं निःशेषं दोषमपद्दरत्ययस ।
द्विगुणित्रगुण्चतुर्गुणमाज्यं प्राह्यं यथाप्रकृति ॥
यदि भेषजभूयस्व स्तोकत्वं वा तथापि चूर्णानाम् ।
अयसा साम्यं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पा ॥२१॥

इदानीमेतेषु त्रिफलादिषु मध्ये यदवश्य प्रचेप्य तदाह त्रिफलेत्यादि—कालाः यसदायहत इति छेदः । अन्य इति जातीफलादय । उक्तित्रिफलादिसप्तकस्य नियतत्वे हेतुमाह कालायसदायहत इत्यादि—कालायस वज्रपायङ्गादिलाह एव, कालत्व- क्वास्य प्रशस्तत्वेन कीर्त्यते । यदुक्त पातव्जले—''क्वजलामा शिरोजास्ते रसायनिषधी मता " इति, पितवदानवशिरसि जाता इत्यर्थ । उक्त हि पातज्ञले—''क्वफिपत्तानिलप्राया देहास्तत्र महाँतले । पितता दानवास्तत्र प्रदेशाश्वापि तादृशा ।

गिरिसारास्ततो जाता उत्तमाधममध्यमा । कफन्नेत्र शिरःस्थानं हृद्य वित्तमण्डलम। गायानांभरभ चेशमिति देहविदो विद्र । वचीजा व्याधिनाशार्थं कटिजा वाजिकमीण । शिरोजा देएसिद्धयर्थामत्येव त्रिविधा मता." इत्यादि । अयोभवो दोष आयसः स चाकारट्ट प्टेंबशात् , तस्या हातिहरण प्रशम इति यावत् । यद्यपि कान्तकामकस्यापि लोएदे।पहररात्नेनावश्वप्रद्मप्यत्वोपवर्श्वनमिहैव युज्यते, तथापि तस्यैकस्यापि नि शष-रोपएरखत्वकरखार्थं पृथगभिधान कान्तकामकामिस्यादिनाम्ने करिष्यति, तथा कान्तकाम-करयापि नियत प्रचेप्यत्वभिति शेयम् । जातीफलादीना प्राप्यनुरूप प्रचेप्यत्वभाह जाती-फलादेरित्यादि-पाप्त्यनुरूप इत्यस्यार्थमाह सर्वस्यानस्य चैकाधिरिति यद्युक जाती-फलादिलवद्मान्त यदा मर्वमेव प्राप्यते तदा सर्वस्यैव प्रक्षेप , यदा सर्व न लम्यते तदा एकद्वित्रय।दिभिर्जातीफलादिद्रव्येरूनस्यापि प्रचेपः । कान्तकामकस्यापि अवश्यप्रचेप्य-त्वमाद्द कान्तक्तामकमेकिमत्यादि-किन्तु यदा लीहस्य निष्पत्तिपाक कर्तन्य . तदा प्रथमतो एन देयम् , ततो लौहचूर्यम् , ततान्त्रिफलाकाथः, ततो दुरथम् , तत एकीकृत्य लीहः पच्यते । प्रतन्यातिरेकेण च सर्वत्र लीहपाकानुपलम्म इति स्थितिः, स्रत परि-माणपूर्वक प्रतमाद दिगुणत्यादि । दिगुणत्वादिकञ्च लौहमपेच्य, यथाप्रकृतीति कफ-पित्तवातप्रकृतियु यथाकम दिगुणत्वादि बोद्धव्यमिति, दन्द्रप्रकृतौ च मिश्रविधिः, ममप्रभुनौ च मध्यविधिः, तेन त्रिगुणिमत्यन्वयः । ननु त्रिफलादि लवज्ञान्तसमग्र-भेषज्ञाप्तिर्यदि भवति, तदा प्रवेष्यचूर्णस्य भूयस्त्वम्, यदि समग्र न लभ्यते, तदाल्भीयस्वम् , अतं कथमयसा साम्यमित्याह यदीत्यादि-मूयोऽल्पसख्येति मम्बन्थ , भूवसी अल्पा वा सख्या प्रेचप्यचूर्णाना भूयस्वेऽल्पत्व वा न प्रयोजिकेति शेष । तेन यदा भेषजाना समग्रेख प्राप्ती सख्याकृतभूयस्व तदा भागहासेन मिलितचूर्याना लीहचूर्येन समत्वम्। समयाप्राप्ती च सख्याकृतम्यस्व तदा मागवृद्धया मिलितचूर्णांना लीइचुर्णेन समत्व विधेयमिति भाव । यद्यीप नानाचारैरतेषु लौइ-प्रयोगेषु प्रेक्षप्यम्यूणीना लौहसमत्वम्, तद्रईमानत्वम्, तम्बतुर्थमानत्वन्नामिहित तथाप्यमृतसारलोहे प्रचेप्यचूर्णाना मिलित्ना लौहचूर्णसमत्नमेवेति वचनादेवाब-सीयते ॥ २१ ॥

एवं धात्वनुसारात् तत्तत् कथितौषधस्य वापेन । सर्वत्रैव विधेयस्तत्तत् कथितस्यौषधस्योद्यः ॥ २२ ॥ इति साध्यसाधनपरिमाणविधिः ॥

इदानी मुक्तीपथमध्ये यद् यद्देषाधननुरूष तदपनीयम्, यत् तत्रोचित तदपि विधे-यमित्याह एवमित्यादि। पूर्वेन्तु तत्तद्वचनव्याख्यानाभिन्यक्तिनिमित्त स्थाने स्थाने पत्रिकाक्रमी लिखित । इटानीं तत्मवीमेकीकृत्य एकपलादित्रथीदशपलपर्य्यन्त पत्रिका-क्रमेख लिख्यते। तत्र एकपललै। हे मारखादिकमंत्रयार्थं मिलित्वा त्रिफला पल ६, पाथ श १, रेाप श १ पल २, तथा निष्पत्तिपाकार्थं मिलित्वा त्रिफला पल ६, पार्थ श =, शेष श २, दुन्ध श १ पल २, एतन्न यथाप्रकृत्येन, चूर्णमानन्तु स्पष्टमेन । श्रथ द्विपललीहे मारणादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला मिलित्वा पल ४, पाथ श १३ पल ४, शेप श १ पल ५ कर्ष २, निष्पत्तिपाकार्थं त्रिफला मिलित्वा पल ८, पाथ श 🔑 ०, शेष श २ पल ४, दुग्थ श १ पल ४, छतज्ञ यथाप्रकृत्येव, चूर्णमानन्तु स्पष्टमेव। श्रथ त्रिपललौहे मारखादिककर्मत्रयार्थं मिलित्वा त्रिफला पर्ल ५, पाथ रा १७, शेप श २ पल १, निष्पत्तिपाकार्थं त्रिफला पल १०, पाथ ग १२, रोप रा ३, दुन्ध श १ पल ६ , इत चूर्णमानन्च स्पष्टमेव । चतु पललीहे आरणादिकमंत्रयार्थ त्रिफला पल ६, पाय रा २०, पल ४, राप श २ पल ४ कर्प २, प्रधानपाकार्थ त्रिफला मिलित्वा पल १२, पाथ रा १४, रोप रा ३ पल ४, दुरथ रा २, छत चूर्णमानव्य स्पष्टमेव । पद्मपललीहे मारणादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला पल ७, पाथ रा २४, राप रा ३, प्रधानपाकार्थ त्रिफलापल १४, पाथ रा १६, राप रा ४, दुग्ध रा २ पल २, धतादि स्पष्टमेव । पट्पललोहे जारचादिकमैत्रयार्थ त्रिफला पल ८, पाथ श २८, रोप श ३ पल ४, प्रधानपाकार्थ त्रिफला पल १६, पाथ रा १८, राप रा ४ पल ४, दुउध रा २ पल ४, छत चूर्णमानञ्च स्पष्टमेव। सप्तपललोहै जारणादिकमंत्रयार्थ त्रिफला पल ६, पार्थ रा ३२, राप रा ४, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल १८, पाथ श २०, शेप श ५, दुग्थं श २ पल ६, ष्टत चूर्णमानञ्च स्पष्टम् । अष्टपललोहै जारणादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला पल १०, पाथ रा ३६, रोप रा ४ पल ४, प्रधानपाकार्थ त्रिफला पल २०, पाथ रा २२,रोप श ५ पत ४, दुग्ध श ३, धत चूर्णमानब स्पष्टम् । नवपललीहे जारणादिकमेत्रयार्थं त्रिफला पल ११, पाथ श ४०, राप श ४, प्रधानपाकार्थ त्रिफला पल२२ पाथ श २४, रेष रा ६, दुरध रा ३ पल २, वृत चूर्णमानम्र स्पष्टम्। दशपललीह जारणादि-कमेत्रयार्थं त्रिफला पल १२, पाथ श ४४, राय श ५ पल ४, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल २४, पाधु श २६, रोष श ६ पल ४, दुग्ध श ३ पल ४, छत चूर्णमानख स्पष्टम्। एकादशपतलौंहे नारखादिकर्मत्रयार्थे त्रिफला पल १३, पाथ रा ४८, राप रा ६, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल २६,पाथ रा २८,रोप रा ७,दुग्ध रा ४, धत चूर्यमानञ्च स्पष्टम् । द्वादशपललीहे जारणादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला पल १४, पाथ रा ५२, शेष रा ६ पल ४, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल २८, पाथ रा ६०, शेष रा ७ पल ४, दुग्ध रा ४ पल २, घृनं चूणमानन्च स्पष्टम् । त्रवीदशपललीहे जारणादि-कर्मत्रयार्थं त्रिफला पल १४, पाथ रा ५६, शेष रा ७, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल १० पाथ रा ६२, शेष रा ८, दुग्ध रा ४ पल ४। तदेव एकादित्रवीदशपलान्तलीहस्य साध्यसाधनपरिमाणे पत्रिका लिखिता, य्वमुक्तरीत्या च चतुर्वशपलादिलाहेऽपि साध्यमाधनपरिमाणामुन्नेयामिति। साध्यमाधनपरिमाणाविधिरित साध्य लीह साधन त्रिफलादि, तया परिमाणविधिरित्यर्थं ॥ २२॥

इति साध्यसाधनपरिमाखनिधि ।

लौहमारगविधिः

कान्तादिलौहमारणविधानसर्वस्वमुच्यते तावत् ॥२३॥

इदानीं लीहजारणविधिमाइ कान्तादीत्यादि-श्रादिशब्दात् पाविहवज्रादयोऽिष गृद्धन्ते, पषा लच्चानि प्रदीपस्य चतुर्थपरिच्छेदेऽनुसन्धयानि । लीहमारणविधानमेव सर्वस्व तदधानत्वात् पुटादिकर्मणा, किन्तु सुमृतमेव लीह गुणकर, तदुक्त —''सुमृ-तम्च यतो लीहममृतेन सम नृणाम् । दुर्भृत ग्रूलविष्टम्मी शरीरस्थितिसशयम् । भवेदयोवधे तस्माद् यत कुर्य्थाद्भिपग्वर'''॥ २३॥

यस्य कृते तस्त्रीहं पक्षव्यं तस्य ग्रुभदिवसे। समृदद्गारकरालितनतभूभागे शिवं समभ्यव्यं। वैदिकविधिना बिद्वं निधाय दुत्वादुतीस्तत्र ॥ २४॥

यस्य कृत इति यस्यातुरस्य निमित्तम् । लौहमारणाय भूमिसस्कारपूर्वकमितिकर्त्तव्यतामाह समृदित्यादि — मृदा सह अद्वारमेकीकृत्य सन्न्यूर्ण्यं तेन करालिते दन्तुरिते लिप्त इति यावत्, पतेनातितापानमृतिका न गलित, नतम्मागे मध्यीनम्नभूमागे ।
शिविमत्युपलचण, तदुनत—मर्चायत्या विधानेन हरम्ब गुरुभास्करौ । लोकपालान्
प्रहाश्चेव चेत्रपालानधीषधम्। आदित्यदेवताश्चेष्ट्वा धन्वन्तरिपतञ्जली । दथाद् विश्व
सर्वेभ्यो नानामस्योपचारतः '' इति । विद्विमिति वन्यदिष्यानल, तदमावे दारुद्रयसङ्घटुनजमित्रम्। यदाष्ट् पतञ्जलिः—''दिन्य दाव समादाय लौहकर्म समाचरेष्ट् ।
यदि दिष्यानालाभावस्ततो धर्षणसम्भवः॥ आरोप्य कर्मशालायामित्रं यक्तेन पूज्येत्
इति ॥ २४ ॥

धर्मात् सिध्यति सर्व श्रेयस्तद्धमंसिद्धेय किमपि। शक्त्यनुरूपं दद्याद् द्विजाय सन्तापिणे गुणिने॥ सन्तोप्य कर्मकारं प्रसाद्पृगादिदानसम्माने। श्रादौ तदश्मसारं निर्मलमेकान्ततः कुर्यात्॥ २४॥

यद्यीप दृष्टादृष्टरूपेण कार्य्यकोण कार्य सिध्यति तथा दृष्टमप्यदृष्टवशादेव उप निष्ठते । इत्यद्रष्टस्यैव रमणीयत्व मन्यमान भाइ धर्मादित्यादि-श्रेय इत्यमिमतप्ररास्त-फलन्। किमपे ति घान्यहिर्ययाचदानाचन्यतम ययागाकि दचादित्वर्थ । मारणार्थ लाहमस्कारमाह आदावित्यादि-अरममार लाह निर्मलिमिति शाधनविधिना कार्य्य तद् यथा प्रथम लीह गिलादिना निर्मलीकृत्य पत्तल कार्यं, तदनु चाहेरीमातुलुहान्ल-बेतमेनास्त्रियता सप्तबार प्रत्येकेन आनेष सभीष्य तत काश्चिकादी दिनद्वय अय बा स्थाप्यम्, एवमलभावना विधाय तदनु गोमूत्रापेष्टात्रिफलाकलकेनालिप्य आतेप शोपणी-यन्, तत्र्य मन गिलावल्मीकमृत्तिकाकुठारिकामूलचोद्गरीरेवतदूर्वासैन्यवैश्व जलिप्टै क्रोमण प्रतिष्य भातेप रोषपणीयम् । ततश्च "पत्तल निर्मल कृत्वा लौहमन्लीकृत पुन । मुत्रापेष्टिविफलया वारिपिष्टमनोह्नया । मावित मावयेत् तक् वल्मीकामलके-Siq च । परशुन्छिन्ना चाहेरी गण्डदूर्वा मर्भन्थवा ॥ श्रामिलिप्त यथाप्रिन शोष्य सर्थातेष क्रमाद् ॥ रे गरटदूर्वा श्रेतदूर्वित नाम । तदेव मावना विधाय तदनु सस्त्रया वाह्म ध्मापियत्वा नातिनप्त कृत्वा लीहाे ५ त्वया हिन्ने सेपु गव्यद्ग्यकाशिकगोमूत्र-त्रिफलाक्राथेषु वारत्रय कृत्वा निर्वापणीयम् । उक्त हि—"द्वीरारणालगामूत्र-त्रिफनान्वाथवारिथि । प्रतिद्रव्य निषेकव्य त्रिधा चैव विधानत "इति । निषेकमात्रा च- 'र्लाहपत्र मनान्तप्त दिगुणे तहने चिथेत । निषेक एप निर्दिष्टी निषेकार्थकवा-हिभि " शत । निषेकार्थ त्रिफलाक्त्रायाविधानव्य यथा—"सिद्धार्थ त्रिफला लाहात् कर्चन्या द्विरुणा सदा । चतुर्रुण फनात् तोयमर्द्धमागावनेषितम् " इति । दोपविरोषे च निषेकविशेषे। यथा-"विशेषत. कफे तीच्य कदातिककपायके । बात तु मधुर-न्निग्धे वित्ते मधुरशितले । निषेक शस्यते नित्य मर्वडोपापनायक ।" तदेवसुक्त-क्रमण निषेक विधाय राशिमका विश्रान्य लाहमारणादिए योजयेत्। उन्त हि-''विश्राम्य रजनीमेका तन कर्म ममाचरेत " इति ॥ २५ ॥

> तद्तु कुठाराच्छिन्नत्रिफलागिरिकर्णिकास्थिसंहारैः॥ करिकर्णच्छुटमूलशतावरीकेशराजास्ये॥

शालिञ्चम्लकाशीम्लपावृड्जभृद्गराजैश्च । लिप्त्वा दग्धव्यं नददप्रिक्षयलोहकारेण ॥ २६ ॥

दराना लीएगारणार्थ भेषजान्याह नदीनस्यादि—नदन्वित शोधनानन्तर पि <u>त</u> लीए जारणसमीपकांसे पुनरिप स्वन्छकाश्चिकमांत्र लीएस्य निपेक कृत्वेत मारण कर्शस्यम् । उक्त हि पातशले—"काथ पर्युपिन कृत्वा बलि दश्वा चतुर्दशः। पपराऽपि च दातत्यो निषेको न्यथमनिर्धा । पम्लम्बच्छारनाल च तता व्यधमुप-मामेद्र ॥' कुठार नियुत्ता कुठारिका, गिरिकाणी भेतापराजिता, अन्धिसहारे। हारख करिकण-ददम्त दन्तिकर्णपलाशमृतम्, काशी खनामस्याता । प्रावृज्जा वर्षाम् , पुनर्नेवी गानत् । यद्यपि प्रनिरंग भेषागा विश्वपना सुरुग्धे मृति नियतमेन लाइन्य मारम्य भवति तथापि मृद्धा लाहार्द्धभागपरिमिनम्, लाहापेन्या पाटशारान परिमित ना शोधितस्यगमानिकचूर्णं विकलाकाथेनालीत्य तेन लाइ लिप्या तदनन्तरम् एत कुठार्राव्यत्पादिनेप निर्माणांपाच्या पोष्ट्यार्शरातिष्य ततोऽन्य ध्मापनसुपदिशन्ति। उक्तांगे पराजित्यावय यथा-- "एनदर्धन विख्यात प्रतेषी माधिकण च । माधि-गान्सुरा। प्रांता कुनटा नाम्नेषिता । मारसदृन्यमयुक्त पोटशारीन ध्वाप्यते ॥"' के जिन्माधिकस्यापि पेटिशाशमाह यथा -- 'शिफलावाडिबीहित्रभवपाहरजीडिन्ब-नम ।" नय वाटिबीरियुनव स्वयमानिकम्, पादश्य पोटशारा इति व्याख्या-नयीत । तथा गुनापि "लीए लीएाईमानेन पोटशारीन वा पुन । त्रिफलाकाथ-विष्टेन मानिवे स प्रतेषयेन् । लीहाशत्यांशकुनस्या वाम्नाविष्टयां दित । कुनदी मन शिला । अत्र लीएजारणाश्वीभृतम्बर्णमाजिकस्य शोधन लज्ज्याञ्च लिख्यते "गद्गे तु रागमहारो। मनाक कृष्णच्यविविधि । वृहद्रण इति ख्याती माचिकी ऽप प्रशस्यते ।'' प्यविधमाधिकचुर्णं चुत्रमारिपशालिव्चकाधमध्ये पत्तनिकाया स्थापयत् । पत्तनिकारथापितकाथे तत् स्वरामानिकचूर्णं वस्ये पोट्टलिका बर्ध्वा निनिष्य दोलापाकक्रमेख परेत । पत्त नेकाभ्यन्तरे काथमध्य पोट्टलिकाया यत् नीयपद् गर्नात तत्र बायम् । नदुक-"स्वर्णमाचिकचुर्णं च वश्चबद्ध विपाचेयत् । कालमारियशालिङ्चकाथे रोलाविधानत । तदथ पतित त्राखोगव गध्वति माजिन वम्'' इति॥ २६॥

> चिरजलभावितनिर्मलशालाद्वारेण परिन श्राच्छाच । कुशलाध्मापितभस्त्रानवरतमुक्तेन पवनेन ॥ चद्वेर्वाद्यच्वाला वोद्धव्या जातु नैव कुञ्चिकया ।

मृज्ञवणसां लिक्भाजा किन्तु स्वच्छाम्वुसंप्लुतया ॥ द्रव्यान्तरसंयोगात् स्वां शक्ति भेपजानि मुश्चन्ति । मलधूलिमत् सर्वे सर्वत्र विवर्जयेत् तस्मात् ॥२०॥

इदानी तत्वाकाय याद्दशीऽद्वारी श्राह्मस्तमाह चिरेत्यादि—चिर पचमासा-दिकम्, मावित स्थापितम्, निर्मल त्यापान्यादिविरहात् । कुरालोऽत्र स्थिरोऽनलः सश्च । कुन्चिका वशशाखा कुन्चीति ख्याता । विषचे दोषमाह द्रव्यान्तरेत्यादि— मृदादिससर्गे सिन यस्मालोहसस्पृष्टभेषजानि होनशिककानि भवन्ति,तस्मात् मृदादि-कर्युरितसालिलयुक्तकुन्चिकया बहिज्वाला न वोद्धन्या,किन्तु निर्मलजलयुक्तकुन्चिक-यैवेत्यर्थ ॥२७॥

सन्देशेन गृहीत्वान्तः प्रज्वालिताशिमध्यसुपनीय । गलित यथायथमग्रे तथैव सृदु वर्द्धयेन्तिपुण ॥ तलिनिहितोद्ध्वसुखांकुशलग्नं त्रिफलाजले विनिद्धिप्य । निर्वापयेदशेष शेषं त्रिफलाम्बु रहेन्च ॥२८॥

ददानीं तल्लीह येन प्रकारेण विद्वमध्ये प्रवेशनीय तदाह सन्दरेशेनत्यादि— सन्दर्श साँडाशीति ख्यात । मृदु वर्द्धयेदिति कमशस्तल्लीहखण्ड विद्वमध्ये प्रवेशये-दित्यर्थे । गलितन्त्र यथा तथा त्रिफलाकाथे देय तदाह तलेत्यादि—पाकेन यथायथ गलित तथा तलनिहिताद्ध्वमुखाड्कुरोन जतुबल्लम विहित समुद्भूत्य सन्दरोन पीडियित्वा यथोक्षत्रिफलाजले शनै शनैनिर्वापयेत् । रोप त्रिफलाम्बु रचेन्द्रिति पुटपाकार्थे स्थालापाकार्थे स्थापितत्रिफलाकाथमागद्वयमेय रेपराब्दवाच्यम् । जकार्थे पातन्नले यथा—"हस्तिकर्णसमीरेण क्षक्राराध्मापित मृशम् । उन्होलित त्रिधा लीन स्फुलिक्षे परिविज्ञतम् । ततोऽङ्कुरामुखे लग्न सन्दरापीडित यथा । उद्घृत्य त्रिफला-तोये प्रचेतन्य शनै शनै " इति ॥ २ ॥।

यह्नोहं न मृतं तत् पुनरिप पक्तव्यमुक्तमार्गेण । यन्न मृतं तथापि तत् त्यक्रव्यमलौहमेव हि तत् ॥२६॥

त्रिचतुर्वारमङ्गारचयात् तावत् सर्वभेव लीह त्रियते, तथापि यन्न मृत तत् किं कर्त्तंच्यम्, तदाह यहीहिमित्यादि—उक्तमार्गेखेति उक्तभेषवलेपादिकिया वर्त्तनीया । तथापि यन्न मृत तत् त्याज्यमेवेत्याह यन्न मृतमित्यादि । तथापीति सप्तमिरङ्गारे सप्तवारपाक्तनापीत्यथं । उक्त हि—"त्तावारान् तथा लीह पूर्ववत् पूर्वमेषकै । ध्मात्वा

ध्मात्वा समुत्थाप्य निक्षित् त्रिफलाम्मसि । यव नामान यो लीहो न मृतस्त्याज्य यव सं इति । श्रमग्यो हेतुमाह श्रलौहमिलादि । उक्तीपधिलप्तानेकवारध्मात-मर्याच्याप्त हि सुलौहत्वम् । तन्मर्या निवृत्तिमान सुव्याप्त लीहशास्त्रोदितसुलोह-त्वमादायैव निवर्तत इति भाव । मृतलौहलक्त्रयाञ्च यथा—''लौहगूथसमाकार-स्पर्शयायाः प्रतीयते । यदा लौहस्तदा ह्रोयः सुमृतो वैद्यसत्तमे. ॥ २६ ॥

> तद्तु घनलौहपात्रे कालायसमुद्गरेण सञ्चूर्य । दत्त्वा बहुशः सलिलं प्रचाल्याद्वारमुद्ध्य ॥ तद्यः केवलमग्नौ शुष्कीकृत्याथवातपे पश्चात् । लौहशिलायां पिष्यादसिते असिन वा तद्यासौ ॥ ३०॥

इति लौहमारणविधिः।

इदानीं जारणानन्तर प्रचालनन्त तथा त्रिफलाकाथाविसकस्य स्र्यांतपे शोषणारूपो भानुपाकस्य यथा कर्तन्यस्तदाइ तदिन्वसादि—वन दृढ विद्रावभाषयुक्तम् । लौइपात्र इति लौहोद्खलादाविस्वर्थः । कालायसमुद्रर तीच्णलौइमुद्ररम् ।
यतदुभयमप्युपलच्चण्, तेन दृढदशदादिकच्च बोध्यम् । सन्त्र्येत्यत्र मुद्रानिभमिति
शेषः । सिललिमित्युपलच्चण्, तेन त्रिफलाकाथोऽपि बोध्य । शुष्किक्रत्येति त्रिफलाकाथेनैव सप्तथा स्र्यांतपे सशोष्यत्यर्थ । उन्तार्थे पातञ्जले यथा—"अयोघनेन
तत् पिष्ट शिलया दृदया यथा । अयोमलसम पिग्ड कृत्वा मुद्रसम पुन । त्रिफलावारिणा थीत विशुष्क चूर्णित पुन ।" इत्यादि । योगरत्नाकरेऽप्युक्त—"मृतच्चोद्खले लोहे मूपलेनापि ताहृशा । सन्त्र्यर्थ त्रिफलाम्भोभि सप्तथा स्र्यंपाचिः
तम् । एव पुटविधी योग्यो विश्वयो भिष्का वरेः।" इत्यादि । अत्र लौहप्रचालनार्थं भानुपाकार्थन्त्व त्रिफलाकाथविधियंथा योगरत्नाकरे—"शुद्धयर्थं त्रिफला
लौहात् कर्तन्या त्रिगुणा सदा । चतुर्गुणफलात् तोयमर्द्धभागवशितम् । एप एव
विधिनित्य चालनेऽपि च शस्यते । इति तथा—"भानुपाकार्थमिच्छन्ति त्रिफलामयसा समम् । सलिल दिगुण तत्र चतुर्भागावशिपतम् ।" इति ॥ १०॥

त्रति लीहमारखाविधि ॥

स्थालीपाकविधिः

श्रथ सत्वायोभागडे दत्त्वा त्रिफलाम्बु शेपमन्यद्वा । प्रथमं स्थालीपाकं द्यादातत्त्वयात् तद्तु ॥

गजकर्णपत्रमूलशतावरीभृद्गकेशराजरसैः। प्राग्वत् स्थालीपाकं कुर्य्यात् प्रत्येकमेकं वा ॥ ३१॥ इति स्थालीपाकविधि ।

स्यालीपाकमाइ अथेलादि—अयोगायहे लौइपत्तिकायाम्। रोप त्रिफ-लाम्यु त्रिफलेकमागक्षतकाथस्य ध्मातिर्नापणाविराष्टम् । अथ यदि कथमपि तिद्देनष्ट स्यात् तदा का गतिरित्याइ अन्यदेति तत्मिक्रययेव काथान्तर् कार्ब्यमिति माव । प्रथम स्थालीपाक दद्यादिति प्रथम स्थालया लौइन्त्र्ये विफलाकाथेनालोट्य विह्ना पाक विधाय त्रिफलाकाथद्ययः कर्त्तेन्य । इल्पेप स्थालीविधानक्रमः आत-त्वयादिति त्रिफलाकाथरारेपपर्य्यन्तम् । तदन्विति प्रथम , त्रिफलाकाथन स्थालीपाक विधाय अनन्तर इस्तिकर्णपलाशादीना व्यस्ताना समस्ताना वा स्वर्मरिप पूर्ववत् स्थालीपाक कार्य्य इत्याइ गजकर्णेखादि—गजकर्णो इस्तिकर्णपलाश । प्रावन्दित्यनेनैव यावतीयत्रिफलाकाथस्य स्थालीपाके मात्रा द्ववच्यानन्तरक्ष पाकस्तथा गजकर्णोदिस्वरसादावित्यर्थ । किन्तु तत्र व्याध्यनुरूपस्थालीपाकीयद्रव्याणामन्तरे पदि स्वरसप्राप्तिनीस्ति तत्र स्थालीपाकार्थ त्रिफलाकाथानुमारेणैव काथ्यजलादिक दत्ना काथ विधाय स्थालीपाको विधेय इति ॥३१॥

इति स्थालीपाकविधि ।

पुटपाकविाधिः

हस्तप्रमाण्वदन श्वभं हस्तैकखाति सममध्यम्।
कृत्वा कटाहसदशं तत्र करीप तुपञ्च काष्टञ्ज ॥
अन्तर्धनतरमर्द्धं ग्रुपिरं परिपूर्यं दहनमायोज्यम्।
पञ्चादयसश्चूर्णं श्रुक्णं पद्गोपमं कुर्य्यात् ॥
त्रिफलाम्बुमृद्धं कशरशतावरीकन्दमाणसहजरसे ॥
भक्षातककरिकर्णं च्छ्रदमूलपुनर्नवास्तरसे ॥
चिष्त्वाथ लौहपात्रे मार्दे वा लौहमार्दपात्राभ्याम्।
तुल्याभ्यां पृष्ठेनाच्छाद्यान्ते रन्ध्रमालिप्य ॥
तत्पुटपात्रं तत्र श्वभ्रज्वलेन निघाय भूयोभि ।
काष्ठकरीपतुपैस्तत् सञ्छाद्याहिनशं दहेत् प्राक्षः॥ ३२॥

पुरपाकिषिमाह हस्तप्रमाखेलादि-शत्र खातम् हस्तैकखातिसममध्यमिति इस्तैकप्रमा**खा खाति खननं यस्य, सर्वतो इस्तैकमात्रप**रिमाणमिलर्थः । समे।ऽनिस्नो मध्योऽभ्यन्तरभागो यस्य तत् सममध्यम् । कटाइसदृशमित्यनेनैव वर्त्तलाकारत्वमुक्त, तेन चतुष्कोण न कार्यामित्यर्थ । तत्र श्रम्न अन्तरिति मध्य घनतर बहुनर निविद-तरमिति यावतः । प्रद्वेशिपर परिपूर्येति करीपादिभि श्रभ्रस्याद्वभाग परिपूर्ये-त्यर्थ । कैर्द्रवे: पद्मोपम कुर्य्यादित्याह त्रिफलत्यादि-- त्रिफलाम्बु त्रिफलाकाय , भुद्रकेशरी भुक्तराजकेशराजी, कन्द. श्रूर्णः । एपा भुद्रादीना सहजरसः स्वरसः। महातकस्य पुन. काथ एव, स च महातकसहत्वे मत्येव बोध्यः । श्रयश्चूर्यं त्रिफलाकाथादिभि पद्गोपम कृत्वा किं कर्त्तव्य तदाइ चिप्केत्यादि —मार्द इति फुष्णमृत्तिकाभवपात्रे, एतच मृत्यात्र सर्वथा लौहपात्राभावे हि वोध्य, किन्तु दिचयराढायां सममस्ये मृत्सम्पुट लै। इ कृत्वा वस्त्रमृतिकाभिरालिप्य पुटपाको दीयते इति व्यवहार । अयञ्च पत्तु, साथायान् भवति, यतो लौहसम्पुटमध्येऽ-भमलौद्द्यदितंसम्पुटमात्रस्यापि पुटपाकौपभससर्गजीर्थतया तदीयरजसोऽजुप्रवेशो दुर्निवार इति । पृष्ठेनाच्छाधेति-यत्र पात्रान्तरे पद्गीपम लीहचूर्णमस्ति तन्मुख-मपरतत्तुल्यपात्रस्य कटीभागे । निधायेत्यर्थे । अन्ते रन्ध्रमालिप्येति कुट्टितसृदस्त्रा-दिभिरिति राप । भूयोभिरिति प्रचुरै: । इदश्च काष्टादिक पुटमात्रोपदर्शनार्थम्, भता न पौनरुक्त्यम् । भूयोभिरित्यनेन गर्त्तपूरण कृत्वा तदुपर्य्यपि करीषसमुच्छ्रयः कार्य्य इति दर्शयति । ऋइनिशमित्यनेन दिवसे रात्री वा पुटा देय इति दर्शयति । अन्ये तु पुटपाकस्याष्ट्रप्रहरन्यापनार्थमहर्निशामिति वचनमाहु , तन्न, पुटपाकस्य चतुः महरमम्पाषत्वात् । उक्त हि पातश्रली—'' चतुर्भि पहरेक्षेय पुटपाकचर्णा मुधै. ।" तथा योगरत्नाकरसमुचयि " चतुभि प्रहरेरेव पुटपाकः प्रकीचित । पुटपाकचर्णादूद्र ई स्थितो मनति भस्मसात् । अधस्तादपक्षप्रस्तु मन्दो भनति वीर्यंत । क्राएडस्यो मरमनाच्छन्न आक्रप्टन्यः सुशीतल । समाक्रप्टस्य तप्तस्य गुर्याहानि प्रजायते '' इति । तत्र सद्येपात् पुटपाकपरिपाटी लिख्यते । त्रिफला-काथ।दिभि पङ्कोपम लौद्द विधाय सम्पुटाक्वातिलौद्दपात्रस्थ कृत्वा वस्त्रादिभिरव-गुग्ट्य कुट्टितवस्त्रमृत्तिकया पात्रयोरवकारामालिप्य इस्तमात्रपरिमितसमतलभूगर्त्ते करीपतुर्प. शुष्कगोमयमात्रेण वा खातस्याई प्रपूर्य तत्र तल्लीहसम्पुट निधाय विद्ध नियोज्य तदुपरि अपरकरीपादिमि शुष्कगोमयमात्रेख वा श्रम्न परिपूर्यतं, एवं चतु भि. प्रहरेरेव पटो देयं, शीती मृतमाम्राष्ट्रचम् ॥ ३२॥

पवं नविभरमीभिभेषजराजैः पचेत्त पुटपाकम् ।
प्रत्येकमेकमेभिर्मिलितेर्वा त्रिचतुरान् वारान् ॥
प्रतिपुटनं तत् पिष्यात् स्थालीपाकं विधाय तथैन तत् ।
तादृशि दशदि न पिष्याद् विगलद्रजसा तु युज्यते यत्र ॥
तद्यश्चूर्ण पिष्टं घृष्ट घनसूद्मवासिस श्रुक्णम् ।
यदि रजसा सदृशं स्थात् केतक्यास्तर्द्दि तद्भुद्रम् ॥
पुटेन स्थालीपाकेऽधिकृतपुरुषे स्वमावरुगिधगमात् ।
कथितमपि द्वयमौषधमुचितमुपोद्यमन्यद्पि ॥ ३३ ॥

इति पुटपाकविधिः॥

इदानी मुक्ते सिफलादिभि पुनर्नवास्वरसान्ते प्रत्येक, मिलित्वा वा पुटा देय इत्याह एवमित्यादि -- नविभिरिति इह त्रिफला एकत्वेनैव गर्यानीया, तेन न सल्यातिरेक । त्रिफलेत्यनेन त्रिफलादिगयामिच्छन्ति केचित्, तद्यथा— 'त्रिफला-त्रिवृतादन्तीत्रिकटुतालमृलिका । वृद्धदारश्च वृश्चीरवृपपत्रकचित्रका । शृद्धवेर-विडङ्गी च भृङ्गमल्लातकीपथम् । दाडिमस्य च पत्राणि रातपुत्री पुनर्नवा । क्रठार-क्रामको कन्दरतन्त्री नेकस्य पर्णिका । एस्तिकर्णपलाशश्च क्रलिश केराराजक माण राण्डितकर्णेश्च गोनिहा लेहिमारक । गिरिमन्तानकः प्रोक्तिकफलादिरय गण । सामान्यपुटपाकार्थमेतानिच्छन्ति सूर्य ।" इति । दोषभेदे हु गणविरोषा विस्तारमयात्र लिखिता । ते च लीहप्रदीपे प्रथमपरिच्छेदस्यान्तेऽनुसन्धेया इति । किंद्र यस्मिन् व्याधी ये ये योगा हितास्तस्मिन् व्याधी तत्तत्काथैरिप पुटो देय । उक्त हि—" ये वे यत्र गदे योगास्तेषा तेपाख्य वारिणा । विधिनांघ्माय तेनैव पुटा रोगे च सम्मत ।" इति । विधिनेति साध्यसाधनपरिमाणीकपुटपाकार्धात्रिफ-लाकायविधिना, अथवा यत्र त्रिफलान्यतिरिक्तकाथ्यद्रव्यान्तराण्यनुकमानानि सन्ति, देयजलमान रापजलमानञ्च नापात्त, तत्र यागरत्नाकरीक्षव्यवस्थैवानुसर्त्तन्या। यदुक काथविधी तत्रेव-- " श्रन्यानि यानि व्यक्तानि योक्तव्यानि पुटादिषु । तानि लीइसमान्येव जल प्रागेव कीर्चितम्। लम्येते स्वरसी येपा तेपा काथस्तु नेप्यते । त्रिफलाव्यतिरिक्तेन मत्तेमतत् पतः जले । " इति । जल प्रागेव कीर्त्तितमिति मृदौ काथार्थ चतुर्गुण जल देय, स्थाप्यक्षतुर्थी माग । मध्यद्रव्येऽष्टगुण जल देय, स्थाप्यश्चाष्टमी माग । कठीरद्रच्ये षोडशागुख जल देय, स्थाप्यश्च पोडशी

भाग इति । नतु पुटेन किमन्न क्रियते ? उच्यते, दोषनाशगुणोदय इति । यदुक्त-" पुटाद्दोषिवनाशः स्यात् पुटादेव गुणोदय । त्रियते हि पुटाह्नौह पुटास्तस्मात् समाचरेत्। यथा यथा प्रदीयन्ते पुटा सुबहवो यदि । तथा तथाभिवर्द्धन्ते गुणा प्व सहस्रश । तावल्लोह पुटेद्रैको यावच्चूर्यीकन जले । निस्तरङ्गे लघुत्वेन समु-त्तरित इसवत् । तावच चूर्ण्येदेन यावत् कज्जलसाश्वमम् । करोति विहिते नेत्रे नैव पीडा मनागिप ।" इति । पुटाना कर्मभेदेन सख्योभदो यथा--"शतादिस्तु महस्रान्त पुटो देयो रसायने । दशादिशतपर्यंन्तो गदे पुटविधिर्मतः । वाजिकर्माण विशेय पुर पद्मशताधिक । दशोत्तरशतान्तस्तु पुर पुरविचक्त्रणै ।" यदा तु चुद्रितमात्रे लौहे पुटा देयास्तदा एतावद् भूयः सख्यका श्रिप पुटा दीयन्ते । यदा तु प्रतिपुटान्ते पेषण वस्त्रपूतञ्च तदा सप्ताष्टावेव विशिष्टफलदा मवन्तीत्युपदिशन्ति वृद्धाः। प्रतिपुट पेपणमाद्द प्रतिति-- एतेन पेषणवस्त्रमाणवस्त्रपूतत्वाभ्या भस्मीभूतपुटार्थदत्त-भेपजनिरासोऽपरदेयभेषजद्रव्यसस्काराधानद्वेति भाव । कोमलाशिलासु पेषण न कार्थ्यमिति भाव , पिष्ट्वा च वस्त्रपूत कार्थ्यामित्याह तदय इत्यादि-धन निविड, सूत्तमञ्च यदास , तम पृष्ट पूर्वीमत्यर्थ । इदानीमातुरस्य प्रकृत्यादिक निरूप्य उक्तभेपजेषु यदनुचित तस्यापकर्ष कार्य्य । अनुक्तस्याप्युचितस्यादान कार्य्यामित्याह पुटन इत्यादि । श्राधिकृतेति श्राधिकृतपुरुषाश्चिकित्स्यत्वेन प्राकृत इत्यर्थे ॥३३।

इति पुटपाकविधि ।

पाकविधिः

श्रभ्यस्तकमिविधिभिर्बालकुशाश्रीयवुद्धिभिरत्वस्यम्। लौहस्य पाकमधुना नागार्जुनशिष्टमभिद्घम ॥३४॥

इदानीं लौहस्य प्रधाननिष्पत्तिपाकमाह अभ्यस्तित्यादि—अभ्यस्तकर्मनिधिमि

हृष्टकृतलौहपाके । बालकुशाग्रमिति तींच्य स्कान्च तेन कुशाग्रामिन तींच्या स्काम च गुद्धियेषा, दुरूहस्यार्थस्य तींच्यास्क्षमगुद्धिग्राद्यत्वात् तैरप्यलच्य ज्ञातुमशक्यम् । नागार्जुनशिष्ट नागार्जुनेन कथितम् । लौहपाकारम्भेऽपि मञ्जल कार्थ्यम् । उक्त हि पातअले—''मातृका पूज्येत् सर्वा नायिकाञ्च विनायकम् । अन्यत् स्वस्त्ययनं कुर्यात् सदा हितमना सुधी । पच एव भवेदेव त्रिवर्गफलदो नृयाम्'' इति ॥३४॥

लोहारकूटताम्रकटाहे दढमृगमये प्रगम्य शिवम् । तदयः पचेदचपलः काष्टेन्धनेन विद्वना मृदुना ॥ निक्तिप्य विफलाजलमुदितं यत् तद् घृतञ्च दुग्धञ्च । सञ्चाल्य लेहमय्या दृव्यो लग्नं समुत्पाट्य ॥३४॥

लाहपाकार्थ पात्रमाह लोहत्यादि—आरकृट पित्तलम् । काष्टेन्थनेनेति काष्ट्र पद तृण्तुपाटिन्युटामार्थम् । विह्नेत्यथेविह्निना । उक्त हि— "मृदुनाधो हुतारेन पक्तन्यमवधानतः" इति । स्थापिनत्रिफनामागद्ययक्त्रकायार्दिप्रचेपार्थमाह ।निच्चित्यादि— उदितमित्युक्तपरिमाणम् । इतादिदानकमस्य मानराजेनोक्तः ; यथा— 'वृतेन लाहमालोक्य चारेरा नमनन्तरम् । तत काथेन मयोज्य मम्देऽग्रा रानकै पचेत् । तत मञ्जालयेहीह लाहदर्ज्यातिर्दार्धया" इति ॥ ३५ ॥

मृदुमध्यसरभावै पाकस्त्रिविधाऽत वस्यते पुंसाम्।
पित्तसमीरणश्लेष्मप्रकृतीनां मध्यमस्तु समः।
ग्रभ्यक्रद्विं लौढं सुखदुःखस्वलनयोगि मृदु मध्यम्।
डिस्मतद्विं खरं परिभापन्ते केचिदाचार्याः॥
ग्रन्ये विद्यीनद्वींप्रलेपमाख्त्कराकृति ब्रुवते।
मृदु मध्यमर्द्वेचूर्णं सिकतापुञ्जोपमन्तु स्नरम्॥ ३६॥

इदानीं पितवातकफप्रकृतिषु क्रमार् पाकसवमाह सृद्धित्यदि—मध्यमपाको वात प्रकृती हित एव, किन्तु प्रकृत्यन्तरेऽपि योज्य इत्याह मध्यमस्तु सम इति । मवेप्रकृति निव्यत्वेन सर्वास्वेव प्रकृतिषु उचित इत्यर्थ । क्रमोषोऽप्याह—'द्वीमास्थिष्यते युक्त त्व स्वलित वा न वा । सृदुपाक विज्ञानीयाद पिक्ते तु विहित सदा ॥ नितापुक्षो पम युक्त मूषिकोत्करमान्निमम् । तदयः सरपाक स्याद् रूष्मययेव प्रकोश्वितम् । एकैव गुण्योगित्वान्न तिमच्छिन्त तिहद । स्वप्रकृतिमेव्यत्वान्मध्यम बहुपूजितम्'' इति । एकीयमते सृदुमध्यखरपाकाणा क्रमाञ्चक्तणमाह अम्यकृतिमेव्यत्वान्मध्यम वहुपूजितम्'' इति । एकीयमते सृदुमध्यखरपाकाणा क्रमाञ्चक्तणमाह अम्यकृत्यादि—अम्यका वनपङ्कवत सिष्टा दवी येन ईदृश लीह सृद्धित सृदुपाक अवते । अम्यकृत्वीत्यपि पाक. तथा स्वतु उत्यत्वानयोगी कदाचित् दवीं त्यवित कदाचित् न त्यवित इत्यर्थ । एतादृश्य यञ्जीह तन्मध्यममिति मध्यमपाक अवते । तथा जन्मतदवींति यञ्जोह कदाचिदिप दव्यां न सन्त्यव्यते, तत् खरपाक अवते इति । तथा जन्यतममतमाह अन्य इत्यादि—विशेषण विहानस्त्यत्वो दवींप्रलेषो येन इदृश, यथा आखूत्कराकृति इन्दुरसृत्विकासदृशस्त्र यहीह तन्त्यदिति सदुपाक अवते । तथा आर्क्तुण्वोह मध्यमिति मध्यपाक अवते आर्क्त-वृर्पामिति अर्द्ध चूर्णन् अपरमर्द्ध आखुत्कराकारामित्यर्थ । तथा सिक्ततापुर्श्वोपम

यालुकाराशिमदृश यह्नीह चत्तुष्य गृह्मते न तु स्परेंगन,तत् खरपाक मुनते । पातञ्जले तु स्परांदिनापि पाकज्ञानमुक्त—' तावल्लीह पचेद्वेद्यो यावद्रकेष पीटितम् । समम्र जायते व्यक्त न नि सरित सन्धिमि. । अगुलिभ्या निष्टष्टन्तु यदा चूर्णलमागतम् । तदा मिद्ध विज्ञानीयाह्मीह लीहविशारदः। वितितो वितितो वित्तिक्षरूपत्व बजेदिति। ताभ्यामेव शर्नेष्ट मिद्ध विद्याचिकित्सकः । मन्दमाहुस्तथा लीहमलव्धाखिललद्याम्यामेव शर्नेष्ट मिद्ध विद्याचिकित्सकः । मन्दमाहुस्तथा लीहमलव्धाखिललद्याम्याम् । अतिपाकेन तज्केय खरमुज्मितलद्याणम् '' इति । जीवनाख्योप्याह— '' अक्षनाम घन क्षिन्ध स्थम्लमथोद्धरेत् । अक्षित्रमम्मिति चिप्त सम्यक् पाकस्य लद्यणम् '' इति ॥ ३६ ॥

त्रिविधोऽपि पाक ईहक् सर्वेपां गुण्कदेव न तु विफलः । प्रकृतिविशेष सूदमी गुणदे।पौ जनयत्यल्पम् ॥ विज्ञाय पाकमेवं द्वागवतार्थ्य द्वितौ च्रणान् कियतः । विश्राम्य तत्र लौहे त्रिफलादेः प्रद्यिपच्चूर्णम् ॥ ३७ ॥

त्रिविधोऽप्यय पाको न विफल इत्याह त्रिविध इत्यादि—लाहपाकानन्तर त्रिफलादिचूर्णप्रेष्ठपमाष्ट विद्यायत्यादि—द्राक् शोघ्र, चिती, नाकाशे । कियत्-चणात् विश्राम्येत्यनेन सर्वथा निष्टत्तिनं प्रतिपचते, किन्तिहिं, मनाक् तप्तत्वम्, यदाह पतक्षिल —' श्रवतार्थ्यं मनाक् तप्त ' इति । इतिकर्त्तव्यता त्विह योगरत्ना-करसमुचयोक्षानुसर्त्तव्या । यदुक्ष तत्रैव—'' श्रवतार्थ्यं ततो दर्व्या परिघट्ट्य पुन पुनः । यदा पाणिसहो भूतो निचिपदौपध तदा । स्तोक स्तोक न दातव्य परिघट्ट्य निरन्तरम् इति ॥ ३७॥

यदि कपूरप्राप्तिभैवति ततो विगलिते तदुष्णत्वे । चूर्णीकृतमनुरूपं चिपन्न वा न यदि तज्ञाभः ॥ पकं तदश्मसारं सुचिरघृतस्थित्यभाविरूचत्वे । गोदोहनादिभागढे लौहभागडाभावे सति स्थाप्यम् ॥३८॥

लाभे सित सीगन्ध्यार्थं कान्तकामकीयदोपहरणार्थञ्च कर्पूरप्रचेपमाह यदी-त्यादि—विगलित इति अपगते । अनुरूप इत्यनेन यावतानुत्कटगन्धस्वाद्पलम्भो भवति तावन्मानमित्यर्थं । न वा न यदि तल्लाम इति—यदि कर्पूरलामो न स्यात् तदा न वा चिपेदित्यन्वय । पक्षलीह दिनान्तरे वारत्रयमिति श्रुच्य पेप्टज्यम्। चक्ष हि योगरत्नाकरे—' विशाम्य रजनीमेका पेप्टज्य शीतलीकृत. । त्रिधा शिलातेल श्रुच्णे शिलापुत्रेण तादृशा "इति । अथ सिद्धस्य लौहस्य स्थापनार्थं पात्रमाह पक्तमित्यादि—सुचिरकाल धृतस्थित्या अभावि रुचत्व यस्य तादृशे, वहुदिन व्याप्य धृतभावित यद् पात्रम्। तस्मित्रित्यर्थं । गोदोहनादिभाग्छ दिध-दुग्धादिमावित लौहमाग्रहाभाव इति कान्तादिलौहपात्राभावे, तदुक्त—"कान्तादिलौहमाग्रेड तु तद्वद् तात्रमये शुभे । चिराज्यमाविते मार्दे लौहतात्राद्यसम्मवे "इति ॥ ३८॥

यदि तु परिप्तुतिहेतोर्घृतमी चेताधिकं ततो उन्यस्मिन् । भाग्डे निघाय रचे द्वाच्युपयोगो ह्यनेन महान् ॥ श्रयसि विक्क्षिभूते स्नेहिस्रिफलाघृतेन सम्पाद्यः । ' एतत् ततो गुणे त्तर्मित्यमुना स्नेहनीयं तत् । श्रत्यन्तकफश्रक्तेभे चण्मयसो अमुनैव शंसिन्त ॥ केवलमपीदमशितं जनयत्ययसो गुणान् कियतः ॥ ३६॥

इदानीमय पाकार्थ दत्त धतमधिक यद्युपलम्यते, तदा तदाग्रष्य भाविलीहरून्त-त्वानवत्त्वर्थं पात्रान्तरे स्थाप्यामित्याह यदि त्वित्यादि-पृतस्याधिक्यमेव ज्ञातन्यमित्याइ परिप्छतिहेतोरिति । परिप्छति पात्रादुच्छलित्वम् । इंदेत उप-लमेत । किमर्थ तद्यत रचणीयमित्याह मान्युपयोग इत्यादि । हि यतोऽनेन लौह-मात्रीच्छलितप्रतेन महान् उपयोगी महत् प्रयोजन मानि वर्तते, स च रूदीभूत-लौहलेहनादिरूप । उक्त हि--- '' मनेद् यदि क्रचिह्न है एलवनादिषक हिन । पृथक्षात्रेऽपि तत् स्थाप्य स्नेहनार्थं विरूचिते । अथवा मर्दन लौहे यन्मधुसर्पि-पेष्यते । तदनेनैन कर्तन्यमिति केचिद्व्यवस्थिता ।'' यदि पुनलोहपाकोच्छलित ष्टत न लम्यते, तदा त्रिफलाकाथकल्काम्यामन्यद् ष्टत पक्त्वा रुचितलीहस्य क्षेह्न कार्य्यामित्याह अयसीत्यादि । किन्तु उक्तत्रिफलाष्ट्रतात् लौहपाकोच्छालित प्रतमेवोत्-कृष्णुणभित्याह पतिदत्यादि--पतिदिति लौहपात्रीच्छलित <u>ष्ट</u>तम् । तत इति त्रिफलाष्ट्रतात् ग्रुणे चर्मवक्रयगुणिमति । श्रमुना ष्टतेन तदय केह्नीयमिति । तस्यैव प्रतस्य प्रयोजनान्तरमाह अत्यन्तेत्यादि--श्रमुनैवेति लीहपात्रीच्छलित्यतेने-त्यर्थ । लोहोन्छिलितप्रतस्योत्कृष्टगुण्लमप्याह केवलिमत्यादि-केवल लीहपात्री-च्छलितप्रतम् । जनयत्यसौ गुणान् कियत इति लौहसम्बन्धेन लौहगुणान्विधानाः दिति भाव ॥ ३६॥

श्रथवा वक्षव्यविधिसंस्कृतकृष्णाश्रकचूर्णमादाय । लौहचतुर्थार्द्वसमद्वित्रिचतु पञ्चगुणमागम् ॥ प्रिच्याय प्राग्वत् पचेदुमाभ्यां भवेद्रजो यावत् ॥ तावन्मानानुस्मृते स्यात् त्रिफलादिद्रव्यपरिमाणम् । इदमाप्यायकमिद्मतिपित्तनुदिद्मेव कान्तिवलजननम् । स्तश्राति तृद्जुधौ परमधिकाधिकमात्रया चित्तम् ॥४०॥ इति पाकविधि ।

इदानीं पित्तदृष्टि प्रति स्रवैव लीहे चतुर्थाईसमादिमानतोऽअकप्रवेशेन लीहा-अक पक्ष विधिमाद अथवेत्यादि—वक्तन्यविधिनेति कृष्णाअक्रमभक्तवपुरित्यादिना यन्थेन योऽभ्रकसरकारस्य विधिरविधिश्च वक्तव्यस्तेन विधिना सस्कृतमभ्रकचूर्ण निश्चन्द्रीकृतमादाय श्रयो लाहचूर्ण प्रक्षिप्य पचेदिति । कियनमान अश्रकचूर्ण व्राविमिति जिद्यामायामञ्जर्येव मागकममाद लीहचतुर्थेत्यादि—लीहचूर्यमपेच्य निश्चन्द्रीकृताभ्रचुर्णस्य चतुर्थो माग पादिक इत्यर्थ.। तथा पचनीयकपलादित्रयो-दशपलान्तलीहचूर्णस्य दयन्तु श्रश्रस्य पुनरेको मागः, तेन लीहस्य भागद्वयम्, अभ्रस्य तदर्द्धमेको माग इति अञ्चरयार्द्धमागत्वम् । तथा एको मागो लीइस्य अपर ण्को भागे।ऽभ्रस्येति लीहनमलमभस्येति । एवमेको भागो लीहस्य, इयन्तु श्रश्र-स्थेति द्विगुण्लम् । तथा एवमेको भागो लीहस्य, अभ्रस्य भागत्रयमिति अभ्रस्येति त्रिगुरात्वम् । लीइसैयकोभाग भागचतुष्टयन्तु अश्रस्य, तथा एको भागो र्लाइस्य, पद्ममागस्तु श्रभ्रस्येति श्रेयम्। एव क्रमेख लौहाभ्रकाभ्या मिलित्वा पक्रपलादित्रयोदशपलान्तमानन्यवस्थया पाक. कार्य्य इत्याह प्राग्वदित्यादि । ण्वज्र सति अञ्चक्तप्रवेशेन प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थ त्रिफलाकाथदुरधष्टतप्रचेष्यचूर्णपरि-माण कीट्रामिति निर्णयार्थमाह उमाभ्या मनेदित्यादि-अयमर्थ उमाभ्या लौहा-भ्रकाभ्या मिलित्वा यावद्रजो भवेत्, तावदेव लौहमान परिकल्प्य तन्मानानुसारेख त्रिफलादिमान कल्पनीयम् । पूर्व केवललौहपाके त्रिफलादीना यावन्मानमुक्षं इदानीं मिलितलीहाभ्रोऽपि ताबदेवेत्यर्थ । अतएव लीहरमाभ्रकयोगमपेच्य योग-रत्नाकरेऽप्यभिष्टित-- ' यावल्लीहरजस्तरमात् मवेदर्देन पारद । तद्देन धन प्रोक्त मतमेतत्पतशले ॥ मानेन त्रितयस्यास्य नित्य श्राद्य पलत्रयम् " इति । ननु किमर्थं पुनमत्तरीत्तरमधिकाधिकपात्रया लीहे दिप्तमञ्जकिस्यत आह स्दिमित्यादि-इदमञ्जक लीहे अधिकाधिकमात्रया समुपयक्त साद्दीधेना आप्यायकत्नादिग्रखिनाश-

ष्ट मनतीत्यर्थे । आप्यायकरण अमृतिमिक्तमिन पुरुष नलोत्कर्प करोतीत्यर्थ । स्तम्नाति चृट्चुधानिति चृटचुधौ पुरुषस्य नाधा न जनयत इत्यर्थ । किंना आहार-जातमनिकलमाखिल परियामत्येन, एषा तुमुचा च न पुरुषमरण करोतित्यर्थ ॥४०॥ इति पाकनिधि ।

अभ्रकविधिः

कृष्णाभ्रमभेकवपुर्वज्ञाख्यश्चेकपत्रकं कृत्वा ।
काष्ट्रमयोद्धलके चूर्ण मुसलेन कुर्वात ॥
भूयो दशदि च पिष्टं वास सूदमावकाशतलगलितम् ।
मग्डूकपर्णिकाया प्रसुररसे स्थापयेत् त्रिादनम् ॥
उद्गृत्य तद्रसाद्थ पिष्याद्रैमन्तिकघान्यभक्तस्य ।
श्रक्षोदात्यन्ताम्लस्वच्छजलेन प्रयत्नेन ॥
मग्डूकपर्णिकायाः पूर्वरसेनैव लोडनं कुर्यात् ॥
स्थालीपाकं पुटनञ्चाद्यरिप सृक्षराजाद्ये ॥ ४१ ॥

वक्तव्यविधिसत्कृतकृष्णाअकवूर्णमित्युक्तम् , अतरतामेवाअक्तमृद्धिमाइ कृष्णाअ-मित्यादि-अमेकनपुरिति मकत्य वपु हरितपीतादिवर्णं भवति तेन यदिधक वर्षेन भेकस्य बपुरिव धकदेरोऽपि न भवति तदेव च वजाख्य वज्रोति तस्य प्रसिद्धिः तदुक्त योगरत्नाकरे-"अप्रशस्त कठोराङ्ग गुरु कव्जलसङ्गिमन् । यन गन्दायते वही नैवाच्छ्न भवेदपि । सदाकरममुद्भूत वजोति प्रथम धनम्" इति । तदअक नखादि-मिरेकपत्र कर्त्तव्यम्, भूय पुन दृशदि शिलाया पिष्ट चूर्णाकृत्य धनतरवासा द्यानियत्वाडघो यद्गलित तदग्राद्यम् । मयङ्कपर्यो धानकुनीति स्याता, तदसा-दिति मण्डूकपणीं स्वरसात । भन्नोदिति चोदोऽत्र शोर्णमक्तमिकथकम्, भन्नो-दञ्ज तदिरहात्। पेषणानन्तर यत् कर्त्तन्य तदाह मण्डूकपणिकाया इत्यादि । पूर्वरसेनेति यंत्रव मण्डूकपर्णीरमे दिनत्रवं स्थापितमासीत् तेनैव रसेन विमृज्य मोदकाकार कुर्य्यात्, मोदयतीति मोदन इति मोदनशस्दोऽपि मोदकार्थे द्रष्टव्यः । क्षचितु मोदकमिति पाठ । स च तत्त्रदाकारपुरनकेषु न दृश्यते । मोदकाकारख्र कृत्वा दिनैक स्थापित्वा शुष्कीकुर्यादित्युपदेशो बोद्धन्य । भ्रयमभ्रकशोधन-भवीराचार्यमतानुसारेख निवद । तत्र मण्डूकपर्खारसेन युनमोंदककरण नास्ति तथापि पट्कर्मणा श्रीतसस्कृत्योपदेशादिद लिखितमिति बोध्यम्। तदनु चास्य अञ्चस्य चूर्णीकृतस्य स्थालीपाकपुटपाके कर्नन्ये तदर्थ द्रन्याण्याहः स्थालीपाकमित्यादि—शाँधमृद्वराजांधेरिति लीहपुटनविधी भूतराजेकशराज्ञनतावरीक दमाणाधिरसैरित्यर्थ । आंवरित्यत्र अन्येरपि पाठः । किन्तु पूर्वपाठ एव टीकाकारसम्मत ॥ ४१ ॥

> ताडादिपत्रमध्ये छत्वा पिएडं निधाय भस्ताग्नौ । तावद्देन यावनीलोऽग्निर्देश्यते सुचिरम् ॥ निर्वापयेच द्ग्धेन दुग्धं प्रचाल्य वारिणा तद्तु । पिष्ट्वा घृष्ट्वा वस्त्र चूर्णं निधान्द्रकं कुर्यात् ॥ ४२ ॥

रति अभ्रक्तविधि ।

ण्य पुटादिशोधिनस्याभम्य वही ध्मापनं वार्यं, ततस्तिद्विधिमाह ताटादिपेनलाि—ताट खनामम्यात , आदिशस्याद केयुकादिपत्र बोध्यम् । किन्तिदानी ताटादिपत्रिपिहितम्याभ्रम्य ध्मापन न्यवहरिन्त । पिएटीकरण्य भृहराजादिद्वानीटनादिभिगन्तस्यम् । दुग्थ प्रदाल्येति दुग्भिनविधितोत्थापिताभ्रकसलम् यद्
दुग्भम् । यपपीदानीं ताटादिपत्रीपिहतस्य ध्मापनमभ्रस्य न न्यवहरिन्तं, किन्तु
पुटीपास्य निश्चन्द्रकत्व क्रियते, तथाप्यसाद् बहुषा कृतत्वाद भा सम्यक् निश्चन्द्रपत्त्वमनेनास्य भवत्येव । ध्मापित यत्ते।ऽभ्रम्य निश्चन्द्रीकरणमेव यथीक्षगुणकर्षे
प्रयोजकिमिति, तथा यन केनािष भृषेजन मवतु । अपरापरेऽभ्रकमारणप्रकारा नानानाव्योक्ति सन्ति, ते च योगर्तनाकरसमुच्यादिधगन्तन्या । तथ्नैक प्रसिद्धमतं
यथा—'आशुभकोदकैः पिष्टमभ्रक तथ सिस्तिम् । कन्दमाणिस्यमहारखण्डकगैर्मिर्थ । यद्धदारकिपण्डेन कालमारिपजेन च । यद्धिश्वन्द्रकत्व स्थाद् ततो
गोचरसन च । कालमारिपजेनािप स्थालीपाक प्रदापयेत् । यावद् मस्त्वमायािन
शुद्धिय विदायस '' यत्र यशीर श्रेतपुननंया, लच्चा स्वनामस्याताः, मोचा रम्मा,
ध्यक्तमन्यत् । किन्त्वय वृद्धिये प्राय न कियते ॥ ४२॥

इत्यभक्तविधि,।

लौहभच्चणाविधिः

नानाविधरपशान्से पुष्टधे कान्त्ये शिवं समभ्यर्ज्य । सुविश्वद्धेऽहनि पुण्ये तदमृतमादाय लौहाख्यम् ॥ दशकृष्णलपरिमाणं शक्तिवयोभेदमाकलय्य पुनः। इयद्धिकं तद्धिकतरमियदेव न मात्रमोदकवत्॥४३॥

इदानीं निष्यन्नलौहस्य सख्याविधिमाह नानेत्यादि—नानाविधव्याधय
पुरायाज्वरातीसारप्रह्यीरकापित्राजयसमप्रभृतय । अमृतामिति अमृतामितामृतम् ।
तश्च कियन्मानमुपयोज्य तत्राह दशेत्यादि—कृष्याला रिक , तेन व्यरकमानमापकप्रित्यर्थ । अयव्न दशरिकपिरमायारम्भ उत्तमपुरुषवलवयोऽभिहित , तेन मध्यमाधमपुरुषशिकवयोऽपेच्या इद दशरिकपिरमाया यथाक्रम मध्यमाधमयोरिधकमिध
कतरस्र भवतीति । वलाधपेच्या चक्तपरिमायादल्पालपतरपिरमायानाप्यारम्भ ।
वर्द्धने कर्तव्ये न पुनर्दशरिकपिरमाया युक्तमिति कृत्वा तावत्परिमायामेवकर्तव्यमिति
मात्मोदकविश्ववन्यो न कार्य्य इत्यर्थ । तेन "आरम्मो वर्द्धनिद्धापि पञ्चिद्धन्येकगुअया।" तथापि पञ्चसप्तनवरिक्ता प्रथमितने, तथा— "रिक्तमेकामुपकम्य
यावत् स्युन्व रिक्तका " इलादि । यत् तन्तान्तरे उक्त, सर्वमनेन तत्
सगृहीतम् ॥ ४३ ॥

सममस्णामलपात्रे लौहे लौहेन मर्दयेद् गाढम्।
दत्त्वा मध्वनुक्षपं तदनु घृतं योजयेद्धिकम्।

वन्धं गृद्धाति यथा मध्वपृथक्त्वेन पद्धमविशिषत् ॥४४॥
लोहमर्दनार्थं पालमाह समेत्यादि—उत्ताननामकरतलस्थापनार्थं तत् पाल
माजनाकार करत्यीयम् । लोहनेति लोहदर्यहेन । मधु तदुचित दत्त्वा, अधिकामिति
मध्वेपच्या किञ्चिद्रधिक शत मिश्रणीयम् । मदैनविष्यर्थं लच्चणमाइ वन्धमित्यादि—
अविशिषदिति स्ततन्त्र मधु अपृथक्त्वेन एकत्वेनाविशिषत् विशेषमकुर्वत् अतपव
पद्ममिति ॥ ४४॥

इदिमह रष्टोपकरणमेतद् रष्टन्तु मन्त्रेण । खाहान्तेन विमर्दो भवति फडन्तेन लोहबलरज्ञा । सनमस्कारेण विकिभन्नणमयसो ह्रमन्तेन ॥

ॐ श्रमृतोद्भवाय स्वाहा।" "ॐ श्रमृते हूं फट्" "ॐ नमश्वराडवज्रपाराये। महायज्ञसेनाधिपतये सुरगुरुविद्यामहा-वत्ताय स्वाहा" "ॐ श्रमृते हूं"॥ ४४॥

दृष्टादृष्टाभ्या हि कार्य्यसिद्धिरिति दृष्टमुक्ता मन्त्रजमस्यादृष्टार्थमाह इदिम-

त्यादि—तत्र प्रथम लौहरचणमन्त्रमाह ॐ त्रमृतोद्भवावेत्यादि—स्रय खाहान्तो मर्दनमन्त्रः । लौहरचणमन्त्रमाह ॐ अमृते हू फट् इति । विसदानमन्त्रमाह ॐ नम इत्यादि—भचणमन्त्रमाह ॐ अमृते हूमिति ॥ ४५ ॥

जिण्वा तदमृतसारं नीरं वा चीरमेवानुपिवेत् । कान्तकामकममलं सञ्चव्यं रसं पिवेद्दिने न तु तत् । स्राचम्य च ताम्बूलं लाभे घनसारसद्दितमुपयोज्यम्॥४६॥

लीढभेषजपाकार्थमनुपानमाह जग्ध्वेत्यादि-नीरधामल आकाशगुणत्रयभृयि-हम्भागामय, कीर च गन्य सर्वत्र, उक्तञ्च-" सर्वत्र गन्यमेवेति मतमाह पत-अलि: " इति । अनुपानञ्च लौटापेचया चतुःषष्टिगुणम् । तद्कक्त योगरत्नाकरे— " अनुपान चतुःषष्टिगुण् प्राहुः सदा गुधाः "। तथा अन्यत्रोक्तम्-अनुपान प्रयो-क्रन्य लीहात् पञ्चगुण् पय " इति । अनुपान कृत्या लौहदोषनिरासाय निस्त्वच कान्तक्तामकस्य स्वरसमाच पेयमित्याह कान्तकामकमित्यादि—आचम्येति—आच-मनञ्च श्वरशीतजलेन हसोदकेन वा । यद्क्त— " कृत्वानुपानमाचम्य श्वरशीत-जलेन वा । यदा हसोदकेनेव " इत्यादि ॥ ४६ ॥

नात्युपविष्टो नाष्यतिभाषी नातिस्थितस्तिष्ठेत्। श्रत्यन्तवातशीतातपयानस्नानवेगरोघादीन् ॥ जह्याच दिवानिद्रामहितश्चाकालभुक्षञ्च । वातकृतः पित्तकृतः सर्वान् कट्वम्लीतक्षकषायान् । तत्त्वणविनाशहेत्न् मैथुनकोपश्चमान् दूरे ॥ ४७ ॥

अनुपानादिक कृत्वा यथा स्थातव्य तदाह नात्युपिवष्ट इत्यादि—नातिस्थित इति तुङ्गोभूत दण्डायमान सन् अति न तिष्ठेत् चिर न तिष्ठेत्त्यर्थ । अपर परिवर्जनीयमाह अत्यन्तेत्यादि—अत्यन्तेति वातादिभि सम्बध्यते, यानमश्वादि-यानम्, आदिशब्दादिर्धाचिन्ताविषयणाङ्गन्यासादीना अहण्यम् । अकालभुक्त अजीर्णादौ भोजनम् । वर्जनीयरसानाह वातकृत इत्यादि—वातकृत इत्यादिक हेतुगर्भमेव विशेषणं, किंवा वातकृत. पिचकृत इत्यनेन कट्वम्लतिक्रकषाया पिप्पत्यामलकगुङ्कचोहरीतक्यादयो वातिपेत्ते न कुर्वन्ति, तेषामुपयोगो न विरुध्यत इति दर्शयति । विशेषण वर्जनीयविधानमाह तत्व्वणत्यादि—अत्रापि जद्यादिति पूर्वोक्त सम्बध्यते ॥ ४७ ॥

श्राशितं तद्यः पश्चात् पततु न वा पाटवं छुड प्रथताम् । श्राचिभवतु न वान्त्रे क्ताति भोक्तव्यमञ्याजम् ॥ ४८॥ प्रातरपञ्चकः लौहभ्रेचत कस्यामवस्थाया मोकव्यमित्याह श्रशितिमत्यादि श्रशित तदय पश्चादिति गुदेन पततु प्रवर्ततां, न वा, तथा श्राप्तिरिति नुभुद्धाः पीडा मवतु वा न वा, तथापि पाटवम् श्रालस्यादिराहित्य छुड मवतु तथा लौह-सम्मावितदेहे सम्यग् वायो सञ्चर्णेनान्त्र क्नान्त्रच छुड भवतु तदेव श्रव्याज्ञ विश्व भोक्तव्यन् । छुड इत्यङ्गीकारविश्वामे । पतेन पाटवमन्त्रक्नानमेतदुमयमेव मोजन प्रति प्रयोजकामित्यर्थ ॥ ४८॥

प्रथमं पीत्वा दुग्धं शाल्यकं विशद्सिद्धमिक्किम्।

घृतसंप्लुतमश्नीयान्मांसैर्वेह्द्वमै प्रायः॥

उत्तममूपरभूचरिविष्करमांसं तथाजमैणादिकम्।

श्रन्यद्पि जलवराणां पृथुरोमापेत्तया ज्यायः॥

मासालाभे मत्स्या श्रदोपला स्थूलसद्गुणा श्राह्याः।

मद्गुररोहितशकुला दग्धास्तु पललान्मनाड्न्यूनाः॥

श्रंगाटकफलकशेष कदलीफलतालनारिकेलादि।

श्रन्यद्पि यच वृष्यं मधुरं पनसादिकं ज्यायः॥

केबुकताडकरीरान् वार्त्ताकुपटोलफलद्लशमठान्।

मुद्रमस्रेजुरसान् शंसन्ति निरामिषेष्वेतान्॥ ४६॥

इदानीं मोजन येन विधिना कर्णस्य तदाह प्रथमित्यादि—विशार्थ शुअम्, श्राक्षित्रमिति नान्योन्यमलग्नम् । दुर्धमिति जीवद्दल्मशुक्षादाः कृष्णाया वा मन्द्रवत्नाया वा शायम् । वैहङ्गमिति तित्तिरादिविहङ्गमसम्मृते. । प्राय'राव्दादाजैणादिक वोद्धस्यम् । एनदेवाह उत्तममित्यादि—कपरभूचरजाङ्गः लदेराचरा. लावतित्तिरित्रशकादयः, विकिराः कुनकुदादयः, एवा माससुत्तमः मिति वालस्यविरव्याधितादिवर्जितानाम् । श्रादिशब्दात् कृष्णसारगोधादयः । श्रन्यदपीति विष्करादिव्यतिरिक्तमित्यर्थः । जलचरा हसादयः । पृश्चरोमोपेचया च्याय इति मत्त्यापेचया श्रेष्ठमित्यर्थे । श्रन्ये तु पृश्चरोमा शकुल्यमित्यादुः । मामाः प्राप्ती मत्त्यविरोषोपयोगमाह् मासालाम इत्यादि । के ते सद्गुणा इत्याहं मद्गुरे-त्यादि—एतेन मद्गुरादयो दन्धाः सन्तः पललादिति मांसात् मनाह्न्यूना किञ्जि- द्धीना इत्यर्थः । इदानांमत्रोचित फलकन्दमाह शृक्षाटकेत्यादि—श्रादिशन्दादान्न-खर्जूरादिकम् । निरामिषन्यज्ञनार्थमाह केबुकेत्यादि—-ताडकरौरास्ताडाकुरा । फलदलेति पटोलस्य फलदलम् ॥ ४१ ॥

शाकं प्रहेयमि खिलं स्तोकं रुचये तु वास्तुकं द्यात्। विहितनिषिद्धादन्यन्मध्यमकोटि स्थितं विद्यात् ॥४०॥ शाक पुन सकलमेव वर्जनीयमिलाह शाकिमलादि—अहेयमिलवश्यला-ज्यम्, रुच्यर्थं पुनर्वास्तूकमेवाल्पप्रमाण द्यात्। विहितनिषिद्धव्यतिरिक्तं यद्वाच्य तत् साधार्यं हेयमिलाह विहितेलादि ॥ ४०॥

तसदुग्धानुपानं प्राय सारयति बद्धकोष्ठस्य । श्रनुपीतमम्बु यद्वा कोमलशस्यनारिकेलस्य ॥ यस्य न तथा सरित सयवन्नारं जलं पिवेत् कोष्णम् । कोष्णं त्रिफलाकाथं न्नार सनाथं ततोऽप्यधिकम् ॥४१॥

इदानीं बद्धकोष्ठ प्रति अनुपानिवशेषमाह तसेत्य।दि—तसचीरानुपानेन व्यव-हरन्ति वृद्धाः। नारिकेलोदकञ्च प्रचरति। एवमपि क्रेते यदा न प्रवृत्तिस्तदा तस्य किं कर्तन्यमित्याह यस्येत्यादि। उप्णजले कोष्ठानुरूप यवचार प्रचिप्य पिवोदित्यर्थः। प्रयोगान्तरमाह त्रिफलेत्यादि—चार यवचार, सनायमिति सहितमित्यर्थ। यवचार प्रचेपश्च ''प्रचेपः पादिक काथ्याद्'' हति परिभाषयैव। तत इत्युक्तयोगात्॥ १॥

त्रीणि दिनानि समं स्यादि चतुर्थे तु वर्द्धयेत् क्रमशः। यावचाष्टममापं न वर्द्धयेत् पुनिरतोऽप्यधिकम् ॥ श्रादौ रिक्कद्वितयं द्वितीयवृद्धौ तु रिक्ककात्रितयम्। रिक्कपञ्चकं पञ्चकमत ऊद्ध्वे वर्द्धयेन्नियतम्॥ ४२॥

लौइप्रमाखनुद्धिहिं क्रमेखेन कार्या अतस्तमेन नृद्धिक्रम दर्शयित नीखि दिनानीत्यादि—येन परिमाखेन लौइमज्ञखारम्म कृन , तेनैन परिमाखेन दिनश्रय कार्यम्, चतुर्थदिनादारम्य पुनरिप दिनश्रय यानत् समनृद्धौ नर्द्धयेत् श्रीखि दिनानि सम स्यादित्युक्ते , ततोऽपि सप्तमादिने या रिक्षनृद्धि कृता तयेन नृद्ध्या पुनरिप दिनश्रय यानत् नर्द्धयेत् श्रीखि दिनानि सम स्यादित्युक्तेरित्यादि नोध्यम् । एन क्रमेखाष्टमापकपर्यन्त नृद्धि कार्या, इतोऽधिकनृद्धिनं कार्योत्याह यानदष्टमसाप-मित्यादि—क्रमरो नर्द्धयेदित्युक्तमतस्तमेन क्रममाह आदानित्यादि—प्रादौ लौइ-

प्रयोगारम्मे रिकह्य कृत्वा ज्यह्मुपयोज्यम्, तत. प्रथमवृद्धौ चतुर्थदिनमारम्य रिकिह्य कृत्वा ज्यह् वृद्धि कार्य्या, तेन द्वितीयच्यहे प्रतिदिन रिकिकाचतुष्टय मवति, ततो द्वितीयवृद्धौ रिकित्रय कृत्वा ज्यह् वृद्धि , तेन तृतीयच्यहे प्रतिदिन-सप्तरितका मवन्ति, श्रत कर्द्ध्व चतुर्थपञ्चमादित्र्यहेषु श्रीणि दिनानि सम स्यादित्युक्तरित्या क्रिमेण रिक्तपञ्चम कृत्वा अष्टमाषक यावद् वर्द्धयेत् । तेन चतुर्थज्यहे द्वादशरिक्त., पश्चमज्यहे सप्तदशरिक्त , षष्ठे द्वाविशतिरित्यादि श्रेयम्, तेन पञ्चदिनादिषक सप्तसप्ताहे दशरिकिकमाषेण दिरिक्तिकाषिका अष्टौ मापकौ भवन्ति, श्रत्र च तत्र चतूरिकतकावृद्धि त्यक्त्वा यथोक्तवृद्धौ वृद्धास्तथा कुर्वन्तीलेव सिद्धान्त ॥ ५२॥

वात्सारिककरपपद्मे दिनानि यावन्ति वर्द्धितं प्रथमम्। तावन्ति वर्षशेषे प्रतिलोमं हासयेत् तदयः॥ तेष्वप्रमाषकेषु प्रातमीषकत्रयमश्रीयात्। सायञ्च तावदह्यो मध्ये माषद्वयं शेषम्॥ ४३॥

इति भन्नण्विधिः।

---:0:---

इदानीं सवत्सर यावद् यदि कर्त्तं न्याभिद रसायन स्यात् तदा वर्षां वशेषदिनानि यावन्ति मवन्ति तावन्त्येव प्रतिलोम रक्तकादिक्रमेण हास कार्य्य इत्याह म्रात्मरिकेत्यादि—इदानीं पद्मदिनाधिकसप्तसप्ताहैरप्टमाषकप्रमाणे सञ्जाते सितं वत्सराम्यन्तर एव केन प्रकारेण तल्लीहमुपयोज्यमित्याह तेष्वित्यादि—अप्टमाषकेषु मध्य माषकत्रय प्रात । तावदिति माषकत्रय सायाहे, अहो मध्ये भोजनसमये शेष माषकद्वयम् । अन्यत्राप्युक्त—''प्रातमाषत्रय कार्य्य मध्याहे माषकद्वयम् । माषत्रय दिवारोषे 'माषकाप्टकमच्चाम्' इति । इदानीन्तु रक्तिकाद्वयमारभ्य योगिन प्रति रिक्तकाद्वयवृद्ध्येव त्रिसप्ताहपञ्चमप्ताहादिभि किञ्चदिधकमाषकद्वय यावत्त वृद्धः । तत्ते दिसप्ताहादिभि रक्तिकाद्वयेनेव हास इति प्रायो व्यवहर्गन्ते वृद्धाः । उत्तर-क्रिया चात्र दिगुणा कार्याः तदुक्त पातञ्जले—''इति मुख्यक्रियाया। स्याद् दिगुणा चोत्तरिक्रया ।'' उत्तरिक्रयात्र नात्युपविष्टो नात्मतिभाषी नातिस्थितस्तिहे-दित्यादिना उक्तैव ॥ ५३॥

इति भक्त्याविधि ।

पवं तदमृतमञ्जन् कान्ति लभते चिरिक्षरं देहम्।
सप्ताहत्रयमात्रात् सर्वरुजो हन्ति किं वहुना ॥
श्रार्थ्याभिरिह नवत्या सप्तविधीनां यथावदाख्यातम्।
श्रमतिविपर्थ्ययंश्यस्यमनुष्ठानमुक्षीतम्।
मुनिरचितशास्त्रपारं गत्वा सारं ततः समुद्भृत्य।
निववन्ध बान्धवानामुपरुतये कोऽपि षद्कमी ॥४४॥
श्रमृतसारं लौहं समाप्तम्।

इदानीमस्य लौह्स्य फलमाह एविसिखादि—उपमहरित श्राय्यांभिरित्वा-दिना। सतिविषयश्च—माध्यसाधनपरिमाणिविषि, स्थालीपाकविषि, पुटनिविषि, प्रधाननिष्पत्तिः, पाकविषिरञ्जविषिभं ज्ञणविषिश्चेति । एषामनुष्ठान नवत्या श्राय्यांभि. कोऽपीष्टकमा अमतिविष्य्यं यसरायश्च्य यथा स्यात् तथा निववन्ध इत्यर्थः। कोऽपीत्यानिदिष्टनामधेय पुरुष उत्कृष्टरूप.। षट्कमा श्रोत्रिय , उत्तत हि—"थाजन यज्ञन दान महाचैव परिग्रहः। श्रध्यापनमध्ययन श्रोत्रिय षड्भिरेव चं, इति। श्रमति. सर्वथा श्रानाञ्चानराहित्य तस्मिन्नतद्युद्धिर्भम., स च द्विथा—पक्षकोिटको-ऽनेककोिटिकश्च, तत्राची विषय्यंय, द्वितायश्च सराय इति। श्रनुष्ठीयत इत्यनुष्ठान यन्धसन्दर्भ एव। यथावदाख्यातिमत्यत्र पूर्वाचार्य्येरिति शेषः। उन्नीतिमिति ग्ररु-परम्परया उपदेशपूर्वक कथितमित्यर्थ । मुनिरचितस्यत्र मुनिनांगार्जुन । बान्धवा-नामिति मनुष्याणाम्। एषां चनुद्याश्चयत्वेनावश्योपकत्त्वेवता च वन्धुत्वम्, एते-नास्य निवन्धस्य श्रमतिविषय्यंयसरायनिरासः सन्नेपश्चिति ग्रणद्वसुक्तम् ॥ ५४॥

श्रमृतसारलीह समाप्तम्।

दासरसायनलौहम्

١

यत्र तत्रोद्भवं लौहं निःशेषं मारितं यदि ।
तिफलाव्योषसंयुक्तं भत्तयेद् बलिनाशनम् ॥
सामान्याद् द्विगुणञ्चौद्भं कलिक्कोऽष्टगुणस्ततः ।
तस्माच्छतगुणं भद्रं भद्राद्धजं सहस्रधा ॥
वज्रात् षष्टिगुणः पाणिडर्निरविदेशभिगुणः ।
ततः कोटिसहस्रं वा श्रयस्कान्तं महागुणम् ॥ ४४ ॥
इदानीं नागार्जुनोक्त दानरसायनलौहमाह यत्र तत्रेसादि—यत्र तत्र भव-

मिति श्रोड्कलिङ्गादि यह किश्चिदेशमव वजपायख्यादिकमेव नि शेषमिति सर्वथेव मृतम् । निःशेपमित्यत्र निरुत्यमिति पाठ टङ्ग्यादियोगेनापि वही ध्मापनाद् यद्वपतिष्ठते पुनलौंहमाव नापवत इत्यर्थ । त्रिफलेत्यादि—व्योध त्रिकड । त्रिफलात्रिकड वृद्धां अमिलित्वा लौहसम वोध्यम् । स्युक्त सम्यक् युक्तम् , तेन मधुष्ट-ताभ्या लीहपात्रे लौहदयडेन विमर्थ मच्चयीयम् । रिक्तकादिकमेयिति वदन्ति वृद्धा । श्रन्ये त्वादी मापकमेकसुपयोज्यमित्याद्ध । वृद्धी मध्ये वा श्रीवलमपेच्य यथाशाकि कुर्वन् सार्द्धसवत्सराद्य वलीं नाशयेदिति दासरमायनविकायासुकम् । लौहाना ग्राचमाद सामान्यादिलादि—दण्डभिकपर्यन्तदेशदिक्योज्यदिक्मम्मव लौह सामान्यम् , हिग्रयमिति सामान्यलौहाद हिग्रयगुणकारकम् । श्रीष्ट्रमिति श्रोड्देशो- ध्रवम् , मद्रमिति भद्रदेशोङ्गवम् । एषाञ्च मच्चलच्चा द्रोकायामनुसन्थेयम् , इह तु विस्तारमयात्र लिखितम् ॥ ११ ॥

ताम्रयोगः

रसतस्ताम्नं द्विगुणं ताम्रात् रूप्णाभ्यकं द्विगुणम्।
पृथगेवैषां ग्रुद्धिस्ताम्नग्राद्धस्तता द्विविधा ॥
पत्रीकृतस्य गन्धकयोगाद्वा मारणं तथा लवणै.।
श्रक्के ध्मापितताम्ने निर्गुण्डीकल्ककाश्चिकामम्न ॥
यत् पतित गैरिकामं तिर्पष्टमर्द्धगन्धकं तद्वु ।
पुटपाकेन विशुद्धं शुद्धं स्थादभ्रकन्तु पुनः ॥
दिलमोश्चिमूलपिण्डे क्षिपं तद्यु मार्दसम्पुटे लिप्ते ।
तीच्णं दग्धं पिष्टमम्लाम्मसा साधु चिन्द्रकाविरिहतम् ॥
रेचितताम्रेण रसः सल्वशिलायां घृष्टः पिण्डिका कार्था ।
उत्स्वेद्य गृहसिल्लेन निर्गुण्डीकल्केऽसक्चनुद्धौ ।
पतत् सिद्धं त्रितयं चूर्णितताम्नाद्धिकैः पृथम् गुक्रम् ॥
पिप्पलीविडङ्गमिरचैः स्वच्णं द्वित्रमापिकं मन्यम् ।
ग्रुलाम्लिपस्थ्ययुग्रद्दणीयदमादिकुक्तिरोगेषु ।
रसायनं महदेतत् परिहारो नियमतो नात्र ॥ ४६ ॥
सम्प्रित ताम्रगोगमाह रमत हलादि—सोभिताद परदात् ताम्र वद्यमाण-

फ्रभेण मारितचूर्णावस्य दिगुण प्राह्मम्, कृष्णाञ्चन्न वस्यमाणरीत्या शोधित चूर्णा-षम्य ताझाद् दिगुरा शाह्यम् । क्रुष्णेति अअक्रिक्शिपणात् भेकवपुषे। निरास. । एपा रमादीना पृथगेन शुद्धिः। तत इति तेषु मध्ये ताम्रशुद्धि द्विधा श्राष्ट् । कि तस्प्रिकीर-शुद्धिमाए तथा लवरीरित्यादि-लवरी: सैन्धवादिमि पञ्चिमरेव । आवत इति लिप्ते। निर्शुयदी निशिन्दा, तदीयमूलपत्रकल्कयुपतकाजिकमग्र इत्यर्थः। अत. द्रुत-रूप यत् ताझ पतित तद्गैरिकवल्लोहितमित्यर्थ. । ताझादर्खं गन्थक दस्वा तावदेकी-फुत्य पेष्टस्य, ततः स्थाल्यामारोप्य तुपमृत्तिकया लिप्त्वा लीइवद् पुटो देयः । अअन कराद्भिमाह अभकित्वस्यादि-अन्लाम्भसा काश्विकेन पिष्ट सत् हिलमोचिका-विच्डे कृत्वा एक सूरपाने निधाय अपरेख विधाय तीच्यामिति बहुल यथा स्यात तथा दग्ध पुटित सत् चिन्द्रकारिहत भवति, तदनु पुटादाक्षुष्य शिलाया पिष्ट्रेवा चूर्णीकृत्य तद् प्राथमित्यर्थः । अथ जारितताम्रचूर्णमिलितस्य रसस्य शुद्धिप्रकारमाष्ट रे नितेत्यादि —रे नितताम्रेया सह रस खल्वशिलाया मेलियत्वा धृष्ट्वा पिण्डिका कार्या । तदनु निर्गुएडीकलकमिश्रित गृएस।लेले काञ्जिके सा णिरिडका असक्वदि-स्येनेकवारमुत्स्वेय, शुद्धाविति शुद्रध्यर्थम् । उत्स्वेदनप्रकारश्चाय स्तानियामक-भाग्यादिगणान्यतमद्रथे रसपिण्डित मिलितरसताम्रचूर्णं दोलापाकेन निर्गुण्डीकल्केन मिश्चितकाक्षिकेनाथा ज्वालया ताप्यमानेन उत्स्वेदनीयमसकादित्यर्थः । स्तिनियाम-कक्ष भाग्यादिगसो योगरत्नाकरे यथा-- " मार्गी शरपुष्ठा कुठारिक्षना मधी स्विकप्रिका पुनर्नवा अपराजिता अवाक्पुष्पी भेकाहा रुदन्ती मयूराशिखा चिति । भाग्यादिरेन निख्यातो गया. सतानियामक ।" इति । श्रीअतापेनापि रसः काचिदपि न यातीत्यर्थ. । स्तानियामकीपथमध्यग रस सकाश्चिकदोलायन्त्रे पचेत् । तदनु त्रितयमिद रसाझताझचूर्यं पिप्पल्यादिशयण्च प्रत्येक ताझचूर्यादर्खमान गृहीत्वा प्रयोजनीय, तत एकी कृत्य अधिवलाधेपवया दित्रिमापिक।दिकसुपयोज्यम्। षादिशब्देन दशप्रशतयः । कृषिरोगेष्वित अग्रिमान्यादिष्वपीत्यर्थः ॥ ५६ ॥

ताम्रयोगः

तनुपत्रीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम्।
दत्त्वा चोद्ध्वंमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम्॥
कृत्वा स्वरूपशरावेण स्थालिमध्ये पिधाय च।
शकरामक्रलेपेन लिप्त्वा सन्धि तदूद्ध्वंतः॥

वालुकापूरितस्थाल्यां पिहितायां पुनस्तथा । सुलिप्तायाञ्च यामैकमधोज्वालां प्रदापयेत्॥ तत श्राक्षप्रताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना । श्रथ कर्ष गन्धकस्य विहस्थलौहपात्रगम्॥ शिलापुत्रेण सम्मर्धे दृतं घृष्टं पुनः पुनः । कृत्वा देयं मृतं ताम्नं कर्षमाणं ततः पुनः ॥ रसोऽम्लमाथितः शुद्धस्तावन्मात्रः प्रदीयते। ततस्थैवं संमर्ध पुनराज्यं प्रदापयेत्॥ श्रप्रीवन्दुकमाश्रञ्ज मद्येनमूर्छितं तथा। सर्वे स्यात् तत आकृष्य शिलापुत्रादिसङ्गतम्॥ संहत्यालम्बुषरसप्रस्तेन विलोडितम् । पुनस्तथैव विद्यस्थलौहपात्रे विमर्दयेत्॥ यावद् द्रवत्त्यं पश्चादाकृष्य सम्प्रपेषितम्। श्रलम्बुषरसेनैव गुडकं सम्प्रकल्पयेत्॥ तित्परांडं वस्त्रविस्तीर्गे पिरांडे त्रिकटुजे पुनः। वसनान्तरितं दत्त्वा पोट्टलीं कारयेद् बुधः॥ ततस्तां पोद्वलीमाज्यमञ्जां कृत्वा विधारिताम् । स्त्रेण दराइसंलग्नां पाचयेत् कुशलो भिपक्॥ यदा निष्फेनता चाज्ये पुटिका च दढा भवेत्। तदा पकं तमारुष्य पञ्चगुजातुलाघृतम्॥ त्रिकद्वत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत्। तकं स्यादनुपानन्तु अम्लिपन्तोच्छुये पुनरे॥ त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिवेद्नु । सप्तमे दिवसे रक्षिवृद्धिस्ताम्रात्तु मापकम्॥ यावत् प्रयोगश्च तथैवापकर्षः पुनर्भवेत । योगोऽयं ग्रह्णीयस्मिपचग्रलाम्लिपचहा ॥

रसायनञ्चेति एं गुद्कीलादिनाशनम्। न चात्र पार्रहारोऽस्ति विहाराहारकर्माण्॥ ४७॥ इति ताम्रयोगः।

ताम्रयोगान्तरमाह तनुपर्शाकृतमित्यादि—नेपालमिति नेपालदेशो प्रव ताम्रम् । तनुपत्रीकृतिमिति पत्तल यथा स्यात् तथा पत्रीकृतम्, पत्तलता कण्टकविध्यावस्थीपादा-नेन लभ्यत इति । तानि च तन्ति ताम्रपन्न। शि श्रनेकानि कृत्वा जम्बीराम्लरसन मम्मधं प्रचाल्य संशोध्य तदनु ताम्रमममेव शोधितगन्थक सन्च्यर्थ, तदनन्तर स्थालिकाया कियदपि गन्धकचूर्णं दस्ता तदुपरि कियदपि ताम्रपत्र निवेश्य पुनस्तदुर्पार गन्धकचूर्ण देयमित्यवक्रमेख सर्वाखि तात्रपत्राखि गन्धकचूर्ण महितानि उपर्यधीभावन निवेश्य, तनोऽल्परारावेण स्थाल्यन्तर्निवेशयोगेन तत् ताग्रपत्र पिथाय, तच्छरावप्रान्तज्ञ शर्करासिएतमकलेपेन लिप्त्वा तस्य शरावस्यो-परिभागे बाहुकापूर्ण तत् स्थालीपात्र कृत्वा शरावेण तस्याः स्थाल्या मुख पिधाय तंत्रेय मक्तलेपेन लिप्ता प्रष्टरेमवमाविच्छेदेनाधी ज्वाला प्रदापयेद । इति ताग्रमारणम् । ततस्तत् मृतताम्र स्थाल्याः समाकृष्य चूर्णयित्वा शोधितगन्धका-दिभि सह योजनीयमित्याह तत इत्यादि-कथ योजना कर्तब्येत्याह अधेत्यादि-श्रथ तात्रामारणानन्तर शोधितगन्धकस्यापरचूर्णकर्पमेक ज्वलदद्वारस्थली इपात्रे कृत्वा शिलापुत्रेया सम्मर्ध पौन पुन्येन एष्ट्वा द्रवीभूते तस्मिन् मृतताश्रचूर्यं कर्ध-मान दत्त्वा तथैव शिलापुत्रेख वर्षणीयम् । ततः पुनरिति ततोऽनन्तर अक्षितापद्वृत एव श्रस्मिन् रस' पारदोऽपि तावन्मान कर्पमान एव देय । पुनस्तेनैव मर्दनीय , किन्तु थिष्टा रस अम्लमथित सन् शुद्ध , चामिराजम्बीराचम्लरसमथनाच शुद्ध । तदनु ष्रप्रविन्दुपरिमित एत दत्त्वा पुनर्मर्दयेत शिलापुत्रेखैव । तथा तेन प्रकारेख सर्वं गन्थकतात्रादिक समू चिंछतमेकी मृत स्थात्। ततस्तस्माही हपात्रात् नि शेपमाकृष्य तथा शिलापुत्रादिसङ्गत शिलापुत्रादियथित सुदृढमपि भूत सहत्य पलद्वयेनालम्ब-परसेन विलोक्य रसचयपर्यन्त पुनर्विदिस्मलौद्दपाले मर्दयेत् , तत श्राकृष्य श्रलम्बु-परसेनेव शिलाया पिष्ट्वा गुष्टिका कल्पयेत् । तदनन्तर किं विधेयमित्याह तत् पिगड-मित्यादि-तत कतिपयांड्गुलवकाखण्डे पिण्टानुरूप त्रिकडक दत्त्वा विस्तार्थ्यं तदु-परि श्रपराविततातीनिर्मलवस्त्रसम्बद्धे त ताझौपध्युटक निधाय तती दृढा पोट्टलिका बद्ध्वा, प्रतपूर्णसालीपात्रे स्त्रेण दग्डसलग्रनया दोलापाकाविधिना ता पोट्टली तन्नारीप्य प्रतानिममा फूला पचेत् । पाककानार्थमाह यदेत्यादि-पाटिका च दृढा

मेनिदिति पुटिका पोट्टालिका, तस्या दृढता च दिग्डक्याताड्य श्या। त्रिकद्वात्रिफला-याश्य मिलित्नेन पञ्चगुकेति ताम्रतुल्य, प्रातित्यर्द्धप्रहरे। अनुपानमाह तकमित्यादि। अन्तिपते तु त्रिकदुचूर्णं परित्यच्य त्रिफलेन ताम्रतुल्या देया, तथा तक्रञ्च परित्यच्य उच्णानलेमनानुपेयमित्याह अम्लिपत्ताच्छ्रय हत्यादि—ित्रफलेन समा देया त्रिफलेन ताम्रतुल्या देयेत्यर्थ । तथा कोष्णानलम् अनुपिनेदिति । वृद्धिकममाह सप्तम इत्यादि । सप्तम इत्यत्र वीप्ता श्रेया, तेन सप्तमे सप्तमे दिनसे राक्तिकाप्रमाणेन वृद्धिः कार्या, मापकमान यानदय प्रयोग कार्य्य । तेन मापकादृद्ध्वं वृद्धिनं कर्त्तं व्येत्यर्थ । येनैन कमेण वृद्धि कार्या तेनैन हासेऽपीत्याह तथेनापकर्षः पुनर्भनेदिति । केचिन्च वृद्ध वैद्याक्षिफलान्यतिरिक्तेन दिखिरिक्तकमिदमीपध मधुना समालोक्य ददित । तेनैन महान् विशेषो दृश्यते । गुदकीलादिनारानमित्यादि शस्यात् पाग्रहरोगादय ॥५७॥

शिलाजतुप्रयोगः

हेमाद्या स्र्यंसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः । जत्वामं मृदुमृत्काञ्छं यन्मलं तिञ्छलाजतु ॥ श्रनम्लञ्चाकपायञ्च कदुपाकि शिलाजतु । नात्युष्णशीतं घातुभ्यश्चतुभ्यंस्तस्य सम्भवः ॥ हेस्रोऽथ रजतात् ताम्राइरं छष्णायसाद्यि । मधुरञ्च सातिक्षञ्च जवापुष्पनिभव्च यत् ॥ विपाकं कदु तिक्षव्च तत् सुवर्णस्य निःस्रवम् । राजतं कदुकं श्वेतं स्वादु शीतं विपच्यते ॥ ताम्राह्महिंणकरहामं तीस्र्योष्णं पच्यते कदु । यज्ञ गुग्गुलुसद्काशं तिक्षकं लवणान्वितम् ॥ विपाकं कदु शीतञ्च सर्वश्चेष्ठं तदायसम् । गोमूत्रगन्धः सर्वेषां सर्वकर्मसु यौगिकः ॥ रसायनप्रयोगेषु पश्चिमन्तु विशिष्यते । यथाक्रमं वातपित्ते श्वेष्मित्ते कफे विषु ॥ विशेषेण प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः ॥ १८॥

इदानीं चरकोक्षशिला जतुरसायनमाह हेमाचा इत्यादि-निरिगता धातवो

1

गिरिधातव , हेमाचा इति तदिशेषणम्। आधशन्दात् लौहरूप्यताम्रसीसकगैरिकमन शिलादीनामपि ग्रहणम् । अतप्रवोक्त हारीते—" सुवर्णरूप्यतप्रसीसताश्रम् " इत्यादि । श्रतानम्लामित्यादि विशिष्टप्रतिषेधस्य शेषाद्यनुज्ञाफलकम् , तस्माद्रस-चतुष्टयस्यात्र विधिः धातुभ्यक्षतुभ्यं इति रसायनाधिनयात् तेन सुवर्णरूप्यत्रपुसीसे-त्यादिना हारीतेन यदेव विविधधातुसम्मवत्वमुक्त तेन सम न विरोध ा नात्युष्ण-शीतिमिति शीतोष्णयोर्वलवत्त्व निषिध्यते, तेन किश्चिद्रष्ण किश्चिच्छीतल शिलाजतु भवतीति । ते के चत्वारा धातव इत्याह हेम्न इत्यादि । क्रमेण हेमादिसम्भवाना चतु-र्णा लच्चणमाइ मधुरामित्यादि। चकारात् क्षिम्थत्वादिक बे।ध्यम्। यदाह हारीत — ''ित्तरथ घन काञ्चनगैरिकाभ सितक्तरोान मधुर सुनर्णात्' इति । अत्र शिलाजतु-सामान्यगुणकथने अन्लकपायन्यतिरिक्तरसचतुष्टयगुक्तम्, तथा क्टुपाकीलप्युक्तम्, तेन विशेषगुणकथने पुनर्ये रसोऽभिधीयते तत्रोत्कर्षवानिति होय , सामान्यगुणो-करसोऽनुकोऽपि लम्यते एव । यस्तु रौप्यमवे कदुपाकविरुद्धो मधुरक उकः, स उत्सर्गापवादन्यायेन समर्थनीय । अन्ये तत्तु समधुरविरुद्ध पच्यत इत्याहु , अत्रपव हारीते विदाहित्वमस्य यदुक तदप्युपधते, यथा- 'रीप्याकरोत्यन्तु मृणालवर्ण सत्तारक तत् कटुक विदाहि" इति युक्तिमुपवर्णयन्ति । अत्र वीर्यं तात्रभवस्यो-ष्णमुक्तम्, तथात्रायसानाञ्च शीतमुक्तम्, तेन नात्युष्णशीतवीर्थयो सामान्य-गुणोक्तयोरवकाशो नास्ताति केचिदाहु, तन्न युक्तम्, यतो नात्युष्णशीतत्व विधीयते, किन्तु शीतोष्णयोर्वलवत्त्रमात्र निषिध्यते, तेन किञ्चिच्छलाजतु शीतम् , उष्णञ्ज किञ्चिच्छिलाजतु भनतीति प्रागेन व्याख्यातम् । ताञ्रभनशिलाजतुगुण-कथने तिकोष्णमिलत्र तीक्णोष्णमिति केचित् पठन्ति, तन्मते तात्रके यद्यपि रसे। नोक्तस्तथापि सामान्योकचतूरसत्वमेव सानुभवरसमावेन श्रेयमिलर्थमाहु , पश्चिम-मिलायसम्। यथाक्रममिति वातिषत्ते सौवर्णम्, क्षमिषत्ते रै। प्यजम्, कफे ताम्रजम्, विदोषने लीहनमित्यर्थ ॥**४**८॥

> लौहिकिद्दायते वही विधूमं दह्यतेऽम्मसि । तृणात्यम्ने कृतं सर्वमधो गलित तन्तुवत् ॥ मिलनं यद्भवेत् तम्ब चालयेत् केवलाम्मसा । लौहपात्रेषु विधिना उद्ध्वीमृतञ्च संहरेत् ॥ वातिपत्तकफन्नैस्तु निर्य्यूहैस्तत् सुमावितम् । वीय्योत्कर्षं परं याति सर्वेरेकैकशोऽपि वा ॥

प्रीच्चित्रं वृत्तमावानं पुनस्तत् प्राच्चिपद्वसे ।
कोण्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना ॥
तुल्यं गिरिजेन जले चतुर्पुणे भावनौपधं काण्यम् ।
तत काथे पादांशे पूतोण्णे प्राच्चिपद्विरिजम् ॥
तत् समरसतां यातं संशुष्कं प्रच्चिपद्वसे भूयः ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन लोहैश्चूर्णींकतेः सह ।
तत् पीतं पयसा दद्याद् द्रिधमायुः सुखान्विनम् ॥
जराज्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकर परम् ॥
मेधास्मृतिकरं धन्यं चीराशी तत् प्रयोजयेत् ।
प्रयोग सप्तसप्ताहास्वयश्चेकश्च सप्तकः ॥
निदिएस्त्रिविधस्तस्य परो मध्योऽवरस्तथा ।
मात्रा पलन्त्वर्द्धपलं स्यात् कर्पन्तु कनीयसी ॥
शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनि गुक्किण् च ।
वर्जयेत् सर्वकालश्च कुलत्यान् परिवर्जयेत् ॥
पयासि शुक्कानि रसाः सयूपा-

स्तोयं समूत्रं विविधाः कपायाः । श्रालोडनार्थे गिरिजस्य शस्ता-स्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीच्य कार्य्यम् ॥ ४६॥

चरकोक्तशिलाजतुविधानं सोपस्कारमेतत्।

अप्रशिलाजतानो लचणमाइ लीहिकेट्टायत इत्यादि—यत् शिलाजतु वही विगतपूम सत् दद्यते लीहमलवच्च भवित तच्छेष्ठम् । परीचान्तरमाइ अम्मसीति—अम्मसि अप्रे कृत जले चिप्त सद् प्रथमतस्तृत्याति सवते, तन्तुवत् गलित अपस्ताद् तन्तुवह्मन्वते, तद् शिलाजतु अप्रभित्यथे । शिलाजतुशोधनमाइ मिलनिमलादि । अम्मसा उच्छोदकेन,लीइपात्रेषु विधिनेति हारीतोक्षशिलाजतुशोधनविधिना । कर्द्ध्वी-भूत यद् तद् महरेत् मगृह्यात्, काचादिनिर्मलपात्रे स्थापविदित्यथे. । तन्नाय शोधनविधि. । प्रथम केवल शिलाजतु जले धीत कृत्वा तदनु कीटादिदुष्टीपधिदोष-विनाशाय अगुरुत्वदीनिन्वपत्रयवगुद्धनीष्टतेषूपथिता, तदनु शुष्के चूर्णाकृत्य तदनु

भाजनाकारलीष्ट्रपात्रे कृत्वा दशमूलकपाय त्रिफलाकाथ वा केवले। च्लोदक वा प्रचिप्य विमर्ध लीहमूपलिकया तरलीकृत्य प्रचण्डातपे स्थापनीयम् । श्रत्र च प्रचण्डातपाव-स्थानेन सरवदूद्र वदुत्तिष्ठति तत् पुनर्गृहीत्वा काचादिनिर्मलपात्रे स्थाप्यम्, एव शिलाजतु भावनाया योज्यम् , उक्ष हि हारीते— 'तद्याहियत्वा क्रमशो विभज्य देशे शुचै। महलसिद्धियुक्ते । तिथौ च पुर्णे सुदिने च युक्ते नचत्रयोगेन शिवेन चापि । लीहाढकीनिम्बगुड्सचिसपिर्यवैर्यथावत् परिधृपयेच्च । सन्ता-लिकाकीटपतङ्गदशुद्धीपधीदोपविनाशनम् तत्' इति । इदानी चरकोक्षमावनाविध-वाति पत्तित्यादि -- निर्च्यूह. काथ । सुमानितिमिति सप्ताहम् । सर्वेरिति वात्रवादि-कांथ । भावनात किं स्यादित्याह वीय्योंत्वर्णमित्यादि । प्रक्षिप्यत्यादि—रसे वात-मादिकाथे को भेषा तिच्छलाजतु प्रचिप्य पश्चादानान तपने शुष्कपर्यन्त कृतना पन-रिंप तद्रसे प्रसिपेत । वान शुष्कम् , " शुष्के वानमुभे त्रिपु " इत्यमर । इदानीं भावनार्थद्रव्यादिकमार तुल्यमित्यादि-तन्त्रान्तरस्य । गिरिजेन शिलाजतुना तुल्य भावनीपध दशमूलादिद्रन्थ काथ्यम् । तत समरसता यातमिति तन्त्रिलाजतु काथेन सह समरसताभिति भालोडनेन एकीभूय तुल्यता यातमित्यर्थ । एव सिद्ध भावित शिलाजतु लै। इचुर्येन सार्द्धमेकी कृत्य दुग्धेन पातव्यमित्याह पूर्वी केनेत्याहि— चरकस्य । पूर्वोक्तेनेति चरक एव चिकित्सिते रसायनपादे पूर्वोक्तविधि भागानुक्त्या शिलाजतुलीह्यो. समत्व कश्चिदाह, तन्न, शिलाजतुनोऽधिकृतत्वाद प्राधान्यात् तदपेचयेव पादिकस्य लीहचूर्णस्य न्याय्यत्वात्, हारीतेऽध्येवमेवीकम् । चीराशी चीरप्रधानमोजनकारी । इदानीमेतत्प्रयोगस्य कालमेदेन त्रैविध्यमाष्ट प्रयोग इत्यादि-सप्तसप्ताहा एकोनपञ्चाशाहिनानि तव्यापकप्रयोग इत्यर्थः । एव त्रयक्षेकश्च सक्षक इति बोध्यम् । मचणार्थ त्रिविधा मात्रामाह मात्रेत्यादि । अस्मिन् प्रयोगे वर्ज्यमाह शिलाजतुप्रयोगे त्वित्यादि-विदाहीनि वशकरीरमरिचरा-जिकादीनि । शिलाजतप्रयोगे गुरुद्रन्यनियेधेपि गुरुचरिप्रयोगाभिधानम्, उत्सर्गा-पवादन्यायेन न विरुद्धमिति । केचित्त कुलत्थानिति कुलत्थादीन् , तेन काकमाची-कपोतयोरिप ग्रहणम् । उक्त हि वाग्मटे-"कुलत्थ काकमाचीख्र कपोतञ्च सदा त्यजेत्" श्त्याहु । सर्वकालिमति याबद्रसायनहिता गुणास्तिष्टन्ति । केचित्त् यावज्जीवन कुलत्थवर्जनमाह । कुलत्थस्य वर्जने सर्वकालीनत्वस्यीपपत्तेश्वरकेथैव तेपा प्रयोग. प्रतिपिध्यत इति । यैर्द्रव्येरालोट्य शिलाजत पेय तान्याह प्रयासीत्यादि-चरकस्य। सोपस्कारमिति चरके परीचादिक नोक्षम्, अत्र पुनर्लीहिकद्वायत इत्यादिना तदप्यु-क्तमिति सोपस्कारत्वम् ॥ ५६॥

शिवागुडिका

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतुप्रवरम् । त्रिफलारससंयुक्तं ज्यहञ्च शुष्कं पुनः शुष्कम् ॥ दशमूलस्य गुडूच्या रसे वलायास्तथा पटोलस्य । मधुकरसैगीं मुत्रे ज्यहं ज्यहं भावयेत् क्रमशः॥ पकाहं ज्ञीरेख तु तत् पुनभीवयेच्छुष्कम्। सप्ताई भाव्य स्यात् काथनेषां यथालामम् ॥ काकोल्यौ हे मेदे विदारीयुग्मं शतावरी द्राला। ऋद्धियुगर्षभवीरामुगिडतिका जीरकेंऽश्रमत्यौ च। रास्नापुष्करचित्रकद्न्तीभकणाकलिङ्गचन्यान्दा । कद्रका श्रद्धी पाठे तानि पलांशिकानि कार्य्याणि॥ श्रन्द्रोरो साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि । गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पतानि दश पद् च ॥ डिपलञ्च विश्वमागधिकाकटुककर्कटाख्यमरिचानाम्। चुर्णे पत्तञ्ज विदार्थ्योस्तालीशपतानि चत्वारि ॥ षोडश सितापलानि चत्वारि घृतस्य माज्ञिकस्याष्टौ। तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णाईपलानि पञ्चानाम्॥ त्वक्त्तीरिपत्रत्वङ्नार्गेलानां मिश्रयित्वा तु । गिरिजस्य षोडशपत्तिर्गुंडिकाः कार्य्यास्ततोऽत्तसमाः। ता शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः॥ तासामेका काले भद्या पेयापि वा सततम्॥ चीररसदाडिमरसा सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि। श्रालोडनानि तासामजुपाने वा प्रशस्यन्ते॥ जीर्णे लघ्वन्नपयोजाङ्गलनिर्य्यृहयूषभोजी स्यात् । सप्ताहं यावदत परं भवेत् संवे सामान्यम्॥ भुक्त्वापि मान्तितेयं यदच्छ्या नावहेद्भयं किञ्चित्।

निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारकैः कामिभिश्चैव ॥ संवत्सरप्रयुक्ता द्दन्त्येषा वातशोणितं प्रवलम् । बहुवार्षिकमपि गाढं यदमाणञ्जाख्यवातञ्ज ॥ ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्शं पाएडग्रहणीरोगान्। व्रध्नवमिगुल्मपीनसद्दिकाकासारुचिश्वासान्॥ जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाएढ्यं क्लैव्यं मदं च्यं शोषम्। उन्मादापस्मारौ वदनान्निशिरोगदान् सर्वान्। श्रानाहमतीसारं सास्ग्दरं कामलाप्रमेहांश्च। यरुदर्बुदानि विद्वधिभगन्दरं रक्षापेत्तञ्ज ॥ श्रातिकाश्यमितिस्थौल्यं स्वेदमथ श्रीपदञ्च विनिद्दन्ति। दंष्ट्राविषं समीलं गराणि बहुप्रकाराणि॥ मन्त्रौषधियोगान् विप्रयुक्तान् भीतिकांस्तथा भावान्। पापालदम्यौ चेयं शमयेद् गुडिका शिवा नाम्ना ॥ वल्या बृष्या धन्या कान्तियशःश्रीप्रजाकरी चेयम्। दद्यान्नुपवन्नभतां जयं विवादे मुखस्था च ॥ श्रीमान् प्रकृष्टमेधःस्मृतिबुद्धिवलान्वितोऽतुलशरीरः। पुष्ट्याजाऽतिविमलेन्द्रियतेजोवलसम्पद्धपेत ॥ वालिपलितरागरहिता जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः। संवत्सरप्रयोगात् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि। सर्वामयजित् कथितं मुनिगणभद्यं रसायनरहस्यम् ॥ समुद्धभूवामृतमन्थनोत्थः स्वेदः शिलाभ्यो मृतवद्गिरेः प्राक्। यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय न्यस्त स शैलेषु शिलाजरूपी॥ शिवागुडिकेति रसायनमुक्तं गिरीशेन गण्पतये। शिवावदनविनिर्गता यस्मान्नाम्ना तस्माचित्रवा गुडिका॥६०॥ इति शैवसिद्धान्तोक्षा शिवागुडिकेयम्।

इति शिलाजतुविधानम्।

चरकोक्षशिलाजत्विधिमभिधाय रावतन्त्रोक्तप्रमिद्धशिलाजतुप्रयोग शिवगुर्धिका माह काल बत्यादि-रिवतापाढेंग इति विशेषणाद् श्रीप्म इति यावत्, अन्ये तु शरबप्याहुः । शिलाजतुनोऽत्र पोटशपलमात्राः वस्यति च पलानि दरा पट चिति । तेन तन्मानम्य मिलितश्रिफलाद्रच्य गृहीत्वा कार्थायत्वा न्यए मावना कतव्येत्याह त्रिफलेल्यादि-श्रत्र तुल्य गिरिजेन जलिमत्यादि पूर्वानतवचनानुमारेख त्रिफलाकाथ कृत्वा न्यह भावना कार्योत्वर्धः । एव दशमूलकाथादिभिगोमूत्रान्तेरिति त्यहः त्र्यह क्रमेख भावयेदित्यर्थ । चौरेख पुनरेकाह परिमित चीरेख एकाहमेव भावये-दित्यर्थः । बच्चमाखकाकोल्यादिकाथेन पुनः सप्ताह भावना कर्त्तन्येत्याह मप्ताह मान्य स्यादिति । एषामिति वद्यमाणकाकोल्यादीनाम् । यथालाभमिति बचनात इन्द्रयवकदरोष्टिण्यादिव्यतिरेकेणापि । विदारीयुग्ममिति विदारी-चीरविदार्थां । चीरविदाव्यां अ लक्ष्य- "कीरशुका टीर्घकन्दा चातिमधुरा चीरविदारा इति. भग्न-चिकित्मोक्तगन्थेतेलच्याख्याया गदाधरेखाक्तम्। ऋढियुग ऋढिवृद्धी । वीरा मामीति त्रिविक्रम: । जलजशाकमिति रत्नप्रमा । जीरके इत्यादि-कृष्णशुक्रजीरके, अशु-मत्यौ शालपर्वीपृक्षिपएयौँ इभक्या गजपिप्पली, कडकी कडरे।हिणी: एतान्यष्टा-विशातिद्रच्याणि तिखितानि । वाग्मटे तु रमायनतन्त्रपठितग्रुहिकापाठे श्राहि-ऋषभकादिषट्द्रव्याणि प्रयन्ते तद् यथा--ऋदि ऋषभकी सुपिडरीन्द्रयनी कह-रोहिषी कर्कटमङ्की चेति । तदे रमुमयाचार्य्यामाययादुभयथैव प्रयोगमङ्गतिरम्य पेया । अस्या पिप्पल्यादिवत् गणत्वविवद्याया यथालाभवचनादेतानि पोडशः इन्याणि न गृह्यन्तेऽपीति केचित । एपाञ्चाष्टाविशतिहन्याणा प्रत्येक पलिकाना कथनार्थदेयजलद्रोणसाधितशेषकाधशरावै सप्तधा विमक्तै सप्तिहनानि माबना सप्त कर्चच्याः । किन्त्र सप्तदिनै काथस्याम्लता भवति । तर्वश्चपामद्याविदातिद्रव्याणा प्रत्येक पलिकाना सप्तदिनविभागेन पलचतुष्टय मिलित्वा ग्राषा, तेन प्रतिदिन पलचतुष्टयविभागेन काकोल्यादीना प्रत्येक मापा ६, रक्तिका २ ब्राह्मम् एव जल-द्रीयस्यापि सप्तदिनविभागन देयजलशाराव ६ पल १, मापा ६, रति १, अस्य पादावशिष्टतया स्थाप्य जल श २, कर्ष १, मापा २, अस्मिन् काथे पूतोष्ये प्रतिदिन शिलाजतुभावना, एव सप्ताइ कर्चव्यम् । दश पट् चेति पोडशित्यर्थः यद्यपि निर्देशस्य मानप्रधानत्वास् विश्वादींना मरिचान्ताना मिलिरवैव पलद्वर युज्यते तथापि नाम्भटपामाययातः प्रत्येकमेन दिपल ग्राह्मम् । पद्मानामिति-त्वक्-चीरी वशलोचना । गिरिजस्य षोडशपैलमिश्रयिलेति योज्यम् । इह सर्वेष्वेव शिला-जनुप्रयोगेषु कर्तव्येषु प्रथम शोधन विधाय तिक्तकष्टत झह ज्यह वापि बलानु-

रूपप्रमाण दातन्य यथा सिग्धो भवति, तदुक्त तन्त्रप्रदीपे-"सशुद्धकायो विमले-न्द्रियक्ष प्रशस्तनत्तत्रमुद्ध्रत्तेयोगे । पिवेद् ष्टत तिक्रकपायसिख खद्द त्र्यद्द वापि वला-नुरूपम् " इति । अत्तसमा चात्युत्तममात्रा, अतस्तदनुसारेख मध्यमाधमपुरुपा-वेचया मात्रे। ह्या । यहच्छया इत्यनियमन, तेन कदाचित मुक्तापि मचिता सती विकार न जनयेदित्यर्थ । आख्यवात जरुस्तम्भ॰ सहजहेतुजक्रिव्यद्वयपरिग्रहार्थ पाएढा फ्रेन्यामित्युभयपदोपादान बोध्यम् । यद्यपि चीजदोपोत्पन्नसङ्जक्षेन्यमसाध्य-स्वेनोक्तम् , तथापि प्रयोगमाएात्म्यस्चनार्थमिदमुक्तम् । गराणि सयोगाविषाणि, भीतिकान् भावानीति भूतकृताः पीडाः। सनत्मरप्रयोगादिति पूर्वेण सम्बध्यते, द्वाभ्या-मिति सवत्सरद्वयेनेत्यर्थ । शिलाजतुन प्रागुत्पत्तिमाए समुद्वभूवेत्यादि-श्रमृतमन्थ-नोत्य इति प्रमृतमन्यनसमयजः। हितायेत्यादि-हितायेत्यत्र जगतामिति राष ॥६०॥

> इति शिवाग्रहिका । इति शिलाजतुविधानम्।

श्रमृतभन्नातकी

सुपक्रमह्मातफलानि सम्यग् हिधा चिदार्ज्योढकसमिमतानि । विपाच्य तोयेन चतुर्गुरोन चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि॥ पुनः पचेत् चीरचतुर्गुेष्न घृतांशयुक्तेन घनं यथा स्यात्। सितोपलापोडशभिः पलैस्तु विमिश्र्य संस्थाप्य दिनानि सप्त॥ तृतः प्रयोज्याग्निवलेन मात्रां जयेद्गुदोत्थानखिलान् विकारान्। कवान् सुनीलान् घनकुञ्जितात्रान् सुपर्गहाँ सुकुमारताञ्ज ॥ जवं हयानाञ्च मतद्गजं बलं स्वरं मयूरस्य हुताशदीष्तिम्। स्त्रीवज्ञभत्वं लभते प्रजाञ्च नीरोगमन्दद्विशतानि चायुः॥ न चान्नपाने परिहार्य्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च। प्रयोगकाले सकलामयानां राजा द्ययं सर्वरसायनानाम् ॥

भज्ञातकशुद्धिरिह प्रागिष्टचूर्यगुगुरडनात्। घृताचतुर्गुणं चीरं घृतस्य प्रस्थ इष्यते ॥ ६१ ॥ इति श्रमृतभन्नातकी।

इति रसायनाधिकारः।

अमृतभल्लातमाह सुपक्रित्यादि-भल्लातकान्यत्र हारीतोकामृतभल्नातकीयृतोक-रीत्या प्राह्माणि, यथा-"मञ्जातकाना पवनोद्धताना वृन्तन्युनानामिए चाढक स्यात्। तसेष्टकाचूर्यकर्यविष्टव्य प्रचाल्य धीरो विधित्रत् प्रवाते । शुध्क पुनस्नद्दिदली-कृतन्य तत पवदप्सु चतुर्गुणासु । पादावशिष्ट परिपृतशीत प्रनेन तुल्येन पचेष् स्रशीतम् । तद्देया शर्करयावकीर्णं तत राजेनोन्मधितं विभाव । भायेडे विशुदे त्वथ धान्यराशी सस्थापयेत् सप्त दिनानि चेति । तत्मप्तराश्रात् परिजातवीर्यम् , इत्यादि । अत्र महातकाना चतु पष्टिपलानि, तदपेचया चतुर्युण जल प्राधामान ह्रवृद्देगुरुयाचत् पष्टिशरावपरिभित यद्यपि, तथापि वस्यमाखतन्त्रान्तरीयवान्यैकनातु-रोधात् आढके पलविवचां विधाय पलोहोलगतलेन देगुण्य न विधेयम्, तथा कवित पलोल्लेखविधानेऽपि तन्त्रान्तरीयवावैयकनानुरोधात् पलोल्लेखगते द्रव्येऽपि कुटवादि-विवक्षाया द्वेगुण्य भवति । तथापि चरके व्यतवीः एचिकित्यिते मधुकाष्ट्रपल द्वाचा-प्रस्थकाथ इत्यादिना य प्रयोग उक्त न जतुकर्णे द्राचप्रस्थ मधुकाद्धप्रस्थ इत्यादि यन्थेन पठित , तेन जत्कर्षे मधुकस्यार्द्धप्रस्थोल्लेखपाठात् कृनद्वगुरवमेव जल मवति, तत्प्रत्ययाच्चरकेऽपि मधुकाष्टपलोल्लेखविहितेऽपि क्वाय्ये कुडवद्दयविवत्तया कृतदेगुण्यमेव जल दीयते। तद्भवापि भाडके पलविवसा विधाय देगुण्य न कार्यम्। तदेव तन्त्रान्तरीयवावय यथा-- भन्नातकाढक चुरुण जलाढकद्रये श्वतस् । पादशेषे रसे तरिमन् इतप्रस्थममन्दिने । भीराडक ततो दत्त्वा मिताया प्रस्थेमद च । तादश्च नार्थवेदीमान् यावहेहत्वमागतम् । अर्गसा नारान श्रेष्ठ दीपन कुष्ठनारानम् । भन्तिपत्तापद्द प्रोक्त वानीकरणमुत्तमम् । अग्निशृद्धिकर्ञच वलकृत् पुष्टिवर्द्धनम् ' इति । केचिनु चीराडक तती दत्त्वेत्यत्र चीरपस्थमिति पठित्वा अस्य प्रयोगस्य योगान्तरत्व मन्यमाना मुपकमञ्जातकेत्यादिचक्रमग्रहोक्तयोगे जलस्य द्वैगुरायमिच्छ-न्ति, किन्तु परेमश्वररिचतादिमग्रहे चीराढकमित्येव पाठी दृश्यते एकवाक्यता च तदेव सङ्गच्छते । बृद्धवैद्यव्यवहारश्चाद्वैगुरयेन दृश्यते तेनायमव पाठ माधीयान् । हारीतमतन्तु मतान्तरमेवेति न्याय्यम्, यतस्तत्र परिमाणे इतिकर्त्रज्यतायाञ्च महदेवान्तरम् । प्रताशमिति प्रतप्रस्थम् । चतुर्मागावशिष्ट काथमपृत्य प्रतस्या-र्बोशताम्, उक्तेन काथेन मृतस्यार्खाश पचेदिति योज्यम् । चीरस्य चातुर्ग्रयम इतापेवया, अतरव वस्यति प्रनाच्चतुर्गुख चीरमित्यादि । चीरचतुर्गुखेनेति चतु-र्रुखेन चीरेखेत्पर्थ । पूर्वनिपात प्रत्यनियमात् । ततश्च युक्तेनेति न पाठ , सम्बन्धाः

भावात् । ततश्च एत पक्त्वा च पूत्वा च शर्कराप्रेचप इत्यर्थ । किन्तु लेहोऽपि पच्येत, तदा काथशर्करादिकमेकीकृत्य पक्तव्यम् ॥ ६१॥

> इत्यमृतमल्लातकी। इति रसायनाधिकार।

अथ वृष्याधिकारः।

पिष्पर्लालवणोपेतौ वस्ताएडौ चीरसर्पिषा। साधितौ भच्चयेद् यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम्॥१॥

सुस्थस्यै। जस्करसामान्याद्रसायनानन्तर वाजीकरणसुच्यते, वाजीकरणसच्दार्थस्तु चरकेणोक्ती यथा—'' येन नारीपु सामर्थ्यं वाजिवल्लमते नरः । व्रजेच्चाभ्यधिक येन वाजीकरणमेव तत् '' इति । व्रजेच्चाभ्यधिकमिति पुन पुनर्गच्छेत् । व्यव्यत इति पादे नारीपु पुस्त्व येन व्यव्यत इत्यर्थः । सन्दिसिद्धस्तु पृषोदरादित्वात् । अन्ये तु वाज' सुक्र सोऽस्यास्तीति वाजी, अवाजी वाजी क्रियते येन तद्वाजीकरणमित्याहु । किंवा वाजी मेशुनम्। जक्ष हि हारीते—'' वाजो नाम प्रकारात्वात् तच्च मेशुनसित्तम् । वाजीकरणसित्तां पुस्त्वमेव प्रचचते ।'' तच्च त्रिधा, यद्वक्त चरके—''सुक्रसुतिकर किन्चित् किश्चिच्छक्रविवर्द्धनम् । सुतिवृद्धिकर किन्चित् त्रिविध कृष्टिकरम् । सुतिवृद्धिकर किन्चित् त्रिविध कृष्टिकरम् । स्वाप्ति वृद्धिकरम् , माषादि सुतिवृद्धिकरमिति । वृष्ययोगानाह पिप्पलीत्यादि—सुश्रुतस्य । तत्र पिप्पलीलवण्ययोः सस्कारत्वादल्पमानता । वस्तायद्वी क्षागायद्वकोपी । चीरसिप्ता चीरोत्यसिषा, न तु चीरक्च प्रतिवृद्धिकरम् । मच्चप्रकारी थया—क्षागायद्वद्वय जल दत्त्वा उत्स्वय चितावद्वत्वोपलचण्यम् । मच्चप्रकारी थया—क्षागायद्वद्वय जल दत्त्वा उत्स्वय चिरात्थद्वेन मर्जियत्वा अनुस्पसैन्यविप्यलीचूर्याभ्या सस्कार्ये उपयोज्यम् ॥१॥

वस्ताएडसिद्धे पयसि भावितानसञ्जत् तिलान् ।

य. खादेत् स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ २ ॥
नस्तायहसिद्ध इत्यादि—चीरपारिभाषया वस्तायहेन चीरसाधनम्, तेन भावितान् । यद्यपि जक्षाधिकमासेत्यादिना वस्तमासस्य चीरेण सह विरोधो दर्शितस्तधापि तत्सामान्यवचनम्, इद पुनरपवादरूप विशिष्टवस्तायहविषयतया न विरोधमावहति । असक्वदिति सप्तथा, पूर्ववदिति अक्वतपूर्वस्त्रीसङ्गमवत् ॥ २ ॥

चूंण विदार्थाः सुकृतं स्वरसेनेव भावितम् । सिपं कौद्रयुवं लीद्वा शतं गच्छेडराङ्गनाः ॥ एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनेव भावितम् । शर्करामधुसिपिर्मुकं लीद्वा पयः पियेत्॥ एतनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहण्यते॥ ३॥

चूर्णिनचादि-सुकृतन् । न्यरसोऽपि विदार्थ्या एव । प्वितसादि--अत्र न्यरसमावितन्याप्युक्ततात् प्वितित्वतिकेशन्य वैशय वेष्य्यं न्यात्, तेन विदारीचूर्ण-वत् सीक्षद्यान्यामाननकन्य तन्त्ररसमावितस्य प्रयोग अति कश्चित्, तेन आनल-कचूर्णन्य दिशा प्रयोग , एकः श्वसीकान्याम् , अन्यश्च शर्वरामयुश्वतयोऽनुपान-श्चित् । अन्य तु प्वितिदानिकेश सुदृक्तविषानार्यनित्याहु ॥ ॥ ॥

विदारीकन्दकरकन्तु घृतेन पयसा नरः । उद्दुम्बरसमं सादन् मृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ४॥ विदानसादि—मुष्टुतस्य । ऋत्र द्दोनेत्यत्र श्वेनेति पाठे केवल जलश्वे-नेत्यर्थ ॥ ४॥

स्वयंगुतेजुरकयोर्थीजचूर्ण संग्रकरम् । धारोण्णेन नरः पीत्वा पयसा न त्तरं त्रजेत् ॥ डबटाचूर्णमप्येवं त्तीरेणोत्तममुख्यते । गृतावर्ष्युबटाचूर्णं पेयमेवं सुखार्थिना ॥ क्षं मधुकचूर्णस्य यृत्त्वौद्गसमन्वितम् । पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥ ४॥ न्वराप्रेचारि—नुम्रद्धः । डबटेयाचि तस्वं । नुखार्थिनेत्यत्र वलार्थिः नेति नुष्टुवे प्रस्रते । स्वीनन्दनेन पयमेति तुष्यते । क्षंपित्यादि—चरकन्य । मधुक बारिम् । निल्वेग द्वि निल्युकवे ॥भिनृतः ॥ ४॥

> गोजुरक जुरकः शतमूली वानरिनागवलातिवला च । चूर्णिमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति॥ घृतसृष्टो दुन्यमापपायसो चूप्य उत्तमः॥ ६॥

गोचुरक इत्यादी—चुरक कोविनाच , वानरी युक्तिंग्नो । गतमूली च वानरी चेति सनाहारहन्द्र-, श्रत्र पष्ठावहुवचनान्त पाठ एव साधु-। एव चुर- कगोच्चरवानरोखा फलवानं प्राधम् । यदुक्तमग्रतनल्ल्या—''गोक्तगटच्चरकिपकच्छु-फलनरीकुशानलाचूर्णश्वेतन । पयमा रात्रिसमये'' इत्यादि—प्रत्रत्र कुशी गोरच्चत- यदुला । एतेत्यादौ मापपायसो मापनिदलेर्दुग्धेन कृत पायसः, स च मृष्टो वृतेन सन्तिलेत ॥ ६ ॥

दक्षः सरं शरचन्द्रसिन्नमं दोषवर्जितम्। शर्कराचौद्रमरिचेस्तुगाचीर्या च बुद्धिमान्॥ युक्त्या युक्तं सस्चमेलं ने कुम्मे युचौ पटे। मार्जिते प्रचिषच्छीतं घृताढ्यं पष्टिकौदनम्॥ द्याचदुपरिष्टाच रसालां मात्रया पिवेत्। वर्णस्वरवलोपेतः पुमांस्तेन वृपायते॥ ७॥

दश इत्यादि — चरकत्य । देषविजितमिति मिलनत्वादिदोपविजितम् । युक्त्या युक्तमिति यथातिमाधुर्यं न त्यात्, कद्वत्वज्ञाधिक न भवति, तथा शर्करामिरिचादि योज्यमित्यर्थ । माजितमिति पाठे पटे एए तमिति पिष्टकौदनम् । निश्चलेत्तु माजिते प्रिक्तिप्वक्षिते एताट्य पाष्टकौदनमिति पठ्यते । तस्मिन् माजिते पूते रस इत्यर्थात् ततोऽत्र शीते शीतवीर्थे पष्टिकमक प्रिचेष्ट्, ततोऽघादिति । उपरिष्टादिति मुक्त्वेत्यर्थः । रसालालच्य यथा—"सचतुर्जातकाजाजीसगुर्डाईकनागरम् । रसाला स्याच्छिति ग्रुप्टिं इति । अन्यत्र यथा—"अर्द्धादक द्विरपर्युं-पितस्य दक्षः ख्यउस्य पोडश पलानि शशित्रमस्य । सिंपे.पल मधुपल मिर्चार्द्धः कर्षे शुख्यास्तथार्द्धपलमद्धेपल चतुर्यान् ॥ शुक्ते पटे ललनया मदुपाणिष्टष्टा कर्षू-रगन्धस्रिमेनवभाव्यस्य । एपा प्रकोदरकृता सुरसा रसाला या स्वादिता मगवता मधुस्दनेन" ॥ ७॥

श्राद्वाणि मत्स्यमांसानि श्रफरीश्चाज्यभर्जिताम्। तते सर्पिपि यः खादेत् स गच्छेत् स्त्रीषु न ज्ञयम् ॥८॥ श्राद्वीणीत्यादि—चरकस्य। श्राद्वीणि सपस्कानीत्यर्थ। मत्स्योऽत्र प्रधानकत्पनया रोहित ॥ ८॥

नारसिंहचूर्थम्

शतावरीरजःप्रस्थं प्रस्थं गोत्तुरकस्य च। वाराह्या विंशातिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः॥ भक्षातकानां द्वार्तिशिचित्रकस्य दशैव तु ।
तिलानां शोधितानाञ्च प्रस्थं दद्यात् सुचूर्णितम् ॥
इयूपणस्य पलान्यप्रौ शर्करायाञ्च सप्तितः ।
मात्तिकं शर्करादेन मान्तिकार्देन वै घृतम् ॥
शतावरीत्तमं देयं विदारीकन्दजं रजः ।
पतदेकिष्ठतं चूणे सिग्धे भागडे निधापयेत् ॥
पलार्द्रमुपयुश्चीत यथेप्रञ्चापि भोजनम् ।
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामिष ॥
वलीपलितखालित्यमेहपाएड्वाद्यपीनसान् ।
हन्त्यप्राद्श कुष्ठानि तथाप्राञ्चदराणि च ॥
भगन्दरं मृत्रकृष्ट्यं गृधसीं सहलीमकम् ।
चयञ्चेव महाश्वासान् पञ्च कासान् सुदारुणान् ॥
श्रशीति वातजान् रोगांश्चत्वारिशच पैत्तिकान् ।
विश्रति हैरियकांश्चेव संस्पृत्व सान्निपातिकान् ॥
सर्वानशोगदान् हन्ति वृत्तामिन्द्राशनियंथा ॥

स काञ्चनामो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गमञ्चाप्यनुयाति वेगतः। स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरेकं प्रकृपदृष्टिश्च यथा विहर्जः॥

पुत्रान् सञ्जनयेद्वीरान् नर्रासहिनभांस्तथा।
नार्रासहिमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं मृणाम्॥
वाराहीकन्दसंबस्तु चर्मकाराजुको मतः।
पश्चिमे गृष्टिशव्दाख्यो वराहलोमवानिव॥६॥

रातावरीत्यादि—चन्द्राटस्य । वाराद्वा इति वराइकन्द्रस्य । तल्लचण यथा—
"गिन्त्लसहरौ पत्रैर्झन्थिमि समलड्कृतम् । सर्जार्जुनानिभै पुर्ष्य रोोभते च
स्वान्धिमि । वराइच्छिविवर्णेन पिच्छलेन सुवर्चसा । कन्देन कटुतिकेन नीलोरपलसुगन्धिना । जायते सा गिरौ रम्ये विन्छे श्रीपवते तथा ॥" वृन्दे तु—
वराइम्द्रेवत् कन्दो वाराद्दीकन्दसावितः । सिषजा तदलाभे च चर्मकारालुको मतः"
इस्युक्तम् । किन्तु वाराद्दीकन्दपोद्यया चर्मकारालुकस्यातिद्दीनगुण्यतेन नास्य तद्

प्रतिनिधित्व युक्तम् । गुडूच्याः पद्मविंशातिरित्यपपाठ । तन्त्रान्तरे—"मल्लातक-प्रस्थयुग्म तत् सप्तपलोन गुडूच्याक्ष" इत्युक्तत्वात्, यतः प्रस्थयुग्मेव सप्तपलोन सत् पप्पविंशातिपलानि भवन्ति । त्र्यूषणस्य मिलित्वा पलान्यष्टौ । विदारी भूमि-कूप्पाएड । पलार्द्धमिति पूर्वयुगाभिप्रायेण, इदानीमष्टमापकेण व्यवहारः । आख्य इति आख्यमारुत ; यथा भीमो भीमसेन । वाराष्ट्रीकन्दस्य दुर्लमतया चर्मकाराज्ञक-मव गौडीयेर्वाराष्ट्रीकन्दसण्या गृद्धते । वस्तुतस्तु वाराष्ट्रकन्दकाच्चर्मकाराज्ञक द्रव्या-न्तर तल्लचणामावात् ॥ १ ॥

गोधुमाद्यं घृतम्

गोधूमाच पलशतं निःकाथ्य सलिलाढके। पादावशेषे पूते च द्रव्यागीमानि दापयेत्॥ गोधूमं मुञ्जातफलं मापद्राचापरूपकम्। काकोली चीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी॥ श्रश्वगन्धा संखर्जूरं मधुकं त्र्यूपणं सिता। भह्नातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत्॥ घृतप्रस्थं पचेदेकं चीरं दच्वा चतुर्गुण्म्। मृद्विया च संसिद्धे द्रव्याएयतानि निचिपत्॥ त्वगेलापिष्पलीधान्यकपूरं नागकेशरम्। यथालाभं विनिक्तिप्य सितान्तौद्रपलाएकम् ॥ दग्धेचुदग्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत्। शाल्योदनेन भुजीत पिवेन्मांसरसेन वा ॥ केवलस्य पिवेदस्य पलमात्रां प्रमाणतः। न तस्य लिङ्गरौथिल्यं न च शुक्रचयो भवेत्॥ वर्षं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम्। मूत्ररुच्छ्रप्रशमनं वृद्धानाञ्चापि शस्यते ॥ पलद्वयं तद्श्रीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः । स्त्रीणां शतञ्च भजते पीत्वा चानुपिवेत् पयः॥ श्रश्विभ्यां निर्मितञ्जैतद्गोधूमाद्यं रसायनम् ।

जलहोते तु गोधूमकाथ तच्हेपमाडकम् ॥ मुज्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम् ॥ कल्कद्रव्यसमं मानं त्वगादः साहचर्य्यतः॥ १०॥

गोधूमाडित्यादि —गोधूमा धवलमारी आहा उत्हादवात् । मिललाढके पादावरेष इति योज्यम्, अने। गोधूमगतपले जलद्रोणा देय इति चक । वकुललस्तु जि.काथेल्यनेतैव सन्वध्यते, तथव निर्देशन्यत् पादरेषध्य प्रस्थ इति व्याचेष्ट । किन्तु चक्रपण्ण पव प्रचरित । मुखातकपन क्षीचरपथिकम् । तद्रप्राप्तां तालमस्तकम् । द्वागवल्यान्तु तालमन्तकामित्येवास्ति । पर्वयक पत्न खल् पियद्वर्जन्, मच्क याद्यम्, अन्य तु मध्कमिति पाठिन्या मध्कस्य पत्रमाहु । मिना गर्करा । आत्माप्ताया मृलमिति निञ्चल , फलमित्यन्ये । मानद् इत्यनन्तः पूते चेति रोपः । त्वगादीनाश्च मान कन्कतुल्य बन्द्यति । तत्र रोतियमूने रार्करामधुन् नोमिलित्वाद्रद्यी प्रतानि । पूर्व पलमात्रा पिवदिति यदुक्त तत् प्रथमत , अनन्तर सात्म्यमावे सित प्रवस्य, न पुनिरितोऽधिकमिति ॥ १० ॥

शतावरीघृतम्

घृतं शतावरीगमं सीरे दशगुणे पचेत्। शर्करापिप्पलीसौहयुक्तं तद् बृष्यमुच्यते ॥ ११ ॥

श्विमलादि—न्यकस्य। विगडिनेदे "प्रेचेष पादिक काव्यात्री नेहे बल्कसमी तन" इत्युक्ते गर्कगिषपली सीदाया कन्कत्व हेयस् ॥ ११॥

गुडकृष्मायडकम्

क्रुप्मार्डकात् प्लशतं सुस्विषं निष्कुलीकृतम् । प्रस्थं घृतस्य तैलस्य तिस्मस्तमे प्रदापयेत् ॥ त्वक्पश्रधान्यकथ्योपजीरकैलाहयानलम् । प्रन्थिकं चय्यमातद्विपपलीविश्वभेपजम् ॥ श्रद्वाटकं कशेरुश्च प्रलम्यं तालमस्तकम् । चूर्णीकृतं पलांशश्च गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ शीर्तीभूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत् । क्फापित्तानिलहरं मन्दाग्नीनाञ्च शस्यते ॥ क्रशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्।
प्रमदासु प्रसक्कानां ये च स्युः ज्ञीणरेतसः॥
ज्ञयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम्।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हान्ति छुदिंमरोचकम्॥
गुडकूष्माण्डकं ख्यातमाश्वभ्यां समुदाहृतम्।
खण्डकूष्माण्डवत् पात्रं स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः॥ १२॥

कृष्मायटकादित्यादि—- धततेलयोमिलित्वा प्रस्यम् । स्रत्र खण्डकृष्मायडवत् त्वावीजादिवजितसुरिवन्नगालितिपण्डकृष्माण्डम् न कार्य्यं यावन्मधुनिभ पाको भवति । ततो द्रवार्थमेव गालितिपण्डकृष्माण्डद्रवमेव प्रस्यचतुष्ट्य गृष्टीत्वा तेन द्रवेण पुराणगुडपलशतमेकीकृत्य पूत्वा कृष्माण्ड पचेत । ततीऽवतारिते कोष्णे त्वकृपत्रादिच्यूर्णप्रकेष. । जीरकैलाद्वयेति जीरकद्वयमेलाद्वयक्चेति । मातप्रिप्पली गजिप्पली । प्रतम्ब तालाकुरः, ताललख्ड इत्यन्ये, साध्य एव पची युक्त कृष्य-त्वाद् । सन्दासीनामन्यमात्रयेति रेष । प्रमदासु प्रसक्ताना वाजीकरण्यित्यन्वयः । तथा ये चीणोरतसस्तेपामुत्तम तद्भिष्णिकतिमिति योज्यम् । पात्रमित्याडक खण्ड-कृष्माण्डकन्न रक्तिपत्तिकन्नकृष्माण्डत्येव वेय ॥ १२ ॥

यितिश्चित्मधुरं सिग्धं जीवनं वृंहणं गुरु ।
ह्वेणं मनसञ्चेव सर्वे तद् वृष्यमुच्यते ॥ १३ ॥
श्वत्तवाजीकरणसम्महार्थमाह थितिश्चिदिलादि ॥ १३ ॥
सञ्चातकवृहतीफलदाडिमफलवरकसाधितं कुरुते ।
लिङ्गं मर्दनविधिना कहुतैलं वाजिलिङ्गाभम् ॥
कनकरसमस्णवर्तितहयगन्धामूलमत्रपर्ध्युषितम् ॥
माहिषमिह नवनीतं गतवीजं तच्च फलमध्ये ॥
गोमयगाढोद्वर्तितं पूर्व पश्चादनेन संलिप्तम् ।
भवति ह्यालिङ्गसहर्थं लिङ्गं कठिनाङ्गनाद्यितम् ॥१४॥

इदानीं लिझमूलत्वादपत्यस्य तद्वृद्धियोगानाह महातकेत्यादि—श्रय योगो भह्नातकासहाय न देय । जलज्ञात्र चतुर्गुण बोध्यम् । कनकेत्यादि—कनक धुस्तुर, तस्य पत्रस्वरसः । तत्फलमिति धुस्तुरमेन । गोमयेन सपस्केन लिहे गाढमुद्दर्तन फुल्वा ततोऽनेन लेप इति । कठिनाङ्गना इति कठिनाङ्गना, प्रायेण द्राविद्यनाटमालवदेशजा । तास्तु प्रायशो बहुतरसुरतैर्नेव तुष्यन्तीति कठिनत्वम् ॥१४॥

श्रश्चगन्धातैलम्

श्रश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम्।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत्॥
स्तनिलङ्गकर्णपालिवर्द्धनं म्रच्नणादिदम्॥ १४॥
मेद्सा चौद्रयुक्तेन वराहस्य प्रलेपितम्।
सम्यक् स्निग्धं रतान्तेऽपिस्तव्धतां न विमुश्चिति॥१६॥
बीजं बृहत्करञ्जस्य कृतमन्तः सपारदम्।
हेम्ना सुवेष्टितं न्यस्तं वदने वीजधुद्धातम्॥ १७॥
श्राजन्तूष्टीचीरं गव्यघृत चरण्युगलपेन।
स्तम्भयति पुरुषवीजं योगोऽयं यामिनीं सकलाम्॥१८॥
श्रम्भगन्थांतेले फल बृहतीफलम्। कर्णपालि कर्णनालिका॥ १५–१८॥
मम्नातकबृहतीफलनिलिनीदलसिन्धुजन्मजलश्र्कैः।
माहिषनवनीतेन करिवतैः सप्तदिनमुपितैः॥
मूलेन ह्यगन्धाया महिषीमलम्थितं पूर्वमथ लिप्तम्।

भवति लघुकतरासमिलिङ्गं ध्रवं पुंसाम् ॥ १६ ॥
महातकेरयादौ — करम्विता मिश्रितास्ते । अनन्तर हयगन्धाया मूले विवर
कृत्वा सप्तदिनसुधितैर्महातकादिभिलिप्त लिङ्गमित्यन्वय । कोहरा लिङ्गम् १-मिहधीमलेन मिथत पूर्व मर्दित पूर्वम् । एतेनादौ महिधीमलेन लिङ्ग सम्मर्थ पश्चाद्
महातकादिभिलिप्त लिङ्ग लघुकृतगर्देमलिङ्ग मवतीति ॥ १६ ॥

नीलात्पलसितपङ्कजकेशरमधुकशर्करावलिप्तेन। सुरते सुचिरं रमते दढलिङ्गो भवति नाभिविवरेण॥२०॥

' इदानीं वाजीकरखप्रसगात् वीर्व्यंस्तम्भनमाद्द नीलोत्पलेत्यादि—नीलोत्पल-श्रेतपद्मयो केशरम् । प्रि सर्वे पिष्टैर्नार्भि लिप्त्वा चिरकाल कामुको रमत इत्यर्थः । नातिविवरेखेति पाठे अतिकान्ति-अद्वेख ॥ २०॥ सिदं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते । चरणाभ्यक्षेन रतेवींजस्तम्भाद् दढं लिङ्गम् ॥ २१ ॥

सिद्धमित्यादौ--भूमिलता किन्चुलुक., तया मिश्रित कुसुम्भवीजस्य तैल सिद्धमिति पक्षमित्यर्थः ॥ २१ ॥

> सप्ताह छागसिललसंस्थं करभवाक्णीमूलम्। गाढोद्वर्त्तनविधिना लिङ्गस्तम्मं रते कुकते॥ २२॥

मप्ताहमित्यादि--धागभवसित छागमूत्र, करभवारुणी उष्ट्रक्रयटका., गङ्गा-पालोद्गति केचित् ॥ २२ ॥

> गोरेकोन्नतश्रद्धत्वग्भवचूर्णेन धूपितं वस्त्रम् । पारिधाय भजन् ललनां नैकाएडो भवति द्वर्षार्तः ॥२३॥

इदानीं कुप्रयोगकृतध्वजभङ्गचिकित्सामाइ गोरित्यादि—यस्या धेनेरिक शृक्षः मुन्नत भवति तत्त्रक्चूर्येन धूपित वस्त्र परिधायेलर्थः। यः पुरुषो नियमेन एकस्त्री-गामी स्त्र्यन्तरगमने तु ध्वजोत्थान न भवति स एकायङ उच्यते॥ २३॥

> समतिलगोन्जरचूर्णं छागीन्तीरेण साधितं समधु। भुक्तं न्तपयति पागुड्यं यज्जनितं कुत्रयोगेण ॥ २४॥

समेत्यादि--- अत्र निरतुपतिलगोच्चरवीजचूर्यं च्छागदु ग्येरुत्कारिका साधायित्वा शीते मधु दत्त्वा भच्चयेत् । पायट्य लिङ्गानुत्यानम् ॥ २४ ॥

> योगजवराङ्गवदं मथितेन खालित्यं हरति। उन्मुखगोश्टङ्गोद्भवलेपो योगो ध्वजभङ्गहरः॥ २४॥

कुप्रयोगेण लिक्षानुत्थान यत् तिचिकित्सामाह योगेजलादि—मधितेन घोलेन उन्मुखेत्यादि—कदर्ध्व मुख यद्धेनोः शृक्षम्, न तु वलीवर्दस्य । कद्ध्वंमुखस्नी-गवीशृक्षेण लेपन लिक्षस्य ॥ २५ ॥

> कुष्ठैलवालुकैलामुस्तकधन्याकमधुककृतः कवलः। श्रपहरति पूतिगन्धं रसोनमदिरादिजं गन्धम्॥ स्नौद्रेण बीजपूरत्वग्लीढाधोवातगन्धनुत्॥ २६॥

> > इति वृष्याधिकारः।

वमन्तं शोधन प्रति" इति । अत्र साधारणा इत्यनुद्भृतोष्णशीतवर्षा इत्यर्थः । शुक्रनभावित्यापाढश्रावणी, प्रावृहित्युक्तम्, अत्यर्थ निर्देशात् शुक्रशब्द आपाढवचने।ऽपि
हेय । किंता शुचिनमाविति पाठ । कर्जसहौ कार्तिकमागंशीणीं, तपस्य फाल्गुन ,
मधुश्चेत्र इति । वर्षान्त इति रारिद । अन्त्यौ वसामज्जानौ । भाधव इति वैशाखो न
साधारणऋतुमध्ये पठित किन्तु फाल्गुनचैत्ररूपो वसन्त एव, तथापि प्रभृतकफत्या
केष्ट्रपानविषयत्वेनात्र नोक्त , वैशाखस्तु बलचयधातुष्वयकारक इति । अत्र बल्यो
धातुकारक. वसामज्जप्रयोगो युक्त पवेत्यर्थः । अन्त्यावित्यपि पाठ । कृत पुनरुक्तममय
एव केष्ट पिवेदित्यत आह कार्य्यवशात् तु तदिति मशोधनरूपप्रयोजनवशात् ।
सशोधन साधारण ऋतौ उत्सर्गतो विधायते तेन तब्द्वविशेष केष्ट्रपानमिप तत्रैवेत्यर्थे ॥५॥

वातिपत्तिधिको रात्राबुण्णे चापि पिवेन्नरः। श्रेष्माधिको दिवा शीते पिवेचामलभास्करे ॥६॥

इदानीमात्यिकातद्गगृहीतेनात्युष्णशीतेऽपि यथा स्नेहपान निधेय तथा दोषनिशेष च यथा स्नेहपान तदाह बातिषित्ताधिक इत्यादि—वातश्च पित्तद्भ बातिषित्त
तदिषको वातिषत्ताधिक । रात्राविति सायम्, उच्छे भीष्मे, रूष्माधिकश्च गृहोते ।
श्वतिकारवसामज्जगृहीतपुरुपोपलच्चण, तेन वातरुष्माधिक रुष्माधिकश्च गृहोते ।
श्वतप्त सुश्चतेऽप्युक्तम्—''वातिषत्ताधिको रात्रौ बातरुष्माधिको दिवा'' इति ।
केवलवाताधिकस्य तथा पित्ताधिकस्य तथा रूष्माधिकस्य साधारणे च शरदादौ कोल
उत्मर्गामिद्ध एव । पानकालो वद्यमाणः । वद्मिति हि—पिवेत् सशमन सेहमन्नकाले
प्रकाव्यित इत्यादि । व्याख्यान्तर्यन्य श्रमदियन्यकतत्त्वप्रदीपिकायामनुसन्धेयम् ।
श्रमलभास्कर दित दुद्धिनच्युदासार्थ मध्याह्म्महणार्थं वा ॥६॥

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्कि चिन्तकाः।
चृद्धाः वालावलकृशा रूच्चांणास्वरेतस ॥
वातार्चस्यन्दातिमिरदारुणप्रतिरोधिनः ।
स्वद्धा न त्वतिमन्दाग्नितीन्णाग्निस्थूलदुर्धलाः ॥
उत्तर्स्तम्मातिसारामगलरोगगरोद्दैः ।
मूर्व्याच्छर्धरुचिन्श्रेष्मतृष्णामाद्यस्य पीडिताः।
स्रामप्रस्ता युक्ते च नस्य वस्तौ विरेचने ॥७॥
ध्वानी स्वद्यादि—नामस्स्य । स्वद्या दिते स्वद् । स्वद्या इति

स्वेदाहां:। एव मशोध्या इति वमनादिसशोधनयोग्याः, मद्या इति मद्यादिष्वासका , चिन्तकाश्चिन्तावहला । अवल इत्यक्तशोऽपि यो वलरिहत । क्रश इति मासोपच-यहानः । सीयास्ररेतस , सीये रक्तग्रुक्ते येपा ते सीयास्ररेतस , वातार्ता वातरोगिया.। स्वन्दोऽभिष्यन्द म च पुरायोऽभिषेत । दारुयो दुःसाध्यः, प्रतिवोधो जागरयाम् अत्यन्तजागरयाशील इत्यर्थः । अन्ये तु कृच्छ्रोन्मीलनयुक्त इत्यर्थ । असेध्यानाह न त्वित्यादि—अतिशच्दो, दुर्वलान्तेषु प्रत्येक योज्यः । अतण्वालपयला. सेव्या न त्वतिदुर्वला इति न पूर्वापरविरोध । आमप्रस्ता इत्यपरियतगर्भसावयुक्ता इत्यर्थ.। वाग्भेट त्यपप्रयुत्तत्यरुष. पठित व्याचेट च स्नुतगर्भेति, सुश्रुतेन अकाले च प्रस्ता स्नीत्युक्तम् । युक्त इति तत्कालप्रयुक्ते ॥ ७॥

स्नहसातम्यः क्लशसहो हटः काले च शीतले। श्रच्छमेव पिवेत् स्नहमच्छपानं हि शोभनम्॥ ८॥

श्र-इक्षेष्ट्वानिषयमाह केहत्यादि—सुश्रुतस्य । दृढ इति वलवान् , काले च शीतल इति यथि पूर्योक्तमाधारणकाल एव केहिवपयस्तथाप्यास्यायिकविकार-वशात् यदि शीतले काले केहिपयोग कर्षच्यः स्यात्, तटाच्छमेन पिवेदित्यर्थ । श्रन्थे तु दृढ इति पदं दूरीकृत्य काले चानितशीतल इति पठन्ति । श्रच्छ इत्यादि-नास्य सम्बन्ध ॥ = ॥

पिवेत् संग्रमनं स्नहमन्नकाले प्रकाङ्चितः।
शुद्धवर्थं पुनराहारे नैशे जीर्णे पिवेन्नरः॥
श्रहोरात्रमहः कृत्कं दिनाईश्च प्रतीचते।
उत्तमा मध्यमा हस्वः स्नहमात्रा जरां प्रति॥
उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाचैश्च मध्यमे।
जघन्यस्य पलाईन स्नहकाथ्यौपधेपु च॥ ६॥

सम्प्रति सशमनस्नेहस्य सशाधनार्थस्नेहस्य च पानकालमाह पिवेदित्यादि——
सशमनिमित न शोधयित यद्दोपान्, तथा सशोधयित सशोधयित यद्दोपानित्याधुक्तलच्चणम् । श्रप्तकाले दिप्रहरादिचर्ये तत्र द्वसुचा कदाचित्र स्यादिति तदर्थे प्रकाइक्ति इति विशेषणम् , शुद्ध्यर्थन्त स्नेह थिन्दुष्टतादिकम् , नेशे निशान्तरकृते चाहारे जीर्थे सित प्रातरेन पिवेदित्यर्थः । श्रयमत्राभिसन्थि , सशमनार्थः सेहो यदि
जरणान्ते प्रातरेन क्रियते तदा कोष्ठे।पेलपकदोपस्याचयात् तेन दोपेण सह स्नेह
उत्सोश कुर्यात् न तु दोपनशमनम् , श्रतपन संशमनोऽत्रकालेऽभिहितः । सशोधना-

र्थस्त सेहो दोपोत्तेराकर एवापेक्ति इति दोपरापावस्थायामेव प्रात काले तत्पान युक्तमिति। एतक्ष कालकथनमुत्सर्गत, तेन वातिपत्तिभिको रात्रावित्यपवादिवपयन्यति-रिक्त एवास्य विपयो भ्रेय । सहमात्रायास्त्रिविध्यमाह—अहोरात्रिमित्यष्टप्रहरोपलक्त्यम्, एवमह कृत्स्त्रमिति तत्प्रहरचतुष्टय दिनार्द्धमिति तत् प्रहरदयमुपलक्त्यति, अतए-वोक्त वाग्मेट 'द्रास्या चतुभिरष्टाभियांमैकींव्यन्ति या क्रमात् रत्यादि। तेन प्रहराध-तीतेऽपि दिने मात्रा पीता यथोकतप्रहरादिकालप्राप्त्या दिनान्तरे रात्री वा जीव्यमाचा मन्तव्या यदा पुनरहोरात्रपरिखामिनी मात्रा कियते तटहराहारो न कार्यः। अत्रपत्र चरके उत्तममात्रा स्त्रहपाविषयपुरुषमित्रित्योक्ता । च्रित्पपासासहा इति । अनया तु चरकपरिभाषया प्रायो न व्यवहर्गन्त वृद्धा । तेन उत्तमादिपुरुषाचा स्नहमात्रां प्रति वृद्धव्यवहारिक्रस्तमाह उत्तमस्येत्यादि ॥ १ ॥

जलमुण्णं घृते पेयं यूपस्तैलेऽनुशस्यते । वसामज्झोस्तु मगड स्यात् सर्वेषूण्णमथाम्बु वा ॥ मल्लाते तौवरे स्नेहे शीतमेव जलं पिवेत् । स्नेहपीतस्तु तृष्णायां पिवेदुष्णोदकं नरः ॥ पवञ्चानुप्रशाम्यन्त्यां स्नेहमुष्णाम्बुने। स्रेत् ॥ १०॥

श्रनुपानमाह जलमित्यादि—श्रन्विति अनुपान । मर्वेपूष्णमथाम् वेति यदुक्त तदपवादमाह भद्वातेत्यादि—भद्वाततुवरयो स्नेह इति विश्रष्ट । तुवरो वृच्चित्रेष पत्पक्तसवरनेह । द्वरो वृच्चित्रेष पत्रेस्त केराराकारे फले सर्वप्रसाधिम । वृच्चतुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरज " इति । पीतरनेहे यदि तृष्णा स्याद तदा तत्र प्रतीकारमाह स्नेहपीत इत्यादि—पीतस्नेह इत्यर्थः । उद्धरेदिति वेमत् ॥ १०॥

मिथ्याचाराद्वद्वत्वादा यम्य क्रेहो न जीर्थिति । विष्टभ्य वापि जीर्थ्यंतं वारिग्रोप्णेन वामयेत् ॥ तत क्रेहं पुनर्दद्याक्षघुकोष्ठाय देहिने । जीर्णाजीर्णविशङ्कायां पिवेदुष्णोदकं नरः ॥ तेनोद्वारा भवेष्ठुद्धो चिक्षानं भवेत् प्रति ॥ ११ ॥

श्रविधिपीतस्नेद्द्वज्यापदः प्रतिकारमादः मिथ्याचारादित्यादि---सुश्रुतस्य । मिथ्याचारादिति शीतक्षोमादिसेमनाद् यथाविध्यनुपयोगाद् वहुत्वादित्यातेमात्रत्वाद विष्टभ्य मलादिरोध कृत्वा, जीर्थाजीर्थशङ्का चालपत्नेहानशेषेण श्रेया ॥ ११ ॥ भोज्योऽशं मात्रया पास्यन् श्वः पिवन् पीतवानपि । द्रवोष्णमनभिष्यन्दि नातिस्तिग्धमसङ्करम् ॥१२॥

इदानी लेहमपेस्य कालत्रयहितमाहारमाह भोज्य इत्यादि—वाग्मटस्य । पत्र तिरमिति शेषः । श्र इत्यागामिदिने लेह पास्यन् तथा तिस्तित्रेन दिने तिह पिनन्, तथा पीतनानिष य पुरुषः स मात्रया अन भोज्य. भोजयितन्य इति । कीट्रामन भोजयितन्यमित्याह इनोष्णमित्यादि—अनिभिष्यन्दीति न होतोऽनरोधक असद्भरमिति न सयोगिनरुक्त्म् । निश्चलस्तु पास्यितित्यत्र पाष्यमिति पठित्ना पाय-यितन्य लेहिमिति शेष इत्याह, किन्तु चरके—द्रनेष्णमनभिष्यन्दि भोज्यमन्तरम्पत्रमायतः । नातिलिन्ध न सद्भीर्णं सतेह पातुमिन्छितिः शिष्यानाभटपुस्तकेन्ष्यि गहुराः पास्यनित्येन पाठः टीकाकृद्धि न्याख्यात इति ॥१२॥

ज्यहावरं सप्तदिनं परन्तु स्निग्धो नरः स्वेदयितव्य इष्टः। नातः परं स्नहनमादिशन्ति सात्म्यीभवत्सप्तदिनात् परन्तु॥ सृदुकोष्ठस्तिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोपसेवया॥ स्निद्यति क्ररकोष्ठस्तु सप्तरात्रेण मानवः॥१३॥

पञ्चकर्माङ्गरेहप्रयोगाविधकालमाह श्वष्टावरिमत्यादि—स्यहेख व्यह ध्याप्य कियमाखलेहनेनावरम् कथम यथा स्यात् तथा तिग्धो नर स्वेदियतव्यो भवति । एतच मृदुकोष्ठाविपयकम्, उक्तव्य—मृदुकोष्ठाकिरापेख तिष्ठातीति। तथा सप्तदिन ध्याप्य पर सप्तदिनरूप वा अपरमुत्कृष्ट यथा त्यात् तथा तिग्धो नरः स्वेदियतव्यः। एतच मृदुकोष्ठविपयकम्, उक्तव्य—तिष्ठाति कर्रकोष्ठस्य सप्तराप्तेण मानव रित। मध्यकोष्ठ प्रति तु तेष्ट्वप्रकर्षकालो यपि नोक्तस्तथापि चतुरहादिना मध्यकोष्ठस्य लेहन श्रेयम्। यदाह सुश्रुत — "पिवेष् त्र्यह चतुरह पश्चाह वा" इति उक्तसप्तदिनरूपलेहन-कालानिकम सोपपत्तिकमाह नातः परिमत्यादि — अत परिमति सप्तदिनात् परम्, कुतो नोपदिशन्तीत्यत झाह सात्य्योभवेदिति । सुश्रुतेऽप्युक्त—"सप्तराप्त्रात् पर लेह सात्योभावाय कल्पते" इति सप्तराप्तात् परेख कियमाख तेष्ट सप्तराप्त्रयोगेख सात्यीभृतत्वाद न तेष्ट्वमाधिक करोतीत्यर्थ । तेन यावन्मात्रलेहप्रयोगेख सप्ताहोप-युक्तन तेष्ट्व न भूत मात्रयाऽल्पत्वाद्मा मात्रा सप्तत्यात् पर न प्रयोक्तव्येव तस्याः तेष्टमात्रायाः सात्य्यीभृतत्वाद । या पुनराधिका मात्रा सात्य्यता न यता सा सप्ताहाद्मा

परमिष लेहनार्थं कर्तन्येव । मृद्धास्तु यदि सप्तराप्तेणापि पुरुष लिग्धो न भवित तदा कि जिद्य विश्राम कृत्वा पुनरिषकमात्रया लेह प्रशुक्तते। ननु यदि कृरकोष्ठः सप्तराप्त्रेण लिह्यतीति न्यवस्था तत् कथिम नात पर लेहनमादिशन्तीत्यनेन सप्तराप्त्रेण लिह्यतीति न्यवस्था तत् कथिम नात पर लेहनमादिशन्तीत्यनेन सप्तराप्त्रेण लिह्यति, परन्तु करकोष्ठ-तामपेन्य कृतया लेहमाश्रया लिह्यति, यदा तु हीनमात्रा प्रयुज्यते तदा सप्तराश्रणिप न लिह्यतीति । यत् तु तन्त्रान्तरे—"तत् शिरात्रवरात्राथि लेहपान विधीयते" हत्यनेन सप्तरात्राद्द्धमिष लेहन विहितम्, तदि सात्य्यीमृतहीनमात्रापेण्यैवाधि-कमात्रामिप्रायेण ह्रेयन् । अत्र च सप्तरात्राद्द्धमें लेहप्रयोगस्य निषेधात् त्यहादर्वाक् प्रयोगस्य चानिषेधात् स्थ लेहप्रयोगे एकदिनेनापि लेहममनुजानाति । यस्तु क्षित्रनृदुकोष्ठ प्रति व्यहादूद्धं न लेहन कर्त्तन्य सात्य्यीमावादिति चार्थोऽत्र लमत हित, यद्व्याख्यानयन्ति तत्न, यत सात्यीमाव सप्तदिननिर्वर्यतयैवाचार्य्ययोक्त । तेनालपमात्राप्रयुक्तेन स्नेहेन त्र्यहाद् यदि न लिह्यति मृदुकोष्ठस्तदाधिकदिनान्यपि तत्र लेह कर्त्तन्य प्रतेश्यर्थ । मृदुकोष्ठादिलच्चयमाह मृदुकोष्ठसादि—यिक्ररात्रेण लिह्यति स मृदुकोष्ठ ह्लादि न्याख्येयम् । मध्यकोष्ठलच्चयन्तु यद्यपि नोक्त तथापि मध्यविधया चतुरहादिना य लिह्यति स मध्यकोष्ठ हित श्रेय ॥१३॥।

क्षिग्धस्त्र्यहं स्थित कुर्याद्विरेकं वमनं पुन । एकाहं दिनमन्यच कफमुत्क्षेश्य तत्करैः॥ क्षिग्धद्वोष्णुधन्वोत्थरसमुक् स्नहमाचरन्॥१४॥ 77

इदानीं सशोधनस्लेहपाने कर्षांन्ये यदिधेय तदाह क्षिण्धेलादि—नाग्मटस्य । स्निग्धस्त्र्यह स्थित इति स्निग्धो मूला त्रिदिन परित्यक्तस्त्रेहपान सन् विरेक क्षुर्यात् विरेचनीषध पिवेदिल्थं । एकाहमिल्यत्रापि स्थित इति थींच्य, तेन स्निग्धो मूला एकाह स्थित इति परित्यक्तस्त्रेहपान सन् दिनान्तरञ्च कफकरैप्रीन्यान्परसादिमि कफमुत्केश्य प्रवृत्त्युन्युल कारियत्वा वमन कुर्य्योदित्यर्थ । इदानीं स्तेहोपरमिल्यात्र एव यदिधेयस्तदाह स्निग्धद्रवीव्यात्यादि—स्नेह-माचरित्रत्यत्र स्तेदमारमित्रल्यि पाठ । स्तेहोपरमिल्यात्रे स्तेहपानिनेषधस्योक्तत्वात् चरकेऽप्युक्त—"स्तेहात् प्रस्कन्दनो जन्तुिसरात्रोपरत पिवेत्।स्नेहन्न द्रवमुष्णञ्च व्यह मुक्वा रसीदनम् । एकाह परतस्तद्वद्मुक्वा प्रच्छर्दन पिवेत्" इति ॥१४॥

वातानुलोम्यं दीप्ताशिर्वर्च स्निग्धमसंहतम्। स्नेहोद्रेगः क्नमः सम्यक् स्निग्धे कत्ते विपर्य्ययः॥ श्रितिसिग्धे तु पाएइत्वं घ्राणवक्त्रगुदस्रवाः । रूक्तस्य सेहनं कार्य्यमितिसिग्धस्य रूक्तण्म् ॥ श्यामाककोरदूपान्न-तक्रिपिण्याकशक्रुभि ॥१४॥

सम्यविरनग्धस्य तथा रूषस्य तथातिरिनग्धस्य च लक्षणान्याए वातानुलोम्य-मिलादि—वाग्भटस्य । असएतमिलकाठिनम् । स्नेहोदेगोऽनिच्छा, क्षमो ग्लानि । सुमुते—ग्लानि: सदनमङ्गानामित्युक्तम् । रूत्वण स्थामाकादिभिरित्यन्वय ॥१५॥

वालवृद्धादिपु स्नेहपरिहारासाहिष्णुपु । योगानिमाननुद्धेगान् सद्यः स्नहान् प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ इदानी विषयाभिधानपूर्वक सब स्नेहयोगानाह् बालेत्यादि—नाग्मटस्य । श्रनुदेगानित्यवैराययजनकानित्यर्थः ॥ १६ ॥

भृष्टे मांसरसे स्निग्धा यवागूः स्वरूपतएहला।
सन्ताद्रा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते॥
सिप्सितलवसामज्जतएहलप्रस्तैः श्रुता।
पाञ्चपास्तिकी पेया पेया स्नेहनीमच्छता॥
सिप्पिती वहुतिला तथैव स्वरूपतएहला।
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते॥
शर्कराष्ट्रतसंस्रेष्ट दुह्याद्वां कलसेऽथवा।
पाययेद्रू स्मेतिक सद्यः स्नेहनमुच्यते॥ १७॥

मृष्ट इत्यादि—सुश्रुतस्य । भृष्ट इति सन्तिलेते, मासरस इत्यनन्तर सिद्ध इति रेाप । स्वल्पतण्डलेत्यत्र सुकाल्पितेति पाठान्तरम् । सिपिरित्यादि—प्रसृत पलद्भय, पेथेति पातन्या। सिपिप्यतीत्यादि—सुश्रुतस्य । बहुतिलेत्यनेन निस्तुपतिलाना त्रयो भागा , ण्कस्तण्डलानामिति । इयन्च सुखोष्णा योज्या सुश्रुते तथेवोक्तत्वातः चक्रेण प्रतिसस्कृत्य लिखितमेतत् । तत्र हि तथैवेत्यत्र यवागूरिति पठ्यते । शर्करेत्यादि—सुश्रुतस्य । रूजमिति पुरुषविशेषण्यम् ॥ १७॥

त्राम्यान् पौदकं मांसं गुडं दिध पर्यास्तलान्। कुष्ठी शोथी प्रमेही च स्नेहने न प्रयोजयेत्॥ स्नेहर्यथास्वं तान् सिद्धैः स्नेहयेदिवकारिभिः। पिष्पलीभिर्दरीतक्या सिद्धैक्षिफलया सह॥ स्नेहमेग्रे प्रयुक्षीत ततः स्वेदनमन्तरम् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथान्तरम् ॥ १८॥ इति स्नेहाधिकारः॥

येषु व्याधिषु स्तेहनार्थं यानि द्रव्याणि न प्रयोज्यानि तान्याह ग्राम्येत्यादि— स्तेहन इति स्तेहनिमित्तम्। तिर्हे ते कै स्तेह्या इत्याह स्तेहिरित्यादि—यथास्वमिति यो यत्र स्तेहो युज्यते सिंपरादि , सिंदैरिति तत्तव्याधिहरत्नेन प्रसिद्धे , सिंदैरिति पिप्पल्यादिमि. प्रत्येक योज्यम् , पिप्पल्यादिसिद्धा स्तेहा कुष्ठादिषु यथासङ्ख्य-मिति केचित् , तन्न, वाग्मटे व्यतिक्रमेणामिथानात् यथा—"गुहान्पामिपज्ञीरितल-मापसुरादिष । कुष्ठशोथप्रमेहेषु स्तेहनार्थं न कल्पयेत् । त्रिफलापिप्पलीपथ्यागुग्गु-ल्वादिविपानितान् । स्तेहान् यथास्वमेतेषा योजयेदिविकारिणे " इति । स्तेहादिषु स्तेहस्य प्राग्मावमाह स्तेहिमत्यादि—स्पष्टम् ।

इति स्लेहाधिकार ॥

अथ स्वेदाधिकारः।

वातश्रेष्मिण वाते वा कफे वा स्वेद इण्यते।
क्रिग्धकत्तस्तथा स्निग्धो कत्तश्राप्युपकलिपतः।
व्याधौ शीते शरीरे च महान् स्वेदो महाबले।
दुर्वले दुर्वलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः॥
श्रामाशयगते वाते कफे पकाशयाश्रये।

रूचपूर्वो हितः स्वेदः स्नेहपूर्वस्तथैव च ॥ १ ॥

स्नेहमग्रे प्रयुक्षीत तत स्वेदनमन्तरामित्युक्षे स्नेहानन्तर स्वेदमाह—तत्र दोपविशेपापेष्ठया स्वेदस्य कल्पनामेदमाह वातेत्यादि—अत्र वथासख्यमन्वय । स्निग्धरूच इति स्निग्धरूचंद्रव्यकृतत्वात् । रोगाष्टपेष्ठयापि स्वेदस्य कल्पनामेदमाह व्याधावित्यादि—व्याधौ महावले महाशीते शीतलकृते महाशीतले तथा शरीरे च महावले महानिति मृदुमध्यस्वेदापेष्ठया प्रचय्डतापत्वेन कालबाहुल्येन च। एव दुर्वल इति मध्यम इति च न्याख्येयम् । वाते स्निग्ध कफे रूच इति यदुक्त तस्य देश-विरेषापेचया न्यभिचारमाह भागाशयेत्यादि—वाग्मटस्य । भामाशय इति कफ-स्थानोपलचयाम्, भन्नापि यथासड्ख्यमन्वय , तेन कफस्थानपेचया पूर्व रूचसेवद कृत्वा पश्चाद्वातापेच स्निग्धसेवद कार्य्य । तदुक्त स्थान वयेदि पूर्वमिति । पव पकाशयगते स्नेहपूर्व इति न्याख्येयम् ॥ १ ॥

वृषणौ हृद्यं दृष्टी स्वेद्येन्मृदु वा न वा। मध्यमं वङ्त्त्रणौ शेषमङ्गावयविमष्टतः॥ २ ॥

श्रस्तेथदेशानाह वृपयानित्यादि—यदि वृपये स्वेदः क्रियते तदा तत्र प्रत्या-सन्नशुक्तवहस्रोत्तस उपघातात् कावत्व स्यात् । इत्यस्याप्योजः चयप्रमङ्गात् । इच्ट्या तर्पयोक्ष्यमञ्चयात् तिमिरमान्ध्य वा मनेदिति । मृदु वा न नेति स्वेदैकसाध्ये वृषया-दिगते व्याभौ मृदु स्वेदयत् । स्वेदव्यतिरिक्षोपायान्तरसम्मने तु न नेति बोध्यः । इप्टत इत्यातुरेच्छातो वैधेच्छातश्च । इप्टत इति माने का ॥ २॥

न स्वेदयेदतिस्थूलरू च दुर्वलमू चिंछतान्।
स्तम्भनीय च तक्षीण विषम द्यविकारिणः॥
तिमिरोद्दवीसर्पकुष्ठशोषा द्यरोगिणः।
पीतदुग्धद्धिस्नेहमधून् कृतविरेचनान्॥
भ्रष्टदग्धगुदग्लानिकोधशोकभयार्दितान्।
चुनुष्णाकामलापा गढमेहिनः पित्तपी डितान्॥
गर्भिणीं पुष्पितां स्तां मृदुर्वात्ययिके गदे॥ ३॥

श्रस्तेवानाह न स्वेदयेदित्यादि—वाग्मटस्य । श्रातिस्थूलरू चुर्वं लचियानां स्वेदासहत्वाद प्रायोपरोधः, मूर्व्छिताना पित्तवृद्धया मूर्व्छेव मनति । स्तम्भनीया वम्यतिसारपाडितादयः एपा स्वेदात् पित्तवृद्धया रोगवृद्धि स्यात् । च्यतस्य स्वेदा-द्रक्षातिप्रवृत्ति , विपमयिविकारियामपि पित्तवृद्धया तयोरिप महान् वेग , तिमिरे तर्पक्छेष्मचय , उदरे श्रत्युष्णादिनिदानस्वेन तद्वृद्धिरेव, विसर्पकुष्ठयो रक्षदृष्टिः एवमाद्ध्यरोगे, श्राद्ध्यरोगो वातरक्त, शोषे रसादिचयः । पीतदुग्धादी उत्वत्तेशादय , कृतविरेके पित्तवृद्ध्या तद्वियोग , श्रष्टगुदो ग्रदश्रशी दग्धगुद चाराग्न्यादिभि ग्रदश्रशदाह्यो पित्तवृद्धया सरत्वेन क्रमेण तयोरेव वृद्धि , चुधाया विद्ववृद्धया धातुपाकः वृष्ण्या पित्तवृद्धिः, कामलापायट्वोक्ष पित्तवृद्ध्या तद्वृद्धिः, गर्भिण्याः गर्भव्या-पत्ति , पुष्पिताया रजोऽतियोगः । स्तामित्यपस्ता प्रस्नुतगर्भामिति यावत् । श्रस्या-

न्तु स्वदात् रक्तानिप्रवृत्ति स्यादिति भावः । सम्यक्ष्रस्तायास्तु न्नेदिविधानमध्ये वस्यति । एषु च मेदसादिषु यदि न्वेर्टकमाध्य मन्न्यासादिर्भवति तदा महाप्रत्यः वायमयारुत्यप्रत्यवायस्रोपस्यापि सृदुम्वेदो विषेय स्त्याह सृदुर्वास्यविके गद इति॥३॥

स्वेदो हितस्त्वनाग्नयो वाते मेद्-कफादृते। निर्वातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम्॥ उपनाहाहवकोधभृरिपानचुधातपाः। स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादृते॥४॥

श्रनाग्नेयस्वटम्य विषयमाह स्वेदो हित इत्यादि—वाग्मटस्य । श्रनाग्नेयस्वेदा-नाह निवानिमस्यादि—वाग्मटस्य । उपनाहो वहलो लेप. म हि बहुलत्वेन गरीरोप्मरोध कृत्वा स्वेटयिन । मृरिपान मधस्य ॥ ४ ॥

> शीतग्रुलब्युपरमे स्तम्भगौरवनित्रह । सञ्जाते मार्दवे स्वेडे स्वेडनाडिरतिर्मता ॥ ४ ॥

स्वेदस्य मन्यग्योगलस्यामाह गोतित्यादि—स्वेटे घर्मे, स्वेदनादिति प्रस्वेद-द्रव्यात् । श्रत्र शीनाघपहारस्य स्वेदस्य मन्यग्योगलस्यलेन शीताहेर्थयोऽनुपरम-स्य स्वेटामन्यग्योगलस्यलसुक भवति । सुश्रुनेऽप्युक्त—'' स्वेदलावो व्याधिहा-निर्संयुन्य शीतादीना मार्टवञ्चातुरस्य । मन्यक्स्वित्रे लस्चय प्राहुरेतत् मिथ्यास्वित्रे व्यत्येयम भवेत्तत् " इति ॥ ५॥

स्काटोत्पित्तः पित्तरक्षप्रकोषो

मदो मृच्छी स्रमटाहौ क्षमश्च ।
श्चितिस्वेट सिन्धपीडा तृपा च

क्षियाः शीतास्तत्र कुर्य्याद्विधिकः ॥
सर्वान् स्वेटान् निवाते तु जीर्णात्रे चावचारयेत् ॥ ६ ॥
नेवरातियोगलवण चिकित्सिनज्ञाह स्कोटेलाटि—सुशुतस्य । सेदा यत्र यथा

प्रवोज्यास्तानाह मर्वानित्यादि—सुशुनस्य । जीर्थेऽत्र दलुत्संगन्तेन विष्टन्थाजीर्णादी
यद नेवरिवधान विष्टच्ये सेदन कार्य्यमित्याटिनोक्क तदपवादतया न दुष्यतीति॥६॥

येपा नस्यं विधातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् । शोधनीयास्तु ये केचित् पूर्वं स्वेद्यास्तु ते मताः ॥ पश्चात् स्वेद्या हते शल्यं मृहगर्भानुपद्रवाः । सम्यक् प्रजाताः काले च पश्चात् स्वेद्या विजानता । स्वेद्याः पश्चाच पूर्वश्च भगन्दर्य्यशसस्तथा ॥ ७॥

इदानों ये च स्वेदविषयास्तथा पक्षाद् ये स्वेदविषया ये कालद्वयेऽपि स्वेद-विषयास्तान् क्रमेखाद्य येपामित्यादि—सुश्रुतस्य । शल्य इति गर्भरूपशल्ये, अनुप-द्रवा गर्भस्नावाषुपद्रवादिरिद्धता । सम्यक्ष्रजाता सम्यक्ष्यता । स्वेद्या इति भगन्दरे-ऽशिसि च पूर्व स्वेदस्तप्तलीद्दशलाकया दाइरूप., पश्चात् स्वेदस्तु दाहानन्तरसुष्णो-दक्षेपवेशनरूपो ग्रेयः ॥ ७ ॥

तप्ते सैकतपाणिकांस्यवसनैः स्वेदोऽधवाद्वारकैर्लेपाद्वातहरैः सहाम्ललवणस्नेहैः सुखोष्णैर्भवेत्।
पवं तप्तपयोऽम्बुवातशमनकाथादिसेकादिभिस्तप्तेस्तोयनिषेचनोद्भवबृहद्वाष्पैः शिलाद्यैः क्रमात्॥
तापोपनाहद्ववाष्पपूर्वाः स्वेदास्ततोऽन्त्यप्रथमौ कफे स्तः।
वायौ द्वितीयः पवने कफे च पित्तोपसृष्टे विहितस्तृतीयः॥॥॥
इति स्वेदाधिकारः।

सुश्रुते तापवाणीपनाहद्रवभेदेन चतुर्विधस्वेद उक्तस्तानाह—तप्तिरित्यादना स्वारीरित्यन्तेन तापंस्वेदः । सिकतैन सैकतम् । सुश्रतेऽप्युक्त " तत्र तापस्वेदो नाम यः पाणिकास्यकन्दकपालवाद्यकावन्ते. प्रयुज्यते रायानस्य चाङ्गतापो बहुरा खादिराष्ट्रारेः " इति । लेपेत्यादिना सुखोर्ण्येरित्यन्तेन उपनाहस्वेदः । बातहरै-वंराहमासेर्भद्रदावादिभिक्ष काजिकादियुक्तः सुखोर्ण्येलेपात् यः स्वेद उक्तः स उपनाह इत्यर्थः । प्रवित्यादि—स्वेदादिभिरित्यन्तेन द्रवस्वेद , पर्यो द्रुग्धम् । सुश्रुतेऽपि "द्रवस्वेदस्तु वातहरद्रव्यकाथपूर्णे कोष्णकटाहे द्रोयया वावगाद्य स्वेद्येद । पत्र पयोमासरस्यूपतैलधान्याम्लध्तवसाम्श्रेष्ववगाहेत सुखोर्ण्यः कषाये परिपिद्यदिति । तप्तिरित्यादिना शिलाधारित्यन्तेन वाष्पस्वेद । शिलाधारिस्याधराव्दात्त कपालेष्टकालोद्दिना श्रद्धणम् , अस्यैव विशेषण्य तोयेत्यादि । सुश्रुते तु वाष्पस्वेदस्तु कपालपाषाणेष्टकालोद्दिपिग्दानिश्वर्यानिद्वरासिश्चेदित्याष्टुक्तम् । प्षा स्वेद्या विषयमाद्य तत इत्यादि । सप्तम्यन्तात् तसि । तेषु स्वेदेषु मध्ये स्वाधन्त-रवेदौ वाष्पस्वेद-तापस्वेदौ कपे स्त । दितीय इत्युपनाद्यो वायो, तृतीय इति द्रव-

स्वेद , पिचोपस्टे वाते कफे च भवति । सुश्रुतेऽप्युक्त " तत्र तापे। भस्तेदौ विशेष्पन स्प्रमां उपानाहम्बेदो वात्र अन्यतरिमन् पिचसस्टे द्रवस्तेद " इति। मनु पिचोपस्टे कथ स्वेदो वातस्याणि वाते वेत्यनेनैव विरोधात् १ उच्यते, पिच- युक्तेऽपि द्रवस्तेदिधानात् वातस्याणित्यादिवचन प्रायिक श्रेयमिति ॥ ६ ॥ इति स्वेदाधिकार-विश्वति.।

अथ वसनाधिकारः।

स्निग्धिस्वन्नं कपे सम्यक् संयोगे वा कफोल्वेण ।
श्वोवम्यमुत्क्षिप्टकपं मत्स्यमांसितलादिभिः॥
यथाविकारं विहितां मधुसैन्धवसंयुताम् ।
कोष्ठं विभन्य भेपन्यमान्नां मन्त्राभिमन्त्रिताम् ॥
भ व्रह्मद्वाशिवक्रेन्द्रभूचन्द्राक्षानिलानलाः ।
ऋपयः सौपधित्रामा भृतसङ्घास्तु पान्तु ते ॥
रसायनिमवर्पीणां देवानामसृतं यथा ।
स्रुथेवोत्तमनागानां भेपन्यमिद्मस्तु ते ॥"
पूर्वाहे पाययेत् पीतो जानुतुल्यासने स्थितः ।
तन्मना जातहस्लासप्रसेकश्ळुदयेचतः॥
श्रंगुलीभ्यामनायस्तनालेन मृदुनाथवा॥१॥

द्वानी रनेहस्वेदानन्तरीयत्वात् पञ्चकमां शि वक्तव्यानि । तत्र यद्यपि पञ्चक्ष-मंसु बन्नेरेव प्राधान्य, यदुक्तम्—''उपक्रमाणा मंबेषा सोयणी '' इति तथापि पञ्चकमणानीत्मिंगकप्रवृत्ती वमनविरेचनपूर्विकैव वस्तिष्रवृत्तिभेवतीति कृत्वा वमनवि-रेचने एव प्रथममभिधातव्ये, तत्रापि वमनपूर्वकत्वात् विरेचनस्य विरेचनात् प्राक् वमनमाद्द निन्धत्यादि—सम्यक्तिस्नधस्वित्र पुरुष भैषज्यमात्रा पूर्वाहे पाययेदिति वस्यमाण्यनात्वय । वमनस्य विषयमाद्द कफ इत्यादि—कफे केत्रलक्फे, कफोल्वण इति,कफप्रधाने । स्रो वन्यमित्याडि—स्व इत्यागामिदिवसे । सदि पुरुषो वन्यो वम-नाहों भवनि, तदा सत्पूर्वादिवसे मत्स्यादिभि कफ उत्किरानीय इत्यर्थ । उत्तिन ष्टकापाय दीयमान वमन न दु खमावहति, उक्ष हि—" क्षेप उच्छदंयति षादु.खम् " इति । मान्नामित्यनपायिपारमाःखम् । मधुमैन्धवसयुतामित्यनम सर्वरिमन्नव वमनयोगे मधुमैन्धवयोदेंयता बोधयति । कोष्ठ विभन्नेयृति कोष्ठाधेपत्तया
मधु सैन्धवद्य रते।क बहु वा देयमित्यर्थः । मन्नाभिमन्नितमित्युक्तमतो मन्त्रमाष्ट्
मधित्यादि । वमनौषधपानानन्तरीयविधिमाद्द पीत इत्यादि—तन्मना इति वान्तमनाः
अगुलोभ्यामित्यत्र परिकार्तितनखाभ्या कर्यस्मिस्पृशानिति शेषः । चरकेऽपि सुपरिलिखितनखाभ्या कर्यस्मिस्पृशानित्युक्तम् । अनायास्तेति ऋजुमृदुना, नालेनेत्युत्पलनोलन ॥ १ ॥

रुष्णेन्द्रयवसिन्धूत्थवचाकरकयुतं पिवेत्। यष्टीकषायं सत्तौद्र तेन साधु वमत्यलम् ॥ काथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपियत्वा जलाढके। चतुभीगावशिष्टन्तु वमनेष्ववचारयेत्॥ २॥

वमनविधिमभिधाय वमनयोगानाए कृष्णित्यादि — अत्र कृष्णादीना मिलित्वा कर्ष । यष्टिकपाय यष्टिमधुकषायम् । कपायाश्च काथ्यद्रव्यस्य कुष्ठव अपीयत्वा जला- ढके चतुर्मागाविशष्टन्तु वमनेष्ववनारयदिति परिभापया कार्य्य । नत्वत्र चतुर्मागाविशष्टन्तु वमनेष्ववनारयदिति परिभापया कार्य्य । नत्वत्र चतुर्मागाविशष्टः कपायः प्रस्थमात्रो भवति, चरके तु पूर्णं शराव पिवेदित्युक्तम्, अतो विरोधः, नेव चरके तु पूर्णं शराविमिति यदुकः तदेकशरावपानाभिप्रायेण, तेनेष् प्रस्थमात्रे कपाये रारावमेक पीत्वा शेषकपायभागो रच्नणीयोऽयोगे सित पुनः पानार्थमित्यभिप्रायः । प्रतच्च मात्राकथन मन्द्रवृद्धरनध्यवसायस्य स्यादित्येव कथ कियते इति वस्तुतस्तु कोष्ठावयेचयेव मात्रा कल्पनीयेति सिद्धान्तः । अत्यव्य कोष्ठ विभज्य मात्रामित्युक्तम् । सर्वत्रेव वमनयोगे उच्चीकरण् मधुसैन्थव शयम् । न चेष्णे मधु विरुध्यत इति वाच्य, वमनस्यापकस्येव छद्ध्वगमनात्, जठराग्निः पाके हि विरोधो भवति । वृद्धवेचास्तु अयोगे कदाचित् सम्भावनया न प्रिप्तपन्त्येव ॥ २॥

तग्हलसिललिनिष्पष्टं यः पीत्वा वमति पूर्वोह्वे । फिलनीवल्कलमुण्णं हरित गरं सकफिपत्तरजम् । चौद्रलीढं ताम्ररजो वमनं गरदोषनुत् ॥ ३॥

ŧ

तण्डुलस्तिलस्यनेन पानमपि तण्डुलजलेनैन । फलिनी प्रियङ्ग् , तद्रल्कल

कर्षमान मधुमैन्धेन श्रिप कपमाने । एनच दिष्ट्मात्र, तेन कोष्ठाचेपच्या स्नोक नतु वा क्रियते । पानार्थं तर्व्हुलमिलिकमिष शरानमात्र, पूर्णं शराविमायुके । इंदि-त्यादी—स्तायनाधिकारोक्ततात्रयोगनन्मारितपुटिननैपालतात्रचूर्णं रक्षिपञ्चक मधुना ' ममर्थं लेखम् । अस्य तात्रयोगस्य नमनकारकत्व नमनापधमानितत्वोद्देनित शेयम् ॥॥॥

पश्चकपायः

श्रादरूपं वचा निम्यं पटोलं फिलनीत्वचम् । काथियत्वा पिवेत्तीयं वान्तिकृत्मदनान्वितम् ॥ ४ ॥ श्राटरूपीमत्यादावीप पूर्वोक्तपरिभाषयेव काथ कर्णाय । महनफलन्तु कपमात्र प्रेचेप्यमित्याहु ॥ ४ ॥

> निम्वकपायोपेतं फलिनीगद्मद्नमधुकसिन्धृत्थम्। मधुयुतमेतद्दमनं कफपूर्णाशये शस्तम्॥ ४॥

निम्बकपायोपेनित्यादी-गड. कुष्टम् । फलिनीकुष्ठमधुकाना मिलित्वा नै कर्षे , मटनफलस्य च कर्षे , नैन्धवस्य मापकचतुष्टय, मधुने।ऽटी मापका इति प्रेचपन्यवस्था इत्याद्वः ॥ ५ ॥

> फलजीम्तुतकेदवाकुकुटजाः कृतवेधनः । धामार्गवश्च संयोज्याः सर्वेथा वमनेष्वमी ॥ ६॥

वमनयोगेषु यौगिकद्रन्याययाह फनिमलादि-फन महनफन, जीमूतको हेव-दाली घोषकेमद, इत्वाकुत्तिकतुम्बी, कृतवेधन ज्योत्स्निका, धामागैव. पीत-घोष । एषा जीमूतादीनाञ्च फलम् । एने च दोषाधेपेश्वया कल्मकाथादिकल्पनया वमनयोगेषु योज्या इत्यर्थ ॥ ६॥

> क्रमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः। हत्पार्थमूर्वेन्द्रियमार्गश्चदौ

तने लि घुत्वे अपि च लच्यमाण ॥ ७ ॥ ६ इदानीं वमनस्य सम्यग्योगलच्चणमाह क्रमादित्यादि—क्रमादिति वचनेन यथोकक्रमलचेणन क्रफाद्यागमन सन्यग्योगलच्चरामिनि वोधयति । यन क्रफादूद्भै यदा पिच गत स्याप् तदा तिपचागमने अपि नित्र शुद्धिः । किन्तु यदैवामाशया- भोमागगत पिच वमनमानयति तदैव शुद्धि । तच्च पिचानयनं क्रफानयनानन्तरमेव

भवीत । इयमेवात्यन्तिकी शुद्धिरच्यभिचारिखो । हत्पार्श्वेत्यादिना वमनस्य नैसः गिंकशुद्धिमाह । सम्यग्वमित इष्ट इत्यन्वयः ॥ ७॥

दुश्छर्दिते स्फोटककोठकएडू-

हत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रता च ॥ ८ ॥

दुरह्मदित इत्यादिना श्रक्षेश्लोकेनायोगकृतवमनलच्यमाह । हृत्याविशुद्धि-रिति-हृदयस्य तथा खानामिन्द्रियाया स्नेतसामशुद्धिरित्यर्थ ॥ = ॥ तृगमोहमूङ्गीनिलकोपनिद्राबलादिहानिवमनेऽतिविद्यात् ॥ ततः सायं प्रभाते वा चुद्धान् पेयादिकं भजेत् ॥ ६॥

त्यमोहेलादिना अनियोगलचणमाह—अतिविभित इत्यन्वयः। आदिशब्दे-नैव वर्णस्वरादिग्रहण, बलातिहानिरित्यिष पाठ । एतदनन्तर किं पथ्य देयं न वेति तानाए तत इत्यादि—यस्य मम्यग्योग चुधा च स्याद तदा सायम्, अन्यथा तु प्रात. पेयादिक भजेदित्यर्थ । भेलेऽप्युक्त—"विभित लहुयेद सम्यक् शुद्धिलिङ्गा-न्यलचयन् । तानि दृष्ट्वा तु पेयादिकम कुर्यान्न लहुयेद् " इति ॥ ६ ॥ पेयां विलेपीमकृतं कृतश्च यूषं रसं त्रिद्धिरथैकशश्च । क्रमेण सेवेत विशुद्धकायः प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ १० ॥

तमेव पेयादिक्तममाह पेयामित्यादिं—पेयादिल वर्ण ज ज्वराधिकार प्रवोक्त व्याख्यातञ्च । विलिप्तराच्दो विलेपीवचन । अकृतो यूव स्नेहाधसस्कृत , कृतस्तु स्नेहलवणादिसस्कृत, प्रव रसेऽपि कृताकृतव्यवस्था । उक्त च्च स्दर्शासे—"अस्नेहलवण सर्वमकृत करुकैर्विना । विश्वय लवणस्नेहकरुकै. सस्कृत कृतम्" इति । अस्नेहलवणमितीषत्स्नेहलवणयुक्तम् । अत्यवोपकल्पनीये तनुना तनुस्नेहलवणो-पपन्नेन मुद्गयूषेणत्युक्तम् । सस्कृतमिति वचनाच समग्रसाधन यावता भवति तावदेव लचणादिक कृते देयमिति बोधयति । अकृतकृतयोर्मध्ये अकृतो लघुर्मवतिः उक्त हि—"अकृताख्यो लघुस्तत्र तनु विष्टूयते स हि" इति । अकृत कृतचेतिः चकारोऽयमन्वाचयशिष्ट., तेन कृतस्यानैयस्य बोधयति, तत्थाकृतावव यूषरसौ लाधवादिसिनधुचणार्थं देयौ, कृतौ पुनरवस्थाविरोषादिति । अत्यवोपकल्पनीये तनुना तनुस्नेहलवणोपपन्नेनत्थनेन औदकलावाणिकृत्यनेन च अकृतयोरेव यूषरस्योवीन साचादुक्त, कृतौ पुनरवस्थाविरोषानियतत्वात्र साचादुक्तौ । त्रिरित्यक्तकाल-, व्यादीन साचादुक्त, कृतौ पुनरवस्थाविरोषानियतत्वात्र साचादुक्तौ । त्रिरित्यक्तकाल-, व्यादीन साचादुक्त, कृतौ पुनरवस्थाविरोषानियतत्वात्र साचादुक्तौ । त्रिरित्यक्तकाल-, व्यादीन साचादुक्तौ । त्रिरित्यक्तकाल-, व्यादीन साचाद्यक्त । त्रिरित्यक्ति प्रवेकं पेयादिम सम्बध्यते । त्रिरित्यादि प्रवेकं पेयादिक्तके । त्रिरित्यादि प्रवेकं पेयादिकं सम्बध्यते । त्रिरित्यादि प्रवेकं पेयादिकं सम्बध्यते । त्रिकं प्रवेकं पेयादिकं सम्बध्यते । त्रिष्ति । त्रिकं प्रवेकं पेयादिकं सम्बध्यते । त्रिकं स्वयति । त्रिकं स्वयति । त्रिकं सम्बध्यति । त्रिकं सम्बध्यति । त्रिकं सम्बध्यति । त्रिकं सम्बध्यति । त्रिकं

प्रधानशुद्धिशुद्धे पेथादिकम प्रत्येक ति॰ कर्चन्य , नेनात्रकालत्रये पेया, तन परेणात्रकालत्रये विलेपी, तत परेणात्रकालत्रये छुनाञ्चन्य्ययोग्न्यतेरण महितमत्र, तने।ऽपि च परेणात्रकालत्रये छुनाञ्चन्ययोग्न्यतेरण महितमत्र देयभिति । हान्यरामिरत्रकालंबमनदिनमायाहात् प्रभृति सप्ररात्रेण पेयादिकम॰ ममाप्यते । अत्रकालस्तु उत्मासिह्यः साय प्रात्रश्चेति । अयमेन च क्रम टपक्ल्पनीयेऽपि, तन मायाहे लोहितगालितण्डुलानामिलादिना यावद् हादरो चात्रकाल इत्यनेनोक्षः । एव मध्यशुद्धिशुद्धे हि पेयादिकमः । अवरशुद्धिशुद्धे चक्रश पेयादिकमे । न्यास्यय । एवज्र मध्यशुद्धिशुद्धेऽष्टात्रकालिक , अवरशुद्धिशुद्धे तु चतुरक्षकालिक क्रमो नव-तीति, व्याल्पान्यत्त्र अस्परीयचरक्तत्त्वप्रदीपिकायामनुमन्ध्यम् । यद्यपि प्रधानगुद्ध्या नि.रोपदोपहरलादुद्रव्यं पावको निरपवाद एव भविन तथापि तत्र भृरिदोपनिर्देशेन तावत्कालिकारायद्योग्यादाग्नेमाष्य महदेव नम्मवनीति तेनात्र पेयादिकमनिर्देशेन तावत्कालिकारायद्योग्यादाग्नेमाष्य महदेव नम्मवनीति तेनात्र पेयादिकमनिर्द्धेर क्रियन इति श्रेयन् ॥ १०॥

जधन्यमध्यप्रवरे तु वेगाख्यत्वार इष्टा वमने पड्छौ। दशैव ते द्वित्रगुणा विरेके प्रस्मत्वा द्वित्रिचतुर्गुणुश्च॥ ११॥

द्दानीं प्रधानशुद्धवादिशानार्थं तल्लक्षणमाह जधन्येत्यादि—नयन्यमध्यप्रवरे वमने यथाक्रम चत्वार षडिशे वेगा उका तेन चतुर्भिवेगेयंच वमन तज्ञचन्यम्, यत् तु पट्मिस्तन्मध्यमम्, यत् त्वधामिस्तप्रवरम् । तथा विरेकेऽपि जधन्ये दशः वेगाः । मध्ये तु विरेचने दिगुणा दशः विद्यातिरित्यर्थ । प्रवरे तु विरेचने त्रिगुणा दशः त्रिशादित्यर्थ । वेगमल्यामेदेन जधन्यादिभेदमिभिधाय दोषमानमेदेनापि विरेचनस्य जधन्यमध्यप्रवरता क्रमेणाह प्रव्यस्त्येशि । जधन्ये विरेके दिगुणः प्रव्य , मध्ये तु त्रिगुणः , प्रवरे च चतुर्गुणः इति ॥ ११ ॥

पित्तान्तमिष्टं वमनं विरेकादर्द कफान्त इ विरेकमाहुः॥ १२॥

पिचान्तिमत्यादिना वमनिवरेचनयोदोंपप्रवृत्त्यन्तोपलाचितामात्यान्तिकी द्युद्धि तथा वमनस्य तु दोषमानभेदोपलचिता मानिकी द्युद्धिमाह—पिचप्रवृत्तित्ते यस्य तद् पिचान्त्रम्, एव कफान्नमिप श्रेयम्। विरेकादर्द्धमित्यनेन वमनस्य द्रोपप्रमा-घोपलचित्रात्यान्तिकी सुद्धिक्ता। जमन्यमध्यप्रवरे विरेके प्रस्थरन्येत्यादिना यद्दो-पमानमुक नद्रपेचया वमनेऽद्दीमत्यर्थः। तेन वमने जयन्ये प्रस्थ एकः, मध्ये तु सार्द्धप्रस्थः, प्रवरे तु दौ प्रस्थाविति। एतेन वैगिकी मानिको चात्यन्तिकी चेति शुद्धित्रम्यमुकन्, हत्याभेत्यादिना चाहिकी शुद्धिः पूर्वभेत्रोका। तेन चनुर्वियसुद्धि- धरकेणोका, प्रपक्षस्यस्य वचनस्य चरकतत्त्वप्रदीपिकायामनुसन्धेय इति ॥ १२ ॥ द्वित्रान् सविद्कानपनीय वेगान् मेयं विरेके वसने तु पीतम्।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोत्तणे। सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥ श्रयोगे लहुनं कार्य्यं पुनर्वापि विशोधनम्। श्रातेवान्तं घृताभ्यक्तमवगाह्य हिमे जले॥ उपाचरेत् सिताचौद्रमिश्रेलेंहैश्चिकित्सकः। वमनेऽतिप्रवृत्ते तु हृद्यं कार्य्यं विरेचनम्॥ १३॥

वमने विरेचने च यथा दोषमान कार्यं तदाह दित्रानित्यादि—दी वा त्रयो वा परिमाणमेषा दित्राः । दित्रानित्यव्यवस्थितपरिमाषया मलमानस्य मेयता दर्शन्यति । वमने तु पीतमिति वमने पितमै। पर्वन्तु विरेके प्रस्थ इत्युक्तम् अतस्तत्त्वरूपमाह वमने चत्यादि । क्रमेण वमनयोगातियोगचिकि माह अयोग इत्यादि—विशोधन वमन विरेचनश्च । लेहिरिति शक्तना मन्यै । अति-वान्तो च विरेचन प्रतिमाग्रहरण्डूपत्वात् ॥ १३ ॥

न वामयेत्तिमिरिकं न गुहिमनं न चापि पाग्ह्दररोगपीडितम्।
स्थूतज्ञतज्ञीणकृशातिवृद्धानशोंऽदिंताज्ञेपकपीडितांश्च ॥
रूज्ञं प्रमेहे तरुणे च गर्मे गच्छत्यथोंद्ध्वं रुधिरे च तित्रे।
दुष्टे च कोष्ठे किमिभिर्मनुष्यं न वामयेद्वर्चसि चातिबद्धे ॥
एतेऽण्यज्ञीर्णव्यथिता वाम्या ये च विषातुराः।
श्रत्युहवणकफा ये च ते च स्युर्मधुकाम्बुना ॥ १४॥

इति वमनाधिकारः॥

श्रवाम्यानाहः न वामयेदित्यादि —श्रवाम्यत्वेनोक्षानामप्यात्यविक्रव्याघौ वमन-माहः एतेऽपीत्यादि ॥ १४ ॥

इति वमनाधिकार-विवृतिः ।

अथ विरेचनाधिकारः।

स्निग्धस्त्रिन्नाय वान्ताय टातव्यन्तु विरेचनम् । श्रन्यथा योजिनं ह्येनद् ग्रह्णीगद्कन्मनम् ॥ १॥

वमनानन्तर विरेचनन्य विधानाद्रमनमिधाय विरेचनमाह हिनश्रेत्याति— निनग्धीत्वत्रायेति वमनानन्तामि निनग्धित्वत्राय । तदुल—"कर्मदा वमनाद्रीना-मन्तरे तन्त्रेर पुन.। रेनहत्त्वेदां प्रयुक्षात मगोधनमनन्तरम् " इति । अन्यथिति वमनं विना । मुश्रुतेऽप्युक्तम्—" अवान्तस्य हि मामाभ्रो हिक्तस्यापि मतेऽध स्त्राम् केम्मा यहाप्री निदयेष् " इति । अयभ्र विरेचनयोगः पृवाह्मनिकर्म्यव देय । वक्ष हि वाग्मदे—" देम्मनाने गते ज्ञाता नोष्ठ सन्यग्विचयेत् " इति ॥ १॥

पित्तेन मृदुकोष्ठः स्यात् कृरो वातकफाश्रयात् । मध्यमः समटोपत्वाद् योज्या मात्रानुरूपनः॥२॥

मात्राविष्यर्थं कोष्टजममाइ पिचेनेत्यादि—मात्रा योल्यानुरूपन इति मृदी मृदी, हुरे नीइरा, नष्यम मध्यमेन्यर्थः ॥ २ ॥

शर्कराज्ञौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णवचृिण्तम् । रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचांशिकम् ॥ ३ ॥

गर्कत्यादि— मुगुतस्य । त्रिवृश्च अष्ठताद्रक्तान्ता आह्या, ध्वमन्यत्रापि । यदाह मुगुत — अन्ताम त्रिवृन्त्वन अग्रमाहाँवरेचने " इति । अत्र गर्करा त्रिवृन्त्वन्त्र्याम त्रिवृन्त्वन्त्र्याम न्याप्त्रम् । अत्र गर्करा त्रिवृन्त्वन्त्रम् । त्रिवृन्त्वन्ति पाठान्त्ररे यावता स्तरम्य स्थात् तावदेव त्र्वक्षत्र देशीमीत । विवृत्त्वन्त्रम् । त्रिवृत्त्वन्त्ये । । ३ ॥

त्रिवृच्चृंग सिनायुक्तं पिवेच्छ्रेष्ठं विरेचनम् ॥ छित्वा द्विचेचुं परिलिप्यकलकै-

स्त्रिमिएडजातैः परिवेप्ट्य रज्ज्या । पकन्तु सम्यक् पुटपाकयुक्त्या सादेचु तं पिचगदी सुशीतम् ॥ ४॥ त्रिष्टित्यादि —चरकस्य । पूर्वनदेवात्रापि त्रिष्टन्मान श्चेयम् । छित्त्रेत्यादि — चरकस्य । त्रिमगडी त्रिष्टतामद । पुर्याकयुक्त्येति काश्मर्व्यादिपत्राच्छादनकुश-वेष्टनमृदावलेपनिर्भूमाद्वारप्लोपग्यादिना ॥ ४ ॥

> पिष्पलीनागरचारं श्यामा त्रिवृतया सह । लेहयेन्मधुना सार्द्धं कफव्याघौ विरेचनम् ॥ ४॥

विष्यलीत्यादि—चारो यवचार, श्यामेति श्याममूला त्रिष्टत् । त्रिवृदित्य-स्त्यमूला, अत्र विष्यलीनागरयो कदुल्वमात्रकारिका मात्रा, तेन विष्पलीचूर्णं माषा २, शुरुठीचूर्णं माषा २, चारादित्रयस्य प्रत्येक माषकचतुष्टय, तता मिलित्वा कर्षो लेख, प्वमन्यत्राप्युक्तमित्याहु ॥ ५ ॥

> हरीतकीविडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत्। मरिचानि च तत् सर्वे गोमूत्रेण विरेचनम्॥६॥

हरीतकीत्यादि—एवा चूर्णं गोमृत्रेण पैयमित्यर्थः। हरीतकी मा ४, विड-द्यादित्रयस्य प्र मा २, त्रिष्टत् मा ४, मरिच मा १, एव मिलित्वा कर्षमात्रं गोमृत्रपलेनालोड्य पेयमित्यर्थः॥ ६॥

> त्रिवृच्छाणत्रयसमा त्रिफला तत्समानि च । चारकृष्णाविडद्गानि तच्चूर्णं मधुसर्पिषा । लिद्याद्गुडेन गुडिकां कृत्वा वाष्युपयोजयेत् ॥ कफवातकृतान् गुल्मान् सीद्दोदरमगन्दरान् । इन्त्यन्यानपि चाप्यतिश्वरपायं विरेचनम् ॥ ७ ॥

त्रिष्टच्छायात्रयेत्यादि — त्रिष्टताचूर्यं मा १२, त्रिफलाचूर्यं प्र मा ४, यवचारादीनाव्च प्र मा ५, मिलितचूर्यात् क्षेमेक गृहीत्वा एतमधुम्या लेखम् । गृहिकापचे तु पुरायगुष्ट तो ६ पतित्ववतादिचूर्येन सम विमर्थं कर्षमाना गुहिका कार्या, तप्तोदकमनुपेयम् ॥ ७ ॥

अभयाद्यो मोदकः

श्रभया पिष्पलीमूलं मरिचं नागरं तथा। त्वक्पत्रपिष्पलीमुस्तिविडद्गामलकानि च ॥ कर्षः प्रत्येकमेषान्तु दन्त्याः कर्षत्रयं तथा। षद्कर्षाश्च सितायास्तु द्विपलं त्रिवृतो भवेत्॥ सर्व सुचृिंपतं कृत्वा मधुना मोदकं कृतम् ।

खादेत् प्रतिदिनश्चैकं शीतश्चानुपिवेज्ञलम् ॥

तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुण्णं न सवते ।

पाग्रहरोगं विषं कासं जङ्घापार्श्वकजां तथा ॥

पृष्ठात्तिमूत्रकुच्छुश्च दुर्नाम सभगन्दरम् ।

श्रश्मरीमेद्दकुष्टश्च दाहशोथोदराणि च ॥

यदमाणं चजुषो रोगं क्रमं वैद्येन जानता ।

योजितोऽयं निहन्त्याशु श्रभयाद्यो हि मोदकः ॥ = ॥

परग्रहतैलं त्रिफलाक्काथेन द्विगुणेन च ।

युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न विरेण विरिच्यते ॥ ६ ॥

भ्रमयेत्यादि योगद्वय स्पष्टम् ॥ = ॥ ६ ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ लघुत्वमूर्जो अग्निरनामयत्वम् । प्राप्तिश्च विद्पित्तकफानिलानां सम्यग्विरिक्तस्य भवेत् क्रमेण्॥१०॥ स्यात् श्लेष्मपित्तानिलसम्प्रकोपः सादस्तथाग्नेगुरुता प्रतिश्या। तन्द्रा तथा सुर्दिररोचकश्च वातानुलोम्यं न च दुर्विरिक्ते ॥११॥

विरेकसम्यग्योगलचणमाह स्रोतोविशुद्धीत्यादि—चरकस्य । कर्जोऽभिरिति बलनानिभिरित्यर्थ । अनामयत्विभिति विरेचनेजतन्यदोषजनितिविकारन्यपगम । अन्नमय विट्पिचादिना प्राप्ति प्रकृतिरित्यर्थ । अन्नापि यथोक्तक्रभलचणेन विट्-पिचादिप्रवर्धनेन सम्यग्निरिक्तलचण भनतीति पूर्ववदेन केयम्, अन्नापि पूर्वोद्धेन विरेकस्य लेक्निची शुद्धि, दितीयाद्धेन पुनरात्यन्तिकी । शुद्धिरिति केयम् । स्यादि-त्यादिना पर्यनायोगकृतलचणमाह । न च वातानुलोग्यमित्यादि—वातविवद्ध स्थ्ये । गुरुतेति कोष्ठस्य गानस्य च ॥ १० ॥ ११ ॥

कफास्त्रिपि च्ह्रयज्ञानिलोत्था सुप्त्यक्रमर्दक्कमवेपनाद्याः। निद्रावलामावतमः भवेषाः सोन्माद्दिकाश्च विरेचिते ऽति ॥ मन्दाग्निमद्यीणमसद्धिरिकं न पाययेत् तद्दिवसे यवागूम्। विपर्थ्यये तद्दिवसे तु सायं पेयाक्रमो वान्तवदिष्यते तु ॥१२॥ कफेलादिना विनेचनातियोगलक्षणमाह—स्वशस्द कफादिभि प्रत्येक सम्बध्यते, श्रभावशब्दोऽपि निद्राबलाभ्यामिति । श्रतिविरेन्ति इत्यन्वय । श्रीत्रव यशिमान्यादिक स्यात् तदा तस्मिन् दिवमे लहुनमन्यथा तु साय यवागूर्देयेत्याह् मन्दािश्वामित्यादि—सुश्रुतस्य । विपर्याय इत्यश्चिमान्याद्यभावे पेयाक्रम इति पेयां विलेपीमकृतमित्यादिनास्त ॥ १२ ॥

यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः सन्धुच्यमाणो भवति क्रमेण । महान् स्थिरः सर्वसहस्तथैव शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ॥,

कषायमधुरै पित्ते विरेकः कहुकैः कफे।
क्षिग्धोष्णलवणैर्वायोरप्रवृत्ते च पाययेत्॥
उष्णाम्बु स्वेदयेचास्य पाणितापेन चोदरम्।
उत्थानेऽलेप दिने तिसान् भुक्त्वान्येद्यः पुनः पिवेत्॥
श्रद्यक्षेद्रकोष्ठस्तु पिवेदूद्ध्वं दशाहतः॥
भूयोऽष्युपस्कृततनुः क्षेद्रस्वेदैविरेचनम्।
यौगिकं सम्यगालोड्य स्मरन् पूर्वमनुक्रमम्॥ १३॥

उपनियाक्तमस्य फलमाह यथेत्यादि । इदानीं दोपभेदादिरेकमाह कषाये-त्यादि—नाग्भटस्य । नायोरिति छेद । अप्रवृत्ते तु पुरीषादौ उष्णाम्यु पाययेदिति योज्यम् । अत्यन्तालपप्रवृत्ते दोपे अपरास्मिक्षह्नि विरेकमाह उत्थान इत्यादि—उत्थान मलप्रवर्त्तनम् । पुनः पिथोदित्यत्र विरेचनमिति रोप । यदि पुनरसम्यक्-स्निग्धकोष्ठो भवति पुमान् तदा दशाहादूद्ध्वं विरेचन पिथोदित्याद अद्युद्धनेह-कोष्ठ इत्यादि—अवुद्देनहकोष्ठ इति असम्यक्स्निग्धकोष्ठ इत्यर्थः । स्मरन् पूर्वमनुक्तम् मिति येन मात्राभियोगेन पूर्वमयोगोऽभूत् तत् स्मृत्ना परिहर्त्तेच्य ॥ १३॥

दुर्वलः शोधितः पूर्वमलपदोषः कृशो नरः । श्रपरिकातकोष्ठस्तु पिवेन्सृद्धलपमौषधम् ॥ रूज्ञबह्वनिलक्र्रकोष्ठव्यायामसेविनाम् । दीताश्रीनाञ्च भैषज्यमविरेच्येव जीर्य्यति ॥ त्रेभ्यो वर्स्ति पुरा दद्यात् ततः स्निग्धं विरेचनम् ॥१४॥ दुर्वलादिषु यादृशरेचन प्रयोक्तव्य तदाह दुर्वल इत्यादि—दुर्वलोऽन्त.श-क्तिहीन , कृशः चीणमासः । सुद्धिति सुदुवीर्य्यम् । अत्यन्तवातिविष्टच्यकोष्ठादौ वथा विरेचन कार्या तदाह रूजेत्यादि—रूचादयः कोष्ठेन सार्द्ध सम्बध्यन्ते । श्रविरेच्येवेति विरेकमकृत्वा । वस्तिनिरूष्ट इति केचित् । अन्ये तु निरूष्ट्रिपस्तया स्तिष्धस्तिर्वात-प्रशमकृत्वेनानुवासनमञ्ज वस्तिशस्त्राध्य इत्याहु । श्रन्ये तूश्यमपीत्याष्टुः ॥ १४ ॥

> श्रिक्षिग्धे रेचनं क्षिग्धं रूकं क्षिग्धेऽति शस्यते । विरूक्ष्यं सहसातम्यन्तु भूयः क्षिग्धं विरेचयत् ॥ १४॥

इदानीं यद्यसिन् प्रयोज्य तदाह श्रस्निग्ध इत्यादि—श्रस्तिग्ध इतीपत्रिन-ग्धे, रूच रिनग्धेऽतिशस्यत इत्यादि—रिनग्धे रूच रेचन शस्यत इत्यर्ध ॥ १४॥

> पद्मकोशीरनागाह्मचन्द्रनानि प्रयोजयेत्। श्रितयोगे विरेकस्य पानालेपनसैचनैः॥ सौवीरपिपाम्रवहकलाभिलेपोऽतिसारहा॥१६॥

श्दानी रेचनातियोगचिकित्सामाह पद्यक्त्यादि— ननु श्रयोगातिथोगवत् विदेकिमध्यायोगचिकित्मा कुता ने।वता १ सत्य, दोपाणा ए प्रवृत्ती चतुर्विषेव गति-भैवति सम्यक्षप्रवृत्तिरतिप्रवृत्तिरप्रवृत्तिरत्प्रवृत्तिश्चेति । श्रश्नालपप्रवृत्त्यप्रवृत्तिश्चेति त्वयोगगृष्टीते एव । या प्रातिलोभ्येन प्रवृत्तिमध्यायोगत्वेन वाच्या साग्निमपेचितस्य दोषस्याप्रवृत्तिकत्वादयोगान्तर्भृतेव । श्रतण्वोक्त चरके— "श्रयोगप्रातिलोभ्येन न चाल्प वा प्रवर्त्तनम्" इति । श्रतो वमनविरेचने मिथ्यायोग नेच्छन्तीति कृत्वा मिथ्यायोगचिकित्तितस्यत्यनुपादान बोध्यम् ॥ १६॥

> श्रविरेच्या वालवृद्धश्रान्तभीतनवज्वराः । श्रव्पाग्न्यधोगिपत्तास्रत्ततपार्थ्वातसारिणः ॥ सश्रव्यास्थापितक्रूरकोष्ठातिस्निग्धशोपिणः । गर्भिणी नवस्ता च तृष्णात्तीं उज्जीर्णवानिष ॥ १७ ॥ इति विरेचनाधिकारः ।

निषिद्धविरेकानाष्ट् अविरेच्या शति—आस्थापितो निरुद्ध । अयञ्च निरु-धान्तर विरेकानिषेष औरसर्गिक , तेन तेभ्यो बर्सित पुरा दद्यादित्यादिविरेयाविधिना तदपवादो युज्यते एव । किंना निरुद्धानन्तर ष्टि विरेकानिषेध सप्ताद्दाभ्यन्तर एव ध्यः, सप्ताद्दाद्द्रप्वेन्तु विरेको विद्दित एवेति विधिनिषधयोः कालभेदेन न विरोधः। स्क हि चरको—"नवो विरिक्तस्तु निरुद्धदान विवर्जयेष् सप्तिदनान्यवश्यम्। शुद्धे निरूदेण विरेचनन्न' इति वदन्ति । अन्ये त्वेतिदरोधिभयेव तेभ्यो मस्ति पुरा दयादित्यत्र विरागन्दस्यानुवासनार्थमाद्वरिति प्रागवीस्तम् ॥ १७ ॥ इति विरेचनाधिकारविवृति ।

अथात्रवासनाधिकारः

वातोत्विणुषु दोषेषु वाते वा वस्तिरिष्यते । यथोचितात् पादहीनं भोजयित्वाजुवासयेत् ॥ १ ॥

विरेचनात् सप्तरांत्र गते जातवलाय वैकृताहाराय सायाद्व सम्यव्देयोऽनुवासन रत्यनेनानुवासनस्य विरेचनीथानन्तरीयत्वमुक्तम् , त्रतो विरेचनाधिकारमनु लेहबास्ति-विचारः प्रस्त्यते । अनुवमक्षि न दुष्यति अनुदिवम वा दीयते इत्यनुवासननिकिक सुश्रुतोक्का ग्रेया । अत्र मामान्यतो वस्तिविषयमाद्व वातेत्यादि — वाग्भटस्य । यथि सुश्रुते—''वस्तिवाते अ पित्ते च कफे रक्ते च शस्यते'' इत्यनेन पित्तकफर्तकानामि व स्तिविषयत्वमुक्त तथापि वस्तिवातहराणामिति वचनात् प्राधान्येन वायोरेव वस्तिविषयत्व, विश्वकफ्योत्तु वातस्यानगतयोस्तथा स्वम्यानस्थितयोवीतान्तुवन्थयोवी वस्तिविषयता । अदाह चरक —''पित्त वा कफिपत्त वा पित्तारायगत हरेत् । समन त्रीन् मलान् वस्ति पकारायगतान् जयेत् '' इति । तथा—''ण्को-ऽपकार्यविल स्वमार्गात् पित्त दित्रीयरत् कफ तृतीयः।'' रक्तमि दुष्ट रक्तप्रसादनेद्रव्यक्तिल स्वमार्गात् पित्त दित्रीयरत् कफ तृतीयः।'' रक्तमि दुष्ट रक्तप्रसादनेद्रव्यक्तिल स्वमार्गात् पित्त दित्रीयरत् कफ तृतीयः।'' रक्तमि दुष्ट रक्तप्रसादनेद्रव्यक्तिल स्वमार्गात् पित्त दित्रीयरत् कफ तृतीयः।'' रक्तमि दुष्ट रक्तप्रसादक्तिक्रिक्ति प्रसादयति द्वीपहरयोनानुलोमयति । अत्र निक्रहाद्वसानुवासनस्य विधानम् । रेत्तिविधा अनुवासननिक्रहमेद्वात् । त्रह्वास्तिरनुवामन, कपायवस्तिनिक्तरः। तत्र निक्रहाद्वसानुवासनस्य विधानम् ॥ १ ॥

न चाभुक्तवते सेहः प्रणिधेयः कथञ्चन ।
सूद्मत्वाच्छुन्यकोष्ठस्य चिप्रमूद्ध्वमधोत्पतेत् ॥
षद्पली च भवेच्छेष्ठा मध्यमा त्रिपली भवेत् ।
कनीयसी सार्द्धपला त्रिधा मात्रानुवासने ॥
प्राग्देयमाचे द्विपलं पलाई वृद्धि द्वितीये पलमचवृद्धिः ।
कर्षद्वयं वा वसुमाषवृद्धिचस्तौ तृतीये कम एष उक्तः ॥

स तु सैन्धवच्यूर्णेन शताह्नेन च संयुतः। भवेत् सुखोष्ण्य तथा निरेति सहसा सुखम्॥ विरिक्तयानुवास्यथेत् सप्तरात्रात् परं तदा॥२॥

श्रमुक्तवतेऽनुवासनवास्तर्न देय इत्याह न चेत्यादि-केह इति केहवस्ति । अनेव उपपत्तिमाह सूत्तमत्वादित्यादि । विदय्धान्ने तु वस्तिर्न देय , उक्त हि-"मदानुवासयेचापि भोजियत्वार्दपाणिनम्। ज्वर विदग्धमुक्तस्य कुर्यात् क्षेद प्रयोजित ' इति । उत्तममध्यमाधमनरापेचया त्रिविधानुवासनमात्रामाह पट्पली-त्यादि-अध्यर्द्धपलित सार्द्धपलमेकमित्यर्थ । एतच पट्पलादिमात्राविधान क्रमेथैव विधेयम् । न त्वेकादिन एवेत्याह प्रागित्यादि-आधे पट्पललेहे गुरुमात्रारूपे प्रथम पक्तलेहस्य दिपलम् , ततो दिनैक विश्राम्य पलादेन वृद्धि , एव क्रमेणु नवाम लेहदानदिनै. पट् पतानि स्यु । अन्तरालदिवमाक्षाष्टावतो मिलित्वा सप्तदरा वासरा भवान्त । दितीये मध्यमे त्रिपल इति यावत् । तत् पलमादौ देयम्, तत एकेकिदिन विशाम्य अन्नेख कर्पेण वृद्धि । अन्नापि नविभ केहपानदिवसे पलत्रय पूर्यम् । तृतीये कनीयसि सार्द्धपले आदी कर्पद्रयम्, तथैव एकैकदिन विश्राम्य वसुपरिमितीरिलप्टिमर्गापकैर्षृद्धि कार्या । श्रत्रापि तावद्भिरेव सहदानदिवसै. सार्द्धपलमान पूर्य्यते । इयमेव कनीयसी मात्रा निरपाया सार्वलीकिकी सार्वकालिकी वृद्धव्यवहारसिद्धा च । उक्त हि चरके-- "वर्मव्यायाममाराध्वयानस्त्रीकिषितेषु च । द्वेले वातमग्ने च मात्रावस्ति सदा हित.। हासाया लेहमात्राया मात्रावस्ति. समो भवेत ॥" झामाया केहमात्राया योजितो वस्तिमीत्रावस्तिरित्सर्थ.। पतानि केहदानदिनानि नवेत्युत्सर्ग । तेन नवादिनादर्वागि यदि सेहलक्ष्य अवति दिनत्र-येख चतुष्टयेन वा तटा तावतैवानुवासन समाप्यते अनुवासनानन्तरश्च न दीयते । न च केह. केवलो देय. तदा केनाप्युपहित इत्याह स त्वित्यादि—सुश्रुतस्य। चूर्णमानक वृन्देन लिखित यथा-"चूर्णमाप. पले सेहे मिन्धुजन्मशताह्ययो." इति । चक्रस्तु भानुमत्या सैन्धवराताह्रयो प्रत्येकमगुलीत्रयायसन्दराग्राह्म मानामिन लाइ सहमेति-यद्यपि स्नहस्य शीवगमनं दोषायैन, यदुक्त "योज्य शीव्रनि-षृते जन्म केहिस्ति एक कार्यों कृत् " इति, तथापि वद्यमा खलेहिनिर्गमनकाला धिकका-लिनिरासार्थं महमेत्युक्तम् । तेन सहसेत्यस्य यामत्रयानन्तरमेवेत्यर्थः । विरेचनानन्तर कियक्रिरहोभिरनुवास्य इत्याह निरिक्त इत्यादि ॥ २ ॥

स्रवर्णक्रव्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यायसास्थिद्रुमवेखद्दन्तै:।

नलैर्विपाणैर्मीणिभिश्च तैस्तैः कार्य्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥३॥

इदानी विस्तिनिषका वैर्द्रव्येनिधेया सान्याह सुवर्णेत्यादि—चरकस्य । त्रपुन्मीसकः.। रीतिः पित्तलम्, त्रास्थ इस्त्यादीनाम्, दन्तश्च इस्तिनः, विपाणिमीष्टिपा-दिश्द्वाः, माणिभिगीभेदकादिभि,। सुक्रीणकानीत्यत्र त्रिक्षणिकानीति केचित् पठ-न्ति, त्रिक्षणिकत्यन्नामे वद्यति। एव निष्कायस्तिगतस्नेष्टकपायादिद्रव्यनेतृत्वान्नेत्र-मिति मन्ना।। ३॥

पद्दादशाष्टांगुलसिमतानि पद्विशतिद्वादशवर्षजानाम् ।
स्युर्मुद्गकर्भन्धुसतीनवाहिष्छिद्र।णि वर्ष्यां पिहितानि चापि ॥
यथावयोऽङ्गुष्ठक्षनिष्ठकाभ्यां मूलात्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।
ऋजूनि गोपुच्छसमास्तिनि ऋच्णानि च स्युर्गुहिकामुखानि ॥
स्यात् कर्णिकेकात्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते वस्तिनिवन्धने द्वे ।
जारद्गवो माहिपहारिणौ वा स्याच्छौकरो वास्तरजस्य वापि ॥
इहस्तनुर्नेष्टशिरो विगन्धः कपायरक्षः सुमृदुः सुशुद्धः ।
नृणां वयो वीद्य यथानुक्षं नेत्रेषु योज्यस्तु सुवद्धसूत्रः ॥४॥

' इदानी तम्रेमप्रमाण वयोभेदाकिनमाए पिटत्यादि—पट्वर्पनालस्य स्वागुलेन परगुल नेत्र कार्य्ग्, एव विश्वतिवर्पस्य द्वादशागुलम्, तथा द्वादशवर्पस्याष्टा-गुलिमित यथासर्यमन्वय । ननु एकवर्पादारम्य पञ्चवर्णन्तरम्, तथा पट्वर्णन्द्र्यंमेकादशवर्पम्, तथा द्वादशवर्पाद्वर्यं विश्वतिवर्णम्, ततोऽपि सप्तितं यावत् क्षियन्मान नेत्र कार्य्ग् अत्राद्व एकवर्णात् प्रमृति पट्वर्णं यावत् परगुलेमव नेत्रम्, तथा सप्तवर्णद्वर्यं अत्राद्वर्यं अत्राद्वर्यं अप्रात्वर्यं अप्रात्वर्णम् क्षियः नित्रम्, एव विश्वतिवर्णाद्वर्यं द्वादशागुलेमव नेत्र कार्य्यम्, सप्ततिवर्णमृति अष्टागुलं नेत्रम्, एव विश्वतिवर्णाद्वर्यं द्वादशागुलेमव नेत्र कार्य्यम्, सप्ततिवर्णयादिति, अयद्वार्थः व्युत्क्रमाभिधानसाम-ध्योदेव लभ्यते । यतः पट्सख्या निवश्याष्टसंख्यानिवेशो युज्यते ततो द्वादश सख्यति, अतो व्युत्क्रमाभिधानवलोदेव तदास्योपलम्भ इति । अस्मादेव व्युत्क्रमा-भिधानात् पट्वर्णाद्वर्यमेकादशवर्णं यावत् नेत्रप्रमाण प्रति विकल्पोऽस्त्येवेति निद्श्यति, तेन सप्तवर्णद्वा प्रतिवर्णमेकागुलत्तीयभागगृद्वया द्वादशवर्णद्वागुल सवति, तथा द्वादशवर्णद्वर्यंमिष प्रतिवर्णमद्वागुलव्दया विशातिवर्णे द्वादशागुल सवतिति ग्रेयम् । वाग्भेटेऽप्युतः—" वीद्य वर्णन्तरेषु । वयोगलशररिराणि प्रमाण्यम्मभिवर्ययेत् " इति । वर्णन्तरेष्विति पट्दादशादिवर्णन्तरालस्थितेषु सप्तमाष्टमादिन्मभिवर्ययेत् " इति । वर्णन्तरेष्विति पट्दादशादिवर्णन्तरालस्थितेषु सप्तमाष्टमादिन्मभिवर्ययेत् " इति । वर्णन्तरेष्विति पट्दादशादिवर्णन्तरालस्थितेषु सप्तमाष्टमादिन्याः

वर्षेष्वत्यर्थ । चुश्रुने तु सावत्रुरिकाष्टद्विरध्वर्षांचा पडध्वणागुल नेत्रमानमुक्त पन्च-विश्वविवर्षादृद्ध्वे द्वादगागुलिमत्यनेन, तथा वाग्मेरेऽपि-- 'कनेऽन्दे पश्चपूर्णेऽ-रिमन्नासप्तम्योऽङ्गुलानि षट् । मप्तमे नप्त तान्यष्टी दादमे पीटमे नव " इत्यनेन च यो नेत्रमानभेद रक्षा मोऽप्यदूरान्यरत्वान्न विरोधमावहतीति । एपाछ नेत्राग्र-रन्त्र कीष्ट्रा कार्य्यमित्याह न्युर्मुट्रेत्यादि-पट्दादराष्ट्रागुलानि यथानस्य नुद्र-कर्नन्युमननिवाहिन्छिटाणि कार्याणि स्यु । कर्नन्युगच्देनह तदस्यि नृद्यते। उक्त हि चुत्रुवे-कोलास्थिमात्रच्यिद्रमिति । कर्कन्युश्च शृगालकोलि प्रहेपे तु कनिष्ठाप्रमाखांचे तदहन नार्चित । भ्रन्य तु एव विरोध पश्यन्ते। बदरा-न्धिमञ्जानमिह कर्तन्धुगन्धेन ब्राह्यन्ति । मनीनी बर्त्नुलकलाय । वर्स्या पिहि तानीति द्रव्यान्तरप्रवेशवस्त्रिद्रव्यनि मननिरामार्थं वस्त्रादीना वर्त्त्याः पिहितमुखानि कार्च्याणि । यथावय इति यस्मिन् वयमि यक्षेत्र विश्विन तद्वय न्धस्त्रेन वृद्धागुष्टकः निष्ठान्या यथामास्य मूले चाये तुल्यपरिमाणाई नेत्र कर्चव्यमित्यर्थ वृद्धागुष्ठम् । ऋजूनीत्यादिना नेत्राकृतिमाहः । गोपुच्छाकृतित्वत्रेषाः मूलस्यीत्याद्रमे वनुत्वादिति । रुद्यानीत्यककंगानि, गुडिकामुखानीनि गुटिकाकारवर्त्तेल मुख वेपान् , ते वर्तुलसुनवया अतीद्यसुखानि । सुक्यिकानीति पूर्वसुक्तम् अतः कर्पिकाव्यवस्थामाह स्वाडित्याडि—नेत्रस्याग्रप्रेडेने यखतुर्थो मागस्तत्र कर्णिका कत्तव्या नेत्रस्थातिप्रवेशनिरामार्थमिति माव । म्लाश्रित वस्निनिवन्थने हे इति नेत्रस्य म्ले तु चर्मपुटकवन्यनार्थं वर्णिकादय कार्य्यमस्यर्थ । वस्त्यर्थं येषा स्वपुरक प्राद्य तत्राह बारद्गव इत्यादि—जारहव इति, बृद्धगोअववीनिरिति । निस्तिरिति मूत्रपुटक कोषावरकचर्मेति केचित्। नष्टिगर इति मसुद्धृतिशरासन्त्रति , कपायरक इति त्रिफल।दिकपायहच्यमावनया निजन अतएव विगन्ध, विगतपृति-गन्य । वयो बीद्य यथानुरूपिमिन वयोमेदेन बत्मराहिरूपेण यथोक्षन यथा वास्त-र्थम्यानुरूपम्नत्प्रमायो। मननि म तस्य नेत्रे बन्धनीयः, सुवद्धसूत्र इति सुदृढवन्धनः सत्र इत्यंथ ॥ ४॥

> निसहमात्रा प्रथमे प्रकृत्वी वत्सरे परम् । प्रकृत्ववृद्धिः प्रत्यव्दं यावत् पद् प्रसृतास्ततः ॥ प्रसृतं वर्द्वयेदृद्ध्वं द्वादशाष्ट्रादशस्य तु । श्रासप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ ४॥ पर्वापे पट्पनी तु मनेज्ज्येष्ठेसाहिना श्रतुत्रामननात्रा टक्नैव तथाप्यनुवकः-

व्यविशेषार्थं पुनर्प्यनुवासनमात्रा वक्तव्याः सा च निरूष्ट्मात्रातिदेशेन वाच्या अतोऽनुवामनाधिकार एव प्रथम निरूष्ट्मात्रामाद्द निरूष्ट्मात्रेखादि—वाग्मटखा । प्रथम वत्सरे निरूष्ट्मात्रा प्रकृत्तः पलमिल्यंः । प्रमिति वत्सरात् परिमिति, प्रत्यव्य प्रकृत्तेन पलेन वृद्धि कार्य्येति यावत् । पट्पस्ता द्वादश पलानि भवन्ती-ल्यंः । प्रस्तनन्तु पलद्वयमिति। प्रतेन प्रत्यव्य प्रकृत्ववृद्ध्या द्वादशिक्षंये, पट्प्रस्ता भवन्तीत्यं । द्वादशिति छेद । तत इति द्वादशवर्षान्त्र्द्धं प्रत्यव्यमेकेक प्रस्त कृत्वा वर्द्ययेत् यावद् द्वादश प्रस्ता भवन्ति, प्रतेन द्वादशवर्षानन्तर त्रयोदशवर्षमा-रम्य प्रष्टादशवर्षपर्यन्त प्रतिवर्षमेकेक प्रस्तवृद्ध्या द्वादशप्रसतपूर्य भवति । अष्टादशस्यत्वपर्यन्त प्रतिवर्षयेशायस्य पुस आमप्तिरिति सप्ततिवर्ष यावत् इद द्वादश-प्रस्तव्यक्त्योयस्य पुस आमप्तिरिति सप्ततिवर्षयय्यन्त प्रस्तव्यव्या प्रस्तव्यस्य अष्टादशवर्षस्य द्वादश प्रस्ता भवन्ति, अत मप्तिवर्षपर्यन्त द्वादश प्रस्ता एव, पर सप्तिवर्षय्य द्वादश प्रस्ता भवन्ति, अत मप्तिवर्षपर्यन्त द्वादश प्रस्ता एव, पर सप्तिवर्षय्य द्वादश प्रस्ता प्रवत्यर्थः । इदानी पुनर्द्धमात्रिकेख व्यवदार , तेन मद्दयपि पुसि पट् प्रस्ता एव दीयन्ते वृद्धवैदिति ग्रेयम् ॥ ४॥

यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने।

कृतवङ्क्षमणं मुक्तविएमूत्रं शयने सुखे ॥

नात्युच्छिते न चोच्छीषें संविष्टं वामपार्थ्वतः।

सङ्कोच्य दित्तणं सिक्थ प्रसार्थ्यं च ततोऽपरम् ॥

यास्त सब्ये करे कृत्वा दित्तणेनावपीडयेत्।

तथास्य नेत्रं प्रण्येत् स्निग्धे स्निग्धमुखं गुदे ॥

उच्छ्वास्य वस्तेवदनं वद्ध्वा हस्तमकम्पयन्।

पृष्ठवंशं प्रति ततो नातिद्रुतिवलिम्बतम् ॥

नातिवेगं न वा मन्दं सकृदेव प्रपीडयेत्।

सावशेषं प्रकुवीत वायुः शेषे हि तिष्ठति॥ ६॥

इदानीमुक्तनिरूहमात्रातिदेशेन प्रकृतानुवासनमात्रामाह यथायथिमलादि— यसिन् वयसि यत्रिरूहमानमुक्त तिसन् वयसि अनुवासनमान तिन्नरूहाचनुर्थारा-मित्यर्थ:। पतेन प्रथमवर्धीयस्य वालस्य उत्कृष्टं निरूहमान पलमुक्तम्, तस्य चतु-र्थाशः कर्षोऽनुवासनार्थमिलर्थः। एव दिश्रिवाधिकवालादौ दिन्निकाधिक वोध्यम्। चनु पट्पली तु मवेज्ल्येष्ठेत्यादिन। पूर्वं श्रिविधानुवासनमात्रोक्ता, अत्र पुनरन्यथै-

वेति विरोधः ? उच्यते, ऋष्टादशवर्षं यावत् दादगप्रसतो। निरूह उक्तः, तस्य चतुः मीं इरा पट् पल एवं, तथा द्वावशवर्ष प्रति पट् प्रस्ता उका , एपा चतुथा भाग-स्त्रिपल एव, तथा षट्वर्थस्य षट्पलमित्यस्य पाद माईदालमिनि, अन्नान्तरे एक-दित्रिवर्पादी चतुर्दशवर्पादी च ये मानभेदा नन्ति तेपाञ्चोक्तमानानुमरिखोइ॰ कार्य्य इत्येकवान्यनया न पूर्वापरवचनविरोय । किञ्च पट्पलीत्यादि वान्यमुक्तम-मध्यमाधमवलानलशरीरभेदामित्रमुत्मर्गामिद्ध त्रिविध मानमाश्रिन्योक, तेन त्रिक-वर्षादिवयोमेदाभिन्नमानाभिधानाम न्यूनतादोप इति श्रेयम् । इदानी किन्मूतस्य तदनुवामन देयमिलाह क्रुनेत्यादि-वाग्मटस्य । शयन इति शय्यायाम् । वामपा-र्भत इति वामपार्भेन, मिवष्ट सुप्तम् । वामपार्भशयनप्रयोजनम्ब चरकेखोक्त यथा---'वामाश्रयोऽग्नियहर्णीगुदश्च तत्पार्श्वमस्यस्य चुद्धोपलाच्घ । लीयन्त एव वलयश्च तसात् मन्य रायाने। र्इति वस्तिदानम् " इति । मन्योति जङ्गा, अपरिमिति नामम्। सन्य शित नामे । निर्द्धामिति नद्धचर्मपुटाहितलेहयुकः नेत्रमेन । दिस्रियोनिति हस्तेन उच्द्वात्य वस्तेवदन वद्चेति, वस्तेश्वर्मपुटस्य मुखम् । उच्छ्वास्य उद्घाट्य पश्चात् बद्ध्वस्यर्थं वस्तिमुराोच्छ्वामनञ्ज द्रवाभिवातअनितवातस्य निर्गमनार्थम् । उच्छास्य वस्तेवंदने वद इति पाठ. । पृष्ठवण प्रतीनि पृष्ठवरा लचीकृत्य, तेन पृष्ठवराानुसरिए ऋजु यथा स्यात् तथा नेत्र प्रखयेदित्ययः। चरकेऽपि ऋजुपु पृष्टवरामित्युक्तम् सक्कदिरेयकवारमेव । वस्तिपुरकान्तर्गतद्रन्यमागस्तु न नि.शेषो देय इलाइ मावशेष-मिलादि. — वायु रोषे हि तिष्ठनीति नि रोपटाने हि पुटान्तर्गती वायुर्गुदं प्रविश्य बस्तिमाध्मापयेदिति भाव. ॥ ६ ॥

निरुद्दानेऽपि विधिरयमेव समीरितः।
ततः प्रणिद्दिते सेहे उत्तानो वाक्शतं भवेत्॥
प्रसारितैः सर्वगात्रैस्तथा वीर्ध्यं प्रसपिति ।
प्राकुञ्चयेच्छ्नैस्त्रिस्तिः सक्थिवाद्द् ततः परम्॥
ताडयेचलयोरेनं त्रींस्त्रीन् वारान् शनैः शनैः।
स्पिचोञ्चैनं ततः श्रोणि शय्यां त्रिकृत्विपच्छ्नैः॥
प्वं प्रणिद्दिते वस्तौ मन्दायासोऽथ मन्द्वाक्।
प्रास्तीर्णे शयने काममासीदाचारिके रतः॥
योज्यः शीर्षे निवृत्तेऽन्यः सहोऽतिप्रत्न कार्यकृत्॥॥॥

इदानीमुक्तानुवामनदानविधि निरूहेऽप्यतिदिशति निरूहदानेऽपीलादि-दत्ते च लेह यादृशीन स्थातव्य यच कर्तव्य तदाह तत इत्यादि-सुश्रुतस्य । वाक् लब्द-चर, तदुचारण शतथा यावत्चणेन भवति तावत्वणमुत्तानो भूत्वा तिष्ठेदित्यर्थ । अन्य तु वाक्शत छोटिकाशतिमत्यादु । प्रमारिते सर्वगात्रवीहुजद्वादिभिरित्युपल चणे तृतीया । एव कृते कि स्यादित्याह तथेति-त्राकुछयेदित्यादि सक्षिथ्रय, तथा बाह् च त्रिराकुछयेदेख इति शेष । आकुछनान्ययानुषप्रत्येव प्रसारणमपि लभ्यते । तेन पादवृद्धांगुष्ठद्वय पादतल वा विधृत्य तत सद्धोच्य शनै प्रमारयेदित्यर्थ । उस हि चरेके-" ईपच पादागुलियुग्ममाञ्चेत् " इति । आञ्चेत् प्रमारये-दित्यर्थ. । तत्र त प्रमारणान्यथानुपपत्तावाकुञ्चन लभ्यत इत्येकवाक्यता च हेया । तत पर बाहु च तदगुष्ठदयञ्च विधृत्य ततः महो च्य प्रसारयदिति । चरके तु बाहु-सद्वीचप्रमारणे नोक्षे इति शेष । ताहयदिस्यादि-स्फिचाअनीमीत छेदः । एनमा-तुरम् । तलयाः पादतलकरतलयास्तथा स्फिचोश्च त्रींस्त्रीन् वारान् रानै: रानैस्ता-उयेदिति मुष्टिना ह्न्यादिति । एतच ताडनम अनुवामनेखहस्य शीघ्रानि सरण यथा न भूयादित्येतदर्थ क्रियते । यदाह दृढवल --दत्त्वा रिफची पाणितलेन इन्यात् कहस्य शीधागमरचणार्थम् " इति । तत श्रोणीं शय्या त्रिरुत्चिपेत् , तत इति शय्यामित्यनन्तर प्रतीति शेष , तेन शय्या प्रति श्रीणी त्रिरुत् विपेदित्यर्थ इति श्रीकच्छ । वयन्तु शय्यामित्यनन्तरं तत्पिष्णिंश्याभिति शेष , तेन तत्पािष्णं-भ्याम श्रातुरपाधियम्यां शय्या ताटयेदिति योज्यम्, उक्त हि—'' दत्ते तृतान-देहस्य पाणिना ताढयेव निकची । तत्पार्विणम्या तथा शय्या पादतक्ष त्रिरुताचि-पेत इति व्याचकते - श्रोणीं त्रिरुविकेपदित्यर्थ । एतदपि पार्विणभ्या शब्याताटन केहरी। वागमनरचणार्थमेन हेयम्। ण्तच री। वागमनरचणार्थं कर्भ यद्यपि पद्माद्रक तथापि तेहशीव्रागमनेन वस्तेनिष्प्रयोजनता त्यादिति कृत्वा प्रथममेव कार्यम् । श्रतएव मानुमत्या चक्रोऽप्याह रिफचश्चैनमित्येतद्पि पश्चादक तथाप्यभिधानक-मतन्त्रत्वमकृत्वा प्रथममेव श्रेयमिति । मन्दायस इति श्रत्यरूपप्रत्यवायकरविचेपणादि-शरीरचेष्ट । काममासीदित्यनेन दृद्वलीकगाश्रमदीनागुलीस्फीटादिकामिच्छत कार्यभिति स्चयते, उक्त हि-- ' स्नेहन पाष्य्यंगुलिपिरिडकाश्च ये चास्य गात्रा-वयवा रुजात्ती: । ताक्षावमृद्गीत सुख ततश्च निद्रासुपासीत कृतोपधान, " इति । श्राचारिके रत रति कीधादिवर्जनाधाचारतस्परः । यदि तु स्रेही दत्तमात्र एवाति-मात्रत्वादिदोषेण नि.सरित तदा किं कार्य्यामित्याह योज्य इत्यादि-वाग्भटस्य । शीघ्रमिति त्रियामादर्वाक् । अत्र दितीयस्नेहदानमल्पमात्रयैव विधेय. प्रथमस्नेहदा-

नेनेव क्रीष्ठावलेपसिद्धत्वात्, सुश्रुनेऽप्युक्त तत्रान्योऽस्पतरो देय इति, पूर्वदत्तस्नेहा-दलपतर इति ॥ ७ ॥

सानितः सपुरीपश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वै । विना पीडां त्रियामस्थः स सम्यगनुवासितः ॥ ८ ॥

मानिल इत्यादिना सौश्रुतानुवासनसम्यग्यागलख्यामाह । विना पीटा त्रिया मस्थ इत्यन्न उपाचाषी विना शीव्रमिति पाठ उपा दाह., चोषा पिपासा, शीव्रमिति यामत्रयानन्तरमेवेत्यर्थ ॥ = ॥

काथाईमात्रया प्रातधीन्यश्च एठीजलं पिवेत्। पित्तोत्तरे कदुष्णाम्भस्तावन्मात्रं पिवेद्जु ॥ तेनास्य दीष्यते विद्वर्भक्षाकांद्वा च जायत । स्रहोरात्रादिप स्नेहः प्रत्यागच्छन् न दुष्यति ॥ कुर्योद्वस्तिगुणांश्चापि जीर्णस्वस्पगुणो भवेत् ॥ ६॥

कोष्ठावलेपरनेहपाकार्थमाह काथाउँमाश्रयेत्यादि-यस्य पुरुपस्याग्न्याचपेश्चया यावान् सरामन काथ समदेति तस्यादं धान्यशुषठीजल पडङ्गविधिना कर्तव्यमिति चक्र , ततक्ष भान्यस्य द्वादश मापका., शुग्रह्माक्ष पट् चस्वारो वेति मिलित्वा कर्ष-मानस्व क्रेयम् । पतन्व धान्मशुरुठीजलं न प्रत्यह देय किन्त्वेकान्तरमिति । तदुक्त-^६एकान्तरोपथोगेन धान्यशुर्यठांजल पिवेत्' इति । उत्सर्गतस्तावदेकान्तरमेवानुवासन-दान, यश्मिन् दिवेम अनुवामन न दीयते तस्मिन्नेव दिने धान्यशुपठीजल देयम्, अनुवासनिदेने तु न देयम् । यदाह चरक'—' युक्तकेह द्रवोष्णाञ्च लघुपथ्योप-सेवनम् । मुक्तवान् मात्रया भोज्यमनुवास्यस्त्र्यहात् त्र्यहात् । धान्यनागरसासिद्ध तीय दद्याद्विचद्यग् । व्युषिताय निशा कल्यमुष्ण वा केवल जलम्" इति, व्युपि-तायेति अनुवासनरेन इ दत्वा निशा व्युपितायेत्यर्थ । एनेन यस्मिन् दिने अनुवा-मनस्तेहो न दीयते तस्मिन्नेव दिने धान्यनागरसिद्ध जल देयमिति बोधयतीति । कल्यमिति प्रात । पित्तील्नयो तु दोषे घान्यशुगठीजल हित्ना कीष्याजल देयमित्याह पिचोत्तर इत्यादि-तावन्मात्रमिति काथप्रमाण्यम् । त्रियामस्थरनेहस्य सम्यगनुवासन-लिङ्गल यदुक्त तदपवादमाह श्रहोरात्रादिति-सुश्रुतस्य । श्रहोरात्रादिति वास्तिप्रियः-थानदिनरात्र्यभिप्रायेख, तेन यामत्रयात् परतोऽपि याममेकमनागच्छन्नपि स्नेही न दुष्यति न व्यापद करोतीत्यर्थ । बस्तिगुणानिति स्नेहनबृहखादीन् । जीर्ण इति परिणत , अल्पगुण द्रति बाब्बशिम्यामिभगूय पाक नीत्वा न मम्यक् स्रोहनादिक करोति । वीर्येण देह भावित्वा प्रत्यागच्छ्रेन्नव लेही यथोक्तगुणकारक इति भावः। पकाशयस्थरयापि लेहस्य पाकोऽग्निपत्यासस्या देहतेजसा च सम्रच्छत एव । श्रत-एवोक्त चरके——"एवमाशु जरां लेही यात्यम्ब सिकतास्विव । एथ्योऽन्येषा ज्यहात् प्राय तेह पचित पावक " इति ॥ ६ ॥

यस्य नोपद्रवं कुर्य्यात् स्नहवस्तिरिनःसृतः। सर्वोऽल्पो वावृतो रौद्यादुपेद्यः संविजानता॥ १०॥

इदानीं य केष: सर्वथानि सत: समुदायनैकदेशेन वा यदि व्यापद न करोति तदा तएप्रवर्त्तनाय यत्नो न विधेय इत्याद्द यस्येत्यादि—दृद्धवलस्य । श्रानिः-स्तोऽपि स्तम्भरूपादिकमुपद्रव न कुर्यादिति । श्ररुपो वा सत इति स्तोक्षनि सत स्तोकक्षावृत इत्यर्थ । श्रावृतस्यापि स्तम्भाषुपद्रवाकरण हेतुमाह रौद्यादित्यादि—रारीरस्याल्परूचतया तिष्ठक्षपि रेनहो रूचरारार भावयन्नव न व्यापद करोतीत्यर्थ । श्रन्य तु सर्वोऽत्यो वा धृत इति पठिनत, रौद्याच्छरीरोद्भतवायुना धृत प्रतिवद्धः कहोऽनि स्तोऽपि व्यापदजनकत्वादुपेद्य इत्याद्ध । वपेद्य इति न तत्र वाताधा-वृतकेष्टप्रवर्तनी चिकित्मा कार्येत्यर्थ ॥ १०॥

श्रनायान्तमहोरात्रात् स्नहं सोपद्रवं हरेत्। ' स्नहवस्तावनायाते नान्यः स्नहो विधीयते ॥ ११॥

श्रनायान्तिमित्य।दि—सुशुतस्य । इरदिति शोधनशस्तिभिरिति शेष , श्रतः यनाह स्नेह्वस्तावित्यादि—सुश्रुतस्य । नान्य स्नेहो विधीयत इति स्नेहातियोग-भयात् । शोधनगस्तिस्तु दीयत प्वेत्यर्थः ॥ ११॥

श्रश्चस्य मलोन्मिश्रः सहो नैति यदा पुनः।
तदाङ्गसद्नाध्मानग्रलाः श्वासश्च जायते।
पकाशयगुरुत्वञ्च तत्र दद्यान्निरूहण्म्॥
तीद्रणं तीद्रणौषधैरेव सिद्धञ्चाप्यनुवासनम्॥
सिह्वस्तिर्विधेयस्तु नाविश्रद्धस्य देहिनः।
सिह्वार्थ्यं तथाद्ते सेहे नानुविस्पति॥ १२॥

सिनिकित्सित व्यापदमाह अशुद्धस्थेत्यादि—अशुद्धस्येति वमनेन विरेचनेन वा । तीच्यामित्यनुवासनिधेशेषणम् , अन्ये तु निरूष्टणिमत्यस्य विशेषणिमित्याष्टु । वमनिवरेकाभ्या शुद्धस्यैव स्नेष्ट्वस्तिरेयो न पुनरविशुद्धस्येत्याह स्नेष्ट्वस्तिरित्यादि । कुतो न विधेय इत्याह स्नेहवीर्व्यमित्यादि—तथा दत्ते स्नेहे श्रविशुद्धदेहप्रयुक्ते स्नेहे मित स्नेहवीर्व्य यस्मान्नानुविसर्वति । देहमिति शेष । स्नेहमित्यत्र देहमिति पाठे तथाठत इत्यत्र स्नेहबस्नाविति शेषो वोध्य ॥ १२ ॥

> श्रशुद्धमपि वातेन केवलेनाभिपीडितम्। श्रहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत्॥ १३॥

द्यशुद्धस्य स्तेहवस्तिनै देय इति यदुक्त तदपवादमाह द्रशुद्धमपीत्यादि—— केवलेनेति निरावरणेन, द्रहोरात्रस्य कालेष्ट्रिति द्यहोरात्रैकी ये काला पूर्वाह्मपूर्व-रात्राययसेष्टित्यर्थे ॥ १३ ॥

> श्रज्ञवांसयेत् तृतीयेऽहि पञ्चमे वा पुनश्च तम् । यथा वा स्नेहपिक्षेः स्यादतोऽप्युख्वणमारुतान् ॥ व्यायामित्यान् दीप्ताग्नीन् कृत्तांश्च प्रतिवासरम् । इति स्नेहिस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्नोतोधिश्चद्धये । निक्षद्वं शोधनं युञ्ज्यादिस्तग्धे स्नेहनं तनोः ॥ १४ ॥

एकमन्त्रांसन दत्ता कियता कालेनानुवासन देयमित्याह अनुवामयेदित्यादि-बाग्भटस्य । स्तेहपिनत स्यादिति छेद । तमिति प्रथममनुवानित तृतीये पञ्चमे बाइनि अनुवासंयद्, अत्र सति वृद्धवाते त्र्यहेऽनुवासन देय, मन्दाग्नी वृद्धकफिपेत्ते तु पश्चमदिनेअनुवासनमिति न्यवस्था । यथा वा स्तेहप्वित, स्यादित्यनेनाग्न्यपेक्षया उक्त-कालातिक्रमोऽपि कार्य्य इति नोधयति । उल्नयवातादीन् प्रति तु प्रत्यहमेवानुनामन देयमित्याह मतोऽपीस्यादि-मतोऽपीति त्र्यहादिदेयानुनासनापेचयापीत्यर्थ । हारी-तोऽप्याह-"दृष्ट्वातिवृद्ध पवनस्य रूप दिने दिने वस्तिमुटाहरान्ति" इति। सुश्रुते-Sप्युक्न-''रूक्स्य बहुवातस्य स्तेहवस्ति दिने दिने । दघाद्वेद्यस्ततोऽन्येषामग्न्याबाध-मयात् त्र्यहात् " इति । अनयैवोक्तरीत्या निरूद्दानन्तरमनुवासनकालोऽप्यूहनीय । यदाह दृढवल - "त्र्यहे त्र्यहे वाप्यथ पञ्चमे वा दद्यानिरूहादनुवासनज्ञ" इति । एव यस्मिन् दोषे यावन्त्यनुवामनानि देयानि तदपि चरकादविवानुमर्चन्यानि । कियन्त स्नेष्टवस्तय प्रयोज्या इत्याह इतीत्यादि-वाग्मटस्य। ननु त्रिचतुर्धि. स्नेद्दीरत्यनेन चतु सङ्कथवस्तिदान विधीयते, तथा च विरोध , उक्त हि चरके-" वस्नीन् युग्मान् कुशला विदध्यात् " इति, युग्मवस्तिदानश्च प्रमावदिवात्रीप-कारीति महर्षिवचनादुन्नीयते, यथा युग्मेष्वह सु पुत्रकामी मवमेतामिति, अयुग्म-

दानीपपित्रश्चात्रातिप्रसिद्धस्यनुकथिता 'प्राचार्थ्येण, सत्यम्, अत्र श्रिचतुरैरित्यनेन युग्मवित्तदानमुक्त यत् तिल्लह्दाद्धत्तया स्नेष्टनार्थिक्रयमाणानुवासनिविषयम्, अयुग्मवित्तदानम्त स्वतन्त्रिक्षमाणानुवासनिविषयम् अतो भिन्नविषयतया न विरोधः । किंवा चरके अयुग्मानित्यस्य सान्तरानित्यथं, तेन यश्राष्ट्रत्यानुवामन देय तदयुग्मक निस्द्यान्तिरित कर्त्तव्यम्, तेन नवस्र पकादशस्र वानुवामनेषु दत्तेषु यदि वार्युन् शाम्यित तदा तस्य मार्गावरणिनष्ट्रत्यर्थं निरूद्ध दत्त्वा पुनर्थथोक्षमण्ययानुवासन देयमित्यर्थे, । क्षिग्ध इत्यत्र देय इति शेषः । प्रमक्षिग्ध इत्यत्रापि । शोधनिमिति निरूद्धविशेषणम्, स्नेष्टनामित्यनुवासनम् ॥ १४ ॥

विष्टन्धानिलविएम् त्रः स्नेहो हीने ऽनुवासने । दाहज्वरिपासार्तिकरश्चात्यनुवासने ॥ १४ ॥

श्रनुवासनयोगातियोगलच्चणमाद्द विष्टम्थेत्यादि — मुश्रतस्य । विष्टम्थान्यनिल-विगमूत्राणि यस्मात् स्नेदात् स तथा श्रनिलादिस्तम्भकर द्रस्यर्थ ॥ १५॥

स्नेहवर्स्त निरूदं वा नैकमेवातिशीलयेत्। स्नेहात् पित्तकफोत्झेदो निरूहात् पवनाद्भयम् ॥१६॥

निरूपानुवासनयो परस्पराव्यवधानेन दोपमाह केष्ट्यस्तिमित्यादि—चरकस्य।
एकमिवेति परम्परान्तिरतम्। उत्केदः पित्तकफोत्केशः, केविन्तु केष्टात् पित्तकफोत्तः
केशः इति पठन्ति। निरूष्टात् पवनाद्भयमिति निरन्तरिनरूष्टेण शरीरस्य शोधनातिः
योगात् पवनाद्भय स्यादिति माव अनुवासनार्थे त्र तेलं पक्षमेव आण्यम्, नापकम्।
यदाष्ट् वृद्धवलः—'न चाम प्रख्येत् स्नेष्ट् वदिभिष्यन्द्येद् गुदम्' इति। अनुवामना
र्थे त्र तेल यथप्यस्मिन् प्रकरणे नोक्षः तथापि वातव्याध्युक्षमेव नारायखत्तैलादिकमिष्टाप्यनुवासनीयम् ॥ १६॥

श्रनास्थाप्या येऽभिधेया नाजुवास्याश्च ते मताः। विशेषतस्त्वमी पाएडकामलामेहपीनसाः॥ निरन्नसिह्विड्भेदी गुरुकोष्ठकफोद्राः। श्रभिष्यन्दभृशस्यूलिकमिकोष्ठाख्यमारुताः। पीते विषे गरेऽपच्यां श्ठीपदी गलगएडवान्॥१७॥

येपामनुत्रासन न देय तानाहं अनास्थाप्या इत्यादि-आस्थापन निरूद्यम्, अनास्थाप्या अनिरूपा इत्यर्थ । अतिदेशेनाननुत्रासनीयानिभधाय विशेषतो ये नानुवामनीयास्तानाह विशेषते इत्यादि —वाग्मटस्य । कृताहारोऽप्यनास्थाप्यस्वेन

बक्तव्य तत्रश्च ' श्रनास्थाप्या बेडिमिथया नानुवाम्याश्च ते मताः '' उत्युक्षेः, इताः हारन्याननुवास्यत्व स्वादतन्त्रिक्रामार्थमत्र निरुद्ध उकः । श्राद्धमारुत कन्स्तम्म, । एयात्र पाएड्वाडीनामनुवासनेन ये दोषास्त्रे चर्के पद्मक्रमायमिद्धावनुनन्त्रेया , इह तु विस्तरस्यान्नोक्ताः ॥ १७ ॥

श्रमास्याप्यास्त्वनिक्षिग्धः चनोरस्को भृशं कृशः । श्रामातिसारी यमिमान् संशुद्धा दचनावनः । श्र्मासप्रमेकाशीहिकाध्मानात्पवहयः । श्रूलपायुः कृताहारो वद्धिक्षृद्रदकोद्दी ॥ कृष्ठी च मधुमही च मासान् सप्त च गर्भिणी ॥ १८ ॥ श्रमान्थाप्यानाह अनान्थाप्या अयादि—नाग्मद्य्य । अत्राप्यविक्षिण्या-दोनामास्यापनशेषान्त्रवातुमन्थेयाः । मामान् नप्त च गर्मिणीत्यस्यन्तमयोगे हिनाया । वेनैक्यासात् प्रश्वी सप्तमासपर्यन्त दिस्तिनिष्य दित ॥ १८ ॥

> न चैकान्ते न निर्दिष्टेऽप्यत्राभिनिविशेद् बुधः। भवेत् कटाचित् कार्य्यापि विरुद्धापि मता किया॥ द्विद्दिटोगगुल्माते वमनं स्व चिकित्सिते। स्रवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं कुष्टिनां वस्तिकर्म च॥ ६॥

इत्यनुवासनाविकारः।

 न्यतग्त्वनिषेष इति । उत्मर्गापवादतया निषेधनिषिद्धकरणये।रविरोध इति दर्शयति, एवमन्यश्रापि निषेधिषये वमनादिविधानमवस्थाविशेषपरतया समाधेयम् ॥१६॥

इत्यनुवासनााधिकार-विवृति, ।

अथ निरूहाधिकारः।

श्रजुवास्य स्निग्धतनुं तृतीयेऽहि निरूहयेत् ॥१॥

श्रनुवासनेन रिनम्पस्य निरूद्धिपानादनुवासनाधिकारमनु निरूद्दमाए श्रनु-यास्येश्यादि—नृतीयेऽद्वीति श्रनुधासनमारम्य नृतीयदिन इत्यथं । नृतीयेऽद्वीति प्रायिक क्षेत्र पक्षमे तदिपानाद, यदाए वान्मटः—''पक्षमेऽथ नृतीये वा दिवसे साथके श्रोम ।'' निरूद्दनिरुक्तिश्च सुश्रुते—''यथा दोपनिर्दरणाच्छरीररोएणादा निरूदः'' इति । श्ररीररोएणन्तु वयःस्थापनेन श्ररीरपुनर्नवीकरणम्, श्रतप्वास्था-पनमिष निरूद्दस्य संग्रान्तर वयःस्थापनादायु स्थापनादेति ॥१॥

मध्यादे किञ्चिदावृत्ते प्रयुक्ते विलमहते ।

ग्रभ्यक्तस्विदितोत्स्एमलं नातित्रुभुक्तितम् ।

मधुस्नेहनकल्काढ्यकपायावापतः क्रमात् ।

श्रीणि पड् द्वे दश त्रीणि पलान्यनिलरोगिषु ॥

ित्ते चत्वारि चत्वारि दे द्विपञ्च चतुएयम् ।

पद् त्रीणि हे दश त्रीणि कफे चापि निक्हणम् ॥२॥

निरूद्दानसमयमाद्द मध्याद्द इत्यादि—नाग्मटस्य । किश्चिदावृत्त इत्यल्पस्लि । स्रभ्यक्तस्वेदितीत्स्प्रमलिमिति अभ्यक्तत्यनेन अभ्यक्षविपयेऽपि स्नेद्दप्रयोग कर्त्तन्यतया वा अनुजानाति । स्वेदो यद्यपि पद्यक्तम्पूर्वकतयानुकोऽपि गम्यत एव, यद्युक्तम् "अनुपरिथतदोपाणा स्नेद्दस्वेदोपपादनैः । पञ्चकमीणि कुर्वति ।" इति तथाध्यभ्यक्षिप्रयमाणस्नेद्दसद्द्यस्वेऽपि स्वेदविधानार्थं स्वेदितेत्युक्तम् । उत्स्ष्टमल-मिति त्यक्तपूर्वपुरीपम् । नातिवुसुचितमिति वुसुचितस्य हि निरूद्धोऽतियोगायोद्ध्वंगमनाय च स्यादिति भावः । निरूद्धोऽपि पद्याद्दो भवति । अतो मध्वादेरक्षपञ्चकस्य दोपभेदेन मानमेदार्थं परिभाषामाद्द मध्यत्यादि—स्नेद्दन पक्षतेलम्, आमस्य निपिद्धत्वाद्द्यं, किंवा स्नेद्दशब्देनात्र मञ्जान वर्जायत्वा स्नेद्दशयस्य प्रद्याम्। यद्धकः—

विश्वयित्रिविष. स्लेहो वस्त्यर्थं मञ्जवित इति । मदनफलशतपुष्पादीना कल्क ।
आवापशब्देन तु मधुस्नेहकल्ककाथन्यतिरिक्षचीरमृत्रकाशिकजम्बिरमामरसादि-द्रव्य
मुन्यते, धतादी पुनरावापशब्देन प्रचेपः, ''कल्को वाप्यभिधीयते'' इति । श्रनिलरोगेपु क्रमात् यथासख्य मधुनस्त्रीिय पलानि, स्लेहस्य पट्, कल्कस्य दे, क्षायस्य
दश, शिथ्य वावापस्यति । एव मिलित्वा द्वादशप्रस्तो निरूहो भवति, प्रस्तन्तु
पलद्वयमिति । एव पित्तकृष्मायि च न्याख्यम् । द्विपश्चेति दश इत्यर्थः । इदन्तु
यद्दादशप्रस्तमान निरूहस्योक्त तद्यादशवर्षमारम्य सप्ततिवर्षपर्यन्त बोध्यम्, तेन
वयोभेदेन निरूहमात्रामेदश्चरकादावनुसरणीय । तेन यत्र द्वादशप्रस्तापेत्वया
हीनमात्रो निरूहः कर्त्वन्यो मवति तत्र मधुस्नेहत्दीनामुक्तमात्रानुसरिण मात्रा
कल्पनीया । द्वादशप्रस्तापिकमात्रा च न कर्त्वन्येव, उक्त हि चरके द्वादश पर
स्थिति, परशब्दोऽकथारेखे, द्वादशेव प्रसताः स्युरित्यर्थः । एतत्र चरकवचन परमत्मचेपयार्थं श्रेयम्, तेन सुश्रोतं 'द्वादशप्रस्ताधिकमानस्य महात्यस्वादिति ।
हारीतेऽप्युक्तम्—अद्बीदक परमत प्रमायिमिति ॥२॥

द्त्वादे सैन्धवस्था मधुनः प्रसृतद्वयम् । विनिर्मथ्य ततो द्यात् स्नहस्य प्रसृतद्वयम् ॥ एकीभृते ततः स्नेहे करकस्य प्रसृतं चिपेत् । सम्मूर्ण्डितं कपायं तं पञ्चप्रसृतस्मितम् ॥ वितरेत्तु यथावापमन्ते द्विपस्तोन्मितम् । वस्त्रपूतं तथोष्णाम्यु कुम्भीवाष्णेण तापितः । एवं प्रकरिपतो वस्तिद्वादश्यपस्तो भवेत् ॥ ३॥

निरुद्दे द्रन्यसयोजनाक्रममाह दस्तेत्यादि — ग्रुश्रुतस्य । प्रथम शिलादिखरमस्याभाजने तथोक्षमान मधुसैन्थवच्रांश्च स्थापयित्वा चिर धर्षण कार्य्य यावदेकीभवति, तदनु क्षेष्ट्रप्रसत्द्रयमपि मधुना सार्ध मथ्नीयात् यावदेकीभवति, एकीभूते
च क्षेद्दे कल्कस्य प्रस्त कपायस्य पश्च प्रसतानि दस्ता धालोडयेत्, तदनु प्रसतद्रयमावाप वितरेदित्यर्थ । अथञ्च निरूद्द्रच्यसयोजनक्रम पित्ते चालारि चालारित्याधुक्षमानसंवादात् पित्तोक्षनिरूद्धमानमिध्द्रस्य यथ्युक्तस्तथापि एकस्रोक्षो
विधिरन्यस्त प्र्युपतिष्ठत इति न्यायात् कफवातोक्षनिरूद्धऽपि क्षेय । द्वादशप्रसत इति
यद्यप्रक्ष सैन्धवाद्यमधिकमपि भवति तथाप्यल्यत्वादिवयणनयोक्ष द्वादशप्रसत इति ॥३॥

न धावत्यौपधं पाणि न तिष्ठत्यविल्य च । न करोति च सीमन्तं स निरूहः सुयोजितः ॥ ४॥

इदानीं सम्यग्योजितस्य निरूद्दस्य लक्ष्यमाह न धात्रतीत्यादि—श्रीपध मिलितमधुकेहकपायकरुकरूप निरूद्दीपध पाणि न धावित तनुतया अचालितप्राय हन्त न करोतीत्यर्थ, । तथातिधनतया पाणिश्वाविष्य यदापध न तिष्ठति तथा तदीपध मीमन्त तैलादिरेखा न करोति न दशर्यति । सुयोजित इति सम्यग्यो-जितः ॥ ४॥

> पूर्वोक्केन विधानन गुद्बस्ति निधापयेत्। तिशन्मातास्थितो वस्तिस्ततस्तृत्कदुको भवेत्॥ जानुमग्डलमावेष्ट्य दत्तं दक्तिग्पाणिना। कृप्टनेत्रश्कुटाशब्दशतं तिष्ठेदवेगवान्॥ द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुथे वा यथाथेतः॥ ४॥

श्रीपथयोजनानसर यद्विथय तदाह पूर्नोक्तेनत्यादि ।—पूर्नोक्तेनत्यनुवामनोक्तन । बस्तिमिति निरूहम् । स च बस्ति कियन्त काल गुरै स्थाप्य इत्याह
त्रिशनमान्नेत्यादि —मानास्वरूपन्नाग्निवेशनोक्त यथा—''यावत् पर्येति इस्ताय
दिन्नण जानुमय्हलम् । निमेपोन्मेपकालो वा मा मान्ना परिकीर्तिता'' इति ।
उत्कह्नम उकडीति लोके । एतम सिशनमात्रोपस्थापन मृदुकोष्ठ वेगवन्तन्न प्रति
बोध्यम् । अवेगवन्त क्र्रकोष्ठन्न प्रति यद्विथय तदाह जानुमय्हलत्यादि ।—कृष्टेनत्र
इत्याकृष्टनिलक । दत्त ख्याशब्दिमत्यन्वयः छ्या तुरीति लोके । कियती छ्या
देथत्याह द्वितीयमित्यादि ।—अत्र द्यादिति शेष । चतुर्थं वा यथार्थत इति
निरूहसाध्यप्रयोजनानुरोधात् चतुर्थमिष पुटक द्यादित्यर्थं, । ननु दृदवलेन
चतुर्थवस्तिदान न मन्यते, यथा—''क्षिग्धोष्ण एक पवने समासा दो स्वादुशीनो
प्रयमा च पिते । त्रयः ममूत्रा करुकोष्णतीच्णा कफे निरूहा त पर विधेयाः ॥'
तथा वाग्मटेऽप्युक्त—''त्रिभ्य पर विश्वमतो नेच्छन्त्यन्ये चिकित्मकाः । न हि
दोषश्चतुर्थोऽस्ति पुनर्दियेत् यं प्रति'' इति । नैवम् , निषद्वेऽपि बहुपुस्तकविषयत्या
प्रायिकम् । चतुर्थपुटकदानन्तु कचित् क्रूरकोष्ठे बलीयसि मृदुदेषि च पुक्प इति
भिन्नस्वविषयत्या न विरोधः । अत्रपत्र यथीक्त इत्युक्तम् ॥ ५॥

सम्यङ्निसहिलाङ्गे तु प्राप्ते वर्स्ति निवारयेत् ॥

प्रसृष्टिविरासूत्रसमीरणत्वं रुच्यश्चित्रद्वाश्चयलाघवानि । रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च चलञ्च तत्स्यात् सुनिरूढलिङ्गम् ॥६॥

बस्तिनिवारखिविधिमाद्द मम्यगित्यादि—नदेव सम्यग्लिङ्गमाद्द प्रसृष्टे-त्यादि—हदवलस्व । प्रसृष्ट सम्यक् प्रवृत्तम् । आरायलाधवानीत्यत्र आमयलाध्यानीति पाठ रोगोपशान्तिरित्यनन्तर वा राष्ट्री श्रेयः । तेन निरूद्दमाध्याना विकाराखा लाधवसुपशान्तिको भवतीत्यर्थ । रोगोपशान्तिरिति वचन रोगविषयम्, प्रकृतिस्यतेति तु सुस्थविषयम्, तेनात्र पौनरुकच नाशङ्कनीयम् ॥ ६ ॥

श्रयोगश्रातियोगश्र निरुद्ध्य विरिक्षवत् ॥ स्निग्धोष्ण एकः पवन समासो द्वौ स्नादुशीतौ पयसा च पित्ते । त्रयः समूताः कटुकोष्णुरूताः कफे निरुद्धा न परं विधेयाः ॥ एकोऽपकर्पत्यनिल स्वमार्गात् । पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः ॥ ७॥

अनुवासनयोगितियोगल च्या निरुद्देऽप्यतिदिशित अयोगश्चेत्यादि । इदानीं दोषभेदेन वस्तिपुटकसख्या नियमयनाह क्षिग्थोष्य इत्यादि । एक इत्येप्तपुटक,, समास इति मासरससिहत । उक्त हि वाग्मटे—''वस्तिरेकोऽनिले स्निग्धः स्वाहम्लोष्यो रसान्वित '' इति । वति रिनग्धोष्यस्तथा एक एव निरुद्द्द्युद्धे देयो न त्विषक । ममास इत्यत्र निरुद्द् इति केचित पठन्ति निरुद्देऽत्र पुटकामिथायी । पयसा चत्युपलच्या तृतीया, पथसा युकावित्यर्थ । कद्रूप्यतीष्ट्यत्वष्टच कद्धकादि-इन्ययोगिदेव क्षेयम्, न पर विधेया इत्यनेन सुश्रुतोऽत्र चतुर्वरितदानमत्यर्थशरीरिहमक निपेधयित । वाग्मटेऽप्युक्त—''त्रिम्य पर वस्तिमतो नेच्छन्त्यन्ये चिकित्मका । न हि दोपश्चतुर्थो ऽरित पुनर्दायेत य प्रति' इति । अस्यत्र दोषभेदेनोक्तस्य वस्तिपुटकसख्यामेदस्य फलमाह एकोऽपकर्षतीत्यादि—स्वमार्गादिति स्वस्थानात्, एतचानिलादि सवत्रैव योज्यम् । अनिलस्य हि पाकाशय स्थानम्, तस्य प्रत्यासन्नत्वादेकपुटकोऽप्यनिलमपकर्यति, दितीयादिपुटकदान तत्र निष्फलमिति माव । एव पिचे तृतीयपुटकटानम्, कफे चतुर्थपुटकदान न कार्य्यम्, फलागावात् । पकाशयोपस्या पित्ताराशस्य व्यवहितत्वात् दितीय पित्त स्वाशया-

दपकंषित, ततोऽपि कफाशयस्य व्यवहितत्वात् तृतायपुटकः कफमपकंषितः । स्त्रमागादित्यनेन यदि दोषाः स्वस्थानस्था भवन्ति तदैवाय नियम इति वोधयिति, तेन
यदि पित्तकफौ पक्षाशयस्थौ भवतः तदा प्रथमपुटकोऽपि तत्स्थानगतिपत्तकफप्रशमन करोति, तथा द्वितोयतृनीयाविष पित्तकफस्थानगतवायुप्रशमन कुरुते इति
श्वम् । पित्तकफयोस्तु यद्यपि मुख्य चिकित्सितः वस्तिदान न भवति वातावरके
वातानुवन्ध वा पित्तकफे नैतद्दस्तिदान श्रेयम । तद्कः सुश्रुते—"वस्तिवीते च
पित्ते च कफे रक्षे च शम्यते" इति । वस्तेस्तु प्राधान्यतो यस्तिगतदोपहरकत्वमेवौत्तिगिकम्, तेन पित्तादिस्थाने विशेषवस्तिविधानसाम्य्यात् पित्तादिस्थानगतदोवहरणमप्यपवादरूपतया न विरुध्यते ॥ ७ ॥

श्रनायान्तं मुहूर्त्तान्तं निरूहं शोधनैहरेत्। निरूहैरेव मतिमान् ज्ञारमूत्राम्लसंयुतेः॥ विगुणानिलविष्टब्धं चिर तिष्ठान्निरूहणम्।

शूलारतिज्वराटोपान् मरणं वा प्रयच्छति ॥ 🖛 ॥

यणुक्तलक्षणाजिरूहो न प्रवर्तते तदा किं कर्त्तव्य तदाह अनायान्तमित्यादि—
सुश्रुतस्य । मुद्दूर्ती नाडिका । शोधनैरिति, शोधनद्रव्यक्तः । निरूहस्य चिरस्थानगतदोषहरणमप्यपवादरूपतया न विरुध्यते ॥ = ॥

न तु भुक्तवते देयमास्थापनिमिति स्थितिः। श्रामं तिद्ध हरेद्भुकं छुर्दिं दोषांश्च कोपयेत्॥ ६॥ भुक्तवतो निरूहदानीनषभगए न त्वित्यादि—स्थितिरित्यायुर्वेदनिश्चयः। हरेदित्यभो हरेत्, छुदिमित्यूद्र्धं जनयेदिति शेष ॥ ६॥

त्रांवस्थिकः क्रमश्चापि मत्वा कार्यो निरूह्णे ॥ १०॥ श्रवस्थावशेन यथोक्षकमन्यभिचारं दशयन्नाह श्रावस्थिक इत्यादि—
तस्यैव। मत्वेत्यवस्था युद्धा, निरूह्णे श्राविश्यिक इत्यवस्थो।चित क्रम कार्यं,,
तेनावस्थाविशेषे निषिद्धनिरूद्धेऽपि प्रतिकार चि-तियत्वा निरूह्णे देय प्वेत्यर्थ ।
यथा भुक्तवती निषिद्धोऽपि निरूह्णेऽत्रत्थंश्रह्णवेदनाया वैतरण्यास्तरूपो दीयते तथा
उदरादिषु निषिद्धो निरूह्णेऽत्रस्थाया किमिति निरूह्ण एव क्रियते चिकित्सान्तरमेव
कथ न क्रियते इति वाच्यम्, वस्तिगतदोषे हि मलावृते वस्तिरूप प्रधान चिकितिनत मलापहरणेन दोषान् चपयित, न तत्र चिकित्सान्तरं प्रभवति, श्रतस्तस्यामवस्थायामनदैनिरूह्ण्यामिष दोषमलहरो निरूह्णे देय प्वेति ॥ १०॥

श्रतिप्रपीडितो चित्तरितिकम्याश्यं तनः । चोतिरितो नासिकाभ्यां मुखतो चा प्रपद्यते ॥ छुर्दिह्लासमूच्छांदीन् प्रकुर्याद्याहमेव च । तत्र चूर्णं गलापीड कुर्याच्याप्यचधूननम् ॥ शिरःकायचिरेकौ च तीचणौ सकांश्च शीतलान् ॥ ११ ॥ बस्तरितिपीडनेन दोषमाह श्रातिप्रपीडित इत्यदि—सुयुतस्य । श्रागयमिति पक्षाशयाधिकम् । नासिकाभ्यामिति नामापुटान्याम् । श्रादिशय्दाद्यध्मानादय । श्रत्र यद प्रतिविधेयः तदाह तेत्रत्यादि—गलापीडिमिति गलपीडनम्, प्रत्व तथा कार्यं यथा न श्रियते । उक्त हि—''बक्षपाणियहं क्युठ रुन्धान्न श्रियते यथा'' इति । श्रवधूननमित्यत्र केरेष्ट्याद्वत्येति रोष । उक्त हि—''केरोप्दालम्य्य वा करो धुनुयात् '' इति । एतच्च बित्तन्यापीचिकित्सित लेशत एवोक्नम् , विस्तरस्तु चरका-दावनुसन्थेय इति ॥ ११ ॥

> सुनिरूढमथोण्णाम्बुसातं भुक्तरसौदनम् । यथोक्केन विघानेन योजयेत् सद्वस्तिना ॥ १२ ॥

निरूद्दसम्यग्योगानन्तर यद्विषेय तदाह सुनिरूढीमत्यादि—सुश्रुतस्य । उप्णाग्यु सानमिति शिरो विहाय क्रेयंस्, शिरिम तु शीतलजलेनेति वृद्धा व्यवहरन्ति । अत्र क्रिवित् यद्वद्गियाना नागरसाधितमुष्णोदक पानार्थमुपदिशन्ति । यद्वक्त-नतः प्रत्यागते बस्तां वार्य्युष्ण नागरे श्रुतम् । पाययेत् कृतशौचन्न स्नापयेदुष्णवारिणा" इति । स्नेह्विस्तिनेति—स्नेह्विस्तिदानन्तु वृद्धवलेनोक्त यथा—" प्रत्यागते कोष्णजलाभिषिकः गाल्यन्नमचात् तनुलावणन । जीर्णे तु साथ लघु चाल्पमात्र मुक्तवानुवास्य परिवृह्दणार्थम् । निरूद्धपार्थम् निर्वेतः । निरूद्धपार्थम् । निर्वेतः । तस्माद्यस्ति चिर्वाणमार्थम् । निरूद्धपार्थम् । निर्वेतः चरमार्थम् । निर्माद्वप्रस्वाणमार्थम् । निरमाद्वप्रस्वाणमार्थम् । निरमाद्वप्रस्वाणमार्थम् । निरमाद्वप्रस्वाणमार्यम् । निरमाद्वप्रस्वाणमार्यम् । निरमाद्वप्रस्वाणमार्यम् । निरमाद्वप्रस्वाणमार्यम् । निरमाद्वप्यम्वप्यम् । निरमाद्वप्यम्यम्यम् । निरमाद्वप्यम्यम् । निरमाद्वप्यम्वप्यम्यम्यम्यम्यम्वप्यम्यम्य

पाद पट्पल तस्याराश्चतुर्था भागः साँद्धेकपल तत्सम तैलमिति हि तदर्थः । ष्ट्यास्तु सार्द्धपेलन तिहेनानुवासन कुर्वन्ति निरूहस्य मन्दाग्नित्वात्॥ १२॥

तदहस्तस्य पवनाद्भयं चलवदिष्यते ।

रसौदनस्तेन शस्तस्तदृहश्चानुवासनम् ॥ १३ ॥

कुतो मासरसः केष्ट्वास्तिध तत्रोपदिश्यत इत्यत छाह तदहारित्यादि—

निरूदृकृतमलदोषस्य रूचलेन वातात भीतिरिति मानः ॥ १३ ॥

अद्भगित्रकः

दशमूलीकषायेण शताहात्तं प्रयोजयेत्।
सैन्धवात्त्रञ्ज मधुनो द्विपलं द्विपलं तथा॥
तैलस्य फलमेकन्तु फलस्यैकत्र योजयेत्।
श्रद्धमात्रिकसंकोऽयं बास्तर्देयो निरूहवत्॥
न च स्नहो न च स्वदः परिहारिवाधिनं च।
श्रात्रेयानुमतो होष सर्वरोगनिवारणः॥
यदमझश्च श्रलझश्च किमिझश्च विशेषतः।
श्रुकसञ्जनो होष वातशोणितनाशनः॥
वलवर्णकरो चृष्यो वस्तः पुंसवन परः॥ १४॥
इत्यर्द्धमात्रिकः।

इदानीं निरूष्योगा वाच्या, तत्र प्रथम प्रसिद्धत्वाद्धेमात्रिकविस्तिमाह दश्मूली-त्यादि—चन्द्राटेक्कः तन्त्रान्तरस्य। उत्सर्गसिद्धचतुर्विशतिपलनिरूष्ठोपचया मात्रार्धमस्यित कृत्वा द्वादशपलोऽय निरूष्ट्रो क्षेय व्यक्षेमात्रिक श्र्युक्तः। अत्रप्टव मधुरनेष्ट्र-काथ्येत्यादिपरिभाषया यद् द्रव्यमानमुक्त तद्धंमानमेवात्र क्षेयम् । तेन द्वादशिभः पलैरेकः पुटक, एव त्रयः पुटका देयाः। अत्र पुटकत्रयार्थं दश्मूलस्य प्रत्येक कर्षन्त्रयम्, अतः सार्धसप्तपलानि, तत्र काथपरिमाषया जलस्यापि सार्धसप्तशरावाः, एभिश्च षष्टिपलानि भवन्तीति एषा चतुर्याशरापात् पश्चदश पलानि दशमूलकपायस्य भवन्ति । तत्रैकपुटकार्थं पञ्च पलानि ब्राह्माणि, अपरपुटकयोद्धेयोरिष दशपल विभव्य देयम् । शताहा शतपुष्ठणा, तस्या अचः कर्षः। पत्तत्पेषणमि दशमूलकान्थेनैव विधेयम् । षृद्धास्तु जलेनािष पेषण कुर्वन्ति । पत्तचाचमानमेकेकपुटक प्रत्येव वोध्यम् , एव सैन्धवाचारिकमण्येकरिमन्नेकारिकन् पुटके देयम् । तैलस्यापि दिपल-

निसर्थ । प्रान्येति मदनपणस्य, प्रानेकमाष्ट्रतिमानाद् । प्रयोजनगरिपादी च उत्सादी नन्यवत्याद्यनित्यादि वान्देनवोत्मा, एव नवत्र । सर्वेत्रव निरूदि अनुका-गे।मूश्वराखिकादिह्य्यदानार्थं केह्नुइनिनि परिमाधाननन्तरेन बद्यति तेपाञ्च द्रथाया नाननिर्यनार्थं बृत्वबचननेवानुन्यस्त्रम् नद्यथा—''नर्थं हिन्सुनर्जनी द्विपन मयुन' पलद्यं नैनाद । बाह्तमधित पात्रे गृहकेह मेवेद् यावत् दशमृतस्य क्याद दत्ना पलपञ्चन महन्नेकृत्। गुटगहपुष्मान्तीना कर्षे कर्षे तथा कर्षन् । मापक्पञ्चलित पुरुन्नांग्नाम सप्यलानः । तुष्यमगोजनयोरिप प्रत्येकवेद पुटनाइ" दत्यादि । मन्नाति पक्षतिनिद्धाप्तनं तर्दाप सान्यि अक्षिमिल्यपेदेश । प्रकृतन्वीराहाँना भाषक्यक्टहितं कर्षमित्वर्थः । पूर्को मानुसुहन् , अन्य पह-पनरसा गृहोते । ६व बन्दीग्स्तापि नाषक्यम्बन्धितम् । चीरवर्षन्तः नध्योकृतस्य निनिवनिरुदन्य वर्नपुटकप्रवेशनमधे प्रवेतम्मन् इन्यया न धावर्खीयव पाणि-मिन्यादि तम्रय न स्वारित्याहुर्नृद्वेदा । अनेन प्रव्येय पुटकत्रममुत्यां । प्रोम पुरन्देयनापि सन्यङ्गिरुइएचए तत्र तावन्नात्रमेवेति । सुख्यहर्पार्थमर्द्ध-मात्राधिकवन्ते पविका लिख्यते,—पुटकत्रदार्थं दरामूल प्र क ३, पाय रा ७ पन ४, नेप पन १५, मानित हत्वा एकपुटकार्थ दमसूनकपाय पत ५, प्रेसपार्थ हिरिष्टगोषकगद्धमा (मोये)क १. सैन्धव क १, सब्रु प २, पक्षतैल प २, दिष्टमदन फ्ल गो १, पुगच्युड क १ आठां(रीज)महितसुपक्तितिर्दाप्तन क १ सुपक्र-मातुल्हरुस बनीरम्म-मास्टस-हाझी-गोन्त प्रकृष मा ४, एतत् सर्व पूर्वोहर-स्यानमगीमाव्या नेनारित्वा वेस प्रस्वा वायन्वेदेन करुम्पीकृत्य आसम्, तदनु गम्बदुग्य क १ ना ४, प्रोद्यचारोच्य चमंपुटके प्रदेष्यमिति । एतदेव विधान हिताम द्वीपेडिय हेवन । स्वर्दनाविकः ॥ १४ ॥

केहं गुडं मांसरसं पयश्च श्रम्लानि मूर्त्रं मधुसैन्धवे च । एठान्यनुक्तानि च दापयेच निरुद्दयोगे मदनात् फलञ्च ॥ लवएं कार्यिकं द्यात् फलमेकन्तु मादनम् ॥१४॥

इटानी न्वेंभेन निरुदेषु वातुकान्यन्यद्रव्याचि कवन्यप्रदेव्याचि तानि दापितुं हारीत्ववनतुष्नान्यति कह गुटीमत्यादि । सुशुतन्त्वेतन्ताद्रभिक्तमञ्चाह्—भिन्नोराद्य-न्यानि मृत्याचि केहा हाथ रहान्यथा । नवदानि पर्न होड प्रताहा सुर्पन क्या । एम विष्युक राष्ट्रा साम देवदार च । रचनी मृशुक हिट्ट कुछ स्थोधनानि च । निरूदेषु यथालाम एप वर्गो विधीयते" इति । सैन्धवमदनफलयोर्मिलितानयतमनि-माइ सवर्णामत्यादि—फलमेक्सित्याकृतिमानात् ॥१५॥ '

वाते गुडः सिता पित्ते कफे सिद्धार्थकादयः ॥१६॥

दोपभेदेन गुडिकादीना अन्नेप्यत्वमाह वात इत्यादि-आदिशब्दात् सुश्रुतोक-यचात्रिमहकादीना श्रहणम् । अत्रान्तरे चरकोक एरण्डवस्तिर्दृष्टफलो वोध्य । मोऽप्यर्द्धमात्रिकोककलपनानुमारेणार्द्धमात्रिकयैव वृद्धैः प्रयुज्यते । स चात्र विस्तर-भयात्त विवृत इति तत्रिवानुसन्धेय ॥१६॥

श्रथ चारबस्तिः।

सैन्धवाचं समादाय शताहाच्च तथैव च ।
गोमूत्रस्य पलान्यप्रविम्लकायाः पल्डयम् ॥
गुडस्य द्वे पले चैव सर्वमालोंड्य यत्नतः ।
वस्त्रपूतं सुखोष्णश्च वास्त दद्याद्विचच्लगः ॥
शूलं विद्सहमानाहं मूत्रकुच्छश्च दारुणम् ।
किम्युदावर्तगुरुमादीन् सद्यो हन्यान्निषेवितः ॥१०॥

इति चारवस्तिः।

चारवास्तमाह सैन्धवाचिभित्यादि—विन्तिरयमेतावन्मात्र एव दीयते, इयद्यम्मात्रा एकपुटवास्य । त्रम्लिकाया इति मास्थितिन्तिडीफलस्य । निरूह्योगे मदनात् फलक्रेत्युक्तत्वात् एव मदनफलमप्यत्र वृद्धेदीयते । श्रतएव चन्द्राटोऽप्याह—
'गोम्श्रस्य पलान्यष्टी दे गुडान्तिकयोः पते । कर्षद्र शतपुष्पायास्तथाच सैन्धवस्य च । मदनस्य फलक्रेक खजेन मुविलो।हितम् । वस्तपूत मुखोष्पञ्च वस्ति दधान्द्रिचच्यः । वातविट्सङ्गमानाह मृत्रकृच्कृत्र दारुणम् । स्लोदावर्तगुण्मादीन् सथा एन्यात् प्रयोजित । गोम्श्रवस्तिरित्येष विश्वेयः शोधन पर । हितः साधारखे क्व गुद्धे तु तैलस्युतः । बलवर्णकरः पुमामग्रिसन्दीपनः परम्' इति अस्मादेव वचनात् गोम्श्रवस्तिरित्यिप् मद्यान्तरमस्य वोध्यम्। तथा निरावरखे तु तैलमिष देय तैलच्च पलमान वोध्यम् । तद्दक्तमायुनेदमारे—"श्रष्टी पलानि मृत्रस्य गुहस्य तु पलद्यम् । तद्दरम्लोफल दस्वा मिष्यच सैन्धवस्य च । क्व सामेऽनिले युज्ज्याच्छुद्धे तैलपलान्वितम् । चारवस्तिमिम ।सिद्ध वातोदावर्त्तनाशनम्" इति । इदानीं चारवस्ते पत्रिका लिख्यते, सैन्धवच्यूर्णं क १, शासुफा (सोये) कल्क क १, गोम्श्रपण ६,

सुपिष्टास्थिसहितपक्षतिन्तिडीफल पल २, पुराखगुड पल २, सुपक्षमटन गा १, निरामनाते पक्षतैल पल १। एतत् सर्वे पूर्ववन्मदेथित्वा वस्त्रपूत् ऋत्वा कदुष्णीऋत्य देयम् । इति चारवस्ति: ॥१७॥

श्रथ वैतरणवस्तिः

पत्तश्रक्तिकर्पकुडवैरम्लीगुडिसन्थुजन्मगोभूत्रैः।
तैत्तयुतोऽयं वस्तिः श्रूतानाहामवातहरः॥
वैतरणः चारवस्तिर्भुक्ते चापि प्रदीयते॥१८॥
दित वैतरणवस्तिः।

वैतरणयस्तिमाइ पलशुक्तीत्यादि—शुक्तिरईपलम् । अम्लीति तिन्तिडीफलम् पलादिमानञ्च कमात् अम्लीगुडादिषु योज्यम् । कुडवो ५ द्वदैगुण्यादष्टौ पलानि, ईपत्तेलपलिमिति व्यवहरन्ति वृद्धा । अत्रापि मदनफलिमक देयमित्याहु । श्यमिप वेतरणोक्तमात्रा एकपुटकस्यैव श्रेया । अत्यन्तश्क्लपीडाया वित्तिदयमिद मुक्तेऽपि दीयत श्त्याह वैतरण श्त्यादि—अत्यन्तश्क्लावस्थाया पाडायामावास्थिकमिद विधान बोध्य न तु सार्वकालिक मुक्ते निरूष्टस्यातिहोपलत्वात् । किन्तु मुक्ते चारवित्तर्नं प्रचरित, वैतरणस्तु चरत्येव । एतदिप दुवैलविषयमेव श्रेय, तद्कतः—''भोजियत्वाथ सायाह दुवैलस्य प्रशस्यते। अय विद् वलवान् जन्तुरमुक्त्वापि तदा कवित्, शित । श्रित वैतरणविन ॥१८॥

अथ पिच्छिलवस्तिः

वद्येरावतीशेलुशालमलीधन्वनाङ्कुराः।
चीरसिद्धाः सुसिद्धाः स्युः सास्ताः पिठिछलसंझिताः॥
वाराहमाहिषौरश्रवैडालेणेयकौक्कुटम्।
सद्यस्कमस्गाजं वा देयं पिठिछलवित्तिषु॥१६॥
चरकादौ समुद्दिष्टा वस्तयो ये सहस्रशः।
व्यवहारो न तैः प्रायो निवद्धा नात्र तेन ते॥२०॥
वस्तिवयःस्थापयिता सुखायुर्वलाश्चिमधास्वरवर्ण्हः ॥२१॥
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूनांनिरत्ययः सर्वगदापहश्च॥२१॥
इति निक्रहाधिकारः॥

विच्छिलयित्तमाग् वदरीत्थादि—सुशुत्तस्य । ण्रावती नागवना, शेलुर्यद्ववारः; धन्वना धामनीरिति प्रसिद्धस्तरः । यथामद्वरा अभिनवपञ्चवा । अभ प्रम्यसाय्येको भागः । अयो भागा जलसेत्याद्वः । सासाः सरसाः । रक्षण्य येपा प्राण्ण तानाइ वाराहेत्यादि—पतच शोणित मृदित्वेव वस्ता देय, सधस्त्रेमृदिति-पंसिरिति चरकवननात् । अयञ्च वस्त्रियंथाकद्वयमानेनेव कार्य्य । मात्रा चास्याद्धमात्रिकवस्तिवत्, माधुतिलक्षकत्तिस्त्रेद्धत्याद्वः । इति पिण्डिक्षलवास्त ध्वानीः चरकायुक्तानामन्थेषा वस्तीनामभिधान उपपत्तिमातः चरकादावित्यादि—प्राय इति वचनात् तेष्ठप्यवस्थाया प्रयोज्या इति स्त्रयति वस्तिसामान्यगुणानाइ वस्तिरित्यादि—मवगदापद्व इति मिलितसर्व दोषापदः कि वा त्रेदे।पिकव्याधिहर इति चरकव्याख्या, त्रान्यश्वाख्याने तु शेलक्ष्मित्तानिकाकपीत्यनेन, तथा सर्वान् विकारान् शमयेदित्यनेन च न पौनस्क्रय स्थात् । इदमप्यत्र सुशुनवचन वोध्य—''नरस्योत्तमसत्त्वस्य तीद्यावस्ति प्रयोजयेत् । मध्य मध्यमसत्त्वस्य धीनमस्वस्य वै मृदुम् । अपि छीनक्रम कुर्यात्र तु कुर्यादितिक्रमम् । विशेषात् सुनुमाराया छीन एव क्रमो हितः '' इति ॥ १६-२१॥

इति निरूद्दाधिकारविष्टति:।

अथ नस्याधिकारः

प्रतिमर्पोऽवपीडम्ब नस्यं प्रधमनं तथा।

:

ईपदुच्छिद्धन स्त्याहु । नस्तो निषिक श्रीत नासापुटस्य निषिक , प्रमाणत श्रीत परिमाणन , परिमाणहारकमेतल्लणमित्यर्थ ॥ १ ॥

प्रतिमर्पन्तु नस्यार्थे करोति न च दोपवान् । नस्तः स्नेहाद्ग्रीलं दद्यात् प्रातर्निशि च सर्वदा ॥

न चोचिछ्रह्वेद्दरोगाणां प्रतिमपः स टार्ट्यकृत् ॥ २॥ प्रतिमपंक्तमां प्रतिमपंक्ति नत्यस्य । नत्यार्थमिति नत्यस्य केहनरोाधनरूपप्रयोजनद्वयम् । उक्त हि—'लिहन शोधनन्त्रेव हिविध नत्यप्रच्यते।'' न च दोषवानिति न्यापिकृत् । प्रकारान्तरेणापि प्रतिमपंमात्रामाह नत्त लेहाङ्गनीमित्यादि —चरकस्य । नत्त हति नासाया, लेहाङ्गनीमिति लेहपूरिताङ्गलां द्यात् , एनेन लेहमग्राङ्गलीतो यावान् लेह पत्ति सैव प्रतिमपंमात्रा । स्वंदेति सवंप्वेव ऋतुपु । न च नावनादिवदत्रोच्छिङ्गन कर्त्वन्यमित्याह नचोच्छिङ्गद्वेदित्यादि — ग्रोगाणामित्यनेन सुत्यविषयत्वमस्योक्तम्। दार्ट्यकृतिति दन्तरित कपालादिदार्ट्यकृत् ॥ २॥

निशाहर्भुक्तवान्ताहःस्वप्राध्वश्रमरेतसाम् । ' शिरोऽभ्यञ्जनगरङ्कपप्रस्नावाञ्जनवर्धसाम् ॥

दन्तकाष्ट्रस्य हास्यस्य योज्योऽन्तेऽसी द्विविन्दुक ॥२॥
सर्वदेलम्यार्थमाइ निरात्यादि—वाग्मरस्य । अमी प्रतिमपं विन्दुद्वयपिरिमिनो
निरााचीनामन्ते समाप्ता वैधेन योज्य । निराान्त इति प्रात , अहोन्त इति
सायम् । सुश्रुतेऽपि कल्योक्षित इत्यनेन प्रात.काल उक्त । अस्त्रेति प्रथादिश्रमः ।
श्रमराच्देनाध्वन्यतिरिक्ती न्यायाम उच्यते । सुश्रुतेऽपि न्यायामाध्वपरिश्रान्तेनेत्युक्तम् ।
रत. राच्देन रत सरणोपलचितन्यायाम उच्यते । प्रस्नाव इति मुनोत्सर्गः , वर्च
प्ररिपोत्सर्ग । एषु पश्रदशस्र कालेषु प्रतिमर्धदानप्रयोजन वाग्मरेटनेवोक्तमनुसर्तन्य
तध्या—"निराहर्मुक्तवान्ताइ स्वप्तध्यस्य योज्योऽन्तेऽमी द्विविन्दुक । पश्चस्र स्रोतमा
स्राह्मः कमनारास्त्रिषु कमाद्य । इग्वल पश्चस्र ततो दन्तदार्ह्यं मरुच्छमः ॥"
निराहर्मुक्तवान्ताइ स्वप्तपु पश्चस्र प्रतिमर्पदानात् स्रोतमा शुद्धिमंवति । श्रिप्तिति
'अध्वश्रमरेतःस्र कमनारा स्यात् । रिरोभ्यश्रनादिषु व बोऽन्तेषु त्रु प्रतिमर्पदानात्
इग्नल स्यात् , ततोऽनन्तर दन्तकाष्ठस्य हास्यस्य चान्ते योजित प्रतिमर्पः कमात्
दन्तदार्ह्यं, मम्नो वायो प्ररामन करोतीर्ल्याः ॥ ३॥

शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विघा मतः। श्रवपीड्य दीयते यसादवपीडस्ततस्तु सः॥४॥

अवपीउमाह शाधन इलाटि—चरकस्य श्रत्र सशमनामेलवर्पाडस्य कर्मेच्छन्ति, तत् पुनरिह स्तम्भन प्वान्तर्भविति ॥ ४ ॥

स्नेहार्थं शून्यशिरसां श्रीवास्कन्धोरसां तथा। चलार्थं दियते स्नेहो नस्तशब्दोऽत्र वर्त्तते॥॥॥

नस्यमाह केहार्थमित्यादि—श्रीनास्तन्थोरसां रच्नणार्थमित्यन्वय । नस्तराब्दो नस्यपर्थाय , नासाभ्या दीयत इति नस्यम् , नासाराब्दात रारीरा-वयनत्वात् यत् प्रत्ययेन । अतएवाह सुश्रुतः—''श्रीपधमीपधपकी वा केही नासिकाभ्या दीयत इति नस्यम्।" अनया च निरुक्त्या यद्यपि सामान्यवचन एवाय नस्यराब्दस्तथापि नस्तराब्दोऽत्र वर्त्तत इत्यमिधानात् विशेषवृत्तितामिष नस्यराब्दस्तथापि नस्तराब्दोऽत्र वर्त्तत इत्यमिधानात् विशेषवृत्तितामिष नस्यराब्दस्य बोधयति । एतेन यथा निदानशब्दो निदानपञ्चके नथा निदानविशेषे च वर्तते, तथाय नस्थराब्दोऽपि नस्यशिरोविरेजनप्रतिमर्पावपीखप्रधमनेषु तथा नस्यविशेषे च खेहार्थ श्रूत्वशिरसामित्यादिनोक्ते वर्तते । सुश्रुतेनापि ''ततो नस्यराब्द पञ्चधा निपातित '' इत्यादिनायमर्थ उक्तः । प्रेतन नासाक्षोतिस दोपोपशमनार्थ यहीयते तत्रस्यमिति नस्यादिपञ्चकसामान्यलच्चणम् ; तथा प्रतिमर्पादिभिन्नत्वे सित केहनार्थ यदीयते तत्रस्यमिति तु नस्यविशेषलच्चण बोध्यमित्याष्टः ॥ ५ ॥

नस्यस्य स्नैहिकस्याथ देयास्त्वष्टौ तु विन्दवः।
प्रत्येकशो नस्तकयोर्नुणामिति विनिश्चयः॥
शुक्तिश्च पाणिशुक्तिश्च मात्रास्तिस्रः प्रकीर्तिताः।
इात्रिशद्विन्दवश्चात्र शुक्तिरित्यभिधीयते॥
दे शुक्ती पाणिशुक्तिश्च देयात्र कुशलैर्नरैः॥६॥

खहिकनस्यार्थे लेहस्य मानमाह नस्यस्यत्यादि — लेहाग्जुतप्रदेशिनीपर्वद्वयाद्य यावान् लेहः सवित तावान् लेहा भिन्दुरित्युच्यते । उक्त हि वार्मेट — ''प्रदेशि-व्यद्गलीपर्वद्वयान्मअसमुद्भृतात् । यावान् पतत्यसौ विन्दुः'' इति । नस्तकयोरिति नासापुटयो प्पा प्रथममात्रा । दितीया तृतीयान्न मात्रामाह शुक्तिश्च पाणिशुक्ति-श्चेति स्त्रीक्षित्यां, पाणिशुक्तिस्तृतीयेक्षर्थः । प्रताश्च तिस्रो मात्रा यथावल

प्रयोज्या इति । सुश्रुतेऽज्युक्तं—''तस्या प्रमाणमधी बिन्दव, प्रदेशिनीपवंदयनि.सता प्रथमा मात्रा दितीया शुक्तिस्तृतीया पाणिशुक्तिरिखेतास्तित्रो मात्रा यथावल
प्रयोज्या इति । शुक्तिपाणिशुक्तिशब्दयोर्थमाह दात्रिशदिन्दव इति । दे शुकी
इति चतु पष्टिविन्दव इत्थं । इदन्न शुक्ति-पाणिशुक्त्याख्यमात्राद्वय मिलित्वेव
नासापुटाम्या प्रयोज्यम् , न तु प्रथममात्रावत् प्रखेकरा इत्याहु । एतच्च खेहनस्य
न गिलेत् किन्तु त्यजेदेव । उक्त हि सुश्रुते—''क्रहनस्यं न चोपगिलेत्
कथिन्नदिपं' इति ॥ ६ ॥

तैलं कफे च वाते च केवले पवने वसाम्।
_द्द्यान्नस्तः सदा पित्ते सर्पिर्मजा समारुते॥ ७॥

इदानीं तिसन् दोपे य केह प्रयोज्यस्तमाह तैलमित्यादि—चकारात् वातकफससमें च तैल देयमित्यर्थ ।, केवल इति निरावरेण वाते; मज्जा तु समावृते वाते ॥ ७॥

> ध्मापनं रेचनश्चूणें युञ्ज्याचं मुखवायुना । षडकुर्लाद्वमुखया नाट्या भेपजगर्भया ॥ स हि भूरितरं दोपं चूर्णत्वादपकर्पति ॥ = ॥

प्रथमनमाइ ध्मापनिमत्यादि—वाग्मटस्य । रेचन इति शिरो।विरेचनद्रव्यक्षतः किंवा देइस्रोतोविशोधन इत्यर्थ । स इति चूर्ण । चूर्णसादिति सद्मस्रोतोक उनुसारित्वादित्यभिसन्धिः । एतच प्रथमन चूर्ण प्रतनु वसे बद्धा जिन्नदित्यपि वृद्धव्यवद्यरिसद्रो विधिवोध्य ॥ = ॥

शिरोविरेचनद्रव्यैः स्नेहैर्या तैः प्रसाधितैः। शिरोविरेचनं द्याद् रोगेषु तेषु बुद्धिमान्॥ गौरवे शिरसः ग्रुले जाड्ये स्यन्दे गलामये। शोथगएडिकिमिग्रन्थिकुष्ठापसारपीनसे॥ ६॥

शिरोविरेचनमाह शिरोविरेचनेत्यादि—शिरोविरेचनद्रव्यैरिति अपामार्ग-बीजादिमिस्तै, कृत्कीकृतैर्द्रव्यमिश्रितेरेतत्साधितै स्नेहवाँ इत्यर्थः। अस्य च माश्रार्थ सिद्धसारो यथा—"चत्वारो विन्दव मट्चा तथाष्टी वा यथावलम्। शिरोविरेचने योज्या कद्ध्वंजञ्जविकारित्याम्" इति। जाट्य ग्रीवादिस्तम्म., स्यन्दोऽभिष्यन्दक्रोगः। पीनस इति पुराणपीनसे ॥ ६॥ किन्धिसिन्नोत्तमाइस्य प्राक्कतावश्यकस्य च । निवातश्यमस्थस्य जन्नूद्र्धं स्वेदयत् पुनः ॥ स्रथोत्तानोद्र्ध्वदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते । किश्चिद्वन्नतपादस्य किश्चिन्मूर्धनि नामिते ॥ नासांपुटं पिधायकं पर्यायेण निषेचयेत् । उष्णाम्बुतसं भैषज्यं प्रणाङ्या पिचुना तथा ॥ दत्ते पादतलस्कन्धहस्तकणीदि मर्दयेत् । श्रामेषजन्नयादेवं द्विस्त्रिवां नस्यमाचरेत् ॥ १० ॥

येन विधिना ति छुर्।विरेचन कर्त्तं वदाह छिन्धेलादि—वाग्मटस्य ।
प्राक् छनावश्यकस्य चेति प्राक् पूर्व छतमावश्यकम् अवश्यकरणीय मलमृशविसंगमुख्धावनादिक येन तस्य । जत्र्द्र्ध्वंमिति ग्रीवामूलादिक खेदयेत् पुनिरेल्यनेन
उत्सर्गसिद्धपञ्चकर्माङ्गम्तखेदापेष्ठया भिन्न एव नस्याव्यवहितपूर्वकाले पुनः खेद
कर्त्तंच्य इति वोधयति । विजिद्धन्नतपादस्येति चरकेऽपि पादीन्नतस्येत्युक्तम् ।
पच्यायेणेति क्रमेण न स्वेकदा । उष्णाम्युत्तप्तिति उप्णाम्युयोगादुप्णाम्युवाध्येण
वा तप्तम् । प्रणाख्येति नरयनिक्तवयाः, पिचुनेति तृलकेन । आदिशब्दात्त
प्रीवाननादीना प्रहण्यम् । पार्थयोरिति वामदिष्ण्यनासापुटयोः । आपिशब्दाति
छदः । भेपजिन सरणपर्यानत रानेकिष्ठष्ट्य निष्ठीवेदिल्यंः । प्रमुक्तपरिपाट्या
वारद्वय त्रय वा दे।पापेष्ठया अधिकपपि नस्य कुर्यादिल्यंः । नस्ये क्रियमाथे
विद्व नस्यस्य सम्यक्त्रयोगेण मूर्च्यां स्यात् तदा शिरः परिल्यच्य शीततोयेन
सेचन कार्य्यम् । अतप्वेतदनन्तर वाग्मटे यथा—''मूर्च्छांया शीततोयेन सिम्नेद्व
परिहरन् शिरः" इति ॥ १०॥

स्नेहं विरेचनस्यान्ते दद्याद्दोषाद्यपेत्तया। ज्यहात् ज्यहाच सप्ताहं स्नेद्दकर्म समाचरेत्॥ एकाहान्तरितं कुर्योद्देचनं शिरसस्तथा॥११॥

शिरोविरेचनस्यानन्तरीयविधिमाइ केइमित्यादि—वारभटस्य । केइमिति केइनस्यम् । केइनस्य रेचननस्यद्य कियन्त काल क्या परिपाट्या कुर्या-दित्याइ ज्यहात् ज्यहादित्यादि—ण्कैकदिनमन्तरीकृत्य सप्ताइमन्त्रितदिनानि वर्जियला केह्नस्यम्, शिरसो विरेचनन्तु एकाहान्तरित कुर्यात् । तेन यसिन् यसिन् दिने केह्नस्य न दीयते तसिन् तसिक्षेन दिने रेचननस्य देयिमत्यर्थ । एतेनैकिसिन् दिने केह्म्, अपरिसन् दिने शिरोविरेचनमेन, सपरत्वापरत्वे सित शिरोविरेचनानन्तर केह्नस्य भवति । एकाहान्तरित शिरोविरेकः कार्य्य इत्युत्सर्गस्तेन सन्तरमि श्रेयम्, तथा सप्ताहमित्युपलच्या तेन त्र्यहादिकमिप दोषाधपेच्या श्रेयम् । उक्त हि—''एकान्तर झन्तरं वा नस्य दद्याहिचच्या । सप्ताहन्तु पर द्या विश्वान्तस्य पुनः पुन. । त्र्यह पद्याहमथना सप्ताह वा स्रयन्त्रतम् । पर नवाहमूद्धन्तु नवाहात् सात्म्यता मजेस्' इति ॥ ११ ॥

सम्यक्तिग्धे मुखोच्द्वासस्त्राधाद्मिपाटवम् ॥ १२ ॥ सम्यक्तिग्यलच्यमाहं सम्यगिलादि—नाग्मटस्य । मुखरान्द उच्द्वासा-दिना बोधान्तेन सम्बन्धते । अचीतीन्द्रियोपलच्चम्, अचिपाटविभिति वा पाठ , तन्त्रान्तरे प्रसादश्रेन्द्रियाणामित्युक्तम् ॥ १२ ॥

क्रेंचेऽत्तिक्तन्धता शोषो नासास्ये मूर्द्धशूत्यता। स्निग्धेऽतिकरङ्कर्गुचता प्रसेकारुचिपीनसाः॥ १३॥

असम्यक्तिग्धलचयामाह रूच इत्यादि—नाग्मटस्य । रूच इत्यसम्यक् किग्धे । अतिकिग्धलचयामाह किग्ध इत्यादि—नाग्मटस्य । अतिकिग्ध इत्यन्वय । प्रसेक इति कफप्रसेक, ॥ १३॥

> सुविरिक्षेऽिचलघुतावक्त्रस्वरिवयुद्धयः। दुर्विरिक्षे गदोद्रेकः चामतातिविरेचिते ॥ १४॥

केहिकनस्यस्य सम्यग्योगादीनभिधाय रेचननस्यस्यापि तानाह सुविरिक्त इलादि—वाग्मटस्य । चामता शुष्कद्रवधातुता ॥१४॥

तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् । भुक्रमक्रशिरःस्नातस्नातुकामस्नुतास्त्रज्ञाम् ॥ नवपीनसरोगार्चस्तिकाश्वासकासिनाम् । श्रुद्धानां दत्तवस्तीनां तथानार्चवदुर्दिने । श्रुम्यत्रात्ययिके व्याधी नैषां नस्यं प्रयोजयेत् ॥१४॥

येणा नस्य न विधेय तानाह' तोयेखादि—वाग्मटस्य । तोयादिक पार्त येस्ते वेथेति आहिताग्न्यादित्वात् परनिपात । अनार्त्तवहुदिने हेमन्तरिशिरयोमेंघव्याप्ते-

ऽहि । अन्यत्रात्यिके व्याधाविति आत्यिके च व्याधौ नस्थेकसाध्ये निषिद्धनस्या-नामपि नस्य निषयमेवेत्यर्थ. । नैषा नस्य प्रयोजयेदिति श्लोकपादस्यकेत्य प्रति-मस्कृत्य दत्तः ॥१५॥

न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे।
न चोनद्वादशे घूमः कवलो नोनपञ्चमे॥
न शुद्धिक्रनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततो।
श्राजन्ममर्णं शस्तः प्रतिमर्थस्तु बस्तिवत्॥१६॥
द्दित नस्याधिकारः।
समाप्तश्च पञ्चकमीधिकारः॥

इदानीं यसिन् वयसि नस्य न विधेय तदाह न नस्यमित्यादि—वाग्मटस्य । कनसप्ताब्द हित एकवर्षमारभ्य षष्ठवर्षपर्यन्तम् इति प्रतिवर्षन्यतिरिक्त नस्य न प्रयोज्य सप्तमवर्षात् प्रमृति तु विधेयमेवेत्यर्थः । उक्त हि कृष्णानेवेगुणः—''मृत्रवर्ष-स्तमवर्षात् प्रमृति तु विधेयमेवेत्यर्थः । उक्त हि कृष्णानेवेगुणः—''मृत्रवर्ष-सुपादाय नन्यकर्म चतुर्विधम्'' इति । अतीताशीतिवत्सर इति एकाशीतीत्यादौ निषेष्य, प्रस्तावात् निषेष्यधूमकवलादीनप्याह न चानद्वादश इत्यादि—कनद्वादश इति एकवर्षमारम्य एकादशवर्षपर्यन्तम् ; एव वस्त्यमाणेऽपि क्षेयम् । शुद्धिरिति वमनविरेचने । प्रतिमर्षस्तथा वस्तिरिति सर्वकालमेव विधेय हत्याह भाजन्येत्यादि ।

इति नस्याधिकार-विष्टृति । समाक्षा च पद्मकर्माधिकार-विष्टृतिः ।

अथ धूमपानाधिकारः।

प्रायोगिकः स्निहिकश्च धूमो वैरेचनस्तथा। कासहरो वामनश्च धूमः पञ्चविघो मतः॥१॥

नस्यवश्वासाप्रयोज्यात्वसाधम्यात् पद्मसख्यासामान्याच नस्यानन्तरिविधयात्वाच नस्यानन्तर धूममाह प्रायोगिक इतादि—प्रायोगिक इति नित्यपेयधूमस्य सङ्गा । प्रयोगः सतताभ्यास , तद्विषयको धूमः प्रायोगिक । छहाय भमवतीति छिहिक । दोषविरेचनाद्देरेचनिक । कास हरतीति कासहरः । वासयतीति वामनः । यद्यपि चरके प्रायोगिकछैष्टिकवैरेचनिकमेदात् त्रिविध पत धूम जकस्तथापि प्रायोगिके कासहरम्, वरेचनिक च वामनीयमन्तर्माच्य चरकसुश्रुतयोविरोधः परिहरणीय ॥१॥ ऋजुत्रिकोशाफिलितं कोलास्थ्यग्रप्रमाणितम्। वस्तिनेत्रसमद्रव्यं धूमनेत्रं प्रशस्यते॥ सार्द्धस्त्र्यंशयुतः पूर्णो हस्तः प्रायोगिकादिषु। नेत्रे कासहरे ज्यंशद्दीनः शेपे दशाहलः॥२॥

धूमपानार्थं निलकाविधानमाह ऋज्विलादि—चरकस्य । त्रिकोपाफिलतिमिति त्रिमि पर्वमिक्तिंत समन्तित किंवा त्रिकोपिक्तमङ्ग , तेन यसिन् नेत्रे 'स्पानत्रये मङ्ग. कार्य्य , स च निलकात्रयेख घटनीय इत्याह । कोलास्थ्यमधारिकिति अस्य नेत्रस्याम कोलास्थिप्रवेशयोग्य कार्य्यमिलर्थं । मूलञ्चास्थाङ्गध्यवेशयोग्यम् । यदाह वाग्मट —''म्लामेऽङ्गधकोलास्थिप्रवेश धूमनेत्रकम्'' इति । वस्तिनेत्रमम-द्रव्यमिति वितिनेत्रेख सम तुल्य यद् द्रव्य स्वर्थेक्त्यतान्नादिकम् । श्रूममेदेन नेत्रमानभदमाह सार्वे इत्यादि—हस्तोऽत्र चतुविशास्वङ्गलपरिमित , तेन प्राचीगिके घूमे मार्बा हस्त यट्त्रिशतदङ्गल । ज्यश्यत्र इति चतुविशास्यङ्गलस्य तृतीयोऽशोऽद्याङ्गलम्, तेन मयुक्ते हस्त इत्यर्थं , यतेन केंद्रिके द्वात्रिशतदङ्गल नेत्रमित्यर्थं । वेरेचने तु पूर्ण इस्तश्चतुविशास्यङ्गलमित्यर्थं । कासहरे धूम ज्यशहीनो हस्त योड-शाङ्गलमित्यर्थं । शेष इति वामके ॥२॥

श्रीपधैर्विर्तिकां क्रत्वा शरीगर्भा विशोषिताम् । विगर्भामग्निसंज्लुष्टां क्रत्वा धूमं पिवेन्नरः ॥ वक्त्रेणैव वमेद्धमं नस्तो वक्त्रेण वा पिवन् । उरःकरहगते दोपे वक्त्रेण धूममापिवेत् ॥ / नासया तु पिवेद्दोपे शिरोष्टाणिक्तिसंश्रये ॥ ३॥

इदानीं चूमपानार्थं निलकामिमधाय धूमपान यथा विधेय तदाह श्रीपधैरिलादि। श्रीपधैरित गन्धेरकुष्ठतगरेरित्यादिना नद्यामाँगरोपधैर्नित्तं कृस्वा धूम पिनेत् । विजिक्ताकरणप्रकारमाह शरीगर्यामित्यादि—शरी शरपुष्पस्य नालिका सा गर्ने भ्रम्य-न्तरे यस्या ताम्, यतेन पिष्टेमेंपजं शरीं प्रलिप्य विच कार्य्येत्यर्थं. । विगर्मामिति ता विजि विशोध्य तत शरीमाकृष्य विगर्मा कुर्यादित्यर्थं । श्रीममण्डिणामिति ता विगर्मा विजे नेत्राप्रे समारोप्य श्रीममण्डिण कृत्वा धूम पिनेदित्यर्थं । एपा विजिन्सम् विगर्मा विजे नेत्राप्रे समारोप्य श्रीममण्डिण कृत्वा धूम पिनेदित्यर्थं । एपा विजिन्सम् एए। विष्ट्वा

लिम्पेच्छरेपीका ता वर्ति यवसिन्नभाम् । स्थूलाच्चाग्रिष्ठिका कुर्व्यादष्टाग्रलसमा भिपक्" इति । धूम पीत्वा धूम कथ वमेदित्याद्द वक्त्रेणेत्यादि—नस्त इति नासिकया मार्विविभिक्तकस्ति । एव प्रकारेण नासिका निषिध्येत, वक्त्रेणेव धूम वमेत् न तु नामेयत्यर्थ । अत्र देतु धरकेणोको यथा—प्रतिलोग गतो छ।शु धूमें हिंस्यादि चत्तुपी " इति । वक्त्रधूमपान-नामाधूमपानयोविषयावाद्द उर इत्यदि ॥ ३ ॥

गन्धेरकुष्ठतगरैर्विचिःप्रायोगिके मता ।
स्नैहिके तु मध्चिष्ठष्ट स्नेहगुग्गुलुसर्जकैः ॥
शिरोविरेचनद्रव्यैर्विचैरेचने मता।
कासक्षेरेव कासक्षी वामनैर्वामनी मता॥ ४॥

श्रीपधैर्वित्तका कृत्वेत्युक्तम्, श्रतो वन्त्र्यर्थमौषधान्याह गन्धेरित्यादि — गन्धेरिति श्रमुर्वादिसुगन्धिद्रच्ये । श्रकुष्ठतगरिति कुष्ठतगरविति । कुष्ठतगरयोरितितीन्यत्वेन मस्तुलुद्धात्वावकत्वात् । उक्तश्र राालाक्ये — "नतकुष्ठ स्नावयतो धूमवित्तप्रयोजिते । मस्तुलुग विशेषेख तस्मात् ते नैव योजयत् '' इति । मधून्त्रिष्ट सिक्यक, क्षेष्टोऽत्र धत वमा च, वसाष्ठतमधून्त्रिष्टेरिति वचनात् । शिरोविरेचैर्नद्रव्यैरिति श्रेताज्योति- धत्यादिभिक्षरकोकै । कास्मिरिति वृष्ट्तीक्यटकारीक्ष्टकाममद्रौदिमि सुश्रुतोकै । वामनैरिति कायुचर्मखुरश्रम्नादिभि सुश्रुतोकै ॥ ४॥

योज्या न पित्तरक्वार्तिविरिक्कोद्दरमिह्यु ।
तिमिरोद्ध्वानिलाध्मानरोहिणीद्त्ववस्तिषु ॥
मत्स्यमद्यद्धिचीरचौद्धस्नद्दविषाशिषु ।
शिरस्यमिद्दिते पाग्रहरोगे जागरिते निशि ॥
रक्कपित्तान्ध्यवाधिर्थ्यतृगमूच्छामद्मोद्दक्तर् ।
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्द्दितः ।
पतद्यमविधानन्तु लेशतः सम्प्रकाशितम् ॥ ४॥

इति धूमपानाधिकारः।

येषु धूमो न विधेयस्तानाह योज्या इत्यादि—वाग्भरस्य । दत्तवस्तिष्विति कृतिनरुहेषु । अकालातिपीतधूमयोदोंषमाह रक्तपित्तत्यादि— अत्र पीतो वेति क्षेदः।

भूमपानिविधिश्चरकसुश्रनादावितिप्रपञ्चतयोकः , इह तु अन्थगौरवमयात् मस्पेपेथैवोकः इत्याहः एतदिस्यादि ॥ ५ ॥

इति धूमपानाधिकारविष्ठतिः।

अथ कवलगण्ड्रषाधिकारः।

स्निग्धो प्रौ स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः। पित्तं कद्वम्ललवर्षे कत्तैः संशोधनः कफे॥ कपायस्वादुतिक्रैश्च कवलो रोपणो वर्षे॥ १॥

कद्र्ष्वगतदोपहरत्वसामान्यात् धूमाधिकारानन्तर कवलगण्डूषाधिकार प्रारभ्यते । तत्र कवलश्चतुविधो भवति यदाह सुश्रत — 'चतुर्का कवल केही प्रमादी
शोधिरोपिणी'' इति । अतस्तेषा स्वरूप विषयञ्चाह क्षिन्धोष्णिरित्यादि — सुश्रतस्य ।
यद्यपि तन्त्रान्तरे वैरेचनस्तम्भनाभ्या सह पड्विधत्वमेवोक्त तथाप्यत्र सशोधने वैरेचनस्य, प्रमादने च स्तम्भनस्यान्तर्भावान्न विरोध । वाग्मटे तु कवलगण्डूपयोरवलम्ब्य चतुर्विधत्वसुक्त, यथा— ' चतु प्रकारो गण्डूप सिद्ध शमनशोधनी ।
रोपण्डस त्रयस्तत्र त्रिषु योज्याश्चलादिषु । अन्ते। त्रयद्वप भेरति ॥ १ ॥

दुखं सञ्चार्यते या तु सा मात्रा कवले हिता। श्रसञ्चार्यो तु या मात्रा गर्ग्ड्रेष सा प्रकीर्तिता॥ तावच धारणीयोऽयं बावदोषप्रवर्तनम्। पुनम्रान्योऽपि दातन्यस्तथा चौद्रघृतादिभिः॥२॥

मात्रोभेदन कवलगण्ह्ययोभेदमाह सुखिमित्यादि—सुश्रुतस्य। अमी कवल. कियन्त काल सुखे धारणीय क्त्याह तावदित्यादि—अत्र होह कफे कफिपिते च। आदिरान्देन दुग्धादिकम्। यदाह सुश्रुत —"एव स्नेहपय दीहरसमूत्राम्लमयुना। ﴿
किपायोष्णोदकाभ्यास्र कवला दोपतो हिता '' इति ॥ २॥

व्याधरपचयस्तुष्टिवेंशर्च वक्त्रलाघवम् । इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलज्ञणम् ॥ ३॥ वनस्य सम्यग्योगलच्चणमाष्ट् व्याधारित्यादि—सुश्रुतस्य । श्रयोगातियोग-लच्चणिमत्यतोऽनन्तर् यथा—"दीने नाट्यकफोत्केशानरम्झानमेन च । श्रतियो-गान्सुखे पाक. शोपतृष्णारुचिक्तमा " इति । ण्तच्च सामान्ययोगातियोगलच्च्य शोधनकवलस्पेति भानुमतीप्रभृतयः । चक्रेण सम्यग्योगलच्च्यविपर्य्ययेणेव श्रसम्य-ग्योगलच्च्य सुधीभिक्द्दनीयभित्यभित्रायेख्य श्रयोगातियोगलच्या नोक्तमिति ॥ ३॥

> दाहतुष्णावणान् हन्ति मधुगराष्ट्रवधारणम् । धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ तदीपन्नवणं शीतं मुखशोपहरं परम् । श्राश्च ज्ञाराम्बुगराङ्क्षो भिनत्ति श्रेष्मणश्चयम् । सुस्थे हितं वातहरं तेलगराङ्कपधारणम् ॥ ४ ॥ इति कवलगराङ्कषाधिकारः।

दाहेलादि—नाग्भटस्य । आशु शीव्रम्, चाराम्ब यनकारजलम् । तैलिमिति तिलत्तेलम् ॥ ४ ॥

इति कवलगयङ्गाधिकारविष्ठति.।

अथाइच्योतनाञ्जनतर्पण-पुटपाकाधिकारः

सर्वेषामिद्यारेगाणामादावाश्च्योतनं हितम्।
कक्कोदकराष्ट्रघर्षास्त्रदाहरागनिवहणम्॥
उच्णं वाते कफे चोष्णं तच्छीतं रक्कपित्तयोः॥
निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मीत्य लोचनम्।
शुक्कौ प्रलम्ययान्येन पिचुवत्र्यां कनीनिके।
दश द्वादश वा विन्दून द्यंगुलादवसेचयेत्॥

ततः प्रमुज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः। श्रन्येन कोष्णपानीयप्तुतेन खेद्येन्मृदु॥१॥

पूर्वाक्तसङ्गलेवाश्च्योतनाधिकारमाह संवेपामित्यादि । दोषभेदेन तदाह उच्यामित्यादि—वाग्मटस्य । उच्यामित्यादुच्याम् । निवातस्यस्येत्यादी—शुक्ताविति निर्मलपात्रोपलक्षयम् अन्येनेति दिखयपायिना । प्रलम्बयेति लम्बमानयेत्यर्थ । पिचुक्त्यां तूलवर्त्यां । कनीनिके नासिकादेशमित्राहितचक्तुप कार्ये । ष्टर्गुलादिति नेत्रकर्नानिकस्योपिर । पिचुवित्तं खगुलगुक्तोल्य निवातप्रदेशस्थातुरस्य वैद्यो वामन पायिना लोचनगुन्मील्य सृद्ध यथा भवति तथा लोचन सेवद्येत् । कप्पवातये।रिति वातकप्रयो ॥ १ ॥

श्रत्युष्णतीच्णं रुश्रागदङ्नाशायाचिसेचनम् । श्रतिशीतन्तु कुरुते निस्तोदस्तम्भवेदनाः ॥ कपायवर्त्मतां घर्ष कुच्छान्दुमेषणं वहु । विकारबृद्धिमत्यरुपं संरम्भमपरिस्रुतम् ॥ २॥

अत्युष्णतीक्याश्च्योतनस्य तथा आतिशीतस्य च दोषमाह अत्युष्णित्यादि । इदानी बहुमात्रस्य तथाल्पमात्रस्य तथा बस्तापृताक्षयोतनस्य दोषमाह कपायेत्यादि— वाग्मटस्य । कपायवर्षमतामिति रक्षवर्त्यता स्वावर्त्यता वा । धर्ममिति करकरिकाम् । बहु इति बहुपरिमाणाक्षयोतन कपायवर्त्मतादिक कुरुत इति शेष । अत्याक्षयोतन विकारदृद्धि कुरुते । तथा अपरिस्नुतमित्यपूतमाक्षयोतन सरम्म शोध कुरुते । यद्यिष सुश्रुते आक्षयोतनवत् सेकोऽप्युक्त , यथा—'त्रपंण पुटपाकक्ष सेकक्षाश्चयोतना-अनम् । इति तथापि वाग्मटमते आक्षयोतन एव सेकस्यान्तर्मावादविरोध ॥२॥

> श्रथाक्षनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्रास्थिते मले । पक्कतिक्षेऽरुपशोथार्चिकरङ्क्ष्पेचिछ्ररुयलाचिते ॥ मन्द्घपास्त्ररागेऽदिण् प्रयोज्यं घनदृष्टिके ॥ ३॥

आश्वगीतनानन्तरमञ्जनमाह अर्थेत्यादि—अथत्यानन्तर्थे । गुद्धतने।रिति कायारी-रोविरेकाम्याम् । नेत्रमात्रास्थिते मल इति नेत्र पव स्थिते दोष इत्यर्थः । एतेन प्रदेशान्तर-स्थदोपाहन्त्वमञ्जनस्योक्तम् । नेत्रावस्थिते दोषप्राप्तमञ्जनमान्तरेदिति । तथा पकालिने पकाचिरोगलच्ये सत्येवाज्ञन प्रयोज्यम् । तदेव पकलच्या कथ ज्ञातम्यमित्यत म्राह् अल्परोधित्यादि—अल्पराज्दस्य शोधादिभि प्रत्येकमन्त्रयं , एव मन्द्रशच्दस्यापि प्रयोदिमि । त्यचित इति शापिते । दूषिका नेत्रपिद्धोडका ॥ ३ ॥ लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनामिति त्रिधा । श्रक्षनं लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः॥ रोपणं तिक्षकेद्रैक्यैः खादुशीतैः प्रसादनम्॥ ४॥

श्रवानस्य त्रिविध्यमाष्ट् लेखनिमत्यादि—वाग्मटस्य । श्रवानिमित रापः । एपा स्वरूपमाष्ट् लेखनम् । सत्रित्यादि—तत्रिति त्रिपु लेखनादिपु मध्ये, पद्ध लवण, पद्धिपप्त्यम्लादिकपायादिभिद्रंच्यैयदश्चन त्रिखनिमत्यर्थः ॥ ४ ॥

दशाङ्गुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ॥ ४॥

श्रजनदानार्थे शलाकामाह दशाक्तित्यादि—तस्यैव । मुकुलानना कुन्द-जातीमिक्षकामुकुलमुखी ॥ ४ ॥

प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा।

श्रहुलीव सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ॥

पिएडो रसिक्रया चूर्णे त्रिधैवाञ्जनकल्पना।

गुरौ मध्ये लघौ दोषे तां क्रमेण प्रयोजयेत् ॥

श्रथानुन्मीलयन् दृष्टी श्रन्तः सञ्चारयेच्छनैः।

श्रञ्जिते वर्त्मनी किञ्चिचालयेचैवमञ्जनम् ॥

श्रपेतौषधसम्बन्धं निर्चृतं नयनं यदा।

व्याधिदोषर्त्तृयोग्याभिरङ्गिः प्रचालयेच्दा॥

द्तिणाहुष्टकेनाचि ततो वामं सवाससा।

ऊद्ध्वे वर्त्मनि संगृह्य शोध्यं वामेन चेतरत्॥ ६॥

स्रोदेन श्राह्मोद्याह प्रशस्त्राह्य स्वाल्येच्या ॥

श्रशनभेदेन शलाकामेदमाए प्रशस्तेत्यादि—काललोए: पायस्यादि:।प्रसादने तु अङ्गल्येव शरीरशलाका, तथा सुवर्णजा रूप्यजा च शलाका प्रशस्तेत्वर्थ ॥६॥

निशि खप्तेन मध्याद्वे पानाचोष्णगभित्तिभिः। त्राचिरोगाय दोषाः स्युर्वर्द्धितोत्पीडितद्रुवाः॥

प्रातः सायञ्च तच्छान्त्यै व्यभ्रेऽर्केऽतोऽज्ञयेत् सदा ॥७॥ निशीलादि—ननु विरेकदुर्गेल चन्नुरादित्य प्राप्य सीदतीति तत् कथ सर्वदेखुक्तम् १ नैव, यतः विरेकदुर्गेल चन्नुरादित्य प्राप्य सीदतीत्युच्यते सुम्याभिप्रायादिद नाक्य, किंना अरशुद्धिककफापेचया दिनाञ्चन नो न्यम्, जक हि—''अरशुद्धिकनलासे तु लेखनीये ऽथना गदे। काममह्न्यपि नारशुष्णे तीन्णाञ्चन प्रयोजयेव किंति लेखनीये गद हीत लेखनीयशुक्तामादी । ननु निरेकदुर्वल चतुरादिस्य प्राप्य सीदतीति वचनमनुषपन्न यतो नेत्रस्य तेजमस्त्रादादित्य प्राप्य तेजोबृद्धिरेन शुक्त्या तेजस सामान्यवृद्धिकारणमिति मिद्धान्त । नैन कालस्यी-ध्यादश्चनस्य च तीहणस्वादितियोगेन दृष्ट्शुप्यातः स्यादिति ॥ ७॥

कराङ्क्जाङ्येऽञ्जन तीत्त्यं धूमं वा योजयेत् पुनः। तीत्त्याञ्जनाभितसे तु त्यीं प्रत्यञ्जनं हिमम्॥ ८॥

श्रक्षेन दत्तेऽपि यदि कण्डूजाङ्यादिक तिष्ठति तदा पुनर्राप तीच्णमक्षन धूम वा योजयेदित्यत श्राह कण्डूजाङ्य इत्यादि—वाग्मटस्य । यदि पुनर्ताच्णाः जनविधानेन दाह स्याद् तदा दृष्टिपसादमक्षन कार्य्यमित्याह तीच्णाक्षेनत्यादि—श्रस्य श्रमितप्त इति सदोहे प्रत्यक्षनिर्मित तीच्णाक्षनप्रत्यनीकमक्षन मृदुशीतल-क्षिण्धमित्यर्थ ॥ द ॥

नाञ्जयेद्भीतविमतिंगिरक्षाशितवेगिते । कुद्धज्वरिततान्ताचाशिरोरुक्शोषजागरे ॥ श्रद्धेप्टऽर्के शिरःस्नाते पीतयोधूममद्ययोः । श्रजीर्णेऽप्यर्कसन्तरे दिवास्त्रेम पिपासिते ॥ ६॥

श्रश्चन येषु न निषय तानाह नाश्चयेदित्यादि—नाग्भटस्य । श्वशिते सद्योमुक्ते । नेगित इति दोपनेगोदये । सुश्रुतेऽच्युक्त—''दोपनेगोदयेऽच्युक्त कुर्याष्ट्र तास्तानुपद्रवान्" इति । ज्वरिते नवज्वरिते । तान्ताच इति स्द्ममास्वरादिरूप-वर्णदर्शनात् तान्ते श्रीचयो यस्य तसिन् । श्रदृष्टेऽर्क इत्यनुदिते जलादिच्छन्न इत्याह, सुश्रुतेऽप्येनमेनोक्तम् ॥ ६ ॥

निर्वाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूद्धैकाययो । काले साधारणे पातः सायं वोत्तानशायिनः ॥ यवमापमयीं पालीं नेत्रकोणाद्वद्धिः समाम् । द्यक्तुलोचां दढां कत्वा यथासं सिद्धमावपेत् ॥ सर्पिनिमीलते नेत्रे तप्ताम्बुपविलायितम् । नक्षान्ध्यवातितिमरकृच्छ्यरोघादिके वसाम् ॥१०॥ पताश्रयत्वादिसम्निधिकारे तर्पणमाह निवात हत्यादि—वाग्मटस्य । पालीमित्यालवालम् । स्वद्गुलोच्छ्नयां दृढामिति स्वद्गुलोच्छ्नया दृढा निविद्या यथा स्नेही न स्ववतीत्यर्थः । यथास्व मिद्धं मीपिरिति तत्तद्दीपप्रत्यनीकद्रव्यपक्षमित्यर्थः । पाप्रस्थ प्रत तप्तज्ञलस्योगिरं स्थापयित्वा प्रविलायित द्रवीकृतमित्यर्थं । स्नावेपत् पूरियतः । व्याधिविशेषे स्नेहविशेषमाहः नक्षान्ध्येत्यादि—वाग्मटस्य । स्रवापि यथास्व मिद्धमित्यादि योज्यमित्यक्षाः ॥१०॥

श्रापदमात्राद्थोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वतः।
मात्रां विगण्येत्तत्र वर्त्मसनिधासितासिते॥
हृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पश्च च।
शतानि सप्त चाष्टौ च दश मन्थेऽनिले दश।
पित्ते पर् सुस्थवृत्ते च बलासे पश्च धारयत्।
एत्वापाद्वे ततो द्वारं स्नेहं पात्र निगालयेत्।
पिवेच धूमं नेद्तेत व्योम रूपश्च मास्वरम्॥
इत्थं प्रतिदिनं चाते पित्ते त्वेकान्तरं कफे।
सुस्थे च द्यन्तरं द्यादात्मेरिति योजयेत्॥
प्रकाशद्यमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम्।
तमे विपर्थयोऽत्मे त्तेऽतिश्रेष्मजा दजः॥११॥

पूरणिविधिमाह आपन्मायपर्यंन्त पूरियेदित्यर्थः । अथ स्नेहेन चत्तः पूरियत्वा कियन्त वाल न्याप्य सस्तेष स्थातन्यमिति जिज्ञासायामाह अथेत्यादि—अथ ष्टताः वापानन्तरं शनकेरुनेष कुर्वतस्तरय आवर्तस्य मात्रा विगणयेत् । मात्रा च लष्टः चरिचारणम् । तत्र वर्धस्ये न्याधौ शतमात्रा धारयेत् लष्टचरशतोचारणकालमम्भाल न्याप्य स्नेह धारयेत् । सन्धिगते तु न्याधौ श्रीणि शतानि । शुक्रमण्डलगते पद्य शतानि । कृष्णमण्डलगते तु नम शतानि । दृष्टिमण्डले चाष्टौ । मन्धे इत्याधिमन्थे दश, इत्यादिक्रमेण धारयेत् । धारणानन्तरस्य यत् कार्यं तदाह कृत्वेत्यादि । द्रारमित्यालवाले छिद्र कृत्वा। न्योमेत्याकाश नेदेत्। मास्तर रूपमग्न्यादि । अयद्य क्रमो यास्तन् दोषे यानिहन कार्यंश्तदाह इत्थमित्यादि—अयद्य दिनक्रम चत्तुस्त्तिपर्यंन्त योज्य आत्रितित्यादि । विपर्यंय इत्यादि—विपर्यंयः प्रकाश- चमतादिवेपरित्यम् । अतित्रेते तु रेष्टमना रूजः कण्डूपैन्छिल्यादयः ॥११॥

पुटपाकं प्रयुक्षीत पूर्वोक्नेष्वेच पद्मखु ! स वाते सेहनः श्लेष्मसहिते लेखनो मतः । हम्दौर्वल्येऽनिले पित्ते रक्ने स्वस्थे प्रसादनः ॥१२॥

पुटपाकमाइ पुटपाकामित्यादि—वाग्मटस्य। पूर्वोके व्विति तर्पयोक्षेयु रोगे व्वित्यर्थः। स्नेद्दादिमेदेन त्रिविधस्य पुटपाकस्य पृथक् पृथक् विषयमाइ स बात इत्यादि—त इति पुटपाक स्नेद्दनो वात हित.। क्रेप्ससिहते तु बाते लेदान पुटपाको हित इति। इन्दी-र्वन्यादी प्रसादन पुटपाको हित इत्यर्थ । इदश्च पुटपाकत्रय येद्रं व्यविधिय तद्दाग्मटेन्नोक्षम्, इह तु अन्थविस्तारभयाचकेण न लिखितम्, किन्तुपयुक्तमिति मया लिख्यते यथा—'भूयरा प्रमहानूपमेदोमज्ञवमामिषे । स्नेद्दन पयसा पिष्टेजीवनोयेश्व कल्पयत् । स्रगपिचयक्रनमास्युकायस्तात्रसैन्यवे । स्रोतोजराङ्ककदलैलिखनो मस्तु-कल्पित । स्रगपिचयक्रन्मज्ञवसान्त्रहृदयामिषे । मधुरैः सप्टते स्तन्यवीरिष्टेः प्रमाद्दन इति ॥१२॥

विल्वमात्रं पृथक् पिएडं मांसभेषजकत्कयोः।
उच्तूकवटाम्भोजपत्रैः स्निग्धादिषु क्रमात् ॥
वेष्टियत्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः।
पचेत् प्रदीप्तरग्याभं पकं निष्पीढ्य तद्रसम् ॥
नेत्रे तप्णवयुञ्ज्याच्छतं द्वे त्रीणि धारयेत्।
लेखनस्नेहनान्त्येषु कोष्णी पूर्वी हिमोऽपरः॥
धूमपोऽन्ते तयोरेव योगास्तत्र च तृप्तिवत्॥१३॥

पुरपाकत्रयस्य कल्पनामाइ विल्वेत्यादि—मासयुक्त भेषजञ्चानन्तरोक्तजीवनीवादिक तयोः कल्करूपयो पिग्छ । १थिविवल्बमोत्रमिति पलमात्रम् । १रएडादिपत्रै क्रमेण रिनम्पादिपु रेनहादिपुरपाकेषु वेष्टियत्वा अनन्तर मृदा लिस
प्रदीक्षेष्वथन्वनगोमये प्रवेद्द । क्रमादिति धवधन्वनगोमयेरित्यत्रापि योजयन्ति
किचिद्द । तेन रेनहनपुरपाके परण्डपत्रेण वेष्टनम्, धवकाष्ठाद्वारेण च
पाक । लेखने वरपत्रेण वेष्टनम्, धन्वनकाष्ठाद्वारेण च पाकः । प्रसादने तु
प्रम्मोलपत्रेवेष्टनम्, गोमयाग्रिना च पाक इति । अगन्यामित्यश्चिवर्णम्,
पत्रच्च सम्यक्षाक्रग्रानार्थमुक्तम् । तर्पणवद् युच्च्यादित्यनेन निर्वाते तर्पणोक्तविधिमत्राप्यितिदिशति । पत्रद्रमञ्च कियन्त काल नेत्रे धारयेदित्याइ शर्त दे

त्रीणि धारयेत् लेपानस्नेहनान्त्योष्त्रति । एतच यथाक्रम योज्यम्, तेन लेखनपुटपाके रातमिति मानाशत धारयेत् । स्वहने तु हे मानाशते, अन्त्य इति प्रमादने त्रीणि मात्राशतानि धारयेदित्यर्थः । पूर्वी स्वहलेपानी कोष्णी, अपर इति प्रसादनो हिमः स्रीतलो योज्यः । धूमपोऽन्ते तथोर्वेति पूर्वयो स्वहनेलखनयेरिव अन्त धूमप स्यात्, न तु प्रसादनान्त इत्येवशब्दार्थं । योगास्तत्र च तृप्तिवदिति तर्पणवदित्यर्थः ॥१३॥

तर्पणं पुटपाकञ्च नस्थानहें न योजयेत्। , यावन्त्यहानि युज्जीत द्विगुणा हितभाग्भवेत्॥ १४॥ इत्याश्च्योतनाञ्चनतर्पणपुटपाकाधिकारः।

तर्वणपुरपाको येषा न कार्यो तानाह तर्पणिमत्यादि—नस्यानहं इति निषि-द्धनस्यपुरुषे । इद्गानी तर्पणपुरपाकिषधानानन्तर यावन्ति दिनानि हितसेवन कर्त्तंव्य ।तराह यावन्तीत्यादि—यावन्ति दिनानि व्याप्य तर्पणपुरपाकिषधि कृत तद्दि-गुजानि दिनानि हितसेवी भूत्वा तिष्ठेदित्यर्थ ॥ १४॥

इत्याश्च्योतनाञ्जनतर्पणपुटपाकाधिकारविवृति.।

अथ शिराव्यधाधिकारः।

श्रथ स्निग्धतनुः स्निग्धरसान्तप्रतिभोजितः ।

प्रत्यादित्यमुखं स्विन्नो जानूचासनसस्थितः ॥

सृदुपद्वात्तकेशान्तो जानुस्थिपतकूर्परः ।

श्रमुष्ठगर्भमुष्टिभ्यां मन्ये गाढं निर्पाडयेत् ॥

दन्तसम्पीडनोत्कासगरडाध्मानानि चाचरेत् ।

पृष्ठतो,यन्त्रयेचैनं वस्नमावष्टयेन्नरः ॥

कन्धरायां परिचिष्य न्यस्यान्तर्वोमतर्जनीम् ।

पवमुत्थाप्य विधिना शिरां विध्येच्छिरोगताम् ॥ १॥

पूर्वन्तु नेनरोगे सिग्धरय च्येन कीम्सेन शिरान्यधैः शम नयेदित्युक्तम्, अत आश्चयोतनादिवत् शिरान्यधस्यापि नेत्ररोगहरत्वादनन्तर शिरान्यधिर्वाच्य । तत्र प्राधान्यात् प्रथम शिरोगतिशिराच्यथे कर्तन्ये शिरोत्थापनप्रकारमाह अथेत्यादि—

वाग्मटस्य । आदित्याभिमुख लच्चीकृत्य, जानूचासनसिश्यत इति उपविष्ट इत्यर्थ ।
मदुना पट्टेनाची गृहीतो वढ इति यावद् केशान्तो यस्य म तथा । जानुनि स्थापित
कृषेर कफीखिद्धय येन स तथा । मुष्टिम्या मन्ये श्रीवाधमन्यौ प्रपीडयेत् तथा दन्तमन्पीडनादीनामन्यतममाचरेत्, आतं इति रोषः । दन्तैर्देन्तानां पंडन दन्तपंडनम्
उत्कास काम एव, गएडाध्मान वायुना मुखपूरण, सुश्रेतेऽप्युक्त—कर्मपुरुषश्च
वायुना मुख पूर्येत् " इति तथा नर परिचारकजन. पृष्ठत इति पृष्ठदेशे स्थित्वा
एनमादुर यन्त्रयेत् । किं कुर्वन् यन्त्रयेदित्याह्—वस्न कन्धराया श्रीवाया परिचिम्य
तस्य मध्ये स्वकीयवामतर्जनीं न्यस्यारोप्य वस्नमावेष्टयन् पीडयेदिति ॥ १ ॥

विध्येद्धस्तशिरां बाहावनाकुञ्चितकूपेरे । वद्ध्वा सुकोपविष्टस्य मुष्टिमंगुष्टगर्भिणम् । ऊद्ध्वे वेध्यप्रदेशाच पहिकां चतुरंगुते ॥ २ ॥

विध्येदित्यादि—वाग्मटस्य । अनाकुश्चितः कूपरः कफोणियस्य । किं कृत्वा विध्येदित्याह्— द्वुखोपविष्टस्यातुरस्य श्रद्गुष्ठगर्भिया ग्रुष्टि वद्श्वा वन्ध्यित्वा । पुन किं कृत्वा १ वेध्यप्रदेशादुपरि चतुरङ्गुले यन्त्रपट्टिका शिरायन्त्रयार्थं पट्टिकां वस्नादिपट्टा वद्श्वा ॥ २ ॥

पादे तु सुस्थिते अधस्तात् जानुसन्धेर्निपीडिते ।
गाढं कराभ्यामागुरुकं चरणे तस्य चोपरि ॥
द्वितीये कुश्चिते किश्चिदाकढे हस्तवचतः ।
यद्ध्या विध्येष्टिञ्जरामित्थमनुक्तेष्विप कर्लपयेत् ॥
तेषु तपु प्रदेशेषु तत्तद्यन्त्रमुपायिवत् ।
ततो वीहिमुखं व्यध्यप्रदेशे न्यस्य पीडयेत् ॥
श्रंगुष्ठतर्जनीभ्यान्तु तलप्रच्छादितं भिषक् ॥ ३॥

पादगतशिराज्यधनकारमाह पादे त्वित्यादि—वाग्मटस्य । सुस्थित इत्येनः विषमपादन्यास निरस्यति । किंविशिष्टे पादे १ जानुसन्धरधस्तात् वैद्यस्य कराज्य मागुल्फ गुल्फपर्यन्त गाढ निषीडित इत्यर्थ । दितीथे तु चरेण तस्य सुस्थिर पादस्योपरि आरूढे सति । किंविशिष्टे दितीथे चरेणे १ —किंबित् कुन्निते । इस्तव ततो बद्ध्वेति—यथा इस्ते यन्त्रादिक बद्ध्वा ।शरा विध्येत् तथात्रापीत्यर्थः पवसुकरीत्या अनुक्षप्रदेशविषयेऽपि यन्त्र स्वयुद्ध्या कल्पयेदित्याह इत्यीमत्यिद

मीहिमुखादिशक्तेया यथा शिरान्यथे। विधेयस्तदाह तत इत्यादि । न्यस्यारोप्य प्रगुष्ठतर्जनीभ्या पाडयेदित्यन्वयः । करतलप्रच्छादितिमिति पाडनिक्रयाविशेषणम्, यतेन रननथारा नोद्ध्वंमुत्तिष्ठति इत्यमिसन्धिः ॥ ३ ॥

> वामहस्तेन विन्यस्य कुठारीमितरेण तु ॥ ताडयेन्मध्यमाङ्गुल्याङ्गुष्ठविष्टन्धमुक्तया ॥ ४ ॥

कुठारिकया वेधनप्रकारमाह वामहस्तेनेत्यादि — इतरेख दिच्चिहस्तेन ताढयेदित्याह मध्यमांगुल्येति । अगुष्ठविष्टन्धमुक्तयेति आदी दृद्धागुष्ठेन विष्टभ्य मुक्तयेत्यर्थ: ॥ ४ ॥

> मांसले निचिपेदेशे बीह्यास्यं बीहिमात्रकम्। यवार्द्धमस्थ्नामुपरि शिरां विष्यन् क्वठारिकाम्॥ ४॥

इदानी मुक्तशस्त्रदय यस्मिन् प्रदेशे योज्य तदाह मासल इत्यादि—मासल प्रदेशे शिरा विध्येदिति योज्यम् । बीखास्यामिति बीहिमुख शस्त्रम् एकवीहिमात्रक निक्षिपेत् प्रवेशयेत् । अस्थना सुपरि शिरा विध्यन् कुठारिका यवार्द्धमात्रां निक्षिपेदित्यर्थः ॥ ५ ॥

श्रसम्यगंश्रे स्रवित विल्वन्योषिनशानतैः।
सागारधूमलवणतैलैदिह्याि छ्रिरामुखम्॥
सम्यक् प्रवृत्ते कोष्णेन नैलेन लवणेन च॥
श्रश्रद्धौ विलनोऽप्यसं न प्रस्थात् स्नावयेत् परम्॥
श्रितस्रुतौ हि मृत्युः स्याद्दारुणा वानिलामयाः॥
तत्राभ्यक्तरसर्त्त।ररक्तपानािन भेषजम्॥ ६॥
स्रुते रक्ते शनैर्यन्त्रमपनीय हिमाम्बुना।
प्रसाल्य तैलपोताक्तं बन्धनीयं शिरामुखम्॥
श्रश्रद्धं स्नावयेद्ध्यः सायमह्चपरेऽपि वा।
रक्ते त्वतिष्ठति चिषं स्तम्भनीमाचरेत् कियाम्॥
लोधप्रियक्रुपत्तद्गमाषयण्ड्याह्नगैरिकैः।
मृत्कपालाञ्जनचौममसीचीरित्वगङ्गुरैः॥
विचूर्णयेद् व्रणमुक्तं पद्मकािद हिमं पिवेत्।

नामेव वा शिरा विध्येद्वयधात्तसादनन्तरम् ॥ शिरामुख वा त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया ॥ ७ ॥

अयोगे चिकित्सामां अमस्यगित्यादि — अशुद्धाविति अमस्यक् शुद्धा । अस्यादिति — अस्थादेत सार्द्धन्योदशपलम् । परिमात्यृद्ध्वम् । अत्रव हतुमाह अतिस्रुतावित्यादि — तत्रेति रक्षादिस्रुती । रसः मास्रदंसः । अस्राल्येति शिरामुर्द्धायस्य । तैलशोताक्षमिति तलाष्ट्रुतवस्त्रीमस्यश्चः । स्तम्मनीमिति वत्त्यमाणाम् । तामव रक्षणी क्रियामाह लोधेत्यादि — पत्तद्भ रक्षचन्त्रमम् । अञ्चन स्थाञ्जनम् , स्तममनी दम्बन्धमस् , सीरिणो वटो दुम्बरादय , तपा त्वक् अक्तुरश्च । पद्मकादि पद्मकादिगणम् । हिममिति शीतकपाय पिवेदिति । याभिति पूर्वविद्धाम् । व्यथात् तस्यादनन्तरमिति पूर्वविद्याभसमीपाद्ध्वमागे । शिरामुखमिति विद्वशिरावणमुग्यम् ॥ ६॥ ७॥

संशेषमध्यसुग्धार्य्यं न चातिस्तृतिमाचरेत्। हरेच्छुद्गादिना शपं प्रसादमथवा नयेत्॥ मर्महीने यथासन्नप्रदेशे व्यथयेच्छिराम्।॥ =॥

दुष्टमि रक्त न निःशेष सावयेदित्याह मॅशेषमपीत्यादि—मशेषमिति दुष्ट-शोणितशेषम् । प्रसादमथवा नयेदिति प्रसादनलेपनादिना । शिरा हि दुष्टा एव वेध्या , उक्त हि—"अदुष्टा न वेध्याः" इति । यत्र प्रवेशे तु वेध्यशिरा न दृश्येत् कथ तत्र शिराव्यथ कार्य्ये इत्याह मर्महीन इत्यादि—वाग्मटस्य । अत्र व्यथ्यशिराणामदर्शन इति शेष । अत्यवैतसात् पूर्व वाग्मटे यथोकानामदर्शन इत्युक्तम् । यथासन्नदेश इति यत्र देशे व्यथ्यशिरा न दृश्येते तत्र ममीपदेशे वा अन्या शिरा या दृश्येते ता एव वेश्या इत्यर्थ । मर्महीन इति मर्मवितेते ॥ ॥ ॥

न त्नपोडशातीतसप्तत्यव्द्मुतास्जाम् । श्रस्निग्धासेदितात्यर्थसेदितानिलरोगिणाम् ॥ गर्भिणीस्तिकाजीणिपत्तास्रश्यांसकासिनाम् । स्नेद्दपीते प्रयुक्तेपु तथा पञ्चसु कर्मसु ॥ नायन्त्रितां शिरां विध्येन्न तिर्य्यङ्नाप्यसुत्थिताम् । नातिशीतोष्ण्याताश्चेष्वन्यत्रत्यायकाद्भदात् ॥ ६ ॥ वेषां शिरान्यपो, न कार्यसानाह न वित्यादि—नाम्मस्य । अन्यत्रात्य- विकाद् गदादिति-भात्यिके तु न्याभी एष्विष कालेषु शिरा न्यध्येवेत्वर्थः ॥६॥ नात्युष्णशीतं लघु दीपनीयं रक्षेऽपनीते हितमभाषानम्। तदा शरीरं द्यानवस्थितास्विहिविशेषेण च रत्तणीयः। नरो हिताहारिवहारसेवी मासं-भवेदावललाभतो वा ॥१०॥

रक्षम्नावानन्तर यद्विषेय तदाए नात्युष्णेत्यादि—श्रनविश्वतास्गिति प्रचुर-रक्षम् ॥ १० ॥ प्रसन्त्रवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तंमव्याहतस्रक्षिवेगम् । सुखान्वितं पुष्टिबलोपपन्नं विशुद्धरक्षं पुरुषं वदन्ति ॥११॥

इति शिराव्यधाधिकारः।

इदानी शोखितादरीनेऽपि निशुद्धरक्तशानार्थं लच्छमाह प्रसन्नित्यादि—वेग. पुरीषादीनास् ॥११॥

इति शिराच्यथाधिकारविवृति ।

अथ सुस्थाधिकारः।

दिनाचारविधिः

व्राह्में मुहुर्ते उत्तिष्ठेत् सुस्था रह्मार्थमायुषः ।
श्रारिचिन्तां निर्वर्त्यं कृतशौचिविधिस्ततः ॥
प्रात्मेंकृत्वा च मृद्धग्रं कषायकद्वतिक्षकम् ।
भद्मेयद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥
नाद्याद्वजीर्थवमयुश्वासकासज्वरार्दितः ।
तृष्णास्यपाकहृत्रेत्रशिरःकणीमयी च तत् ॥
सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमन्णोः प्रयोजयेत् ।
पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्नावणार्थं रसाञ्जनम् ।
ततो नावनगरङ्कष्यूमताम्बृत्तभाग्मवेत् ॥१॥
प्रदानीमाद्वरिहतिनिकित्सामिभाय श्रस्थवत्तमाह मास्र स्त्याहि—मास्रो मुहुत्रो

गत्रे. पश्चिमयामस्य श्वनाहिकाद्वयम् । शरीरिचन्ता मूत्रपुरीयोत्मर्गादिकरूपाम् । नत इति शीचविधेरनन्तर दन्तपवन मच्चेदिति । दन्ताः पूयन्ते अनेनेति दन्तपवन दन्तकाष्ठम् मुक्त्वा चिति मोजनानन्तरमपीत्यर्थ । दन्तकाष्ठ वैनं विधेय तदाइ नाचादिति—दन्तपवनमित्यन्वयः । सुवीरा नाम नदी तद्ववमञ्जन सीवीराञ्जनम् । तष्ट्रसण् यथा—"वल्मीकशिखराकार महे नीलोत्पलखुति । सीवीराञ्जनमिच्छन्ति मासुर्वेदार्थचिन्तकाः" इति । नित्य प्रत्यहम् । अत्र पञ्चरात्राष्ट्ररात्रप्रहण्यमदूरान्तरकाले नियमदर्शनार्थम्, तेन दोषकालमेपस्य अर्वाद्यस्य कद्र्ष्वं न्व कर्त्तव्यं स्नावणाञ्चन-मिति । रसाञ्जनमिति दार्वोकायसमुद्भव इत्यरुणः ॥१॥

ताम्बूलं ज्ञतिपत्तास्रह्णतेत्कुपितचनुपाम् । विषमुञ्जीमदात्तीनामपथ्यञ्चापि शोपिणाम् ॥ श्रम्यङ्गमाचरेत्रित्यं स जराश्रमवातद्दा । शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ वाह्याभ्यङ्ग कफ्रयस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभि ॥२॥ निषिदताम्लानाइ ताम्लामत्यादि—तमित्यम्बङ्ग ॥२॥ शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्य्यार्था वलवर्द्धनी । देह्व्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत् ॥३॥

रारित्यादी—देहेत्यनेन मनोज्यायाम मनश्चिन्तनादिक निरस्यति । सख्याता इति मिहता या च चेष्टामिमता, एतेन भारवहनाद्या ऋनिष्टादिकार्व्यवशात् क्रियमाणा चेष्टा निरस्यति । मात्रया ता समाचरेदिति मात्रा चार्द्वशिक । यदाह वाग्मदः—श्रद्धशक्त्या निपेन्यरतु बलिमि, सिग्यमोतिमि, ' इति । श्रद्धशक्तिलक्षण वधा—''कक्षे ललाटे श्रीवायां स्वन्धे नाताङ्गसन्धिषु । स्वेद मक्षायने यत्र बलार्द्ध त विनिदिशेत् ॥३॥

वातिषत्तामयी वालो बृद्धोऽजीर्णी च तां त्यजेत्। उद्दर्भनं तथा कार्य्ये ततः स्नानं समाचरेत्॥ उप्णाम्बुनाघःकायस्य परिपेको वलावद्यः। तेनव त्त्रमाङ्गस्य वलद्यत् केशचचुपोः॥४॥

निषिदस्यायामानाह वातेत्यादि---नेनेनेति उप्णाम्बुना उत्तमाङ्गस्य मस्तकस्य सेक केराचचुपोर्वलं हरनीनि बलहत् ॥४॥

स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ।

श्राध्मानपीनसाजीर्णभुक्रवत्सु च गर्हितम् ॥४॥
नींचरोमनखर्मश्रुनिर्मलांत्रिमलायनः ।
स्नानशीलः ससुर्भाः सुवेशो निर्मलाम्बर् ॥
धारयेत् सततं रत्नं सिद्धमन्त्रमहौपधीः ।
सातपत्रपद्घाणो विचरेद्युगमात्रहक् ।
निशि चात्ययिके कार्य्यं दण्डी मौली सहायवान् ॥
जीर्णे हितं मितञ्चाद्यात्र वेगानीरयद्वलात् ।
न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्नाजित्वा साध्यमामयम् ॥
दश्रधा पापकर्माणि कायवाद्यानसैस्यजेत् ॥
काले हितं मितं ज्याद्विसंवादि पेशलम् ।
श्रात्मवत् सततं पश्येद्पि कीटिपिपीलिकम् ॥
श्रात्मवः प्रतिकृत्नानि परेषां न समाचरेत् ।
नक्नान्दिनानि मे यान्ति कथम्भूतस्य सम्प्रति ।
दुःखभाङ् न मवत्येवं नित्यं सिन्नाहितस्मृतिः ॥ ६॥

इति दिनाचाराविधिः॥

निषद्धलानानाइ ल्लानिस्यादि—अह्ना पादी, मलायनानि गुदोपस्थानि,तानि निर्मलानि यस्य। निर्मलाम्बर इत्यत्र अनुल्वयोन्ज्वल इति वाग्मटे पट्यते; अनुल्वयोन्डित इत्यवं । युग इस्तचतु प्रयम्। आत्ययि इत्यवस्यकर्त्तच्ये। वेगानिति मृत्रपुरीप-वेगान्, ईरयेदित्युदीरयेत्। वेगित इति सञ्जातमृत्रपुरीपादिवेगः। दश्था पापकर्मायीति। उक्तद्य-"अदत्तानामुपादान हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च काथिक त्रिविध स्मृतम्। पारुष्यमनृतश्चेव पैशुन्यश्चापि सर्वशा । असम्बन्धमलापश्च वाष्म्य स्याध-तुष्टयम्। परद्रव्येष्वभिध्यान मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथामिनिवेशश्च मानस त्रिविध स्मृतम् '' इति । अविसवादीति न पूर्वापरिवर्द्धम्, पेशल मधुरम्, काल इति यथा वितसमये। आत्मन इत्यादी—परेपा न समाचरेदिति परेपा प्रतिकृतानि अनि-ष्टानि न समाचरेत् । कृती न आचरेदिस्याद आत्मन इत्यादि—आत्मनः प्रायान्भृतामेव आत्मनस्यन्थादित्यर्थः। किंवा आत्मनो यानि प्रतिकृतानि अनिष्टानि

तानि परेषामिष नाचरेदिति । नक्तिमित्यादि—कथम्भूतस्य कीट्टशस्य मम पाप पुर्य कुर्वतो ना दय परिहरतो ना मम्प्रति नक्तं दिनानि गान्ति एव नित्य सिन्न-हितस्त्रतिर्थ पुरुषो भवति स दु खमाक् न स्याद्य, यम्मादेव सर्वदा समग्न् पुरुषो दु खहेत्त्तया दुण्कृत त्यनति, मुखहेत्त्तया च सुकृतमन्विन्छिति इत्यर्थ ॥५–६॥ इति दिनाचारविधि-विद्यति ।

ऋतुचर्या

मासैद्विंसंख्येमांघाचे क्रमात् पड़तवः स्मृताः। शिशिरश्च वसन्तश्च ग्रीष्मवर्पाश्चरिद्धमाः॥ वित्त शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रवलोऽनलः। सेवेतातो हिमे स्निष्धस्वाद्धम्ललवणान् रसान्॥ गोधूमिष्टमापेनुचीरोत्थविकृतीः सुरा। नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्यं सुखोदकम्॥

युक्त्यार्केिकरणान् स्वेदं पाद्त्राण् अस्वेदा ॥ ७ ॥
पारिशेष्यादृतुचर्यारूप मुस्यिहतमाइ मामेरित्यादि—पट्टतव इति शिशिरवसन्नग्रीष्म-वर्षा-शरेद्धमन्ता इत्यंथ । यथिप शिशिरादिऋतुत्रयमुत्तरायण्लेन प्रशसत्तावमे चे।दिष्ट तथापि नलवृद्धिप्रकर्पलेन प्राशस्त्र्यात् प्रथम हेमन्तिविधिमाइ
बिलन इत्यादि—निलन इत्यनेन प्राणिवलस्याभिनलहेतुत्व दर्शयित । उनत हि
पालकाष्ये—'श्रव्याहतादिमिप्रायात् प्रीत, प्रीतेर्वल बलात् । श्रिवरक्षेश्च थातूना
नाग्य नाशस्त्रतो रुजाम् १ इति । किंवा निलन इत्युपचयनतः । शीतसरोधादिति
कुन्भकारपयनपद्मलेपन्यायात् शीतेन निहर्गिगंच्छ्च्छरीरोष्मणो रोधात् । रसानिति
श्रीदकान्पमारसान् । कीदृशान् १ स्वादम्ललवणाद् व्यसस्कारात् स्वादम्ललवणान् ।
उनत हि चरके—" तस्मात् तुपारममये स्वादम्ललवणान् रसान् । श्रीदकान्पुपभामाना मेध्यानामुपयोजयेत् " इति । मापस्थाने मासेति पाठा वाग्मटपुस्तके
नास्ति, टीकायान्च न व्याख्यात इति ॥ ७॥

प्रावाराजिनकाैपेयप्रवेणीरौरवास्तृतम् । उप्णस्वमावैर्लघुमिः प्रावृतः शयनं भजेत् ॥ , , , श्रंगारतापसन्तप्तगर्भभूवेश्मनि प्रियाम् । , , , , , पीवरोशस्तनश्रोणीमालिग्यागुरुव्वर्चिताम् ॥ ८ ॥ प्राविद्यादि—वाग्मटस्य । प्राविद्या गुक्तावरण कम्बलादि अन्य त प्राविद्य कार्पासलामवदुत्तरीयम् । अजिन सुस्तर्यशंलोमश चर्म । कीपिय किमिकोपोद्दवस्त्रम् । प्रविश्वो स्वीवारणाख्ये। वस्त्रविशेष इत्याष्ट्र. । रीरवो वस्त्रभेद इति केचित् अन्य त कार्पामवस्त्रमवेत्याष्ट्र', चरके रीरवरथाने कुथकेति पट्यते, कुथक्तत् च्याप्ट विषक्षम्बल । उण्णस्वभावेलेष्ठिमिरिति नेपालकम्बलप्रचुरत्तुलकपट्टादिमि । कि कृत्वा शयन भजेदित्याष्ट्र अन्नोरत्यादि—अन्नारतापेन सन्तप्न यत् गर्भगृष्ट गृष्ट-कोष्टक तथा भृगृष्ट्व्य । चरकेऽप्युवन—''सेवेत भृगृष्ट्व्योष्णमुष्ण गर्भगृष्ट तथा '' इति ॥ म ॥

श्रयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः। तदा हि शीतमधिकं रोच्यञ्चादानकालजम्॥ ६॥ वन्ति शिशिरेऽतिदिशति श्रयमेवत्यादि। श्रयैव हेतुमाह तदेत्यादि ॥६॥

कफिश्रतो हि शिशिरे चसन्ते उर्काश्चतापितः। हत्वाशि कुरुते रोगांस्ततस्तत्र प्रयोजयेत्॥ तीदणं चमननस्यादि कवलग्रहमञ्जनम्। व्यायामोद्धर्त्तनं धूमं शौचकार्य्ये सुखोदकम्॥ स्नातोऽनुलिप्तः कपूरचन्दनागुरुकुंकुमैः। पुराण्यवगोधूमचौद्रजांगलश्र्ल्यभुक्॥ प्रिवेदासवारिष्टसीधुमाध्वीकमाधवान्। चसन्तेऽनुभवेत् खीणां काननानाश्च यौचनम्॥ गुरूष्णस्निग्चमधुरं दिवास्वप्रश्च वर्जयेत्॥१०॥

गसन्तिविधिमाह कप दत्यादि—ग्रत्य भटित्र ग्रत्नपाचितिमित्यर्थ । श्रासवा-रिष्ट झराक्रतसन्थानम्, सीधु गुडासनः । माध्नीक मधुकृत मधम्, श्ररुणस्तु माद्दीकेति पठित्वा मृद्दीकारसोद्भव मधिमित व्याचिष्ट । माधवा मधुरीकृत श्रासनः । धनुमविदित्यनेन श्रेष्मचयार्थं स्तीक मैथुनमनुजानाति, वसन्तस्यादानमध्यत्वादिति मावः । ग्रीवित्यादौ—श्रम्लस्थाने उष्णेत्यपपाठ ॥ १०॥

> मयूषेर्जगतः स्नेहं श्रीष्मे पेपीयते रिवः। स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम्॥ शीतं सशर्करं मन्धं जांगलान् सृगपित्तणः।

> भूवाप्पान्मेघानिष्यन्द्रात् पाकाद्दम्लाज्जलस्य च । वर्षास्विविले जीणे कृष्यन्ति पवनाद्द्यः ॥ भवेत् साधारणे सर्वमूप्पएस्तेजनञ्च यत् । श्रास्थापनं ग्रुद्धतनुर्जीणं धान्यं कृतान् रसान् ॥ जांगलं पिणितं यूपान् मध्यरिष्टं चिरन्तनम् । दि्व्यं कौपं श्वतं वाम्मा मोजनन्वतिदुर्दिने ॥ ध्यक्ताम्लतवण्सेहं संग्रुष्कं क्षौद्रवल्लघु । नदीवलोद्दमन्याह्यस्वप्तायासात्पांस्त्येवत् ॥ १२ ॥

वर्गाविषिनाह म्दाप्नादिन्नादि — मृदापं प्रमावदिव दोवण्यकोपनम् । अन्ये द्व विचल जनाहु । नेवानिष्यन् रे रैन्य दातककवनकः, अन्य पात्रता च स्वमावदः पिर्टक्ते । अन्ये हे विचल जनाहु । नेवानिष्यन् रे रैन्य दातककवनकः, अन्यपादता च स्वमावदः पिर्टक्ते । अन्ये हो द्वांचा क्यांचानि अधिनान्द्वापि विद्यापि । विद्यापि विद्य

निति सस्कृतमासरसान्, मध्वरिष्ट मधुकृतमिर्ष्ट, चिरन्तन पुरातनम् । दिव्यमित्या-काराजलम्, भोजनिमत्यादि परेख सम्बध्यते । सशुष्कमिति नातिद्रवम् । चौद्रवदिति मधुयुक्तम् । पतच वार्षिकदेष्केशे शोधनार्थं श्वेयम् । वर्जनीयमाह नदीत्यादि । उदक्रमन्थः उदक्रप्रधानो मन्थ , ऋह.स्वम दिवास्वमः ॥ १२ ॥

वर्णशितोचिताङ्गानां सहसैवार्करिश्मिभः।
तप्तानामाचित्तं पित्तं प्रायः शरिद कुप्यति ॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोच्चणम्।
तिक्तं स्वादु कषायञ्च च्चिघतोऽतं भजेच्चघु ॥
इच्चः शालयो मुद्राः सरोऽम्भः क्वथितं पयः।
शरदोतानि पथ्यानि प्रदोपं चेन्दुरश्मयः॥
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।
तुपारचारसौहित्यद्घितेलरसातपान्॥
तीच्णमद्यद्वास्वप्रपुराचातातपांस्त्यजेत्।
शति वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान् भजेत्॥
स्वादुन् निद्षेष्ठ शरिदं स्वादुतिक्रकषायकान्।
शरद्वसन्तयो रूचं शीतं धर्मधनान्तयोः॥
श्रत्रद्वास्त्रम्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ॥१३॥

शराद्विधिमाद्द वर्षेत्यादि—उचित समवेतम्, उच समवाये इत्यस्य रूपम् । ममवायोऽत्र सतताभ्यासरूपः सम्बन्धः, तेन शांतसमवेताङ्गानामित्यथं । सदसा इत्यः क्रमणः । श्राचितमिति सिद्धित वर्षाद्धः । प्राय इति वचनात् कदाचित्, वर्षाद्धः शीतमधुरादिसेवया पित्तच्यमयात् शरिद कोषो न भवत्येवेति दर्शयति । तिक इत पञ्चतिक्षद्यतादिकम् । कथित पय इति श्वत दुग्धम् । प्रदोषे चिति चकारे।ऽवधारणे प्रदोष प्वेत्यर्थः । वर्जनीयमाद्द तुपारेत्यादि । ऋतुमेदे रसानाद्द शीत इत्यादि—वाग्मटस्य । शीत इति द्विमशिशिरयोः । श्राधान् त्रीनिति स्वाद्वम्ललवखरसान् । अन्त्यानिति कद्वतिककषायानिति । शरद्वसन्तयोरित्यादे। भजेदित्यनेन पूर्वोकेनान्वयः । श्रतः अन्यथेति—द्वेमन्तशिशिरयोस्तु विपरीतिमिति क्षिण्धम्, उष्णाज्ञपान मोजयेदित्यर्थः । नित्यमिति सर्वदा सर्वेषा पर्णा रसानामभ्यासः कार्यः । एवञ्च

सित शीते वर्णासु चार्चास्त्रीनित्यादि यदुक तदिरुध्यत इत्यत आह स्वस्वाधिक्य-मित्यादि—यरिमन् यरिमन् ऋतौ यो रसः सेन्यत्वेनोक तस्याधिक्यमात्रे तद्वचनस्य सारपर्योभिति भाव ॥१३॥

ऋतोराद्यन्तसप्ताहानृतुसिन्धिरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्॥
हत्युक्तसृतुसात्म्यं यश्चेष्टाहारव्यपाश्रयम्।
डपशते यद्गैवित्यादोकसात्म्य तदुच्यते॥
वेशानामामयानाश्च धिपरीतगुणं गुणः।
सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्यशाश्चेष्टितश्चाद्यमेव च॥
तत्त्व नित्यं प्रयुश्चीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
ऋजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरश्च यत्॥
नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा।
स्वशरीरस्य मेधावी इत्येण्ववहितो भवेत्॥१४॥
हत्यृतुचर्या सुस्थाधिकारश्च।

श्रुतोरित्यादि—पूर्वश्रतोरन्यमासस्यान्तिममाह तथा परश्रतोराधमासस्य प्रथमसप्ताहमिति सप्ताहद्वय श्रुत्तुसान्धिरित्यर्थ. । क्रमादिति न महसा त्यागशीलने विधेये । अत्र हेतुर्वाग्मटेनैवोक्षी यथा—'असात्यजा हि रोगा. स्यु सहसा त्यागशीलनात्" हित । सात्म्यत्यागादसात्म्यमेय नाचेरिदित्यर्थ. । उपसहरित इत्युक्तिमित्यादि । श्रुत्तुसात्म्यप्रसिक्षनाभ्यासमात्म्यमप्याह उपशेते हत्यादि—उपशेते स्त्यादि विकार न जनयति । कृत हत्याह श्रीनित्यादित्यभ्यास्तात् । अपध्यमि हि निरन्तराभ्यासात् विपिनवाशीविषस्य नोपधातक भवतीति भाव । श्रोकोऽभ्यास , तेन सात्म्यमोकसात्म्यम् । देशसात्म्य रोगसात्म्यश्र दर्शयि देशानामित्यादि—देशानामान्पादीनां ग्रुणे खेहगौरवादिभि सह विपरीतग्रण केष्टगौरवविपरीतरीच्यलाधवयुक्त मुद्रजाक्ष्तमासमध्यादि । श्राद्यमद्विपरीतग्रथ श्रीविवक्ष व्यायामादि, देशसात्म्यभिच्छन्त्यायुर्वेदविद हत्यर्थः । यवमामयविपरीतञ्च शीविकारे जन्यमित्यादि रोगसात्म्यमित्यर्थः । ग्रुणशब्देनात्र विपरीतप्रमानायामिय प्रहणम्, ततश्च प्रभाववैपरीत्यात् तादिपर्याद्यार्थकारिणाञ्च महण्यम् , श्रामयशब्देस चामयहेत्रिपे महोतव्य , तेन हेत्विपरीतस्यापि सास्मस्य महण्यम् । इदानीं मन्य-

विस्तरमयात् सचेपेण स्वास्थ्यपरिपालनोपायमाद् तचेत्यादि—स्वास्थ्यमिष् चद्वेजक-धातुवेषम्यविरिष्तिधातुसाम्यम् । तच्च स्वास्थ्यमुभय परिपाल्यते । विशुद्धाद्दाराचारा-भ्या सदा द्वीयमाणशरीरपोपण्यन्, प्रत्यवायदेतुपरिष्टारेण च, यथा दीपपरिपालन स्नेष्टवित्तिदानात् पोपण्येन क्षियते, तथा निर्वापकदेतुवातादिपरिष्टारेण च। तत्र श्लोकपूर्वार्द्धेन स्वास्थ्यपोषकदेतुरुक्तः , उत्तरार्द्धेन तु स्वास्थ्यविषातकदेतुपरिष्टारोऽभि-धय इति न पौनरुक्त्यम् । अनुत्पित्तिरिष्ट उत्पादकसामग्रीविषद्धनम् । इदानीमुक्त-स्यानुक्तस्य सुर्थविधेरनेन कर्त्तव्यतामाष्ट् नगरीत्यादि—नगरी रथी चेति नगर्रथ-योरिषद्धतः, कृत्येपूक्तेष्वनुक्तेषु च॥१४॥

श्त्यृतुचर्या सुस्थाधिकारश्च ॥

गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपात्र-नारायणस्य तनयः सुनयोऽन्तरंगात् । भानोरतु प्रथितलोधवलीकुर्लीनः श्रीचक्रपाणिरिष्ट कर्नृपदाधिकारी ॥ १४ ॥

इदानी ग्रन्थपरिसमाती पिन्नदीनामुत्कित्तंनपूर्वक स्वनाम निवेशयन्नाह गौडा-धिनाधित्यादि—गौडाधिनाथो नयपालदेव., तस्य रसवती महानसम्, तस्याधिकारी सथा पात्रमिति मन्त्री, ईंट्रशो यो नारायर्णस्तस्य तनयः, मुनय इति नीतिमान् , अन्तरद्वादिति लब्धान्तरद्वपदिकात् भानोरन्त नारायणस्य तनय इति योज्यः तेन मानोरनुज इत्यर्थ । विषाकुलसम्पन्नो हि भिषगन्तरद्व इत्युच्यते । लोधवलीसन्नक-दत्तकुलोत्पन्न ॥ १५॥

> यः सिद्धयोगतिखिताधिकसिद्धयोगा-नत्रैव नित्तिपति केवलमुद्धरेद्वा । मञ्जयत्रिपथवेदविदा जनेन दत्तः पतेत् सपदि मूर्द्धनि तस्य शापः ॥ १६॥ समातोऽयं ग्रन्थः ॥

य श्त्यादौ—सिद्धयोग श्रति यृन्दकृतसम्रहस्य सज्ञा, ताह्मिखितयोगमपेच्याधिका ये च सिद्धयोगा अत्र समहे जकास्तानधिकयोगान् तत्रैव सिद्धयोगे निचिपति, तथा यो वा तानधिकसिद्धयोगानित संम्रहादुद्धरेत् दूरीकुर्यात् , तस्य मूर्द्धनि र्षट्रोन पुँचा वत्त राम पेतर् । काँहमेन पुसा रै—महत्रपत्रिपयेवेदविदा । काँरिर्वे बहर्हे हा चल्द्रदोकेति महत्रपन् . त्रिपयेवेदः ऋा्यलु सामरूपः, तदिदा ॥ १६ ।

अस्य स्थान्दमसा सुन्छ्यं चर्णमंग्रहम् ।
प्रकाराधितुमस्मामिनिमिता दस्त्वन्त्रिका ॥
आसीद् समाया शिखेरम्यत्य नम्बद्रतिष्ठ किल साहिसेन्, ।
बाद्योविनासं क्विसर्वमीन विविद्य यः प्राप्त यसःस्सुरुम् ॥
कानुन्यसेसन्त्रनपर्यतीऽमृद् ततोऽपि सद्मीपरसेननामा ।
स्स्मादमृदुद्यस्यन्त्रनृत्रन्तन्मादननस्मवेऽप बहे ॥
मालिङ्कत्रामानिवासमृमेगींदावनीपानिवन्तस्य ।
अनन्तरेसन्य सुतो विषये दाक्रामिना श्री शिवदाससेनः ॥
दक्तपुर्विविद्याः स्युर्थ ये वा ग्रस्मोऽपिनता नमापि ।
सन्तर्व तेऽमी तक्ले श्रमेण दीका वस्ति श्रममाञ्च पीराः ॥
दिन्न वेऽमी तक्ले श्रमेण दीका वस्ति श्रममाञ्च पीराः ॥
दिन्न श्रीमिन्नससेसमिनिवरिन्न दस्त्वनिक्य समासा ॥